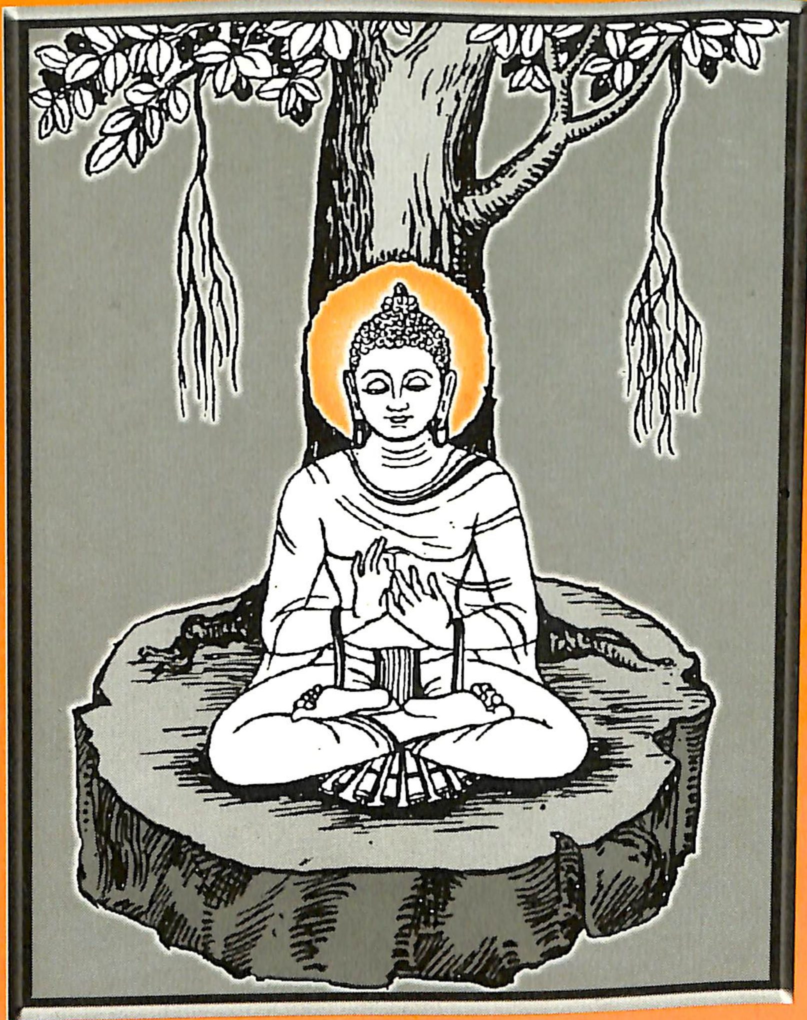
बौद्धभारतीग्रन्थमाला-45

सुत्तपिटके

अङ्गुत्तरनिकायपालि

[हिन्दी-अनुवादसहिता]

(एकक-दुक-तिकनिपाता)



प्रधान सम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला—४५
Baudha Bharati Series—45

सुत्तपिटक

अङ्गुत्तरनिकायपालि

[हिन्दी अनुवाद सहित]

(एकक-दुक-तिकनिपात)

[प्रथम भाग]

बौद्धभारती

प्रधानसम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री



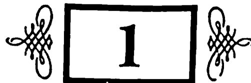
बौद्धभारतीग्रन्थमाला–४५
Bauddha Bharati Series-45

सुत्तपिटके

अङ्गुत्तरनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(एकक–दुक–तिकनिपाता)



प्रधानसम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series-45

The
ANGUTTARANIKĀYAPĀLI

(Ekaka-Duka-Tika Nipāta)

with
HINDI TRANSLATION

Vol. - 1

Edited & Translated By
Swāmī Dwārikādās Śāstrī

BAUDDHA BHARATI
Varanasi

B. 2545] 2002 [V. 2058

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-४५

सुत्तपिटक

अङ्गुत्तरनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहित]

(एकक-दुक-तिकनिपात)

प्रथम भाग

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री



वाराणसी

बु० २५४५]   सन् २००२ ई०   [वि० २०५८

प्रकाशक :
बौद्धभारती
पोस्ट बाक्स नं. : १०४९,
वाराणसी-२२१ ००१. (भारत)

Publisher by :
Bauddha Bharati
Post Box No. : 1049,
Varanasi-221 001 (India)

E-mali : bauddhabhrti@satyam.net.in

सहसम्पादक :
धर्मकीर्तिशास्त्री
चन्द्रकीर्तिशास्त्री

प्रथम संस्करण : २००२ ई.

First Edition : 2002 E.

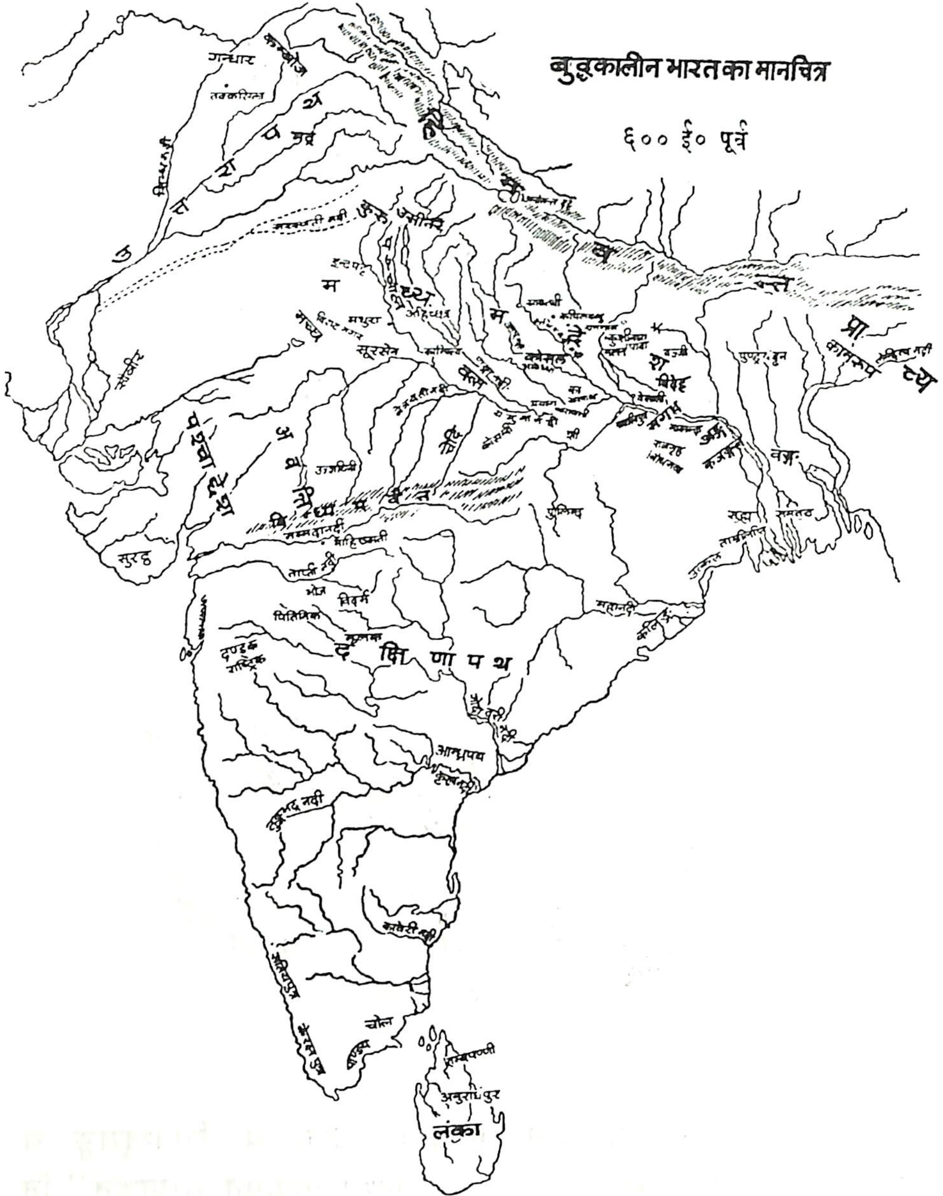
Price Rs. 2250/- (In 4 Vol's set)

मुद्रक :
साधना प्रेस
वाराणसी-२२१ ००२
फोन : (०५४२) २१००९४.

Printed By :
Sadhana Press
Varanasi- 221 002
Ph. : (0542) 210094



"एसोहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि, धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु, अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणङ्गतं" ति


बुद्धकालीन भारत का मानचित्र
६०० ई० पूर्व
गन्धार
तक्कसिला
उत्तरापथ
मद्र
सरस्वती नदी
मथुरा
अहिच्छत्र
सूरसेन
सोवीर
अवन्ती
उज्जयिनी
माहिष्मती
सुरट्ठ
तापती नदी
भोज
विदर्भ
पितिनिक
मूलक
दक्षिणापथ
आन्ध्रपथ
महानदी
चोल
तम्बपण्णी
अनुराधपुर
लंका
वज्जी
विदेह
वेसाली
वङ्ग
समतट
कोसल

प्रकाशकीय वक्तव्य

"अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं" ति

—विनयपिटके, भगवा बुद्धो।

सन् १९५८-१९६१ ई० में पालित्रिपिटकप्रकाशनसमिति, नालन्दा द्वारा सम्पूर्ण त्रिपिटक प्रकाशन में कार्य करते समय से ही हमारा यह सङ्कल्प था कि समस्त त्रिपिटक (बुद्धवचन) का हिन्दी-रूपान्तर (अनुवाद) के साथ भी प्रकाशन होना चाहिये, जिससे वह अन्य भाषाओं के विद्वानों के लिये भी उपयोगी हो सके।

एतदर्थ, हमने विगत पन्द्रह वर्षों में अत्यधिक प्रयास किया; भारत के अनेक साधनसम्पन्न प्रकाशकों तथा धनपतियों एवं बुद्धिजीवियों से इस कार्य के लिये आर्थिक साधन संगृहीत कराने हेतु निवेदन किया; परन्तु किसी ने भी, इस कार्यहेतु, हमारा उत्साहवर्धन नहीं किया।

अन्त में, हमने विवश होकर, अपने अल्प साधनों के बल पर ही इस कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। तदनुसार, सर्वप्रथम सुत्तपिटक का **मज्झिमनिकाय** (सम्पूर्ण) हिन्दी अनुवाद के साथ पाँच भागों में प्रकाशित किया, जो कि पाँच वर्ष में पूर्ण हुआ।

तदनन्तर, हमने सुत्तपिटक का **दीघनिकाय** (सम्पूर्ण) (हिन्दी अनुवाद के साथ) तीन भागों में प्रकाशित किया।

इसी क्रम में हमने समस्त **संयुत्तनिकायपालि** का हिन्दी अनुवाद के साथ चार भागों में दो वर्ष के कठिन परिश्रम एवं प्रयास के बाद, (चार भागों में सम्पूर्ण) आप के सम्मुख प्रस्तुत किया। यह ग्रन्थ २२५० पृष्ठों में पूर्ण हो पाया, अतः ग्रन्थ का कलेवर कुछ विशाल हो गया। परन्तु हमें इस बात की प्रसन्नता है कि यह ग्रन्थ पालि एवं हिन्दी-दोनों भाषाओं में एक साथ सुलभ हो गया है।

अब, इसी क्रम में सुत्तपिटक का यह चतुर्थ विशालकाय **अङ्गुत्तरनिकायपालि** ग्रन्थ (चार भागों में) प्रस्तुत किया जा रहा है। इस के, इस **प्रथम भाग** में केवल प्रथम **तीन निपात** दिये जा रहे हैं। पूर्व ग्रन्थों के समान ही इसमें भी हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ठ सङ्गायन पर आधृत, और श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालि टैक्स्ट सोसाइटी, लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९६० में 'पालि त्रिपिटक प्रकाशन बोर्ड' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने कहीं कहीं मुद्रणाशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त बर्मा, नालन्दा एवं रोमन संस्करणों की पृष्ठ-संख्या भी रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है। अनुसन्धाता इससे भी लाभान्वित होंगे।

इसमें हमने, आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथा को प्रमाण मान कर, अपना स्वतन्त्र **हिन्दी अनुवाद** सम्पन्न करते हुए, उसे पालि-पाठ के साथ नीचे दिया है।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय-वैशद्य (बात को समझाने) के लिये त्रिपिटक में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल, या आरोह-अवरोह दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फँस कर पाठक से मूल विषय दूर दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों (जहाँ पाठ पुनः पुनः आवृत्त हो) के लिये '...पे०...' की परम्परा रखी है। इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में स्वीकार किया है। परन्तु '...पे०...' का अनुवाद हमने '...पूर्ववत्...' करके दिया है, या प्रायः '...' इस चिह्न का प्रयोग किया है, जिससे पाठक प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाय।

ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ के प्रारम्भ में दे दिया है, जिससे पाठकों को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो जाय।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटक के अवशिष्ट ग्रन्थों का प्रकाशन भी इसी पद्धति से करेंगे।

अन्ते च, इस पवित्र ग्रन्थ का यह अनुवाद हमने स्वकीय ज्ञानवृद्धिहेतु लिखा था, लिखने के बाद यह ध्यान में आया कि यह हमारे समानधर्मा अन्य जिज्ञासुओं का भी प्रयोजन सिद्ध कर सकता है। इसी उद्देश्य से यह प्रकाशित किया जा रहा है।

इतने विस्तृत अनुवाद में, हो सकता है हम से कहीं परम्परा का निर्वाह न हो पाया हो, एतदर्थ हमारा विज्ञ जनों से विनम्र निवेदन है कि इस प्रमाद को क्षमा करते हुए हमें सूचित करने का कष्ट करें; जिससे आगामी संस्करण में उस का परिहार किया जा सके।

वसन्तपञ्चमी, २०५८ वि०
वाराणसी.

विद्वद्वशंवद

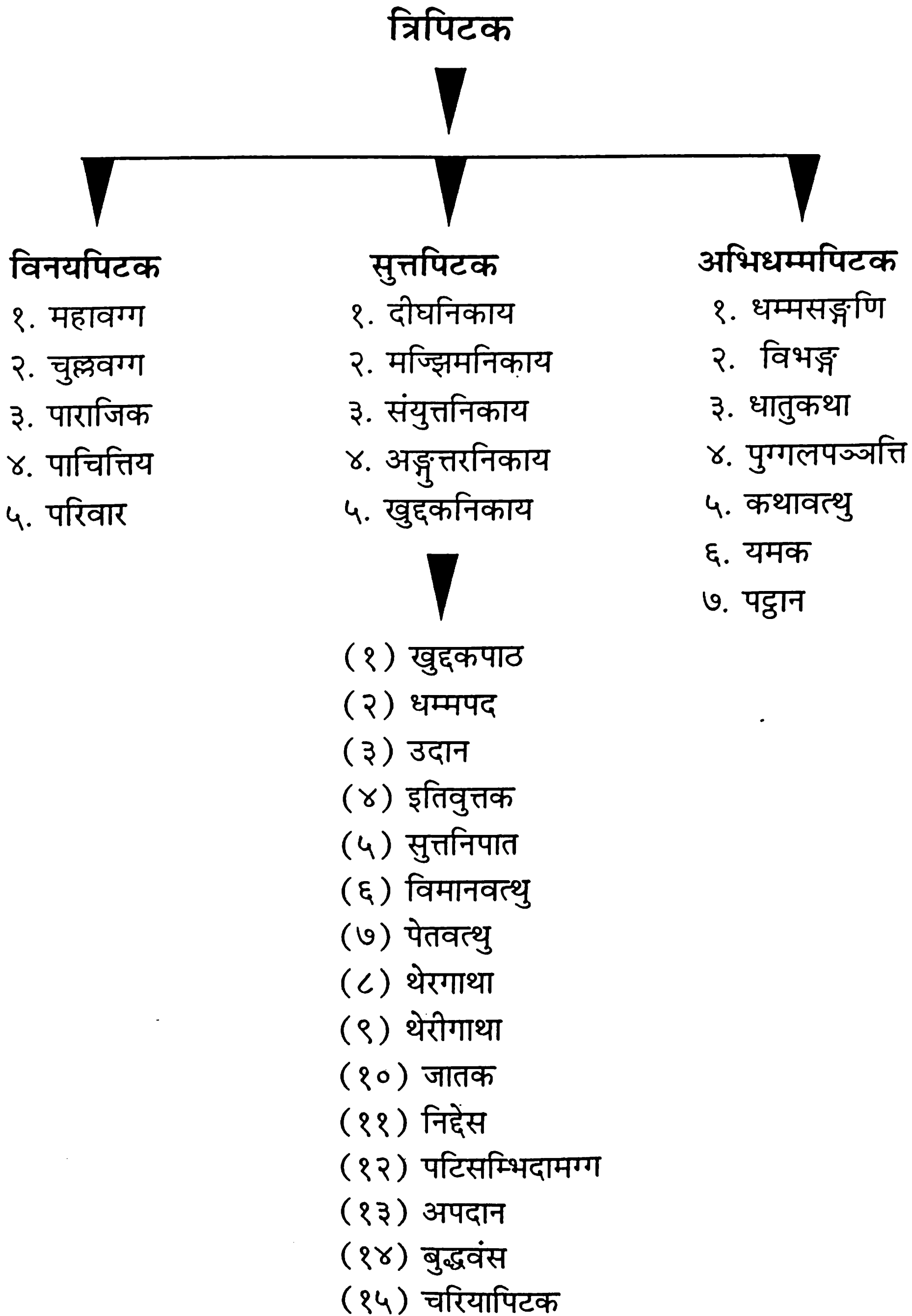
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री
अध्यक्ष, बौद्धभारती

निदानकथा

आज से प्राय: २५०० वर्ष पूर्व लोकशास्ता भगवान् बुद्ध ने, बुद्धत्वप्राप्ति के बाद मध्यमण्डल में चारिका करते हुए निरन्तर ४५ वर्षों तक उस समय की लोकभाषा में, बहुजनहिताय बहुजनसुखाय जो उपदेश किया था, सौभाग्य से त्रिपिटिक के रूप में वह आज भी सुरक्षित है। वे चाहते थे कि उनका सन्देश जनसाधारण तक पहुँचे, इसके लिये स्वयं उन्होंने लोकभाषा (अर्धमागधी) में उपदेश किया और साथ ही अपने शिष्यों को भी यह अनुमति प्रदान की कि वे उनके उपदेशों को अपनी अपनी भाषा में परिवर्तित कर धारण कर सकते हैं। हो सकता है उन दिनों तत्कालीन अनेक भाषाओं में बुद्धवचनों के संग्रह हुए हों; किन्तु आज जो बुद्धवचन हमें मिलते हैं, वे एक ही भाषा में हैं, जिसे हम 'पालिभाषा' कहते हैं। कालान्तर में इसी भाषा में विस्तृत साहित्य की रचना हुई। त्रिपिटक पर अट्ठकथाएँ और इन अट्ठकथाओं पर टीका, अनुटीका, मधुटीका, योजना, गण्ठी आदि अनेक टीका-ग्रन्थ समय समय पर निर्मित हुए। इनके अतिरिक्त अनुपिटक और उन पर अट्ठकथा, टीका आदि प्रचुर साहित्य भी हमें इसी पालिभाषा में मिलता है। यह सम्पूर्ण साहित्य बर्मा, श्रीलङ्का, श्याम, कम्बोज आदि बौद्ध देशों में आज भी न केवल सुरक्षित ही है; अपितु अध्ययन-अध्यापन तथा नये नये ग्रन्थलेखन आदि द्वारा दिनानुदिन वृद्धिङ्गत भी हो रहा है। वहाँ के मनीषी इस साहित्य की उसी प्रकार सुरक्षा कर रहे हैं, जिस प्रकार भारत में वेद और उसके उपजीव्य साहित्य की या अन्यत्र बाइबिल और कुरान साहित्य की सुरक्षा की जा रही है।

त्रिपिटक—सम्बोधिप्राप्त्यनन्तर भगवान् बुद्ध ने ४५ वर्ष के सुदीर्घकाल में जो कुछ भी धर्मप्रवचन किया, वह इतना विशाल विस्तृत एवं बहुआयामी था कि स्थूल या सूक्ष्म रूप से कुछ विभाजन किये विना उस के आदि अन्त का छोर प्राप्त करना साधारण जिज्ञासु के लिये बहुत कठिन कार्य था, अत: भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के अनन्तर सङ्गीतिकारों ने सर्वप्रथम इस विशाल धर्मप्रवचन का एक सरल वर्गीकरण तीन भागों में किया; जैसे—१. **विनयपिटक**, २. **सुत्तपिटक** एवं ३. **अभिधम्मपिटक**। इन में प्रथम 'विनयपिटक' में पाँच ग्रन्थ हैं, इन सभी में भिक्षुसङ्घ एवं भिक्षुणीसङ्घ के लिये प्रोक्त छोटे बड़े सभी पालनीय नियम तथा धर्मानुशासन संगृहीत हैं। तथा जिस भाग में विद्वानों एवं साधारण समाज के लिये उपदेश संगृहीत हैं उसे 'सुत्तपिटक' नाम दिया गया। तथा जिस भाग में केवल विद्वानों एवं साधकों द्वारा समझने योग्य गम्भीर दार्शनिक सिद्धान्त उपदिष्ट हैं उसे 'अभिधम्मपिटक' संज्ञा दी गयी। ये तीनों पिटक भी, आगे चल कर अनेक उपविभागों में विभक्त किये गये। इस समस्त प्रवचनसंग्रह को **त्रिपिटक** कहते हैं।

'त्रिपिटक' के ग्रन्थों का विभाजन



अङ्गुत्तरनिकाय का परिचय

अङ्गुत्तरनिकाय सुत्तपिटक का एक बृहत्काय चतुर्थ ग्रन्थ है। हमें बौद्ध धर्म के जिस विषय का ज्ञान प्रथम तीन निकायों में मिलता है, वही विषय इस निकाय का भी है। केवल इसकी वर्णनात्मक सङ्ख्याबद्ध शैली से ही भेद दिखायी देता है। वर्णन की यह सङ्ख्याबद्ध शैली इस निकाय की सबसे बड़ी विशेषता है।

निपात : यह समस्त निकाय एकादश (११) निपातों में विभक्त है; जैसे — एकक निपात, द्विकनिपात, त्रिकनिपात, चतुष्कनिपात, पञ्चकनिपात, षट्कनिपात, सप्तकनिपात, अष्टकनिपात, नवकनिपात, दशकनिपात, एकादशक निपात॥

वर्ग : ये एकादश निपात भी १८४ वर्गों में विभक्त हैं; इन वर्गों की सूची अनुपद में ही निपातक्रम से ही दी जा रही है। (पाठकों की सुविधा के लिये वर्ग के आगे ब्रेकेट में वर्ग में पठित समस्त सूत्रों की संख्या भी लिख दी है) जैसे —

एककनिपात — १. रूपादिवर्ग (सू. १०); २. नीवरणप्रहाणवर्ग (सू. १०); ३. अकमनीयवर्ग (१०); ४. अदान्तवर्ग (१०); ५. प्रणिहितअच्छवर्ग (१०); ६. अप्सरासङ्घातवर्ग (१०); ७. वीर्यारम्भकवर्ग (१०); ८. कल्याणमित्रादिवर्ग (११); ९. प्रथमप्रमादादिवर्ग (१६); १०. द्वितीय प्रमादादिवर्ग (४२); ११. अधर्मवर्ग (१०); १२. अनापत्तिवर्ग (२०); १३. एकपुद्गलवर्ग (१८); १४. एतदग्रवर्ग (८०); १५. अस्थानपालि (२८); १६. एकधर्मपालि (८१); १७. प्रसादकरधर्मवर्ग (१०); १८. अपर अप्सरासङ्घातवर्ग (१८१); १९. कायगतास्मृतिवर्ग (३७); २०. अमृतवर्ग (१२)॥ (६१६ सू.)

द्विकनिपात — १. कर्मकारणवर्ग (सू. सं. १०); २. अधिकरणवर्ग (११); ३. बालवर्ग (११); ४. समचित्तवर्ग (१०); ५. परिषद्वर्ग (१०); ६. पुद्गलवर्ग (१२); ७. सुखवर्ग (१३); ८. सनिमित्तवर्ग (१०); ९. धर्मवर्ग (११); १०. बालवर्ग (२०); ११. आशादुष्प्रजहवर्ग (१२); १२. आयाचनवर्ग (११); १३. दानवर्ग (१०); १४. संस्तारवर्ग (१२); १५. रागापत्तिवर्ग (१७); १६. क्रोधवर्ग (१) (५०); अकुशलवर्ग (२) (५०); १७. अर्थवशवर्ग (क्रोधपेय्याल ३००); रागपेय्याल (१७०)॥ (७५० सूत्र)

त्रिकनिपात — १. बालवर्ग (सू. सं. १०); २. रथकारवर्ग (१०); ३. पुद्गलवर्ग (१०); ४. देवदूतवर्ग (१०); ५. चूळवर्ग (११); ६. ब्राह्मणवर्ग (१०); ७. महावर्ग (१०); ८. आनन्दवर्ग (१०); ९. श्रमणवर्ग (११); १०. लवणकपालवर्ग (११); ११. सम्बोधवर्ग (१०); १२. आपायिकवर्ग (१०); १३. कुसिनारवर्ग (१०); १४. योधाजीववर्ग (१३); १५. मङ्गलवर्ग (१०); १६. अचेलकवर्ग (७); १७. कर्मपथपेय्याल (३०); १८. रागपेय्याल (१७०)॥ (३६३ सूत्र)

चतुष्कनिपात — १. भण्डग्रामवर्ग (१०); २. चरवर्ग (१०); ३. ऊरुवेलवर्ग (१०); ४. चक्रवर्ग (१०); ५. रोहिताश्ववर्ग (१०); ६. पुण्याभिष्यन्दवर्ग (१०); ७. प्राप्तकर्मवर्ग (१०); ८. अपर्णकवर्ग (१०); ९. मचलवर्ग (१०); १०. असुरवर्ग (१०); ११. वलाहकवर्ग (१०); १२.

केशिवर्ग (१०); १३. भयवर्ग (१०); १४. पुद्गलवर्ग (१०); १५. आभावर्ग (१०); १६. इन्द्रिय-वर्ग (१०); १७. प्रतिपदावर्ग (१०); १८. सञ्चेतनीयवर्ग (१०); १९. ब्राह्मणवर्ग (१०); २०. महावर्ग (१०); २१. सत्पुरुषवर्ग (१०); २२. परिषद्वर्ग (१०); २३. दुश्चरितवर्ग (११); २४. कर्मवर्ग (११); २५. आपत्तिभयवर्ग (११) २६. अभिज्ञावर्ग (१०); २७. कर्मपथवर्ग (१०); २८. रागपेय्याल (५१०)। (सूत्र संख्या ७८३)

पञ्चकनिपात — १. शैक्ष्यबलवर्ग (१०); २. बलवर्ग (१०); ३. पञ्चाङ्गिकवर्ग (१०); ४. सुमनवर्ग (१०); ५. मुण्डराजवर्ग (१०); ६. नीवरणवर्ग (१०); ७. संज्ञावर्ग (१०); ८. योधाजीववर्ग (१०); ९. स्थविरवर्ग (१०); १०. ककुधवर्ग (१०); ११. फासुविहारवर्ग (१०); १२. अन्धकविन्दवर्ग (१०); १३. ग्लानवर्ग (१०); १४. राजवर्ग (१०); १५. त्रिकण्टकीवर्ग (१०); १६. सद्धर्मवर्ग (१०); १७. आघातवर्ग (१०); १८. उपासकवर्ग (१०); १९. अरण्यवर्ग (१०); २०. ब्राह्मणवर्ग (१०); २१. किमिलवर्ग (१०); २२. आक्रोश-वर्ग (१०); २३. दीर्घचारिकवर्ग (१०); २४. आवासिकवर्ग (१०); २५. दुश्चरितवर्ग (१०); २६. उपसम्पदावर्ग (२१); २७. सम्मतिविस्तार (१५); २८. शिक्षापदविस्तार (१७); २९. राग-पेय्याल (८५०)॥ (सूत्र सं. ११५४)

षट्कनिपात — १. आह्वनीयवर्ग (१०); २. सारणीयवर्ग (१०); ३. अनुत्तर्यवर्ग (१०); ४. देवतावर्ग (१२); ५. धार्मिकवर्ग (१२); ६. महावर्ग (१०); ७. देवतावर्ग (१०); ८. अर्हत्त्व-वर्ग (१०); ९. शीतिवर्ग (११); १०. आनृशंस्यवर्ग (११); ११. त्रिकवर्ग (१०); १२. श्रामण्य-वर्ग (२३); १३. रागविस्तार (५१०)॥ (सूत्र सं. ६४८)॥

सप्तकनिपात — १. धनवर्ग (१०); २. अनुशयवर्ग (१०); ३. वज्जिसप्तकवर्ग (११); ४. देवतावर्ग (१२); ५. महायशवर्ग (१०); ६. अव्याकृतवर्ग (११); ७. महावर्ग (१०); ८. विनयवर्ग (१०); ९. श्रमणवर्ग (१०); १०. आह्वनीयवर्ग (५२८); ११. रागविस्तार (५१०)॥ (सूत्र सं. ११३२)॥

अष्टकनिपात — १. मैत्रीवर्ग (१०); २. महावर्ग (१०); ३. गृहपतिवर्ग (१०); ४. दान-वर्ग (१०); ५. उपोसथवर्ग (१०); ६. गौतमीवर्ग (१०); ७. भूमिचालवर्ग (१०); ८. यमकवर्ग (१०); ९. स्मृतिवर्ग (१०); १०. श्रामण्यवर्ग (२६); ११. रागपेय्याल (५१०)॥ (सूत्र सं. ६२६)

नवकनिपात — १. सम्बोधिवर्ग (१०); २. सिंहनादवर्ग (१०); ३. सत्त्वावासवर्ग (११); ४. श्रामण्यवर्ग (१०); ५. महावर्ग (१०); ६. क्षेमवर्ग (११); ७. स्मृतिप्रस्थानवर्ग (१०); ८. सम्यक्प्रधानवर्ग (१०); ९. ऋद्धिपादवर्ग (१०); १०. रागपेय्याल (३४०)॥ (सूत्र सं. ४३२)॥

दशकनिपात — १. आनृशंस्यवर्ग (१०); २. नाथवर्ग (१०); ३. महावर्ग (१०); ४. उपालिवर्ग (१०); ५. आक्रोशकवर्ग (१०); ६. स्वचित्तवर्ग (१०); ७. यमकवर्ग (१०); ८. आकांक्षवर्ग (१०); ९. स्थविरवर्ग (१०); १०. उपालिवर्ग (१०); ११. श्रमणसंज्ञावर्ग (१२); १२. प्रत्यवरोहिणीवर्ग (१०); १३. परिशुद्धवर्ग (११); १४. साधुवर्ग (११); १५. आर्यवर्ग

(१०); १६. पुद्गलवर्ग (१२); १७. जानुश्रोणिवर्ग (११); १८. साधुवर्ग (११); १९. आर्यमार्गवर्ग (१०); २०. अपर पुद्गलवर्ग (१२); २१. करजकायवर्ग (१०); २२. श्रामण्यवर्ग (१६); २३. रागपेय्याल (५१०) ॥ (सूत्र सं. ७४६) ॥

एकादशकनिपात — १. निश्रयवर्ग (१०); २. अनुस्मृतिवर्ग (११); ३. श्रामण्यवर्ग (४८०); ४. रागपेय्याल (१७०) ॥ (सूत्र सं. ६४१) ॥ (समग्र सूत्रसंकलन — ७९२१) ॥

अङ्गुत्तरनिकाय की सूत्रसंख्या

यह समग्र सूत्रसंकलन त्रिपिटक के षष्ठ सङ्गायनकृत संस्करण के आधार पर लिखा गया है। जबकि हम से-पूर्व के सभी विद्वानों ने इस निकाय की सूत्रसंख्या केवल २३०८ ही मानी है। सङ्गीतिकारों ने इस निकाय की सूत्रसंख्या के विषय में इस ग्रन्थ के अन्त में स्पष्ट लिखा है —

नवसुत्तसहस्सानि, भिय्यो पञ्चसतानि च।
सत्तपञ्ञास सुत्तन्ता, अङ्गुत्तरसमायुता ॥

इस गाथा से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि प्रथम सङ्गीतिकारों द्वारा अङ्गुत्तरनिकाय के समस्त सूत्रों की सङ्ख्या **९५५७** (नौ हजार पाँच सौ सत्तावन) मानी गयी है; जब कि आधुनिक सभी भारतीय विद्वान् और पाश्चात्त्य विद्वान् केवल **२३०८** (दो हजार तीन सौ आठ) ही मान रहे हैं। इस प्रकार यह सूत्रसंख्या वास्तविक संख्या से **७२४९** कम रह जाती है।

ऐसा अनुमान होता है कि इन इतिहासकारों को तथा सम्पादकों को त्रिपिटक के ऐसे संस्करण मिले होंगे जिनमें सूत्र शीर्षकरूप से बहुत कम लिखे गये होंगे। उसी के आधार पर उन विद्वानों ने गणना कर सूत्रसंख्या लिख डाली।

परन्तु नालन्दा के संस्करण (१९६० ई.) के विषय में यह बात भी नहीं कही जा सकती; क्यों कि नालन्दा-संस्करण षष्ठ संगायन को आधार मान कर अक्षरशः प्रकाशित हुआ है। यहाँ तक कि इसमें सूत्रों के शीर्षक तथा उन की संख्या के लिये षष्ठ सङ्गायन के संस्करण को ही आधार माना है। तब नालन्दा-संस्करण के आदरणीय सम्पादक ने स्वलिखित भूमिका में वही (२३०८) सङ्ख्या कैसे लिख दी! कम से कम उतनी सङ्ख्या तो देते जो षष्ठ सङ्गायन में है। (यह भूमिका इस संस्करण में भी, आगे अविकल रूप में दी जा रही है।) ज्ञात होता है कि पाश्चात्त्य विद्वानों का अन्धानुकरण करते हुए यह सङ्ख्या लिख दी गयी है। अन्यथा, नालन्दा-संस्करण में इस ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठ पर एकमात्र यही गाथा मुद्रित है। इस पर सरलता से ध्यान दिया जा सकता था। अस्तु।

अब प्रकरण पर आवें। हमारी सूत्रसङ्कलना में भी सङ्गीतिकारों की गाथा में उल्लिखित सूत्रसङ्कलना की अपेक्षा १६३६ (एक हजार छह सौ छत्तीस) सूत्रों की कमी पड़ रही है। उसका समाधान यह हो सकता है —

अङ्गुत्तरनिकाय की प्रतिपादनशैली का सूक्ष्म अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इस में सभी वस्तुधर्मों का अनुलोम प्रतिलोम क्रम से वर्णन हुआ है। यहाँ अनुलोमपद्धति से वर्णित सभी धर्मों पर सूत्रसंख्या लिखी गयी है; परन्तु अनेक प्रतिलोमवर्णित सूत्रों को भी उसी में मिला दिया गया है। ऐसे सूत्रों पर एक एक पृथक् सङ्ख्या का अध्याहार कर लेने से दोनों सङ्कलनों की सङ्ख्या समान स्तर पर आ सकती है; क्योंकि यह केवल गणना का विवाद है, विषयवस्तुवर्णन में कहीं कोई भेद

नहीं है। **सङ्गीतिकार** भी हमारी बात को ही प्रमाणित करते हैं। वे भी इस ग्रन्थ के **तिक निपात** के अन्त में लिखते हैं—

समाधिमूलका पेय्यालेसु चापि ववत्थिता।''

गणनाशैली — इस निकाय में भगवान् बुद्ध के उन समस्त उपदेशों का संग्रह है जिसमें कहीं न कहीं एक से ग्यारह तक कोई सङ्ख्या सम्पृक्त हो। इसमें इतना ही विशेष किया गया है कि सर्वप्रथम उन धर्मों का संग्रह हुआ है जो एक सङ्ख्या से सम्पृक्त हों, पुन: दो सङ्ख्या वाले धर्मों का, पुन: तीन सङ्ख्या वाले धर्मों का। इस प्रकार उत्तरोत्तर बढते बढते ऐसे धर्मों का भी इस में संग्रह हो गया जो एकादश (११) संख्या से सम्पृक्त हों। इसीलिये इस निकाय का नाम 'अङ्गुत्तर' रखा गया। संस्कृत या हिन्दी में इसका अनुवाद 'अङ्कोत्तर' होगा। चीनी भाषा में, विशेष स्पष्ट करने के लिये, इसका अनुवाद 'एकोत्तर' किया गया॥

अङ्गुत्तरनिकाय का काल

कुछ विद्वान् इस गणनाशैली के कारण ही इस निकाय को कालक्रम में पश्चात्कालभावी मानते हैं; परन्तु उन का ऐसा मानना उचित नहीं; क्यों कि इस गणनाशैली से दीघनिकाय के **सङ्गीतिपर्यायसूत्र** एवं **दशोत्तरसूत्र**; खुद्दकनिकाय के **खुद्दकपाठ, थेरगाथा, थेरीगाथा, इतिवुत्तक** आदि में भी अनेकत्र इसी शैली से वर्णन हुआ है। अभिधर्मपिटक के सातों ग्रन्थों का आधार यह गणना-प्रणाली ही है। अत: इसके आधार पर किसी को पूर्व-पश्चात्काल भावी नहीं सिद्ध किया जा सकता॥

कुछ विशिष्ट सूत्र : यद्यपि गणना पर आधृत सभी सूत्रों का, फिर भले ही वे अन्य निकायों में भी क्यों न पढे गये हों, यहाँ भी उनका समावेश है। परन्तु इस कारण ही इस निकाय की महत्ता कम नहीं हो जाती; क्यों कि यहाँ इस निकाय में ऐसे सूत्रों का भी समावेश है, जो अन्य निकायों में कहीं नहीं मिलते। जैसे **एककनिपात** का **एतदग्रवर्ग**। जिस में वर्णित है कि भगवान् बुद्ध के भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिकाओं में किसने धर्म के किस अङ्ग में दक्षता या विशेषता प्राप्त की थी। इस वर्णन से तात्कालिक सङ्घ की विशेषता स्पष्ट प्रकट होती है। **त्रिकनिपात** का **भरण्डु-कालामसुत्त**; एवं **केसमुत्तियसुत्त** में धर्म की कसौटी; **वेरञ्जकब्राह्मणसुत्त** में गृहस्थ के कर्तव्य; षट्कनिपात के **पधानियसुत्त** में नव भिक्षुओं को उपदेश; **अष्टकनिपात** के **पजापतिगोतमी-पब्बजासुत्त** में आठ गुरु धर्म; **सप्तकनिपात** में भगवान् का ब्रह्मचर्य (अष्टविध मैथुन परित्याग) से सम्बद्ध उपदेश, **अष्टकनिपात** में सिंह सेनापति को दान का उपदेश आदि सूत्रों के संग्रह से भी इस निकाय की महत्ता स्पष्ट प्रकट होती है॥

अङ्गुत्तरनिकाय का महत्त्व

यह समग्र ग्रन्थ धर्म एवं नीति (सदाचार) से सम्बद्ध है। तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने अपने धर्म को सामाजिक न्याय तथा अनेक मनोवैज्ञानिक सन्तुलनों के दृढ आधार पर प्रतिष्ठित किया था। इस धर्म की प्रतिष्ठा जिन उद्देश्यों को लेकर की गयी थी, उनकी पूर्ति हेतु समाज में मौलिक क्रान्ति उत्पन्न करना भी आवश्यक था। अत: उन ने सब के लिये निर्वाणप्राप्ति की सरलतम विधि के रूप में अष्टाङ्गिक मार्ग का उपदेश किया। साथ ही भिक्षुओं को एक उच्चस्तरीय ज्ञान की

दीक्षा देकर एक विशेष बल (धर्मसेना=सङ्घ) भी सङ्गठित किया, जो उनके उपदेशों को सर्वत्र फैलाने हेतु सन्नद्ध हो। भगवान् ने इस ग्रन्थ में भिक्षुओं तथा जिज्ञासुओं को धर्मसम्बन्धी नियमों और आचारों का आकर्षक शैली में व्याख्यान किया है। इसमें गृहस्थों तथा श्रमणों के लिये पृथक् पृथक् आचार नियमों का भी प्रतिपादन किया है।

यद्यपि अङ्गुत्तरनिकाय में आदि से अन्त तक धर्म, आचार, नीति सम्बन्धी शुष्क विषयों का ही निर्वचन हुआ है, तथापि इसके स्वाध्याय से पाठक का मन उपरत नहीं होता; क्योंकि इसकी **निर्वचन-शैली** एवं **भाषा** इतनी प्राञ्जल एवं आकर्षक है कि वह पाठकों को अपनी ओर सतत आकृष्ट किये रहती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस निकाय का अतिशय महत्त्व है; क्योंकि इसमें तथागत बुद्ध के समकालिक प्रसिद्ध राजाओं, प्रमुख ब्राह्मणों, विख्यात शास्ताओं, व्यापार एवं वाणिज्य में प्रोन्नत नगरों तथा देश में दूर दूर तक फैले राजपथों आदि का भी यथाप्रसङ्ग विस्तृत वर्णन है।

भूगोल की दृष्टि से इस में जम्बूद्वीप के विशाल पर्वतों, देश के विस्तृत भू भाग में फैली हुई महानदियों, महावनों, विशाल चैत्यों तथा प्रमुख साधनास्थलों का भी यथास्थान विस्तृत उल्लेख है।

इस निकाय में सङ्घ के स्थविर भिक्षुओं, भिक्षुणियों, शीलसम्पन्न उपासकों तथा उपासिकाओं के विषय में विस्तृत एवं प्रामाणिक सूचनाएँ भी यथास्थान निर्दिष्ट हैं। उदाहरणार्थ — एक वर्ग (एतदग्रवर्ग) में उन ७० भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों एवं उपासिकाओं का क्रमशः नामनिर्देश है, जिनने अपने किसी गुणविशेष के कारण प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। इन में सारिपुत्त, मौद्गल्यायन एवं आनन्द, उपालि आदि भिक्षु हैं; महाप्रजापती गौतमी, क्षेमा, उत्पलवर्णा आदि भिक्षुणियाँ भी है; तथा अनाथपिण्डिक, जीवक कौमारभृत्य, महानाम शाक्य आदि उपासक भी हैं तो विशाखा मृगारमाता, नकुलमाता गृहपत्नी आदि उपासिकाएँ भी है। इससे ज्ञात होता है कि तथागत के श्रावकों (शिष्यों) में भिक्षु एवं गृहस्थ, पुरुष एवं स्त्री, राजा तथा सामान्य नागरिक सभी सम्मिलित थे।

इस निकाय से यह भी ज्ञात होता है कि बौद्धधर्म के इतने व्यापक प्रचार का मूल कारण यह था कि महात्मा गौतम बुद्ध स्वयं एक कुशल वक्ता थे, उन के धर्मप्रवचन की एक विशिष्ट शैली थी। उन ने अपने शिष्यों को भी इसी वक्तृत्वशैली से प्रोन्नत किया था। उनकी वक्तृता इतनी तर्कपूर्ण एवं व्यावहारिक होती थी कि वे जिस क्षेत्र में जाते थे, वहाँ की जनता उनकी देशना सुन कर निःसङ्कोच, निरातङ्क एवं निराशङ्क हो कर धर्मपालन में उन का मार्गनिर्देशन स्वीकार कर लेती थी। इस निकाय में यत्र तत्र उल्लिखित तथागत बुद्ध की चारिकाओं का वर्णन पढने से यह बात स्पष्टतः प्रमाणित होती है॥

●

अङ्गुत्तरनिकाय में सङ्केतित

तथागत एवं तथागतश्रावकों के

साधना-स्थल

अग्गाळव चैत्य	आळवी
अजपालन्यग्रोधमूल	ऊरुवेला (गया)
अञ्जनवन मृगदाव	साकेत
अन्धकविन्द	मगधदेश
अन्धवन	श्रावस्ती
आनन्द चैत्य	भोगनगर
आम्रपालिवन	वैशाली
आम्रवन (चुन्द कर्मारपुत्र)	पावा
आम्रवन (जीवक कौमारभृत्य)	राजगृह
आळवक चैत्य	आळवी
इच्छानङ्गल (वनषण्ड) ब्राह्मणग्राम	कौसलदेश
ऋषिपतन (मृगदाव)	वाराणसी
कक्करपत्र	कोलिय-निगम
कलन्दकनिवाप (वेणुवन)	राजगृह
कम्मासधम्म	कुरुदेश
कल्लवाळपुत्रग्राम (भेसकळावन)	सुंसुमार गिरि
किमिला (वेणुवन)	राजगृह
कुलघरसमीपवर्ती पर्वतशृङ्खला	अवन्तिप्रदेश
कूटागारशाला (महावन)	वैशाली
गग्गरा (पुष्करिणी)	चम्पा
गयाशीर्ष (पर्वत)	गया (मगध)
गिरिव्रज	राजगृह
गृञ्जकावसथ (नातिका)	वज्जिप्रदेश
गृध्रकूट (पर्वत)	राजगृह
घोषिताराम	कौसाम्बी
चापाल चैत्य	वैशाली
जातिभूमि	राजगृह (मगध)

जेतवनाराम	श्रावस्ती
तपोदाराम	राजगृह
तिकण्डकीवन	साकेत
दक्षिणागिरि	राजगृह
दण्डकल्पक	कोसलप्रदेश
नळकपान ग्राम	कोसल प्रदेश
नळेरुपुचिमन्द वृक्ष	वेरञ्जा
नालकग्राम	मगध
न्यग्रोधाराम	कपिलवस्तु
पुष्करिणी (सामग्राम)	शाक्यप्रदेश
पूर्वाराम (मृगारमातृप्रासाद)	श्रावस्ती
प्राचीन वंशदाव	चेदिदेश
बलिहरण	कुशीनारा
भण्डग्राम	वज्जिप्रदेश
भेसकळावन (मृगदाव)	सुंसुमारगिरि
मयूरनिवाप	राजगृह
वटजालिका (सङ्ख्येयक पर्वत)	महिषवस्तु
वेणुवन	कजङ्गला
शीतवन	राजगृह (मगध)
सयञ्जाति (सहजाति)	चेदिदेश
सामग्राम	शाक्यप्रदेश
सारन्दद चैत्य	वैशाली
हस्तिग्राम	वज्जिप्रदेश

●

अङ्गुत्तरनिकाय के एकादश निपातों का वस्तुसंक्षेप

एकक निपात

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सङ्गीतिकारों ने इस निपात का २० (बीस) वर्गों में विभाजन कर सङ्गायन किया है। इन वर्गों में पहला वर्ग है —

१. रूपादि वर्ग — इस वर्ग में दश सूत्र हैं। जिन में किसी भी स्त्री के रूप, शब्द, रस, गन्ध, एवं स्पर्श को सभी पुरुषों के लिये तथा पुरुष के रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श को स्त्री-जातिमात्र के लिये अतिशय घातक बताया है॥

२. नीवरणप्रहाण वर्ग — इस वर्ग में कामच्छन्द (कामभोगों में स्वेच्छाचारिता), व्यापाद (द्वेष), स्त्यान मृद्ध (आलस्य एवं तन्द्रा), औद्धत्य कौकृत्य (उच्छृङ्खलता), एवं विचिकित्सा (गुरु एवं धर्म के प्रति सन्देह) को चञ्चलचित्त साधक के लिये साधना में विघ्नकारक बताया है।

परन्तु अशुभ निमित्त (शरीर में अशुभ भावना रखना), मैत्रीमय चित्तविमुक्ति, आरम्भ, नैष्काम्य पराक्रम, चित्त की शान्ति एवं धर्मों के सूक्ष्म प्रत्यवेक्षण (योनिशः मनस्कार) को साधना में अतिशय सहायक बताया है॥

३. अकमनीय वर्ग — इस वर्ग में साधक के लिये अनिगृहीत चित्त को अवाञ्छनीय (अकमनीय=दुर्बल), अनर्थकर, अपवित्र (दोषपूर्ण) एवं दुःखप्रद बताया है।

(इसके विपरीत) साधक के लिये उसके निगृहीत चित्त को वाञ्छनीय, अर्थकर, पवित्र (निर्दोष) एवं सुखप्रद बताया है॥

४. अदान्त वर्ग — इस वर्ग में साधक के असंयत (अरक्षित) चित्त की भर्त्सना करते हुए उस को साधना में अनर्थकर, अहितकर बताया है। (इसके विपरीत) साधक के संयत, सुरक्षित चित्त को साधना के लिये लाभप्रद एवं हितकर सिद्ध करते हुए उसको प्रशस्त कहा है॥

५. अप्रणिहित अच्छ वर्ग — इस वर्ग में जौ या धान की तीखी बाल के दृष्टान्त से साधक के ऐसे चित्त की निन्दा की गयी है जो साधनाकाल में रागादि विकारों से दूषित हो, जिस में मिथ्या सङ्कल्प विकल्प उठते रहते हों, या जो स्वच्छ (शुद्ध निर्विकार) न हो, चञ्चलता के कारण दुर्बल हो; क्योंकि ऐसे चित्त से साधक साधना में सफल नहीं हो सकता। जैसे मलिन जल वाला सरोवर स्नान एवं पान-दोनों ही कार्यों का साधक नहीं होता।

जिस साधक का चित्त रागादि विकारों से दूषित न हो, स्वच्छ (शुद्ध, निर्विकार) हो, सम्यक्सङ्कल्प वाला हो — ऐसा चित्त साधक की साधना में अत्यधिक सहायक होता है। जैसे कोई स्वच्छ निर्मल सरोवर स्नान एवं पान — दोनों ही कार्यों में उपयोगी होता है॥

६. अप्सरासङ्घात वर्ग — इस में भगवान् कहते हैं — यद्यपि सभी प्राणियों का चित्त स्वभावतः उज्ज्वल (निष्कलङ्क) रहता है; परन्तु आगन्तुक (बाह्य) रागादि विकारों से वह दूषित

होता रहता है, समाधिरत नहीं हो सकता। यहाँ आगन्तुक विकारों के कारणों को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं — जिस साधक ने शास्त्रश्रवण न किया हो, जो अल्पमात्र भी मैत्रीचित्त की भावना न करता हो, या जो प्रमाद (साधना में अव्यवस्था) रत हो, या साधना में आलस्य करता हो।

(इसके विपरीत) जो साधक शास्त्रश्रवण में आग्रह रखता है, मैत्री चित्त की भावना में सतत रत रहता है, अप्रमादी है तथा साधनाकाल में आलस्य को समीप नहीं आने देता, ऐसा साधक साधना में निश्चित ही सफल होता है; क्यों कि उस का चित्त उज्ज्वल रहता है अत: उसकी साधना में विघ्न का कोई प्रसङ्ग ही नहीं आ सकता॥

७. **वीर्यारम्भ वर्ग** — इस वर्ग में साधक द्वारा कुशल के उत्पाद एवं अकुशल के नाश हेतु किये जा रहे 'प्रयास' (वीर्यारम्भ) की प्रशंसा की गयी है और 'महेच्छता' (अत्यधिक लोभ) की निन्दा। इसी प्रकार 'अल्पेच्छता' (यथालाभ सन्तोष) की प्रशंसा एवं 'असन्तोष' की निन्दा की गयी है। और 'धर्मों का सूक्ष्म अन्वीक्षण' प्रशस्त माना गया है, तथा 'धर्मों का सूक्ष्म अनन्वीक्षण' (अज्ञान या अविवेक) निन्दय एवं 'सम्प्रजन्य' (ज्ञान या विवेक) को प्रशस्त कहा गया है। यहाँ 'पापमित्रता' को भी अकुशल धर्मोत्पत्ति में सहायक बताया गया है॥

८. **कल्याणमित्रतादि वर्ग** — इस वर्ग में कल्याणमित्रता, अकुशल धर्मों की साधना न करना, कुशल धर्मों की साधना करना, योनिश: मनसिकार, एवं प्रज्ञावृद्धि को कुशल धर्मों के उत्पाद में सहायक तथा इन उपर्युक्त धर्मों के पापमित्रता आदि विलोम धर्म कुशल धर्मों के नाशक हैं॥

९. **प्रमादादि वर्ग** — इस वर्ग में प्रमाद, आलस्य, अतिशय लोभ (महेच्छता), एवं योनिश: अमनसिकार को साधक की साधना में विघ्नकारक तथा इनके विपरीत अप्रमाद, वीर्यारम्भ सन्तोष एवं योनिश: मनसिकार को साधना का अतिशय साधक माना गया है॥

१०. **द्वितीय अप्रमादादि वर्ग** — इस वर्ग के व्याख्यान में साधना में सहायक या साधना में असहायक धर्मों का आभ्यन्तर एवं बाह्य भेद से विभाजन करते हुए भी वर्णन हुआ है। जैसे (१) साधना में विघ्नकारक आध्यात्मिक धर्म ये हैं — प्रमाद, कौसीदय, महेच्छता, अयोनिश: मनसिकार एवं असम्प्रजन्य।

(२) साधना में सहायक आध्यात्मिक धर्म ये हैं — अप्रमाद, वीर्यारम्भ, अल्पेच्छता, योनिश: मनसिकार एवं सम्प्रजन्य।

(३) साधना में विघ्नकारक एवं अनर्थकारक धर्म ये हैं — पापमित्रता, अकुशल धर्मों की साधना, कुशल धर्मों की असाधना, अधर्म को धर्म कहना, धर्म को अधर्म कहना, अविनय को विनय कहना, विनय को अविनय कहना, तथागत द्वारा अकथित एवं अनुक्त को कथित एवं उक्त कहना, तथागत द्वारा कथित एवं उक्त को अकथित एवं उक्त कहना, तथागत द्वारा अनभ्यस्त एवं अनाज्ञप्त को अभ्यस्त एवं आज्ञप्त कहना, तथागत द्वारा अभ्यस्त एवं आज्ञप्त को अनभ्यस्त एवं अनाज्ञप्त कहना। ये धर्म साधना में अहितकर, अनर्थकर एवं दु:खप्रद कहलाते हैं।

(४) साधना में अर्थकारी, हितकारी एवं सुखकारी धर्म ये हैं — कल्याणमित्रता, कुशलधर्मों की साधना, अकुशल धर्मों की असाधना, अधर्म को अधर्म कहना, धर्म को धर्म कहना, अविनय को अविनय कहना, विनय को विनय कहना, तथागत द्वारा कथित एवं उक्त को उनका कथित एवं उक्त कहना, तथागत द्वारा अकथित एवं अनुक्त को अकथित एवं अनुक्त कहना, तथागत द्वारा

अनभ्यस्त एवं अनाज्ञप्त को अनभ्यस्त एवं अनाज्ञप्त ही कहना और तथागत द्वारा अभ्यस्त एवं आज्ञप्त को अभ्यस्त एवं आज्ञप्त ही कहना अर्थकर, हितकर तथा सुखप्रद होता है॥

११. अधर्मवर्ग — जो भिक्षु अधर्म को अधर्म तथा धर्म को धर्म ही कहते हैं, जो अविनय को अविनय एवं विनय को विनय ही कहते हैं, तथागत के अकथित एवं अनुक्त को अकथित एवं अनुक्त ही कहते हैं, तथागत द्वारा अनभ्यस्त एवं अनाज्ञप्त को अनभ्यस्त एवं अनाज्ञप्त ही कहते हैं, तथागत द्वारा कथित एवं उक्त को उनके द्वारा कथित एवं उक्त ही कहते हैं और तथागत द्वारा अभ्यस्त एवं आज्ञप्त को अभ्यस्त एवं आज्ञप्त ही कहते हैं — ऐसे साधक भिक्षु स्वयं भी पुण्यार्जन करते हैं तथा इस सद्धर्म को भी चिरस्थायी बनाते हैं॥

१२. अनापत्तिवर्ग — जो भिक्षु, दूसरों की अनापत्ति (विनयपालन) को आपत्ति (विनय का उल्लङ्घन) बताते हैं, जो आपत्ति को अनापत्ति बताते हैं, लघु आपत्ति को गुरु आपत्ति या गुरु आपत्ति को लघु आपत्ति बताते हैं (ग्रन्थ देखकर विस्तार कर लें) प्रायश्चित्तीय आपत्ति को आपत्ति बताते हैं, ऐसे भिक्षु स्वयं भी पाप के भागी होते हैं तथा इस सद्धर्म के लोप में भी सहयोगी करते हैं (पूर्ववत्....) ऐसे भिक्षु स्वयं पुण्यार्जन के साथ सद्धर्म की चिरस्थिति में सहायक होते हैं॥

१३. एकपुद्गलवर्ग — तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध लोक में एक पुद्गल के रूप में अवतरित होकर भी असङ्ख्य प्राणियों का हित, सुख एवं सत्प्रयोजन सम्पादन करते हैं। ऐसे पुद्गल का प्रादुर्भाव दुर्लभ एवं आश्चर्यकारक होता है; क्योंकि इस एक पुद्गल के प्रादुर्भाव से विशेष ज्ञान, प्रकाश, दर्शन, श्रवण, लाभ, शिक्षा, परिचर्या एवं अनुस्मृति का प्रादुर्भाव तथा चारों प्रतिसंविदाओं के ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, विद्याविमुक्ति फल का साक्षात्कार होता है...अर्हत्त्वफल का साक्षात्कार होता है — ऐसा समझना चाहिये॥

१४. एतदग्रवर्ग — इस वर्ग में उन भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिकाओं का व्यक्तिशः नामग्रहणपूर्वक उल्लेख है, जो सङ्घ में अपने एक या अनेक गुणों के कारण, भगवान् की दृष्टि में, अपनी विशेष स्थित बना चुके थे। जैसे — श्रावकों में सर्वप्रथम अर्हत्त्व प्राप्त करने वाले **आज्ञाकौण्डिन्य,** महाप्राज्ञों में श्रेष्ठ **सारिपुत्र,** ऋद्धिमानों में श्रेष्ठ **महामौद्गल्यायन** आदि। भिक्षुणियों में — सर्वाधिक वृद्ध **महाप्रजापति गौतमी,** महाप्राज्ञों में क्षेमा, ऋद्धिमती भिक्षुणियों में **उत्पलवर्णा** भिक्षुणी आदि। उपासकों में — सर्वप्रथम शरणागत हुए **तपस्सु** एवं **भल्लिक** या गृहपति **अनाथपिण्डक सुदत्त** आदि। तथा उपासिकाओं में — सर्वप्रथम शरणागत हुई **सुजाता** श्रेणियधीता या दानकर्त्रियों में श्रेष्ठ **विशाखा मृगारमाता** आदि। (व्यक्तिशः नाम की जिज्ञासा यथास्थान ग्रन्थ से पूर्ण कर लें।)

१५. अस्थानपालि — इस वर्ग में वास्तविक साधक में कुछ बातें असम्भव बतायी हैं। जैसे — यदि कोई साधक सम्यग्दृष्टिसम्पन्न है तो यह सम्भव नहीं कि वह संस्कारों को नित्य, सुखमय मानकर उन पर चिन्तन करे। न यही सम्भव है कि वह किसी धर्म को 'आत्मा' मान कर उस पर विचार करे। न कोई सम्यग्दृष्टि साधक माता पिता आदि की हत्या करे। किसी मूर्ख से ही यह सम्भावना की जा सकती है; या ऐसा साधक बुद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य शास्ता का शरणापन्न हो।

लोक में एक ही समय दो बुद्ध अवतरित नहीं होते। दो चक्रवर्ती राजा नहीं होते। न कभी कोई स्त्री सम्यक्सम्बुद्ध बन सकती है; क्यों कि ये तीनों ही बातें असम्भव हैं॥

न कभी यह सम्भव है कि सुचरित पुरुष को दुराचारों का दुष्परिणाम भोगना पड़े और न यही सम्भव है कि दुश्चरित पुरुष को कोई सुखमय परिणाम उपलब्ध हो। न यही सम्भव है कि सच्चरित्र पुरुष का कभी नरक पात हो और न यही सम्भव है कि दुश्चरित पुरुष को कभी स्वर्गप्राप्ति हो सके॥

१६-१७. एकधर्मपालि — बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, सङ्घानुस्मृति, शीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति, देवतानुस्मृति आदि धर्मों में से किसी एक धर्म का पालन तथा अभ्यास साधक को सम्बोधि एवं निर्वाण तक पहुँचा सकता है॥

मिथ्यादृष्टि साधक को अकुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा कुशल धर्म नष्ट होने लगते हैं और सम्यग्दृष्टि साधक अपनी सम्यग्दृष्टि के आश्रयण से कुशल धर्मों का विपुल उत्पाद एवं अकुशल धर्मों का सर्वथा नाश करने में समर्थ हो जाता है। सम्यग्दृष्टि साधक अपने कुशलकर्मों के आश्रयण से, देहपात के बाद मरणानन्तर स्वर्गसुख ही भोगता है। जो कि अकुशल पापमय कर्मों के कारण मिथ्यादृष्टि के लिये असम्भव है। उसका तो देहपातानन्तर नरक में ही पात होगा — यह निश्चित है॥

लोक में उत्पन्न हुआ एक मिथ्यादृष्टि पुरुष बहुत जनों के लिये कष्टकर, अहितकर, एवं अनर्थकर हो सकता है; क्योंकि वह अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक पुरुष को असद्धर्म पालन के लिये प्रेरित करता है।

(इसके विपरीत) लोक में उत्पन्न हुआ कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष बहुत जनों के लिये सुखप्रद, हितकर एवं अर्थवान् होता है; क्योंकि वह अपने सम्पर्क में आने वाले को सद्धर्म की ओर ही प्रेरित करता है, धर्माचरण के लिये उत्साहित करता है। इस से स्व, पर - दोनों का हित-सुख सम्भव है। यहाँ तक कि देवता भी उसके इन सत्कर्मों से प्रसन्न होकर उसके सहायक हो जाते हैं॥

जैसे अल्पमात्र विष्ठा (मल), मूत्र, खखार, पूय एवं रक्त किसी स्थानविशेष की दूषित कर देता है वैसे ही भव (जगत्प्रपञ्च) की अल्पमात्र चर्चा भी बाह्य एवं आन्तरिक वायुमण्डल को दूषित कर देती है। अतः साधक को चुटकी बजाने भर के समय में भी इस जगत्प्रपञ्च की चर्चा में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिये॥

१८-१९. कायगतास्मृति — अतः साधक को ऐसा दुर्लभ मानुष जीवन पा कर चार ध्यान भावना, चार स्मृति प्रस्थान, चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियभावना, पाँच बलभावना, सात सम्बोध्यङ्ग, आठ आर्यमार्ग, आठ अभिभ्वायतन, सात विज्ञानस्थिति, दश कात्स्न्र्य (कसिण), दश संज्ञा, अपर दश संज्ञा, दश अनुस्मृति, पाँच इन्द्रिय, पाँच बल की साधना एवं अभ्यास में ही अपना समस्त समय व्यतीत करना चाहिये। इसी में उसका लौकिक एवं पारमार्थिक हित सम्मिलित है॥

२०. अमृतवर्ग — ऐसे साधक निर्वाणसुख का उपभोग नहीं कर पाते, जिनने कायगता स्मृति की भावना या अभ्यास नहीं किया; अपितु इस निर्वाणसुख का वे ही साधक उपभोग कर पाते हैं जिन ने कायगता स्मृति का अतिशय अभ्यास किया हो॥ ●

एककनिपात सम्पन्न॥

द्विक निपात

१. कर्मकारण वर्ग —

१. वर्ज्यसूत्र : दो निषिद्ध (वर्ज्य) धर्म होते हैं — १. ऐहलौकिक (दृष्टधार्मिक) वर्ज्य और २. पारलौकिक वर्ज्य॥

२. तपनीयसूत्र : "मैंने इस लोक में आ कर काया, वाक् और मन से दुराचार ही किया, सदाचार नहीं किया"—ऐसा पश्चात्ताप ही द्विविध तपनीय धर्म कहलाते हैं॥

३. अतपनीयसूत्र : 'मैंने इस लोक में आ कर काय वाक् मन से सदाचार ही किया, दुराचार नहीं'—ऐसा पश्चात्ताप न करना ही द्विविध अतपनीय धर्म कहलाते हैं॥

५. उपज्ञातसूत्र : साधक को इन दो धर्मों का दृढ़ अभ्यास करना चाहिये — १. कुशल धर्मों की प्राप्ति में असन्तोष, तथा २. उनकी प्राप्ति हेतु प्रयास में पीछे न हटना; भले ही ऐसा करते हुए उसका शरीर पूर्णतः नष्ट हो जाय॥

६. संयोजनसूत्र : सांसारिक राग के नाश हेतु साधक को संयोजनीय धर्मों में अनासक्ति तथा उन धर्मों से विरक्ति — इन दो धर्मों का पालन करना चाहिये॥

७. कृष्णसूत्र : १. लज्जा एवं २. पापभीरुता का अभाव — ये दो कृष्ण धर्म कहलाते हैं॥

८. शुक्लसूत्र : १. लज्जा एवं २. पापभीरुता — ये दो शुक्ल धर्म कहलाते हैं॥

९. चर्यासूत्र : १. लज्जा एवं २. पापभीरुता लोक की रक्षा करते हैं। इनके न होने पर लोक में कोई मर्यादा ही न रह जायगी॥

१०. वर्षोपनायिकासूत्र : चातुर्मासव्रत के बाद के दो उपोसथदिवस ही 'वर्षोपनायिका' कहलाते हैं॥

२. अधिकरण वर्ग —

१. दो बल : १. प्रतिसङ्ख्यान (चिन्तन) बल एवं २. भावना बल॥

२. अन्यथा व्याख्यात दो बल : १. प्रतिसङ्ख्यान बल, एवं २. भावना बल॥

३. अन्यथा व्याख्यात यही दो बल : १. प्रतिसङ्ख्यान बल, एवं २. भावना बल॥

४. तथागत की द्विविध देशना : १. संक्षिप्त एवं २. विस्तृत॥

५. द्विविध विवाद : १. जिस विवाद में सम्पृक्त दोनों भिक्षु शुद्धचित्त न हों, तथा २. जिस विवाद में सम्पृक्त दोनों भिक्षु शुद्धचित्त हों॥

६. नरक एवं स्वर्ग में गति के दो हेतु : १. अधर्मचर्या एवं विषमचर्या नरकपात का कारण होती है तथा २. धर्मचर्या एवं समचर्या स्वर्ग-सुखप्राप्ति का कारण होती है।

७. नरक एवं स्वर्ग गति के दो अन्य हेतु : १. नरकगति में अकुशल कर्म एवं २. स्वर्गगति में कुशल कर्म कारण होते हैं॥

८. करणीय अकरणीय धर्म : १. कायिक वाचिक एवं मानसिक दुराचार सर्वथा अकरणीय होते हैं; क्योंकि इनके करने पर कर्ता को अनेक दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं। तथा २. कायिक, वाचिक एवं मानसिक सदाचार सदा करणीय होते हैं; क्योंकि इन के करने से सदा सुपरिणाम ही मिलता है, दुष्परिणाम नहीं॥

९. अकुशल कर्मों का त्याग : अकुशल कर्मों को त्याग देना चाहिये; क्योंकि इन अकुशल कर्मों का त्याग किया जा सकता है॥

१०. कुशल कर्मों का अभ्यास : कुशल कर्मों का पुनः पुनः अभ्यास करना चाहिये; क्योंकि इन कुशल कर्मों का अभ्यास किया जा सकता है॥

११. सद्धर्म के लोप के कारण : सद्धर्मलोप के दो कारण होते हैं; १. उसके शब्द या वर्ण अशुद्ध लिखे जायँ या पढे जायँ, या २. उस का वास्तविक अर्थ दुरूहता या भ्रामकता के कारण कठिनता से समझ में आवे।

१२. सद्धर्मस्थिति के कारण : सद्धर्म की स्थायिता में भी दो कारण होते हैं; १. उसके पद एवं वर्ण शुद्ध लिखे जायँ या पढे जायँ तथा २. ऐसे शुद्ध लिखे गये पदों एवं वर्णों की अभ्रामकता के कारण उसका वास्तविक अर्थ सरल एवं सुबोध होने के कारण अनायास समझ में आ जाता है॥

३. बालवर्ग —

दो मूर्ख : एक वह जो स्वयं अपराध को अपराध नहीं समझता; दूसरा वह जो अन्य के द्वारा संकेत किये जाने पर भी अपने अपराध को 'अपराध' नहीं मानता॥

दो बुद्धिमान् : प्रथम वह जो अपना अपराध स्वयं समझ लेता है; द्वितीय वह जो दूसरे के द्वारा संकेत किये जाने पर अपने अपराध को 'अपराध' मान लेता है॥

तथागत पर दोषारोपक : १. जो स्वयं द्वेषस्वभाव वाला हो, या २. जो अन्य किसी शास्त्र पर श्रद्धा रखता हो।

तथागत के मिथ्या दोषारोपक : १. जो तथागत के अकथित या अनुपदिष्ट वचनों को उनके द्वारा कथित या उपदिष्ट कहता है, या २. जो तथागत के कथित एवं उपदिष्ट वचनों को अकथित या अनुपदिष्ट कहता है॥

तथागत पर दोषारोपक : १. जो नेयार्थ को नीतार्थ बताता है, या २. जो नीतार्थ को नेयार्थ बताता है॥

प्रतिच्छन्न पापकर्मियों की दो गति : १. नरकपात, या २. पशुयोनि में गमन॥

मिथ्यादृष्टि की दो गति : १. नरकपात, या २. पशुपक्षियों की योनि॥

एकान्त साधना के दो लाभ : १. प्रत्यक्ष सुख का अनुभव; २. अनागत जनता पर अनुग्रह॥

विद्या प्राप्ति के दो लाभ : १. शमथ; २. विपश्यना॥

४. समचित्तवर्ग —

दो भूमि : १. असत्पुरुष भूमि; २. सत्पुरुष भूमि॥

माता पिता का उपकार : १. पुत्र के प्रमादक्षणों में मार्गदर्शन, एवं २. उनके प्रति अश्रद्धालु पुत्र की भी उनके द्वारा श्रद्धापूर्वक रक्षा॥

भगवान् की दो मान्यताएँ : १. कुशलक्रियावाद, एवं २. अकुशलअक्रियावाद।

दक्षिणायोग्य दो पुरुष : १. अर्हत् (ज्ञानी), या २. अर्हन्मार्गारूढ॥

द्विविध पुद्गल : १. आन्तरिक संयोजन युक्त; और २. दृष्टिराग में अभिनिवेश बन्धनयुक्त॥

अभिवन्दनीय दो पुरुष : १. ज्ञानी वृद्ध, एवं २. ऐसा ज्ञानमार्गारूढ युवक, जो कामभोगों की ओर आकृष्ट नहीं होता॥

भगवान् के दो कर्म : १. मिथ्या क्रियाकलाप का विरोध; एवं २. शास्त्रोचित सम्यक् क्रियाकलाप का समर्थन॥

द्विविध धर्मोपदेशक : १. हितकारी धर्मोपदेशक; एवं २. अहितकारी धर्मोपदेशक॥

५. परिषद्वर्ग —

दो परिषद् : १. उत्तान परिषद्; एवं २. गम्भीर परिषद्॥

दो परिषद् : १. वर्ग परिषद्; एवं २. समग्र परिषद्॥

दो परिषद् : १. अनग्रवती परिषद्; २. अग्रवती परिषद्॥

दो परिषद् : १. आर्यपरिषद्; एवं २. अनार्यपरिषद्।

दो परिषद् : १. परिषत्कसट; एवं २. परिषन्मण्ड॥

दो परिषद् : १. ओक्काचितविनीत परिषद्; एवं २. प्रतिपृच्छाविनीत परिषद्॥

दो परिषद् : १. भोगप्रधान परिषद्; एवं २. धर्मप्रधान परिषद्॥

दो परिषद् : १. विषम परिषद्; एवं २. समपरिषद्॥

दो परिषद् : १. अधार्मिक परिषद्; एवं २. धार्मिक परिषद्॥

दो परिषद् : १. अधर्मवादिनी परिषद्; एवं २. धर्मवादिनी परिषद्॥

६. पुद्गलवर्ग —

बहुजनोपकारक दो प्राणी : १. तथागत बुद्ध, एवं २. चक्रवर्ती राजा॥

दो आश्चर्यमनुष्य : १. तथागत बुद्ध एवं २. चक्रवर्ती राजा॥

दो का देहपात दुःखद : १. तथागत बुद्ध, एवं २. चक्रवर्ती राजा॥

दो प्राणी स्तूपयोग्य : १. तथागत बुद्ध, एवं २. चक्रवर्ती राजा॥

दो बुद्ध : १. तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध, एवं २. प्रत्येक बुद्ध॥

दो निर्भीक प्राणी : १. क्षीणाश्रव भिक्षु, एवं २. श्रेष्ठ हाथी॥

दो निर्भीक प्राणी : १. क्षीणाश्रव भिक्षु, एवं २. श्रेष्ठ अश्व॥

दो निर्भीक प्राणी : १. क्षीणाश्रव भिक्षु, एवं २. मृगराज सिंह॥

किन्नरों के मौन में दो कारण : १. असत्य बोलने का भय, एवं २. असत्यभाषण के आरोप का भय॥

स्त्रियों की दो बातों में अतृप्ति : १. पुरुष के साथ सहवास, एवं २. सन्तानोत्पत्ति॥

दो सङ्गति : १. असत्पुरुषों (दुष्टों) की सङ्गति, एवं २. सत्पुरुषों (सन्तों) की सङ्गति॥

द्विविध कलह : १. वाक्कलह, नेत्रों से कटु सङ्केत आदि का होना; एवं २. वाक्कलह और नेत्रों से कटु सङ्केत आदि का न होना॥

७. सुखवर्ग —

दो सुख : १. गृहस्थसुख, एवं २. प्रव्रजितसुख॥

दो सुख : १. कामसुख, एवं २. नैष्काम्य सुख॥

दो सुख : १. उपधि सुख, एवं, एवं २. निरुपधि सुख॥

दो सुख : १. साश्रव सुख, एवं २. अनाश्रव सुख॥

दो सुख : १. सामिष (भौतिक) सुख, एवं २. निरामिष (अभौतिक), सुख॥

दो सुख : १. आर्य सुख, एवं २. अनार्य सुख॥
दो सुख : १. कायिक सुख, एवं २. चैतसिक सुख॥
दो सुख : १. सप्रीतिक सुख, एवं २. निष्प्रीतिक सुख॥
दो सुख : १. सातसुख, एवं २. उपेक्षासुख॥
दो सुख : १. समाधिसुख, एवं २. असमाधिसुख॥
दो सुख : १. सप्रीतिकालम्बनसुख, एवं २. निष्प्रीतिकालम्बनसुख॥
दो सुख : १. सातालम्बनसुख, एवं २. उपेक्षालम्बनसुख॥
दो सुख : १. रूपालम्बनसुख, एवं २. अरूपालम्बनसुख॥

८. सनिमित्तवर्ग —

अकुशल की उत्पत्ति में दो कारण : १. निमित्त, एवं २. निदान॥
अकुशल की उत्पत्ति में दो कारण : १. हेतु, एवं २. संस्कार॥
अकुशल की उत्पत्ति में दो कारण : १. प्रत्यय, एवं २. रूप॥
अकुशल की उत्पत्ति में दो कारण : १. वेदना, एवं २. संज्ञा॥
अकुशल की उत्पत्ति में दो कारण : १. विज्ञान, एवं २. संस्कृतालम्बन॥

९. धर्मवर्ग —

दो धर्म : १. चेतोविमुक्ति, २. प्रज्ञाविमुक्ति॥
दो धर्म : १. प्रग्राह, २. अविक्षेप॥
दो धर्म : १. नाम, २. रूप॥
दो धर्म : १. विद्या, २. विमुक्ति॥
दो धर्म : १. भवदृष्टि, २. विभवदृष्टि॥
दो धर्म : १. अह्रीक, २. अनवत्राप्य॥
दो धर्म : १. ह्री, २. अवत्राप्य॥
दो धर्म : १. दौर्वचस्य, २. पापमित्रता॥
दो धर्म : १. सौवचस्य, २. कल्याणमित्रता॥
दो धर्म : १. धातुकुशलता, २. अधातुकुशलता॥
दो धर्म : १. आपत्तिकुशलता, २. अनापत्तिकुशलता॥

१०. बालवर्ग —

दो मूर्ख : १. अनागत भार को ढोने वाला, २. आगत भार को न ढोने वाला॥
दो बुद्धिमान् : १. आगत भार का वाहक, २. अनागत भार का अवाहक॥
दो मूर्ख : १. अयोग्य को योग्य मानने वाला, २. योग्य को अयोग्य मानने वाला॥
दो बुद्धिमान् : १. योग्य को योग्य मानने वाला, २. अयोग्य को अयोग्य मानने वाला॥
दो मूर्ख : १. आपत्ति को अनापत्ति, एवं २. अनापत्ति को आपत्ति मानने वाला॥
दो बुद्धिमान् : १. अनापत्ति को अनापत्ति, एवं २. आपत्ति को आपत्ति मानने वाला॥
दो मूर्ख : १. अधर्म को धर्म मानने वाला, २. धर्म को अधर्म मानने वाला॥
दो बुद्धिमान् : १. धर्म को धर्म मानने वाला, २. अधर्म को अधर्म मानने वाला॥

दो मूर्ख : १. अविनय को विनय, एवं २. विनय को अविनय मानने वाला ॥

दो बुद्धिमान् : १. विनय को विनय, एवं २. अविनय को अविनय मानने वाला ॥

दो साश्रव साधक : १. जो पश्चात्तापयोग्य धर्म को अपश्चात्तापयोग्य, एवं २. अपश्चात्ताप-योग्य को पश्चात्तापयोग्य ही समझता है ॥

दो अनाश्रव साधक : १. जो पश्चात्तापयोग को पश्चात्तापयोग्य, तथा २. अपश्चात्तापयोग्य को अपश्चात्तापयोग्य ही समझता है ॥

दो साश्रव साधक : १. जो योग्य को अयोग्य, तथा २. अयोग्य को योग्य समझता है ॥

दो अनाश्रव साधक : १. जो योग्य को योग्य, तथा २. अयोग्य को अयोग्य ही समझता है ॥

दो साश्रव साधक : १. जो आपत्ति को अनापत्ति, तथा २. अनापत्ति को आपत्ति समझता है ॥

दो अनाश्रव साधक : १. जो आपत्ति को आपत्ति, तथा २. अनापत्ति को अनापत्ति ॥

दो साश्रव साधक : १. जो धर्म को अधर्म, तथा २. अधर्म को धर्म मानता है ॥

दो अनाश्रव साधक : १. जो धर्म को धर्म, तथा २. अधर्म को अधर्म मानता है ॥

दो साश्रव साधक : १. जो अविनय को विनय, तथा २. विनय को अविनय मानता है ॥

दो अनाश्रव साधक : १. जो विनय को विनय, तथा २. अविनय को अविनय मानता है ॥

११. आशादुष्प्रजहवर्ग —

दो दुस्त्याज्य आशाएँ : १. किसी वस्तु की प्राप्ति की आशा, तथा २. जीवित रहने की आशा ॥

दो दुर्लभ पुद्गल : १. समय से पूर्व कार्य का पूरक, तथा २. कृतज्ञ, उपकार मानने वाला ॥

दो दुर्लभ पुद्गल : १. सब स्थितियों में सन्तुष्ट रहने वाला, २. दूसरों को सर्वथा सन्तुष्टिदाता ॥

दो दुस्तर्प्य पुद्गल : १. परिग्रही, २. प्राप्त वस्तु को न लेने वाला ॥

राग के दो कारण : १. अनित्य वस्तुओं में शुभ भावना, तथा २. अयोनिशः मनस्कार ॥

द्वेष के दो कारण : १. द्वेष का कोई निमित्त हो, तथा २. अयोनिशः मनस्कार ॥

मिथ्यादृष्टि के दो कारण : १. किसी अन्य मिथ्यादृष्टि के बहकावे में आना, २. अयोनिशः मनस्कार ॥

सम्यग्दृष्टि के दो कारण : १. सम्यग्दृष्टि की बात मानना, तथा २. योनिशः मनस्कार ॥

द्विविध आपत्ति : १. लघु आपत्ति, २. गुरु आपत्ति ॥

द्विविध आपत्ति : १. दुष्ठूल आपत्ति, तथा २. अदुष्ठूल आपत्ति ॥

द्विविध आपत्ति : १. सावशेष आपत्ति, २. निरवशेष आपत्ति ॥

१२. आयाचनवर्ग —

भिक्षु की उचित याच्चा : १. सारिपुत्र, २. मौद्गल्यायन के समान भिक्षुत्व की याच्चा ॥

भिक्षुणी की उचित याच्चा : १. क्षेमा, २. उत्पलवर्णा के समान भिक्षुणीत्व की याच्चा ॥

उपासक की उचित याच्ञा : १. चित्त गृहपति, २. हस्तक आळवक के समान उपासकत्व की याच्ञा ॥

उपासिका की उचित याच्ञा : १. खुज्जुत्तरा, २. वेणुकण्टकी के समान उपासिकात्व की याच्ञा ॥

दो पापसञ्ज्ञायक मूर्ख : १. विना सोचे समझे निन्दनीय की प्रशंसा, २. प्रशंसनीय की निन्दा ॥

दो पुण्यसञ्ज्ञायक पुण्यवान् : १. सोच समझकर किसी पापी की निन्दा, २. पुण्यात्मा की प्रशंसा ॥

द्विविध धर्मयुक्त पापी : १. श्रद्धेय स्थान में अश्रद्धा, २. अश्रद्धेय स्थान में श्रद्धा प्रकट करने वाला ॥

द्विविध धर्मयुक्त पुण्यात्मा : १. श्रद्धेय स्थान में श्रद्धा, २. अश्रद्धेय स्थान में अश्रद्धा प्रकट करने वाला ॥

अधर्मद्वययुक्त मिथ्यादृष्टि : १. माता तथा २. पिता में मिथ्यादृष्टि रखने वाला ॥

धर्मद्वययुक्त सम्यग्दृष्टि : १. माता एवं २. पिता में सम्यग्दृष्टि रखने वाला ॥

अधर्मद्वययुक्त मिथ्यादृष्टि : १. तथागत एवं २. उनके शिष्यों के प्रति मिथ्यादृष्टि रखने वाला ॥

धर्मद्वययुक्त सम्यग्दृष्टि : १. तथागत एवं २. उनके शिष्यों के प्रति सम्यग्दृष्टि रखने वाला ॥

दो संग्राह्य धर्म : १. स्वचित्तशुद्धि, २. अपरिग्रह ॥

दो त्याज्य धर्म : १. क्रोध, २. उपनाह (शत्रुता=वैरभाव) ॥

दो संग्राह्य धर्म : १. क्रोध का दमन, २. उपनाह का दमन ॥

१३. दानवर्ग —

दो दान : १. भौतिक वस्तुदान, २. धर्मदान ॥

दो यज्ञ : १. भौतिक वस्तुओं से यज्ञ, २. धर्मयज्ञ ॥

दो त्याग : १. भौतिक वस्तुओं का त्याग, २. मिथ्याधर्मत्याग ॥

दो परित्याग : १. भौतिक वस्तुओं का परित्याग, २. मिथ्याधर्म का परित्याग ॥

दो भोग : १. भौतिक वस्तुओं का भोग, २. धर्मभोग ॥

दो सम्भोग : १. भौतिक वस्तुओं का सम्भोग, २. धर्मसम्भोग ॥

दो संविभाग : १. भौतिक वस्तु का संविभाग, २. धर्मसंविभाग ॥

दो संग्रह : १. भौतिक वस्तुसंग्रह, २. धर्मसंग्रह ॥

दो अनुग्रह : १. भौतिक अनुग्रह, २. धर्मानुग्रह ॥

दो अनुकम्पा : १. भौतिक अनुकम्पा, २. धर्मानुकम्पा ॥

१४. संस्तार वर्ग —

दो संस्तार : १. सांसारिक वस्तुओं का संस्तार, २. धर्म-संस्तार ॥

दो प्रतिसंस्तार : १. सांसारिक वस्तुओं का प्रतिसंस्तार (स्वागत), २. धर्म का प्रतिसंस्तार ॥

दो एषणा : १. भौतिक एषणा, २. धर्मैषणा ॥

दो पर्येषणा : १. भौतिक पर्येषणा, २. धर्मपर्येषणा। (पर्येषणा=खोज)॥

दो परीष्टि : १. भौतिक परीष्टि, २. धर्मपरीष्टि॥ (परीष्टि=गवेषणा)।

दो पूजा : १. भौतिक पूजा, २. धर्मपूजा॥

दो उपहार : १. भौतिक उपहार, २. धार्मिक उपहार॥ (उपहार=भेंट)

दो ऋद्धि : १. भौतिक ऋद्धि (चमत्कार), २. धार्मिक ऋद्धि॥

दो वृद्धि : १. भौतिक वृद्धि, २. धार्मिक वृद्धि॥

दो रत्न : १. भौतिक रत्न, २. धर्मरत्न॥

दो सन्निचय : १. भौतिक संग्रह, २. धार्मिक संग्रह॥

दो वैपुल्य : १. भौतिक वृद्धि, २. धार्मिक वृद्धि॥ (वैपुल्य=वृद्धि)

१५. समापत्तिवर्ग —

दो कुशलता : १. समापत्तिकुशलता, २. समापत्तिव्युत्थानकुशलता॥

दो साधना में सहयोगी धर्म : १. आर्जव (सरलता), २. मार्दव (कोमलता)॥

दो साधना में सहयोगी धर्म : १. सहनशीलता, २. विनम्रता॥

दो साधना में सहयोगी धर्म : १. समग्रभाव, २. प्रतिसंस्तार॥

दो साधना में सहयोगी धर्म : १. अहिंसा, २. शुचिता॥

दो साधना में सहयोगी दो धर्म : १. इन्द्रियसंयम एवं, २. भोजनमात्रा का ज्ञान॥

साधना में सहयोगी दो धर्म : १. शमथ, २. विपश्यना॥

साधना में सहयोगी दो धर्म : १. शीलविपत्ति, २. दृष्टिविपत्ति॥

साधना में सहयोगी दो धर्म : १. शीलसम्पत्ति, २. दृष्टिसम्पत्ति॥

साधना में सहयोगी दो धर्म : १. शीलविशुद्धि, २. दृष्टिविशुद्धि॥

साधना में सहयोगी दो धर्म : १. दृष्टिविशुद्धि, २. तदर्थ प्रयास॥

साधना में सहयोगी दो धर्म : १. धर्मविशुद्धि, २. तदर्थ प्रयास॥

साधना में असहयोगी दो धर्म : १. स्मृतिभ्रंश, २. असम्प्रजन्य॥

साधना में सहयोगी दो धर्म : १. स्मृति, २. सम्प्रजन्य॥

१६. क्रोधवर्ग — (१. क्रोध पेय्याल) (क्रोधसमूह)

दो धर्म : १. क्रोध, २. उपनाह; १. म्रक्ष, २. प्रदाश; १. ईर्ष्या, २. मात्सर्य; १. माया, २. शाठ्य; १. अह्रीक, २. अनवत्राप्य॥

दो धर्म : १. अक्रोध, २. अनुपनाह; १. अभ्रक्ष, २. अप्रदाश; १. अनीर्ष्या, २. अमात्सर्य; १. अमाया,२. अशाठ्य; १. ह्री, २. अवत्राप्य॥

दो धर्मों से साधना में कष्ट : १. क्रोध, २. उपनाह से; १. म्रक्ष, २. प्रदाश से; १. ईर्ष्या, २. मात्सर्य से; १. माया, २. शाठ्य से; १. अह्रीक, २. अनवत्राप्य से॥

दो धर्मों से साधना में सुख : १. अक्रोध, २. अनुपनाह से; १. अम्रक्ष, २. अप्रदाश से; १. अनीर्ष्या, २. अमात्सर्य से; १. अमाया,२. अशाठ्य से; १. ह्री, २. अवत्राप्य से॥

साधना में दो धर्मों का त्याग : १. क्रोध, २. उपनाह से; १. म्रक्ष, २. प्रदाश; १. ईर्ष्या, २. मात्सर्य; १. माया, २. शाठ्य; १. अह्रीक, २. अनवत्राप्य॥

साधना में दो धर्मों का संग्रह : १. अक्रोध, २. अनुपनाह; १. अम्रक्ष, २. अप्रदाश; १. अनीर्ष्या, २. अमात्सर्य; १. अमाया,२. अशाठ्य; १. ह्री, २. अवत्राप्य॥

(२. अकुशलपेय्याल) (अकुशल धर्मसमूह)

दो धर्म अकुशल : १. क्रोध, २. उपनाह आदि (पूर्ववत्) ॥

दो धर्म कुशल : १. अक्रोध, २. अनुपनाह आदि (पूर्ववत्) ॥

दो धर्म सदोष : १. क्रोध, २. उपनाह आदि (पूर्ववत्) ॥

दो धर्म निर्दोष : १. अक्रोध, २. अनुपनाह आदि (पूर्ववत्) ॥

दो धर्म दुःखवर्धक : १. क्रोध, २. उपनाह आदि (पूर्ववत्) ॥

दो धर्म सुखवर्धक : १. अक्रोध, २. अनुपनाह आदि (पूर्ववत्) ॥

दो धर्म दुःखफलप्रद : १. क्रोध, २. उपनाह आदि (पूर्ववत्) ॥

दो धर्म सुखफलप्रद : १. अक्रोध, २. अनुपनाह आदि (पूर्ववत्) ॥

दो धर्म साधना में हानिकारक : १. क्रोध, २. उपनाह आदि (पूर्ववत्) ॥

दो धर्म साधना में लाभकारक : १. अक्रोध, अनुपनाह; १. अभ्रक्ष, २. अप्रदाश; १. अनीर्ष्या, २. अमात्सर्य; १. अमाया, २. अशाठ्य, १. ह्री, २. अवत्राप्य॥

१७. अर्थवशवर्ग : — (१. विनयसमूह)

दो प्रयोजनों से शिक्षापदों का प्रज्ञापन :

१. सङ्घ में स्वच्छता, एवं २. साधनाजन्य सरलता के लिये;

१. अविनीत पुद्गलों के निग्रह, एवं २. सदाचारी भिक्षुओं की साधना में सरलता के लिये;

१. लौकिक आश्रवों के संवर, एवं २ पारलौकिक आश्रवों के प्रतिघात के लिये;

१. लौकिक वैरों के संवरण; एवं २. पारलौकिक वैरों के प्रतिघात के लिये;

१. लौकिक दोषों के संवरण, एवं २. पारलौकिक दोषों के प्रतिघात के लिये;

१. लौकिक भयों के संवरण; एवं २. पारलौकिक भयों के प्रतिघात के लिये;

१. लौकिक अकुशल धर्मों के संवरण, एवं २. पारलौकिक अकुशल धर्मों के प्रतिघात के लिये;

१. गृहस्थजनों पर अनुकम्पा, एवं २. पापी भिक्षुओं पर प्रतिबन्ध के लिये;

१. धर्म के प्रति अश्रद्धालुओं में श्रद्धोत्पाद, एवं २. श्रद्धालुओं की श्रद्धावृद्धि के लिये;

१. सद्धर्म की स्थिति, एवं २. अनुशासन पर बल देने के लिये॥

दो प्रयोजनों से प्रातिमोक्ष का प्रज्ञापन, प्रातिमोक्ष का उद्देश, प्रातिमोक्ष का स्थपन, प्रवारणास्थपन, तर्जनीय कर्म, न्यस्य कर्म, प्रव्राजनीय कर्म, प्रतिसारणीय कर्म, उत्क्षेपणीय कर्म, परिवासदान, मानत्वदान, आह्वान, अवसारणीय, निस्सारणीय, उपसम्पदा, ज्ञप्ति चतुर्थकर्म, अप्रज्ञप्त में प्रज्ञप्त, प्रज्ञप्त में अप्रज्ञप्त, सम्मुखविनय, स्मृतिविनय, अमूढविनय, प्रतिज्ञातकरण, यद्भूयसिक, तत्पापीयसिका, तृणावस्तारक का प्रज्ञापन :

१. सङ्घ में स्वच्छता, २. साधनाजन्य सरलता के लिये (पूर्ववत्) ॥

(२. राग समूह)

राग के अभिज्ञान के लिये दो धर्म : १. शमथ, २. विपश्यना।

(ग्रन्थानुसार विस्तार कर लें।)

द्विकनिपात सम्पन्न ॥

त्रिक निपात

१. बालवर्ग —

१. भयसूत्र : लोक में जितने भी भय, उत्पात एवं सङ्कट हैं, उन सबके उत्पादक एवं जनक मूर्ख ही होते हैं, पण्डित नहीं॥

२. लक्षणसूत्र : मूर्ख और पण्डित अपने कर्मों से ही पहचाने जाते हैं। मूर्ख १. काय-दुराचारी, २. वाग्दुराचारी एवं एवं ३. मानसिक दुराचारी होते हैं। जबकि पण्डितजन १. काय-सदाचारी... मानसिक सदाचारी होते हैं॥

३. चिन्तीसूत्र : मूर्ख की पहचान यह भी है कि जो १. अपने मन में अशुभ विचार रहता हो, २. कटुभाषा बोलता हो, तथा ३. जिसके कायिक कर्म दुष्टतापूर्ण हो॥

४. अत्ययसूत्र : मूर्ख की एक पहचान यह भी है — १. वह अपने अपराध को अपराध नहीं समझता, २. अपराध समझ कर उसका प्रतीकार नहीं करता, ३. कोई दूसरा उसको उस विषय में समझावे तो उसे यथार्थतः स्वीकार नहीं करता॥

५. अयोनिशः सूत्र : मूर्ख की एक पहचान यह भी है — १. वह सूक्ष्म विचार कर प्रश्न नहीं करता, २. सूक्ष्म विचार कर उत्तर नहीं देता, ३. दूसरे के समीचीन उत्तर को भी स्वीकार नहीं करता॥

६. अकुशलसूत्र : १. अकुशल कायकर्म, २. अकुशल वाक्कर्म एवं अकुशल मनःकर्म से भी मूर्ख पहचान में आ जाता है। पण्डित के सभी कर्म कुशल ही होते हैं॥

७. सावद्यसूत्र : मूर्ख के १. कायकर्म, २. वाक्कर्म तथा ३. मनः कर्म सदोष ही होते हैं; जब कि पण्डित के ये सभी कर्म निर्दोष होते हैं॥

८. सव्यावध्यसूत्र : इन तीन लक्षणों से मूर्ख पहचाना जाता है — साधना में हानि पहुँचाने वाले १. कायकर्मों, २. वाक्कर्मों एवं ३. मनःकर्मों से। पण्डित के ये तीनों ही प्रकार के कर्म हानिप्रद नहीं होते॥

९. क्षतसूत्र : मूर्ख पुद्गल १. कायिक दुराचार, २. वाचसिक दुराचार एवं ३. मानसिक दुराचार से स्वयं क्षत, उपहत समझता है। जबकि पण्डित सदाचारी....होता है॥

१०. मलसूत्र : मूर्ख पुरुष १. दुःशील, २. ईर्ष्यालु एवं ३. मत्सरी होता है। पण्डित इसके विपरीत सुशील, अनीर्ष्यालु एवं अमत्सरी होता है॥

२. रथकारवर्ग —

१. ज्ञातसूत्र : क्रमरहित १ कायकर्म, २. वाक्कर्म, ३. मनःकर्म की प्रेरणा देने वाला पुरुष बहुतों को दुःखदायी, अनर्थकारी एवं अहितकारी होता है। इसके विपरीत, क्रमपूर्वक इन तीनों कर्मों का प्रेरक पण्डित सुखकर, अर्थकर एवं हितकर होता है॥

२. स्मरणीयसूत्र : राजा को तीन बातें स्मरण रखनी चाहिये — १. वह किस देश में उत्पन्न हुआ है, २. किस देश का राजा है, तथा ३. किसी देश से युद्ध के बाद वहाँ की सुरक्षा-व्यवस्था। इसी प्रकार भिक्षु को भी ये तीन बातें स्मरण रखनी चाहिये — १. जहाँ से गृहस्थ छोड़कर प्रव्रजित हुआ हो, २. जहाँ आर्यसत्यचतुष्टय का ज्ञान प्राप्त किया हो, तथा जहाँ साधना करते हुए अर्हत्त्व प्राप्त किया हो।

३. आशंसासूत्र : लोक में त्रिविध पुद्गल होते हैं — १. निराश, २. आशावान्, एवं ३. आशारहित (विगताश)।

४. चक्रवर्तिसूत्र : चक्रवर्त्ती राजा के समान भिक्षु को भी अपने त्रिविध कायादि कर्मों पर धर्म की रक्षावरणगुप्ति (कवच) चढ़ाकर ही अपनी साधना में निरन्तर रत रहना चाहिये॥

५. सचेतन सूत्र : किसी भिक्षु के काय, वाक् एवं मन के १. विकार, २. टेढ़ापन, एवं ३. दोष नष्ट होने पर ही उसकी प्रतिष्ठा लोक में बनी रह सकती है॥

६. अपर्णकसूत्र : जो भिक्षु १. इन्द्रियसंयमी, २. भोजनमात्राज्ञ एवं ३. साधना में सतत जाग्रत् रहता है वही संशयरहित साधनामार्ग पर आगे बढ सकता है॥

७. आत्मव्याबाधसूत्र : १. कायिक दुराचार, २. वाचसिक दुराचार एवं ३. मानसिक दुराचार — ये तीन धर्म किसी भी साधक के लिये आत्मसङ्कट, परसङ्कट एवं स्व-पर उभयसङ्कट उपस्थित कर सकते हैं॥

८. देवलोकोपमसूत्र : देवलोक के दिव्य आयु, वर्ण, सुख की अपेक्षा १. कायदुराचार, २. वाग्दुराचार एवं ३. मनोदुराचार से अधिक दुःखी और हैरान होना चाहिये॥

९. प्रथम प्रापणिकसूत्र : जैसे प्रातः, सायं एवं मध्याह्न में अपने व्यापार को समीचीनतया प्रारम्भ न करने वाला व्यापारी दुःखी या हैरान होता है, इसी प्रकार कोई साधक प्रातः सायं एवं मध्याह्न में अपनी साधना समीचीनतया न करने वाला प्राप्त कुशल धर्मों का विस्तार नहीं कर पाता॥

१०. द्वितीय प्रापणिकसूत्र : त्रिविध पुद्गल प्रातः सायं अपने व्यापार को समीचीनता या व्यापार प्रारम्भ करने वाले व्यापारी के समान कोई साधना में सावधान साधक भी १. विधुर, २. समझदार (चक्षुष्मान्) एवं ३. निश्चयसम्पन्न कहलाता है॥ ●

३. पुद्गलवर्ग —

१. समृद्धसूत्र : त्रिविध साधक - १. कायसाक्षी, २. दृष्टिप्राप्त एवं ३. श्रद्धाविमुक्त — इन त्रिविध साधकों में यथास्थिति सभी श्रेष्ठ है।

२. ग्लानसूत्र : तीन प्रकार के लौकिक रोगियों के समान तीन आध्यात्मिक पुद्गल भी होते हैं। जैसे — १. तथागत का दर्शन करने पर ही, २. तथागत के धर्मोपदेश सुनने पर ही, तथा ३. तथागत के दर्शन एवं धर्मोपदेश न सुन कर भी कुशलधर्मों की साधना करने वाला॥

३. संस्कारसूत्र : लोक में त्रिविध पुद्गल मिलते हैं — १. जो दुःखसहित काय-वाक्-मनः संस्कारों से दुःखमय नारकीय वेदनाओं का अनुभव करता है; २. जो दुःखरहित काय-वाक्, मनः संस्कारों से शुभकृत्स्न देवों के समान दुःखरहित वेदनाओं का अनुभव करता है। परन्तु ३. कोई पुद्गल दुःख सुख मिश्रित काय-वाक्-मनःसंस्कारों से दुःख सुख मिश्रित वेदनाओं का अनुभव

करता है, कभी शुभकृत्स्न देवों के समान सुखवेदनाओं का तो कभी नारकीय जीवों के समान दु:खवेदनाओं का अनुभव करता है॥

४. बहुकारसूत्र : ऐसा पुद्गल जो १. बुद्ध, २. धर्म एवं ३. सङ्घ की शरण ग्रहण कर चुका है वह अन्य साधक पुद्गलों का अतिशय सहायक होता है॥

५. वज्रोपमसूत्र : लोक में त्रिविध चित्त वाले पुद्गल — १. अरुकोपमचित्त, २. विद्युदुपम-चित्त, एवं ३. वज्रोपमचित्त॥

६. सेवितव्यसूत्र : लोक में त्रिविध पुद्गल — १. शील, समाधि एवं प्रज्ञा से हीन; ऐसे पुरुष की सेवा या सङ्ग नहीं करना चाहिये। २. शील, समाधि एवं प्रज्ञा में हमारे समान स्तर का हो; उसकी सेवा करनी चाहिये। ३. जो शील, समाधि एवं प्रज्ञा में हम से बढ़कर हो; उसकी सेवा, पूजा, उपासना करनी चाहिये॥

७. जुगुप्सितव्यसूत्र : लोक में त्रिविध पुद्गल — १. वे पुद्गल जिन से घृणा (जुगुप्सा), अरुचि ही रखनी चाहिये। २. वे पुद्गल जिनकी उपेक्षा करनी चाहिये। ३. वे पुद्गल जिनकी सेवा, पूजा, उपासना करनी चाहिये। इन में पहला पुद्गल दुराचारी एवं पापी होने के कारण घृणास्पद है, दूसरा पुद्गल दुराचारी एवं पापी होते हुए भी अपने पाप का प्रायश्चित्त करता रहता है, ऐसा पुद्गल भी सेवा पूजा के योग्य तो नहीं ही है, परन्तु घृणास्पद भी नहीं है। तथा तीसरा जो शीलसम्पन्न, समाधिनिष्ठ एवं प्रज्ञावान् है — इसकी सेवा, पूजा, उपासना करनी चाहिये॥

८. गूथभाणिसूत्र : लोक में ये त्रिविध पुद्गल हैं — १. गूथभाणी, २. पुष्पभाणी एवं ३. मधुभाणी।

९. अन्धसूत्र : त्रिविध पुद्गल : १. अन्ध, २. एकनेत्र एवं ३. द्विनेत्र। पाप-पुण्यमय धर्मों की परीक्षा न कर सकने वाला 'अन्ध' कहलाता है। पाप-पुण्यमय धर्मों की परीक्षा कर सकने में कुशल होने पर भी अधिगत भोगों को अधिगत नहीं कर पाता — 'एकनेत्र' कहलाता है। परन्तु ३. जो पाप-पुण्यमय धर्मों की परीक्षा में भी कुशल एवं अनधिगत भोगों को भी अधिगत करने में समर्थ हो वह 'द्विनेत्र' कहलाता है॥

१०. अवकुब्जसूत्र : त्रिविध पुद्गल : १. अवकुब्जप्रज्ञ, २. उत्सङ्गप्रज्ञ, एवं ३. पृथुप्रज्ञ। (विस्तार ग्रन्थ में देखें)॥

४. देवदूतवर्ग —

१. सब्रह्मकसूत्र : १. 'ब्रह्मा', २. 'पूर्वाचार्य', एवं ३. आह्वनीय — ये माता पिता के ही नाम है॥

२. आनन्दसूत्र : ऐसे समाधिलाभ का उपाय, जिस में इस विज्ञानसहित काय में या बाह्य निमित्तों में कुछ भी अहङ्कार, ममकार, मान तथा अनुशय न रह जाय और चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति की साधना की जा सके॥

३. सारिपुत्रसूत्र : उक्त समाधिलाभ की सारिपुत्र को भी देशना॥

४. निदानसूत्र : कर्मों की उत्पत्ति के तीन निदान — १. लोभ, २. द्वेष एवं ३. मोह॥

५. हस्तकसूत्र : आळवक हस्तक उपासक का भगवान् से बुद्धों के सुखस्वाप के विषय में संवाद।

६. देवदूतसूत्र : दुराचारियों को चेतावनी देने वाले तीन देवदूत — १. जरा, २. व्याधि एवं ३. मृत्यु।

७. यमराज सूत्र : १. हीन देवदूतों से प्रेरणा प्राप्त कर जीवनयात्रा करने वालों का नरकपात होता है। २. उत्तम देवताओं से प्रेरणा प्राप्त कर, जीवनयात्रा करने वाले आर्य धर्माचरण में प्रमाद नहीं करते। ३. जरामरण से सम्बद्ध उपादान में भय मान कर साधना करने वाले भवबन्धन से मुक्त हो जाते हैं॥

८. चतुर्महाराजसूत्र : उपोसथव्रत नित्य निरन्तर पालन करने वाले १. जरा, २. व्याधि एवं ३. मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं॥

९. सुकुमारसूत्र : तथागत ने गृहस्थाश्रम में अतिशय सुकुमार होते हुए भी जाति, जरा, व्याधि मृत्यु पर सूक्ष्म विचार करते हुए साधना द्वारा परमनिर्वाण प्राप्त किया॥

१०. आधिपत्यसूत्र : त्रिविध आधिपत्य : १. आत्माधिपत्य, २. लोकाधिपत्य, एवं ३. धर्माधिपत्य॥

५. चूळवर्ग —

१. सम्मुखीभावसूत्र : १. श्रद्धा, २. दान एवं ३. दान के योग्य उत्तम पुरुष को लक्ष्य बनाने वाला पुण्यवान् होता है॥

२. त्रिस्थानसूत्र : १. सदाचारी पुरुषों का दर्शनेच्छु, २. सद्धर्म का श्रवणेच्छु एवं मात्सर्यरहित चित्त से गृहस्थ धर्म का पालक — इन तीन धर्मों का पालक पुण्यवान् होता है॥

३. अर्थवशसूत्र : इन तीन धर्मों का उपयोग देखकर ही धर्मोपदेश करना चाहिये — १. धर्मोपदेश का उपयोग, २. धर्मश्रवण का उपयोग, तथा ३. धर्मोपदेश एवं धर्मश्रवण — इन दोनों के धर्म एवं अर्थ का उपयोग॥

४. कथाप्रवृत्तिसूत्र : त्रिविध कथाएँ श्रोता की रुचिवर्धक होती है — १. अर्थ एवं धर्म सहित कथा; २. अर्थ एवं धर्मसहित धर्मश्रवण, एवं ३. अर्थ एवं धर्मसहित धर्मोपदेश तथा धर्मश्रवण कथा॥

५. पण्डितसूत्र : ये तीन धर्म पण्डितों द्वारा प्रशंसित हैं — १. दान, २. प्रव्रज्या एवं ३. माता पिता की सेवा॥

६. शीलवत्सूत्र : शीलवान् प्रव्रजित पुरुष जिस ग्राम या निगम में जाते हैं वह ग्राम या निगम तीन तरह से पुण्यवान् होता है — १. काय से, २. वचन से तथा ३. मन से॥

७. संस्कृतसूत्र : संस्कृत (कृत्रिम) के तीन लक्षण — १. उस का उत्पाद, २. नाश एवं ३. उसकी स्थिति का अन्यथात्व (विकृति)॥

८. असंस्कृतसूत्र : असंस्कृत के तीन लक्षण — १. उत्पादरहित, २. नाशरहित एवं स्थिति के अन्यथात्व से रहित होना॥

९. पर्वतराजसूत्र : पर्वतराज हिमालय पर खड़े वृक्षों की तीन वृद्धियों के समान श्रद्धालु कुलपति के आश्रय में रहने वाले परिवार की त्रिविध वृद्धि होती है — १. श्रद्धा की, २. शील की, तथा ३. प्रज्ञा की॥

१०. आताप्यकरणीयसूत्र : तीन बातों के लिये प्रयास करना चाहिये — १. अनुत्पन्न पापों

का उत्पाद न हो, २. अनुत्पन्न कुशल का उत्पाद हो, तथा ३. अप्रिय, अरुचिकर वेदनाओं का उपशमन हो॥

११. महाचौरसूत्र : जैसे कोई चौर १. विषमनिश्रित, २. गहननिश्रित एवं ३. बलवन्निश्रित होता है, साधक को इन तीन धर्मों से दूर रहना चाहिये॥

६. ब्राह्मणवर्ग —

१. प्रथम ब्राह्मणद्वयसूत्र : १. तन, २. मन एवं ३. वचन से शुभकर्म करने वाला ही स्वयं को १. जरा, २. व्याधि एवं ३. मरण से सुरक्षित रख सकता है।

२. द्वितीय ब्राह्मणद्वयसूत्र : १. कायकर्म में संयम, २. मनःकर्म में संयम एवं ३. वाक्कर्म में संयम ही उसका १. शरणस्थल, २. प्रकाश, एवं ३. आधार हो सकता है॥

३. अन्यतर ब्राह्मणसूत्र : १. राग, २. द्वेष, ३. मोह से रहित होकर धर्म की आराधना ही सुखप्रद होती है॥

४. परिव्राजकसूत्र : १. राग, २. द्वेष, ३. मोह से रहित धर्माराधना ही साधक का वास्तविक हित कर सकती है॥

५. निर्वाणसूत्र : पूर्ववत्॥

६. प्रलोकसूत्र : १. विषम राग, २. विषम लोभ एवं ३. मिथ्यादृष्टि से अभिभूत प्राणियों के ग्राम एवं नगर शीघ्र ही प्रेतस्थल बन जाते हैं॥

७. वत्सगोत्रसूत्र : कोई भी दानदाता १. कामच्छन्द, २. व्यापाद, ३. स्त्यानमृद्ध, ४. औद्धत्य कौकृत्य एवं ५. विचिकित्सा से रहित होकर १. शील, २. समाधि, ३. प्रज्ञा, ४. विमुक्ति एवं ५. विमुक्तिज्ञानदर्शन से युक्त हो जाता है॥

८. त्रिकर्णसूत्र : भगवान् बुद्ध द्वारा परिभाषित तीन विद्याओं से युक्त साधक ही वास्तविक 'त्रैविद्य' कहलाता है॥

९. जानुश्रोणिसूत्र : पूर्ववत्॥

१०. सङ्गारवसूत्र : तीन प्रतिहार्य होते हैं — १. ऋद्धिप्रातिहार्य, २. आदेशनाप्रातिहार्य, एवं ३. अनुशासनीप्रातिहार्य। इन में अनुशासनीप्रातिहार्य उत्तम होता है॥

७. महावर्ग —

१. तीर्थायतनसूत्र : इस लोक में कोई पुरुष जो भी सुख, दुःख, अदुःख-असुख भोगता है, उसमें तीन ही कारण होते हैं; १. कोई उसे पूर्वकृत कर्मों के कारण बताता है, २. कोई ईश्वराधीन बताता है, तथा ३. कोई उसे अहेतुक बताता है; परन्तु इसका वास्तविक उपाय आर्यसत्यचतुष्टय की साधना ही है॥

२. भयसूत्र : १. ग्राम में अग्निदाह, २. जलप्लावन एवं ३. अरण्य में अग्निदाह के कारण त्रिविध अमातापुत्रक भय (माता का पुत्र से बिछुड़ जाना) कहलाता है। इसी प्रकार त्रिविध समातापुत्रक भय कहलाता है। आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की साधना ही इन द्विविध भयों से मुक्ति का एकमात्र उपाय है॥

३. वेनागपुरसूत्र : तीन उच्चशयन होते हैं — १. दिव्य उच्चशयन, २. ब्राह्म उच्चशयन एवं ३. आर्य उच्चशयन॥ (विस्तार यथास्थान आगे ग्रन्थ में देखें।)

४. **शरभसूत्र :** भगवान् का धर्मोपदेश त्रिदोषविहीन होता है — यह बात शरभ परिव्राजक के माध्यम से इस सूत्र में समझायी गयी है॥

५. **केशमुक्तिसूत्र :** इस सूत्र में भगवान् ने केशमुक्ति ग्राम के कालामों को वास्तविक धर्म की पहचान हेतु पाँच बातें निकर्ष रूप में बताते हुए १. लोभ, २. द्वेष एवं ३. मोह से दूर रहते हुए, १. अलोभ, २. अद्वेष एवं ३. अमोह को धारण करने का उपदेश किया है। इसका उपाय है चतुर्विध ब्रह्मविहार की साधना। इससे साधक को चार आश्वासन प्राप्त होते हैं॥

६. **साढसूत्र :** पूर्वसूत्रवत्॥

७. **कथावस्तुसूत्र :** संसार में की जाने वाली बातचीत (कथावस्तु) का इन तीन में से कोई एक प्रसङ्ग हो सकता है; १. या तो वह कोई अतीत का प्रसङ्ग हो २. या भविष्य का कोई प्रसङ्ग हो या फिर ३. वर्तमान का कोई प्रसङ्ग हो। इन बातों के सम्प्रयोग की परीक्षा करते हुए पुद्गल की वास्तविकता जान लेनी चाहिये कि वह 'अकथ्य' है या 'कथ्य'। 'अनुपनिषद्' है या 'सोपनिषद्'॥

८. **अन्यतीर्थिकसूत्र :** राग, द्वेष, मोह — ये तीन दोष होते हैं। इन में १. राग अल्पदोष है, २. द्वेष में अतिशय सदोषता है तथा ३. मोह में अत्यधिक दोष हैं।

९. **अकुशलमूलसूत्र :** ये तीन अकुशलमूल हैं। १. लोभ, २. द्वेष एवं ३. मोह। ये तीन कुशलमूल हैं — १. अलोभ, २. अद्वेष, एवं ३. अमोह॥

१०. **उपोसथसूत्र :** उपोसथ त्रिविध होते हैं — १. गोपालक उपोसथ, २. निर्ग्रन्थ उपोसथ, एवं ३. आर्य उपोसथ। इन में आर्य उपोसथ (अष्टाङ्गिक उपोसथ) ही श्रेष्ठ है॥ (विस्तार ग्रन्थ में देखें।)

८. आनन्दवर्ग —

१. **छन्नसूत्र :** राग, द्वेष एवं मोह के नाश का उपदेश का यह दोष देखकर किया जाता है — १. रागवान् पुरुष रागाभिभूत होकर दूसरे का धनादि आत्मसात् करने की सोच कर उस को हानि पहुँचाने का प्रयास करता है, स्वयं भी मानसिक क्लेश पाता है। राग के प्रहीण होने पर, न वह स्वयं को या दूसरों को कोई हानि पहुँचा पाता है, उसके त्रिविध दुराचार नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि राग मनुष्य को अन्धा बना देता है, अतः उसके नाश का उपदेश किया जाता है। २. द्वेषवान् पुरुष द्वेषाभिभूत होकर...पूर्ववत्...उसके नाश का उपदेश किया जाता है। ३. मोहवान् पुरुष मोहाभिभूत होकर...पूर्ववत्...उसके नाश का उपदेश किया जाता है॥

२. **आजीवकसूत्र :** राग, द्वेष एवं मोह के नाश को ही धर्मोपदेश की कसौटी माना जाय तो भगवान् बुद्ध का धर्मविषयक उपदेश सर्वोत्तम है। रागादि के नाश होने पर ही मनुष्य सत्कर्म करने की स्थिति में आता है। सत्कर्म धर्मसाधना के प्रथम सोपान हैं॥

३. **महानामशाक्यसूत्र :** 'समाहित साधक को ही ज्ञान होता है, असमाहित को नहीं'—यह बात मानने पर जिज्ञासा होती है कि समाधि पहले होती है, तब ज्ञान; या ज्ञान पहले होता है तब समाधि? उत्तर है — भगवान् की साधनाविषयक शिक्षा क्रमिक है; जैसे — पहले १. शील, फिर २. समाधि, तब ३. प्रज्ञा। इसीलिये कहा है — 'समाहित को ही ज्ञान होता है'॥

४. निर्ग्रन्थसूत्र : भगवान् ने १. शील, २. समाधि एवं ३. प्रज्ञा के रूप में तीन निर्जरा विशुद्धियाँ बतायी हैं ॥

५. निर्देशकसूत्र : १. भगवान् बुद्ध, २. उन के उपदिष्ट धर्म तथा उनके श्रावकसङ्घ में श्रद्धा रखने वाले आर्यश्रावक का नरक, तिरश्चीन योनि या प्रेतयोनि में पात नहीं होता ॥

६. प्रथम भवसूत्र : यहाँ कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तथा तृष्णा स्नेह है। यहाँ अविद्यानीवरणों एवं तृष्णासंयोजनों से युक्त पुद्गल जो विज्ञानहीन, मध्यम या उत्तम गतिवाली धातुओं में प्रतिष्ठित होता है, तब उसको पुनर्जन्म की प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार यह भव कहलाता है ॥

७. द्वितीय भवसूत्र : पूर्वसूत्रवत् ॥

८. शीलव्रतसूत्र : जिन शीलव्रतों के जीवित धर्मसाधना के रूप में किये गये सेवा भाव से अकुशलधर्म बढ़ने लगें एवं कुशल धर्मक्षीण होने लगें; ऐसे शीलव्रत का सेवाभाव निष्फल होता है; तथा जिन शीलव्रतों के जीवित धर्मसाधना के रूप में किये गये सेवाभाव से अकुशल धर्म क्षीण होने लगें और कुशल धर्म बढ़ने लगें, ऐसे शीलव्रत का सेवाभाव सफल होता है ॥

९. गन्धजातसूत्र : १. मूलगन्ध, २. काष्ठगन्ध एवं ३. पुष्पगन्ध — ये तीनों गन्ध अनुकूल वायु में ही आगे आगे प्रसार पाते हैं, परन्तु सत्पुरुषों का शीलगन्ध ऐसा होता है जो, अनुकूल वायु हो एवं प्रतिकूल वायु, सर्वत्र प्रसार पाता है ॥

१०. चूळनिकासूत्र : तथागत पहले इस त्रिसाहस्री महासाहस्री लोकधातु को अपने दिव्यप्रकाश से आलोकित करते हैं। जब वहाँ के प्राणी इस प्रकाश से परिचित हो जाते हैं तब तथागत अपना स्वर शब्दों के माध्यम से उच्चारण करते हैं। इस प्रकार, तथागत त्रिसाहसी महासाहस्री लोकधातु को, या ये जितना दूर तक चाहें, अपने स्वर से प्रतिध्वनित कर सकते हैं ॥●

९. श्रमणवर्ग —

१. श्रमणसूत्र : श्रमण के तीन कर्तव्य : १. शीलविषयक शिक्षा का आचरण, २. चित्त (समाधि) विषयक शिक्षा का आचरण; एवं ३. प्रज्ञाविषयक शिक्षा का आचरण ॥

२. गर्दभसूत्र : गौओं के समान १. स्वर, २. वर्ण एवं ३. गति चाहते हुए, गौओं के अनुगामी किसी गधे के समान कोई भिक्षुभेषधारी, अपने को भिक्षु कहता हुआ, भिक्षुसङ्घ के पीछे लग जाय। परन्तु उसकी यदि १. शील, २. समाधि एवं ३. प्रज्ञा के बढाने में रुचि न हो तो वह भिक्षु नहीं कहला सकता ॥

३. क्षेत्रसूत्र : कृषक के तीन प्रथम कृत्य — १. खेत को ठीक तरह से जोतना, २. जोत कर बीज वपन, ३. बीजवपन कर जल से सिञ्चन। इसी प्रकार भिक्षु के तीन पूर्वकृत्य : १. शील, २. समाधि एवं ३. प्रज्ञा के विषय में उचित शिक्षा का अधिग्रहण ॥

४. वज्जिपुत्रसूत्र : भले ही कोई भिक्षु डेढ सौ शिक्षाप्रद स्मरण न रख पावे, परन्तु उसको भी १. शीलविषयक शिक्षा, २. समाधिविषयक शिक्षा एवं ३. प्रज्ञाविषयक शिक्षा अवश्य स्मरण रखनी चाहिये ॥

५. शैक्ष्यसूत्र : जो १. शीलविषयक, २. समाधिविषयक एवं ३. प्रज्ञाविषयक शिक्षा लेता है, वही 'शैक्ष्य' कहलाता है।

६. प्रथम शिक्षासूत्र : शील, समाधि एवं प्रज्ञा विषयक तीन शिक्षाएँ, जिन में डेढ सौ से अधिक शिक्षापद भी समाहित हैं, अवश्य ग्रहण करनी चाहिये॥

७. द्वितीय शिक्षासूत्र : तीन शिक्षाएँ : १. अधिशीलशिक्षा, २. अधिचित्तशिक्षा, एवं ३. अधिप्रज्ञशिक्षा — इन में समस्त शिक्षापद भी समाहित हैं॥

८. तृतीय शिक्षासूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

९. प्रथम शिक्षात्रयसूत्र : तीन शिक्षाओं में : १. अधिशीलशिक्षा क्या होती है? यहाँ कोई भिक्षु शीलवान् होता है। २. अधिचित्त शिक्षा क्या होती है? कोई भिक्षु कामभोग एवं अकुशल धर्मों से दूर रहकर प्रथम ध्यान...चतुर्थ ध्यान की साधना करता है। ३. अधिप्रज्ञशिक्षा क्या होती है? यहाँ कोई भिक्षु आर्य सत्यचतुष्टय की साधना करता है॥

१०. द्वितीय शिक्षात्रयसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

११. सङ्कवासूत्र : जो कोई नया भिक्षु भी १. स्वयं शिक्षा का इच्छुक होता है, २. दूसरों द्वारा ग्रहण की गयी शिक्षा की प्रशंसा करता है, तथा ३. अन्य भिक्षुओं को शिक्षा का माहात्म्य बताता है, उसकी भगवान् भी प्रशंसा करते हैं॥ ●

१०. लवणकपालवर्ग —

१. आत्ययिकसूत्र : कृषक के तीन शीघ्र करणीय कृत्य : १. खेत को इच्छानुसार शीघ्रता से जोतना, २. जोते हुए खेत में बीज डालना, ३. बीज डाले हुए खेत को सींचना। इसी प्रकार, भिक्षु के तीन शीघ्र करणीय कृत्य : १. अधिशील शिक्षा का, २. अधिचित्त शिक्षा का, ३. अधिप्रज्ञशिक्षा का अधिग्रहण॥

२. प्रविवेकसूत्र : अन्य मतावलम्बी ये तीन प्रविवेक (एकान्त त्याग) बताते हैं — १. चीवर प्रविवेक, २. भोजन प्रविवेक एवं ३. शयनासन (आवास) प्रविवेक। आर्य विनय में ये तीन प्रविवेक हैं — १. शीलवत्ता, २. सम्यग्दृष्टि एवं ३. क्षीणाश्रवता॥

३. शरत्सूत्र : जैसे शरदृतु के स्वच्छ आकाश में सूर्य देदीप्यमान होता है; उसी प्रकार १. मिथ्यादृष्टि, २. विचिकित्सा एवं शीलव्रतपरामास—इन तीन संयोजनों के नष्ट होने पर किसी भिक्षु का भी समाज में प्रकाश फैलने लगता है॥

४. परिषत्सूत्र : तीन परिषद् होती है — १. अग्रवती परिषद्, २. वर्ग परिषद् एवं ३. समग्र परिषद्।

५. प्रथम आजानेयसूत्र : जैसे राजा का कोई श्रेष्ठ अश्व १. वर्णसम्पन्न, २. बलसम्पन्न एवं जव (वेग) सम्पन्न होता है वैसे ही इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु भी आह्वनीय, आतिथ्ययोग्य एवं प्रणम्य और लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि कहलाता है॥

६. द्वितीय आजानेयसूत्र : प्रायः पूर्वसूत्रवत्।

७. तृतीय आजानेयसूत्र : प्रायः पूर्वसूत्रवत्।

८. पुस्तकसूत्र : जैसे नयी या पुरानी पुस्तक का, यदि वह दुर्वर्ण है, जीर्ण शीर्ण है तो उसका न कोई महत्त्व होता है न मूल्य ही; उसी प्रकार नये या पुराने भिक्षु का भी समाज में कोई महत्त्व नहीं माना जाता, यदि वह पापधर्मा है, दुःशील है। उन का सङ्ग करने वाले भी जीवन में कष्ट ही पाते

हैं। इसके विपरीत, नया या पुराना भिक्षु सुशील है, शुभकर्मकारी है तो उस का समाज में महत्त्व एवं प्रशंसा होती है॥

९. लवणकपालसूत्र : इस सूत्र में इस सिद्धान्त का खण्डन किया गया है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसका वैसा फल भोगना ही पड़ता है। तथा यह सिद्धान्त स्थापित किया है कि कभी मनुष्य का अल्पमात्र पापकर्म उसको नरक में पहुँचा देता है और कभी किसी अन्य को वैसा ही पापकर्म यहीं भोग लेना पड़ता है॥ (विस्तार ग्रन्थ में यथास्थान देखें।)

१०. पांशुधोवकसूत्र : जैसे कोई सुनार सोना चांदी के सभी मल एवं विकारों को अनेक साधनों द्वारा हटा कर उन को शुद्ध (निर्मल) कर लेता है उसी प्रकार भिक्षु को भी अपने चित्त के सभी चित्त विकारों को तथागतोपदिष्ट साधना विधि द्वारा कायदुराचार आदि से विरहित कर लेता चाहिये॥

११. निमित्तसूत्र : साधक भिक्षु को समय समय पर साधना के इन तीन निमित्तों पर विचार करते रहना चाहिये — १. समय समय पर तद्विषयक समाधि पर; २. समय समय पर उस के निग्रह पर, ३. समय समय पर उसकी उपेक्षा पर विचार करना चाहिये॥

११. सम्बोध वर्ग —

१. सम्बोधिपूर्वसूत्र : सम्बोधि प्राप्ति से पूर्व तथागत ने ये तीन चिन्तन किये थे — १. इन लौकिक कामभोगों में क्या आस्वाद है? इन में क्या आदीनव (दोष) है? या ३. इन से निःसरण (छूटने) का क्या उपाय है?

२. प्रथम आस्वादसूत्र : उक्त तीनों बातों पर चिन्तन करते करते तथागत ने उन का किनारा पा लिया।

३. द्वितीय आस्वादसूत्र : लोक में यदि १. आस्वाद, २. आदीनव एवं निःसरण न होते तो इतने अधिक जिज्ञासु इस से निस्सरण के उपाय की गवेषणा न करते॥

४. श्रमणब्राह्मणसूत्र : जब तक कोई श्रमण ब्राह्मण आस्वाद को आस्वाद के रूप में २. आदीनव को आदीनव के रूप में, तथा ३. निःसरण को निःसरण के रूप में यथार्थतः नहीं जान लेता, तब तक वह वास्तविक श्रमण ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता॥

५. रुदितसूत्र : आर्यविनय में किसी भिक्षु द्वारा १. लौकिक गीत गाया जाना 'रुदन' कहलाता है। उस का २. हास एवं ३. मुक्त परिहास 'उन्माद' कहलाता है। अतः भिक्षु को ऐसी स्थिति में स्मितहास्य ही विहित है॥

६. अतृप्तिसूत्र : लोक में पृथग्जन इन तीन कार्यों में अतृप्त ही रहते हैं — १. शयन, २. मद्यपान एवं ३. मैथुन धर्म॥

७. अरक्षितसूत्र : चित्त के अरक्षित (अनियन्त्रित) रहने पर साधक के कायिक वाचिक एवं मानस कर्म भी अरक्षित रह जाते हैं। तब ये तृष्णायुक्त होने लगते हैं। उस अवस्था में उन कर्मों में लौकिक दुर्गन्ध आने लगती है। ऐसे दुर्गन्धमय कर्म करने वाले की मृत्यु भी सुखमय नहीं होती। चित्त के सुरक्षित (नियन्त्रित) होने पर सब कुछ इस के विपरीत होता है॥

८. व्यापन्नसूत्र : चित्त के मार्गभ्रष्ट होने पर उसके कायिक आदि कर्म भी मार्गभ्रष्टता की ओर अग्रसर होते हैं। अन्त में उस की मृत्यु भी सुखमय नहीं होती॥

९. प्रथम निदानसूत्र : कर्मोत्पत्ति के तीन कारण : १. लोभ, २. द्वेष एवं ३. मोह। या १. अलोभ, २. अद्वेष एवं ३. अमोह।

१०. द्वितीय निदानसूत्र : कर्मोत्पत्ति के तीन कारण : १. अतीत छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द (प्राप्ति की इच्छा), २. अनागत छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द; एवं ३. वर्तमान छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द; तथा ३. वर्तमान छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द की उत्पत्ति॥

१२. आपायिक वर्ग —

१. आपायिक सूत्र : तीन बातें नरक में ढकेलने वाली होती हैं — १. धर्मसाधक न होते हुए साधना की डींग हाँकना; २. शुद्ध धर्मसाधना को निर्मूल धर्मसाधना कहना; ३. 'कामभोगों के उपभोग में कोई दोष नहीं है' — कहकर भ्रान्ति फैलाना।

२. दुर्लभसूत्र : लोक में ये तीन उत्पाद दुर्लभ : १. तथागत बुद्ध का उत्पाद; २. बुद्धोपदिष्ट धर्म के व्याख्याता का उत्पाद; ३. कृतज्ञ एवं उपकारस्मर्ता का उत्पाद॥

३. अप्रमेयसूत्र : तीन अतुलनीय पुद्गल : १. सुप्रमेय, २. दुष्प्रमेय; ३. अप्रमेय॥

४. आनेञ्ज्यसूत्र : तीन स्थिर साधक पुद्गल : १. आकाशानन्त्यायतनसंज्ञा का साधक; २. विज्ञानानन्त्यायतनसंज्ञा का साधक, एवं ३. आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा का साधक॥

५. विपत्ति-सम्पदासूत्र : तीन विपत्ति : १. शीलविपत्ति, २. चित्तविपत्ति, ३. दृष्टिविपत्ति।
तीन सम्पदा : १. शीलसम्पदा, २. चित्तसम्पदा, ३. दृष्टिसम्पदा।

६. अपर्णकसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

७. कर्मान्तसूत्र : तीन विपत्ति : १. कर्मान्तविपत्ति, २. आजीवविपत्ति, ३. दृष्टि विपत्ति। तीन सम्पत्ति : १. कर्मान्तसम्पत्ति, २. आजीवसम्पत्ति, ३. दृष्टि सम्पत्ति॥

८. प्रथम शुचितासूत्र : तीन शुचिता : १. कायशुचिता, २. वाक्शुचिता, ३. मनःशुचिता।

९. द्वितीय शुचितासूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

१०. मौनेयसूत्र : तीन मौन भाव : १. कायमौन,२. वाङ्मौन, ३. मनोमौन॥

१३. कुसीनार वर्ग —

१. कुसीनारसूत्र : आसक्तियुक्त भिक्षाचार से १. कामवितर्क, २. व्यापादवितर्क, एवं ३. विहिंसावितर्क में नहीं उलझना चाहिये॥

२. भण्डनसूत्र : जिस दिशा में भिक्षु कलह, विवाद करते ज्ञात हों, उधर नहीं जाना चाहिये। हाँ, जिधर यह कलह न सुनायी दे, उधर जाना चाहिये। वहाँ जाने से १. नैष्काम्यवितर्क, २. अव्यापादवितर्क एवं ३. अविहिंसावितर्क में वृद्धि होती है॥

३. गौतमकचैत्यसूत्र : भगवान् कोई भी धर्मोपदेश १. पहले भली भाँति सोच कर, २. कारण बताते हुए ३. चमत्कारपूर्वक करते थे।

४. भरण्डुकालामसूत्र : लोक में त्रिविध शास्ता — १. जो शास्ता कामभोगों की परिज्ञा का ही उपदेश करते हैं, २. कुछ शास्ता कामभोग एवं रूपों की परिज्ञा का उपदेश करते हैं, ३. कुछ शास्ता कामभोग, रूप और वेदना — तीनों की परिज्ञा का उपदेश करते हैं॥

५. हस्तकसूत्र : हस्तक देवपुत्र को मानव जीवन में तीन बातों में अतृप्ति (असन्तोष) ही

रही — १. भगवान् के दर्शन से कभी तृप्त न हुआ; २. सद्धर्म के श्रवण एवं सङ्घ के दर्शन से कभी सन्तुष्ट न हुआ; ३. सद्धर्मश्रवण करता हुआ भी शीलविषयक शिक्षाग्रहण करने से कभी तृप्त न हुआ।

६. कटुवत्सूत्र : १. अभिध्या (लोभ) ही 'अध:पतन' कहा गया है। २. व्यापाद को 'श्मशानगन्ध' कहा गया है। ३. पापमय धर्मों को 'मक्खियों को भिनभिनाना' कहा गया है॥

७. प्रथम अनुरुद्धसूत्र : नारियों की दुर्गति — १. जो प्रात: मात्सर्य युक्त चित्त से घर में प्रवेश करती है; २. मध्याह्न में ईर्ष्या युक्त से घर में प्रवेश करती है; ३. सायङ्काल कामरागयुक्त चित्त से घर में प्रवेश करती है॥

८. द्वितीय अनुरुद्धसूत्र : १. मानवातिक्रान्त दिव्यचक्षु से इस समस्त दिव्य लोक को देखने की सामर्थ्य रखना — अभिमानमात्र है। २. आरब्ध वीर्य ऐकान्तिक नहीं होता, चित्त एकाग्र रहता है — औद्धत्यमात्र है। ३. चित्त, विचार किये विना ही आश्रवों से मुक्त हो जाता है — यह कौकृत्यमात्र है॥

९. प्रतिच्छन्नसूत्र : १. स्त्रियाँ प्रतिच्छन्न (गुप्त) रहने पर ही शुभ फल देती हैं; २. ब्राह्मणों के मन्त्र गुप्त रखने पर ही शुभ फल देते हैं; ३. मिथ्या दृष्टि (अशुभ विचार) गुप्त रखने पर ही शुभ फल देती है॥

१०. लेखसूत्र : रेखाएँ त्रिविध होती हैं — १. पाषाण (पत्थर) पर रेखा; २. पृथ्वी पर रेखा; तथा जल पर रेखा॥

१४. योधाजीववर्ग —

१. योधाजीवसूत्र : श्रेष्ठ योद्धा — १. दूर तक लक्ष्यभेदक, २. लक्ष्यभेद में विलम्ब न करने वाला, ३. युद्ध में बहुसङ्ख्यक विरोधियों को मारने वाला॥

२. परिषत्सूत्र : त्रिविध परिषद् — १. उक्काचितविनीत, २. प्रतिपृच्छाविनीत, ३. यावद्विनीत॥

३. मित्रसूत्र : त्रिविध मित्र — १. कठिनतया प्राप्त वस्तु को भी देने वाला; २. मित्र के लिये दुष्कर कार्य कर देने वाला, ३. कठिनतया सहन करने योग्य बात को भी सहन करने वाला॥

४. उत्पादसूत्र : १. 'सभी संस्कार अनित्य होते हैं'—यह जानकर समझकर ही तथागत उपदेश करते हैं; २. 'सभी संस्कार दु:खमय होते हैं' — यह जानकर समझ कर ही तथागत उपदेश करते हैं; ३. 'संस्कार अनात्म हैं' — यह जानकर, समझ कर ही तथागत उपदेश करते हैं॥

५. केशकम्बलिसूत्र : केशकम्बलि के तीन दुर्गुण — यह अतीत, अनागत, वर्तमान बुद्धों के मतों का खण्डन करता हुआ यह कहता है — 'यहाँ न कोई **कर्म** है, न कोई **क्रिया**, अत: तदर्थ किसी **क्रियारम्भ** की आवश्यकता भी नहीं है'॥

६. सम्पदासूत्र : १. श्रद्धासम्पत्ति, २. शीलसम्पत्ति, एवं ३. प्रज्ञासम्पत्ति॥

७. वृद्धिसूत्र : १. श्रद्धावृद्धि, २. शीलवृद्धि एवं ३. प्रज्ञावृद्धि॥

८. अश्वखळुङ्कसूत्र : त्रिविध अश्व — १. वेगवान्; परन्तु वर्ण में कुरूप एवं आरोह - परिणाह के अयोग्य। २. वेगवान्, वर्णवान्; परन्तु आरोह-परिणाह (सवारी) के अयोग्य। ३. वेगवान्, वर्णवान् तथा आरोह-परिणाहयोग्य। त्रिविध पुरुष — १. वेगवान्; परन्तु वर्णवान् तथा

आरोह-परिणाहयोग्य नहीं होता। २. वेगवान्, वर्णवान् परन्तु आरोह-परिणाह योग्य नहीं होता। तथा ३. वेगवान्, वर्णवान् तथा साथ ही आरोहपरिणाहयोग्य भी होता है॥

९. अश्वपुरुषसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

१०. अश्वाजानीयसूत्र : त्रिविध श्रेष्ठ अश्व तथा पुरुष — वेगवान्, वर्णवान् तथा आरोह-परिणाहसम्पन्न॥

११. प्रथम मयूरनिवापसूत्र : तीन धर्मों से युक्त श्रेष्ठ भिक्षु — १. अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से, २. अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से; ३. अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से॥

१२. द्वितीय मयूरनिवापसूत्र : तीन धर्मों से युक्त श्रेष्ठ भिक्षु — १. ऋद्धिप्रातिहार्य से, २. आदेशनाप्रातिहार्य से, ३. अनुशासनीप्रातिहार्य से॥

१३. तृतीय मयूरनिवापसूत्र : तीन धर्मों से युक्त श्रेष्ठ भिक्षु — १. सम्यग्दृष्टि से, २. सम्यग्ज्ञान से, ३. सम्यग्विमुक्ति से॥ ●

१५. मङ्गलवर्ग —

१. अकुशलसूत्र : इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु नरकगामी होता है — १. अकुशल कायकर्म, २. अकुशल वाक्कर्म एवं ३. अकुशल मनःकर्म॥

२. सावद्यसूत्र : इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु भी नरकगामी — १. सावद्य (निन्दनीय) कायकर्म, २. सातद्य वाक्कर्म, ३. सावद्य मनःकर्म॥

३. विषमसूत्र : इन तीन विषम (विपरीत) धर्मों से युक्त भिक्षु भी नरकगामी — १. विषम कायकर्म, २. विषम वाक्कर्म, एवं ३. विषम मनःकर्म॥

४. अशुचिसूत्र : (क) तीन धर्मों से युक्त भिक्षु नरकगामी — १. अपवित्र कायकर्म, २. अपवित्र वाक्कर्म एवं ३. अपवित्र मनःकर्म॥

(ख) तीन धर्मों से युक्त भिक्षु स्वर्ग सुख भोगी — १. पवित्र कायकर्म, २. पवित्र वाक्कर्म, एवं ३. पवित्र मनःकर्म॥

५. प्रथम क्षतसूत्र : इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष मूर्ख, नासमझ एवं असत्पुरुष कहलाता है — १. अकुशल कायकर्म, २. अकुशल वाक्कर्म एवं ३. अकुशल मनःकर्म से युक्त॥

तथा इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष बुद्धिमान्, चतुर एवं सत्पुरुष कहलाता है — १. कुशल कायकर्म से, २. कुशल वाक्कर्म से, ३. कुशल मनःकर्म से॥

६. द्वितीय क्षतसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥ ('सावद्य' शब्द लगाकर)॥

७. तृतीय क्षतसूत्र : पूर्वसूत्रवत्। ('विषम' शब्द लगाकर)॥

८. चतुर्थ क्षतसूत्र : पूर्वसूत्रवत्। ('अशुचि' शब्द लगाकर)॥

९. वन्दनासूत्र : त्रिविध वन्दना — १. काय से, २. वाक् से, तथा ३. मन से॥

१०. पूर्वाह्णसूत्र : १. जो प्राणी प्रातः, सायम्, मध्याह्न में सुचरित करते हैं; २. शुभ नक्षत्र युक्त प्रातः सायं मध्याह्न अपने कल्याणमित्रों में बिताते हैं, तथा ३. जिस के काय-वाक् मन के कर्म प्रदक्षिणा के योग्य हों, ऐसे प्राणी प्रणम्य हैं, वे स्वयं सिद्ध हैं, वे सदा सुखी तथा बुद्धशासन में मार्गारूढ रहेंगे॥

१६. अचेलक वर्ग —

तीन प्रतिपदा : १. आगाढ प्रतिपदा, २. निर्ध्याम प्रतिपदा, ३. मध्यम प्रतिपदा ॥

साधना का मध्यम मार्ग : कायानुपश्यना आदि चार स्मृतिप्रस्थान ॥ चार सम्यक्प्रधान ॥ चार ऋद्धिपाद ॥ पाँच इन्द्रियाँ ॥ पाँच बल ॥ सात बोध्यङ्ग ॥ अष्टाङ्गिक मार्ग ॥ ●

१७. कर्मपथ पेय्याल —

इन दश धर्मों से युक्त प्राणी पुनः नरक में ही जा गिरते हैं — १. प्राणातिपाती, २. चौर, ३. कामभोगों में मिथ्याचारी, ४. असत्यभाषी, ५. चुगलखोर, ६. परुषवाक् (कठोर वाणी बोलने वाला), ७. प्रलापी (बकवादी), ८. लोभी, ९. द्वेषी एवं १०. मिथ्यादृष्टि ॥

इन उपर्युक्त से विपरीत धर्मों से युक्त प्राणी स्वर्गसुख भोगते हैं — १. अहिंसक, २. दत्तादानी, ३. कामभोगों में मिथ्याचार से विरत,४. सत्यभाषी, ५. चुगली न करने वाला, ६. मृदुभाषी, ७. प्रलाप न करने वाला, ८. निर्लोभ, ९. निर्द्वेष एवं १०. सम्यग्दृष्टि ॥ ●

१८. रागपेय्याल —

१-११. राग के अभिज्ञान के लिये — इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिये — १. शून्यतासमाधि, २. अनिमित्तसमाधि, ३. अप्रणिहितसमाधि ॥

राग के अभिज्ञान के लिये — इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिये — १. सवितर्क सविचारसमाधि, २. अवितर्कविचारमात्र समाधि, ३. अवितर्क-अविचारसमाधि ॥

राग के परिज्ञान, परिक्षय, प्रहाण, क्षय, व्यय, विराग, निरोध, त्याग एवं प्रतिनिसर्ग के लिये — उपर्युक्त तीन धर्मों की भावना करनी चाहिये ॥

द्वेष के, मोह के, क्रोध के, उपनाह के, म्रक्ष के, प्रदाश के, ईर्ष्या के, मात्सर्य के, माया के, शाठ्य के, स्तम्भ के, सारम्भ के, मान के, अतिमान के, मद के, प्रमाद के अभिज्ञान के लिये, परिज्ञान, परिक्षय, प्रहाण, क्षय, व्यय, विराग, निरोध, त्याग एवं प्रतिनिसर्ग के लिये — उपर्युक्त तीन धर्मों की भावना करनी चाहिये ॥ ●

त्रिकनिपातसंक्षेप सम्पन्न ॥

●

चतुष्क निपात

१. अनुबुद्धसूत्र : भगवान् कहते हैं — चार धर्मों के अज्ञान या इन के अन्तस्तल तक न पहुँच पाने के कारण ही हम इतने दीर्घ काल तक संसार में इधर उधर दौड़ते तथा चक्कर काटते रह गये। कौन चार धर्म — १. शील, २. समाधि, ३. प्रज्ञा एवं ४. विमुक्ति। जब इन चार धर्मों का पूर्ण ज्ञान हुआ, तब हमारी यह दौड़धूप सदा के लिये मिट गयी ॥

२. प्रपतितसूत्र : इन चार धर्मों से असम्पृक्त होने के कारण साधक 'धर्मविनय से पतित' कहलाता है — १. शील, २. समाधि, ३. प्रज्ञा एवं ४. विमुक्ति॥

जब वह इन चार धर्मों को अधिगत कर लेता है, तब वही 'धर्मविनय में स्थित' कहलाता है — १. आर्यशील, २. आर्यसमाधि, ३. आर्यप्रज्ञा एवं ४. आर्य विमुक्ति॥

३. प्रथमक्षतसूत्र : इन चार धर्मों से युक्त मूर्ख, नासमझ, पापी, असत्पुरुष स्वयं को क्षत विक्षत एवं उपहत समझता है — १. किसी निन्दनीय पुरुष की विना सोचे विचारे प्रशंसा, २. किसी प्रशस्य पुरुष की विना सोचे विचारे निन्दा, ३. किसी अश्रद्धेय में श्रद्धा तथा ४. किसी श्रद्धेय में विना सोचे विचारे अश्रद्धा। इसके विपरीत, जो १. निन्दनीय पुरुष की सोच समझकर निन्दा, २. प्रशंसनीय पुरुष की सोच समझ कर प्रशंसा, ३. अश्रद्धेय पुरुष में सोच समझ कर अश्रद्धा और ४. श्रद्धेय पुरुष में सोच समझ कर श्रद्धा करने वाला सत्पुरुष अपने लिये अप्रमेय पुण्यराशि संगृहीत करता है॥

४. द्वितीयक्षतसूत्र : इन चार के प्रति मिथ्या व्यवहारकर्ता असत्पुरुष अपने को क्षत विक्षत ही समझता है — १. माता के प्रति, २. पिता के प्रति, ३. तथागत के प्रति एवं ४. किसी तथागत श्रावक के प्रति अनुचित व्यवहार। वह समाज एवं विद्वानों की दृष्टि में दोषी एवं निन्द्य माना जाता है। इस के विपरीत, उक्त चार के प्रति उचित व्यवहारकर्ता स्वयं को सर्वदा स्वस्थ एवं तरुण समझता हुआ अपने लिये विपुल पुण्यराशि सञ्चित कर लेता है॥

५. अनुस्रोतसूत्र : लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं — १. अनुस्रोतोगामी, २. प्रति-स्रोतोगामी, ३. स्थितात्मा, एवं ४. तीर्ण, पारङ्गत एवं तटस्थ ब्राह्मण॥

६. अल्पश्रुतसूत्र : लोक में दो चतुर्विध पुद्गल भी होते हैं — १. अल्पश्रुत, परन्तु उस अल्प सुने हुए को मन में न धारणा करने वाला, २. अल्पश्रुत, परन्तु जितना सुना उसको मन में धारण करने वाला, ३. बहुश्रुत, परन्तु जो सुना उस को कुछ भी न धारणा करने वाला, ४. बहुश्रुत, और सुने हुए को मन में पूर्णतः धारण कर लेने वाला॥

७. शोभनसूत्र : ये चार पुद्गल यदि पण्डित, शीलवान्, धर्माराधक, साधना में दक्ष, बहुश्रुत एवं धर्मानुसार मार्गारूढ हैं तो ये सङ्घ की शोभा ही बढ़ाते हैं — १. भिक्षु, २. भिक्षुणी, ३. उपासक एवं ४. उपासिका॥

८. वैशारद्यसूत्र : भगवान् बुद्ध में ये चार वैशारद्य (चतुरता) थे जिन का आश्रयण कर वे परिषदों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर सिंहनादपूर्वक धर्मोपदेश करते थे — १. 'सम्यक्सम्बुद्धत्व की प्रतिज्ञा करते हुए उन के प्रति आपके सभी आश्रव क्षीण नहीं हैं', ३. 'आपके द्वारा बताये गये साधना में विघ्नकारी धर्म वस्तुतः विघ्नकारी नहीं हैं', तथा ४. 'आपने जिस प्रयोजन से धर्मोपदेश किया था, उसकी सम्यक्साधना से भी दुःखों का अन्त नहीं हो पाया'। उन के प्रति इन चारों बातों को आरोपित करने वाला भी सिद्ध नहीं कर पाया॥

९. तृष्णोत्पादसूत्र : तृष्णा के उत्पादक चार हेतु — १. चीवर के लिये, २. पिण्डपात के लिये, ३. शयनासन के लिये, तथा ४. लोक में यहाँ वहाँ उत्पन्न होने के लिये तृष्णा होती है॥

१०. योगसूत्र : योग चार होते हैं — १. कामयोग, २. भवयोग, ३. दृष्टियोग, एवं ४. अविद्या॥ (इनका विस्तृत व्याख्यान यथास्थान ग्रन्थ में देखें।)

विसंयोग भी चार होते हैं — १. कामयोगविसंयोग, २. भवयोगविसंयोग, ३. दृष्टियोगविसंयोग एवं ४. अविद्यायोगविसंयोग ॥

२. चरवर्ग —

१. चरसूत्र : १. चारिका करने वाले भिक्षु को भी, २. एक स्थान पर खड़े भिक्षु को भी, ३. एक स्थान पर बैठे भिक्षु को भी, ४. सोते हुए भिक्षु को भी कामवितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क त्रस्त करते रहते हैं ॥

२. शीलसूत्र : १. जिस चारिका करने वाले, २. एक स्थान पर खड़े, ३. एक स्थान पर बैठे, ४. एक स्थान पर सोते हुए भिक्षु के अभिध्या, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य कौकृत्य एवं विचिकित्सा प्रहीण हो जाते हैं, वह निश्चित लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जाता है ॥

३. प्रधानसूत्र : सम्यक्प्रधान चार होते हैं; जैसे — १. अनुत्पन्न अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये सङ्कल्प; २. उत्पन्न अकुशल धर्मों के प्रहाण हेतु प्रयत्न; ३. अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद हेतु सङ्कल्प, एवं ४. उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति के लिये प्रयत्न ॥

४. संवरसूत्र : योगाभ्यास हेतु चार प्रधान (प्रयत्न) — १. संवरप्रधान, २. प्रहाणप्रधान, ३. भावनाप्रधान एवं ४. अनुरक्षणाप्रधान।

५. प्रज्ञप्तिसूत्र : चार अग्रप्रज्ञप्तियाँ (प्रमुखताएँ) — १. प्राणधारियों में प्रमुख राहु, २. काम-भोगियों में प्रमुख मान्धाता, ३. पापियों में प्रमुख मार, ४. समस्त संसार में तथागत, अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ॥

६. रूपसौक्ष्म्यसूत्र : चार सौक्ष्म्य (सूक्ष्मता) — १. रूपसौक्ष्म्य, २. वेदनासौक्ष्म्य, ३. संज्ञासौक्ष्म्य और ४. संस्कारसौक्ष्म्य ॥

७. प्रथम अगतिसूत्र : चार अगतिगमन (कुपथगमन) — १. रागवश कुपथगामिता, २. द्वेषवश कुपथगामिता, ३. मोहवश कुपथगामिता एवं ४. भयवश कुपथगामिता ॥

८. द्वितीय अगतिसूत्र : अन्य चार अगतिगमन — १. न रागवश, २. न द्वेषवश, ३. न मोहवश, ४. न भयवश कुपथगामिता ॥

९. तृतीय अगतिसूत्र : पूर्वसूत्रवत् ॥

१०. भक्तोद्देश्यकसूत्र : जो भिक्षु अनुरागवश, द्वेषवश, मोहवश एवं भयवश कुपथगामी होता है ऐसा वह भात खाकर पेट भरने वाला इन चार धर्मों से युक्त हो कर नरकगामी होता है।

परन्तु जो उक्त चार धर्मों के वश में न हो कर सन्मार्ग पर चलता है वह स्वर्ग सुख का अधिकारी है ॥ ●

३. ऊरुवेल वर्ग —

१. प्रथम ऊरुवेलसूत्र : चार उपासनीय धर्म — १. शीलस्कन्ध, २. समाधिस्कन्ध, ३. प्रज्ञास्कन्ध एवं ४. विमुक्तिस्कन्ध ॥

२. द्वितीय ऊरुवेलसूत्र : चार स्थविरकरण धर्म वाले — १. शीलवान् भिक्षु, २. बहुश्रुत भिक्षु, ३. आभिचैतसिक चार ध्यानों का लाभी एवं ४. प्रज्ञाविमुक्ति को साक्षात् करने वाला ॥

३. लोकसूत्र : तथागत ने १. लोक, २. लोकसमुदय, ३. लोकनिरोध एवं ४. लोक-

निरोधगामी मार्ग — इन चारों धर्मों को जान लिया है, अतः उनकी इस मार्ग की साधना पूर्ण कहलाती है। तथागत के चार वैशिष्ट्य भी यहाँ उद्धृत हैं॥

४. काळकारामसूत्र : भगवान् के चार साक्षात्कृत धर्म — १. दृष्ट, २. श्रुत, ३. स्मृत एवं ४. विज्ञात धर्मों को जैसे हैं वैसे ही निर्भ्रान्तरूप से कहना॥

५. ब्रह्मचर्यसूत्र : चार बातों के लिये धर्मसाधना का निषेध — १. जनता को अपना ढोंग दिखाने के लिये, २. जनता की मिथ्यास्तुति के लिये, ३. जनता में अपनी विद्या आदि की प्रशस्ति के लिये, या ४. लाभ, सत्कार. यश के लिये।

अपितु यह धर्मसाधना — १. अकुशल धर्मों के संयम एवं २. नाश, ३. संसार से वैराग्य तथा ४. पाप-धर्मों के नाश के लिये — करनी चाहिये॥

६. कुहसूत्र : ढोंगी भिक्षु तथा चञ्चलचित्त एवं परिग्रही भिक्षु १. न तथागत का शिष्य कहलाने योग्य है, २. न सङ्घ में रखने योग्य है। परन्तु जो भिक्षु ढोंगी या चञ्चलचित्त आदि नहीं है वह ३. तथागत का शिष्य एवं ४. सङ्घ में रखने योग्य हैं॥

७. सन्तुष्टिसूत्र : ये चार निर्दोष धर्म सुलभ हैं — १. पांशुकूल, २. पिण्डपात, ३. शयनासन एवं ४. ओषधियों से भावित गोमूत्र॥

८. आर्यवंशसूत्र : आर्य परम्परा में प्राप्त ये चार धर्म अल्प होते हुए भी सुलभ, अग्रगण्य, चिरस्थायी एवं विद्वज्जनों द्वारा प्रशंसनीय हैं — १. पांशुकूल (फटे पुराने वस्त्र), २. पिण्डपात (भिक्षान्न), ३. शयनासन (वृक्षों के नीचे सोना), तथा ४. साधनासुख आदि। इन से सन्तुष्ट भिक्षु के चित्त की एकाग्रता नष्ट नहीं होती॥

९. धर्मपदसूत्र : धर्मप्राप्ति के चार साधन — १. अनभिध्या (अलोभ), २. अव्यापाद (अवैर), ३. सम्यक्स्मृति (जागरुकता), ४. सम्यक्समाधि (एकाग्रता)॥

१०. परिव्राजकसूत्र : १. अनभिध्या, २. अव्यापाद, ३. सम्यक्स्मृति एवं ४. सम्यक्समाधि का विस्तृत व्याख्यान॥

४. चक्रवर्ग

१. चक्रसूत्र : इन चार चक्रों से संयुक्त होकर देवताओं तथा मनुष्यों का चक्रचतुष्टय कामभोगों में वृद्धि आदि बनता है — १. अनुकूलदेश में वास, २. सज्जनों का आश्रय, ३. अपना दृढ निश्चय, तथा ४. पूर्वजन्मकृत पुण्य॥

२. संग्रहसूत्र : चार संग्रहवस्तुएँ — १. दान, २. प्रियवाणी, ३. परोपकार एवं ४. शान्तचिन्तता॥

३. सिंहनादसूत्र : मृगराजसिंह के समान सिंहनाद करते हुए तथागत सम्यक्सम्बुद्ध चार उपदेश करते हैं — १. यह शरीर है, २. यह शरीर की उत्पत्ति है, ३. यह शरीर का निरोध है, तथा ४. यह शरीरनिरोधगामी मार्ग है॥

४. प्रसादसूत्र : ये चार अग्रप्रसाद (श्रद्धास्थान) कहलाते हैं — १. सभी प्राणियों में तथागत सर्वश्रेष्ठ; २. सङ्ख्यात धर्मों में आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग सर्वश्रेष्ठ; ३. संस्कृत असंस्कृत धर्मों में वैराग्य सर्वश्रेष्ठ, एवं ४. सभी श्रमणसङ्घों में तथागत का श्रावकसङ्घ सर्वश्रेष्ठ है॥

५. वर्षकारसूत्र : इन चार धर्मों से युक्त पुरुष को ही विद्वज्जन 'महापुरुष' या 'महाप्राज्ञ' कहते हैं — १. जो बहुश्रुत है, जो बुद्धभाषित का अर्थ जानता है, २. जो अपने चिरकृत एवं चिरभाषित का स्मरण रखता है, एवं ३. जो अपने गृहस्थ धर्म के कर्तव्य कर्म में दक्ष एवं निरालस्य रहता है तथा ४. जो उनकी प्राप्ति एवं पूर्णता में समर्थ होता है।

तथागतसम्मत चार धर्म, जिनके होने पर विद्वज्जन किसी को 'महापुरुष' या 'महाप्राज्ञ' कहते हैं — १. बहुजनों के हितसुख में तत्पर; २. अभीष्ट तर्क संकल्प आदि करता हुआ अपने चित्त को संयत रखता है; ३. चार आभिचैतसिक ध्यानों का प्रापक एवं ४. आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति का साक्षात्कार। वस्तुतः तथागत सम्यक्सम्बुद्ध ही 'महापुरुष' एवं 'महाप्राज्ञ' हैं॥

६. द्रोणसूत्र : बुद्ध को न १. देवता, न २. गन्धर्व, न ३. यक्ष और न ४. मनुष्य ही कहा जा सकता है। वे तो जल में कमल के समान इस जगत्सृष्टि से निर्लिप्त रहते हुए तथागत सम्यक्सम्बुद्ध ही हैं॥

७. अपरिहाणीयसूत्र : इन चार धर्मों से सम्पन्न भिक्षु साधनाच्युत हो जाय — यह सम्भव नहीं है — १. शीलसम्पन्न, २. इन्द्रियसंयमी, ३. भोजनमात्राज्ञ एवं ४. जागरण (सावधानी) से युक्त॥

८. प्रतिलीनसूत्र : व्यभिचरित मतवादों से दूर रहने वाले भिक्षु के चार प्रकार—१. प्रणु-प्रत्येकसत्य, २. समवसृष्टैषण, ३. प्रश्रब्धकायसंस्कार एवं ४. प्रतिलीन॥

९. उज्जयसूत्र : गौ आदि की हिंसा से सम्पृक्त यज्ञों में अर्हत् या अर्हन्मार्गारूढ सम्मिलित नहीं होते; अपितु वे अहिंसक यज्ञों में ही सम्मिलित होते हैं॥

१०. उदायिसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

५. रोहिताश्ववर्ग —

१. समाधिभावनासूत्र : चार समाधिभावनाएँ — १. जन्म में सत्य को साक्षात् करने वाली; २. ज्ञान-दर्शन प्रतिलाभ के लिये की जाने वाली; ३. स्मृतिसम्प्रजन्य की पूर्णता हेतु की जाने वाली; एवं ४. आश्रवों के क्षय हेतु की जाने वाली समाधि भावना॥

२. प्रश्नव्याकरणसूत्र : चतुर्विध प्रश्नव्याख्यान : १. जिसका निश्चित रूप से उत्तर दिया जाता है; २. जिसका विभाजन कर उत्तर दिया जाता है; ३. जिसका प्रश्नोत्तर के माध्यम से उत्तर दिया जाता है। तथा ४. जो स्थापनीय (रोकने योग्य) होता है॥

३. प्रथम क्रोधगुरुसूत्र : चतुर्विध पुद्गल : १. क्रोध में अधिक परन्तु सद्धर्म पालन में अल्प उत्साही; २. म्रक्ष में अधिक, परन्तु सद्धर्म पालन में अल्प उत्साही; ३. स्वकीय लाभ में अधिक परन्तु सद्धर्मपालन में अल्प उत्साही; तथा ४. स्वकीय सत्कार में अधिक, परन्तु सद्धर्म पालन में अल्प उत्साही॥

द्वितीय चतुर्विध पुद्गल : सद्धर्म पालन में अधिक, परन्तु १. क्रोध, २. म्रक्ष, ३. स्वकीय लाभ तथा ४. स्वकीय सत्कार में अल्प उत्साही हो॥

४. द्वितीयक्रोधगुरुसूत्र : चतुर्विध असद्धर्माभ्यासी पुद्गल : पूर्वसूत्रवत्॥ चतुर्विधसद्धर्माभ्यासी पुद्गल : पूर्वसूत्रवत्॥

५. **रोहिताश्वसूत्र :** कोई कितना भी बलवान् या दीर्घायु पुरुष पैदल चलकर इस लोक का अन्त नहीं पा सकता। हाँ, आर्यसत्यचतुष्टय की साधना से इस लोक का अन्त पाया जा सकता है॥

६. **द्वितीयरोहिताश्वसूत्र :** पूर्वसूत्रवत्॥

७. **सुविदूरसूत्र :** इन चारों की अतिशय दूरी होती है — १. पृथ्वी और आकाश; २. समुद्र का यह किनारा और वह किनारा; ३. सूर्य का उदय या अस्त स्थान; ४. सद्धर्म एवं असद्धर्म॥

८. **विशाखसूत्र :** मूर्खों के साथ बैठे हुए विद्वान् को कोई तब तक नहीं पहचान सकता, जब तक कि वह सभा में निर्वाणविषयक अमृत पद का व्याख्यान न करे॥

९. **विपर्याससूत्र :** चतुर्विध विपर्यास (विपरीतताएँ) — १. संज्ञाविपर्यास, २. चित्त-विपर्यास, एवं ३. दृष्टिविपर्यास। जैसे — १. अनित्य में नित्य का, २. दुःख में सुख का, ३. अनात्म में सत्पदार्थ का, तथा ४. अशुभ में शुभ का भान होना॥

चतुर्विध अविपर्यास — १. संज्ञा अविपर्यास, २. चित्त अविपर्यास एवं ३. दृष्टि अविपर्यास। जैसे — १. अनित्य में अनित्य का, २. दुःख में दुःख का, ३. अनात्म में अनात्म का, तथा ४. अशुभ में अशुभ का ही भान होना॥

१०. **उपक्लेशसूत्र :** चन्द्र और सूर्य के चार उपक्लेश (मल)—१. मेघ, २. महिका (कोहरा), ३. धूम एवं ४. राहु॥

श्रमण — ब्राह्मणों के चार उपक्लेश — १. मद्यपान, २. स्त्रियों के साथ व्यभिचार, ३. सुवर्ण एवं रजत का परिग्रह एवं ४. मिथ्या आजीविका॥ ●

६. **पुण्याभिष्यन्दवर्ग —**

१. **प्रथम पुण्याभिष्यन्दसूत्र :** चार पुण्य के परिणाम — १. चीवर, २. पिण्डपात, ३. शयनासन एवं ४. रोग के लिये भेषजपरिष्कार।

२. **द्वितीय पुण्याभिष्यन्दसूत्र :** चार पुण्य के परिणाम — १. बुद्ध के प्रति श्रद्धा, २. धर्म के प्रति श्रद्धा, ३. सङ्घ के प्रति श्रद्धा, ४. शील के प्रति श्रद्धा॥

३. **प्रथम संवाससूत्र :** चतुर्विध संवास (पति-पत्नी का साथ रहना) — १. शव का शव के साथ संवास, २. शव का देवी के साथ, ३. देव का शव के साथ तथा ४. देव का देवी के साथ संवास॥

४. **द्वितीय संवास :** पूर्वसूत्रवत्॥

५. **प्रथम समजीविसूत्र :** चतुर्विध समजीविता — पति-पत्नी १. परस्पर श्रद्धालु रहें, २. उदार रहें, ३. संयत रहें तथा ४. धर्मानुसार आचरण करें॥

६. **द्वितीय समजीविसूत्र :** पूर्वसूत्रवत्॥

७. **सुप्रवासासूत्र :** भोजनदाता के चार अतिरिक्त दान — १. आयु, २. वर्ण, ३. सुख एवं ४. बल॥

८. **सुदन्तसूत्र :** भोजनदाता को चार लाभ — १. आयु, २. वर्ण, ३. सुख एवं ४. बल॥

९. **भोजनसूत्र :** पूर्वसूत्रवत्॥

१०. **गृहिसमीचीसूत्र :** इन चार धर्मों से सङ्घ की सेवा अत्युत्तम — १. चीवरदान, २. पिण्डपातदान, ३. शयनासन एवं ४. रोग की शान्ति के लिये औषध॥ ●

७. प्राप्तकर्मवर्ग —

१. प्राप्तकर्मसूत्र : प्राप्त करने योग्य चार धर्म — १. कामभोग, २. यश, ३. आयु एवं ८. स्वर्ग-सुख प्राप्ति ॥

अन्य चार दुर्लभ धर्म — १. श्रद्धासम्पदा, २. शीलसम्पदा, ३. त्यागसम्पदा एवं ४. प्रज्ञासम्पदा ॥

२. आनृण्यसूत्र : चार सुख — १. अस्तिसुख, २. भोगसुख, ३. आनृण्यसुख एवं अनवद्यसुख ॥

३. ब्रह्मसूत्र : एक ही अर्थ के बोधक चार शब्द : १. ब्रह्मा, २. पूर्वाचार्य, ३. आह्वनीय, एवं ४. माता-पिता ॥

४. निरयसूत्र : ये चार हीनकर्मा पुरुष नरकगामी : १. प्राणातिपाती, २. चौर, ३. व्यभिचारी एवं ४. मद्यप ॥

५. रूपसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. रूप को प्रमाण मानने वाले, २. घोष (शब्द) को प्रमाण मानने वाले, ३. रूक्षाचार को प्रमाण मानने वाले एवं ४. सद्धर्म को प्रमाण मानने वाले ॥

६. सरागसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. रागयुक्त, २. द्वेषयुक्त, ३. मोहयुक्त, एवं ४. मानयुक्त ॥

७. अहिराजसूत्र : चार अहि (सर्प) राजकुलों से मैत्रीयुक्त व्यवहार — १. विरूपाक्ष अहिराजकुल, २. छव्यापुत्र., ३. एरापुत्र. एवं ४. कृष्णा गौतमक अहिराजकुल ॥

८. देवदत्तसूत्र : चार का कर्म स्वकीय हत्या का हेतु — १. केले का फल, २. बाँस का फल, ३. नड़ (सर कण्डे) का फल एवं खचरी का प्रसव ॥

९. प्रधानसूत्र : चार सम्यक्प्रधान — १. संवरप्रधान, २. प्रहाणप्रधान, ३. भावनाप्रधान एवं ४. अनुरक्षणाप्रधान ॥

१०. अधार्मिक सूत्र : लोक में इन चार का अनुगमन किया जाता है — १. प्रजा द्वारा राजा का; २. नदी में तैरने वाली गायों द्वारा वृषभ का; ३. जनता द्वारा अधर्माचारी शास्ता; एवं चन्द्र, सूर्य द्वारा, धर्माचारी या अधर्माचारी शास्ता का ॥ ●

८. अपर्णक वर्ग —

१. प्रधानसूत्र : इन चार धर्मों से युक्त पुरुष निर्दोष साधनामार्ग पर आरूढ होता है — १. शीलवान्, २. बहुश्रुत, ३. एतदर्थ आरब्धवीर्य, ४. प्रज्ञावान् ॥

२. सम्यग्दृष्टिसूत्र : चार धर्मों से युक्त पुरुष साधना मार्ग पर आरूढ होता है — १. निष्काम वितर्क वाला, २. अव्यापादवितर्क वाला, ३. अविहिंसावितर्कवाला, ४. सम्यग्दृष्टिक ॥

३. सत्पुरुष सूत्र : चार असत्पुरुष — १. पूछे विना ही दूसरों के दुर्गुण बताने वाला, २. पूछने पर भी अपना दुर्गुण न बता कर अन्य बातें आरम्भ कर देने वाला, ३. दुर्गुण के पूछने पर चुप रहने वाला, तथा ४. विना पूछे अपनी प्रशंसा करने वाला ॥

चार सत्पुरुष — १. जो पूछने पर भी दूसरे के दुर्गुणों को छिपाता है, २. दूसरे के सद्गुण विना पूछे बताने लगता है, ३. जो अपनी गुर्णाविषयक दुर्बलता, पूछे विना भी, बताता है, ४. जो आत्मप्रशंसा कभी किसी के सम्मुख नहीं करता ॥

४. प्रथम अग्रसूत्र : ये चार अग्र (प्रमुख) होते हैं — १. रूपाग्र, २. वेदनाग्र, ३. संज्ञाग्र एवं ४. भवाग्र ॥

५. द्वितीय अग्रसूत्र : पूर्वसूत्रवत् ॥

६. कुशिनारसूत्र : तथागत के ज्ञानोपदेश का चतुर्विध माहात्म्य — १. बुद्ध, २. धर्म, ३. सङ्घ या ४. मार्ग के विषय में किसी भी श्रावक को कोई शङ्का या सन्देह नहीं था ॥

७. अचिन्त्यसूत्र : चार अचिन्त्य विषय — १. बुद्धों के ज्ञान का विषय; २. ध्यानियों के ध्यान का विषय; ३. कर्मफल और ४. लोकचिन्ता ॥

८. दक्षिणासूत्र : चार दक्षिणाविशुद्धियाँ — १. कोई दक्षिणा दाता की ओर से शुद्ध परन्तु याचक की ओर से अशुद्ध; २. कोई दक्षिणा याचक की ओर से शुद्ध परन्तु दाता की ओर से अशुद्ध, ३. कोई दक्षिणा दाता तथा याचक — दोनों ओर से शुद्ध नहीं; और ४. कोई दक्षिणा याचक एवं दाता — दोनों ओर से शुद्ध होती है ॥

९. वाणिज्यसूत्र : वाणिज्य (दान फल) के चार फल — १. सङ्कल्प के अनुसार न किये दान का फल खण्डित हो जाता है; २. याचक के अभिप्रायानुसार न किये दान का फल भी खण्डित हो जाता है, ३. सङ्कल्प के अनुसार किये दान का फल खण्डित नहीं होता; तथा ४. याचक के अभिप्रायानुसार किये गये दान का फल भी खण्डित नहीं होता ॥

१०. कम्बोजसूत्र : स्त्रियों में कर्मसामर्थ्य की अल्पता के चार हेतु — स्त्रियाँ १. क्रोधी, २. ईर्ष्यालु, ३. वृथाभिमानी, एवं ४. दुष्प्रज्ञ होती हैं ॥

९. मचलसूत्र —

१. प्राणातिपातसूत्र : चार धर्मों से युक्त पुरुष नरकगामी — १. प्राणातिपाती, २. चौर, ३. व्यभिचारी एवं ४. असत्यभाषी ॥

२. मृषावादसूत्र : चार धर्मों से युक्त पुरुष नरकगामी — १. असत्यभाषी, २. चुगलखोर, ३. परुषवाक् एवं ४. प्रलापी (बकवादी) ॥

३. अवर्णार्हसूत्र : चार धर्मों से युक्त पुरुष नरकगामी — १. विना सोचे समझे, किसी निन्दनीय का प्रशंसक, २. विना सोचे समझे, किसी प्रशस्त की निन्दा; ३. विना सोचे समझे, किसी अश्रद्धेय में श्रद्धा, एवं ४. विना सोचे समझे, किसी श्रद्धेय में अश्रद्धा प्रकट करना ॥

४. क्रोधगुरुसूत्र : चार धर्मों से युक्त कर नरकगमन — १. क्रोध को महत्त्व देने वाला, सद्धर्म को नहीं; २. म्रक्ष को ही महत्त्व देने वाला, सद्धर्म को नहीं; ३. स्वकीय लाभ को ही महत्त्व देने वाला, सद्धर्म को नहीं; एवं ४. स्वकीय सत्कार को ही महत्त्व देने वाला, सद्धर्म को नहीं ॥

५. तमस्तमःसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. तमस्तम:परायण, २. तमोज्योति:परायण, ३. तमोज्योति:परायण ॥

६. अवनतावनतसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. अवनतावनत, २. अवनतोन्नत, ३. उन्नतावनत एवं ४. उन्नतोन्नत ॥

७. पुत्रसूत्र : चार श्रमण — १. श्रमणमचल, २. श्रमणपुण्डरीक, ३. श्रमणपद्म एवं ४. श्रमण सुकुमार। इन में 'श्रमणसुकुमार' केवल तथागत बुद्ध को ही कहा जा सकता है ॥

८. संयोजनसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत् ॥

९. सम्यग्दृष्टिसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. स्कन्धसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. असुरवर्ग —

१. असुरसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. असुर असुरपरिवार, २. असुर देवपरिवार, ३. देव असुरपरिवार एवं देव देवपरिवार॥

२. प्रथम समाधिसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. आध्यात्मिक चित्तसमाधि का प्रापक, किन्तु प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना का प्रापक नहीं; २. प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना का प्रापक, परन्तु आध्यात्मिक चित्तसमाधि का प्रापक नहीं; ३. न आध्यात्मिक चित्तसमाधि का और न प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना का प्रापक; ४. आध्यात्मिक चित्तविषयक समाधि तथा प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना — दोनों का प्रापक॥

३. द्वितीय समाधिसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

४. तृतीय समाधिसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

५. शवालातसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. जो न अपने लिये न दूसरों के लिये सत्कर्म करता है, २. जो दूसरे के लिये सत्कर्म कर के भी अपने लिये सत्कर्म नहीं करता; ३. जो अपने लिये सत्कर्म कर के भी दूसरों के लिये सत्कर्म नहीं करता; और ४. जो स्व-पर — दोनों के लिये सत्कर्म करता है। इन में स्व-परहित सत्कर्मकर्ता ही उत्तम कहलाता है॥

६. रागविनयसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

७. क्षिप्रनिशन्तिसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

८. आत्महितसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

९. शिक्षापदसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. पोतलियसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. जो निन्दनीय की सत्य, तथ्य तथा समय पर निन्दा करता है तथा प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है; २. जो निन्दनीय की तो वैसे निन्दा करता है, परन्तु प्रशंसनीय की प्रशंसा नहीं करता; ३. जो न निन्दनीय की निन्दा तथा प्रशंसनीय की प्रशंसा ही करता है; और जो ४. प्रशंसनीय की प्रशंसा और निन्दनीय की निन्दा दोनों ही सत्य तथा समय पर करता है। इनमें प्रथम पुद्गल ही श्रेष्ठ है॥

११. वलाहकवर्ग —

१. प्रथमवलाहकवर्ग : मेघ के समान चतुर्विध पुद्गल — कुछ केवल गर्जते हैं बरसते नहीं; २. कुछ बरसते हैं गर्जते नहीं हैं; ३. कुछ बरसते भी हैं और गर्जते भी हैं, ४. और कुछ न बरसते हैं, न गर्जते हैं। इसी प्रकार भिक्षुओं को भी चतुर्विध समझना चाहिये॥

२. द्वितीय वलाहकसूत्र : मेघ के समान चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

३. कुम्भसूत्र : घट के समान चतुर्विध पुद्गल — १. जल से रिक्त (खाली), परन्तु ढका हुआ; २. जल से पूर्ण परन्तु खुले मुख वाला; ३. खाली और खुले मुखवाला; और ४ जल से भी पूर्ण और ढके मुख वाला। इसी प्रकार भिक्षुओं को भी चतुर्विध समझना चाहिये॥

४. उदकह्रदसूत्र : सरोवर के समान चार पुद्गल — कोई सरोवर १. ऊँचा (ऊपर तक जलपूर्ण) हो, तथा गम्भीर प्रतीत होता हो; २. गम्भीर हो, परन्तु जलपूर्ण भी प्रतीत न होता हो; ३.

जलपूर्ण हो और जलपूर्ण के समान लगता भी हो; ४. गम्भीर हो तथा गम्भीर के समान लगता भी हो। इसी प्रकार भिक्षु को भी चतुर्विध समझना चाहिये॥

५. आम्रसूत्र : आम्रफल के समान चतुर्विध पुद्गल — १. कच्चा, परन्तु पके हुए के समान लगता हो; २. पका हुआ भी कच्चे के समान लगता हो; ३. कोई कच्चा हो तथा कच्चे के समान ही लगता हो, तथा ४. पका हुआ भी हो और पके हुए के समान लगता हो। इसी प्रकार भिक्षु को भी चतुर्विध समझना चाहिये॥

६. द्वितीय आम्रसूत्र : आम्रफल के समान चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

७. मूषिक सूत्र : लोक में चतुर्विध मूषिकाएँ (चुहिया) देखी जाती हैं — १. गहरा बिल खोदने वाली, परन्तु उस में न रहने वाली; २. गहरा बिल न खोदने वाली, परन्तु उसमें रहने वाली; ३. न गहरा बिल खोदने वाली और न उसमें रहने वाली, तथा ४. गहरा बिल खोद कर उसमें रहने वाली भी होती है। इसी प्रकार भिक्षु को भी चतुर्विध समझना चाहिये॥

८. बलीवर्दसूत्र : लोक में चतुर्विध वृषभ (बलीवर्द) देखे जाते हैं — १. स्वकीय गोसमूह पर क्रोध करने वाला, परन्तु दूसरे गोसमूह पर क्रूरता न करने वाला, २. दूसरे गोसमूह पर क्रोध करने वाला, परन्तु अपने गोसमूह पर क्रूरता न करने वाला, ३. अपने तथा दूसरे — दोनों ही गोसमूहों पर क्रूरता न करने वाला, तथा ४. अपने तथा दूसरे — दोनों ही गोसमूहों पर क्रूरता करने वाला। इसी प्रकार भिक्षुओं को भी चतुर्विध समझना चाहिये॥

९. वृक्षसूत्र : लोक में चतुर्विध वृक्ष दिखायी देते हैं — १. किसी वृक्ष के छाल (त्वचा) ही छाल होती है, लकड़ी नहीं; २. किसी के त्वचा कम और लकड़ी (सार) अधिक होती है; ३. किसी में लकड़ी कम और त्वचा अधिक होती है; ४. और किसी में अन्दर बाहर लकड़ी ही लकड़ी होती है। इसी प्रकार लोक में चतुर्विध पुद्गल भी होते हैं॥

१०. आशीविषसूत्र : लोक में चतुर्विध सर्प होते हैं — १. कोई मन्दविष होता है, घोरविष नहीं; २. कोई घोरविष होता है, मन्दविष नहीं; ३. कोई न मन्दविष होता है, न मन्दविष ही, और ४. कोई घोरविष, मन्दविष — दोनों ही होता है। इसी प्रकार चतुर्विध पुद्गल भी समझने चाहियें॥●

१२. केशिवर्ग —

१. केशिसूत्र : अश्वशिक्षा के चार प्रकार — १. मृदुता से शिक्षा, २. कठोरता से शिक्षा; ३. सरलता, कठोरता — दोनों से शिक्षा; तथा ४. इन तीनों प्रकारों से कार्य सिद्धि न होने पर ऐसे धृष्ट अश्व को मार देना (ताड़ना देना)। आर्यविनय में भिक्षुओं की शिक्षा के भी यही चार प्रकार हैं॥

२. जवसूत्र : श्रेष्ठ अश्व के चार गुण — १. आर्जव (सरलता), २. जव (वेग), ३. क्षान्ति (सहनशीलता) एवं ४. सौख्य (नम्रता); इसी प्रकार भिक्षु के भी ये चार गुण होते हैं॥

३. प्रतोदसूत्र : श्रेष्ठ अश्व के चार गुण — १. श्रेष्ठ अश्व शिक्षक के चाबुक की छाया देख कर ही सोचने लगता है कि आज मेरा शिक्षक क्या दण्ड देगा, मैं इसका कैसे प्रतीकार करूँ?; २. कोई दूसरा अश्व चाबुक देख कर तो नहीं, परन्तु चाबुक की हलकी मार खा कर सोचने लगता है...; ३. कोई तीसरा अश्व चाबुक देख कर या चाबुक की हलकी मार खा कर तो नहीं, परन्तु चाबुक की तेज मार खा कर सोचने लगता है...; ४. कोई अश्व चाबुक देख कर तो नहीं... परन्तु चाबुक की ऐसी प्रबल मार खा कर, जो हड्डियों तक पीडादैयक हो, यह सोचने लगता है कि आज मेरा शिक्षक

मुझको क्यों दण्ड दे रहा है, मुझे इस का क्या प्रतीकार करना चाहिये। इसी प्रकार लोक में चतुर्विध पुद्गल देखे जाते हैं। (विस्तार के लिये यहाँ का ग्रन्थ देखें) ॥

४. नागसूत्र : राजा के श्रेष्ठ हाथी के चार गुण — १. वह श्रोता होता है, २. वह हन्ता होता है, ३. वह क्षन्ता (क्षमाशील) होता है; ४. वह गन्ता (गमनशील) होता है। इसी प्रकार चतुर्विध श्रेष्ठ भिक्षु भी होते हैं ॥

५. स्थानसूत्र : चतुर्विध स्थान — १. कोई स्थान मनोनुकूल नहीं होता तथा उपयोग करने में वह हितकारी भी नहीं होता; २. कोई स्थान यद्यपि मनोनुकूल नहीं होता, परन्तु उसका उपयोग हितकारी होता है; ३. कोई स्थान यद्यपि मनोनुकूल होता है, परन्तु उसका उपयोग हितकर नहीं होता; ४. कोई स्थान मनोनुकूल भी होता है और उसका उपयोग भी हितकर होता है ॥

६. अप्रमादसूत्र : चार बातों में प्रमाद (असावधानी) अकरणीय — काया से सदाचार ही करणीय होता है, २. वाणी से सदाचार ही...; ३. मन से सत्सङ्कल्प ही करणीय होता है तथा ४. मिथ्यादृष्टि त्याग कर सम्यग्दृष्टि की भावना ही करनी चाहिये ॥

७. आरक्षसूत्र : इन चार स्थानों में अप्रमाद, स्मृति एवं चित्त की रक्षा आवश्यक है — अत: १. रागयुक्त धर्मों में चित्त आसक्त न हो, २. 'द्वेषणीय धर्मों में....', ३. 'मोहनीय धर्मों में....', ४. 'प्रमादयोग्य धर्मों में चित्त आसक्त न हो' — यह प्रयास करना चाहिये ॥

८. संवेजनीयसूत्र : चार दर्शनीय एवं प्रेरणादायक स्थान — १. जहाँ तथागत ने जन्म लिया, २. जहाँ तथागत ने सम्यक्सम्बोधि प्राप्त की, ३. जहाँ तथागत ने धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया था, और ४. जहाँ तथागत ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था ॥

९. प्रथम भयसूत्र : चार भय — १. जन्मभय, २. जराभय, ३. व्याधिभय, एवं ४. मरणभय ॥

१०. द्वितीय भयसूत्र : चार भय — १. अग्निभय, २. जलभय, ३. राजभय, एवं ४. मरणभय ॥

१३. भयवर्ग —

१. आत्मानुवादसूत्र : चार भय — १. आत्मानुवादभय, २. परानुवादभय, ३. दण्डभय एवं ४. दुर्गतिभय ॥

२. ऊर्मिभयसूत्र : जल में उतरने वाले को चार भय — १. ऊर्मिभय, २. कुम्भीलभय, ३. आवर्तभय एवं ४. शुशुकाभय ॥

३. प्रथम नानाकरणसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. प्रथम ध्यान की साधना करने वाला, २. द्वितीय ध्यान की साधना करने वाला, ३. तृतीय ध्यान की साधना करने वाला एवं चतुर्थ ध्यान की साधना करने वाला ॥

४. द्वितीय नानाकरणसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत् ॥

५. प्रथम मैत्रीसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. मैत्रीसहगत चित्त से एक दिशा को व्याप्त कर साधना करने वाला, २. ... द्वितीय दिशा को..., ३. ... तृतीय दिशा को..., ४. ... चतुर्थ दिशा को व्याप्त कर साधना करने वाला ॥

६. द्वितीय मैत्रीगतसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत् ॥

७. प्रथम तथागत-आश्चर्य सूत्र : तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के चार आश्चर्य धर्म — १. तथागत के माता की कोंख में आने पर अन्धकारावृत लोकों का भी दिव्य असीमित आलोक से आलोकित हो जाना; २. तथागत की कोंख से बाहर आने पर..., ३. तथागत द्वारा अद्वितीय सम्यक्सम्बोधि प्राप्त करने पर...; तथा ४. तथागत द्वारा अद्वितीय धर्मचक्रप्रवर्तन के समय अन्धकारावृत लोक भी असीमित दिव्य आलोक से आलोकित हो जाना॥

८. द्वितीय तथागत-आश्चर्य सूत्र : तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के चार आश्चर्य धर्म १. सांसारिक आसक्ति में डूबी हुई जनता इस समय अपनी आसक्ति के निवारण हेतु तथागत के धर्मोपदेश को सुनती है, २. वृथाभिमान में डूबी हुई जनता तथागत के उपदेश से अपने मान का निरोध कर पाती है; ३. अपने मन के चाञ्चल्य से त्रस्त जनता तथागत के धर्मोपदेश से अपना चित्त निरुद्ध कर पाती है; तथा ४. अविद्या से ग्रस्त जनता तथागत के धर्मोपदेश से अपनी अविद्या का निवारण कर पाती है॥

९. आनन्द-आश्चर्य सूत्र : आनन्द के दर्शन तथा धर्मोपदेश से १. भिक्षुपरिषद्, २. भिक्षुणी परिषद्, ३. उपासकपरिषद् एवं उपासिकापरिषद् प्रसन्न होती है, प्रमुदित होती है॥

१०. चक्रवर्त्ति - आश्चर्यसूत्र : किसी चक्रवर्त्ती राजा के दर्शन एवं उससे संवाद कर १. क्षत्रिय परिषद्, २. ब्राह्मणपरिषद्, ३. गृहपतिपरिषद् एवं ४. श्रमणपरिषद् बहुत प्रसन्न एवं प्रमुदित होती है॥

१४. पुद्गलवर्ग —

१. संयोजनसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. सकृदागामी, २. ऊर्ध्वस्रोत अकनिष्ठगामी, ३. अन्तरापरिनिर्वायी एवं ४. अर्हत्॥

२. प्रतिभानसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. युक्तप्रतिभान, परन्तु मुक्तप्रतिभान नहीं; २. मुक्त-प्रतिभान, परन्तु युक्तप्रतिभान नहीं; ३. जो युक्तप्रतिभान भी हो, और मुक्तप्रतिभान भी हो; तथा ४. जो युक्त प्रतिभान भी न हो और मुक्तप्रतिभान भी न हो॥

३. उद्घटितज्ञसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. उद्घटितज्ञ, २. विपञ्चितज्ञ, ३. ज्ञेय एवं ४. पदपरम॥

४. उत्थानफलसूत्र : चतुर्विध पुद्गल— १. उत्थानफलोपजीवी हो, परन्तु कर्मफलोपजीवी न हों, २. कर्मफलोपजीवी हो, परन्तु उत्थानफलोपजीवी न हो, ३. जो न उत्थानफलोपजीवी हो और न कर्मफलोपजीवी हो; तथा ४. जो उत्थानफलोपजीवी भी हो और कर्मफलोपजीवी भी हो॥

५. सावद्यसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. सावद्य (सदोष), २. वद्यबहुल, ३. अल्पावद्य, एवं ४. अनवद्य॥

६. प्रथम शीलसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. जो शील, समाधि एवं प्रज्ञा — किसी में पूर्ण न हो, २. जो शील में पूर्ण हो, परन्तु समाधि एवं प्रज्ञा में पूर्ण न हो; ३. जो शील, समाधि में पूर्ण हो परन्तु प्रज्ञा में पूर्ण न हो; ४. जो शील, समाधि तथा प्रज्ञा — तीनों में पूर्ण हो॥

७. द्वितीय शीलसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. जो शील, समाधि एवं प्रज्ञा में गौरव रखता है, न आधिपत्य; २. जो शील में गौरव एवं आधिपत्य रखता हो, परन्तु समाधि एवं प्रज्ञा में नहीं;

३. जो शील एवं समाधि में गौरव एवं आधिपत्य रखता हो, परन्तु समाधि में नहीं; ४. जो शील, समाधि एवं प्रज्ञा — तीनों में ही गौरव एवं आधिपत्य रखता हो॥

८. निष्कृष्टसूत्र : चतुर्विध पुद्गल : १. निष्कृष्टकाय एवं अनिष्कृष्टचित्त, २. अनिष्कृष्ट काय एवं निष्कृष्टचित्त, ३. अनिष्कृष्टकाय एवं अनिष्कृष्टचित्त; ४. निष्कृष्टकाय एवं निष्कृष्टचित्त॥

९. धर्मकथिकसूत्र : चार धर्मकथिक — १. कोई धर्मकथिक अल्प भी बोलता हो, शास्त्रविरुद्ध भी; २. कोई धर्मकथिक अल्प बोलता हुआ भी शास्त्रानुकूल बोलता हो; ३. जो बहुत बोलता हो, परन्तु वह शास्त्रविरुद्ध हो; तथा ४. जो बहुत बोलता हो और शास्त्रानुकूल भी हो॥

१०. वादिसूत्र : चतुर्विध वादी—१. वह वादी, जिसका मत अर्थ से रिक्त किन्तु व्यञ्जन से पूर्ण; २. वह वादी, जिसका मत व्यञ्जन से रिक्त किन्तु अर्थ से पूर्ण; ३. वह वादी, जिसका मत अर्थ एवं व्यञ्जन दोनों से रिक्त; तथा ४. वह वादी, जिस का मत अर्थ एवं व्यञ्जन — दोनों से पूर्ण हो॥●

१५. आभावर्ग —

१. आभासूत्र : चतुर्विध आभा — १. चन्द्र की आभा, २. सूर्य की आभा, ३. अग्नि की आभा, तथा ४. प्रज्ञा की आभा॥

२. प्रभासूत्र : चतुर्विध प्रभा — १. चन्द्रप्रभा, २. सूर्यप्रभा, ३. अग्निप्रभा और ४. प्रज्ञाप्रभा॥

३. आलोकसूत्र : चतुर्विध अवभास — १. चन्द्रावभास, २. सूर्यावभास, ३. अग्न्यवभास एवं ४. प्रज्ञालोक॥

४. अवभाससूत्र : चतुर्विध अवभास — १. चन्द्रावभास, २. सूर्यावभास, ३. अग्न्यवभास एवं ४. प्रज्ञावभास॥

५. प्रद्योतसूत्र : चतुर्विध प्रद्योत (चमक) — १. चन्द्रप्रद्योत, २. सूर्यप्रद्योत, ३. अग्निप्रद्योत एवं ४. प्रज्ञाप्रद्योत॥

६. प्रथमकालसूत्र : चार काल (विशेष अवसर) — १. धर्मश्रवण का काल, २. धर्म-साक्षात्कार का काल, ३. धर्म के उद्ग्रहण का काल एवं ४. धर्म का विपश्यनाकाल॥

७. द्वितीयकालसूत्र : चार काल — १. समय धर्मश्रवण, २. समय से धर्मसाक्षात्कार, ३. समय से धर्म का उद्ग्रहण (सम्मर्शन), एवं ४. समय से धर्म की विपश्यना॥

८. दुश्चरितसूत्र : चार वाणी के दुश्चरित — १. मृषावाद, २. पिशुनवाक्, ३. परुषवाक् एवं ४. सम्प्रलाप (बकवाद)॥

९. सुचरितसूत्र : चार वाणी के सुचरित — १. सत्यवाक्, २. अपिशुनवाक्, ३. अपरुषवाक् एवं मन्त्रवाक् (सुविचारित वाणी)॥

१०. सारसूत्र : चार सार (तत्त्व) — १. शीलसार, २. समाधिसार, ३. प्रज्ञासार एवं ४. विमुक्तिसार॥

●

१६. इन्द्रियवर्ग —

१. इन्द्रियसूत्र : चार इन्द्रिय — १. श्रद्धेन्द्रिय, २. वीर्येन्द्रिय, ३. स्मृतिन्द्रिय, एवं ४. समाधीन्द्रिय॥

२. बलसूत्र : चार बल — १. श्रद्धाबल, २. वीर्यबल, ३. स्मृतिबल, ४. समाधिबल॥

३. प्रज्ञाबलसूत्र : अन्य चार बल — १. प्रज्ञाबल, २. वीर्यबल, ३. अनवद्यबल, एवं ४. संग्रहबल ॥

४. स्मृतिबलसूत्र : अन्य चार बल — १. स्मृतिबल, २. समाधिबल, ३. अनवद्यबल एवं ४. संग्रहबल ॥

५. प्रतिसङ्ख्यानबलसूत्र : अन्य चार बल — १. प्रतिसङ्ख्यान (विचार) बल, २. भावना-बल, ३. अनवद्यबल एवं ४. संग्रहबल ॥

६. कल्पसूत्र : कल्प (सृष्टिक्षय) के चार असङ्ख्येय — १. कल्पक्षय के समय वर्ष मास दिन के रूप में कालगणना असम्भव; २. कल्प के संवर्त की कालगणना असम्भव; ३. कल्प के विर्वत (सृष्टि का आरम्भ) की कालगणना असम्भव; एवं ४. कल्प के विवर्त की स्थिति की कालगणना असम्भव ॥

७. रोगसूत्र : प्रव्रजित के चार रोग — १. कोई भिक्षु चीवर आदि के प्रति अतिशय लोभी एवं असन्तुष्ट होता है; २. वह चीवर आदि या स्वकीय अन्य लाभसत्कार आदि के लिये मन में निश्चय करता है; ३. तदर्थ प्रयास आरम्भ करता है और ४. इस प्रयास के अन्तर्गत वह चुन चुन कर ऐसे घरों में जाता है जहाँ अधिक से अधिक उक्त वस्तुओं की प्राप्ति हो सके ॥

८. परिहानिसूत्र : कुशल धर्मों से च्युति के चार धर्म — १. रागविपुलता; २. द्वेषविपुलता, ३. मोहविपुलता, ४. गम्भीर एवं अनुचित कर्मों के लिये प्रज्ञा का अनुपयोग ॥

९. भिक्षुणीसूत्र : रोगनिवृत्ति के चार उपाय — १. आहार का अल्प उपयोग, २. तृष्णा का त्याग ३. वृथाभिमान का त्याग एवं ४. मैथुन का त्याग ॥

१०. सुगतविनयसूत्र : सद्धर्मनाश में हेतुभूत चार धर्म — १. तथागतोपदिष्ट धर्म के अर्थ एवं व्यञ्जन को मिथ्यारूप से ग्रहण करना; २. दौर्वचस्यकारक धर्मों से सम्पन्न हो कर धर्मानुशासन से बाहर चले जाना; ३. बहुश्रुत धर्मधरों तथा विनयधरों का सावधानतया धर्मवाचन न करना; ४. स्थविर भिक्षुओं का परिग्रही, कर्तव्य में शिथिल आदि धर्मों से युक्त होना ॥

इसके विपरीत चार धर्म सद्धर्म के स्थिति स्थापक होते हैं ॥

१७. प्रतिपदावर्ग

१. संक्षिप्तसूत्र : चार प्रतिपदाएँ (मार्ग या उपाय) — १. दुःखा प्रतिपदा, विलम्ब से ज्ञान कराने वाली; २. दुःखा प्रतिपदा, शीघ्र ज्ञान कराने वाली, ३. सुखा प्रतिपदा, विलम्ब से ज्ञान कराने वाली एवं ४. सुखा प्रतिपदा, शीघ्र ज्ञान कराने वाली ॥

२. विस्तारसूत्र : उपर्युक्त चारों प्रतिपदाओं का विस्तृत विवरण ॥

३. अशुभसूत्र : उपर्युक्त चारों प्रतिपदाओं का विस्तृत विवेचन ॥

४. प्रथम क्षमसूत्र : अन्य चार प्रतिपदाएँ — १. अक्षमा प्रतिपदा, २. क्षमा प्रतिपदा, ३. दमा प्रतिपदा, एवं ४. शमा प्रतिपदा ॥

५. द्वितीय क्षमसूत्र : उपर्युक्त चारों प्रतिपदाओं का विस्तृत विवेचन ॥

६. उभयसूत्र : चार प्रतिपदाएँ — १. दुःखा प्रतिपदा, दन्धाभिज्ञा, २. दुःखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा, ३. सुखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा एवं ४. सुखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा ॥

७. महामौद्गल्यायनसूत्र : उपर्युक्त चारों प्रतिपदाओं का महामौद्गल्यायन द्वारा विश्लेषण ॥

८. सारिपुत्रसूत्र : उपर्युक्त चारों प्रतिपदाओं का आयुष्मान् सारिपुत्र द्वारा विश्लेषण ॥

९. ससंस्कारसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. इसी जन्म में संस्कारसहित परिनिर्वाण पा जाने वाला; २. देहपात के बाद संस्कारसहित परिनिर्वाण पाने वाला; ३. इसी जन्म में संस्काररहित परिनिर्वृत होने वाला, तथा ४. देहपात के बाद संस्काररहित परिनिर्वाण पाने वाला ॥

१०. युगनद्धसूत्र : चतुर्विध साधक : १. कोई साधक विपश्यना से पूर्व शमथ की साधना करता है; २. कोई आरम्भ में विपश्यना की भावना करता हुआ तब शमथ की साधना करता है; ३. कोई शमथ एवं विपश्यना की एक साथ (गाडी को खींचने वाले दो बैलों के समान) साधना करता है और ४. कोई साधक सांसारिक विषयों में आसक्त अपने चञ्चल चित्त को अध्यात्म में स्थिर रखने का प्रयास करता है ॥

१८. सञ्चेतनीयवर्ग —

१. चेतनासूत्र : आध्यात्मिक सुख-दुःखोत्पत्ति के चार कारण — १. कोई स्वयं अपने काय-संस्कार की रचना करता है, २. या किसी अन्य के द्वारा उसके काय, वाक् एवं मनःसंस्कार की रचना होती है; ३. जानते-बूझते किसी कायसंस्कार की रचना होती है, ४. या न जानते बूझते किसी कायसंस्कार की रचना होती है, जिससे ये आध्यात्मिक सुख दुःख उत्पन्न होते हैं ॥

चतुर्विध आत्मभावप्रतिलाभ — १. आत्मभावप्रतिलाभ, जिसमें आत्मसञ्चेतना होती है, परसञ्चेतना नहीं होती; २. जिसमें परसञ्चेतना होती है, आत्मसञ्चेतना नहीं; ३. एक वह जिसमें ये दोनों सञ्चेतनाएँ होती है, ४. एक वह जिसमें ये दोनों ही सञ्चेतनाएँ नहीं होती ॥

२. विभक्तिसूत्र : धर्मशास्त्र का चतुर्विध ज्ञान — १. अर्थज्ञान, २. धर्मज्ञान, ३. निर्वचनज्ञान एवं ४. प्रतिभानज्ञान ॥

३. महाकौष्ठिकसूत्र : १. 'छह स्पर्शायतनों का अशेष वैराग्य होने से भी कुछ और शेष रह जाता है'; २. '...कुछ और शेष नहीं रहता'; ३. '...कुछ शेष रहता है कुछ नहीं भी रह जाता'; ४. '...न कुछ शेष रहता है, न कुछ शेष नहीं रह जाता'—ये सब मत अप्रपञ्च को ही प्रपञ्चित करते हैं। वस्तुतः इन छह स्पर्शायतनों के अशेष विराग, निरोध से जो प्रपञ्च का निरोध होता है वही प्रपञ्च का उपशमन है ॥

४. आनन्दसूत्र : पूर्वसूत्रवत् ॥

५. उपवाणसूत्र : १. विद्या से, २. आचरण से, ३. विद्या और आचरण दोनों से दुःखों का अन्त या ४. दुःखों का अन्त सउपादान ही होता है। अतः यथार्थ तत्त्वज्ञाता एवं साक्षात्कर्ता ही दुःखों का अन्त कर पाता है ॥

६. आयाचनसूत्र : १. किसी श्रद्धालु भिक्षु की उचित याच्त्रा यही हो सकती है कि वह अपने को सारिपुत्र मौद्गल्यायन के समान बनाना चाहे; २. किसी भिक्षुणी की...वह स्वयं को क्षेमा एवं उत्पलवर्णा भिक्षुणी के समान बनाना चाहे;३. किसी उपासक की...वह स्वयं को चित्त गृहपति एवं हस्तक आडवक के समान उपासक बनाना चाहे; ४. किसी उपासिका की...वह अपने को कुब्जोत्तरा या वेणुकण्डिका उपासिका के समान बनाना चाहे ॥

७. राहुलसूत्र : १. आध्यात्मिक एवं बाह्य पृथ्वीधातु, २. आध्यात्मिक बाह्य अब्धातु,

३. आध्यात्मिक एवं बाह्य तेजोधातु ४ आध्यात्मिक एवं बाह्य वायुधातु—इन सबको 'यह मेरी नहीं है, मैं यह नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा यथार्थतः जानना चाहिये ॥

८. जम्बालिसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. जो साधक उपस्थित चेतोविमुक्ति की साधना करता हुआ सत्कायनिरोध में मन लगाता है परन्तु वहाँ स्थिर नहीं रहता, उसको सत्कायनिरोध नहीं होता; २. ...वहाँ स्थिर रहता है या उसकी प्राप्ति का सङ्कल्प करता है, वह सत्कायनिरोध प्राप्त कर सकता है; ३. जो साधक चेतोविमुक्ति की साधना करता हुआ अविद्याप्रभेद में मन लगाता है, किन्तु वहाँ स्थिर नहीं रहता है तो वह उस अविद्याप्रभेद को प्राप्त नहीं कर सकता; ४. जो साधक चेतोविमुक्ति की साधना करता हुआ अविद्याप्रभेद में मन लगाता है, वहाँ स्थिर रहता है तो वह अविद्याप्रभेद को प्राप्त कर सकता है ॥

९. निर्वाणसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — जो साधक १. 'ये हानभागीय संज्ञाएँ हैं', २. 'ये स्थितिभागीय संज्ञाएं हैं', ३. 'ये विशेषभागीय संज्ञाएँ है', ४. 'ये निर्वेधभागीय संज्ञाएँ हैं'—ऐसा नहीं जानते, वे परिनिवृत्त नहीं हो पाते। इन संज्ञाओं के ज्ञाता ही परिनिवृत्त हो पाते हैं ॥

१०. महापदेशसूत्र : चार महापदेश (युक्तियाँ) — १. 'यह शास्ता का वचन है, यह धर्म है, यह विनय है'—किसी का ऐसा कथन तभी मानना चाहिये जब उस की सम्बद्ध सूत्र से, सम्बद्ध से तुलना कर ली जाय। तुलना करने पर अनुकूल मिलने पर ही शास्ता का वचन मानना चाहिये। 'यह सङ्घ का वचन है' ...पूर्ववत्... अनुकूल मिलने पर ही सङ्घ का वचन मानना चाहिये। ३. 'यह स्थविरों का वचन है' ...अनुकूल मिलने पर ही उसको स्थविर का वचन मानना चाहिये। ४. 'यह मातृकाधर भिक्षु का वचन है'...पूर्ववत्... अनुकूल होने पर ही उसको मातृकाधर भिक्षु का वचन मानना चाहिये ॥

●

१९. ब्राह्मणवर्ग —

१. योधाजीवसूत्र : चतुर्विध सैनिक — १. स्थानकुशल, २. दूरदृष्टि, ३. लक्ष्यवेधी एवं ४. अधिकतम शत्रुओं का नाशक ॥

२. प्रातिभोगसूत्र : चार धर्मों का उत्तरदायित्व लेने वाला (जमानतदार) कोई नहीं होता — १. जराधर्म, २. व्याधिधर्म, ३. मरणधर्म एवं ४. स्वकृतपापकर्म। इन चारों को स्वयं भोगना पड़ता है ॥

३. श्रुतसूत्र : सभी १. दृष्ट, २. श्रुत, ३. स्मृत एवं ४. विज्ञात कथन सत्य नहीं होते। इन में से कुछ अकुशल धर्मों को बढाने वाले तथा कुछ कुशल धर्मों को बढाने वाले भी हो सकते हैं। अतः ऐसे ही कथन का प्रयोग करना चाहिये जिससे अकुशल धर्म क्षीण होते हों और कुशल धर्म बढते हों ॥

४. अभयसूत्र : चतुर्विध मरणभय से दूर पुद्गल — १. कामभोगों में वीतराग; २. काया में वीतराग; ३. निष्पाप, ४. सद्धर्म में श्रद्धालु ॥

५. श्रमणसत्यसूत्र : चार ब्राह्मणसत्य — १. सभी प्राणी अवध्य हैं, २. सभी कामभोग अनित्य है, ३. सभी भव (जन्मपरम्परा) अनित्य है तथा ४. अहन्त्व, ममत्व अनित्य है ॥

६. उन्मार्गसूत्र : यह लोक १. चित्त के द्वारा चलाया जाता है, २. चित्त के द्वारा वृद्धि प्राप्त करता है, ३. चित्त के द्वारा उत्पन्न होता है तथा ४. यह चित्त के अधीन होता है ॥

७. वर्षकारसूत्र : यह असम्भव है कि कोई असत्पुरुष किसी १. सत्पुरुष या २. असत्पुरुष की वास्तविकता जान सके। कोई सत्पुरुष ही किसी ३. सत्पुरुष या ४. असत्पुरुष की वास्तविकता जान सकता है॥

८. उपकसूत्र : भगवान् की चतुर्विध देशना — १. 'यह अकुशल है', २. 'इस को त्याग देना चाहिये'; ३. 'यह कुशल है', ४. 'इसकी भावना (अभ्यास) करनी चाहिये॥

९. साक्षात्करणीयसूत्र : चार साक्षात्करणीय धर्म — १. काया से साक्षात्करणीय धर्म, २. स्मृति से साक्षात्करणीय धर्म, ३. चक्षु से साक्षात्करणीय धर्म, ४. प्रज्ञा से साक्षात्करणीय धर्म॥

१०. उपोसथसूत्र : साधना का चतुर्विध लक्ष्य — १. देवत्व (के गुणों) की प्राप्ति हेतु साधना; २. ब्रह्मत्व (के गुणों) की प्राप्ति हेतु; ३. मन:स्थिरता की प्राप्ति हेतु एवं ४. आर्यत्व (श्रेष्ठता) की प्राप्ति हेतु साधना॥

२०. महावर्ग —

१. स्रोतोनुगतसूत्र : स्रोतोनुगत धर्मों के चार माहात्म्य — १. देवनिकाय में उत्पन्न होने वाले साधक को स्रोतोनुगत धर्मों का पुन: स्मरण हो जाना; २. देवनिकाय में उत्पन्न का धर्मप्रवचन के समय वैसे धर्मों का स्मरण हो जाना; ३-४. देवपुत्रों की सभा में प्रवचन के समय उनका एक दूसरों को परस्पर स्मरण कराना॥

२. स्थानसूत्र : चार प्रकार से चार स्थानों का ज्ञान — १. साथ रहने से किसी के आचरण का ज्ञान, २. परस्पर लेन देन से मन की वास्तविक स्थिति का ज्ञान; ३. सङ्कट उपस्थित होने पर किसी के धैर्य की परीक्षा एवं ४. साक्षात्कार (प्रत्यक्षदर्शन) से किसी की बुद्धि की परीक्षा की जा सकती है॥

३. भद्दियसूत्र : चार धर्म प्राणिमात्र के लिये अहितकर एवं कष्टप्रद — १. लोभ, २. द्वेष, ३. मोह एवं ४. क्रोध॥

४. सामुगेयसूत्र : मन:शुद्धि एवं निर्वाणप्राप्ति हेतु चार परिशुद्धि एवं प्रहाणीय अङ्ग — १. शीलपरिशुद्धि प्रधानीयअङ्ग, २. चित्तपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग, ३. दृष्टिपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग; एवं ४. विमुक्तिपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग॥

५. वप्रसूत्र : छह सतत साधनोपाय — कोई सम्यग्विमुक्तचित्त भिक्षु — १. चक्षु से रूप को देख कर, २. श्रोत्र से शब्द सुनकर, ३. घ्राण से गन्ध सूँघ कर, ४. जिह्वा से किसी रस को चख कर, ५. काया से किसी स्प्रष्टव्य विषय का स्पर्श कर तथा ६. मन से किसी धर्म को जान कर भी न प्रसन्न होता है, न अप्रसन्न। वह अपनी इन काया तक सीमित वेदनाओं को अनुभव करता हुआ 'मैं वेदनाओं का अनुभव कर रहा हूँ — ऐसा जानता रहता है' .... तथा वह यह भी जानता रहता है कि जीवन समाप्ति के साथ ही ये सभी वेदनाएँ स्वयं शान्त हो जायँगी॥

६. साढसूत्र : भवतरण के चार उपाय — १. शीलविशुद्धि, २. दूरदृष्टि, ३. लक्ष्यबंधन, एवं ४. सम्यग्दृष्टि॥

७. मल्लिकादेवीसूत्र : किसी भी स्त्री के वर्ण एवं रूप होने के चार कारण : १. निरन्तर क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष करने वाली, श्रमण ब्राह्मणों को दान न करने वाली स्त्री काया से च्युत हो कर पुन: स्त्रीयोनि में जन्म ले कर यहाँ दुर्वर्ण, कुरूप, देखने में भयङ्कर, दरिद्र एवं प्रभावहीन होती है।

२. उपर्युक्त दुर्गुणों वाली स्त्री यदि श्रमण ब्राह्मणों को दान करती है तो उस दान के प्रभाव से इस जन्म में दुर्वर्ण एवं कुरूप होती हुई भी धनवान् एवं प्रभावशाली होती है। ३. जो स्त्री क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष न करती हुई भी श्रमण ब्राह्मणों को दान नहीं करती वह इस जन्म में सुरूप एवं नयनाभिराम होती हुई भी धनधान्य एवं ऐश्वर्य से हीन ही होती है। ४. क्रोध आदि न करने वाली तथा श्रमण ब्राह्मणों को प्रसन्नता से दान करने वाली स्त्री इस जन्म में सुवर्ण, नयनाभिराम होने के साथ साथ धन-धान्यसम्पन्न एवं ऐश्वर्यशाली भी होती है॥

८. आत्मन्तपसूत्र : चतुर्विध पुद्गल — १. आत्मतप, २. परन्तप, ३. आत्मतपपरन्तप, एवं ४. न आत्मतप न परन्तप॥

९. तृष्णासूत्र : आभ्यन्तर एवं बाह्य भेद से तृष्णा के अट्ठारह अट्ठारह क्रियाकलाप होते हैं। ये दोनों मिलकर छत्तीस बन जाते हैं। इन छत्तीस क्रियाकलापों का अतीत-अनागत-वर्तमान भेद से विस्तार किया जाय तो तृष्णा के १०८ भेद बन जाते हैं। (इन भेदों का विवरण ग्रन्थ में यथास्थान आगे देखा जा सकता है।) ॥

१०. प्रेमसूत्र : लोक में प्रेम (आसक्ति) के चार प्रकार : १. प्रेम से प्रेम, २. प्रेम से द्वेष; ३. द्वेष से प्रेम तथा ४. द्वेष से द्वेष॥

२१. सत्पुरुषवर्ग —

१. शिक्षापदसूत्र : चतुर्विध पुरुष — १. असत्पुरुष — हिंसा, चौरी, व्यभिचार, असत्य-भाषण तथा मद्य पीने वाला। २. असत्पुरुष से बढ़कर असत्पुरुष — जो स्वयं उक्त कर्म करता है एवं दूसरों को भी उक्त सब को करने हेतु प्रेरित करता है। ३. सत्पुरुष — जो उक्त पाँचों कर्म नहीं करता। ४. सत्पुरुष से भी बढकर सत्पुरुष — जो स्वयं उक्त कर्म करता है तथा दूसरों को भी उक्त कर्म करने के लिये प्रेरित करता है॥

२. अश्रद्धसूत्र : चतुर्विध पुरुष — १. असत्पुरुष — रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धालु, निर्लज्ज, पाप करने में निर्भीक, अल्पश्रुत एवं आलसी। २. असत्पुरुषतर — स्वयं अश्रद्धा आदि दुर्गुणों से युक्त तथा दूसरों को भी इन दुर्गुणों में लगे रहने के लिये प्रेरक। ३. सत्पुरुष — रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु, पापकर्मों में लज्जा एवं भय मानने वाला, बहुश्रुत, उद्यमी, स्मृतिमान् एवं प्रज्ञावान्। ४. सत्पुरुषतर — स्वयं इन गुणों से युक्त तथा दूसरों को भी इन गुणों के धारण हेतु प्रेरक॥

३. सप्तकर्मसूत्र : चतुर्विध पुरुष — १. असत्पुरुष — प्राणातिपातादि सप्तदोषयुक्त। २. असत्पुरुषतर — स्वयं इन सात दोषों से युक्त और दूसरों को भी एतदर्थ प्रेरक। ३. सत्पुरुष प्राणातिपातादि सात दोषों से विरत। ४. सत्पुरुषतर — स्वयं इन सात दोषों से विरत तथा अन्य को भी इन दोषों से विरत रहने हेतु प्रेरक॥

४. दशकर्मसूत्र : चतुर्विध पुरुष — १. असत्पुरुष — प्राणातिपात आदि दश दोषों से युक्त। २. असत्पुरुषतर — स्वयं प्राणातिपातादि दशदोषयुक्त एवं अन्यों को भी एतदर्थ प्रेरक। ३. सत्पुरुष — प्राणातिपातादि दश दोष रहित। ४. सत्पुरुषतर — स्वयं दशदोषमुक्त एवं दूसरों को भी इन दोषों से मुक्त रहने का प्रेरक॥

५. अष्टाङ्गिकसूत्र : न्तुर्विध पुरुष — १. असत्पुरुष - मिथ्यादृष्टि आदि आठ अङ्गों से दूषित। २. असत्पुरुषतर — स्वयं इन आठ अङ्गों से युक्त तथा अन्य को इनके ग्रहणहेतु प्रेरक।

३. मिथ्यादृष्टि आदि अङ्गों से रहित। ४. स्वयं इन आठ अङ्गों से विरत तथा अन्य को भी एतदर्थ प्रेरणा देने वाला॥

६. दशमार्गसूत्र : चतुर्विध पुरुष — १. असत्पुरुष — मिथ्यादृष्टि आदि दश दोषों से युक्त। २. असत्पुरुषतर — स्वयं इन दोषों से युक्त तथा अन्य को एतदर्थ प्रेरक। ३. सत्पुरुषमिथ्यादृष्टि आदि दश दोषों से मुक्त। ४. सत्पुरुषतर — स्वयं उक्त दश दोषों से मुक्त तथा अन्य को भी एतदर्थ प्रेरणा देने वाला॥

७. प्रथम पापधर्मसूत्र : चतुर्विध पुरुष — १. पापी — प्राणातिपाती ... मिथ्यादृष्टि होता है। २. निकृष्टतर पापी — स्वयं प्राणातिपाती तथा दूसरों को भी एतदर्थ प्रेरक। ३. पुण्यात्मा— प्राणातिपात... मिथ्यादृष्टि आदि से रहित। ४. उत्कृष्टतर पुण्यात्मा — स्वयं इन सभी दोषों से रहित तथा अन्य को भी प्रेरणादायक॥

८. द्वितीय पापधर्मसूत्र : चतुर्विध पुरुष — १. पापी — मिथ्यादृष्टि एवं मिथ्याविमुक्ति होता है। २. निकृष्टतर पापी — स्वयं उक्त दोषयुक्त तथा अन्य को भी ऐसी ही प्रेरणा देने वाला। ३. कल्याणधर्मा — मिथ्यादृष्टि...मिथ्याविमुक्ति दोषों से रहित। ४. उत्कृष्ट कल्याणधर्मा — स्वयं इन दोषों से रहित रहता हुआ दूसरों को भी ऐसी ही प्रेरणा देने वाला।

९. तृतीय पापधर्मसूत्र : चतुर्विध पुरुष : १. पापी — प्राणातिपाती ... मिथ्यादृष्टि। २. निकृष्टतर पापी — स्वयं इन दोषों से युक्त एवं अन्य को भी प्रेरक। ३. कल्याणधर्मा — प्राणातिपातविरत...सम्यग्दृष्टि युक्त। ४. उत्कृष्टतर कल्याणधर्मा — स्वयं इन सद्गुणों से युक्त तथा अन्य को भी एतदर्थ प्रेरणाप्रद॥

१०. चतुर्थ पापधर्मसूत्र : चतुर्विध पुरुष — १. पापी — मिथ्यादृष्टि ... मिथ्याविमुक्ति। २. निकृष्टतर पापी — स्वयं इन दोषों से युक्त तथा अन्य के लिये भी प्रेरणादायक। ३. कल्याणधर्मा — सम्यग्दृष्टि...सम्यविमुक्त। ४. उत्कृष्टतर कल्याणधर्मा स्वयं इन गुणों से युक्त तथा अन्य को भी एतदर्थ प्रेरक॥

२२. परिषद्वर्ग —

१. परिषत्सूत्र : चार परिषद्दूसक — ऐसे भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका जो पापी हों, पापकर्मकारी हों। चार परिषदलङ्करण — ऐसे भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका जो शीलसम्पन्न एवं कुशलकर्मा हों॥

२. दृष्टिसूत्र : चार नरकगामी — १. कायिक दुराचार, २. वाचसिक दुराचार, ३. मानसिक दुराचार एवं ४. मिथ्यादृष्टि — इन चार धर्मों से युक्त पापी सीधे नरक में जा गिरता है। चार स्वर्गगामी — २. कायिक सदाचार, वाचसिक सदाचार, मानसिक सदाचार एवं सम्यग्दृष्टि — इन चार धर्मों से युक्त प्राणी, देहपात के बाद, स्वर्ग में ही जाता है॥

३. अकृतज्ञतासूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

४. प्राणातिपातिसूत्र : प्राणातिपाती, चौर, व्यभिचारी, असत्यभाषी नरकगामी ही होता है। तथा इन चारों धर्मों से रहित प्राणी स्वर्गगामी होता है॥

५. प्रथम मार्गसूत्र : मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासङ्कल्प, मिथ्यावाक् एवं मिथ्याकर्म वाला पुरुष नरकगामी होता है॥

परन्तु सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक् एवं सम्यक्कर्म पुरुष देहपात के बाद स्वर्गसुख भोगता है॥

६. **द्वितीय मार्गसूत्र :** मिथ्याआजीव, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति एवं मिथ्यासमाधि पुरुष नरकगामी ही होता है॥

परन्तु सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति एवं सम्यक्समाधि पुरुष स्वर्ग में जाता है॥

७. **प्रथम व्यवहारपथसूत्र :** जो असत्यवादी पुरुष अदृष्ट को दृष्ट, अश्रुत को श्रुत, अस्मृत को स्मृत एवं अविज्ञात को विज्ञात कहता है, उसका नरकपात अवश्यम्भावी है॥

परन्तु जो अदृष्ट को अदृष्ट, अश्रुत को श्रुत, अस्मृत को स्मृत एवं अविज्ञात को अविज्ञात कहता है, वह देहपात के बाद स्वर्गसुख ही भोगेगा॥

८. **द्वितीय व्यवहारपथसूत्र :** पूर्वसूत्रवत्॥

९. **अह्रीकसूत्र :** रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धालु, दुःशील, निर्लज्ज एवं पापों में भय न मानने वाला नरकगामी ही होता है।

परन्तु श्रद्धालु, सुशील, लज्जालु एवं पापभीरु स्वर्गगामी होता है॥

१०. **दुःशीलसूत्र :** रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धालु, दुःशील, धर्मकर्म में आलसी तथा दुष्प्रज्ञ नरकगामी ही होता है॥

परन्तु रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु, सुशील, धर्मकर्म में उत्साही तथा प्रज्ञावान् पुरुष देहपात के बाद स्वर्गसुख ही भोगता है॥ ●

२३. दुश्चरितवर्ग —

१. **दुश्चरितसूत्र :** चतुर्विध वाग्दुश्चरित — असत्यभाषण, चुगलखोरी, कर्कशवाणी एवं सम्प्रलाप।

चतुर्विध वाक्सुचरित — सत्यभाषण, चुगली न करना, मृदुवाणी एवं विचारपूर्वक उचित वचन बोलना॥

२. **दृष्टिसूत्र :** चार धर्मों से हानि — कायदुराचार से, वाग्दुराचार एवं मनोदुराचार से तथा मिथ्यादृष्टि से॥

चार धर्मों से लाभ — कायसुचरित से, वाग्दुश्चरित से, मनःसुचरित एवं सम्यग्दृष्टि से॥

३. **अकृतज्ञतासूत्र :** पूर्वसूत्रवत्॥

४. **प्राणातिपातिसूत्र :** चार धर्मों से निन्दनीय — प्राणातिपात से, चौरी से, व्यभिचार से तथा असत्यभाषण से॥

चार धर्मों से प्रशंसनीय — प्राणातिपातविरति, चौरी से विरति, व्यभिचार से विरति एवं असत्यभाषण से विरति॥

५. **प्रथम मार्गसूत्र :** चार मार्गों से निन्दनीय — मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासङ्कल्प, मिथ्यावाक् एवं मिथ्याकर्म से॥

चार मार्गों से प्रशंसनीय — सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक् एवं सम्यक्कर्म से॥

६. **द्वितीय मार्गसूत्र :** चार मार्गों से निन्दनीय — मिथ्याआजीव, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति एवं मिथ्यासमाधि से॥

चार मार्गों से प्रशंसनीय — सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति, एवं सम्यक्समाधि से॥

७. प्रथम व्यवहारपथसूत्र : पूर्ववत्॥

८. द्वितीय व्यवहारपथसूत्र : पूर्ववत्॥

९. अह्रीकसूत्र : निन्दनीय — रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धालु इत्यादि पूर्ववत्॥

प्रशंसनीय — रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु इत्यादि पूर्ववत्॥

१०. दुष्प्रज्ञसूत्र : निन्दनीय चार धर्म — अश्रद्धा, दुराचार, आलस्य एवं दुष्प्रज्ञता॥ प्रशंसनीय चार धर्म — श्रद्धा, सदाचार, उद्यम एवं प्रज्ञावत्ता॥

११. कविसूत्र : चतुर्विध कवि — चिन्ताकवि, श्रुतकवि, अर्थकवि एवं प्रतिभानकवि॥●

२४. कर्मवर्ग —

१. संक्षिप्तसूत्र : चतुर्विध कर्म — १. पाप एवं पापमय फल वाले, २. पुण्य एवं पुण्यमय फल देने वाले, ३. पापपुण्यमिश्रित एवं पापपुण्यमिश्रित फल देने वाले, और ४. पापपुण्यमिश्रित एवं न पापपुण्यमिश्रित फल देने वाले।

२. विस्तारसूत्र : उपर्युक्त चारों कर्मों का विस्तृत विवरण॥

३. सोणकायनसूत्र : उपर्युक्त विस्तारसूत्रवत्॥

४. प्रथम शिक्षापदसूत्र : इस वर्ग के प्रथम एवं द्वितीय सूत्र के समान॥

५. द्वितीय शिक्षाप्रदसूत्र : चतुर्विध कर्म : प्रथम सूत्रवत्॥

६. आर्यमार्गसूत्र : चतुर्विध कर्म — प्रथम सूत्रवत्॥

७. बोध्यङ्गसूत्र : चतुर्विध कर्म : द्वितीय विस्तार सूत्रवत् व्याख्यान है॥

८. सावद्यसूत्र : चतुर्विध पुद्गल नरकगामी — १. सदोष कायकर्म से, २. सदोष वाक्कर्म से, ३. सदोष मनःकर्म से, ४. सदोष दृष्टि से युक्त।

चतुर्विध पुद्गल स्वर्गगामी — १. निर्दोष कायकर्म से, २. निर्दोष वाक्कर्म से, ३. निर्दोष मनःकर्म से, ४. निर्दोष सम्यग्दृष्टि से युक्त पुरुष स्वर्गगामी होता है॥

९. अव्याबद्धसूत्र : चतुर्विध धर्मयुक्त पुद्गल नरकगामी — किसी को कष्ट देने के लिये दोषमय दृष्टि से अपने शारीरिक, वाचसिक एवं मानसिक कर्म कर्त्ता।

चतुर्विध धर्मयुक्त पुद्गल स्वर्गगामी — किसी को कष्ट न देने के लिये निर्दोष दृष्टि से अपने शारीरिक, वाचसिक एवं मानसिक कर्म करने वाला॥

१०. श्रमणसूत्र : भिक्षुसङ्घ में चतुर्विध श्रमण — १. प्रथम श्रमण, स्रोतआपन्नमार्गारूढ; २. द्वितीय श्रमण, सकृदागामिमार्गारूढ; ३. तृतीय श्रमण, औपपातिक देवों में उत्पन्न होने के इच्छुक; ४. चतुर्थ श्रमण, अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को स्वयं जान कर, साक्षात् कर, प्राप्त कर साधनारत॥

११. सत्पुरुषानृशंस्यसूत्र : निरन्तर साधनारत चार साधकों का माहात्म्य — ये साधक १. आर्यशील में २. आर्यसमाधि में, ३. आर्यप्रज्ञा में तथा ४. आर्यविमुक्ति में आगे बढते रहते हैं॥●

२५. आपत्तिभयवर्ग —

१. सङ्घभेदकसूत्र : चार सङ्घभेदक कर्म — १. किसी पापी, दुराचारी, धर्मसाधक का

अभिनय करने वाले पाषण्डी भिक्षु द्वारा अपनी पापपङ्कनिमग्नता को छिपाने के लिये किया गया सङ्घभेदक कर्म; २. किसी पापी मिथ्यादृष्टि भिक्षु द्वारा अपनी वास्तविकता को छिपाने के लिये किया गया सङ्घभेदक कर्म; ३. किसी पापी मिथ्याजीवी भिक्षु द्वारा ... किया गया सङ्घभेदक कर्म; ४. किसी पापी भिक्षु द्वारा अपने लाभ सत्कार की स्थायिता हेतु किया गया सङ्घभेदक कर्म ॥;

२. आपत्तिभयसूत्र : चार आपत्तिभय — १. पाराजिक आपत्तिभय; २. सङ्घादिशेष कर्म आपत्तिभय; ३. पाचित्तिय आपत्तिभय; ४. प्रतिदेशनीय आपत्तिभय ॥

३. शिक्षानृशंस्यसूत्र : धर्मसाधना के चार आधार — १. शिक्षा की महत्ता; २. प्रज्ञा की महत्ता; ३. विमुक्तिसार की महत्ता एवं ४. स्मृत्याधिपत्य की महत्ता ॥

४. शय्यासूत्र : चतुर्विध शय्या — १. प्रेतशय्या, २. कामभोगिशय्या, ३. सिंहशय्या एवं ४. तथागतशय्या ॥

५. स्तूपार्हसूत्र : चार स्तूप योग्य — १. तथागत, २. प्रत्येकबुद्ध, ३. तथागतशिष्य; एवं ४. राजा चक्रवर्ती ॥

६. प्रज्ञावृद्धिसूत्र : प्रज्ञावृद्धिसहायक चार धर्म — १. सत्पुरुषों की सेवा, २. सद्धर्मश्रवण, ३. सद्धर्मचिन्तन एवं ४. धर्मानुधर्मप्रतिपादन ॥

७. बहुकारसूत्र : मानवमात्रोपयोगी चार धर्म — पूर्वसूत्रवत् ॥

८. प्रथम व्यवहारसूत्र : चार अनार्य व्यवहार — १. न देखे हुए को देखा हुआ कहना; २. न सुने हुए को सुना हुआ कहना; ३. न स्मरण किये हुए को स्मरण किया हुआ कहना; ४. न जाने हुए को जाना हुआ कहना ॥

९. द्वितीय व्यवहारसूत्र : चार आर्य व्यवहार — १. देखे हुए को ही देखा हुआ कहना; २. सुने हुए को ही...; ३. स्मरण किये हुए को ही...; ४. जाने हुए को ही जाना हुआ कहना ॥

१०. तृतीय व्यवहारसूत्र : चार अनार्य व्यवहार — १. देखे हुए को न देखा हुआ कहना, २. सुने हुए को न सुना हुआ कहना; ३. स्मरण को न स्मरण होना कहना तथा ४. जाने हुए को न जाना हुआ कहना ॥

११. चतुर्थ व्यवहारसूत्र : चार आर्य व्यवहार — १. देखे हुए को देखा हुआ कहना, २. सुने हुए को सुना हुआ कहना, ३. स्मरण किये हुए को स्मरण किया हुआ कहना, ४. जाने हुए को जाना हुआ कहना ॥

२६. अभिज्ञावर्ग —

१. अभिज्ञसूत्र : चार धर्म — १. अभिज्ञा से परिज्ञेय, २. अभिज्ञा से त्यागयोग्य, ३. अभिज्ञा से भावनायोग्य, एवं ४. अभिज्ञा से साक्षात्करणीय ॥

(क) अभिज्ञा से परिज्ञेय धर्म — पाँच उपादान स्कन्ध।

(ख) अभिज्ञा से त्यागयोग्य धर्म — अविद्या एवं भवतृष्णा।

(ग) अभिज्ञा से भावनायोग्य धर्म — शमथ एवं विपश्यना।

(घ) अभिज्ञ से साक्षात्करणीय धर्म — विद्या एवं विमुक्ति ॥

२. पर्येषणासूत्र : चार अनार्य पर्येषणा — १. जराधर्म, २. व्याधि धर्म, ३. मरणधर्म एवं ४. संक्लेश धर्म ॥

३. संग्रहवस्तुसूत्र : चार संग्रह वस्तु — १. दान में प्राप्त वस्तु, २. प्रेमयुक्त वाणी, ३. अर्थचर्या एवं ४. सब में समभाव रखना॥

४. मालुक्यपुत्रसूत्र : तृष्णा की उत्पत्ति के चार कारण — १. चीवर, २. पिण्डपात, ३. शयनासन, एवं ४. कहीं जन्म लेने की इच्छा॥

५. कुलसूत्र : कुलवृद्धि की अस्थिरता के चार कारण — १. नष्ट वस्तु की गवेषणा न करना, २. जीर्ण वस्तु का प्रतिसंस्कार (जीर्णोद्धार) न कराना, ३. भोजन एवं पान की मात्रा का न जानते हुए उनका अल्प या अधिक प्रयोग करना, एवं ४. दुराचारी स्त्री या पुरुष की अधीनता॥

६. प्रथम आजानेयसूत्र : श्रेष्ठ अश्व के समान श्रेष्ठ भिक्षु की चार अच्छाइयाँ — १. वर्ण-सम्पन्नता, २. बलसम्पन्नता, ३. जवसम्पन्नता, एवं ४. आरोहपरिणाहसम्पन्नता॥

७. द्वितीय आजानेयसूत्र : पूर्वसूत्रवद्॥

८. बलसम्पन्नसूत्र : चार बल — १. वीर्यबल, २. स्मृतिबल, ३. समाधिबल, एवं ४. प्रज्ञाबल॥

९. अरण्यसूत्र : चार धर्मों से युक्त भिक्षु अरण्य में साधना के अयोग्य — १. कामवितर्क से, २. व्यापादवितर्क से, ३. विहिंसावितर्क से, ४. दुष्प्रज्ञता से॥

इनसे विपरीत चार धर्मों से युक्त भिक्षु अरण्य में साधना के योग्य होता है॥

१०. कर्मसूत्र : चार निन्दनीय धर्मों से अपुण्यसञ्चय — १. निन्दनीय कायकर्म, २. वाक्कर्म एवं ३. मन:कर्म और ४. सदोष दृष्टि से॥

चार प्रशस्त कर्मों से पुण्यसञ्चय — १. प्रशस्य कायकर्म, २. वाक्कर्म, ३. मन:कर्म एवं ४. निर्दोष दृष्टि से॥ ●

२७. कर्मपथवर्ग —

१. प्राणातिपातिसूत्र : चार धर्मों से युक्त पुरुष का नरकगमन — १. स्वयं भी प्राणातिपाती, २. दूसरों को इसकी प्रेरणा देने वाला, ३. किसी के द्वारा कृत प्राणातिपात का समर्थन, एवं ४. प्राणातिपात का समर्थन॥ इससे विपरीत धर्मों के आचरणकर्त्ता का स्वर्गगमन॥

२. अदत्तादायिसूत्र : चार धर्मों से युक्त पुरुष का नरकगमन — 'चौरी' शब्द लगाकर पूर्वसूत्रवत्॥

३. मिथ्याचारिसूत्र : चार धर्मों से युक्त पुरुष का नरकगमन — 'मिथ्याचारी' शब्द लगाकर पूर्वसूत्रवत्॥

४. मृषावादिसूत्र : चार धर्मों से युक्त पुरुष का नरकगमन — 'मृषावादी' शब्द लगाकर पूर्वसूत्रवत्॥

५. पिशुनवाक्सूत्र : चार धर्मों से युक्त पुरुष का नरकगमन — 'पिशुनवाक्' शब्द लगाकर पूर्वसूत्रवत्॥

६. परुषवाक्सूत्र : चतुर्विध धर्मयुक्त पुरुष का नरकगमन — 'परुषवाक्' शब्द लगा कर पूर्वसूत्रवत्॥

७. सम्प्रलापसूत्र : चतुर्विध धर्मयुक्त पुरुष का नरकगमन — 'सम्प्रलाप' शब्द लगाकर प्रथम सूत्रवत्॥

८. अभिध्यालुसूत्र : चतुर्विध धर्मयुक्त पुरुष का नरकगमन — 'अभिध्यालु' शब्द लगाकर प्रथम पूर्वसूत्रवत्॥

९. व्यापन्नचित्तसूत्र : चतुर्विध धर्मयुक्त पुरुष का नरकगमन — 'व्यापन्नचित्त' शब्द लगाकर प्रथम पूर्वसूत्रवत्॥

१०. मिथ्यादृष्टिसूत्र : चतुर्विध धर्मयुक्त पुरुष का नरकगमन — 'मिथ्यादृष्टि' शब्द लगाकर प्रथम पूर्वसूत्रवत्॥ ●

२८. रागपेय्याल —

१. स्मृतिप्रस्थानसूत्र : राग के अभिज्ञान के लिये चार धर्मों की भावना — १. काया में कायानुपश्यना, २. वेदना में वेदनानुपश्यना, ३. चित्त में चित्तानुपश्यना, एवं ४. धर्मों में धर्मानुपश्यना की भावना॥

२. सम्यक्प्रधानसूत्र : राग के अभिज्ञान हेतु चार धर्मों का अभ्यास — १. अनुत्पन्न पापमय धर्मों के अनुत्पाद की इच्छा, २. उत्पन्न पापमय धर्मों के प्रहाण की इच्छा, ३. अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद की इच्छा, ४. एवं उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थायिता की इच्छा॥

३. ऋद्धिपादसूत्र : राग के अभिज्ञान हेतु चार धर्मों की भावना — १. छन्दसमाधिप्रधान संस्कार से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना, २. वीर्यसमाधिप्रधान संस्कार से समन्वित..., ३. चित्त-समाधिप्रधान संस्कार से समन्वित...; ४. मीमांसासमाधिप्रधान संस्कार से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना॥

४-३०. परिज्ञादिसूत्र : राग के परिज्ञान हेतु चार धर्मों की भावना, परिक्षयहेतु, प्रहाणहेतु, क्षयहेतु, विरागहेतु, निरोधहेतु, त्यागहेतु, परित्यागहेतु चार धर्मों की भावना करनी चाहिये॥

३१-५१०. द्वेष-अभिज्ञादिसूत्र : १. द्वेष के, २. मोह के, ३. क्रोध के, ४. वैर के, ५. भ्रक्ष के, ६. ईर्ष्या के, ७. भात्सर्य के, ८. माया के, ९. शठता के, १०. स्तम्भ के, ११. सारम्भ (कलह) के, १२. मान के, १३. अतिमान के, १४. मद के, १५. प्रमाद के अभिज्ञान के लिये, परिज्ञान के लिये, परिक्षय के लिये, प्रहाण के लिये, क्षय के लिये, व्यय के लिये, विराग के लिये, निरोध के लिये, त्याग के लिये, परित्याग के लिये चार धर्मों की भावना करनी चाहिये॥ ●

चतुष्कनिपातसंक्षेप सम्पन्न॥

●

पञ्चक निपात

१. शैक्ष्यबलवर्ग —

१. संक्षिप्तसूत्र : पाँच बल — श्रद्धाबल, ह्रीबल, अवत्राप्यबल, वीर्यबल, प्रज्ञाबल॥

२. विस्तृतसूत्र : पाँच शैक्ष्य बल — शैक्ष्य श्रद्धाबल, शैक्ष्य ह्रीबल, शैक्ष्य अवत्राप्यबल, शैक्ष्य वीर्यबल, शैक्ष्य प्रज्ञाबल॥

३. दुःखसूत्र : पाँच दुःख — अश्रद्ध, अह्रीक, अनवत्रापी, कुसीद एवं दुष्प्रज्ञ होना॥

४. यथाभृतसूत्र : पूर्ववत्॥

५. शिक्षासूत्र : पाँच शिक्षा — श्रद्धा, ह्री, अवत्राप्य, वीर्य एवं प्रज्ञा॥

६. समापत्तिसूत्र : पाँच समापत्ति — श्रद्धा, ह्री, अवत्राप्य, वीर्य एवं प्रज्ञा॥

७. कामसूत्र : पाँच साधनाप्रयोग — श्रद्धा, ह्री, अवत्राप्य, वीर्य एवं प्रज्ञा॥

८. च्यवनसूत्र : पाँच धर्मों के कारण साधना से च्युति — अश्रद्धा, निर्लज्जता, अनवत्राप्य, कुसीद, दुष्प्रज्ञा॥ इन से विपरीत धर्मों से साधना में स्थिरता होती है॥

९. प्रथम अगौरवसूत्र : पाँच धर्मों से साधना में हानि — अश्रद्धालु, अह्रीक, अनवत्रापी, कुसीद एवं दुष्प्रज्ञ॥

१०. द्वितीय अगौरवसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

२. बलवर्ग —

१. अननुश्रुतसूत्र : पाँच तथागतबल — श्रद्धाबल, ह्रीबल, अवत्राप्यबल, वीर्यबल, एवं प्रज्ञाबल॥

२. कूटसूत्र : पाँच शैक्ष्यबल — श्रद्धाबल, ह्रीबल, अवत्राप्यबल, वीर्यबल, प्रज्ञाबल॥

३. संक्षिप्तसूत्र : पाँच बल — श्रद्धाबल, वीर्यबल, स्मृतिबल, समाधिबल एवं प्रज्ञाबल॥

४. विस्तृतसूत्र : पाँच बल — पूर्वसूत्रवत्॥

५. द्रष्टव्य सूत्र : पाँच बल — श्रद्धाबल, वीर्यबल, स्मृतिबल, समाधिबल एवं प्रज्ञाबल॥

६. पुनः कूटसूत्र : पाँच बल — पूर्वसूत्रवत्॥

७. प्रथम हितसूत्र : स्वहितकारक पाँच धर्म — १. स्वयं शीलसम्पन्न परन्तु अन्य को शील-सम्पन्नता के लिये प्रेरणा नहीं; २. स्वयं समाधिसम्पन्न, परन्तु अन्य को समाधिसम्पन्नता हेतु प्रेरणा नहीं; ३. स्वयं प्रज्ञासम्पन्न, परन्तु अन्य को प्रज्ञासम्पन्नता के लिये प्रेरणा नहीं; ४. स्वयं विमुक्ति-सम्पन्न, परन्तु अन्य को विमुक्तिसम्पन्नता के लिये प्रेरणा नहीं; ५. स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न, परन्तु अन्य को विमुक्तिज्ञानदर्शन के लिये प्रेरणा नहीं॥

८. द्वितीय हितसूत्र : परहितकारक पाँच धर्म — १. स्वयं शीलसम्पन्न न होते हुए भी अन्य को शीलसम्पन्नता की प्रेरणा; २. स्वयं समाधिसम्पन्न न होते हुए भी अन्य को समाधि सम्पन्नता की प्रेरणा; ३. स्वयं प्रज्ञासम्पन्न न होते हुए भी अन्य को प्रज्ञासम्पन्नता की प्रेरणा; ४. स्वयं विमुक्तिसम्पन्न न होते हुए भी अन्य को विमुक्तिसम्पन्नता की प्रेरणा; ५. स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न न होते हुए भी अन्य को विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्नता की प्रेरणा॥

९. तृतीय हितसूत्र : स्व या पर हित सम्पन्न न कराने वाले धर्म — १. न स्वयं शीलसम्पन्न होता है, न अन्य को इसकी प्रेरणा देता है, २. न स्वयं समाधिसम्पन्न होता है, न अन्य को इसकी प्रेरणा देता है; ३. न स्वयं प्रज्ञासम्पन्न होता है, न अन्य को इसकी प्रेरणा देता है; ४. न स्वयं विमुक्तिसम्पन्न होता है, न दूसरे को इसकी प्रेरणा देता है; ५. न स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न होता है, न अन्य को इसकी प्रेरणा ही देता है॥

१०. चतुर्थ हितसूत्र : स्व एवं परहित सम्पन्न कराने वाले धर्म — १. स्वयं शीलसम्पन्न होना तथा अन्य को भी शीलसम्पन्नता की प्रेरणा, २. स्वयं समाधिसम्पन्न होना तथा अन्य को भी

समाधिसम्पन्नता की प्रेरणा देना; ३. स्वयं प्रज्ञासम्पन्न होना तथा अन्य को भी प्रज्ञासम्पन्नता की प्रेरणा देना; ४. स्वयं विमुक्तिसम्पन्न होना तथा अन्य को भी विमुक्तिसम्पन्नता की प्रेरणा देना; ५. स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शन सम्पन्न होना तथा अन्य को भी विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्नता की प्रेरणा देना॥ ●

३. पञ्चाङ्गिक वर्ग —

१. प्रथम अगौरवसूत्र : रत्नत्रय के प्रति गौरव रखने वाले को ही पाँच धर्मों में पूर्णता १. साथियों के साथ दैनिक छोटे बड़े कर्तव्यों की पूर्णता; २. ये कर्तव्य पूर्ण करते हुए शैक्ष्य धर्मों की पूर्णता; ३. शैक्ष्य धर्मों को पूर्ण करते हुए शीलसम्पन्नता; ४. शीलसम्पन्नता पूर्ण करते हुए सम्यग्दृष्टि सम्पन्नता; ५. सम्यग्दृष्टि के सहारे से सम्यक्समाधि की पूर्णता॥

२. द्वितीय अगौरवसूत्र : रत्नत्रय के प्रति गौरव न रखने वाले के ये पाँच धर्म पूर्ण नहीं होते — वह १. साथियों के साथ छोटे बडे दैनिक कर्तव्य भी पूर्ण नहीं कर पाता, २. न शैक्ष्य धर्मों को पूर्ण कर पाता है; ३. न शीलस्कन्ध को; ४. न समाधिस्कन्ध को; और ५. न प्रज्ञास्कन्ध को ही पूर्ण कर पाता है॥

३. उपक्लेशसूत्र : सुवर्ण के पाँच उपक्लेश (खोट) — १. लौह, २. कच्चा लौह, ३. जस्ता, ४. शीशा एवं ५. चाँदी। उसमें इन पाँच वस्तुओं की मिलावट होती है; इसी प्रकार भिक्षु के भी ये पाँच उपक्लेश होते हैं — १. कामभोगों में आसक्ति, २. द्वेष, ३. आलस्य, ४. औद्धत्य कौकृत्य; एवं ५. विचिकित्सा॥

४. दुःशीलसूत्र : दुःशील पुरुष के पाँच धर्मों का नाश — १. उस का शील नष्ट होने पर सम्यक्समाधि भाव नष्ट हो जाता है; २. उसके न रहने पर सत्यदर्शन की क्षमता, ३. संसार के प्रति निर्विदा एवं वैराग्य; ४. उसके न रहने पर उसके विमुक्तिज्ञानदर्शन की क्षमता भी नष्ट हो जाती है। ५. शील तो उसका पहले ही नष्ट हो चुका होता है॥

इस के प्रतिलोम, सुशील पुरुष के पाँच धर्मों की उत्पत्ति समझ लेनी चाहिये॥

५. अनुगृहीतसूत्र : पाँच धर्मों से अनुगृहीत सम्यग्दृष्टि — १. शील से अनुगृहीत, २. श्रुत से, ३. साक्षात्कार से, ४. शमथ से तथा ५. विपश्यना से अनुगृहीत॥

६. विमुक्त्यायतनसूत्र : विमुक्ति के पाँच आयतन (क्षेत्र) — १. किसी साधक को शास्ता या उनका कोई शिष्य धर्मोपदेश करे; २. या उक्त दोनों के उपलब्ध न होने पर वह स्वयं शास्त्रोपदेश करते समय उस धर्म का यथार्थ अनुभव करने लगे; ३. इन तीनों साधनों के उपलब्ध न होने पर भी यथाधीत शास्त्र का स्वयं स्वाध्याय करे; ४. या स्वाध्याय के बाद उसका मनन एवं ध्यान करे; ५. या वह समाधिनिष्ठ होकर प्रज्ञा द्वारा इस को अपने मन में बैठा ले॥

७. समाधिसूत्र : अप्रमाण समाधि के पाँच प्रत्यक्ष लाभ — १. वर्तमान एवं भविष्य में प्रत्यक्ष लाभप्रद; २. समाधि की श्रेष्ठता एवं निर्दोषता का प्रत्यक्ष ज्ञान; ३. दुराचारी पुरुष इसकी साधना नहीं कर पाता; ४. यह समाधि उत्तम शान्ति एवं एकाग्रता से ही पायी जा सकती है; स्मृतिमान् साधक ही इस समाधि को प्राप्त कर सकता है॥

८. पञ्चाङ्गिकसूत्र : पञ्चाङ्गिक समाधि की पञ्चभावनाविधि — १. प्रथम ध्यान, २. द्वितीय ध्यान, ३. तृतीय ध्यान, ४. चतुर्थ ध्यान एवं ५. प्रत्यवेक्षणानिमित्त॥

९. चंक्रमसूत्र : साधना में चंक्रमण का माहात्म्य — १. साधना में चंक्रमण का प्रयोग करने

वाला साधक साधना के लम्बे मार्ग को पार करने में समर्थ हो जाता है; २. स्वकीय चित्तविकारों के प्रदहन में समर्थ हो ज़ाता है; ३. उस के शारीरिक रोगों में कमी आ जाती है; ४. उसका दिया हुआ भोजन शीघ्र पच जाता है; तथा ५. चंक्रमणाभ्यासी की समाधि चिरस्थायी हो जाती है॥

१०. नागितसूत्र : सम्बोधिसुख की अपेक्षा लौकिक यश:सुख की हीनता — १. यह यश:सुख भोजन के अन्तिम परिणाम मल-मूत्र के समान त्याज्य; २. प्रिय वस्तुओं के नाश हो जाने पर शोक, परिदेव आदि का उत्पादक; ३. अशुभनिमित्त के साधक को शुभनिमित्त उपस्थित होने पर प्रतिकूलतादायक, ४. छह स्पर्शायतनों के साधक को स्पर्श में प्रतिकूलतादायक एवं ५. उपादान-स्कन्धों में उत्पाद विनाश की साधना करने वाले को उपादान में प्रतिकूलतादायक॥ ●

४. सुमनवर्ग —

१. सुमनासूत्र : दानदाता पुरुष साधारण लोगों से पाँच गुणों में उत्तम — १. आयु में, २. वर्ण में, ३. सुख में, ४. यश में एवं ५. ऐश्वर्य में॥

२. चन्दीसूत्र : पाँच धर्म श्रेष्ठ (उत्तम) — १. सभी प्राणियों में तथागत श्रेष्ठ; २. धर्मों में बुद्धोपदिष्ट धर्म श्रेष्ठ, ३. संसार के प्रति विराग, ४. श्रमणसङ्घों में तथागत का श्रावकसङ्घ; ५. आर्य सदाचार में शील ही श्रेष्ठ है॥

३. उद्ग्रहसूत्र : नारियों के लिये पाँच धर्म : १. पति की आज्ञा का पालन; २. पति के पूज्य जनों का सम्मान; ३. गृहकार्य में पति को सहयोग, ४. घर के कर्मचारियों की सौमनस्यपूर्वक देखभाल, एवं ५. पति द्वारा घर में लायी गयी छोटी बड़ी सम्पत्ति की सुरक्षा॥

४. सिंहसेनापतिसूत्र : दान के पाँच प्रत्यक्ष फल — १. अनेक मनुष्यों का प्रेम प्राप्त कर लेना, २. अनेक सत्पुरुषों का सङ्ग; ३. लोक में दानी का यश; ४. सभाओं में गौरव के साथ शिर ऊँचा कर के जाना; ५. मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग लोक की प्राप्ति॥

५. दानमाहात्म्यसूत्र : दान के पाँच प्रत्यक्ष फल — पूर्वसूत्रवत्॥

६. कालदानसूत्र : पाँच सामयिक दान — १. आगन्तुक (अतिथि) को दान; २. यात्री को दान; ३. रोगी को दान; ४. दुर्भिक्ष में दान; एवं ५. नया अन्न घर में आने पर दान॥

७. भोजनसूत्र : भोजनदान के पाँच फल — १. आयु, २. वर्ण, ३. बल, ४. सुख एवं ५. तीक्ष्णबुद्धि की प्राप्ति॥

८. श्रद्धसूत्र : श्रद्धालु कुलपुत्र की पाँच विशेषताएँ — लोक में सत्पुरुष १. कृपा करते हुए श्रद्धालु पर ही कृपा करते हैं, अश्रद्धालु पर नहीं; २. किसी के पास जाते हुए पहले श्रद्धालु के पास ही जाते हैं..., ३. किसी से कुछ लेते हुए श्रद्धालु से ही लेते हैं, अश्रद्धालु से नहीं; ४. वे धर्मोपदेश करते हुए श्रद्धालु को ही धर्मोपदेश करते हैं, अश्रद्धालु को नहीं; और ५. मरणानन्तर ऐसा श्रद्धालु सुगतिमय स्वर्गलोक में जाकर सुख भोगता है॥

९. पुत्रसूत्र : कुल में उत्पन्न पुत्र से माता पिता की ये पाँच आशाएँ — १. बुढापे में यह हमारा भरण-पोषण करेगा; २. हमारे किये अधूरे कार्यों को पूर्ण करेगा; ३. हमारी कुलपरम्परा चलती रहेगी; ४. हमारा उत्तराधिकार अक्षुण्ण रहेगा; ५. हमारे देहपात के बाद भी हमारे द्वारा चलायी गयी दानक्रियाएँ चलती रहेंगी॥

१०. महासालसूत्र : श्रद्धालु कुलपुत्र के अधीन जनों की पाँच प्रकार से उन्नति — १. श्रद्धा से, २. शील से, ३. श्रुत से, ४. त्याग से एवं ५. प्रज्ञा से॥

५. मुण्डराजवर्ग —

१. आद्यसूत्र : कामभोगों में पाँच आद्य (आरम्भ) — १. कामभोगों के उपयोग से स्वयं को सुखी रखता है; २. अमात्यों को सुखी रखता है; ३. कामभागों की अग्नि, जल, राजा, चौर एवं शत्रु तथा परिवार से रक्षा करता है; ४. कुछ अंश देकर सम्बधिजन, अतिथिजन, मृत पुरुष, राजा एवं देवताओं को प्रसन्न रखता है; ५. कुछ अंश श्रमण-ब्राह्मणों को दान करता रहता है। यह दान, देहपात के बाद, उसको फलस्वरूप सुगतिमय स्वर्गलोक का सुख प्रदान करता है॥

२. सत्पुरुषसूत्र : कुल में उत्पन्न सत्पुरुष अनेक जनों के हित सुख का साधक — १. माता पिता के, २. पुत्र एवं पत्नी के, ३. दास एवं भृत्य आदि के, ४. मित्र एवं साथियों के तथा श्रमण ब्राह्मणों के हित सुख का साधक होता है॥

३. इष्टसूत्र : पाँच धर्म दुर्लभ — १. यथेच्छ आयु, २. यथेच्छ रूप, ३. यथेच्छ सुख, ४. यथेच्छ यश एवं ५. यथेच्छ स्वर्गसुख॥

४. मनापदायिसूत्र : याचक को अनुकूल का दाता अनुकूल ही सुख भोगता है — अर्हतों को १. अन्न, २. पान, ३. शय्या, ४. रोग में पथ्य और ५. कठिनता से त्याग योग्य वस्तु का दान करने वाला दिव्य स्वर्ग सुख भोगता है॥

५. पुण्याभिष्यन्दसूत्र : पाँच पुण्यस्रोत — १. दाता द्वारा याचक को दिया हुआ चीवर; २. पिण्डपात; ३. शयनासन, ४. मञ्चपीठ एवं ५. रुग्णावस्था में दी गयी औषध एवं पथ्य॥

६. सम्पदासूत्र : पाँच सम्पदा — १. श्रद्धासम्पदा, २. शीलसम्पदा, ३. श्रुतसम्पदा, ४. त्यागसम्पदा एवं ५. प्रज्ञासम्पदा॥

७. धनसूत्र : पाँच धन — १. श्रद्धाधन, २. शीलधन, ३. श्रुतधन, ४. त्यागधन; एवं प्रज्ञाधन॥

८. स्थानसूत्र : पाँच स्थान अलभ्य — १. जराधर्म को न प्राप्त करना, २. व्याधि धर्म को न प्राप्त करना; ३. मरणधर्म को न प्राप्त करना, ४. क्षय धर्म को न प्राप्त करना; एवं ५. नाशधर्म को न प्राप्त करना॥

९. कौसलसूत्र : पाँच स्थान अलभ्य — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. नारदसूत्र : पाँच स्थान अलभ्य — पूर्वसूत्रवत्॥

६. नीवरणवर्ग —

१. आवरणसूत्र : चित्त के पाँच आवरण — १. कामच्छन्द; २. व्यापाद; ३. स्त्यानमृद्ध; ४. औद्धत्य कौकृत्य एवं ५. विचिकित्सा॥

२. अकुशलराशिसूत्र : पाँच अकुशल (नीवरण) धर्म — १.कामच्छन्द,२. व्यापाद, ३.स्त्यानमृद्ध, ४. औद्धत्य कौकृत्य, एवं ५. विचिकित्सा॥

३. प्रधानीय अङ्ग : योगाभ्यास हेतु प्रधानीय (प्रयास करने योग्य) पाँच धर्म — १. तथागत के प्रति श्रद्धा; २. स्वास्थ्य की सबलता; ३. शठता एवं माया का त्याग; ४. अकुशल धर्मों का प्रहाण एवं कुशल धर्मों का उत्पाद; एवं ५. प्रज्ञा॥

४. समयसूत्र : (क) योगाभ्यास में पाँच विघ्न — १. जरा; २. व्याधि; ३. दुर्भिक्ष; ४. जनता का अरण्य में वास हेतु प्रवेश; एवं ५. सङ्घ में मतभेद॥

(ख) योगाभ्यास के अनुकूल पाँच समय — १. साधक की युवावस्था, २. स्वस्थ शरीर, ३. सुभिक्ष, ४. ग्राम एवं नगरों जनता में एकता; एवं ५. सङ्घ में सौमनस्य॥

५. मातापुत्रसूत्र : आसक्ति के पाँच उत्कृष्ट स्थान — १. स्त्रीरूप, २. स्त्रीशब्द, ३. स्त्रीगन्ध, ४. स्त्रीरस एवं ५. स्त्रीस्पर्श। स्त्री ही वास्तविक मार-बन्धन है॥

६. उपाध्यायसूत्र : साधक के शरीर का आलस्य युक्त बने रहना — १. जो साधक इन्द्रिय-संयमी नहीं है, २. भोजन की मात्रा नहीं जानता, ३. स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक साधना नहीं करता, ४. कुशल धर्मों का अन्वीक्षण नहीं करता, ५. बोधिपक्षीय धर्मों का सतत अभ्यास नहीं करता॥

७. स्थानसूत्र : पाँच बातें निरन्तर ध्यान में रखना — १. बूढा होना, २. रोगी होना, ३. मरना शरीर का स्वभाव है, ४. इष्ट एवं प्रियविषयों का परिवर्तन एवं विनाश अवश्यम्भावी है, तथा ५. मैं अपने कर्मों का स्वामी हूँ॥

८. लिच्छविकुमारकसूत्र : कुलपुत्रों के पाँच धर्म — १. जो अपने बाहुबल से अर्जित सम्पत्ति से १. माता पिता की, २. पुत्र-स्त्री की; ३. दास-दासियों की; ४. ग्रामदेवताओं की, ५. श्रमणब्राह्मणों की सेवा पूजा करता है वह अनन्त पुण्य का भागी होता है॥

९. प्रथम वृद्धप्रव्रजितसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त दुर्लभ प्रव्रजित — १. साधना में निपुण; २. अच्छे ईर्यापथ (चाल चलन) वाला; ३. बहुश्रुत, ४. धर्मवाचक, एवं ५. विनयधर (साम्प्रदायिक नियमों को जानने वाला)॥

१०. द्वितीय वृद्धप्रव्रजितसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त दुर्लभ प्रव्रजित : १. सुवच (मधुरभाषी, नम्र); २. अच्छी बातें ग्रहण करने वाला; ३. दान का लेने वाला; ४. धर्मवाचक एवं ५. विनयधर॥●

७. संज्ञावर्ग —

१. प्रथम संज्ञासूत्र : शुभफलप्रद पाँच संज्ञाएँ — १. अशुभसंज्ञा, २. मरणसंज्ञा, ३. आदीनवसंज्ञा, ४. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा, ५. अनभिरतिसंज्ञा॥

२. द्वितीय संज्ञासूत्र : अन्य पाँच संज्ञाएँ — १. अनित्यसंज्ञा, २. अनात्मसंज्ञा, ३. मरणसंज्ञा, एवं ४. आहार में प्रतिकूल संज्ञा एवं ५. अनभिरति (लोक में अरुचि) संज्ञा॥

३. प्रथम वृद्धिसूत्र : पाँच वृद्धियाँ — १. श्रद्धा में, २. शील में, ३. श्रुत में, ४. त्याग में एवं ५. प्रज्ञा में वृद्धि॥

४. द्वितीय वृद्धिसूत्र : पाँच वृद्धियाँ — पूर्वसूत्रवत्॥

५. साकच्छसूत्र : पाँच परामर्श — १. स्वयं शीलसम्पन्न हो, तथा दूसरों को भी शीलविषयक परामर्श देने में समर्थ हो; २. स्वयं समाधिसम्पन्न हो, तथा दूसरों को भी...; ३. स्वयं प्रज्ञासम्पन्न हो, तथा दूसरों को भी...; ४. स्वयं विमुक्तिसम्पन्न हो एवं दूसरों को भी...; ५. स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न हो, तथा दूसरों को भी विमुक्तिज्ञानदर्शनविषयक परामर्श देने में समर्थ हो॥

६. साजीवसूत्र : पाँच परामर्श — पूर्वसूत्रवत्॥

७. प्रथम ऋद्धिपादसूत्र : पाँच धर्मों से समन्वित को दो में से एक फल अवश्य प्राप्त होगा— १. जो छन्दसमाधिप्रधानसंस्कारसमन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है; २. जो

वीर्यसमाधिप्रधानसंस्कारसमन्वित...; ३. चित्तसमाधिप्रधानसंस्कारसमन्वित...; ४. जो मीमांसा-समाधिप्रधानसंस्कारसमन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है; ५. जो उत्साहसमन्वित होता है॥

८. द्वितीय ऋद्धिपादसूत्र : बोधिसत्त्वावस्था में तथागत द्वारा पाँच ऋद्धिपादों की साधना — १. छन्दसमाधिप्रधानसंस्कार...; २. वीर्यसमाधिप्रधानसंस्कारसमन्वित...; ३. चित्तसमाधि-प्रधानसंस्कारसमन्वित; ४. मीमांसासमाधिप्रधानसंस्कारसमन्वित ऋद्धिपाद की भावना एवं ५. उत्साह॥

९. निर्विदासूत्र : पाँच धर्म निर्विदा... निर्वाण प्राप्त कराने में समर्थ — १. काया में अशुभ-संज्ञा की भावना; २. आहार में प्रतिकूल संज्ञा की भावना; ३. समस्त लोक में अनभिरुचि; ४. मरणसंज्ञा की भावना एवं ५. अनित्यसंज्ञा की भावना॥

१०. आश्रवक्षयसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

८. योधाजीववर्ग —

१. प्रथमचेतोविमुक्तिफलसूत्र : उक्त पाँच धर्मों से युक्त चेतोविमुक्त भिक्षु की विशेषता इन संज्ञाओं से घोषित की जाती है — १. अव्यूढैषिक, २. उत्क्षिप्तपरिघ, ३. सङ्कीर्णपरिख, ४. निरर्गल एवं ५. आर्य पर्णध्वज, पर्णभार या विसंयुक्त॥

२. द्वितीय चेतोविमुक्तिफलसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

३. प्रथम धर्मविहारिसूत्र : कौन भिक्षु 'धर्मविहारी' कहलाता है — १. शास्त्राभ्यासी, धर्माभ्यासी नहीं; २. उपदेशाभ्यासी, धर्माभ्यासी नहीं; ३. स्वाध्यायाभ्यासी, धर्माभ्यासी नहीं; ४. शास्त्र का चिन्तन मनन करने वाला, धर्माभ्यासी नहीं; एवं ५. धर्मविहारी धर्माभ्यासी॥

४. द्वितीय धर्मविहारिसूत्र : कौन भिक्षु धर्मविहारी कहलाता है — पूर्वसूत्रवत्॥

५. प्रथम योधाजीवसूत्र : पञ्चविध योधाजीव (सैनिक) — १. शत्रु सेना की उड़ती हुई धूल को देखकर ही डर जाने वाला; २. पास आयी शत्रु सेना की ध्वजाओं को देखकर डर जाने वाला; ३. शत्रु के प्रथम आक्रमण में ही युद्धभूमि में मर जाने वाला; ४. प्रथम आक्रमण में ही आहत हो जाने वाला; ५. सभी आक्रमणों को सहते हुए युद्ध को जीतने वाला॥ (विस्तार ग्रन्थ में देखें।)॥

६. द्वितीय योधाजीवसूत्र : पूर्वोक्त योधाजीव के समान पञ्चविध भिक्षु — १. ग्राम या निगम में किसी स्त्री को देख कर चञ्चलचित्त होकर पुनः गृहस्थ धर्म में लौट जाने वाला; २. अपने चञ्चल चित्त की उग्रता के कारण, अपने चित्तचाञ्चल्य की बात स्थविर भिक्षुओं को बताने से पूर्व ही पुनः गृहस्थ में लौट जाने वाला; ३. अपने चित्तचाञ्चल्य की बात भिक्षुओं को बता कर भी उन का परामर्श न मान कर गृहस्थ में लौट जाने वाला; ४. भिक्षुओं का परामर्श मान कर साधना में दृढता से लगाता हुआ अपने चित्त की चञ्चलता को संयत करने वाला; ५. अपने सुनिगृहीत काय एवं मन से ग्राम निगम में घूमता हुआ भी किसी स्त्री आदि को देख कर भी साधना से च्युत न होने वाला॥

७. प्रथम अनागतभयसूत्र : पाँच अनागतभयों को देखकर साधना में त्वरा (शीघ्रता) लाना — १. साधना की पूर्णता के पूर्व ही साँप, बिच्छू के काटने से अकाल मृत्यु का भय; २. ...व्याधि से अकाल मृत्यु का भय; ३. ... सिंह, व्याघ्र आदि के आक्रमण से अकाल मृत्यु का भय; ४. ...चौर,

डाकू आदि के आक्रमण से अकाल मृत्यु का भय; ५. ... भूत, प्रेत आदि के आक्रमण से अकालमृत्यु का भय॥

८. द्वितीय अनागतभयसूत्र : पाँच अनागत भयों की कल्पना से साधना में त्वरा — १. बुढापे के अनागत भय से; २. व्याधि के अनागत भय से; ३. ग्राम-निग्रम में फूट पड़ने के अनागत भय से; ४. दुर्भिक्ष के भय से; एवं ५. सङ्घ में अनेकता के अनागत भय से अपनी साधना में त्वरा लाना।

९. तृतीय अनागतभय : पाँच अनागत भयों से साधना में त्वरा लाना — १. भविष्य में होने वाली अल्पसाधनाभ्यासी भिक्षुओं के भय से; २. भविष्य में होने वाले अल्पशास्त्राभ्यासी धर्मवाचकों के भय से; ३. भविष्य में होने वाले धर्मश्रोताओं की अल्पता के भय से; ४. भविष्य में होने वाली अभिधर्मवाचकों की अल्पता के भय से; ५. भविष्य में होने वाले स्थविरों के भी परिग्रही होने के भय से॥

१०. चतुर्थ अनागतभयसूत्र : अनागत पञ्चविध भिक्षुओं के भय से साधना में त्वरा लाना — १. चीवर में ही उत्कण्ठा रखने वाले; २. भोजनप्राप्ति में ही उत्कण्ठा रखने वाले; ३. शयनासन में उत्कण्ठा रखने वाले; ४. भिक्षुणी, श्रामणेरी एवं शिक्षमाणाओं के साथ अश्लील संसर्ग रखने वाले; तथा ५. विहारवासी श्रमण प्रत्याशियों के साथ कायिक संसर्ग बढाने वाले भिक्षुओं के भय से॥●

९. स्थविर वर्ग —

१. रजनीयसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अपने साथियों का अप्रिय हो जाता है — १. रागमय धर्मों में राग करने वाला; २. द्वेषमय धर्मों में द्वेष करने वाला; ३. मोहमय धर्मों में मोह करने वाला; ४. क्रोधमय धर्मों में क्रोध करने वाला; तथा ५. मदनीय धर्मों में प्रमाद करने वाला॥

२. वीतरागसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अपने साथियों का प्रिय — १. वीतराग; २. वीतद्वेष; ३. वीतमोह; ४. वीतक्रोध; एवं ५. प्रदाशरहित॥

३. कुहकसूत्र : ठगी एवं ढोंग के इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अपने साथियों का अपूजनीय — १. शरीर के अङ्ग देख कर भविष्य बताने वाला; २. बाजीगरी दिखा कर जीवनयापन करने वाला; ३. ठगबाजी से; ४. व्यर्थ बकवाद से लोगों को बहकाने वाला; तथा ५. लाभ से लाभ को चाहने वाला॥

४. अश्रद्धसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अपने साथियों का अप्रिय — १. जो बुद्ध के प्रति श्रद्धालु नहीं होता; २. निर्लज्ज होता है; ३. उद्योगी नहीं होता; ४. आलसी होता है तथा; ५. नष्टप्रज्ञ होता है॥

५. अक्षमसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अपने साथियों का अप्रिय — १. रूप आदि पाँच विषयों को जानने में असमर्थ॥

६. प्रतिसंविदाप्राप्तसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अपने साथियों का प्रिय एवं पूज्य — १. अर्थविषयक मीमांसापूर्ण ज्ञान वाला; २. धर्मविषयक मीमांसापूर्ण ज्ञान वाला; ३. निरुक्ति-विषयक...; ४. प्रतिभानविषयक मीमांसापूर्ण ज्ञानवाला; ५. अपने साथियों के छोटे बड़े कार्यों को पूर्ण करने वाला॥

७. शीलवत्सूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु साथियों में प्रिय — १. शीलवान्; २. बहुश्रुत;

३. मङ्गलवाणी बोलने वाला; ४. चारों ध्यानों का अतिशय लाभी; ५. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को स्वयं जानकर साधना करने वाला॥

८. स्थविरसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त स्थविर साथियों में अप्रिय — १. प्रव्रजित होने पर भी लोक में आसक्त; २. ज्ञानी होते हुए भी यश की इच्छा; ३. चीवर आदि का परिग्रही; ४. बहुश्रुत होने पर भी धर्मज्ञान में अन्त:प्रविष्ट न हो; ५. मिथ्यादृष्टि॥

९. प्रथम शैक्ष्यसूत्र : ये पाँच धर्म शैक्ष्य भिक्षु के लिये हानिकारक — १. कर्म में स्वच्छन्दता; २. भीड़ में रहने की स्वच्छन्दता; ३. सम्प्रलाप में स्वच्छन्दता; ४. निद्रा में स्वच्छन्दता; ५. विमुक्तिज्ञान में चित्त न लगाना॥

१०. द्वितीय शैक्ष्यसूत्र : ये पाँच धर्म शैक्ष्य भिक्षु की साधना हानिकारक — १. लौकिक कर्मप्रपञ्चों में फँसे रहने वाला; २. लौकिक कर्मों की पूर्ति में ही अपना दिन बिताने वाला; ३. गृहस्थ एवं प्रव्रजितों की कार्यपूर्ति में समय नष्ट कर साधना न करने वाला; ४. असमय में ग्राम में प्रवेश करने वाला; ५. धर्मकथाओं के श्रवण में मन न लगाने वाला॥

(इन दशों सूत्रों में आगत धर्मों का प्रतिलोम क्रम से भी परिगणन कर लेना चाहिये।) ●

१०. ककुधवर्ग —

१. प्रथम सम्पदासूत्र : पाँच सम्पदा — १. श्रद्धासम्पदा, २. शीलसम्पदा, ३. श्रुतसम्पदा; ४. त्यागसम्पदा एवं ५. प्रज्ञासम्पदा॥

२. द्वितीय सम्पदासूत्र : पाँछ सम्पदा — १. शीलसम्पदा, २. समाधिसम्पदा; ३. प्रज्ञासम्पदा; ४. विमुक्तिसम्पदा एवं ५. विमुक्तिज्ञानसम्पदा॥

३. व्याकरणसूत्र : पञ्चविध ज्ञानव्याकरण — १. बुद्धि की अल्पता तथा मोह के कारण ज्ञान का व्याकरण; २. किसी पापी द्वारा स्वेच्छया ज्ञान का व्याकरण; ३. उन्माद या चित्तविक्षेप के कारण ज्ञान का विपरीत व्याकरण; ४. मिथ्या विद्वत्ता के कारण ज्ञान का अन्यथा अर्थ करना; ५. उस ज्ञान का विद्वज्जनसम्मत व्याकरण॥

४. फासुविहारसूत्र : पाँच स्पर्श विहार — १. कामभोग, अकुशल धर्म त्याग कर एवं वितर्क विचार सहित विवेकजन्य प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान की साधना; २. द्वितीय ध्यान; ३. तृतीय ध्यान; ४. चतुर्थ ध्यान एवं ५. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति की साधना॥

५. अकोप्यसूत्र : मन:स्थैर्यदायक पाँच धर्म — १. अर्थप्रतिसंविदा, २. धर्मप्रतिसंविदा, ३. निरुक्तिप्रतिसंविदा, ४. प्रतिभानप्रतिसंविदा एवं ५. यथाविमुक्तचित्त का पर्यवेक्षण॥

६. श्रुतधरसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु आनापानस्मृति द्वारा मन:स्थैर्य प्राप्त करने में समर्थ — १. अल्प में ही सन्तुष्ट रहना वाला; २. अल्प में ही पालनीय; ३. आलस्यरहित होकर सदा जागरणशील; ४. बहुश्रुत एवं श्रुत का सञ्चय करने वाला; तथा ५. विमुक्त चित्त का प्रत्यवेक्षण करने वाला॥

७. कथासूत्र : मन:स्थैर्य की प्राप्ति का अन्य उपाय — १. अल्पसन्तोषी, २. अल्प में ही जीवननिर्वाह करने वाला; ३. साधना में सदा सावधान; ४. अल्पेच्छकथा आदि में सदा ध्यान रखना; ५. विमुक्तचित्त का प्रत्यवेक्षण॥

८. आरण्यकसूत्र : १. अल्पसन्तोषी, २. अल्प साधनों से जीवननिर्वाहक; ३. साधना में

सदा सावधान; ४. अरण्य के एकान्त स्थानों में बैठकर साधना करने वाला; ५. विमुक्त चित्त का प्रत्यवेक्षण ॥

९. सिंहसूत्र : तथागत का पञ्चविध सिंहनाद — १. तथागत का भिक्षुपरिषद् में एक विषय पर एक ही वार सिंहनादपूर्वक धर्मोपदेश; २. ...भिक्षुणीपरिषद् में; ३. ...उपासकपरिषद् में...; ४. उपासिकापरिषद् में...; ५. पृथग्जनों को एक विषय पर एक ही बार सिंहनादपूर्वक धर्मोपदेश ॥

१०. क्रकुधस्थविरसूत्र : पाँच प्रकार के उपदेशक (शास्ता) — १. स्वयं सदाचारवान् न होते हुए भी अपने सदाचार की मिथ्याप्रशंसा करना; २. अपरिशुद्ध आजीविका के होते हुए भी अपनी आजीविका की मिथ्याप्रशंसा करना; ३. मिथ्याधर्मोपदेश करते हुए भी अपने धर्मोपदेश की मिथ्या प्रशंसा करना; ४. अपने मिथ्याधर्म व्याख्यान के सम्यक्त्व की मिथ्या प्रशंसा करना; ५. अपने मिथ्या ज्ञानदर्शन की मिथ्या प्रशंसा करना ॥

११. फासुविहार वर्ग —

१. शारदयसूत्र : शैक्ष्य भिक्षु के आत्मविश्वासोत्पादक पाँच धर्म — १. रत्नत्रय के प्रति श्रद्धा; २. शील (सदाचार); ३. बहुश्रुतता; ४. साधना में सतत उद्योग एवं ; ५. प्रज्ञा ॥

२. उच्छङ्कितसूत्र : पापी भिक्षु के पाँच कर्म — १. वह वेश्यागामी होता है; २. वह विधवा के साथ संवास करता है; ३. वह स्थूलकुमारी के साथ...; ४. वह नपुंसक के साथ...; ५. वह भिक्षुणी के साथ संवास करता है ॥

३. महाचौरसूत्र : चौरतुल्य पापी भिक्षु के पाँच कर्म — १. विषमनिश्रित; २. गहननिश्रित; ३. बलवन्निश्रित; ४. भोगत्यागी; एवं ५. एकचारी ॥

४. श्रमणसुकुमारसूत्र : इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु 'श्रमणों में श्रमण कुमार' कहलाता है — १. माँगे हुए चीवरों का ही अधिक उपयोग करने वाला; २. माँगे हुए पिण्डपात का ही उपयोग करने वाला; ३. माँगे हुए शयनासन का ही...; ४. माँगी हुई ओषधि एवं पथ्य का ही...; ५. तथा साथी भिक्षुओं के साथ प्रिय एवं शुभ व्यवहारकर्त्ता। यह 'श्रमणों में श्रमणसुकुमार' संज्ञा केवल तथागत की ही हो सकती है ॥

५. फासुविहारसूत्र : भिक्षु के ये पाँच सन्तोषप्रद विहार (साधनाक्रम) होते हैं — १. मैत्रीपूर्ण कायकर्म; २. मैत्रीपूर्ण वाक्कर्म; ३. मैत्रीपूर्ण मनःकर्म; ४. अखण्ड एवं विद्वत्प्रशस्त शील एवं ५. सम्यग्दुःखक्षय (निर्वाण) की ओर ले जाने वाली दृष्टि ॥

६. आनन्दसूत्र : सङ्घ में रह कर भी सरलता से साधना के पाँच उपाय — १. स्वयं शीलसम्पन्न रहे; २. आत्मप्रत्यवेक्षण करे; ३. सङ्घ में अपरिचित के समान हो कर रहे; ४. किसी भी प्रकार चिन्तित या उद्वेजित न हो; ५. चारों ध्यानों की पूर्णता से साधना करने वाला ॥

७. शीलसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु दक्षिणायोग्य एवं प्रणम्य — १. शीलसम्पन्न; २. समाधिसम्पन्न; ३. प्रज्ञासम्पन्न; ४. विमुक्तिसम्पन्न; ५. विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न ॥

८. अशैक्ष्यसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु लोक के लिये पुण्यक्षेत्र कहलाता है — १. अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से युक्त; २. अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से युक्त; ३. अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से युक्त; ४. अशैक्ष्य विमुक्तिस्कन्ध से युक्त तथा ५. अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त ॥

९. चातुर्दिशसूत्र : इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सभी दिशाओं में पूज्य कहलाता है —

१. शीलवान्; २. बहुश्रुत; ३. यथाप्राप्त चीवर, पिण्डपात आदि से सन्तुष्ट रहने वाला; ४. चारों ध्यानों का पूर्ण लाभी एवं ५. चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति प्राप्त कर साधना का कर्ता॥

१०. अरण्यसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु एकान्त वनप्रदेशों में जा कर साधना करने में समर्थ हो सकता है — १. जो शीलवान् होता है; २. बहुश्रुत होता है; ३. कुशल धर्मों की प्राप्ति में अपनी समग्र शक्ति लगाता है; ४. चार ध्यानों का अतिशय लाभी होता है; ५. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति की साधना करता है॥

११. अन्धकविन्दवर्ग —

१. कुलोपगसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थ कुलों में जाने के अयोग्य — १. जो शत्रुओं का विश्वस्त हो; २. जो नित्य नये लोगों के साथ रहता हो; ३. समाजबहिष्कृत लोगों के साथ रहता हो; ४. लोगों की इधर उधर चुगली करता हो; तथा ५. घरों में जाकर बहुत अधिक माँगने वाला हो॥

२. पश्चात् श्रमणसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु को अपना अनुगामी नहीं बनाना चाहिये — १. जो साथ चलते समय बहुत पीछे चले या बहुत समीप चले; २. जो पात्र आदि उठाने या लेने में सङ्कोच करे; ३. आपत्ति (दोष) बताने पर जो न माने; ४. आपत्ति बताने पर अन्य प्रसङ्ग उठा दे; ५. या जो भेड़ बकरी के समान मन्दमति हो॥

३. सम्यक्समाधिसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ही समाधिनिष्ठ होने में समर्थ — १. रूपों का; २. शब्दों का; ३. गन्धों का; ४. रसों का; ५. स्प्रष्टव्य विषयों का ज्ञान करने में समर्थ हो॥

४. अन्धकविन्दसूत्र : नवप्रव्रजित भिक्षुओं के प्रथम धारणीय पाँच धर्म — १. शीलवान् बनना, २. इन्द्रियों पर संयम; ३. अरण्य के एकान्त स्थानों में बैठ कर साधना करना सीखना; ४. बात कम कार्य अधिक करना सीखना, ५. एवं सम्यग्दृष्टि बनना॥

५. मत्सरिणीसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी नरकगामिनी — १. जो अपने भद्र आवास का...; २. भद्र कुल का...; ३. चीवर, पिण्डपात आदि के अतिशय लाभ का...; ४. अपने रूप का...; ५. या अपने धर्मज्ञान का अभिमान करती है वह नरकगामिनी होती है॥

६. वर्णनासूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी नरकगामिनी — १. विना सोचे समझे निन्दनीय की प्रशंसा; २. विना सोचे समझे प्रशंसनीय की निन्दा; ३. विना सोचे समझे अश्रद्धेय के प्रति श्रद्धा; ४. विना सोचे समझे श्रद्धेय के प्रति अश्रद्धा प्रकट करती है; एवं ५. श्रद्धादेय वस्तु को अश्रद्धा से देती है॥

७. ईर्ष्युकीसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी का नरकपात अवश्यम्भावी — १. विना सोचे समझे निन्दनीय की प्रशंसा; २. ...प्रशंसनीय की निन्दा; ३. ...दूसरों से ईर्ष्या...; ४. ...दूसरों से अभिमान करती है; ५. श्रद्धादत्त वस्तु को अश्रद्धा से लेती है॥

८. मिथ्यादृष्टिकसूत्र : किसी भिक्षुणी का नरकपात कराने वाले पाँच धर्म — १. पूर्ववत्; २. पूर्ववत्; ३. जो मिथ्यादृष्टियुक्त होती है; ४. जो मिथ्यासङ्कल्प होती है; ५. जो श्रद्धादेय वस्तु का अपमान करती है॥

९. मिथ्यावाक्सूत्र : किसी भिक्षुणी का नरकपात कराने वाले पाँच धर्म — १, २. पूर्ववत्; ३. जो मिथ्यावाक् होती है; ४. मिथ्यासङ्कल्प होती है, ५. श्रद्धादेय वस्तु का अपमान करती है॥

१०. मिथ्याव्यायामसूत्र : किसी भिक्षुणी का नरकपात कराने वाले पाँच धर्म — १, २.; ३. मिथ्याव्यायाम होती है; ४. मिथ्यास्मृति होती है; ५. श्रद्धादेय वस्तु को श्रद्धापूर्वक नहीं देती। ऐसी भिक्षुणी का नरकपात अवश्यम्भावी है॥

(इस वर्ग में मत्सरिणीसूत्र से मिथ्याव्यायाम सूत्र तक में वर्णित स्वर्गगामी प्रतिलोम धर्मों का व्याख्यान भी यथाक्रम समझ लें)॥

१३. ग्लानवर्ग —

१. ग्लानसूत्र : रोगी भिक्षु को पाँच धर्म अभ्यसनीय — १. काया में अशुभ संज्ञा; २. आहार में प्रतिकूल संज्ञा, ३. समस्त संसार में अनभिरति; ४. सांसारिक पदार्थों में अनित्यसंज्ञा, एवं ५. मरणसंज्ञा॥

२. स्मृतिसूपस्थितसूत्र : भिक्षु द्वारा पाँच धर्मों की साधना एवं अभ्यास — १. धर्मों के उदय एवं अस्त विषयक ज्ञान की स्मृति; २. काया में अशुभसंज्ञा; ३. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा; ४. समस्त संसार में अनभिरति; एवं ५. सांस्कारिक पदार्थों में अनित्यता॥

३. प्रथम उपस्थायकसूत्र : अपरिचर्यायोग्य रोगी के पाँच धर्म — १. पथ्यपूर्वक न रहना; २. पथ्य की मात्रा का अज्ञान; ३. औषध का समय से अनुपयोग; ४. हितचिन्तकों को भी अपने रोग की स्थिति न बताना; ५. तीव्र कष्टदायक वेदनाओं को सहन न करना॥

परिचर्यायोग्य रोगी के पाँच धर्म — १. पथ्य से रहना; २. पथ्य का उपयोग तथा मात्रा जनना, ३. समय से औषधि का उपयोग जानना; ४. हितकारी परिचारक को अपने रोग की वास्तविक स्थिति बताना; ५. तीव्र कष्टदायक वेदनाओं को सहन करना॥

४. द्वितीय उपस्थायकसूत्र : १. परिचारक के पाँच दोष — १. औषधसंयोजन का अज्ञान; २. पथ्यापथ्यविषयक अज्ञान; ३. रोगी के प्रति मन में मैल रखना; ४. रोगी का मल-मूत्र उठाते समय रोगी से घृणा; ५. समय समय पर रोगी को सान्त्वना हेतु धार्मिक कथा न कहना॥

परिचारक के पाँच गुण — १. औषधसंयोजन का ज्ञान; २. पथ्यापथ्य का ज्ञान; ३. रोगी के प्रति हितभावना रखना; ४. रोगी का मल-मूत्र उठाते समय घृणा न करना; ५. समय समय पर रोगी को धार्मिक कथा सुनाना॥

५. प्रथम अनायुष्यसूत्र : पाँच धर्म आयु के हानिकारक — १. अपथ्य का सेवन, २. पथ्य की मात्रा का अज्ञान; ३. पर्युषित (बासी) भोजन करना; ४. समय से भोजन न करना; ५. अधिक मात्रा में मैथुन करना॥

पाँच धर्म आयुष्यकारक — १. पथ्यसेवन, २. पथ्य की मात्रा का ज्ञान, ३. पर्युषित भोजन न करना; ४. समय से भोजन; तथा ५. मैथुन का पूर्ण त्याग॥

६. द्वितीय अनायुष्यसूत्र : पाँच धर्म आयु के हानिकारक — १-२-३. पूर्ववत्; ४. दुःशील होना, ५. पापी मित्रों का संसर्ग॥

पाँच धर्म आयुर्वर्धक — १-२-३. पूर्ववत्; ४. शीलवान् होना, ५. कल्याणमित्रों का सम्पर्क॥

७. व्यवकर्षसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु निष्कासनयोग्य — १. अधिक से अधिक चीवर;

२. पिण्डपात, ३. शयनासन, ४. भेषज (पथ्य) पाकर भी सन्तुष्ट न होना; ५. कामभोगों के लिये अधिक से अधिक सङ्कल्प-विकल्प॥

इससे विपरीत धर्मों वाला भिक्षु सङ्घ से निष्कासन योग्य नहीं होता॥

८. श्रमणसुखसूत्र : पाँच श्रमण दुःख — पूर्वसूत्रवत्॥

पाँचश्रमण सुख — उक्त से विपरीत धर्म श्रमणसुख होते हैं॥

९. परिकोप्यसूत्र : पाँच धर्म नरकपाती एवं अचिकित्स्य — १. माता की हत्या, २. पिता की हत्या, ३. अर्हत् की हत्या, ४. तथागत के शरीर से रक्त बहाना एवं ५. सङ्घभेद॥

१०. व्यसनसूत्र : पाँच धर्म दौर्भाग्यकारक — १. सम्बन्धिजनों का सङ्कट; २. कामभोगों का सङ्कट; ३. रोगों का सङ्कट; ४. शील का सङ्कट; एवं ५. दृष्टि का सङ्कट॥

१४. राजगर्व —

१. प्रथम चक्रानुवर्तनसूत्र : पाँच धर्मों से शासन चलाने वाले चक्रवर्ती राजा का शत्रु विरोध नहीं कर पाते — १. शासन की सूक्ष्मताओं की पहचान; २. धर्म की सूक्ष्मताओं की पहचान; ३. मात्राओं की पहचान; ४. अवसर की पहचान एवं ५. मन्त्रिसभा के मन्तव्यों की पहचान॥

२. द्वितीय चक्रानुवर्तनसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

३. धर्मराजसूत्र : चक्रवर्ती राजा पर भी धर्म का पञ्चविध अङ्कुश — धर्म के सहारे से १. वह अपनी क्षत्रियसेना पर; २. ब्राह्मणों पर; ३. गृहपतियों पर; ४. श्रमण-ब्राह्मणों पर; ५. पशु-पक्षियों पर धर्म का अङ्कुश रखता है।

इसी प्रकार धर्मराज तथागत भी भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका एवं साधारण जन पर अपना धर्माङ्कुश रखते हैं॥

४. 'जिस दिशा में' सूत्र : मूर्धाभिषिक्त राजा इन पाँच अङ्गों से सर्वत्र अपने विजित प्रदेश के समान प्रवेश करता है — १. मातृपक्ष एवं पितृपक्ष से उभयथा परिशुद्ध; २. आढ्य, धनी अतुलित भोग वाला; ३. स्वामिभक्त चतुरङ्गिणी सेना वाला; ४. चतुर, बुद्धिमान् एवं भूत भविष्य वर्तमान के चिन्तन में समर्थ; ५. एवं उसका दिगन्तविश्रुतयश हो॥

५. प्रथम प्रार्थनासूत्र : पाँच धर्मों से युक्त राजा के ज्येष्ठ पुत्र की राजा बनने के इच्छा — १. जो मातृपक्ष एवं पितृपक्ष से परिशुद्ध हो; २. माता-पिता का प्रिय हो; ३. रूपवान् एवं नयनाभिराम हो; ४. राज्य के नागरिकों का प्रिय हो; ५. राजाओं के सीखने योग्य कलाओं में निपुण हो॥

इसी प्रकार भिक्षु की इच्छा के भी ये पाँच अङ्ग होते हैं — १. तथागत के प्रति श्रद्धा; २. स्वस्थ, नीरोग; ३. अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं कुशल धर्मों के उत्पाद में प्रयास; ४. कुशल धर्मों में उत्साह; ५. दुःखक्षय की ओर ले जाने वाली प्रज्ञा से युक्त॥

६. द्वितीय प्रार्थनासूत्र : भिक्षु की पाँच इच्छाएँ — पूर्वसूत्रवत्॥

७. अल्पशयनसूत्र : ये पाँच पुरुष रात्रि में कम सोते हैं — १. स्त्री, किसी पुरुष के अभिप्राय से; २. पुरुष, किसी स्त्री के अभिप्राय से; ३. कोई चौर, चौरी के अभिप्राय से; ४. राजा, राजकार्यों में व्यस्त रहने के कारण; ५. साधक भिक्षु, साधना के अभिप्राय से॥

८. भक्तादकसूत्र : जैसे रूप, शब्द, रस, गन्ध एवं स्पर्श से सम्बद्ध विषयों को समझने में

असमर्थ कोई राजा का हाथी 'खा कर पड़ा रहने वाला' कहलाता है, ऐसे ही इन धर्मों से युक्त भिक्षु को भी समझना चाहिये॥

९. अक्षमसूत्र : राजा के उक्त हाथी के समान कोई आलसी साधक भिक्षु — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. श्रोतृसूत्र : इन पाँच अङ्गों से युक्त कोई हाथी 'राजभोग्य' कहलाता है — १. श्रोता, २. हन्ता, ३. रक्षिता, ४. क्षन्ता, एवं ५. गन्ता॥ इसी प्रकार किसी साधक भिक्षु को भी समझना चाहिये॥

१५. त्रिकण्टकीवर्ग —

१. अवजानातिसूत्र : पञ्चविध पुद्गल — १. कुछ देकर तिरस्कार करने वाला; २. आवास देकर तिरस्कार करने वाला; ३. प्रत्येक बात को धारण करने वाला; ४. लोभी एवं ५. मूर्ख॥

२. आरभतिसूत्र : पञ्चविध पुद्गल —१. किसी कार्य के आरम्भ के लिये पश्चात्ताप करने वाला; २. किसी कार्य को आरम्भ कर पश्चात्ताप करने वाला; ३. किसी कार्य के आरम्भ के लिये पश्चात्ताप न करने वाला; ४. किसी कार्य को आरम्भ कर के भी पश्चात्ताप न करने वाला; ५. कोई पुद्गल न कोई कार्य आरम्भ करता है, न उसके लिये पश्चात्ताप ही करता है, तथा उस चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को भी जान लेता है जिससे उसके उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म सर्वांशत: नष्ट हो जाते हैं॥

३. सारन्ददसूत्र : (क) लोक में पाँच रत्नों का प्रादुर्भाव दुर्लभ — १. हस्तिरत्न; २. अश्वरत्न; ३. मणिरत्न; ४. स्त्रीरत्न; एवं ५. गृहपतिरत्न॥

(ख) १. तथागत का; २. तथागतोपदिष्ट धर्म के उपदेशक का; ३. तथागतोपदिष्ट धर्म के ज्ञाता का; ४. तथागतोपदिष्ट धर्म के अनुसार आचरण करने वाले का; तथा ५. कृतज्ञ पुरुष का प्रादुर्भाव लोक में दुर्लभ है॥

४. त्रिकण्टकीसूत्र : पञ्चविध साधनाएँ — १. समय पर अप्रतिकूल में प्रतिकूल की साधना; २. प्रतिकूल में अप्रतिकूल की साधना; ३. अप्रतिकूल एवं प्रतिकूल — उभय में प्रतिकूल संज्ञा की साधना; ४. अप्रतिकूल एवं प्रतिकूल — उभय में अप्रतिकूलसंज्ञा; एवं ५. समय पर प्रतिकूल और अप्रतिकूल — दोनों में अनासक्त हो कर उनकी उपेक्षापूर्वक साधना॥

५. निरयसूत्र : (क) नरकगामी पाँच पुद्गल — १. प्राणातिपाती; २. चौर; ३. व्यभिचारी; ४. असत्यभाषी; एवं ५. मद्यप॥

(ख) इन पाँच प्राणातिपात आदि से विरत पुरुष स्वर्गगामी होता है॥

६. मित्रसूत्र : पञ्चविध पुरुषों को मित्र नहीं बनाना चाहिये — १. व्यापारकर्ता; २. न्यायिक कलहकर्ता (मुकद्दमेबाज); ३. धर्माचारी भिक्षुओं का विरोधी; ४. विलम्ब से सिद्ध होने वाली अव्यवस्थित साधना में निरत; ५. धार्मिक कथा कहने में असमर्थ॥

७. असत्पुरुषदानसूत्र : पञ्चविध असत्पुरुषों द्वारा कृतदान — १. असत्कारपूर्वक कृत दान; २. अश्रद्धापूर्वक कृत दान; ३. अपने हाथ से न दिया दान; ४. त्यक्त वस्तु का दान; ५. 'याचक पुन: न आवे' — इस आशा से कृत दान॥

८. सत्पुरुषदानसूत्र : पञ्चविध सत्पुरुषों द्वारा कृत दान — १. सत्कारपूर्वक दान;

२. श्रद्धापूर्वक दान; ३. अपने हाथ से किया दान; ४. अव्यवहृत वस्तु का दान; ५. 'याचक पुनः आवे' इस आशा से किया दान॥

९. प्रथम समयविमुक्तसूत्र : अवसर नाशक करने पाँच धर्म भिक्षु के लिये हानिकारक — १. सांसारिक कार्यों में अत्यधिक रुचि; २. अतिशय संवाद में रुचि; ३. अतिशय निद्रा में रुचि; ४. भीड़ में अधिक रहने की रुचि तथा ५. जिन धर्मों की साधना से चित्त दुःखक्षय को प्राप्त हो सके उन में रुचि न लेना॥

इन के प्रतिलोम पाँच धर्म भिक्षु को हानि नहीं पहुँचाते॥

१०. द्वितीय समयविमुक्तसूत्र : वैसे ही अन्य पाँच धर्म — १-३. पूर्ववत्; ४. इन्द्रियों को संयत न रखना; ५. भोजन की मात्रा न जानना॥

इन के विरोधी पाँच धर्म भिक्षु को हानि नहीं पहुँचाते॥

१६. सद्धर्मवर्ग —

१. प्रथम सम्यक्त्वनियामसूत्र : भिक्षु की साधना में विघ्नकारक पाँच धर्म : १. धर्म-कथा में विघ्न डालना; २. कथावाचक को विघ्न करना; ३. स्वयं को विघ्न में डाल लेना; ४. विक्षिप्त चित्त से कथा सुनना, तथा; ५. चञ्चल चित्त होकर धर्म पर मनन करना॥

इन से विपरीत पाँच धर्म भिक्षु की साधना में विघ्नकारक नहीं होते॥

२. द्वितीय सम्यक्त्वनियामसूत्र : विघ्नकारक पाँच धर्म — १-२. पूर्ववत्; ३. स्वयं को विघ्न में डाल लेना; ४. दुर्बुद्धि एवं जड़ होना; ५. अज्ञात को ज्ञात समझना॥

३. तृतीय सम्यक्त्वनियामसूत्र : साधना में विघ्नप्रद पाँच धर्म — १. अभिमानपूर्वक धर्मकथा करना; २. मन में उपालम्भ रखकर धर्मकथा सुनना; ३. धर्मोपदेशक से द्वेष; ४. जड़ एवं दुर्बुद्धि होना; ५. अज्ञात में ज्ञात का अभिमान॥

४. प्रथम सद्धर्मसम्मोषसूत्र : सद्धर्मनाशक पाँच — १. सत्कारपूर्वक धर्म को न सुनने वाला; २. सत्कारपूर्वक न पढने वाला; ३. न धारण करने वाला; ४. धारण किये धर्म का अर्थ न समझने वाला; ५. उसका अर्थ जान कर भी तदनुसार आचरण न करने वाला॥

५. द्वितीय सद्धर्मसम्मोषसूत्र : सद्धर्मनाश के पाँच कारण — १. जो नवाङ्ग सद्धर्म का अध्ययन नहीं करते; २. जो अधीत धर्म का दूसरों को उपदेश नहीं करते; ३. दूसरों को अभ्यास नहीं कराते; ४. जो धर्म का स्वाध्याय नहीं करते; ५. जो अधीत धर्म का समीक्षण नहीं करते॥

६. तृतीय सद्धर्मसम्मोषसूत्र : सद्धर्मनाश के अन्य पाँच कारण — १. धर्म का अशुद्ध पदव्यञ्जनों से अध्ययन; २. अविनय के कारण गुरूपदेश को न मानना; ३. दूसरों को सत्कारपूर्वक सूत्रान्त नहीं पढाना; ४. धर्मसाधना में आलस्य करना; ५. सङ्घ में मतभेद॥

७. दुःकथासूत्र : ये पाँच कथा **दुष्कथा** कहलाती हैं — १. अश्रद्धालु द्वारा कृत श्रद्धाकथा, २. दुःशील द्वारा कृत शीलकथा; ३. अल्पश्रुत द्वारा बहुश्रुत कथा; ४. अभिमानी द्वारा त्यागकथा एवं ५. दुष्प्रज्ञ द्वारा प्रज्ञाकथा॥

ये पाँच **सुकथा** कहलाती हैं — १. श्रद्धालु द्वारा कृत श्रद्धाकथा; २. सुशील द्वारा कृत शीलकथा; ३. बहुश्रुत द्वारा बहुश्रुतकथा; ४. त्यागी द्वारा त्यागकथा एवं ५. प्रज्ञावान् द्वारा प्रज्ञाकथा **'सुकथा'** कहलाती है॥

८. सारदयसूत्र : संसार में आसक्त करने वाले पाँच धर्म — १. रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धा; २. दुःशील; ३. अल्पश्रुतता; ४. आलस्य; ५. जड़ता (मन्दमति)॥

९. उदायिसूत्र : दूसरों को धर्मकथा कहने से पूर्व अपने मन में ये पाँच धर्म बैठा लेने चाहिये — १. 'आनुपूर्वी कथा कहूँगा'; २. 'अर्थ बताता हुआ कथा कहूँगा'; ३. 'अनुकम्पा करता हुआ कथा कहूँगा'; ४. 'भोग्य पदार्थों का उपहार न लेता हुआ कथा कहूँगा'; ५. 'स्व तथा पर को हानि न पहुँचाता हुआ कथा कहूँगा'॥

१०. दुष्प्रतिविनोदयसूत्र : कठिनता से दूर हटाने योग्य पाँच धर्म — १. उत्पन्न राग; २. उत्पन्न द्वेष; ३. उत्पन्न मोह; ४. उत्पन्न प्रतिभान; ५. उत्पन्न चित्त की चञ्चलता॥ ●

१७. आघातवर्ग —

१. प्रथम आघातप्रतिविनयसूत्र : पाँच आघातों के शमन — १. द्वेष के विरुद्ध मैत्री भावना; २. या करुणाभावना; ३. या उपेक्षा भावना; ४. या उसकी ओर ध्यान न देना; ५. या उसके कर्मों को ही इस द्वेष का उत्तरदायी मानना॥

२. द्वितीय आघातप्रतिविनयसूत्र : इन पाँच के प्रति द्वेष का शमन करना चाहिये — १. जो काया से शुद्ध व्यवहारकर्ता न होकर केवल वाणी से शुद्ध व्यवहार कर्ता है; २. जो वाणी से शुद्ध व्यवहारकर्ता न होकर केवल मन से शुद्ध व्यवहर्ता है; ३. जो काया एवं वाणी से शुद्ध व्यवहारकर्ता न होकर केवल मन से शुद्ध व्यवहर्ता है; ४. जो काया, वाणी एवं मन — तीनों से ही शुद्ध व्यवहारकर्ता न हो; तथा ५. जो शुद्ध काया, वाणी, मन से व्यवहर्ता है॥

३. साकच्छसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु धर्मचर्चा में समर्थ होता है — १. जो स्वयं शीलसम्पन्न है तथा दूसरों के शीलविषयक प्रश्नों का उत्तर देता है; २. जो स्वयं समाधिसम्पन्न है तथा दूसरों के....; ३. जो स्वयं प्रज्ञासम्पन्न है तथा दूसरों के...; ४. जो स्वयं विमुक्तिसम्पन्न है तथा दूसरों के...; ५. जो स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न है तथा दूसरों के विमुक्तिज्ञानदर्शनविषयक प्रश्नों का उत्तर देता है॥

४. साजीवसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ही दूसरों को शिक्षा देने में समर्थ — पूर्वसूत्रवत्॥

५. प्रश्नपृच्छासूत्र : प्रश्न पूछने के पाँच कारण — १. अपनी मन्दता (अज्ञान) के कारण; २. किसी पापी द्वारा अपनी इच्छापूर्ति के कारण; ३. दूसरे की पराजयहेतु; ४. ज्ञान के लिये; ५. 'यदि यह इस प्रश्न का उत्तर न दे सका तो मैं इसे दूँगा'—इस कारण॥

६. निरोधसूत्र : स्थविर भिक्षु का साथियों में पूजा-सम्मान का कारण — १. वह शीलवान् होता है; २. वह बहुश्रुत होता है; ३. वह शुभ वाणी बोलता है; ४. वह चार ध्यानों का लाभी होता है; ५. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति प्राप्त कर साधना करता है॥

७. चोदनासूत्र : दूसरों को उपदेश देने से पूर्व स्वयं में इन धर्मों का उद्भव आवश्यक — १. अवसर आने पर ही बोलूँगा, अवसर के बिना नहीं; २. सत्य ही बोलूँगा, असत्य नहीं; ३. मृदुता से बोलूँगा, कठोरता से नहीं; ४. सार्थक बात ही बोलूँगा, निरर्थक बात नहीं; ५. मैत्रीपूर्ण संवाद ही करूँगा, अमैत्रीपूर्ण नहीं॥

८. शीलसूत्र : पूर्वज्ञान के विना उत्तर ज्ञान असम्भव — १. विनष्टशील को सम्यक्समाधि प्राप्त करना असम्भव; २. सम्यक्समाधिरहित को यथाभूत ज्ञानदर्शन असम्भव; ३. यथाभूत-

ज्ञानदर्शनविरहित को निर्विदा एवं विराग असम्भव; ५. निर्विदा एवं विराग रहित को विमुक्तिज्ञान दर्शन प्राप्त करना असम्भव होता है॥

९. क्षिप्रनिशन्तिसूत्र : तीव्र धर्म-चिन्तन के पाँच प्रकार — १. बुद्धवचनों में अर्थकुशलता; २. बुद्धवचनों में धर्मकुशलता; ३. बुद्धवचनों में व्यञ्जनकुशलता; ४. बुद्धवचनों में निर्वचन कुशलता; ५. वहाँ पूर्वापर ज्ञानकुशलता॥

१०. भद्रजित्सूत्र : पाँच श्रेष्ठताएँ — १. जिस दर्शन के बाद आश्रवक्षय सम्भव हो, वही दर्शन श्रेष्ठ है; २. जिस श्रवण के बाद आश्रवक्षय सम्भव हो वही श्रवण श्रेष्ठ है; ३. जिस सुखानुभव के बाद आश्रवक्षय सम्भव हो....; ४. जिस सङ्केत के बाद आश्रवक्षय सम्भव हो....; ५. जिस भव (सत्ता) के बाद आश्रवक्षय सम्भव हो वही सत्ता श्रेष्ठ है॥ ●

१. उपासक वर्ग —

१. सारदयसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त उपासक सांसारिक आसक्ति में बँध जाता है — १. प्रायातिपान; २. चौरी; ३. व्यभिचार; ४. असत्यभाषण, एवं ५. मद्यपान॥

इन पाँचों धर्मों से विरहित उपासक संसार में निरासक्त रहता है॥

२. विशारदसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त उपासक गृह-जञ्जाल में फँसा रहता है — १. प्राणातिपात; २. चौरी; ३. व्यभिचार; ४. असत्यभाषण एवं ५. मद्यपान॥

३. निरयसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त उपासक नरकगामी — १. प्राणातिपात... ५. मद्यपान॥

४. वैरसूत्र : पाँच भयजनक वैर-धर्मों से युक्त उपासक 'दु:शील' कहलाता है — १. प्राणातिपात....५. मद्यपान॥

५. चाण्डालसूत्र : इन पाँच धर्मों से युक्त घृणित उपासक 'उपासक चाण्डाल' या 'उपासक मल' कहलाता है — १. जो रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धालु हो; २. खेल तमाशे में रुचि रखता हो; ३. दु:शील हो; ४. सांसारिक कृत्यों में ही जिस की चित्तवृत्ति निरन्तर रहती हो; ५. धर्मसाधना से बाह्य कृत्यों की प्राप्ति का प्रयास करता हो॥

परन्तु जो इन पाँचों धर्मों से दूर रहता है वह उपासक १. 'उपासकरत्न', 'उपासकपद्म', 'उपासकपुण्डरीक' कहलाता है॥

६. प्रीतिसूत्र : साधनाकर्ता आर्यश्रावक को ये पाँच धर्म उद्विग्न नहीं करते — १. काम-भोगविषयक दु:खदौर्मनस्य उद्विग्न नहीं करते; २. ....सुखसौमनस्य उद्विग्न नहीं करते; ३. अकुशलधर्मविषयक दु:खदौर्मनस्य...; ४. अकुशलधर्मविषयक सुखसौमनस्य...; ५. कुशल-धर्मविषयक सुख सौमनस्य उस को उद्विग्न नहीं करते॥

७. वाणिज्यसूत्र : उपासक को ये पाँच व्यापार (वाणिज्य) नहीं करने चाहिये — १. शस्त्रव्यापार; २. प्राणियों का व्यापार; ३. मांस का व्यापार; ४. मद्य का व्यापार एवं ५. विषमिश्रित वस्तुओं का व्यापार॥

८. राजसूत्र : कोई भी राजा या शासक इन पाँच को ही दण्ड देता है, इन से विपरीत को नहीं — १. प्राणातिपाती को; २. चौर को; ३. व्यभिचारी को; ४. असत्यभाषी को; ५. मद्यप को। अत: ये पाँचों धर्म त्याज्य हैं॥

९. गृहिसूत्र : गृहस्थजन पाँच शिक्षापदों को अपने में सञ्चित रखता है — १. प्राणातिपात से

विरति; २. अदत्तादान से विरति; ३. कामभोगों में मिथ्याचार से विरति; ४. असत्य भाषण से विरति एवं ५. मद्यपान से विरति॥

१०. गवेषिसूत्र : कोई भी आर्य गवेषी इन पाँच धर्मों की गवेषणा करता है — पूर्वसूत्रवत्॥

१९. अरण्य वर्ग —

१. आरण्यकसूत्र : पञ्चविध आरण्यक — १. कोई अपनी मूर्खता के कारण अरण्यवास करता है; २. कोई अपनी किसी पापवासना के कारण....; ३. कोई उन्माद या चित्तविक्षेप के कारण; ४. कोई बुद्ध एवं बुद्धश्रावकों द्वारा अरण्यवास की प्रशंसा किये जाने के कारण....; तथा ५. कोई अपने सन्तोष, अल्पेच्छता, कठोर तपस्या (सल्लेख), प्रविवेक (एकान्त), एवं किसी विशेष प्रयोजन के कारण अरण्यवास करता है। इनमें पञ्चम आरण्यक श्रेष्ठ होता है॥

२. चीवरसूत्र : पञ्चविध पांशकूलिक — पूर्वसूत्रवत्॥

३. वृक्षमूलिकसूत्र : वृक्ष के नीचे वास करने वाले पञ्चविध — पूर्वसूत्रवत्॥

४. श्मशानिकसूत्र : श्मशान में वास करने वाले पञ्चविध — पूर्वसूत्रवत्॥

५. आभ्यवकाशिकसूत्र : खुले मैदान में वास करने वाले पञ्चविध — पूर्वसूत्रवत्॥

६. नैषद्यिकसूत्र : निरन्तर बैठे रहकर साधना करने वाले पञ्चविध — पूर्वसूत्रवत्॥

७. यथाश्रन्थतिकसूत्र : जहाँ तहाँ बैठकर साधना करने वाले पञ्चविध — पूर्वसूत्रवत्॥

८. सेकासनिक सूत्र : एक आसन से बैठ कर साधना करने वाले पञ्चविध — पूर्वसूत्रवत्॥

९. खलुपश्चाद्भक्तिकसूत्र : पञ्चविध पश्चाद्भक्तिक साधक — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. पात्रपिण्डिकसूत्र : पञ्चविध पात्रपिण्डिकसूत्र — पूर्वसूत्रवत्॥

(इस वर्ग का विस्तृत विवरण विसुद्धिमग्ग ग्रन्थ के द्वितीय परिच्छेद में देखें।)

२०. ब्राह्मणवर्ग — प्राचीन ब्राह्मणों के जीवन से वर्तमान ब्राह्मण जीवन की तुलना —

१. सोणसूत्र : पाँच प्राचीन ब्राह्मण धर्म — १. प्राचीन ब्राह्मण ब्राह्मणी से ही संवास करते थे, अन्य से नहीं; २. प्राचीन ब्राह्मण अपनी ऋतुस्नाता पत्नियों के साथ ही संवास करते थे; ३. प्राचीन ब्राह्मण किसी ब्राह्मणी का क्रयविक्रय नहीं करते थे; ४. प्राचीन ब्राह्मण रजत सुवर्ण आदि का कुछ भी परिग्रह नहीं करते थे; ५. प्राचीन ब्राह्मण प्रातः काल के भोजन के लिये प्रातः काल तथा सायङ्काल के भोजन के लिये सायङ्काल ही भिक्षा करते थे; परन्तु आज के ब्राह्मण भोजनोत्तर बचा हुआ भोजन बाँध कर घर पर ले आते हैं॥

२. द्रोणब्राह्मणसूत्र : ब्राह्मणों के पाँच प्रकार — १. ब्रह्म, २. देवसम, ३. मर्याद, ४. सम्भिन्न मर्याद, एवं ५. ब्राह्मणचाण्डाल॥

३. सङ्गारवसूत्र : बहुत समय तक स्वाध्याय करने पर भी मन्त्रों का ज्ञान पाँच कारणों से नहीं होता — १. किसी मन्त्रस्वाध्यायी पुरुष का चित्त कामराग में आसक्त हो, और वह उससे मुक्ति का उपाय भी न जानता हो; २. किसी का चित्त किसी अन्य के प्रति द्वेष से पूर्ण हो; ३. किसी पुरुष का चित्त स्त्यानमृद्ध से पूर्ण हो; ४. किसी पुरुष का चित्त औद्धत्य कौकृत्य से पूर्ण हो; ५. किसी का चित्त विचिकित्सायुक्त हो, और वह उससे मुक्ति का उपाय भी न जानता हो॥

४. कारणपालीसूत्र : बुद्धोपदेश के माधुर्य की उत्तमता में पाँच उपमाएँ — १. उत्तम रस का स्वाद चखने के बाद अपेक्षाकृत हीन रस की उपेक्षा के समान; २. मधुमिश्रित लड्डू के सार्वत्रिक

माधुर्य के समान; ३. चन्दन काष्ठस्थित सार्वत्रिक उत्तम सुगन्ध के समान; ४. कुशल वैद्य द्वारा किसी भयङ्कर रोग की चिकित्सा के समान; ५. किसी घाम से तप्त एवं प्यास से दुःखी पुरुष का किसी स्वच्छ जलयुक्त पुष्करणी में प्रवेश के समान॥

५. पिङ्गियानीसूत्र : लोक में पाँच रत्नों का प्रादुर्भाव दुर्लभ — १. तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध का प्रादुर्भाव; २. तथागतोपदिष्ट धर्मोपदेश के व्याख्याता का प्रादुर्भाव; ३. तथागतोपदिष्ट धर्मविनय को समझने वाले का प्रादुर्भाव; ४. तथागतोपदिष्ट धर्मविनय पर आचरण करने वाले का प्रादुर्भाव दुर्लभ; एवं ५. कृतज्ञ तथाकृत उपकार के स्मरणकर्त्ता का प्रादुर्भाव दुर्लभ॥

६. महास्वप्नसूत्र : सम्बोधि प्राप्ति से पूर्व तथागत के पाँच महास्वप्न — १. यह महापृथ्वी उन का महाशयन (पलंग) बनी हुई थी; पर्वतराज हिमालय उनका तकिया था, उन के दोनों पैर दक्षिण समुद्र में तथा पूर्वसमुद्र में उनका वामहस्त तथा पश्चिम समुद्र में दक्षिण हस्त छिपा था; २. उन के नाभिमण्डल से तिर्यक् नामक तृण निकल कर आकाश तक पहुँच कर खड़ा था; ३. उनके पैरों की ओर नखाग्र भाग से जानुमण्डल तक कृष्णवर्ण क्रिमि लिपटे हुए थे; ४. नानावर्ण वाले चार पक्षी, चारों दिशाओं से आ कर उन के चरणों के पास बैठते ही श्वेतवर्ण हो गये; ५. पुरुषमल पर चंक्रमण करते हुए भी वे उससे पूर्णतः अलिप्त दिखायी देते थे। इनमें — १. प्रथम महास्वप्न का फल — सम्बोधिप्राप्ति; २. द्वितीय महास्वप्न का फल — आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का ज्ञान, जिसके आश्रयण से उनने देवताओं तथा मनुष्यों को धर्मोपदेश किया; ३. श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ गृहस्थजनों को अपना उपासक बनाया; ४. चतुर्थ महास्वप्न का फल — क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र — इन चारों वर्णों के मनुष्य उनके धर्मविनय में प्रव्रजित हुए; ५. पञ्चम महास्वप्न के फलस्वरूप उन को चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं भैषज्य का अतिशय लाभ हुआ॥

७. वर्षासूत्र : वर्षा के पाँच विघ्न — १. तेजोधातु का प्रकोप; २. वायुधातु का प्रकोप; ३. राहु असुरेन्द्र द्वारा समुद्र का जल अपने हाथों से रोक देना; ४. वर्षाकारी मेघों का बहक जाना; एवं ५. जनता द्वारा धर्मविरुद्ध आचरण॥

८. वाचासूत्र : वाणी की सुभाषितता में पाँच कारण — १. अवसर देख कर, २. मधुर, ३. सार्थक, ४. मैत्रीपूर्ण एवं सत्यवाणी बोलना॥

९. कुलसूत्र : प्रव्रजितों के आगमन से गृहस्थ जन पाँच प्रकार से पुण्यार्जन करते हैं — १. प्रव्रजितों के प्रति श्रद्धा; २. प्रव्रजितों को प्रत्युत्थान, अभिवादन आदि; ३. प्रव्रजितों के घरमें पधारने पर अभिमान त्यागकर उनकी सेवा; ४. उनको भोजनदान; ५. उन से धर्मविषयक परिप्रश्न॥

१०. निःसारणीयसूत्र : पाँच निःसारणीय धातु — १. कामभोगों का निःसारण; २. व्यापाद का निःसारण; ३. उद्विग्नता का निःसारण; ४. रूप का निःसारण; ५. सत्कायदृष्टि-निःसारण॥ ●

२१. किमिलवर्ग —

१. किमिलसूत्र : सद्धर्म की स्थायिता में पाँच कारण — १. शास्ता के परिनिर्वृत होने पर यदि भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिकाएँ; १. तथागत के प्रति; २. धर्म के प्रति; ३. सङ्घ के प्रति; ४. उनकी शिक्षा के प्रति तथा ५. स्वयं परस्पर गौरवपूर्ण व्यवहार तथा विद्रोह करने लगते हैं तब सद्धर्म की आयु (स्थायिता) क्षीण होने लगती है।

परन्तु यदि उक्त चारों समूह तथागत आदि के प्रति गौरवभाव प्रदर्शित करते हैं तो यही सद्धर्म चिरस्थितिक होने लगता है॥

२. धर्मश्रवणसूत्र : धर्मश्रवण के पाँच प्रत्यक्ष लाभ — १. श्रोता को अश्रुत का श्रवण, २. श्रुत की शुद्धि, ३. सन्देह का निराकरण, ४. धार्मिक दृष्टि से सरलता, ५. धर्म के प्रति चित्त में श्रद्धा॥

३. अश्वाजानेयसूत्र : भिक्षु में उच्च जाति के अश्व के समान पाँच गुण — १. सरलता, २. वेग (गति), ३. मृदुता, ४. सहनशीलता, ५. विनम्रता॥

४. बलसूत्र : साधनोपयोगी पाँच बल — १. श्रद्धाबल, २. ह्रीबल, ३. अवत्राप्य बल, ४. वीर्यबल, एवं ५. प्रज्ञाबल॥

५. चेत:कीलसूत्र : चित्त की पाँच कठोरताएँ — कोई भिक्षु १. शास्ता के विषय में, २. धर्म के विषय में, ३. सङ्घ के विषय में, ४. शिक्षा के विषय में, ५. साक्षी भिक्षुओं के विषय में १. न कोई आकांक्षा, २. न कोई सन्देह करता है, ३. न उनकी ओर प्रवृत्त होता है, ४. उन में श्रद्धा करता है, ५. न साधना हेतु कोई प्रयास, या दोषों के प्रहाण हेतु कोई प्रयास करता है, यही पाँचों बातें चित्त की कठोरता कहलाती हैं॥

६. विनिबन्धसूत्र : चित्त के पाँच विनिबन्ध (आसक्तियाँ) — किसी भिक्षु का चित्त १. कामभोगों में; २. काया में रागसहित...तृष्णासहित होता है, इस कारण वह साधना में कोई प्रयास, या दोषों के प्रहाण हेतु नहीं झुकता; ३. कोई भरपेट भोजन कर शय्यासुख, पार्श्वसुख, एवं आलस्य युक्त होकर साधना करता है; ४. किसी देवनिकाय में उत्पाद का सङ्कल्प करता है तथा उस सङ्कल्प की पूर्ति हेतु उस देवता की आराधना में लग जाता है; तथा ५. उसका चित्त वास्तविक धर्मसाधना में प्रयत्न एवं प्रधान के लिये नहीं झुकता॥

७. यागुसूत्र : यागु (=यवागु=विशेष प्रकार की दाल या खिचड़ी, पेय पदार्थ) के पाँच विशेष गुण — १. क्षुद्र रोगों को नष्ट करती है, २. प्यास मिटाती है, ३. उदरगत वायु को अनुलोम करती है, ४. वस्ति (आन्त्र) का शोधन एवं ५. आमावशेष (अजीर्ण) को मिटाती है॥

८. दन्तकाष्ठसूत्र : दतुअन न करने के पाँच दोष — १. नेत्रज्योति का कम होना, २. मुख में दुर्गन्ध, ३. रसवाहिनी नाडियाँ स्वच्छ नहीं रहतीं, ४. शरीरस्थ वात पित्त कफ एवं खाया हुआ अन्न व्यवस्थित नहीं रहता; ५. खाया हुआ अन्न विलम्ब से पचता है॥

इनके विपरीत दतुअन करने के पाँच गुण होते हैं॥

९. गीतस्वरसूत्र : उच्च गायन स्वर से धर्मवाचन के पाँच दोष — १. गायन में आसक्ति; २. दूसरों को भी उस गायन में आसक्ति; ३. उस को सुनने वाले गृहस्थ उपासक भी भिक्षु की अपनी हीनता से तुलना करने लगते हैं; ४. स्वर के आरोह अवरोह को व्यवस्थित करने में समाधिभङ्ग का सङ्कट; ५. पीछे आने वाली जनता भी उन भिक्षुओं का अनुकरण करती हुई स्वरबद्ध लयबद्ध धर्म श्रमण में रस लेने लगती है॥

१०. मुट्ठस्मृतिसूत्र : विस्मरणशील पुरुष के निद्राकाल के पाँच दोष — १. निद्रा में कठिनता; २. कठिनता से जागना; ३. सोते समय पापमय स्वप्न देखना; ४. देवता भी उसकी रक्षा में असमर्थ; ५. सोते समय मूत्रोत्सर्ग या वीर्यपात॥

●

२२. आक्रोशकवर्ग —

१. आक्रोशकसूत्र : सङ्घनिन्दक भिक्षु के पाँच अपराध — १. पाराजिक दोष या एतत्समान किसी अन्य आपत्ति से ग्रस्तता; ३. भयङ्कर रोग की उत्पत्ति; ४. संज्ञा रहित (बेहोश) की मृत्यु; ५. मरणानन्तर नरक में पतन॥

२. भण्डनकारकसूत्र : सङ्घ में कलहकारक भिक्षु के पाँच दोष — १. वह अप्राप्त को प्राप्त नहीं कर पाता; २. प्राप्त को नष्ट कर लेता है; ३. लोक में अपयश; ४. संज्ञारहित की मृत्यु; एवं ५. मरणानन्तर नरक में पात॥

३. शीलसूत्र : दुःशील के पाँच दुष्परिणाम — १. दुःशील की विशाल सम्पत्ति का नाश; २. लोक में अपयश; ३. परिषदों में मूर्खवत् शिर नीचा करके बैठना; ४. संज्ञारहित अवस्था में मृत्यु; ५. देहपात के बाद नरकपात॥ सुशील के इसके विपरीत परिणाम होते हैं॥

४. बहुभाणिसूत्र : प्रलापी के पाँच दोष — १. असत्यभाषण; २. चुगली करना; ३. कर्कशवाणी; ४. व्यर्थ प्रलाप; ५. मरणानन्तर नरकपात॥

इसके विपरीत मितभाषी पुद्गल के पाँच गुण — १. सत्यभाषण, २. चुगली न करना; ३. कठोर न बोलना; ४. मितभाषण; ५. मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक॥

५. प्रथम अक्षान्तिसूत्र : असहनशीलता के पाँच दोष — १. बहुत जनों से वैर; २. बहुत जनों का अप्रिय; ३. अनेक दुर्गुणों का समावेश; ४. संज्ञाशून्यता में मृत्यु; ५. मरणानन्तर नरकप्राप्ति॥

इसके विपरीत सहनशील के पाँच गुणा॥

६. द्वितीय अक्षान्तिसूत्र : असहनशीलता के पाँच अन्य दोष — बहुत जनों के लिये १. अप्रिय, अनाकर्षक एवं २. निर्दय; ३. अपने किये न किये पर पछताने वाला; ४. संज्ञारहित होकर मरने वाला; ५. मरणानन्तर दुर्गतिमय नरकप्राप्ति॥

सहनशील के इसके विपरीत पाँच गुण हैं॥

७. प्रथम अप्रासादिकसूत्र : अप्रियकर पुद्गल के पाँच दोष — १. स्वयं ही स्वयं पर दोषारोपक; २. विद्वानों द्वारा निन्दनीय; ३. लोक में अपयश; ४. संज्ञारहित मृत्यु; एवं ५. मरणानन्तर नरकपात॥

प्रियकर पुद्गल के पाँच गुण इन से विपरीत हैं॥

८. द्वितीय अप्रासादिकसूत्र : अप्रियङ्कर पुद्गल के पाँच दोष — १. अप्रसन्न उस पर प्रसन्न नहीं होते; २. जो प्रसन्न हैं वे भी विरुद्ध हो जाते हैं; ३. शास्ता का अनुशासन पूर्ण नहीं करता; ४. पीछे आने वाली जनता भी उस के प्रमाद सीख लेती है; ५. वह स्वयं सदा प्रसन्न नहीं रहता॥

प्रियङ्कर पुद्गल के इसके विपरीत पाँच गुण॥

९. अग्निसूत्र : अग्नि के पाँच दोष — १. नेत्र ज्योति मन्द हो जाती है; २. शरीर के वर्ण में विकार; ३. शरीर में दुर्बलता; ४. जनसमूह की उसके पास वृद्धि; ५. व्यर्थ के संवाद में अधिकता॥

१०. मथुरासूत्र : मथुरा नगरी के पाँच दोष — १. उस की भूमि ऊँची नीची है, २. वहाँ धूल बहुत उड़ती है, ३. वहाँ कुत्ते बहुत क्रोधी है, ४. भूत प्रेतों का बाहुल्य है, ५. भिक्षा बहुत कठिनता से मिलती है॥

२३. दीर्घचारिक वर्ग —

१. प्रथम दीर्घचारिकसूत्र : अव्यवस्थित लम्बी चारिका के पाँच दोष — १. वह अश्रुत को नहीं सुन पाता; २. श्रुत को स्पष्टतया धारण नहीं कर पाता; ३. श्रुत के एक अंश से अपरिचित रह जाता है; ४. भयङ्कर रोग से पीड़ित हो जाता है, ५. उस का कोई मित्र नहीं बन पाता॥

व्यवस्थित चारिका वाले के इनके विपरीत पाँच गुण होते हैं॥

२. द्वितीय दीर्घचारिकसूत्र : अव्यवस्थित लम्बी चारिका के पाँच दोष — १. वह अप्राप्त को प्राप्त नहीं कर पाता; २. प्राप्त भी उससे छूट जाता है; ३. प्राप्त के एक भाग से अपरिचित रहता है; ४. भयङ्कर रोग की आशङ्का; ५. उस का कोई मित्र नहीं बनना चाहता॥

विपरीत के पाँच एतद्विपरीत गुण॥

३. अतिनिवाससूत्र : (क) अधिक समय तक एक स्थान पर वास में पाँच दोष — १. परिग्रही हो जाता है; २. वह वहाँ बहुत से पथ्य संगृहीत कर लेता है; ३. बहुत से सांसारिक कृत्यों के जञ्जाल में फँस जाता है; ४. उसका अनेक गृहस्थों तथा प्रव्रजितों से परिचय; ५. आवास छोड़ते समय आवास की अनेक वस्तुओं में आसक्ति॥

(ख) समय पर आवासपरिवर्तन से इससे विपरीत पाँच गुण॥

४. मत्सरीसूत्र : अधिक समयतक एक स्थान पर वास के पाँच दोष — (क) १. आवास का अभिमान; २. कुल का अभिमान; ३. प्राप्त लाभ का अभिमान; ४. रूप का अभिमान; ५. धर्म का अभिमान॥ (ख) अल्प समय तक एक स्थान पर वास के गुण उपर्युक्त से विलोम॥

५. प्रथम कुलोपगसूत्र : गृहस्थों के घर में अधिक जाने के पाँच दोष — १. विना बुलाये जाने का दोष; २. स्त्रियों के साथ एकान्त में बैठने का दोष; ३. छिपे स्थान पर बैठने का दोष; ४. स्त्रियों को पाँच छह वाक्य से अधिक बोलने का दोष; ५. स्त्रियों के साथ कामराग से आसक्त होने का दोष॥

६. द्वितीय कुलोपगसूत्र : गृहस्थों के घरों में अधिक जाने के पाँच दोष — १. स्त्रियों से प्रतिदिन आँख लड़ाना; २. इस कार्य की अतिशयता से कामसंसर्ग का दोष; ३. ऐसी स्थिति में अतिशय विश्वास का दोष; ४. अतिशय विश्वास के कारण मैथुनसङ्केत का दोष; ५. इस सङ्केत के दो परिणाम — (क) प्रव्रज्या में अरुचि एवं (ख) गृहस्थ धर्म में लौटना॥

७. भोगसूत्र : (क) कामभोगों के पाँच दोष — १. अग्निदाह, २. जलप्रवाह, ३. राजाओं द्वारा अपहरण; ४. चौरों द्वारा चुराये जाने का भय; ५. सम्बन्धिजनों द्वारा बलात् नियन्त्रण॥

(ख) कामभोगों के पाँच गुण — १. इन के सहारे स्वयं को सुखी रखना; २. माता पिता को सुखी रखना; ३. पुत्र स्त्री, दास दासियों को सुखी रखना; ४. मित्र अमात्यों को सुखी रखना; ५. श्रमण ब्राह्मणों को दान करने से मरणानन्तर स्वर्गप्राप्ति॥

८. उत्सूरभक्तसूत्र : सूर्योदय के साथ ही भोजन के पाँच दोष — १. अतिथियों का यथासमय सत्कार नहीं हो पाता; २. देवताओं को बलि नहीं चढायी जाती; ३. एक बार भोजन करने वाले श्रमणों को भिक्षा नहीं मिलती; ४. उन के दास दासी मन लगा कर कार्य नहीं करते; ५. प्रातः काल का भोजन बलप्रद नहीं होता॥

यथासमय भोजन के इन से प्रतिलोम पाँच गुण॥

९. प्रथम कृष्णसर्पसूत्र : (क) कृष्ण सर्प के पाँच दुर्गुण — १. अपवित्र, २. दुर्गन्धयुक्त, ३. कायर, ४. देखने में भयङ्कर, ५. विश्वासघातक॥

(ख) स्त्रियों के पाँच दुर्गुण — १. अपवित्र, २. दुर्गन्धयुक्त, ३. कायर, ४. देखने वाले के लिये भयप्रद एवं ५. विश्वासघातिनी॥

१०. द्वितीय कृष्णसर्पसूत्र : (क) कृष्णसर्प के पाँच अन्य दोष — १. क्रोधी, २. शत्रुता रखने वाला, ३. भयङ्कर विषधर, ४. दो जिह्वा वाला, एवं ५. विश्वासघाती॥

(ख) स्त्रियाँ भी पाँच दुर्गुण वाली — १. क्रोधी; २. शत्रुता रखने वाली, ३. भयङ्कर विषधर; ४. दो जिह्वा वाली; ५. विश्वासघाती॥

२४. आवासिकवर्ग —

१. आवासिक सूत्र : पाँच धर्मों वाला आवासव्यवस्थापक भिक्षुओं का सम्माननीय नहीं होता — १. अभिक्षुजनोचित ईर्यापथ वाला; २. अबहुश्रुत, एवं अश्रुतधर; ३. दूसरों को तप, साधना हेतु प्रेरित न करने वाला; ४. मङ्गलमय वाणी न बोलने वाला; तथा ५. भेड़ बकरी के समान गूँगा, दुष्प्रज्ञ॥

इन के विपरीत पाँच धर्मों वाला व्यवस्थापक सम्माननीय॥

२. प्रियसूत्र : पाँच धर्मयुक्त आवासिक भिक्षु भिक्षुओं का सम्माननीय — १. शीलवान्; २. बहुश्रुत; ३. कल्याणवाक्; ४. चार ध्यानों का लाभी; एवं ५. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति की साधना करने वाला॥

३. शोभनसूत्र : ....आवास का शोभावर्धक — १. शीलवान्, २. बहुश्रुत, ३. कल्याणवाक्, ४. धार्मिक कथावाचक एवं ५. चारों ध्यानों का लाभी॥

४. बहूपकारसूत्र : ....आवास का उपकारक — १. शीलवान्, २. बहुश्रुत, ३. कल्याण-वाक्, ४. आगन्तुक भिक्षुओं को गृहस्थों के सम्मुख यह कहकर प्रस्तुत करने वाला — 'आप लोग पुण्य करें, यह पुण्य का अवसर उपस्थित है'; ५. चारों ध्यानों का लाभी॥

५. अनुकम्पसूत्र : अनुकम्पक आवासिक भिक्षु — १. भिक्षुओं को शील में प्रतिष्ठित करने वाला; २. धर्मदर्शन में लगाने वाला; ३. रोगियों को अर्हत्-ध्यान हेतु प्रेरित करने वाला; ४. आगन्तुक भिक्षुओं को पुण्य हेतु गृहस्थों के सम्मुख प्रस्तुत करने वाला; ५. गृहस्थों से मिलने वाला रूक्ष भोजन स्वयं खा लेने वाला तथा प्रणीत भोजन भिक्षुओं को दे देने वाला॥

६. प्रथम अवर्णार्हसूत्र : (क) पञ्चविध अधर्मयुक्त आवासिकभिक्षु नरकगामी — १. विना सोचे समझे अनिन्दनीय का निन्दक; २. ...अप्रशंसनीय का प्रशंसक; ३. ...अश्रद्धेय में श्रद्धाकर्ता; ४. ...श्रद्धेय में अश्रद्धाकर्ता; तथा ५. श्रद्धाप्रदत्त रूक्ष भोजन को फेंक देने वाला॥

(ख) इन से विपरीत धर्मों वाला आवासिक भिक्षु स्वर्गगामी होता है॥

७. द्वितीय अवर्णार्हसूत्र : पञ्चविध धर्मयुक्त आवासिक भिक्षु नरकगामी — १. पूर्ववत्, २. विना सोचे समझे प्रशंसनीय का निन्दक; ३. आवास का अभिमानी; ४ कुल का अभिमानी; ५. श्रद्धाप्रदत्त रूक्ष भोजन को फेंक देने वाला॥

(ख) इन से विपरीत धर्मवाला आवासिक भिक्षु स्वर्गगामी होता है॥

८. तृतीय अवर्णार्हसूत्र : (क) पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु निन्दनीय — १.-२.-३.-४. पूर्ववत्; ५. लाभप्राप्ति का अभिमानकर्ता॥

(ख) ....पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु प्रशंसनीय — उपर्युक्त का विलोम॥

९. प्रथम मात्सर्यसूत्र : (क) पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु निन्दनीय — १. जिस को अपने आवास का; २. कुल का; ३. लाभप्राप्ति का; ४. रूप-सौन्दर्य का अभिमान होता है; ५. श्रद्धाप्रदत्त रूक्ष भोजन को फेंक देने वाला॥

(ख) इससे विपरीत धर्म वाला आवासिक भिक्षु प्रशंसनीय होता है॥

१०. द्वितीय मात्सर्यसूत्र : (क) ....निन्दनीय — १-२-३-४. पूर्ववत्; ५. धर्म का अभिमान करता है॥

(ख) इससे विपरीतधर्मा भिक्षु प्रशंसनीय होता है॥ ●

२५. दुश्चरितवर्ग —

१. प्रथम दुश्चरितसूत्र : (क) दुश्चरित भिक्षु के पाँच दोष — १. स्वयं ही स्वयं पर दोषारोपक; २. विज्ञ जनों द्वारा निन्दित; ३. लोक में अपयश वाला; ४. संज्ञाहीन मृत्यु पाने वाला; ५. देहपातानन्तर नरक लोकगामी॥

(ख) इससे विपरीत सुचरित के पाँच गुण॥

२. प्रथम कायदुश्चरितसूत्र : पूर्ववत्॥

३. प्रथम वाग्दुश्चरितसूत्र : पूर्ववत्॥

४. प्रथम मनोदुश्चरितसूत्र : पूर्ववत्॥

५. द्वितीय दुश्चरितसूत्र : (क) दुश्चरित भिक्षु के पाँच दोष — १. स्वयं ही स्वयं पर दोषारोपक; २. विज्ञ जनों द्वारा निन्दित; ३. लोक में अपयश; ४. सद्धर्मपालन में चित्त की उद्विग्नता; ५. असद्धर्मपालन में चित्त की प्रवृत्ति॥

(ख) इससे विपरीत सुचरित के पाँच गुण॥

६. द्वितीय कायदुश्चरितसूत्र : ...कायदुश्चरित — पूर्ववत्॥ ...कायसुचरित — पूर्ववत्॥

७. द्वितीय वाग्दुश्चरितसूत्र : ...वाग्दुश्चरित — पूर्ववत्॥ ...वाक्सुचरित — पूर्ववत्॥

८. द्वितीय मनोदुश्चरितसूत्र : ...मनोदुश्चरित — पूर्ववत्॥ ...मनःसुचरित — पूर्ववत्॥

९. सिवथिकासूत्र : श्मशान के पाँच दोष — १. अपवित्रता; २. दुर्गन्धता; ३. भयानकता; ४. भूतप्रेतों का आवास; ५. बहुत से मनुष्यों का रुदन॥

१०. पुद्गलप्रसादसूत्र : पुद्गल की किसी से प्रसन्नता के पाँच दोष — १. अपने प्रिय भिक्षु को सङ्घ से बाहर निकाल दिये जाने पर रोष; २. अपने प्रिय भिक्षु को सङ्घ की पंक्ति के अन्त में बैठाये जाने पर रोष; ३. अपने प्रिय भिक्षु द्वारा सङ्घ छोड़ दिये जाने पर रोष; ४. अपने प्रिय भिक्षु के उन्मत्त हो पर रोष; तथा ५. अपने प्रिय भिक्षु के देहपात के बाद रोष॥ ●

२६. उपसम्पदावर्ग —

१. उपसम्पादयितव्यसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु उपसम्पदा देने का अधिकारी — १. जो अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से; २. जो अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से; ३. जो अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से; ४. जो अशैक्ष्य विमुक्तिस्कन्ध से; तथा ५. जो अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त हो॥

२. निःश्रयसूत्र : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु द्वारा अन्य भिक्षु को संरक्षण प्रदान — १. २. ३. ४. ५. पूर्ववत्॥

३. श्रामणेरसूत्र : इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु द्वारा ही किसी श्रामणेर को अपनी सेवा में रखना चाहिये — पूर्ववत्॥

४. पञ्चमात्सर्यसूत्र : पाँच मात्सर्य — १. आवास का मात्सर्य ; २. कुल का मात्सर्य; ३. चीवरादि के लाभ का मात्सर्य; ४. रूप का मात्सर्य, एवं ५. धर्म का मात्सर्य॥

५. मात्सर्यप्रहाणसूत्र : धर्मसाधना से उक्त पाँच मात्सर्यों का प्रहाण — १. आवासमात्सर्य के प्रहाण हेतु धर्मसाधना; २. ३. ४. ५. पूर्ववत्॥

६. प्रथमध्यानसूत्र : पाँच मात्सर्यों के त्याग विना प्रथम ध्यान की साधना असम्भव — १. आवासमात्सर्य के त्याग विना...; २. ३. ४. ५. धर्ममात्सर्य के त्याग विना प्रथम ध्यान की साधना असम्भव होती है॥

७-१३. द्वितीयध्यानादिसूत्रसप्तक : पाँच मात्सर्यों के त्याग विना द्वितीय ध्यान आदि की साधना असम्भव — ...द्वितीय ध्यान...तृतीय ध्यान...चतुर्थ ध्यान...स्रोतआपत्तिफल...सकृदागामिफल...अनागामिफल...अर्हत्त्व का साक्षात्कार असम्भव है। पाँचों मात्सर्य पूर्ववत्॥

१४. अपर प्रथमध्यानसूत्र : १. आवासमात्सर्य, २. कुलमात्सर्य, ३. लाभमात्सर्य; ४. वर्णमात्सर्य, एवं ५. अकृतज्ञता, अकृतवेदिता के त्याग विना प्रथम ध्यान की साधना असम्भव है॥

१५-२१. अपर द्वितीयध्यानसूत्रादिसप्तक : पूर्वसूत्रवत् विस्तार कर लें॥ ●

२७. सम्मतिपेय्याल —

१. भक्तोद्देशकसूत्र : (क) पाँच धर्मों से युक्त भोजनव्यवस्थापक उचित नहीं — १. पक्षपाती, २. द्वेषी, ३. मुग्ध (निर्णय करने में असमर्थ), ४. भीत, एवं ५. उद्दिष्ट, अनुद्दिष्ट का अज्ञाता॥

(ख) इन से विपरीतधर्मा भोजनव्यवस्थापक ही उचित है॥

परन्तु इन पाँच धर्मों से युक्त होने पर, सर्वसम्मत को भी, भोजनव्यवस्थापक नहीं बनाना चाहिये — १. जो पक्षपाती या २. द्वेषी हो, ३. उसकी मूर्खता पर, ४. उसकी बुद्धिममत्ता पर, ५. उसके शारीरिक उत्साह पर विचार कर लेना चाहिये॥

२.-१४. उपर्युक्त पक्षपात आदि पाँच धर्मों से युक्त — १. शयनासनप्रज्ञापक, २. शयनासनग्राहापक, ३. भण्डारी, ४. चीवरप्रतिग्राहक, ५. चीवरविभाजक, ६. यवागुविभाजक, ७. फलविभाजक, ८. खाजा (मिठाई) विभाजक; ९. अल्पमात्राविसर्जक, १०. शाटीग्राहापक, ११. पात्रग्राहापक, १२. आरामिकप्रेषक, १३. श्रामणेरप्रेषक का भी चयन नहीं करना चाहिये॥ ●

२८. शिक्षापदपेय्याल (शिक्षापदविस्तार) —

१. भिक्षुसूत्र : (क) पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु नरकगामी — १. प्राणातिपाती, २. चौर (अदत्तादायी), ३. कामभोगों में मिथ्याचारी, ४. असत्यभाषी एवं ५. मद्यप॥

(ख) इन से प्रतिलोम पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु स्वर्गगामी होता है॥

२-७. भिक्षुणीसूत्रादि : पूर्वसूत्रवत् विस्तार॥

८. आजीवकसूत्र : पूर्वसूत्रवत् विस्तार॥

९-१७. निर्ग्रन्थसूत्रादि : १. निर्ग्रन्थ, २. मुण्डश्रावक, ३. जटिलक, ४. मागन्दिक, ५. परिव्राजक, ६. त्रैदण्डिक, ७. आरुद्धक, ८. गौतमक, एवं ९. देवधार्मिक — ये श्रमण भी पाँच धर्मों से युक्त होने पर नरकगामी होते हैं॥

●

२९. रागपेय्याल (रागविस्तार) —

चतुष्कनिपात के **रागपेय्याल** के समान ही विस्तार कर लें॥

●

पञ्चकनिपातसंक्षेप सम्पन्न॥

●

षट्कनिपात

१. आह्वनीयवर्ग —

१. प्रथम आह्वनीय सूत्र : इन छह धर्मों से युक्त भिक्षु उपहारयोग्य एवं स्वागतयोग्य होता है — जो भिक्षु १. रूप में; २. शब्द में; ३. गन्ध में; ४. रस में; ५. स्प्रष्टव्य विषय में तथा ६. मनोधर्मों में उपेक्षाभाव रखता हुआ ही लोकव्यवहार चलाता है, सुखानुभव करता है ऐसा भिक्षु लोक के लिये पुण्यस्थली है॥

२. द्वितीय आह्वनीयसूत्र : छह धर्मों से युक्त भिक्षु ....— १. जो विविध चमत्कारों का अनुभव करता है; २. विशुद्ध एवं दिव्य श्रोत्र धातु से दूर या पास के ऐहलौकिक या पारलौकिक शब्द सुनता है; ३. दूसरे के चित्त से स्वचित्त का संयोजन कर उसके चित्त की दशा जानता है; ४. स्वकीय उपभुक्त जन्मों का स्मर्ता; ५. दिव्य चक्षुर्धातु से दूसरों का पूर्वजन्मविषयक ज्ञाता; एवं ६. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति की साधना कर्ता होता है॥

३. इन्द्रियसूत्र : छह धर्मों से युक्त भिक्षु...—जो १. श्रद्धेन्द्रिय से; २. वीर्येन्द्रिय से; ३. स्मृतीन्द्रिय से; ४. समाधीन्द्रिय से; ५. प्रज्ञेन्द्रिय से, ६. आश्रवों के क्षय से अनाश्रता चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति का साक्षात्कार कर साधना करता है॥

४. बलसूत्र : छह धर्मों से युक्त भिक्षु ...— जो १. श्रद्धाबल से; २. वीर्यबल से; ३. स्मृति-बल से; ४. समाधिबल से; ५. प्रज्ञाबल से; ५. आश्रवक्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति का साक्षात्कार कर साधना करता है॥

५. प्रथम आजानेयसूत्र : किसी राजा के श्रेष्ठ अश्व के समान छह धर्मों से युक्त भिक्षु...जो १. रूप, २. शब्द, ३. गन्ध, ४. रस, ५. स्प्रष्टव्य विषय, ६. मनोधर्मों को सम्यक् रूप से ग्रहण करने में समर्थ होता है॥

६. द्वितीय आजानेयसूत्र : छह धर्मों से युक्त भिक्षु, किसी राजा के श्रेष्ठ अश्व के समान,...—पूर्वसूत्रवत्॥

७. तृतीय आजानेयसूत्र : छह धर्मों से युक्त भिक्षु, राजा के श्रेष्ठ अश्व के समान...—१. २. ३. ४. ५. पूर्वसूत्रवत्, तथा ६. जव (गति) सम्पन्न होता है॥

८. अनुत्तर्य सूत्र : इन छह धर्मों से युक्त भिक्षु...—१. अद्वितीय दर्शन, २. अद्वितीय श्रवण, ३. अद्वितीय लाभ, ४. अद्वितीय शिक्षा, ५. अद्वितीय परिचर्या एवं ६. अद्वितीय अनुस्मृति॥

९. अनुस्मृतिस्थानसूत्र : इन छह धर्मों से युक्त भिक्षु...— १. बुद्धानुस्मृति, २. धर्मानुसमृति, ३. सङ्घानुस्मृति, ४. शीलानुस्मृति, ५. त्यागानुस्मृति, एवं ६. देवतानुस्मृति॥

१०. महानामसूत्र : फलप्राप्त एवं धर्मज्ञानप्राप्त भिक्षु इस साधना पद्धति से साधना करता है — १. बुद्धानुस्मृति...६. देवतानुस्मृति॥

२. स्मरणीय वर्ग —

१. प्रथम स्मरणीयसूत्र : ये छह धर्म स्मरणीय होते हैं — १. मैत्रीपूर्ण कायकर्म; २. मैत्रीपूर्ण वाक्कर्म; ३. मैत्रीपूर्ण मनःकर्म; ४. धर्मानुमोदित लाभ; ५. अखण्ड शील; एवं ६. दुःखक्षय तक पहुँचाने वाली दृष्टि॥

२. द्वितीय स्मरणीय सूत्र : ये छह धर्म स्मरणीय होते हैं — १-६. पूर्वसूत्रवत्॥

३. निस्सारणीय सूत्र : बाहर निकालने योग्य छह धर्म — १. मैत्रीचेतोयुक्त होते हुए भी व्यापाददृष्टि; २. करुणाचेतोयुक्त होते हुए भी हिंसादृष्टि; ३. मुदिताचेतोयुक्त होते हुए भी अरति दृष्टि; ४. उपेक्षाचेतोयुक्त होते हुए भी रागदृष्टि; ५. विमोक्षयुक्त चित्त होते हुए भी रागादिनिमित्तक विज्ञानदृष्टि; ६. अहन्त्व-ममत्वभाव नष्ट होने पर भी विचिकित्सादृष्टि — ये सब दृष्टियाँ त्याज्य होती हैं॥

४. भद्रकसूत्र : उत्तम मृत्यु की प्राप्तिहेतु ये छह धर्म पालनीय — १. सत्कायदृष्टि का त्याग; २. व्यर्थ के कलहों का त्याग; ३. निद्रा की अधिकता का त्याग; ४. जनसमाज में अधिक न रहना; ५. विविध प्रपञ्चों में राग न रखना; ६. जनसमूह में रहकर सुख न मानना॥

५. अनुतप्य सूत्र : छह धर्मों से युक्त भिक्षु की मृत्यु पश्चात्तापयोग्य — १. सत्कायदृष्टि; २. व्यर्थ कलह; ३. निद्रा की अधिकता; ४. जनसम्मर्द, ५. प्रपञ्चों में राग; ६. जनसमूह में रह कर ही सुख मानना॥

६. नकुलपितृसूत्र : नकुल माता द्वारा इन छह धर्मों (आशङ्काओं) का त्याग-निरूपण — १. मरणानन्तर बाल-बच्चों के पालन की आशङ्का; २. पत्नी का किसी दूसरे से विवाह की आशङ्का; ३. भगवान् के दर्शन न करने की आशङ्का; ४. धार्मिक शील न पालन की आशङ्का; ५. आध्यात्मिक चित्तसमाधिसम्पन्न न रहने की आशङ्का; ६. धर्मविनय के अन्तस्तल तक न पहुँचने की आशङ्का॥

७. स्वापसूत्र : ये सूर्योदय बाद तक सोये रहते हुए छह पुद्गल जनप्रिय नहीं हो सकते — १. मूर्धाभिषिक्त राजा; २. राजमहामन्त्री; ३. राज्य का कोई उच्च अधिकारी; ४. पिता से प्राप्त सम्पत्ति पर जीने वाला (जमींदार); ५. सेनापति; ६. ग्रामप्रधान या समूहप्रधान॥

८. मत्स्यबन्धसूत्र : हिंसक मनुष्य की भौतिक उन्नति असम्भव — १. मछुआरा; २. गोहत्या करने वाला; ३. भेड़ काटने वाला; ४. सूअर मारने वाला; ५. पक्षियों को मारने वाला; ६. मृगों को मारने वाला। क्योंकि इन के चित्त पर हिंसा चढ़ी रहती है, अतः ये हाथी घोड़ों की दुर्लभ सवारी एवं विशाल सम्पत्ति का उपभोग नहीं कर सकते॥

९. प्रथम मरणस्मृतिसूत्र : मरण स्मृति-भावना की छह विधियाँ — १. एक दिन-रात तक जीवनायु पर भी मरणस्मृति की भावना; २. एक ही दिन तक....; ३. एक ही बार भोजन के समय तक; ४. पाँच चार ग्रास खाने तक...; ५. एक ग्रास खाने तक...; ६. एक ही श्वास तक जीवनायु होने की आशा पर भी मरणस्मृति की भावना॥

१०. द्वितीय मरणस्मृतिसूत्र : इन छह कारणों से साधना में विघ्न आ सकता है — १. साँप या बिच्छु डस ले; २. शतपदी डस ले; ३. कहीं ठोकर खा कर गिर पड़े; ४. विकृत भोजन के कारण; ५. शरीरस्थ वात, पित्त-कफ विकृत हो जायँ; ६. विषमय शस्त्रप्रहार से मृत्यु हो जाय॥

३. अनुत्तर्यवर्ग —

१. सामकसूत्र : अध:पतन के छह कारण — १. भस्सारामता; २. निद्रारामता; ३. कर्म्मारामता; ४. सङ्गणिकारामता; ५. दौर्वचस्य; ६. पापमित्रता॥

२. अपरिहाणीयसूत्र : छह अपरिहाणीय धर्म — १. कर्मारामता का अभाव; २. भस्सारामता का अभाव; ३. निद्रारामता का अभाव; ४. सङ्गणिकारामता का अभाव; ५. दौर्वचस्य का अभाव; तथा ६. कल्याणमित्रता॥

३. भयसूत्र : 'काम' के छह पर्याय — १. भय; २. दु:ख; ३. रोग; ४. गण्ड; ५. सङ्ग एवं ६. पङ्क॥

४. हिमवत्सूत्र : छह धर्मों से युक्त भिक्षु हिमालय को भी लाँघ सकता है — १. समाधि में कुशल; २. समाधि के स्थैर्य में कुशल; ३. समाधि के उत्थान में कुशल; ४. समाधि की दक्षता में कुशल; ५. समाधि का क्षेत्र जानने में कुशल; ६. समाधि के अधिष्ठान में कुशल॥

५. अनुस्मृतिस्थानसूत्र : छह अनुस्मृतिस्थान — १. बुद्धानुस्मृति; २. धर्मानुस्मृति; ३. सङ्घानुस्मृति; ४. शीलानुस्मृति; ५. त्यागानुस्मृति एवं ६. देवतानुस्मृति॥

६. महाकात्यायनसूत्र : छह अनुस्मृतिस्थान का अभ्यास — पूर्वसूत्रवत्॥

७. प्रथम समयसूत्र : पूज्य भिक्षु के दर्शन हेतु जाने के छह अवसर — १. साधना करते समय साधक चित्त के कामसम्पृक्त होने के समय; २. द्वेषसम्पृक्त होने के समय; ३. स्त्यानमृद्ध से सम्पृक्त होने के समय; ४. औद्धत्य कौकृत्य से सम्पृक्त होने के समय; ५. विचिकित्सा से सम्पृक्त होने के समय; ६. किसी निमित्त के अज्ञान के समय॥

८. द्वितीय समयसूत्र : उक्त छह अवसरों का ही व्याख्यान — पूर्वसूत्रवत्॥

९. उदायिसूत्र : छह अनुस्मृतिस्थान — १. तीन ध्यानों की भावना; २. आलोकमय चित्त की भावना; ३. काया में विविध अशुचि का प्रत्यवेक्षण; ४. मृत शरीर से अपने शरीर में अनित्यभावना; ५. श्मशान में बिखरे पड़े शरीर के अङ्गों से अपने शरीर की तुलना; तथा ६. चतुर्थ ध्यान की भावना॥

१०. अनुत्तर्यसूत्र : छह अनुत्तर्य — १. दर्शनानुत्तर्य; २. श्रवणानुत्तर्य; ३. लाभानुत्तर्य; ४. शिक्षानुत्तर्य; ५. परिचर्यानुत्तर्य; ६. अनुस्मृतानुत्तर्य॥

४. देवतावर्ग —

१. शैक्ष्य सत्र : शैक्ष्य भिक्षु के छह अध:पतन के कारण — १. कर्मारामता; २. भस्सारामता; ३. निद्रारामता; ४. सङ्गणिकारामता; ५. इन्द्रियारामता; ६. भोजन की मात्रा न जानना॥

२. प्रथम अपरिहाणसूत्र : भिक्षु की अभ्युन्नति में छह कारण — १. शास्ता के; २. धर्म के; ३. सङ्घ के; ४. शिक्षा के; ५. अप्रमाद के; ६. आगत के स्वागत सत्कार के प्रति गौरव॥

३. द्वितीय अपरिहाणसूत्र : भिक्षु के लिये छह अभ्युन्नतिकारक धर्म — १-२-३-४ पूर्ववत्; ५. ह्री के प्रति तथा ६. अवत्राप्य (पापभीरुता) के प्रति गौरव॥

४. महामौद्गल्यायनसूत्र : 'स्रोतआपन्न साधक धर्म से च्युत हुए विना ही सम्बोधिपरायण होते हैं'—यह ज्ञान षड्विध देवताओं को होता है — १. चातुर्महाराजिक, २. त्रायस्त्रिंश; ३. याम; ४. तुषित; ५. निर्माणरति; एवं ६. परनिर्मित वशवर्ती देव॥

५. विद्याभागीयसूत्र : विद्यासदृश छह धर्म — १. अनित्यसंज्ञा; २. अनित्य में दुःख-संज्ञा; ३. दुःख में अनात्मसंज्ञा; ४. प्रहाणसंज्ञा; ५. विरागसंज्ञा; ६. निरोधसंज्ञा॥

६. विवादमूलसूत्र : छह विवादकारक धर्म — जो १. शास्ता का; २. धर्म का; ३. सङ्घ का सम्मान नहीं करता; ४. शिक्षा का पालन नहीं करता; ५. पापेच्छु एवं ६. मिथ्यादृष्टि होता है॥

७. दानसूत्र : दान के छह अङ्ग होते हैं — (क) इन में दाता के तीन अङ्ग होते हैं — १. सौमनस्यसम्पन्नता, २. प्रतिग्राहक के प्रति श्रद्धा, ३. दानक्रिया से प्रसन्नता। प्रतिग्राहक के तीन अङ्ग होते हैं — १. निरासक्ति, २. द्वेषरहितता एवं ३. मोहरहितता॥

८. आत्मकारिसूत्र : क्रिया के छह अङ्ग — १. आरम्भधातु, २. निष्कामधातु, ३. पराक्रम धातु, ४. स्थामधातु, ५. स्थितिधातु, ६. उपक्रमधातु॥

९. निदानसूत्र : कर्मों की उत्पत्ति में छह कारण — १. लोभ; २. द्वेष; ३. मोह; ४. अलोभ; ५. अद्वेष; एवं ६. अमोह॥

१०. किमिलसूत्र : सद्धर्म की अस्थायिता के छह कारण — १. शास्ता; २. धर्म, ३. सङ्घ, ४. शिक्षा, ५. अनुशासन एवं ६. आगत का सम्मान न करना॥

११. दारुस्कन्धसूत्र : अधिमुक्ति (स्वीकृति) में छह कारण — १. पृँथ्वीधातु; २. जलधातु; ३. तेजोधातु; ४. वायुधातु; ५. शुभधातु; एवं ६. अशुभधातु॥

१२. नागितसूत्र : छह साधनास्थल — १. ग्राम के एकान्तसाधना; २. अरण्य में साधना; ३. अरण्य में असमाहित चित्त साधना; ४. अरण्य में समाहित चित्त साधना; ५. ग्राम में एकान्त साधना की उपेक्षा; ६. अरण्य में एकान्त साधना॥ ●

५. धार्मिक वर्ग —

१. नागसूत्र : 'नाग' (निष्पाप) कहलाने योग्य तथागत बुद्ध — जो १. आत्मसंयमी; २. समाधिनिष्ठ; ३. निर्वाण-पथारूढ; ४. स्वकीय चित्तशान्ति में संलग्न; ५. सभी धर्मों के अन्तस्तल तक पहुँचे हुए; ६. मनुष्य रूप में इस लोक में अवतरित हैं॥

२. मृगशालासूत्र : षड्विध पुद्गल १. एकाकी रहकर सुखमय जीवन बिताने वाला, परन्तु धर्मश्रवण से कोई प्रयोजन नहीं; २. एकाकी सुखमय जीवनयापन के साथ साथ धर्मश्रवण भी करने वाला; ३. लोभी, क्रोधी, अभिमानी तथा धर्मश्रवण से कोई प्रयोजन नहीं; ४. लोभी, क्रोधी, अभिमानी होते हुए भी धर्मश्रवण करने वाला; ५. लोभी, क्रोधी, अभिमानी होते हुए भी उसे वाक्संस्कार भी उत्पन्न होते रहते हैं, वह धर्मश्रवण से भी कोई प्रयोजन नहीं रखता; ६. लोभी, क्रोधी, अभिमानी को वाक्संस्कार उत्पन्न होते हुए भी धर्मश्रवण करता है॥

३. ऋणसूत्र : (क) दरिद्र कामभोगी की षड्विध दरिद्रता — १. जो दरिद्र, निर्धन होते हुए भी ऋण लेता है; २. उस ऋण पर चक्रवृद्धि ब्याज भी देता है; ३. उस से यह ब्याज समय पर न देने पर साहूकार द्वारा बलपूर्वक माँगा जाता है; ४. साहूकार उस पर मुकद्दमा करते हैं; ५. मुकद्दमे में

पराजित होने पर उसे कारावास (दण्ड) होता है; ६. तब वह उस के फलस्वरूप अनिश्चित काल तक कारावास में रह कर असीमित कष्ट भोगता है॥

(ख) १. श्रद्धा, २. लज्जा, ३. पापभीरुता, ४. वीर्य, ५. प्रज्ञा एवं ६. त्रिविध सुचरित न रहने के कारण ऐसा भिक्षु भी 'दरिद्र' ही कहलाता है॥

४. महाचुन्दसूत्र : १. धर्माराधक भिक्षुओं को ध्यानी भिक्षुओं की प्रशंसा करनी चाहिये; क्योंकि वे लोक में इसलिये दुर्लभ होते हैं कि वे निर्वाण धातु का काया से साक्षात् कर साधना करते हैं; इसी प्रकार २. ध्यानी भिक्षुओं की धर्माराधक भिक्षुओं की प्रशंसा ही करनी चाहिये; क्योंकि वे भी लोक में इस लिये दुर्लभ होते हैं कि जो तथागत के अर्थपद की गम्भीरता को स्वकीय विमल प्रज्ञा से सम्यक्तया जान लेते हैं॥

५. प्रथम सान्दृष्टिकसूत्र : तथागतोपदिष्ट धर्म प्रत्यक्ष देखने योग्य हैं — १. धर्म प्रत्यक्ष देखने योग्य है; क्योंकि २. यह निर्वाण के समीप ले जाने वाला; तथा ३. यह विद्वानों द्वारा प्रत्यात्मवेद्य है; यह चित्त में उपस्थित ४. लोभ; ५. द्वेष एवं ६. मोह के समान प्रत्यक्ष देखा जा सकने योग्य है॥

६. द्वितीय सान्दृष्टिकसूत्र : तथागतोपदिष्ट धर्म प्रत्यक्ष देखने योग्य — पूर्वसूत्रवत्॥

७. क्षेमसूत्र : क्षीणाश्रव भिक्षु के छह गुण — १. जो न सांसारिक विषयों में आसक्त होते हैं; २. न उन में लिप्त होते हैं; ३. न स्वयं को उन में सम्मिलित मानते हैं; क्योंकि ४. इन की भवपरम्परा क्षीण हुई रहती है; ५. उन की धर्मसाधना पूर्ण हो जाती है; तथा ६. वे भवबन्धन क्षीण हो कर संसार में (प्रारब्धवश) विचरण करते हैं॥

८. इन्द्रियसंवरसूत्र : (क) इन्द्रियसंयम न होने पर साधक को षड्विध हानि — १. इन्द्रियसंयम के विना उसका शील; २. उसकी समाधि; ३. उस का यथाभूतज्ञानदर्शन; ४. उस के संसार के प्रति निर्वेद एवं वैराग्य; ५. उसका विमुक्तिज्ञानदर्शन भी साधनविहीन हो जाता है॥

(ख) इन्द्रियसंवरयुक्त साधक को इसके विपरीत षड्विध लाभ मिलते हैं॥

९. आनन्दसूत्र : भिक्षु को अश्रुत धर्म के श्रवण आदि छह लाभ — १. सूत्र गेय आदि धर्म का श्रवण; २. यथाश्रुत धर्म का दूसरे जिज्ञासुओं को उपदेश; ३. धर्म का स्वयं विस्तृत स्वाध्याय; ४. धर्म का चिन्तन, मनन, निदिध्यासन; ५. स्थविर भिक्षुओं से धर्मविषयक संवाद; ६. स्थविर भिक्षुओं द्वारा प्रश्न का धर्मसम्मत उत्तर॥

१०. क्षत्रियसूत्र : विभिन्न समूहों की छह इच्छाएं — १. क्षत्रियों की प्रधान इच्छा — राज्यभोग; २. ब्राह्मणों की प्रधान इच्छा — भोग एवं यज्ञों में अभिनिवेश; ३. गृहपतियों की प्रधान इच्छा — भोग एवं शिल्प में तथा व्यापार में अभिरुचि; ४. स्त्री की इच्छा — पुरुष पर आधृत, अलङ्कारों में सतत ध्यान तथा पुत्रों पर आश्रित; ५. चौरों की इच्छा — जिससे जो भी मिले छीन लिया जाय, अन्धकार में प्रवृत्ति; एवं ६. श्रमण-प्रज्ञा पर सतत ध्यान रखने वाले, शील अधिष्ठान एवं प्रज्ञा की आराधना करने वाले होते हैं॥

११. अप्रमादसूत्र : लोक एवं परलोक साधक एक धर्म — १. जैसे सभी प्राणियों के पद-चिह्न हाथी के पदचिह्न में समाहित हो जाते हैं; २. कूटागार के सभी कूट धरण की ओर अभिमुख होते हैं; ३. सभी आम्रफल वृन्त पर आधृत होते हैं; ४. सभी राजा चक्रवर्ती सम्राट् के अधीन होते

हैं; ५. सभी तारासमूह चन्द्रमा के अधीन है; तथा ६. मूंज उसके अग्रभाग को ही पकड़ कर कूटा जाता है उसी प्रकार भिक्षु की साधना के सभी धर्म अप्रमाद पर ही आधृत हैं॥

१२. धार्मिकसूत्र : छह श्रमण धर्म — १. जो किसी की निन्दा नहीं करता; २. किसी पर क्रोध नहीं करता; ३. किसी से कलह नहीं करता; ४. कामभोगों के प्रति आसक्त नहीं होता; ५. शास्ता के उपदेश पर श्रद्धा रखता है; ६. उसका अनुशासन मानता है॥

६. महावर्ग —

१. सोणसूत्र : क्षीणाश्रव भिक्षु के छह धर्म — १. वह निष्काम साधना करता है, २. वह एकान्तसेवी होता है; ३. वह अव्यापादयुक्त होता है; ४. वह तृष्णाक्षय से युक्त होता है; ५. वह उपादानक्षय से तथा ६. असम्मोह से भी युक्त होता है॥

२. फल्गुनसूत्र : समय से धर्मश्रवण के छह परिणाम — १. तथागत के दर्शन; २. तथागत-शिष्य के दर्शन; ३. यथाश्रुत, यथाधीत धर्म का स्वचित्त से चिन्तन, मनन; ४. तथागत द्वारा धर्मदेशना; ५. तथागतशिष्य द्वारा धर्मदेशना; ६. धर्म के चिन्तन, मनन से पुनर्जन्म के मोह से मुक्ति॥

३. षडभिजातिसूत्र : छह अभिजातियाँ (पुनर्जन्म) — १. कृष्णाभिजातिक होकर कृष्णधर्म में; २. कृष्णाभिजातिक होता हुआ भी शुक्ल धर्म में; ३. कृष्णाभिजातिक होता हुआ भी अकृष्ण, अशुक्ल निर्वाण में; ४. शुक्लाभिजातिक होता हुआ कृष्ण धर्म में; ५. शुक्लाभिजातिक होता हुआ भी शुक्ल धर्म में तथा ६. कोई शुक्लाभिजातिक होता हुआ भी अकृष्ण अशुक्ल निर्वाण की ओर बढ जाता है॥

४. आश्रवसूत्र : इन छह धर्मों से युक्त भिक्षु सत्करणीय — १. संवर से प्रहातव्य; २. प्रतिसेवन (अभ्यास) से प्रहातव्य; ३. अधिवासन (स्वीकृति) से प्रहातव्य; ४. परिवर्जन से प्रहातव्य; ५. विनोदन (दूर करना) से प्रहातव्य; ६. भावना से प्रहातव्य धर्मों से युक्त॥

५. दारुकर्मिकसूत्र : इन सभी भिक्षुओं को दान पुण्यप्रद — १. आरण्यक भिक्षु को; २. ग्राम की सीमा के बाहर साधक भिक्षु को; ३. पैण्डपातिक भिक्षु को; ४. निमन्त्रण से भिक्षा करने वाले भिक्षु को; ५. पांशुकूलिक भिक्षु को; ६. गृहस्थों द्वारा प्राप्त चीवर एवं पिण्डपात आदि से जीवननिर्वाह करने वाले भिक्षु को॥

६. हस्तिसारिपुत्रसूत्र : साधारण पुरुष के लिये वास्तविक भिक्षु का ज्ञान कठिन — क्योंकि १. कुछ भिक्षु शास्ता के सम्मुख विनम्र रहते हुए भी अन्यत्र उद्धत; २. शास्ता या किसी पूजनीय स्थविर के सम्मुख विनम्र रहते हुए भी अन्यत्र उद्धत; ३. प्रथम ध्यान की प्राप्ति से अभिमानी; ४. द्वितीय ध्यान की प्राप्ति से अभिमानी; ५. तृतीय ध्यान की प्राप्ति से अभिमानी; ६. चतुर्थ ध्यान की प्राप्ति से अभिमानी भिक्षु अन्यत्र उद्धतता एवं उच्छृङ्खलता दिखाता है। अतः ऐसे भिक्षु की पहचान कठिन होती है॥

७. मध्येसूत्र : गाथा में आये हुए 'आदि', 'अन्त' एवं 'मध्य' शब्दों का अर्थ — उक्त गाथा में १. 'स्पर्श' ही आदि की परिधि है; २. 'स्पर्शसमुदय' अन्त की परिधि है; ३. 'स्पर्शनिरोध' इसका 'मध्य' है ; ४. 'तृष्णा' इस सम्बन्ध की व्यवस्थापिका है; ५. इस प्रकार साधक ज्ञेय को जान पाता है; ६. वह ज्ञेय को जानकर इसी जन्म में दुःखों का अन्त कर लेता है॥

८. पुरुषेन्द्रियज्ञानसूत्र : धर्मोत्पादकविषयक षड्विध पुद्गल — १. स्वचित्त से दूसरे के

चित्त का सङ्कल्प जान कर उसके कुशल, अकुशल धर्मों को देख कर, 'उसे भविष्य में धर्मोत्पाद होगा कि नहीं' — यह जान लेना; २. ...अकुशल धर्मों को देख कर...; ३. ...कुशल धर्म उत्पन्न होने पर...; ४. ...कुशलमूल के सर्वथा उच्छिन्न होने पर...; ५. कुशलमूल के उच्छिन्न न होने पर...; ६. ...अकुशल धर्मों के सर्वथा उच्छिन्न होने से 'इस को भविष्य में धर्मोत्पाद होगा ही'—यह जान लेना॥

९. निर्वेधिकसूत्र : षड्विध धर्मपर्याय — १. कामभोगों की वास्तविकता का ज्ञान; २. कामभोगों के कारणों की उत्पत्ति का ज्ञान; ३. कामभोगों के द्वैधीभाव का ज्ञान; ४. कामभोगों के विपाक का ज्ञान; ५. कामभोगों के निरोध का ज्ञान; तथा ६. कामभोगनिरोध के मार्ग का ज्ञान॥

१०. सिंहनादसूत्र : तथागत के छह बल — तथागत १. उचित अनुचित को कारण सहित जानते हैं; २. इस ज्ञान के सहारे से भूत-भविष्यत्-वर्तमान के कर्मविपाकों को जानते हैं; ३. ध्यान-विमोक्ष एवं समाधि की प्राप्ति के संक्लेश, व्यवदान एवं व्युत्थान को जानते हैं; ४. वे अनेक बार भोगे हुए अपने पूर्व जन्मों का अनुस्मरण कर लेते हैं; ५. वे अनेक बार भोगे हुए दूसरों के पूर्वजन्मों का स्मरण कर लेते हैं; ६. आश्रवक्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति प्राप्त कर साधना करते हैं॥

७. देवतावर्ग —

१. अनागामिफलसूत्र : इन छह धर्मों के त्याग के विना अनागामिफल का साक्षात्कार नहीं हो सकता — १. अश्रद्धा, २. निर्लज्जता, ३. अनवत्राप्य, ४. कौसीद्य, ५. भ्रष्टस्मृतिता, ६. दुष्प्रज्ञता॥

२. अर्हत्त्वसूत्र : इन छह धर्मों को छोड़े विना अर्हत्त्व का साक्षात्कार नहीं हो सकता — १. स्त्यान, २. मृद्ध, ३. औद्धत्य, ४. कौकृत्य, ५. अश्रद्धा, एवं ६. प्रमाद॥

३. मित्रसूत्र : ऐसा भिक्षु धर्मसाधना पूर्ण नहीं कर सकता — जो १. पापी हो, २. उसके पापी मित्र हो, ३. साथी हों, ४. उन से सम्पर्क रखता हो, ५. उन के साथ रहता हो, ६. उन के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलता हो॥ इसके विपरीत पुण्यात्मा भिक्षु धर्मसाधना पूर्ण कर सकता है॥

४. सङ्गणिकारामसूत्र : १. जिस भिक्षु को समाज (भीड़) में रहना ही अच्छा लगता हो, वह एकान्त साधना में सफल नहीं हो सकता; २. चित्त का निमित्त; ३. सम्यग्दृष्टि; ४. सम्यक्समाधि; ५. संयोजनों का क्षय तथा ६. निर्वाण का साक्षात्कार भी नहीं कर सकता॥

इसके विरुद्ध धर्मों वाला भिक्षु निर्वाण का साक्षात्कार कर सकेगा — यह निश्चित है॥

५. देवतासूत्र : भिक्षु को इन छह धर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये — १. शास्ता का सम्मान; २. धर्म का; ३. सङ्घ का सम्मान; ४. शिक्षा का सम्मान; ५. स्थविरों की आज्ञा; एवं ६. कल्याणमैत्री॥

६. समाधिसूत्र : समाधि के विना ये षड्विध कर्म असम्भाव्य — शान्त समाधि के बिना १. अनेक प्रकार के चमत्कारों का अनुभव; २. दिव्य श्रोत्रेन्द्रिय से दूर या समीप के लौकिक, पारलौकिक शब्दों का श्रवण; ३. दूसरे प्राणियों का चित्त स्वचित्त से जानना; ४. दिव्य चक्षु से दूसरे प्राणियों के विषय में कुछ जान पाना; ५. अपने अनेक जन्मों का स्मरण कर सकना तथा; ६. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति की साधना करना सम्भव नहीं है॥

७. साक्षिभव्य सूत्र : साधक इन छह धर्मों से युक्त होने पर, स्मृत्यायतन होने पर भी साक्षिभव्यता (साक्षात्कार) नहीं कर पाता — १. 'ये स्थितिभागीय धर्म हैं'; २. 'ये निर्वेधभागीय धर्म हैं'; ३. 'ये विशेषभागीय धर्म हैं'; ४. इन विषयों में यथार्थतः नहीं जानता; ५. सत्कारपूर्वक साधना नहीं करता; ६. या लाभप्रद साधना नहीं करता॥

८. बलसूत्र : इन छह धर्मों के रहते हुए कोई भिक्षु अपनी साधना में बल प्राप्त नहीं कर पाता — १. जो समाधि लगाने में कुशल नहीं होता; २. समाधि की स्थिरता में; ३. समाधि के व्युत्थान में कुशल नहीं होता; ४. साधना सत्कारपूर्वक नहीं करता; ५. उसमें नैरन्तर्य नहीं लाता; ६. समाधि को लाभप्रद नहीं समझता॥

९. प्रथम तद्ध्यानसूत्र : इन छह धर्मों को छोड़ने से प्रथम ध्यान समाधि पा सकता है — १. कामच्छन्द; २. व्यापाद; ३. स्त्यानमृद्ध; ४. औद्धत्यकौकृत्य; ५. विचिकित्सा; एवं ६. कामभोगों में दोषदर्शन॥

१०. द्वितीय तद्ध्यानसूत्र : छह धर्मों के त्याग विना प्रथम ध्यान की साधना सम्भव नहीं — १. कामवितर्क; २. व्यापादवितर्क; ३. विहिंसावितर्क; ४. कामसंज्ञा; ५. व्यापादसंज्ञा, एवं; ६. विहिंसासंज्ञा॥

८. अर्हत्त्ववर्ग —

१. दुःखसूत्र : षड्धर्मयुक्त भिक्षु की दुर्गति — १. २. ३. ४. ५. ६. पूर्वसूत्रवत्॥

२. अर्हत्त्वसूत्र : छह धर्मों का त्याग किये विना अर्हत्व का साक्षात्कार असम्भव — १. मान; २. अवमान; ३. अतिमान; ४. अधिमान; ५. स्तम्भ एवं; ६. अतिनिपात॥

३. उत्तरमनुष्यधर्म : षड्धर्म-त्याग विना ज्ञानदर्शनविशेष की प्राप्ति असम्भव — १. विस्मृति, २. असम्प्रजन्य; ३. इन्द्रियों पर असंयम; ४. भोजनमात्रा का अज्ञान; ५. कुहन एवं ६. लपन॥

४. सुखसौमनस्यसूत्र : छह धर्मों के सहयोग के विना सुख एवं सौमनस्य पूर्वक साधना का अभाव — १. धर्मारामता; २. साधनारामता; ३. प्रहाणारामता; ४. प्रविवेकारामता; ५. अव्यापादारामता; ६. निष्प्रपञ्चता॥

५. अधिगमसूत्र : इन छह धर्मों से युक्त भिक्षु कुशल धर्मों की प्राप्ति एवं प्राप्त कुशल धर्मों की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकता — १. आय में अकुशलता; २. व्यय में अकुशलता; ३. उपाय में अकुशलता; ४. अप्राप्त कुशल धर्मों की इच्छा का अभाव; ५. प्राप्त कुशल धर्मों की रक्षा का अभाव; एवं ६. सतत साधना में प्रयत्न का अभाव॥

६. महत्तासूत्र : छह धर्मों से युक्त भिक्षु शीघ्र ही धर्मों में विपुलता प्राप्त कर लेता है — १. प्राप्त प्रकाश; २. प्राप्त योग; ३. प्राप्त ज्ञान में; ४. कुशल धर्मों में असन्तुष्टि; ५. साधना को मध्य में ही न छोड़ने वाला; ६. कुशल धर्मों का अधिक से अधिक अभ्यास॥

७. प्रथम निरयसूत्र : षड्धर्मसमन्वित नरकगामी — १. प्राणातिपात; २. चौर; ३. कामभोगों में मिथ्याचारी; ४. असत्यभाषी; ५. पापमयसङ्कल्पी; ६. मिथ्यादृष्टि॥

८. द्वितीय निरयसूत्र : षड्धर्मसमन्वित नरकगामी — १. प्राणातिपात; २. चौरी; ३. कामभोगों में मिथ्याचार; ४. असत्यभाषण; ५. निर्दयता; ६. दुःसाहस॥

९. अग्रधर्मसूत्र : इन छह धर्मों के कारण अर्हत्त्व की अप्राप्ति — १. रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धा, २. निर्लज्जता, ३. अपापभीरुता, ४. आलस्य, ५. दुर्बुद्धि, ६. काया में आसक्ति ॥

१०. रात्रिन्दिवसूत्र : इन छह धर्मों से युक्त भिक्षु के आने वाले रात्रि-दिन में हानि की ही सम्भावना करनी चाहिये — १. चीवर आदि में असन्तोष, २. अश्रद्धा, ३. दुराचार, ४. आलस्य, ५. विस्मृति, एवं दुष्प्रज्ञा ॥

विशेष : इन उपर्युक्त दश सूत्रों में विलोम धर्मों के व्याख्यान का विस्तार भी ग्रन्थानुसार कर लें ॥

९. शीतिवर्ग —

१. शीतिभावसूत्र : षड्धर्मसम्पृक्त भिक्षु शमथप्राप्ति में असमर्थ — १. जो चित्त के निग्रह के समय निगृहीत नहीं कर पाता; २. प्रग्रह के समय प्रगृहीत नहीं कर पाता; ३. सम्प्रहर्षण के समय सम्प्रहृष्ट नहीं कर पाता; ४. उपेक्षा के समय उपेक्षित नहीं कर पाता; ५. मन्द उत्साही, एवं ६. सत्कायदृष्टि में आसक्त ॥

२. आवरणसूत्र : छह आवरणों से कुशल धर्मों की सम्यक्त्व प्राप्ति में असमर्थता — १. कर्मावरणता; २. क्लेशावरणता; ३. विपाकावरणता; ४. रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धा; ५. उन के प्रति अननुराग; एवं ६. दुष्प्रज्ञता ॥

३. व्यवरोपितसूत्र : इन छह धर्मों से युक्त भिक्षु, सद्धर्म का श्रवण कर के भी, कुशल धर्मों में सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता — जो १. अपनी माता के; २. अपने पिता के; ३. या किसी अर्हत् के प्राण हर लेता है; ४. तथागत के किसी अङ्ग पर आक्रमण कर रक्त निकाल देता है; ५. सङ्घ में मतभेद का उत्पादक तथा ६. दुष्प्रज्ञ होता है ॥

४. शुश्रूषतिसूत्र : इन छह धर्मों से कुशल धर्मों में सम्यक्त्व का अभाव — १. तथागत के धर्म को न सुनने की इच्छा; २. न उस पर ध्यान देना; ३. न उसको समझ कर चित्त में बैठाना; ४. न उसका आशय समझना; ५. उस का वास्तविक अभिप्राय छोड़ देना; ६. उसको सुनते समय उसमें प्रतिलोम भाव रखना ॥

५. अप्रहायसूत्र : इन छह धर्मों को छोड़े विना दृष्टिसम्पत् का साक्षात्कार असम्भव — १. सत्कायदृष्टि; २. विचिकित्सा; ३. शीलव्रतपरामर्श; ४. दुर्गतिगामी राग; ५. द्वेष एवं ६. मोह ॥

६. प्रहीणसूत्र : सम्यग्दृष्टि के छह धर्म प्रहीण — १. सत्कायदृष्टि; २. विचिकित्सा; ३. शीलव्रतपरामर्श; ४. दुर्गतिगामी राग; ५. द्वेष एवं; ६. मोह ॥

७. अभव्यसूत्र : दृष्टिसम्पन्न को इन छह धर्मों का उत्पाद असम्भव — १-६. पूर्ववत् ॥

८. प्रथम अभव्यस्थानसूत्र : दृष्टिसम्पन्न पुद्गल के लिये छह असम्भव स्थान — १. वह शास्ता के प्रति; २. धर्म के प्रति; ३. सङ्घ के प्रति; ४. शिक्षा के प्रति अश्रद्धालु नहीं होता; ५. अनागमनीय वस्तु के पुनः लौटने की इच्छा नहीं करता तथा ६. वह आठवाँ जन्म पाने की इच्छा नहीं करता ॥

९. द्वितीय अभव्यस्थानसूत्र : दृष्टिसम्पन्न पुद्गल के लिये छह अभव्य स्थान — १. वह किसी संस्कार को नित्य एवं २. सुखमय नहीं मानता; ३. किसी सांसारिक धर्म को अपना (आत्मा) नहीं मानता; ४. आनन्तर्य कर्म नहीं करता; ५. कौतूहलमङ्गल (विशेष उत्सव) से शुद्धि नहीं मानता; ६. सङ्घबाह्य दान-दक्षिणा में रुचि नहीं लेता ॥

१०. तृतीय अभव्यस्थानसूत्र : दृष्टिसम्पन्न पुद्गल के लिये छह अभव्य स्थान — १. मातृहत्या; २. पितृहत्या; ३. अर्हद्धत्या; ४. तथागत को लोहितोत्पाद; ५. सङ्घ में मतभेद तथा; ६. सम्यक्सम्बुद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य को गुरु मानना॥

११. चतुर्थ अभव्यस्थान : ये छह अभव्य स्थान — १. वह स्वयङ्कृत सुख दुःख को लौटाना नहीं चाहता; २. परकृत....; ३. स्वयंकृत एवं परकृत सुख दुःख को लौटाना नहीं चाहता; ४. स्वयं न कृत अकारण उत्पन्न सुख दुःख को...; ५. न परकृत अकारण उत्पन्न सुखदुःख को...; ६. न स्वयंकृत न परकृत अकारण उत्पन्न सुखदुःख को लौटाना नहीं चाहता॥

१०. आनृशंस्य वर्ग —

१. प्रादुर्भावसूत्र : लोक में ये छह प्रादुर्भाव दुर्लभ — १. तथागत का; २. तथागतप्रवेदित धर्मविनय के उपदेष्टा का; ३. आर्यभूमि में जन्म; ४. इन्द्रियों का विकृत न होना; ५. जड़ या मूक न होना तथा; ६. कुशल धर्मों में प्रवृत्ति दुर्लभ होती है॥

२. आनृशंस्यसूत्र : स्रोतआपत्तिफल-साक्षात्कार के छह शुभ फल — ऐसा साधक १. सद्धर्मसाधना में ही लगा रहता है; २. वह धर्म से च्युत नहीं होता; ३. उसका दुःख सीमित होता है; ४. असाधारण ज्ञानयुक्त होता है; ५. वह हेतु को तथा ६. हेतुसमुत्पन्न धर्मों को भली भाँति पहचानता है॥

३. अनित्यसूत्र : १. संस्कारों को 'नित्य' मानने वाला साधक अनुलोम क्षान्ति से युक्त नहीं हो सकता; २. अनुलोम क्षान्ति से रहित साधक सम्यक्त्व नियमों में प्रवेश कर सके — यह सम्भव नहीं है; ३. इन सम्यक्त्व नियमों में प्रविष्ट न हुआ साधक स्रोतआपत्तिफल; ४. सकृदागामिफल; ५. अनागामिफल एवं ६. अर्हत्त्वफल का साक्षात्कार कर सकेगा — यह सम्भव नहीं है॥

४. दुःखसूत्र : संस्कारों को 'सुख' मानने वाला साधक...पूर्ववत्... ॥

५. अनात्मसूत्र : संस्कारों को 'आत्मा' मानने वाला साधक...पूर्ववत्... ॥

६. निर्वाणसूत्र : संस्कारों को 'दुःख' मानने वाला साधक...पूर्ववत्... ॥

७. अनवस्थितसूत्र : छह शुभ फलों को देखते हुए साधक भिक्षु सभी संस्कारों में अनित्य संज्ञा की भावना करे — १. मेरे सभी संस्कार अनित्य होने के कारण क्षीण हो जायँगें; २. मेरा मन सभी लोकों में आसक्त नहीं होगा; ३. समस्त संसार में मेरा मन उपेक्षा भाव रखेगा; ४. मेरा मन निर्वाण की ओर प्रवृत्त होगा; ५. मेरे सभी संयोजन क्षीण हो जायँगे; तथा ६. मैं उत्तम श्रामण्य से युक्त हो जाऊँगा॥

८. उत्क्षिप्तासिकसूत्र : छह शुभ ... संस्कारों में दुःखसंज्ञा की भावना करे — १. सभी संस्कारों के प्रति मेरी अरुचि रहेगी; २. समस्त लोक से मेरा मन उद्विग्न रहेगा; ३. मैं निर्वाण में ही शान्तिदर्शन करूँगा; ४. मेरे सभी अनुशय नष्ट हो जायँगें; ५. मैं शुभकृत्यकारी ही रहूँगा; ६. मैं शास्ता का मैत्रीभाव से अवश्य साक्षात्कार करूँगा॥

९. अतन्मयसूत्र : छह शुभ...संस्कारों में अनात्मसंज्ञा की भावना करे — १. मैं सर्वलोक में निरासक्त रहूँगा; २. मेरे सभी अहन्त्व ममत्वभाव नष्ट हो जायँगें; ३. मैं शास्ता का मैत्रीभाव से साक्षात्कार करूँगा; ४. मैं असाधारण ज्ञान से सम्पृक्त रहूँगा; ५. मैं हेतु तथा; ६. हेतुधर्मों की वास्तविकता जान सकूँगा॥

१०. भवसूत्र : भिक्षु को १. कामभव; २. रूपभव; ३. अरूपभव — इन तीन भवों का प्रहाण करना चाहिये। तथा १. अधिशीलशिक्षा; २. अधिचित्तशिक्षा एवं; ३. अधिप्रज्ञशिक्षा का ग्रहण करना चाहिये॥

११. तृष्णासूत्र : १. कामतृष्णा, २. भवतृष्णा, एवं ३. विभवतृष्ण—इन तीन तृष्णाओं का; तथा १. मान, २. अवमान एवं ३. अतिमान का प्रहाण करना चाहिये॥ ●

११. त्रिकवर्ग —

१. रागसूत्र : १. राग, २. द्वेष एवं ३. मोह के प्रहाण के लिये क्रमशः १. अशुभ, २. मैत्री, एवं ३. प्रज्ञा की भावना करनी चाहिये॥

२. दुश्चरितसूत्र : १. कायदुश्चरित, २. वाग्दुश्चरित एवं ३. मनोदुश्चरित के प्रहाण के लिये क्रमशः १. कायसुचरित, २. वाक्सुचरित एवं ३. मनःसुचरित की भावना करनी चाहिये॥

३. वितर्कसूत्र : १. कामवितर्क, २. व्यापादवितर्क एवं, ३. विहिंसावितर्क के प्रहाण के लिये क्रमशः १. नैष्काम्यसंज्ञा, २. अव्यापादसंज्ञा एवं ३. अविहिंसासंज्ञा की भावना करनी चाहिये॥

४. संज्ञासूत्र : १. कामधातु, २. व्यापादधातु एवं ३. विहिंसाधातु के प्रहाण के लिये क्रमशः १. नैष्काम्यधातुसंज्ञा, २. अव्यापादसंज्ञा एवं ३. अविहिंसासंज्ञा की भावना करनी चाहिये॥

५. धातुसूत्र : १. कामधातु, २. व्यापादधातु एवं ३. विहिंसाधातु के प्रहाण के लिये क्रमशः १. नैष्काम्यधातु, २. अव्यापादधातु एवं ३. अविहिंसाधातु की भावना करनी चाहिये॥

६. आस्वादसूत्र : १. आस्वाददृष्टि, २. आत्मानुदृष्टि, ३. मिथ्यादृष्टि के प्रहाण हेतु क्रमशः १. अनित्यसंज्ञा, २. अनात्मसंज्ञा एवं ३. सम्यग्दृष्टि की भावना करनी चाहिये॥

७. अरतिसूत्र : १. अरति, २. विहिंसा एवं ३. अधर्मचर्या के प्रहाण हेतु क्रमशः १. मुदिता, २. अविहिंसा एवं ३. धर्मचर्या की भावना करनी चाहिये॥

८. सन्तुष्टितासूत्र : १. असन्तुष्टि, २. असम्प्रजन्य एवं ३. महेच्छता के प्रहाण के लिये क्रमशः १. सन्तुष्टि, २. सम्प्रजन्य एवं ३. अल्पेच्छता की भावना करनी चाहिये॥

९. दौर्वचस्य सूत्र : १. दौर्वचस्य, २. पापमित्रता एवं ३. चित्तविक्षेप के प्रहाण हेतु क्रमशः १. सौवचस्य, २. कल्याणमित्रता एवं ३. आनापानस्मृति की भावना करनी चाहिये॥

१०. औद्धत्यसूत्र : १. औद्धत्य, २. असंयम एवं ३. प्रमाद के प्रहाण हेतु क्रमशः १. शमथ, २. संवर (संयम) एवं ३. अप्रमाद की भावना करनी चाहिये॥ ●

१२. श्रामण्यवर्ग :

१. कायानुपश्यिसूत्र : काया में कायानुपश्यना की भावना इन छह धर्मों को त्यागे विना नहीं हो सकती — १. कर्मारामता, २. भस्सारामता, ३. निद्रारामता, सङ्गणिकारामता, ५. इन्द्रियों में अगुप्तद्वारता (असंयम) एवं ६. भोजन की मात्रा में अज्ञान॥

२. धर्मानुपश्यिसूत्र : इन छह धर्मों का त्याग किये विना काया में किसी भी प्रकार की धर्मानुपश्यना नहीं कर सकता — १. कर्मारामता, २. भस्सारामता इत्यादि पूर्वसूत्रवत्॥

३. – २३. तपुस्ससूत्र : छह धर्मों से युक्त तपुस्स आदि २१ गृहपति जीवनपर्यन्त तथागत में

श्रद्धालु होकर अपनी समस्त कायिक, वाचिक एवं मानसिक चेष्टाएँ करते हैं — १. बुद्ध में, २. धर्म में, ३. सङ्घ में अत्यधिक श्रद्धा से, ४. आर्यशील से, ५. आर्यज्ञान से एवं ६. आर्यविमुक्ति से॥

१३. रागपेय्याल (रागविषयक विस्तार)

१. राग की अभिज्ञा के माध्यम से इन छह धर्मों की साधना करनी चाहिये — १. दर्शनानुत्तर्य, २. श्रवणानुत्तर्य, ३. लाभानुत्तर्य, ४. शिक्षानुत्तर्य, ५. परिचर्यानुत्तर्य, ६. अनुस्मृत्यनुत्तर्य॥

२. राग की अभिज्ञा के माध्यम से छह धर्मों की साधना — १. बुद्धानुस्मृति, २. धर्मानुस्मृति, ३. सङ्घानुस्मृति, ४. शीलानुस्मृति, ५. त्यागानुस्मृति एवं ६. देवतानुस्मृति॥

३. राग की अभिज्ञा से छह धर्मों की साधना — १. अनित्यसंज्ञा, २. अनित्य में दुःखसंज्ञा, ३. दुःख में अनात्मसंज्ञा, ४. प्रहाणसंज्ञा, ५. विरागसंज्ञा एवं ६. निरोधसंज्ञा॥

४.-३०. राग की परिज्ञा से छह धर्मों की साधना करनी चाहिये — पूर्ववत्...। परिक्षय से...प्रहाण से...क्षय से...व्यय से...विराग से...निरोध से...त्याग से...प्रतिनिसर्ग से... छह धर्मों की भावना करनी चाहिये — पूर्ववत्... ॥

३१-५१०. द्वेष के ...मोह के...क्रोध के...उपनाह के...म्रक्ष के...प्रदाश के...ईर्ष्या के...मात्सर्य के...माया के...शाठ्य के...स्तम्भ के...सारम्भ के...मान के...अतिमान के...मद के...प्रमाद के अभिज्ञान से...परिज्ञा से...परिक्षय से...प्रहाण से...क्षय से...व्यय से...विराग से...निरोध से...त्याग से...प्रतिनिसर्ग से...पूर्ववत्...इन छह धर्मों की भावना करनी चाहिये॥ ●

षट्कनिपात सम्पन्न॥

●

सप्तक निपात

१. धनवर्ग —

१. प्रथम प्रियसूत्र : इन सात धर्मों से साधक अपने साथियों में अप्रिय — १. जो केवल स्वकीय लाभ पाना चाहता है; २. स्व के लिये सत्कार चाहता; ३. अपनी अवज्ञा नहीं चाहता; ४. निर्लज्ज होता है; ५. पापभीरु नहीं होता; ६. पापेच्छु होता है; ७. मिथ्यादृष्टि होता है॥

इन से विरुद्ध धर्मों से साधक साथियों में प्रिय होता है॥

२. द्वितीय प्रियसूत्र : इन सात धर्मों से भी साधक साथियों का प्रिय नहीं होता — १-६. पूर्ववत्, ७. ईर्ष्यालु एवं मात्सर्यसम्पन्न होता है॥

इन से विरुद्ध धर्मों से युक्त साधक साथियों में प्रिय होता है॥

३. संक्षिप्त बलसूत्र : साधक के सात बल — १. श्रद्धा, २. वीर्य, ३. ह्री, ४. अवत्राप्य, ५. स्मृति, ६. समाधि एवं ७. प्रज्ञा॥

४. विस्तृतबलसूत्र : साधक के सात बल — पूर्वसूत्रवत्॥

५. संक्षिप्तधनसूत्र : साधक से सात धन — १. श्रद्धा, २. शील, ३. ह्री, ४. अवत्राप्य, ५. श्रुत, ६. त्याग एवं ७. प्रज्ञा॥

६. विस्तृतधनसूत्र : साधक के सात धन — पूर्वसूत्रवत्॥

७. उग्रसूत्र : साधक के सात धन — पूर्वसूत्रवत्॥

८. संयोजनसूत्र : इन सात संयोजनों (बन्धनों) के प्रहाण के लिये साधना आवश्यक — १. अनुनयसंयोजन, २. प्रतिघसंयोजन, ३. दृष्टिसंयोजन, ४. विचिकित्सासंयोजन, ५. मानसंयोजन, ६. भवरागसंयोजन एवं ७. अविद्यासंयोजन॥

९. प्रहाणसूत्र : इन सात संयोजनों के प्रहाण के लिये साधना — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. मात्सर्यसूत्र : इन सात संयोजनों के प्रहाण के लिये साधना — १. अनुनयसंयोजन, २,३,४,५ पूर्वसूत्रवत्, ६. ईर्ष्यासंयोजन एवं ७. मात्सर्यसंयोजन॥

२. अनुशयवर्ग —

१. प्रथम अनुशयसूत्र : सात अनुशय (चित्तप्रवृत्ति) १. कामरागानुशय; २. प्रतिघानुशय; ३. दृष्ट्यनुशय; ४. विचिकित्सानुशय; ५. मानानुशय; ६. भवरागानुशय; एवं ७. अविद्यानुशय॥

२. द्वितीय अनुशयसूत्र : सात अनुशयों का प्रहाण — पूर्वसूत्रवत्॥

३. कुलसूत्र : (क) सात दोषों से युक्त कुलों (गृहस्थ के घरों) में नहीं जाना चाहिये — १. जहाँ मनोनुकूल स्वागत न हो; २. मनोनुकूल अभिवादन न हो; ३. मनोनुकूल आसन आदि न दें; ४. किसी वस्तु के होते हुए भी उसे न देने हेतु छिपावें; ५. अधिक मांगने पर भी अल्प ही दें; ६. प्रणीत भोजन होते हुए रूखा सूखा ही दें; ७. जो दिया जाय वह भी असत्कारपूर्वक दें॥

(ख) परन्तु इन सात धर्मों से युक्त कुलों में जाना चाहिये — १. जहाँ मनोनुकूल स्वागत; २. मनोनुकूल अभिवादन; ३. मनोनुकूल आसन आदि दिया जाय; ४. किसी वस्तु के होने पर छिपाया न जाय; ५. अधिक माँगने पर अधिक ही दें; ६. रुचिकर एवं स्वादिष्ट ही भोजन दें; ७. जो दें उसे सत्कारपूर्वक दें॥

४. पुद्गलसूत्र : सप्तविध पुद्गल उपहार एवं प्रणाम आदि के योग्य — १. उभतो भाग (रूपकाय एवं रागकाय) से विमुक्त; २. प्रज्ञाविमुक्त; ३. कायसाक्षी; ४. दृष्टिप्राप्त; ५. श्रद्धाविमुक्त; ६. धर्मानुसारी एवं ७. श्रद्धानुसारी॥

५. उदकोपमसूत्र : सप्तविध उदकोपम पुद्गल — १. कोई साधक जल में गोता लगाये तो लगाये ही रह जाने वाले के समान होता है; २. कोई जल में एक बार गोता लगा कर पुनः ऊपर आ जाने वाले के समान; ३. कोई जल में शिर निकाले ही रह जाने वाले और पुनः गोता न लगाने के समान; ४. कोई जल से शिर निकाले हुए इधर इधर देखते ताकते रहने वाले के समान; ५. कोई जल से शिर बाहर निकाले हुए ही तैरते रहने वाले के समान; ६. जल में तैरते तैरते गहरा गोता लगाने वाले के समान; ७. कोई पुद्गल तैर कर उस किनारे चले जाने वाले तैराक के समान होता है॥

६. अनित्यानुपश्यिसूत्र : ये सप्तविध पुद्गल प्रणम्य — १. कोई साधक सभी संस्कारों में अनित्यसंज्ञा की भावना कर अपने आश्रवक्षय हेतु प्रवृत्त होता है; २. कोई साधक अनित्यसंज्ञा की भावना करता हुआ अपने आश्रवों एवं जीवन पर निग्रह कर लेता है; ३. कोई इसी प्रकार साधना करता हुआ अवरभागीय संयोजनों के परिक्षय से अन्तरापरिनिर्वायी...; ४. उपहत्य परिनिर्वायी...; ५. असंस्कारपरिनिर्वायी...; ६. ससंस्कारपरिनिर्वायी...; ७. ऊर्ध्वस्रोत अकनिष्ठगामी हो जाता है॥

७. दुःखानुपश्यिसूत्र : ये सप्तविध पुद्गल प्रणम्य — पूर्वसूत्रवत्॥

८. अनात्मानुपश्यिसूत्र : ये सप्तविध पुद्गल प्रणम्य — पूर्वसूत्रवत्॥

९. निर्वाणसूत्र : ये सप्तविध पुद्गल प्रणम्य — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. निर्दशवस्तुसूत्र : सात निर्दश वस्तु — १. भिक्षुनियमों के ग्रहण एवं पालन करने में अतिशय अनुराग; २. धर्मचिन्तन में तीव्र अनुराग; ३. इच्छाविनय (तृष्णात्याग) में अतिशय अनुराग; ४. एकान्तवास में अतिशय अनुराग; ५. वीर्यारम्भ में अतिशय अनुराग; ६. स्मृति के परिपाक में अतिशय अनुराग एवं ७. सन्मार्गदर्शन में तीव्र अनुराग॥

३. वज्जिसप्तक वर्ग —

१. सारन्ददसूत्र : वज्जियों के सात अपरिहाणीय अत एव उन्नतिकारक धर्म — १. समूहबद्ध हो कर बैठना; २. एकताबद्ध होकर बैठना (कलह न करना); ३. अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त न कहना तथा प्रज्ञप्त का पालन; ४. वृद्धजनों का सत्कार; ५. चैत्यों, मन्दिरों की पूजा; ६. स्त्रियों एवं कुमारियों द्वारा घर की मर्यादाओं का पालन एवं ७. अर्हतों का संरक्षण, उनकी पूजा एवं सम्मान॥

२. वर्षकारसूत्र : वज्जियों के सात अपरिहाणीय धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

३. प्रथमसप्तकसूत्र : भिक्षुओं के सात अपरिहेय धर्म — १. सङ्घ में एकताबद्ध एवं एकतासम्पन्न रहना; २. सङ्घ में मिलकर बैठना, उठना,, तथा सभी कार्य मिलकर सम्पन्न करना (कलह न करना); ३. तथागत द्वारा अनुपदिष्ट धर्म को उपदिष्ट न बताना, तथा उनके उपदिष्ट धर्म का उल्लङ्घन न करना; ४. सङ्घ के चिरप्रव्रजित वृद्ध स्थविरों का सम्मान; ५. पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली तृष्णा के वश में न होना; ६. अरण्यवास में मन बनाये रखना (ग्राम में वास की आसक्ति न रखना); ७. प्रत्येक भिक्षु के लिये यह चिन्तन करना कि यह आवास में आवे तथा आ कर सुविधापूर्वक साधनारत रहे॥

४. द्वितीयसप्तकसूत्र : भिक्षुओं के सात अपरिहेय धर्म — १. कम्मारामता, २. भस्सारामता; ३. निद्रारामता, ४. सङ्गणिकारामता, ५. पापेच्छा, ६. पापमित्रता — इन दोषों से दूर रहना; ७. कुछ पाकर उसके मद में उन्मत्त न होना॥

५. तृतीय सप्तकसूत्र : सात अपरिहाणीय धर्म — १. रत्नत्रय के प्रति श्रद्धा; २. लज्जा; ३. पापभीरुता; ४. बहुश्रुतता; ५. साधना में उद्योगता; ६. स्मृति; ७. प्रज्ञा॥

६. बोध्यङ्गसूत्र : सात अपरिहाणीय धर्म — १. स्मृतिसम्बोध्यङ्ग; २. धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग; ३. वीर्यसम्बोध्यङ्ग; ४. प्रीतिसम्बोध्यङ्ग; ५. प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग; ६. समाधिसम्बोध्यङ्ग; ७. उपेक्षा-सम्बोध्यङ्ग॥

७. संज्ञासूत्र : सात अपरिहाणीय धर्म — १. अनित्यसंज्ञा; २. अनात्मसंज्ञा; ३. अशुभसंज्ञा; ४. आदीनवसंज्ञा; ५. प्रहाणसंज्ञा; ६. विरागसंज्ञा; एवं ७. विरोधसंज्ञा॥

८. प्रथम परिहाणिसूत्र : सात परिहाणीय (त्याज्य) धर्म — १. कर्मारामता; २. भस्सा-रामता; ३. निद्रारामता; ४. सङ्गणिकारामता; ५. इन्द्रियों में असंयम; ६. भोजन की मात्रा का अज्ञान; ७. सङ्घ के कृत्य के विषय में शैक्ष्य भिक्षु का अन्यथा चिन्तन॥

९. द्वितीय परिहाणिसूत्र : (क) उपासक के लिये सात धर्म त्याज्य — १. भिक्षुदर्शन न करना; २. सद्धर्मश्रवण की उपेक्षा; ३. सदाचार-शिक्षा का अग्रहण; ४. उसमें श्रद्धा न रखना; ५. धर्मोपदेश के समय उसमें छिद्रान्वेषण; ६. सङ्घबाह्य किसी अन्य श्रमण को दान देने हेतु खोजना; ७. तथा उसके लिये पूर्वकृत्य॥

(ख) उपासक के लिये अपरिहेय सात धर्म — १. मनोयोगपूर्वक भिक्षुदर्शन; २. सद्धर्म-श्रवण में उत्कण्ठा; ३. सदाचार शिक्षा का ग्रहण; ४. उस शिक्षा में श्रद्धा; ५. धर्मोपदेश में छिद्रान्वेषण न करना; ६. सङ्घबाह्य किसी अन्य का दान हेतु चयन न करना; तथा ७. न उसके लिये कोई पूर्वकृत्य करना॥

१०. विपत्तिसूत्र : उपासक के लिये सात विपत्ति एवं सात सम्पत्ति — पूर्वसूत्रवत्॥

११. पराभवसूत्र : उपासक के लिये सात पराभव एवं सात उद्भव — पूर्वसूत्रवत्॥ ●

४. देवतावर्ग —

१. अप्रमादगौरवसूत्र : भिक्षु के लिये सात अपरिहाणीय धर्म — १. शास्ता के प्रति; २. धर्म के प्रति; ३. सङ्घ के प्रति; ४. शिक्षा के प्रति; ५. समाधि के प्रति; ६. अप्रमाद के प्रति; ७. मैत्रीपूर्ण स्वागत के प्रति गौरव एवं सावधानी रखना॥

२. ह्री गौरवसूत्र : भिक्षु के सात अपरिहाणीय धर्म — १. शास्तृगौरव, २. धर्मगौरव, ३. सङ्घगौरव, ४. शिक्षागौरव, ५. समाधिगौरव, ६. ह्रीगौरव एवं ७. अवत्राप्यगौरव॥

३. प्रथम सौवचस्यसूत्र : भिक्षु के सात अपरिहाणीय धर्म — १-५. पूर्ववत्, ६. सौवचस्यगौरव एवं ७. अप्रमादगौरव॥

४. द्वितीय सौवचस्यसूत्र : भिक्षु के सात अपरिहाणीय धर्म — १-६. पूर्ववत्, ७. कल्याणमित्रता॥

५. प्रथममित्रसूत्र : सात अङ्गों से युक्त भिक्षु मित्रतुल्य — १. दुर्लभ को भी दे देने वाला, २. दुष्कर कार्य भी पूर्ण कर देने वाला, ३. दु:सह को भी सहन करने वाला, ४. दूसरों के गोपनीय की रक्षा करने वाला, ५. अपनी गोपनीय बात भी बता देने वाला, ६. आपत्ति में भी साथ न छोड़ने वाला, ७. सम्पत्ति से क्षीण (दरिद्र) का भी अपमान न करने वाला॥

६. द्वितीय मित्रसूत्र : सात अङ्गों से युक्त मित्रतुल्य — १. प्रिय, २. मनोनुकूल, ३. अपने से अधिक समाज में गौरवास्पद, ४. पूजनीय, ५. हितकर उपदेशक, ६. गम्भीरवक्ता एवं ७. कुपथ से रोकने वाला॥

७. प्रथम प्रतिसंविदासूत्र : सात अङ्गों से युक्त भिक्षु शीघ्र ही चारों प्रतिसंविदाओं (ज्ञान) का लाभी — १. स्वचित्त के संकोच का ज्ञाता, २. चित्त के अध्यात्म संक्षेप का ज्ञाता, ३. चित्त के बाह्य विक्षेप का ज्ञाता, ४. उत्पन्न आदि वेदनाओं का ज्ञाता, ५. उत्पन्न ज्ञात संज्ञाओं का ज्ञाता, ६. ज्ञात उत्पन्न वितर्कों का ज्ञाता, ७. पाप-पुण्यमय धर्मों को प्रज्ञा द्वारा मन में बैठा लेने वाला॥

८. द्वितीय प्रतिसंविदासूत्र : सात अङ्गों से युक्त भिक्षु शीघ्र ही चारों प्रतिसंविदाओं का लाभी—पूर्वसूत्रवत्॥

९. प्रथम वशसूत्र : सात अङ्गों से युक्त भिक्षु स्वचित्त का नियन्त्रक — १. समाधिज्ञान में कुशल; २. समाधिप्राप्ति में कुशल; ३. समाधिस्थिति में कुशल; ४. समाधिव्युत्थान में कुशल; ५. समाधिदक्षता में कुशल; ६. समाधि के क्षेत्र में कुशल एवं ७. समाधि के सङ्कल्प में कुशल॥

१०. प्रथम निर्दशसूत्र : वर्ष की गणनामात्र से किसी भिक्षु को 'निर्दश' नहीं कहा जाता, अपितु — १. भिक्षुनियमों के ग्रहण एवं पालन में अतिशय अनुरागी; २. धर्मचिन्तन में अतिशय अनुरागी; ३. इच्छाविनय में अतिशय अनुरागी; ४. एकान्तवास में अतिशय अनुरागी; ५. वीर्यारम्भ

में अतिशय अनुरागी; ६. स्मृति-परिपाक में अतिशय अनुरागी; ७. सन्मार्गदर्शन में अतिशय अनुरागी ही 'निर्देश' कहलाता है॥

५. महायज्ञवर्ग —

१. सप्तविज्ञानस्थितिसूत्र : सात विज्ञानस्थितियां — १. कोई प्राणी नानाशरीर एवं नानासंज्ञा वाले होते हैं; जैसे — मनुष्य, देव, या प्रेतयोनि वाले २. कोई प्राणी नाना शरीर वाले हो कर भी एक ही संज्ञा वाले, जैसे — प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव; ३. कोई प्राणी एक ही शरीर वाले होते हुए भी अनेक नाम वाले होते हैं; जैसे — आभास्वर देव; ४. कोई प्राणी एक ही शरीर तथा एक ही संज्ञावाले; जैसे — शुभकृत्स्न देव; ५. कोई प्राणी रूपसंज्ञा का अतिक्रमण कर एवं प्रतिघसंज्ञा के अस्त हो जाने से और नानात्व संज्ञाओं को मन में न करने से 'आकाश अनन्त है'—इस आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त करने वाला; ६. कोई प्राणी इसका भी अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है'—इस विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त करने वाला; एवं ७. कोई प्राणी 'कुछ नहीं है'—इस आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त करने वाला होता है॥

२. समाधिपरिष्कारसूत्र : सात धर्म समाधि में आवश्यक — १. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्म, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम एवं ७. सम्यक्स्मृति॥

३. प्रथम अग्निसूत्र : सप्तविध अग्नि — १. रागाग्नि, २. द्वेषाग्नि, ३. मोहाग्नि, ४. आह्वनीयाग्नि, ५. गार्हपत्याग्नि, ६. दक्षिणेयाग्नि एवं ७. काष्ठाग्नि॥

४. द्वितीय अग्निसूत्र : सप्तविध अग्नि — पूर्वसूत्रवत्॥

५. संज्ञासूत्र : सात संज्ञाएँ — १. काया में अशुभसंज्ञा, २. मरणसंज्ञा, ३. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा, ४. समस्त लोक में अनभिरतिसंज्ञा, ५. अनित्यसंज्ञा, ६. अनित्य धर्मों में दुःखसंज्ञा, ७. दुःख में अनात्मसंज्ञा॥

६. द्वितीयसंज्ञासूत्र : निर्वाण तक पहुँचाने वाली सात संज्ञाएँ — १. काया में अशुभसंज्ञा; २. मरणसंज्ञा; ३. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा; ४. समस्त लोक में अनभिरतिसंज्ञा; ५. अनित्यसंज्ञा; ६. अनित्य में दुःखसंज्ञा; ७. दुःख में अनात्मसंज्ञा॥

७. मैथुनसूत्र : सप्तविध मैथुनसंयोग — १. किसी स्त्री से 'दो का मिलना' (मैथुन) करना; २. स्त्रियों के उत्सादन, परिमर्दन, स्नान आदि को उत्सुकता से देखना; ३. किसी नारी के साथ हास परिहास; ४. नारी के साथ आँखें मिलाना; ५. नारी का संगीत सुनना; ६. पूर्वपत्नी के गान, हास-परिहास एवं रुदन का अनुस्मरण; ७. पाँच कामगुणों से सम्पृक्त किसी गृहपति या गृहपतिपुत्र को देखना॥

८. संयोगसूत्र : (क) संयोग धर्म — कोई स्त्री १. आध्यात्मिक स्त्रीन्द्रिय का; २. स्त्री के आचरण का; ३. स्त्री की चाल ढाल का; ४. स्त्री के सोच विचार का; ५. स्त्री के एश्वर्य का; ६. स्त्री के तौर तरीकों का; ७. स्त्री के अलङ्कारों का ध्यान करती है। उसका वहाँ राग हो जाता है, वह वहाँ रस लेती हुई अनुरक्त होती हुई १. बाह्य पुरुषेन्द्रिय का; २. पुरुष के आचरण; ३. पुरुष के चाल ढाल आदि का ध्यान करती है। वह वहाँ राग रक्त हो कर रस लेती हुई उस से बाह्य संयोग चाहती है।

(ख) विसंयोग धर्म — उक्त (संयोग) के विपरीत धर्म 'विसंयोग' कहलाता है॥

९. दानमहाफलसूत्र : सप्तविध दान, उस के फल — १. जो किसी आशा से दान करता है; २. 'दान करना अच्छा होता है' — यह सोच कर दान करता है; ३. 'मेरे पिता पितामह द्वारा प्रचालित यह प्राचीन कुलक्रम है'—यह सोचकर दान करता है; ४. 'मैं धन अर्जित कर रहा हूँ ये अर्जित नहीं कर रहे, अतः इन को दान करना उचित है' — यह सोच कर दान करता है; ५. 'पूर्व ऋषि मुनियों ने यज्ञ किये थे, उन को शुभ फल मिला, क्यों न मैं भी वैसे ही यज्ञ करूँ'—यह सोच कर दान करता है; ६. 'दान करने से मेरा चित्त प्रसन्न होगा'—यह सोचकर दान करता है; ७. अपने चित्तालङ्कार या चित्तपरिष्कार के लिये दान करता है। इन में अन्तिम (सप्तम) दानी मरणानन्तर ब्रह्मकायिक देवों के साथ मैत्रीभाव से सम्पृक्त हो कर उत्पन्न होता है॥

१०. नन्दमातासूत्र : नन्दमाता के सात अद्भुत धर्म — १. देवताओं से प्रत्यक्ष संवाद; २. पुत्र के मरने पर भी कोई शोक परिदेव नहीं; ३. प्रेतयोनि में उत्पन्न स्वामी के सम्मुख आने पर भी उसके प्रति चित्त में कोई कामविकार नहीं; ४. स्वामी से विवाह के बाद किसी अन्य के प्रति चित्त में कोई कामविकार नहीं; ५. उपासिका की दीक्षा लेने के बाद सम्बद्ध शिक्षापदों का कोई अतिक्रमण नहीं; ६. चारों ध्यानों की यथेच्छ साधना; ७. पाँचों अवरभागीय संयोजनों का प्रहाण॥

६. अव्याकृतवर्ग —

१. अव्याकृतसूत्र : श्रुतवान् आर्यश्रावक को अव्याकृत वस्तुओं में असन्देह — १. 'तथागत मरणोत्तर भी रहते हैं'; २. 'तथागत मरणोत्तर नहीं रहते'; ३. 'तथागत मरणोत्तर होते भी हैं; नहीं भी होते'; ४. 'तथागत मरणोत्तर नहीं होते, न नहीं होते' — इन में १. मिथ्यादृष्टि, २. तृष्णा, ३. संज्ञा, ४. मान्यता; ५. प्रपञ्च; ६. उपादान एवं ७. विप्रतिसार के कारण अश्रुतवान् पृथग्जन को सन्देह होता है॥

२. पुरुषगतिसूत्र : पुरुष की सात गतियाँ — पहली, दूसरी और तीसरी साधनाओं तक १. मानानुशय; २. भवरागानुशय; ३. अविद्यानुशय के सर्वथा प्रहीण न हो पाने के कारण साधक अन्तरा परिनिर्वायी ही रहता है, क्योंकि वह उस समय पाँच अवरभागीय संयोजन क्षीण होने से निर्वाण के मध्य मार्ग में ही रहता है; ४. उपहत्य परिनिर्वायी; ५. असंस्कारपरिनिर्वायी; ६. ससंस्कारपरिनिर्वायी; एवं ७. ऊर्ध्वस्रोत अकनिष्ठगामी होता है॥

३. तिष्यब्रह्मासूत्र : निर्वाण के ज्ञाता सप्तविध पुद्गल — १. उभयतोभागविमुक्त; २. प्रज्ञा-विमुक्त; ३. कायसाक्षी; ४. दृष्टिप्राप्त; ५. श्रद्धाविमुक्त; ६. धर्मानुसारी; एवं ७. अनिमित्तविहारी॥

४. सिंहसेनापतिसूत्र : सप्तविध दान — १. अर्हत् जन श्रद्धापूर्वक दान क्रिया में उत्साही पुरुष पर ही पहले अनुकम्पा करते हैं; २. पहले उसी के पास जाते हैं; ३. पहले उसी से सब कुछ लेते हैं; ४. उसी को पहले धर्मदेशना करते हैं; ५. उसी का लोक में यश फैलता है; ६. वह श्रद्धापूर्वक दानक्रिया में उत्साही पुरुष ही सब परिषदों में शिर ऊँचा कर निर्भीकतापूर्वक जाता है तथा वह ७. देहपात के बाद सुगतिमय स्वर्गलोक का उपभोग करता है॥

५. अरक्षणीयसूत्र : भगवान् के चार न छिपाने योग्य तथा तीन निर्दोष (सात) धर्म — १. परिशुद्ध कायसमाचार; २. परिशुद्ध वाक्समाचार; ३. परिशुद्ध मनःसमाचार; ४. परिशुद्ध आजीव; ५. तथागत का धर्मोपदेश बहुत स्पष्ट अतः सर्वथा अनुपालनीय; ६. उस से निर्वाण तक पहुँचने का

मार्ग स्पष्ट परिलक्षित होता है तथा ७. उसके आधार पर हजारों श्रावकपरिषदें आश्रवक्षय की साधना में लगी हुई हैं॥

६. **किमिलसूत्र :** (क) सद्धर्मवृद्धिकारक सात धर्म — जब भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिकाएँ १. शास्ता के प्रति; २. उन के धर्म के प्रति; ३. उनके सङ्घ के प्रति; ४. उनकी शिक्षा के प्रति; ५. उनके द्वारा बतायी गयी समाधिसाधनाविधि के प्रति; ६. अप्रमाद एवं ७. प्रतिसंस्तार के प्रति गौरवशील रहते हैं, विद्रोह नहीं करते, अनुशासन बद्ध रहते हैं॥

(ख) इन उपर्युक्त सात धर्मों के प्रति भिक्षु, भिक्षुणी आदि का गौरव भाव नष्ट हो जाता है, वे इससे विद्रोह कर देते हैं, वे अनुशासनबद्ध नहीं रहते तो यह सद्धर्म क्षीण होने लगता है॥

७. **सप्तधर्मसूत्र :** इन सात धर्मों से युक्त साधक शीघ्र ही आश्रवक्षयसाधनारत हो जाता है — १. शास्ता के प्रति; २. धर्म के प्रति; ३. सङ्घ के प्रति; ४. शिक्षा के प्रति; ५. समाधि के प्रति; ६. अप्रमाद के प्रति तथा ७. प्रतिसंस्तार के प्रति गौरवशील रहना॥

८. **प्रचलायमानसूत्र :** साधना में तन्द्रा या आलस्य के नाशक सात उपाय — १. जिन कारणों से यह तन्द्रा सता रही हो, उन कारणों का त्याग; २. यथाश्रुत, यथाधीत धर्म का स्वाध्याय; ३. अपने दोनों कानों को हाथ से मसलना; ४. नेत्रों पर जल के छींटे देना; ५. चित्त में दिन के तुल्य एक विशेष प्रकाश की कल्पना; ६. कुछ समय तक चंक्रमण; ७. सिंहशय्या आसन से लेटना॥

९. **मैत्रीसूत्र :** भगवान् को प्राप्त मैत्रीचित्त भावना के सात फल — १. एक बार महाब्रह्मा के रूप में उत्पत्ति; २. सात संवर्त विवर्त तक इस लोक में अनागमन; ३. छत्तीस बार देवराज इन्द्र पद की प्राप्ति; ४. सैंकड़ों बार चक्रवर्ती सम्राट् बने; ५. हस्तिरत्न आदि सात रत्नों के स्वामी बने; ६. ऐसे हजारों पुत्रों के पिता, जो सभी शूर वीर तथा समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के विजेता थे; ७. समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर एकच्छत्र राज्य किया॥

१०. **भार्यासूत्र :** सप्तविध भार्याएँ — १. वधक के समान; २. चौर के समान; ३. आर्या (स्वामिनी) के समान; ४. माता के समान; ५. बहन के समान; ६. सखी के समान; तथा ७. दासी के समान॥

११. **क्रोधनसूत्र :** शत्रुतावर्धक सात धर्म — अपने विरोधी के लिये कोई यह चाहता है — १. 'यह दुर्वर्ण (कुरूप) हो जाय'; या २. 'यह दुःखमग्न रहे'; या ३. 'इसके पास अधिक धन न हो'; या ४. 'इसके उपभोगहेतु अधिक ऐश्वर्यसाधन न रहें'; या ५. 'इसका लोक में यश न फैले'; या ६. 'इस का कोई मित्र न बने'; या ७. 'यह, मरने के बाद, नरक में जा गिरे'॥ ●

७. महावर्ग —

१. **ह्री-अवत्राप्यसूत्र :** (क) साधना में सात धर्म आवश्यक — १. ह्री एवं अवत्राप्य के न रहने से, साधनारहित हो जाने के कारण, साधक का इन्द्रियसंयम नहीं हो पाता; २. इन्द्रियसंवर के न होने से उसका शील निःसाधन हो जाता है; ३. शील के न रहने पर समाधि असम्भव हो जाती है; ४. समाधि के न होने पर उस को यथाभूतज्ञानदर्शन कैसे होगा; ५. यथाभूतज्ञानदर्शन के विना उस को संसार से निर्विदा एवं विराग असम्भव हैं; ६. निर्विदा एवं ७. विराग के विना उस को विमुक्तिज्ञानदर्शन कैसे होगा!

(ख) अतः साधना के लिये ये सातों धर्म आवश्यक हैं॥

२. सप्तसूर्यसूत्र : सप्त सूर्यों की उपमा से संस्कारों की अनित्यता — १. एक समय ऐसा आता है जब प्रथम सूर्य के उदय से सुमेरु पर्वतराज की सभी औषधियाँ एवं महासमुद्र के सभी प्राणी वर्षा न होने के कारण, सूख जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं; २. दूसरे सूर्य के उदित होने पर छोटी छोटी नदियाँ भी सूख जाती हैं; ३. तीसरे सूर्य के उदित होने पर बड़ी बडी नदियाँ भी सूख जाती हैं; ४. चतुर्थ सूर्य के उदित होने पर, इन नदियों के उद्गम स्थल बड़े बड़े सरोवर भी सूख जाते हैं; ५. पञ्चम सूर्य के उदित होने पर, महासमुद्र का जल सैंकड़ों योजन नीचे चला जाता है, यहाँ तक कि अन्त में उस की जलस्थिति यही रह जाती है मानो किसी गौ के ख़ुर से बने गर्त में जल भरा हो; ६. षष्ठ सूर्य के उदित होने पर, यह पृथ्वी और पर्वतराज सुमेरु उष्ण होकर धूआँ फेंकने लगते हैं; सप्तम सूर्य के प्रादुर्भूत होने से यह महापृथ्वी एवं सुमेरु पर्वतराज जल उठते हैं और यह अग्नि ब्रह्मलोक तक पहुँच जाती है और मार्ग के सभी लोकों को जला कर भस्म कर देती है। यही स्थिति सभी संस्कारों की है, ये भी अनित्य है। अत: साधक को निर्विदा एवं वैराग्य की भावना करनी चाहिये॥

३. नगरोपमसूत्र : नगर के सात परिष्कारों से सद्धर्म के सात धर्मों की तुलना — १. नगर के प्रथम परिष्कार सुदृढ नींव के समान साधक की तथागत के प्रति श्रद्धा; २. द्वितीय खाई (परिखा) के समान साधक की लज्जा; ३. नगर के समानान्तर मार्ग के समान साधक का अवत्राप्य (पापभीरुता) रूप समानान्तर साधना मार्ग; ४. नगर के विशाल आयुधभाण्डार के समान साधक का अकुशल धर्मों का त्याग; ५. नगरस्थित सेना के समान साधक का कुशल धर्मों की वृद्धिहेतु प्रयास; ६. नगर के बुद्धिमान् द्वारपाल के समान साधक की उच्चतम स्मृति एवं सम्प्रजन्य (सूझबूझ); ७. नगर के प्राचीर (परकोटे) के समान साधक की प्रज्ञा॥

४. धर्मज्ञसूत्र : सप्तविध पुद्गल प्रणम्य — १. धर्मज्ञ; २. अर्थज्ञ; ३. आत्मज्ञ; ४. मात्रज्ञ; ५. कालज्ञ; ६. सभाचतुर एवं ७. पुद्गलविषयक परावरज्ञ (ऊँच नीच का ज्ञाता)॥

५. पारिजातकसूत्र : पारिजातक (कोविदार) वृक्ष की सात अवस्थाओं के समान आर्यश्रावक की सात साधनावस्थाएँ — १. महाभिनिष्क्रमण (गृहत्याग); २. प्रव्रज्या; ३. प्रथम ध्यान; ४. द्वितीय ध्यान; ५. तृतीय ध्यान; ६. चतुर्थ ध्यान; ७. आश्रवक्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति की साधना। ऐसी साधना ही प्रफुल्ल कोविदारवृक्ष के समान शोभनीय एवं मनोभिराम होती है॥

६. सत्कृत्यसूत्र : सप्तविध सत्कार द्वारा कुशलधर्मसंग्रह — १. शास्ता का; २. धर्म का; ३. सङ्घ का; ४. शिक्षा का; ५. समाधि का; ६. अप्रमाद का; ७. प्रतिसंस्तार का सत्कार करते हुए इनके आलम्बन से कुशल धर्मों का संग्रह॥

७. भावनासूत्र : यथोचित साधना से ही सात धर्मों की प्राप्ति सम्भव है, केवल इच्छामात्र से नहीं — १. चार स्मृतिप्रस्थानों की; २. चार सम्यक्प्रधानों की; ३. चार ऋद्धिपादों की; ४. पाँच इन्द्रियों की; ५. पाँच बलों की; ६. सात बोध्यङ्गों की एवं ७. आठ आर्यमार्गों की सम्यक् साधना से, अभ्यास से ही इन की प्राप्ति सम्भव है॥

८. अग्निस्कन्धोपमसूत्र : इन सात दुष्कर्मों की अपेक्षा अग्नि में जल जाना उत्तम; जैसे — १. दुराचारिणी स्त्रियों एवं कन्याओं के साथ बैठना या लेटना; २. धनपतियों का अभिवादन स्वीकार

करना; ३. उनका प्रणाम स्वीकार करना; ४. उनका दिया चीवर; ५. पिण्डपात; ६. शयनासन एवं ७. आवासहेतु उनका दिया हुआ विहार स्वीकार करना॥

९. सुनेत्रसूत्र : सात तीर्थकरों के साथ द्वेषमय, निन्दा एवं अपमानजनक व्यवहार उचित नहीं; इस से पुद्गल का अध:पात ही होता है॥ सात शास्ताओं के नाम — १. सुनेत्र; २. अरनेमि; ३. कुद्दालक; ४. मूकपक्ष; ५. हस्तिपाल; ६. ज्योतिष्पाल; ७. अरक॥

१०. अरकसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

प्रसङ्गवश यहाँ (इस सूत्र में) १. मनुष्य की आयु, २. आयु:प्रमाण, ३. ऋतु, ४. संवत्सर, ५. मास, ६. अर्धमास, ७. रात्रि, ८. दिन, ९. भोजनकाल तथा १०. भोजनकाल के अन्तराय का वर्णन भी किया गया है॥ ●

८. विनयवर्ग —

१. प्रथम विनयधरसूत्र : विनयधर के लिये सप्तविध धर्म-ज्ञान आवश्यक — १. आपत्ति का; २. अनापत्ति का; ३. लघु आपत्ति का; ४. गुरु आपत्ति का ज्ञान; ५. शील का आचरण; ६. आध्यात्मिक चार ध्यानों का तथा ७. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति की साधना का ज्ञान॥

२. द्वितीय विनयधरसूत्र : विनयधर के लिये सप्तविध धर्म-ज्ञान आवश्यक — १-४. पूर्वसूत्रवत्; ५. दोनों प्रातिमोक्षों के विस्तार एवं विभाजन का ज्ञान; ६.-७. पूर्वसूत्रवत्॥

३. तृतीय विनयधरसूत्र : विनयधर के लिये सप्तविध धर्मज्ञान आवश्यक — १-४. पूर्वसूत्रवत्; ५. जो विनय में अविचत रूप से स्थिर हो; ६.-७. पूर्वसूत्रवत्॥

४. चतुर्थ विनयधरसूत्र : विनयधर सात धर्मों से युक्त — १-४. पूर्वसूत्रवत्, ५. अपने अनेक पूर्वजन्मों का स्मरण कर सकता है, ६. विशुद्ध दिव्यचक्षु से दूसरों के विषय में जान सकता है; ७. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति को इसी जन्म में जान कर, साक्षात् कर साधना कर सकता है॥

५. प्रथम विनयधरशोभनसूत्र : इन सात धर्मों से युक्त विनयधर सङ्घ में प्रतिष्ठित होता है — १-४. पूर्वसूत्रवत्, ५. शीलवान्, ६. चार ध्यानों का लाभी एवं ७. पूर्वसूत्रवत्॥

६. द्वितीय विनयधरशोभनसूत्र : सात धर्मों से युक्त विनयधर शोभास्पद — १-४. पूर्वसूत्रवत्, ५. दोनों प्रातिमोक्षों का सर्वथा ज्ञाता, ६-७. पूर्वसूत्रवत्॥

७. तृतीय विनयधरशोभनसूत्र : सात धर्मों से युक्त विनयधर शोभास्पद — तृतीय विनयधर सूत्र के समान॥

८. चतुर्थ विनयधर शोभनसूत्र : सात धर्मों से युक्त विनयधर शोभास्पद — चतुर्थविनयधर सूत्र के समान॥

९. शास्तृशासनसूत्र : निर्वाण के प्रतिकूल धर्म — जो धर्म १. एकान्तनिर्विदा, २. विराग, ३. निरोध, ४. उपशम, ५. अभिज्ञान, ६. सम्बोध एवं ७. निर्वाण के प्रतिकूल हों। तथा जो इन सात धर्मों के अनुकूल हों वे निर्वाण के अनुकूल होते हैं॥

१०. अधिकरणशमथसूत्र : विवादशामक सात धर्म — १. सम्मुखविनय, २. स्मृतिविनय, ३. अमूढविनय, ४. आगे ऐसा न करने की प्रतिज्ञा कराना, ५. बहुमत से निर्णय, ६. नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रभाव डालना, ७. घास से ढक देने के समान व्यवहार करना॥ ●

९. श्रमणवर्ग —

१. भिक्षुसूत्र : अपने इन सात धर्मों का भेदक 'भिक्षु' कहलाता है — १. सत्कायदृष्टि, २. विचिकित्सा, ३. शीलव्रतपरामर्श, ४. राग, ५. द्वेष, ६. मोह एवं ७. मान॥

२. श्रमणसूत्र : अपने इन सात धर्मों का शामक 'श्रमण' कहलाता है — पूर्वसूत्रवत्॥

३. ब्राह्मणसूत्र : सात धर्मों को दूर करने के कारण 'ब्राह्मण' कहलाता है — १-७. पूर्वसूत्रवत्॥

४. श्रोत्रियसूत्र : सात धर्मों को बाहर निकाल देने के कारण 'श्रोत्रिय' — १-७. पूर्वसूत्रवत्॥

५. स्नातकसूत्र : सात धर्मों को शास्त्राध्यनरूप स्नान द्वारा धो देने वाला 'स्नातक' — पूर्वसूत्रवत्॥

६. वेदज्ञसूत्र : सात धर्मो के ज्ञान के कारण 'वेदज्ञ' कहलाता है — पूर्वसूत्रवत्॥

७. आर्यसूत्र : सात धर्मों से दूर रहने के कारण 'आर्य' कहलाता है — पूर्वसूत्रवत्॥

८. अर्हत्सूत्र : सात धर्मों को दूर कर देने के कारण 'अर्हत्' कहलाता है — पूर्वसूत्रवत्॥

९. असद्धर्मसूत्र : सात असद्धर्म — १. अश्रद्धा, २. निर्लज्जता, ३. पाप से न डरना, ४. अल्पश्रुतता, ५. आलस्य, ६. लुप्तस्मृति, ७. दुष्प्रज्ञता॥

१०. सद्धर्मसूत्र : सात सद्धर्म — १. श्रद्धा, २. लज्जा, ३. पापभीरुता, ४. बहुश्रुतता, ५. उद्योग, ६. स्मृतिमत्ता, ७. प्रज्ञा॥

१०. आह्वनीयवर्ग —

१. ये सात पुद्गल दक्षिणेय एवं प्रणाम करने योग्य हैं — १. अनित्यानुपश्यी, २. अनित्यसंज्ञी, ३. अनित्यप्रतिसंवेदी, ४. अन्तरापरिनिर्वायी, ५. उपहत्यपरिनिर्वायी, ६. असंस्कारपरिनिर्वायी, ७. ससंस्कारपरिनिर्वायी एवं ऊर्ध्वस्रोत अकनिष्ठगामी॥

२-८. सात पुद्गल दक्षिणेय एवं प्रणम्य — चक्षु में १. दुःखानुपश्यी, २. अनात्मानुपश्यी, ३. क्षयानुपश्यी, ४. व्ययानुपश्यी, ५. विरागानुपश्यी, ६. निरोधानुपश्यी एवं ७. प्रतिनिसर्गानुपश्यी॥

९-४८. श्रोत्र में — दुःखानुपश्यी इत्यादि पूर्ववत्। घ्राण में — दुःखानुपश्यी इत्यादि पूर्ववत्। जिह्वा ... काय ... मन में दुःखानुपश्यी इत्यादि पूर्ववत्॥

४९-९६. रूपों में ...पूर्ववत्। शब्दों में...गन्धों में...रसों में...स्प्रष्टव्यों में...धर्मों में दुःखानुपश्यी इत्यादि पूर्ववत्॥

९७-१४४. चक्षुर्विज्ञान में...श्रोत्रविज्ञान में...घ्राणविज्ञान में...जिह्वाविज्ञान में...कायविज्ञान में...मनोविज्ञान में अनित्यानुपश्यी, दुःखानुपश्यी...पूर्ववत्॥

१४५-१९२. चक्षुःसंस्पर्श में, ...श्रोत्रसंस्पर्श में...घ्राणसंस्पर्श में...जिह्वासंस्पर्श में...कायसंस्पर्श में...मनःसंस्पर्श में अनित्यानुपश्यी...पूर्ववत्॥

१९३-२४०. चक्षुःसंस्पर्शज वेदना में...श्रोत्रसंस्पर्शज वेदना में...घ्राणसंस्पर्शज वेदना में...जिह्वासंस्पर्शज वेदना में...कायसंस्पर्शज वेदना में...मनःसंस्पर्शज वेदना में...पूर्ववत्... ॥

२४१-२८८. रूपसंज्ञा में...शब्दसंज्ञा में...गन्धसंज्ञा में...रससंज्ञा में...स्प्रष्टव्यसंज्ञा में...धर्मसंज्ञा में...पूर्ववत्... ॥

२८९-३३६. रूपसञ्चेतना में...शब्दसञ्चेतना में...गन्धसञ्चेतना में...रससञ्चेतना में...स्प्रष्टव्यसञ्चेतना में...धर्मसञ्चेतना में... ॥

३३७-३८४. रूपतृष्णा में...शब्दतृष्णा में...गन्धतृष्णा में...रसतृष्णा में...स्प्रष्टव्यतृष्णा में...धर्मतृष्णा में...पूर्ववत् ॥

३८५-४३२. रूपवितर्क में...शब्दवितर्क में...गन्धवितर्क में...रसवितर्क में...स्प्रष्टव्यवितर्क में...धर्मवितर्क में...पूर्ववत्... ॥

४३३-४८०. रूपविचार में...शब्दविचार में...गन्धविचार में...रसविचार में...स्प्रष्टव्यविचार में...धर्मविचार में...पूर्ववत्... ॥

४८१-५२८. पञ्चस्कन्धों में...रूपस्कन्ध में...वेदनास्कन्ध में...संज्ञास्कन्ध में...संस्कार स्कन्ध में...विज्ञानस्कन्ध में अनित्यानुपश्यी...पूर्ववत्...दुःखानुपश्यी...अनात्मानुपश्यी... क्षया-नुपश्यी....व्ययानुपश्यी...विरागानुपश्यी...निरोधानुपश्यी...प्रतिनिःसर्गानुपश्यी होकर साधना करता है; ऐसा पुद्गल दक्षिणेय, प्रणम्य...लोक के लिये अद्वितीय पुण्यस्थली है ॥

११. रागपेय्याल (रागविस्तार) —

१. राग के अभिज्ञान के लिये सात धर्मों की भावना — १. स्मृतिसम्बोध्यङ्ग; २. धर्मविचय-सम्बोध्यङ्ग; ३. वीर्यसम्बोध्यङ्ग; ४. प्रीतिसम्बोध्यङ्ग; ५. प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग; ६. समाधि-सम्बोध्यङ्ग; एवं ७. उपेक्षासम्बोध्यङ्ग ॥

२. राग के अभिज्ञान के लिये अन्य सात धर्मों की भावना — १. अनित्यसंज्ञा; २. अनात्म-संज्ञा; ३. अशुभसंज्ञा; ४. आदीनवसंज्ञा; ५. प्रहाणसंज्ञा; ६. विरागसंज्ञा; एवं ७. निरोधसंज्ञा ॥

३. राग के अभिज्ञान हेतु इन अन्य सात धर्मों की भावना — १. अशुभसंज्ञा; २. मरणसंज्ञा; ३. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा; ४. समस्त लोक में अनभिरतिसंज्ञा; ५. अनित्यसंज्ञा; ६. अनित्य में दुःखसंज्ञा; ७. दुःख में अनात्मसंज्ञा ॥

४-३०. राग के परिज्ञान के लिये...पूर्ववत्...परिक्षय के लिये...प्रहाण के लिये...क्षय के लिये...व्यय के लिये...विराग के लिये...निरोध के लिये...त्याग के लिये...प्रतिनिसर्ग के लिये सात धर्मों की भावना करनी चाहिये...पूर्ववत्... ॥

३१-५१०. द्वेष के...पूर्ववत्...मोह के...क्रोध के...उपनाह के...म्रक्ष के...प्रदाश के..., ईर्ष्या के...मात्सर्य के...माया के...शाठ्य के...स्तम्भ के...सारम्भ के...मान के...अतिमान के...मद के...प्रमाद के अभिज्ञान के लिये...पूर्ववत्...परिज्ञा के लिये...परिक्षय के लिये...प्रहाण के लिये...क्षय के लिये...व्यय के लिये...निरोध के लिये...त्याग के लिये...प्रतिनिसर्ग के लिये इन सात धर्मों की भावना करनी चाहिये...पूर्ववत्... ॥

सप्तकनिपातपालिसंक्षेप सम्पन्न ॥

अष्टक निपात

१. मैत्रीवर्ग —

१. मैत्रीसूत्र : मैत्रीचेतोविमुक्ति के आठ शुभ परिणाम — १. सुख से शयन, २. सुख से जागरण, ३. निद्रावस्था में दुःस्वप्न न देखना, ४. सभी मनुष्यों से सौहार्द, ५. अमनुष्यों को भी प्रिय, ६. देवताओं द्वारा रक्षा, ७. अग्नि, शस्त्र, विष आदि के दुष्प्रभाव से रक्षा, ८. निर्वाण तक न पहुँचने पर भी अनागामिता तक प्राप्ति अवश्यम्भावी॥

२. प्रज्ञासूत्र : प्रज्ञावृद्धि में आठ कारण — १. श्रद्धेय शास्ता या तत्सम किसी वृद्ध स्थविर का आश्रयण कर साधना; २. शास्ता या तत्सम स्थविर से धर्मविषयक प्रश्न; ३. उन से धर्मश्रवण कर उस पर काय एवं चित्त से आचरण; ४. शील एवं प्रातिमोक्ष से संवरण; ५. बहुश्रुत, श्रुतधर एवं श्रुत का संग्रहकरण; ६. कुशल धर्मों की प्राप्ति हेतु उद्योग; ७. सङ्घ में बैठने पर केवल धर्मविषयक चर्चा; एवं पाँच उपादानस्कन्धों के उत्पाद एवं विनाश का ज्ञान॥

३. प्रथम अप्रियसूत्र : (क) आठ धर्मों से युक्त का भिक्षुओं द्वारा असम्मान — १. अपने साथी भिक्षुओं के अप्रिय की प्रशंसा; २. प्रिय की निन्दा; ३. स्वकीय लाभेच्छा; ४. स्वकीय सत्कारेच्छा; ५. निर्लज्जता; ६. पाप से भय न मानना; ७. पापकर्म की इच्छा; ८. मिथ्यादृष्टि॥

(ख) इन से विपरीत धर्मों से युक्त का भिक्षुओं द्वारा सम्मान॥

४. द्वितीय अप्रियसूत्र : (क) साथियों के स्नेह में आठ धर्म बाधक — १. अपना ही लाभ, २. अपना ही सत्कार; ३. दूसरों की अवज्ञा; ४. न समय को पहचानना; ५. न भोजन की मात्रा जानना; ६. काय, वाक् एवं मन की अपवित्रता; ७. सम्प्रलाप एवं ८. साथियों की निन्दा तथा अपशब्द॥

(ख) इन से विपरीत आठ धर्म साथियों के स्नेह में साधक होते हैं॥

५. प्रथम लोकधर्मसूत्र : आठ लोकधर्म — १. लाभ; २. हानि; ३. यश; ४. अपयश; ५. निन्दा; ६. प्रशंसा; ७. सुख; ८. दुःख॥

६. द्वितीय लोकधर्मसूत्र : अश्रुतवान् तथा श्रुतवान् का आठ धर्मों के प्रति विपरीत चिन्तन — अश्रुतवान् पुरुष लाभ, हानि, यश, अपयश आदि मिलने पर यह नहीं सोचता कि ये सभी अनित्य तथा विनाशधर्मा हैं। जब कि श्रुतवान् इन आठों ही धर्मों को अनित्य एवं विनाशी समझता हुआ इन से अपने चित्त को बँधने नहीं देता॥

७. देवदत्तविपत्तिसूत्र : उक्त आठ धर्मों में अपना चित्त लगाने वाला नरकगामी — १. लाभ, २. हानि, ३. यश, ४. अपयश, ५. निन्दा, ६. प्रशंसा, ७. सुख और ८. दुःख के वश में होने से ही देवदत्त का नरकपात हुआ था। अतः साधक को १. आत्मसम्पत्ति एवं २. परसम्पत्ति तथा आत्मविपत्ति एवं परविपत्ति का निरन्तर प्रत्यवेक्षण करते रहना चाहिये॥

८. उत्तरविपत्तिसूत्र : आठ धर्मों में स्वचित्त को व्यापृत करने वाला नरकगामी — पूर्वसूत्रवत्॥

९. नन्दसूत्र : नन्दभिक्षु के आठ गुण — १. कुलपुत्र, २. बलवान्, ३. श्रद्धालु, ४. प्रियङ्कर, ५. साधना के प्रति तीव्रराग, ६. संयतेन्द्रिय, ७. भोजन का मात्राज्ञ एवं ८. स्मृतिसम्प्रजन्ययुक्त॥

१०. कारण्डवसूत्र : सङ्घ से निष्कासनयोग्य भिक्षु — १. पापी, २. क्रोधी, ३. म्रक्षी, ४. स्तम्भयुक्त, ५. प्रदाशी, ६. ईर्ष्यालु, ७. मत्सरी एवं ८. शठ॥

२. महावर्ग —

१. वेरञ्जसूत्र : भगवान् पर आठ आरोप — १. अरसरूप, २. निर्भोग, ३. अक्रियावादी, ४. उच्छेदवादी, ५. जुगुप्सु, ६. वैनयिक, ७. तपस्वी एवं ८. अपगर्भ।

(इन आरोपों के विषय में भगवान् का उत्तर यथास्थान ग्रन्थ में ही देखें॥)

२. सिंहसूत्र : निर्ग्रन्थों (जैनों) के भगवान् पर आठ आरोप — पूर्वसूत्रवत्॥

३. अश्वाजानेयसूत्र : (क) उच्चजातीय अश्व के आठ गुण — माता तथा पिता दोनों पक्षों से परिशुद्ध; २. खाने के लिये दिये गये घास या चारे को ससम्मान खाना इधर उधर नहीं बिखेरना; ३. जहाँ तहाँ मलमूत्र नहीं करना; ४. शान्त एवं सुखपूर्वक खड़े रहना; ५. दुर्गुणों की अल्पता; ६. अधिक भार ढोने का सामर्थ्य; ७. सरलता से चलना; ८. दृढशक्तिसम्पन्नता॥

(ख) भिक्षु के भी आठ गुण — १. शीलवान्, आचारवान्; २. गृहस्थों द्वारा प्राप्त भोजन को ससम्मान खाना; ३. कायिक, वाचिक मानसिक दुराचारों से घृणा; ४. सर्वत्र सुखपूर्वक रहना; अपने आचरण से अन्य भिक्षुओं को त्रस्त न करना; ५. अपनी शठता, कूटता आदि दुर्गण शास्ता के बताने पर छोड़ देना; ६. शिक्षा का ग्रहण करना; ७. साधनामार्ग पर सरलता से बढते जाना तथा ८. सङ्कल्प के साधनाभ्यास में उद्योग॥

४. अश्वखळुङ्कसूत्र : (क) अष्टविध दुष्ट अश्व — १. 'चलो' कहने पर या चाबुक मारने पर भी पीछे कदम बढाने वाला; २. 'चलो' कहने पर या चाबुक मारने पर सारथि को ही नीचे गिरा देना; ३. ...रथ की ईषा को ही लात मार कर तोड़ देना; ४. 'आगे बढो' कहने पर ... रथ को कुपथ पर डाल देना; ५. 'आगे बढो' कहने पर, या चाबुक मारने पर अपने शरीर के अग्रभाग को ऊपर उठा लेना; ६. 'आगे बढो' कहने पर या चाबुक मारने पर भी लगाम मुख से निकाल कर भाग जाना; एवं ७. 'आगे बढो' कहने पर, या चाबुक मारने पर भी अपने स्थान पर ही दृढतापूर्वक खड़े रहना; ८. ...चारों पैरों को सिकोड़ कर बैठ जाना॥

(ख) अष्टविध दुष्टपुरुष — उक्त अश्व के समान ग्रन्थ के माध्यम से समझ लें॥

५. मलसूत्र : अष्टविध मल — १. मन्त्रों का मल — अस्वाध्याय; २. घरों का मल — अक्रियाशीलता; ३. वर्ण का मल — आलस्य; ४. स्त्री का मल — दुश्चरित्रता; ५. रक्षक का मल — प्रमाद; ६. दान का मल — मात्सर्य (गर्व); ७. परलोक में विघ्न — पापकर्म; ८. इन सब से बढ कर आठवाँ मल होता है — अविद्या॥

६. दौत्यसूत्र : अष्टविध दूत — १. श्रोता; २. सुनाने वाला; ३. उद्गृहीता; ४. धारण करने वाला; ५. विज्ञाता; ६. विज्ञापयिता; ७. सहन एवं असहन करने में कुशल; ८. कलह न करने वाला॥

७. प्रथम बन्धनसूत्र : स्त्री द्वारा पुरुष का अष्टविध बन्धन — १. रुदन से; २. हास्य से; ३. बातचीत से; ४. शारीरिक चेष्टाओं (हावभाव) से; ५. पुष्पमाला से; ६. गन्ध से; ७. रस से; एवं ८. स्पर्श से॥

८. द्वितीय बन्धनसूत्र : पुरुष द्वारा स्त्री का अष्टविध बन्धन — पूर्वसूत्रवत्॥

९. प्रह्लादसूत्र : (क) महासमुद्र में अष्टविध आश्चर्यधर्म : १. महासमुद्र की ऊँचाई, निचाई, गहराई तथा उभार-सब कुछ क्रमपूर्वक है; २. उसकी स्थिरता (वह कभी तट का अतिक्रमण वहीं करता); ३. उसमें मृतजीव जन्तु नहीं रह पाते (मृतजीवों को वह अपनी तरङ्गों से किनारे पर फैंक देता है); ४. पृथ्वी की सभी महानदियाँ, अपना नाम गोत्र भुला कर, उसमें जा मिलती हैं; ५. नदियों तथा वर्षा के जल से भी न बढता है, न घटता है; ६. महासमुद्र का जल सदा एकरस (लवणरस) ही रहता है; ७. महासमुद्र विविध रत्नों का आगार है; ८. तिमि, तिमिङ्गल आदि बृहदाकार प्राणियों का वासस्थल है॥

(ख) धर्मविनय में भी अष्टविध आश्चर्यमय धर्म — १. इसमें भी शिक्षा, क्रिया एवं उपाय — इस क्रम से ज्ञान होता है; २. यहाँ भिक्षु प्राणसङ्कट आने पर भी शिक्षापदों का अतिक्रमण नहीं करते; ३. कोई दुश्चरित, पापी भिक्षु सङ्घ में नहीं रह पाता; ४. इसमें भी प्रव्रज्या लेने के बाद ब्राह्मण आदि चारों वर्ण 'शाक्यपुत्रीय भिक्षु' ही कहलाते हैं; ५. अनेक भिक्षुओं के परिनिवृत होने पर भी 'निर्वाण' में कोई अधिकता नहीं होती; ६. यह धर्म भी एकरस 'विमुक्तिरस' वाला ही है; ७. यह भी चार स्मृतिप्रस्थान आदि विविध साधना रत्नों का आगार है; ८. यह भी स्रोतआपन्न आदि महान् प्राणियों का आवास है॥

१०. उपोसथ सूत्र : आर्यविनय के आठ आश्चर्य धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

३. गृहपतिवर्ग —

१. प्रथम उग्रसूत्र : आठ धर्मों से युक्त वैशालीवासी उग्र गृहपति — १. प्रथम दर्शन के साथ भगवान् के प्रति श्रद्धा; २. भगवान् का उपदेश सुनने के बाद बुद्ध, धर्म, सङ्घ की-शरण एवं पाँच शिक्षापदों का ग्रहण; ३. अपनी ज्येष्ठ पत्नी दूसरे को देने पर भी उसके चित्त में कोई विकार नहीं; ४. उसका समस्त भोगैश्वर्य शीलवान् पुरुषों में अविभक्त; ५. सत्कारपूर्वक सभी भिक्षुओं की सेवा; ६. सम्मानपूर्वक धर्मश्रवण; ७. देवताओं के साथ संवाद का कोई अभिमान नहीं; ८. सभी अवरभागीय संयोजनों का प्रहाण॥

२. द्वितीय उग्रसूत्र : आठ धर्मों से युक्त वज्जिप्रदेश का हस्तिग्रामवासी उग्र गृहपति — पूर्वसूत्रवत्॥

३. प्रथम हस्तकसूत्र : आठ धर्मों से युक्त हस्तक गृहपति — १-७. पूर्वसूत्रवत्; ८. पूर्ण सन्तोषी॥

४. द्वितीय हस्तकसूत्र : आठ धर्मों से युक्त हस्तक गृहपति — १. श्रद्धालु; २. शीलवान्; ३. लज्जालु; ४. पापभीरु; ५. बहुश्रुत; ६. त्यागी; ७. प्रज्ञावान् एवं ८. अल्पेच्छ॥

५. महानामसूत्र : 'उपासक' की आठ विशेषताएँ — १. जो स्वयं श्रद्धालु हो, २. शीलवान् हो, ३. त्यागवान्, ४. भिक्षुदर्शनेच्छु, ५. सद्धर्मश्रवणेच्छु, ६. सद्धर्मधारक, ७. सद्धर्म के अर्थ का ज्ञाता; ८. स्वयं यह अर्थज्ञान कर तदनुसार आचरण करता हुआ दूसरों को भी तदर्थ प्रेरित करता है॥

६. जीवकसूत्र : उपासक की आठ विशेषताएँ — पूर्वसूत्रवत्॥

७. प्रथमबलसूत्र : अष्टविध बल — १. बालकों का बल — रुदन; २. स्त्रियों का बल — क्रोध; ३. चौरों का बल — शस्त्र; ४. राजाओं का बल — ऐश्वर्य; ५. मूर्खों का बल — आरोप या

उपालम्भ; ६. पण्डितों का बल — प्रमाण एवं तर्क के साथ समझाना; ७. विद्वानों का बल — विचार; ८. श्रमण ब्राह्मणों का बल — क्षमा॥

८. द्वितीय बलसूत्र : क्षीणाश्रव भिक्षु के आठ बल — १. सभी संस्कारों की अनित्यता का ज्ञान; २. सभी कामभोगों की दाहकता का ज्ञान; ३. विवेक की ओर प्रवृत्ति; ४. चारों स्मृति प्रस्थानों की साधना द्वारा पुष्टि; ५. चारों ऋद्धिपादों की पुष्टि; ६. पाँच इन्द्रियों की; ७. सात सम्बोध्यङ्गों की एवं ८. आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की साधना द्वारा पुष्टि॥

९. अक्षण सूत्र : धर्मसाधना के आठ अनवसर — १. तथागत द्वारा धर्मदेशना के समय स्वयं की नरक लोक में उत्पत्ति; २. पशुयोनि में उत्पत्ति; ३. प्रेतयोनि में उत्पत्ति; ४. दीर्घायुष्क देवयोनि में उत्पत्ति; ५. प्रत्यक् जनपदों में उत्पत्ति; ६. मिथ्यादृष्टि के रूप में उत्पत्ति; ७. मध्यदेश में भी जड़ या मूक वधिर रूप में उत्पत्ति; ८. या जब तथागत लोक में धर्मदेशना हेतु अवतरित ही न हुए हों तब प्रज्ञावान् के रूप में मध्यदेश में उत्पत्ति॥

१०. अनुरुद्धवितर्कसूत्र : आठ महापुरुषवितर्क — १. यह तथागतविनय अल्पेच्छ के लिये ही उपयोगी है, महेच्छ के लिये नहीं; २. सन्तुष्ट के लिये ही उपयुक्त है; असन्तुष्ट के लिये नहीं; ३. एकान्तसाधक के लिये ही उपयुक्त है; ४. उद्योगी के लिये ही उपयुक्त है; ५. स्मृतिमान् के लिये ही उपयुक्त है; ६. समाहित के लिये ही उपयुक्त है; ७. प्रज्ञावान् के लिये ही है, दुष्प्रज्ञ के लिये नहीं; ८. निष्प्रपञ्च साधक के लिये ही उपयुक्त है, प्रपञ्चवाले के लिये उपयुक्त नहीं॥ ●

४. दानवर्ग —

१. प्रथम दानसूत्र : अष्टविध दान — १. आसक्ति करके दान; २. भय से दान; ३. 'इसने भी मुझको दान किया था' — यह सोच कर दान; ४. 'यह भी मुझको दान करेगा'— यह सोचकर दान; ५. 'दान करना पुण्यप्रद है' — यह सोचकर दान; ६. 'मैं अर्जित कर रहा हूँ, ये अर्जित नहीं कर रहे'—यह सोचकर दान; ७. 'यह दान करने से मुझे यश मिलेगा'—यह सोचकर दान; ८. स्व चित्त की प्रसन्नता के लिये दान॥

२. द्वितीय दानसूत्र : दान के आठ प्रकार — १. श्रद्धापूर्वक; २. लज्जापूर्वक; ३. कुशलतापूर्वक दान से; ४. सत्सङ्ग की ओर चित्तप्रवृत्ति; ५. इस दान क्रिया की विद्वानों द्वारा प्रशस्ति; ६. दान क्रिया दिव्य मार्ग की ओर ले जाने वाली तथा ७. मरणानन्तर दानी की स्वर्गलोक में उत्पत्ति होती है॥

३. दानवस्तुसूत्र : दान के आठ कारण — १. कोई स्वेच्छा से दान करता है; २. कोई द्वेष से; ३. कोई मोह से; ४. कोई भय से; ५. 'पिता पितामह ने भी यह दान किया है, अतः कुलपरम्परा का त्याग उचित नहीं'—इस कारण से दान करता है; ६. 'यह दान कर मैं स्वर्ग में उत्पन्न होऊँगा' इस विचार से दान करता है; ७. कोई स्वचित्त-प्रसन्नतार्थ या ८. कोई स्वचित्त की शुद्धि हेतु दान करता है॥

४. श्रेत्रसूत्र : (क) खेत की उपमा से दान क्रिया का विवरण — १. ऊँची नीची भूमि वाले खेत में; २. अधिक कंकर पत्थर वाले खेत में; ३. ऊसर खेत में; ४. जिस में गहरी हलाई न निकाली गयी हो; ५. जिसमें जल आने का मार्ग न हो; ६. न जल निकलने का मार्ग हो; ७. जिसमें

समतापूर्वक जल जाने के नाली न बनी हो, या ८. जिस खेत की मेंड (मर्यादा की दीवार) न बनी हो—ऐसे खेत में बोया हुआ बीज अच्छा फलदायी या शुभ परिणाम वाला नहीं होता ॥

इसी प्रकार, ऐसे श्रमण ब्राह्मणों को किया दान शुभ फलदायी नहीं होता — जो १. मिथ्या-दृष्टि हो; २. मिथ्यासङ्कल्प; ३. मिथ्यावाक्; ४. मिथ्याकर्म; ५. मिथ्याजीव; ६. मिथ्याव्यायाम; एवं ७. मिथ्यासमाधि वाले हों ॥

(ख) परन्तु उक्त धर्मों के विपरीत खेत में बोया हुआ बीज शुभफलदायी होता है उसी प्रकार १. सम्यग्दृष्टि... ८ सम्यक्समाधि वाले ब्राह्मणों को किया दान ही शुभ फल देने वाला होता है ॥ (विस्तार ग्रन्थ मे देखें।)

५. दानोपपत्तिसूत्र : दान के फलस्वरूप होने वाले अष्टविध जन्म — १. कोई शीलवान् पुरुष श्रमण ब्राह्मणों को अन्न-पान-वस्त्र-यान आदि दान करता है; परन्तु वह जब लोक में अन्य ऐश्वर्यशाली क्षत्रिय-ब्राह्मण धनपतियों को ऐश्वर्योपभोग करते देखता है तो वह उनसे ईर्ष्या करने लगता है, इस ईर्ष्या वश वह भी वैसा ही जन्म पाने की इच्छा करने लगता है। इस दृढ इच्छा के कारण वह अगले जन्म में किसी धनपति के घर में जन्म लेता है; २. कोई दानी चतुर्महाराजिक देवों के जीवन से...; ३. कोई दानी त्रायस्त्रिंश देवों के जीवन से...; ४. कोई याम देवों के जीवन से...; ५. कोई तुषित देवों के जीवन से...; ६. कोई निर्माणरतिदेवों के जीवन से...; ७. कोई परनिर्मितवशवर्ती देवों के जीवन से...; तथा ८. कोई दानी ब्रह्मकायिक देवों के जीवन से ईर्ष्या कर वैसा ही बनने की इच्छा करता है। इस दृढ इच्छा के फलस्वरूप वह आगामी जन्म में ब्रह्मकायिक देवों के लोक में उत्पन्न होता है ॥

६. पुण्यक्रियवस्तुसूत्र : पुण्यक्रिया के कारण अष्टविध लोकों में जन्म — पुण्यक्रिया त्रिविध होती हैं — १. दानमय पुण्यक्रियावस्तु; २. शीलमय पुण्यक्रियावस्तु एवं ३. भावनामय पुण्यक्रिया वस्तु। इनमें १. कुछ ही दान क्रिया करने वाला, देहपातानन्तर, मनुष्य योनि में उत्पन्न हो कर भी दरिद्र एवं हीन कुलों में उत्पन्न होता है; २. कुछ दानक्रिया एवं शीलक्रिया करने वाला धनवान् एवं उच्चकुलों में उत्पन्न होता है। ३. कुछ दान क्रिया एवं शीलक्रिया परन्तु भावनाक्रिया कुछ भी न करने वाला चातुर्महाराजिक देवों में उत्पन्न होता है; ४. दान क्रिया एवं शीलक्रिया बहुत अधिक करने वाला त्रायस्त्रिंश लोक में; ५. ...सुयामदेवों में...; ६. ...तुषित देवों में...; ७. ...भावनाक्रिया की अधिकता कारण निर्माणरतिदेवों में...; ८. ...परनिर्मितवशवर्ती देवों में उत्पन्न होता है। यह आयु, वर्ण आदि दश बातों में अधिक (विशिष्ट) होता है ॥

७. सत्पुरुषदान सूत्र : सत्पुरुषकृत अष्टविध दान : सत्पुरुष जो भी देता है १. शुद्ध ही होता है; २. उत्तम देता है; ३. समय से देता है; ४. उचित देता है; ५. विचार कर देता है; ६. अधिक मात्रा में देता है; ७. दान देते समय उस का चित्त प्रसन्न रहता है; ८. दानक्रिया से वह सन्तुष्ट होता है ॥

८. सत्पुरुषसूत्र : कुल में उत्पन्न सत्पुरुष आठ प्रकार से अर्थकारी, हितकारी होता है — १. माता पिता का; २. पुत्रों एवं पत्नियों का; ३. अधीन दास, कर्मकर का; ४. मित्रों एवं साथियों का; ५. कुटुम्ब के पूर्वजों का; ६. राजा का; ७. देवताओं का तथा ८. श्रमण-ब्राह्मणों का ॥

९. अभिष्यन्दसूत्र : अष्टविध कर्मों के पुण्यफल — १. सम्यक्सम्बुद्ध की; २. उनके धर्म

की; ३. उनके सङ्घ की शरण में जाना; ४. प्राणातिपातविरति; ५. अदत्तादानविरति; ६. कामों में मिथ्याचारविरति; ७. मृषावाद से विरति एवं ८. मद्यपान से विरति॥

इन आठ कर्मों का पुण्यफल निर्वाण तक पहुँचाने वाला होता है॥

१०. दुश्चरितविपाकसूत्र : अष्टविध दुष्कर्मों का पापमय फल — १. प्राणातिपात; २. अदत्तादान; ३. कामभोगों में मिथ्याचार; ४. मृषावाद; ५. मद्यपान; ६. पिशुनवाक्; ७. परुषवाक् एवं ८. सम्प्रलाप — इन सब कुकर्मों का दुष्परिणाम ही मनुष्य को भोगना पड़ता है। इनका दुष्परिणाम क्रमशः यह होता है — १. आयुःक्षय; २. कामभोगों का क्षय; ३. साथियों से बैर; ४. लोकनिन्दा; ५. मित्रों से विग्रह; ६. समाज में प्रतिकूल शब्दों का सुनना एवं ७. अस्वीकार्य वचन सुनने को बाध्य होना; तथा ८. पागल हो जाना॥ ●

५. उपोसथवर्ग —

१. संक्षिप्त उपोसथसूत्र : इन आठ अङ्गों से युक्त उपोसथव्रत का पालन अतिशय फलदायी — १. अर्हतों के समान जीवन-पर्यन्त प्राणातिपात से विरत रहकर साधनारत रहना; २. अर्हतों के समान, जीवनपर्यन्त अदत्तादान का त्याग कर; ३. ...कामभोगों में मिथ्याचार का त्याग कर...; ४. अर्हतों के समान, जीवनपर्यन्त मृषावाद का त्याग कर... ; ५. ...मद्यपान का त्यागकर...; ६. ...दिन में एक ही समय भोजन करते हुए तथा रात्रि में न करते हुए...; ७. ...नृत्य, गीत, वादित्र से जीवनपर्यन्त दूर रहते हुए...; ८. ...उच्च शयन महाशयन का त्याग करते हुए तृणपुञ्ज पर सो कर साधनारत रहना॥

२. विस्तृत उपोसथसूत्र : पूर्वसूत्र का ही विस्तृत विवरण॥

३. विशाखासूत्र : अष्टाङ्गयुक्त उपोसथव्रत का पालन अतिशय फलदायी — पूर्वसूत्रवत्॥

४. वासिष्ठसूत्र : अष्टाङ्गयुक्त उपोसथ व्रत का पालन अतिशय फलप्रद — पूर्वसूत्रवत्॥

५. बोध्यसूत्र : ...पूर्वसूत्रवत्॥

६. अनुरुद्धसूत्र : आठ धर्मों से युक्त ऐसी स्त्री मनापकायिक देवों के साथ उत्पन्न होती है — जो स्त्री १. अपने पति की आज्ञाकारिणी होती है; २. पति के माता पिता, गुरुजनों का सम्मान करती है; ३. पति के गृहकार्य दक्षतापूर्वक सम्पन्न करती है; ४. पति के नौकर चाकरों के विषय में ज्ञान रखती है; ५. पति की दी हुई सम्पत्ति की रक्षा करती है; ६. रत्नत्रय की शरणागत रहती है; ७. पञ्चशील का पालन करती है; ८. घर पर आये अतिथियों, याचकों को स्वच्छ मन से दान करती है। ऐसी स्त्री मनापकायिक देवों में उत्पन्न होती है॥

७. द्वितीय विशाखासूत्र : आठ धर्मों से युक्त नारी देवलोक में — १. पति की सेविका; २-८ पूर्वसूत्रवत्॥

८. नकुलमातासूत्र : आठ धर्मों से युक्त नारी देवलोक में — पूर्वसूत्रवत्॥

९. प्रथम सेहलौकिकसूत्र : आठ धर्मों से युक्त नारी दोनों लोकों पर विजयी — (क) चार धर्मों से इस लोक पर — पूर्वसूत्रवत्। (ख) चार धर्मों से देवलोक पर — १. श्रद्धा; २. शील; ३. त्याग एवं ४. प्रज्ञा॥

१०. द्वितीय ऐहलौकिकसूत्र : आठ धर्मों से युक्त नारी दोनों लोकों पर विजयी — (क) (ख) पूर्वसूत्रवत्॥ ●

६. गौतमीवर्ग —

१. गौतमीसूत्र : स्त्रियों के लिये पालनीय **आठ गुरु धर्म** — सौ वर्ष पूर्व उपसम्पन्न भिक्षुणी को भी नव प्रव्रजित भिक्षु का अभिवादन आदि सत्कार करना; २. भिक्षुणी को भिक्षुरहित आवास में वर्षावास निषिद्ध; ३. प्रत्येक अर्धमास में भिक्षुणी को भिक्षु से दो पर्येषणा आवश्यक; ४. वर्षावास के बाद, भिक्षुणी को दोनों सङ्घों में अपने दृष्ट, श्रुत एवं परिशङ्कित की प्रवारणा अनिवार्य; ५. गुरुधर्म प्राप्त भिक्षुणी को दोनों सङ्घों में पक्षमानता करना आवश्यक; ६. कोई भी कारण उपस्थित होने पर भी, भिक्षु का अपमान निषिद्ध; ७. दो वर्षों तक छह धर्मों में शिक्षाप्राप्त भिक्षुणी को भी दोनों सङ्घों में उपसम्पदा की पर्येषणा आवश्यक; ८. भिक्षुणियों का भिक्षुओं से कुछ भी कहना निषिद्ध; परन्तु आवश्यकता पड़ने पर भिक्षु ऐसा कह सकते हैं॥

३. संक्षिप्तसूत्र : भिक्षुणियों के लिये संक्षिप्त धर्मोपदेश — १. जो धर्म सराग हों; २. जो धर्म संसार से संयोग कराने वाले हों; ३. संसार से सम्पर्कवर्धक हों; ४. जो धर्म साधना में हानिकारक हों; ५. लोभवृद्धि एवं ६. असन्तोषवर्धक हों; ७. एकान्तसाधना में उपयुक्त न हों; ८. साधना में उद्योगहेतु प्रेरित करने वाले न हों — इन धर्मों का त्याग, परन्तु इन के प्रतिलोम विराग आदि आठ धर्मों का ग्रहण॥

४. दीर्घजानुसूत्र : गृहस्थ जन के लिये उभयलोक हितकारी आठ धर्म आवश्यक — १. उत्थानसम्पदा; २. आरक्षसम्पदा; ३. कल्याणमित्रता; ४. समजीविता; ५. श्रद्धासम्पदा; ६. शीलसम्पदा; ७. त्यागसम्पदा; ८. प्रज्ञासम्पदा॥

५. उज्जयसूत्र : प्रवास में साधनोपयोगी आठ धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

६. भयसूत्र : 'काम' के आठ पर्याय — १. भय; २. दुःख; ३. रोग; ४. गण्ड; ५. शल्य; ६. सङ्ग; ७. पङ्क एवं ८. गर्भ। साधना में इन का त्याग सर्वथा आवश्यक है॥

७. प्रथम आह्वनीयसूत्र : प्रणम्य भिक्षु के आठ धर्म — १. जो शीलवान् हो; २. बहुश्रुत हो; ३. कल्याणमित्र हो; ४. सम्यग्दृष्टि हो; ५. चारों ध्यानों का लाभी; ६. अपने अनेक पूर्वजन्मों का स्मर्ता; ७. दिव्य चक्षु से अन्य प्राणियों के पुनर्जन्मों का ज्ञाता और; ८. आश्रवक्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति का साधक हो॥

८. द्वितीय आह्वनीयसूत्र : प्रणम्य भिक्षु के आठ धर्म — १. शीलवान्; २. बहुश्रुत; ३. साधना में उद्योगी; ४. अरण्य में एकान्तवासक; ५. अरति की उपेक्षा करता हुआ साधना में दत्तचित्त; ६. विविध भयों की भीषणता को सहन करने वाला; ७. आध्यात्मिक चारों ध्यानों का लाभी; ८. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति की साधना॥

९. प्रथम पुद्गलसूत्र : आठ धर्मयुक्त भिक्षु प्रणम्य — १. स्रोतआपन्न; २. स्रोत- आपत्ति-फलसाक्षात्कारयुक्त; ३. सकृदागामी; ४. सकृदागामिफलसाक्षात्कारयुक्त; ५. अनागामी; ६. अनागामिफलसाक्षात्कार युक्त; ७. अर्हत् एवं ८. अर्हत्त्वप्रतिपन्न॥

१०. द्वितीय पुद्गलसूत्र : आठ धर्मयुक्त भिक्षु प्रणम्य — पूर्वसूत्रवत्॥

७. भूमिचालवर्ग —

१. इच्छासूत्र : लोक में अष्टविध पुद्गल — १. कोई भिक्षु लाभ की इच्छा से साधना, तदर्थ प्रयास एवं चेष्टा करता है, परन्तु लाभ न मिलने पर शोक, विलाप करता है; २. कोई भिक्षु लाभ की

इच्छा से साधना करता हुआ उस में लाभ मिलने पर हर्षोन्मत्त हो जाता है; ३. कोई भिक्षु ... तदर्थ कोई चेष्टा या प्रयास नहीं करता, परन्तु लाभ न मिलने पर शोक विलाप करता है; ४. कोई भिक्षु...तदर्थ चेष्टा या प्रयास न करने पर भी लाभ प्राप्त कर लेता है तब वह हर्षोन्मत्त हो उठता है; ५. कोई भिक्षु...तदर्थ चेष्टा या प्रयास न करने के कारण लाभ न प्राप्त होने पर भी शोक विलाप नहीं करता; ६. कोई...लाभ प्राप्त न होने पर शोक विलाप करता है; ७. कोई भिक्षु...लाभ प्राप्त न होने पर भी शोक विलाप नहीं करता; वह धर्म से च्युत नहीं होता; ८. कोई भिक्षु...लाभ प्राप्त कर लेता है, फिर भी वह न हर्षोन्मत्त होता है, न वह धर्म से ही च्युत होता है।

(स्पष्टीकरण के लिये ग्रन्थ में इसका विस्तार देखें।) ॥

२. अलंसूत्र : स्व या पर हित सम्पादन में कुशल या अकुशल भिक्षु — १. छह धर्मों से युक्त भिक्षु स्व या पर हित सम्पादन में समर्थ होता है; २. पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु भी स्व तथा पर—दोनों के हित सम्पादन में समर्थ होता है; ३. परन्तु चार धर्मों से युक्त भिक्षु स्वहित ही सम्पन्न कर सकता है, परहित नहीं; ४. अथ च, अन्य चार धर्मों से युक्त भिक्षु परहितसम्पादन में ही समर्थ हो सकता है, परहित सम्पादन में नहीं; ५. तीन धर्मों से युक्त भिक्षु स्वहित ही सम्पन्न कर सकता है, परहित नहीं; ६. परन्तु अन्य तीन धर्मों से युक्त भिक्षु परहित सम्पादन में ही समर्थ हो सकता है, स्वहित सम्पादन में नहीं; ७. दो धर्मों से युक्त भिक्षु स्वहित सम्पादन में ही समर्थ होता है, परहित में समर्थ नहीं; ८. परन्तु अन्य दो धर्मों से युक्त भिक्षु परहितसम्पादन में ही समर्थ होता है, स्वहित सम्पादन में नहीं। (छह धर्मों का विवरण आगे ग्रन्थ में देखें) ॥

३. संक्षिप्तसूत्र : किसी भिक्षु को संक्षिप्त धर्मोपदेश — १. आध्यात्मिक चित्त में ऐसी स्थिरता लाओ कि उसमें अकुशल धर्मों की स्थिरता न बने; २. तदनन्तर, तुम्हारी चित्तविमुक्ति मैत्रीभावना की इतनी अभ्यस्त हो जाय कि यहाँ उसमें स्थिरता आ सके; ३. करुणाचेतोविमुक्ति...; ४. मुदिता चेतोविमुक्ति...; ५. उपेक्षाचेतोविमुक्ति में वहाँ स्थिरता आ सके; ६. ...समाधि में स्थिरता...; ७. काया में कायानुपश्यना...; ८. वेदना में वेदनानुपश्यना की साधना में स्थिरता आ सके॥

४. गयाशीर्षसूत्र : भगवान् का अष्टविध ज्ञानदर्शन — १. प्रकाश का ज्ञान; २. रूपों का ज्ञान; ३. देवताओं के साथ बैठने, उठने तथा उनसे संवाद का ज्ञान; ४. अमुक देवता का अमुक देवनिकाय; ५. अमुक देवता का अमुक आहार तथा अमुक देवता के अमुक सुख दुःख का अनुभव; ६. अमुक देवता का अमुक आयुःपरिमाण; ७. अमुक देवता की अमुक कर्म विपाक से अमुक लोक में उत्पत्ति; ८. किस पूर्व जन्म में किस देवता के साथ वास हुआ॥

५. अभिभ्वायतनसूत्र : आठ अभिभ्वायतन — १. कोई अध्यात्म में रूपसंज्ञी साधक बाहर कुछ सुवर्ण या दुर्वर्ण रूप देखता है, वह 'उनको अभिभूत (लुप्त) कर जानता हूँ, देखता हूँ' ऐसी संज्ञा वाला होता है; २. ...बाहर अप्रमाण (अत्यधिक) सुवर्ण दुर्वण रूप...; ३. अध्यात्म में अरूपसंज्ञी हो कर बाहर कुछ सुवर्ण दुर्वर्णरूप...; ४. ...बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुर्वर्ण रूप...; ५. ...बाहर नील, नीलवर्ण...; ६. ...पीत, पीतवर्ण...; ७. ...लोहित, लोहितवर्ण रूप...; ८. ...बाहर श्वेत, श्वेतवर्ण रूप देखता है, वह 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ' — ऐसी संज्ञा वाला होता है॥

६. विमोक्षसूत्र : आठ विमोक्ष — १. रूपवान् होते हुए रूपों को देखना; २. अध्यात्म में

अरूपसंज्ञी हो कर बाह्य रूपों को देखना; ३. किसी का शुभ्ररूप ही देखना, उसी से मुक्त हो जाना; ४. किसी का रूपसंज्ञाओं को अतिक्रान्त कर, प्रतिघसंज्ञाओं के अस्त हो जाने से नानात्वसंज्ञाओं को मन में न कर आकाशानन्त्यायन की साधना करना; ५. किसी का उस को भी अतिक्रान्त कर विज्ञानानन्त्यायन की साधना करना; ६. किसी का उस को भी अतिक्रान्त कर आकिञ्चन्यायतन की साधना करना; ७. किसी का उसको भी अतिक्रान्त कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की साधना करना; ८. किसी का उसको भी अतिक्रान्त कर संज्ञावेदयितनिरोध की साधना करना॥

७. अनार्यव्यवहारसूत्र : आठ अनार्यव्यवहार — १. अदृष्ट को दृष्ट कहना; २. अश्रुत को श्रुत कहना; ३. अस्मृत को स्मृत कहना; ४. अविज्ञात को विज्ञात कहना; ५. दृष्ट को अदृष्ट कहना; ६. श्रुत को अश्रुत कहना; ७. स्मृत को अस्मृत कहना; ८. विज्ञात को अविज्ञात कहना॥

८. आर्यव्यवहारसूत्र : आठ आर्य व्यवहार — १. अदृष्ट को अदृष्ट; २. अश्रुत को अश्रुत; ३. अस्मृत को अस्मृत; ४. अविज्ञात को अविज्ञात; ५. दृष्ट को दृष्ट; ६. श्रुत को श्रुत; ७. स्मृत को स्मृत एवं ८. विज्ञात को विज्ञात ही कहना॥

९. परिषत्सूत्र : आठ परिषदें — १. क्षत्रियपरिषद्; २. ब्राह्मणपरिषद्; ३. गृहपतिपरिषद्; ४. श्रमणपरिषद्; ५. चातुर्महाराजिकपरिषद्; ६. त्रायस्त्रिंशपरिषद्; ७. मारपरिषद्; ८. ब्रह्मपरिषद्॥

१०. भूमिचालसूत्र : भूकम्प के आठ कारण — १. पृथ्वी के जल पर प्रतिष्ठित होने के कारण तथा वायु द्वारा जल में कम्पन; २. किसी योगी द्वारा अपने योगबल से पृथ्वी का कम्पन; ३. बोधिसत्त्व के तुषित लोक से च्यवन के बाद माता के गर्भ में आना; ४. बोधिसत्त्व द्वारा गर्भ से बाहर आना; ५. तथागत द्वारा सम्बोधिप्राप्ति; ६. तथागत द्वारा धर्मचक्रप्रवर्तन; ७. तथागत द्वारा आयु:संस्कार का त्याग; तथा ८. तथागत के महापरिनिर्वाण॥

८. यमकवर्ग —

१. प्रथम श्रद्धासूत्र : भिक्षु के आठ पूर्ण धर्म — १. श्रद्धा; २. शील; ३. बहुश्रुतता; ४. धर्मकथिकता; ५. परिषत्कुशलता; ६. धर्मकथाचतुरता; ७. चारों ध्यानों की पूर्णता; ८. एवं अनाश्रवा प्रज्ञाविमुक्ति, चेतोविमुक्ति की साधना॥

२. द्वितीय श्रद्धासूत्र : भिक्षु के आठ पूर्ण धर्म — १-६. पूर्वसूत्रवत्; ७. आठ विमोक्षों की साधना; ८. पूर्वसूत्रवत्॥

३. प्रथम मरणस्मृतिसूत्र : मरणस्मृति साधना के आठ प्रकार — १. एक रात्रिदिन जीवित रहने पर भी मरणस्मृति की साधना; २. एक ही दिन जीवित रहने पर भी... ३. आधे दिन जीवित रहने पर भी...; ४. एक बार भोजन करने जितने समय तक जीवित रहने पर भी...; ५. भोजन का आधा भाग खाने के समय तक जीवित रहने पर भी...; ६. भोजन के चार पाँच ग्रास खाने तक के समय पर्यन्त जीवित रहने तक भी...; ७. भोजन का एक ग्रास खाने जितने समय तक ही जीवित रहने पर भी...; ८. एक श्वास लेने जितने समय तक जीवित रहने पर भी मरणस्मृति की साधना॥

४. द्वितीय मरणस्मृतिसूत्र : इस सूत्र का वर्ण्य विषय संक्षेप में यह है — साँप, बिच्छू आदि के काटने से होने वाली मृत्यु के भय से होने वाली मृत्यु से पूर्व ही, साधक के अपने अकुशल धर्मों का प्रहाण एवं कुशल धर्मों का उत्पाद प्रीति प्रामोद्य के साथ पूर्ण कर लेना चाहिये॥

५. प्रथम सम्पदासूत्र : अष्टविध सम्पदा — १. उत्थानसम्पदा; २. आरक्षसम्पदा; ३. कल्याणमित्रता; ४. समजीविता; ५. श्रद्धासम्पदा; ६. शीलसम्पदा; ७. त्यागसम्पदा; ८. प्रज्ञासम्पदा॥

६. द्वितीय सम्पदासूत्र : अष्टविध सम्पदा — पूर्वसूत्रवत्॥

७. इच्छासूत्र : अष्टविध इच्छासम्पन्न पुद्गल — पूर्ववर्णित इसी निपात के **भूमिचालवर्ग** में व्याख्यात **इच्छासूत्र** के समान ही इस सूत्र का संक्षेप भी समझ लें॥

८. अलंसूत्र : स्वपरहितसम्पादन समर्थ भिक्षु — पूर्ववर्णित **भूमिचालवर्ग** के **अलंसूत्र** के समान इस सूत्र का संक्षेप भी समझ लें॥

९. परिहाणसूत्र : (क) शैक्ष्य भिक्षु के लिये आठ धर्म परिहाणिकारक —

१. कर्मारामता; २. भस्सारामता; ३. निद्रारामता; ४. सङ्गणिकारामता; ५. इन्द्रियों में अगुप्तद्वारता; ६. भोजन में अमात्राज्ञता; ७. संसर्गारामता; ८. प्रपञ्चारामता॥

(ख) शैक्ष्य भिक्षु के लिये आठ धर्म अपरिहाणिकारक — उपर्युक्त आठों धर्मों का अभाव॥

१०. कुसीदारम्भवस्तुसूत्र : (क) आठ आलस्यवश कार्यनाशक धर्म — १. भिक्षु को कोई कार्य आरम्भ करना हो, परन्तु वह उसको न करना चाहते हुए आलस्यवश चुपचाप लेटा रहे; २. वह कोई कार्य पूर्ण कर चुका हो, तब वह चुपचाप लेट जाय, और दूसरा कार्य आरम्भ न करे; ३. किसी को आगे मार्ग पर चलना हो, परन्तु वह आलस्यवश मार्ग पर न चले; ४. या कोई कुछ दूर मार्ग पर चल चुका हो परन्तु आगे चलने में आलस्य करे; ५. कोई किसी ग्राम में भिक्षा न प्राप्त कर पावे, वह आलस्यवश एक ओर बैठ जाय; ६. कोई पूर्ण भिक्षा प्राप्त कर आलस्यवश बैठ जाय, आगे साधना में न लगे; ७. साधारण अस्वस्थ होने पर आलस्यवश साधना से विरत रहे; ८. या कोई तत्काल रोग से मुक्त हुआ हो, अतः आलस्यवश साधना से विरत रहे॥

(ख) कार्यारम्भक आठ धर्म — उपर्युक्त से विलोम व्याख्यान कर लें॥

९. स्मृतिवर्ग —

१. स्मृतिसम्प्रजन्यसूत्र : आठ अन्योन्याश्रित धर्म — स्मृति-सम्प्रजन्यविहीन भिक्षु को १. ह्री एवं २. अवत्राप्य नहीं रह जाते; इनके न रहने पर ३. इन्द्रियसंयम का अभाव; इनके न रहने पर ४. शील का अभाव; इसके न होने पर ५. समाधि का अभाव; समाधि के न होने पर ६. यथाभूत ज्ञानदर्शन का अभाव; तथा इसके न रहने पर ७. निर्विदा एवं वैराग्य का अभाव तथा इन दोनों के न रहने पर ८. विमुक्तिज्ञान का अभाव निश्चित ही हो जायगा॥

२. पुण्णियसूत्र : तथागत द्वारा धर्मदेशना के आठ अवसर — १. यदि कोई श्रद्धापूर्वक हो; २. पास आने वाला; ३. पर्युपासना (सेवा) करने वाला हो; ४. धर्मविषयक प्रश्नकर्ता हो; ५. उसका उत्तर ध्यानपूर्वक सुने; ६. श्रुत धर्म को धारण करे; ७. उस का अर्थपरीक्षण करे; ८. उसके अनुसार आचरण करे तभी तथागत धर्मोपदेश करते हैं; अन्यथा नहीं॥

३. मूलकसूत्र : धर्म के आठ मूल स्थल — १. इच्छा सब धर्मों का मूल है; २. उन को मन में बैठाना उन की उत्पत्ति है; ३. स्पर्श उनका उत्पत्तिकारण है; ४. वेदना उन को एकत्र करती है; ५. समाधि इन की प्रमुख है; ६. स्मृति इन पर ऐश्वर्य करती है; ७. प्रज्ञा इन की अग्र है; ८. तथा विमुक्ति ही इन सबका सार है॥

४. चौरसूत्र : चौर के आठ कर्म — जो चौर १. प्रहार न करने वाले पर भी प्रहार करता है; २. सब कुछ छीन लेता है; ३. स्त्रियों की भी हत्या कर देता है; ४. कुमारियों का चरित्र दूषित करता है; ५. संन्यासियों को भी लूट लेता है; ६. राजकीय कोष को भी चुरा लेता है; ७. अपने आवास के समीप ही चौरी करता है; ८. परन्तु इस प्रकार से प्राप्त धन की रक्षा नहीं कर पाता॥

इन आठ धर्मों से विपरीत धर्मों वाला चौर अपने प्राप्त धन की रक्षा करने में समर्थ होता है॥

५. श्रमणसूत्र : तथागत के आठ नाम-पर्याय — १. श्रमण; २. ब्राह्मण; ३. वेदज्ञ; ४. भिषक्; ५. निर्मल; ६. विमल; ७. ज्ञानी एवं ८. विमुक्त॥

६. यशःसूत्र : भगवान् के प्रिय आठ साधनास्थल—१. ग्राम के एकान्त में साधना; २. अरण्य में साधना; ३. अरण्य में असमाहित चित्त से साधना; ४. अरण्य में समाहितचित्त से साधना; ५. ग्राम में एकान्तसाधना की उपेक्षा; ६. अरण्य में एकान्तसाधना; ७. ग्राम में रह कर चीवर, पिण्डपात आदि का लोभ न करना; ८. अरण्य में रहकर चीवर, पिण्डपात आदि का लोभ न करना॥

७. पात्रनिकुज्जनसूत्र : आठ अङ्गों से युक्त उपासक का, सङ्घ की इच्छा से, बहिष्कार — १. जो भिक्षुओं की हानि या अनर्थ करता है; २. जो भिक्षुओं को वासविहीन करता है; ३. भिक्षुओं की निन्दा करता है; या ४. अपशब्द बोलता है; ५. भिक्षुओं का परस्पर कलह कराता है; ६. बुद्ध की; ७. धर्म की एवं ८. सङ्घ की निन्दा करता है॥

८. अप्रसादवेदनीयसूत्र : ऐसे अष्टाङ्गयुक्त भिक्षु के प्रति उपासक अपना असन्तोष प्रकट कर सकता है — जो १. गृहस्थों की हानि का; २. गृहस्थों के अनर्थ का; ३. गृहस्थ की निन्दा; ४. उन के प्रति अपशब्दों का प्रयोग; ५. गृहस्थों में परस्पर कलह कराना; ६. बुद्ध; ७. धर्म एवं ८. सङ्घ की निन्दा करता है॥

९. प्रतिसारणीयसूत्र : आठ कर्मों से युक्त भिक्षु का सङ्घ से प्रतिसारण (सङ्घ में बोलचाल बन्द करना) — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. सम्यग्वर्तनसूत्र : तस्सपापीयसिका कर्म के अपराधी भिक्षु के साथ इन आठ धर्मों से सम्यग् व्यवहार करना चाहिये — १. उस को उपसम्पदा न दी जाय; २. उस को निःश्रय न दिया जाय; ३. उसको, श्रामणेर हो तो, अपना उपस्थायक न बनाया जाय; ४. उसे भिक्षुणियों को धर्मोपदेश की अनुमति न दी जाय; ५. अनुमति होने पर भी उसे धर्मोपदेश न करने दिया जाय; ६. सङ्घ द्वारा उससे सामान्य परामर्श भी न किया जाय; ७. उस को किसी अधिकारपूर्ण स्थान पर न बैठाया जाय; ८. परन्तु उस को उसके मूलस्थान से न हटाया जाय॥

●

११. श्रामण्यवर्ग : विशेष उपासिकाओं के नाम — १. बोध्या उपासिका; २. सिरिमा उपासिका; ३. पद्मा उपासिका; ४. सुतना उपासिका; ५. मनुजा उपासिका; ६. उत्तरा उपासिका; ७. मुक्ता उपासिका; ८. क्षेमा उपासिका; ९. रुचि उपासिका; १०. चन्दी उपासिका; ११. बिम्बी उपासिका; १२. सुमना उपासिका; १३. मल्लिका उपासिका; १४. तिष्या उपासिका; १५. तिष्यमाता उपासिका; १६. सोणा उपासिका; १७. सोणामाता उपासिका; १८. काणा उपासिका; १९. काणमाता उपासिका; २०. उत्तरा नन्दमाता; २१. विशाखा मृगारमाता; २२. खुज्जो(कुब्जो)त्तरा उपासिका; २३. सामावती उपासिका; २४. सुप्रवासा कोलियधीता उपासिका; २५. सुप्रिया उपासिका; एवं २६. नकुलमाता गृहपत्नी॥

●

११. रागपेय्याल (रागविस्तार)

१. राग के अभिज्ञान के लिये इन आठ धर्मों की भावना — १. सम्यग्दृष्टि... ८. सम्यक्समाधि ॥

२. राग के अभिज्ञान के लिये इन आठ धर्मों की भावना — *इसी अष्टकनिपात के सप्तम भूमिचालवर्ग के पञ्चम* ***अभिभ्वायतन*** *सूत्र को पठित आठ धर्म* ॥

३. राग के अभिज्ञान के लिये आठ धर्मों की भावना — *इसी अष्टक निपात के सप्तम भूमिचाल वर्ग के षष्ठ* ***विमोक्षसूत्र*** *में पठित आठ धर्म* ॥

४-३०. ग्रन्थ में यथास्थान विस्तार द्रष्टव्य ॥

३१-५१०. ग्रन्थ में यथास्थान विस्तार द्रष्टव्य ॥

अष्टक निपात का संक्षेप सम्पन्न ॥

नवक निपात

१. सम्बोधिवर्ग —

१. सम्बोधिसूत्र : बोधिपक्षीय साधना के नौ कारण — १. भिक्षुओं का कल्याणमित्र होना; २. शीलवत्ता; ३. इन्द्रियसंयम के लिये धर्मकथाश्रवण; ४. अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं कुशल धर्मों के उत्पाद हेतु प्रयत्न; ५. समस्त धर्मों के उत्पाद-विनाश की ज्ञाता प्रज्ञा से समन्वय; ६. राग प्रहाण हेतु अशुभ भावना; ७. हिंसाप्रहाणहेतु मैत्री भावना; ८. वितर्कप्रहाणहेतु आनापानस्मृति की भावना; एवं ९. अस्मिता तथा अहङ्कार के प्रहाणहेतु अनित्यसंज्ञा और साथ ही अनात्मसंज्ञा की भावना ॥

२. निश्रयसूत्र : नौ निश्रय धर्म — १. श्रद्धा; २. लज्जा; ३. पापभीरुता; ४. साधना में प्रयत्न; ५. प्रज्ञा का आश्रयण; ६. उपर्युक्त राग आदि चारों धर्मों के प्रहाणहेतु एक का सेवन; ७. दूसरे का स्वीकरण; ८. एक का त्याग तथा ९. एक को दूर रखना चाहिये ॥

३. मेघियसूत्र : अपरिपक्व चेतोविमुक्ति के परिपाक के लिये नौ धर्म आवश्यक — पूर्वोक्त १. सम्बोधिसूत्र के अनुसार ॥

४. नन्दकसूत्र : धर्मकथिक के नौ धर्म — पूर्वोक्त सूत्र के प्रथम चार धर्म; ५. शास्ता का स्नेहभाजन; ६. धर्म का अर्थज्ञान; ७. धर्म के अन्तस्तल तक प्रवेश; ८. साथियों की उसके प्रति अर्हत्त्वप्राप्ति की असन्दिग्धता; ९. अनुत्तर योगक्षेम की प्राप्ति एवं अनधिगत की अधिगति ॥

५. बलसूत्र : चार बल — १. प्रज्ञाबल; २. वीर्यबल; ३. अनवद्यबल एवं ४. संग्राहबल। इन चार बलों से युक्त साधक को ये पाँच भय कष्टकर नहीं होते — १. आजीविकाभय; २. निन्दा-भय; ३. परिषदों में आसक्तिभय; ४. मृत्युभय एवं ५. दुर्गतिभय ॥

६. सेवनासूत्र : द्विविध पुद्गल, जिनमें कोई साधक साधना करने योग्य और कोई साधक साधना न करने योग्य होता है; द्विविध पिण्डपात — कोई ग्रहण करने योग्य, कोई न ग्रहण करने योग्य होता है; द्विविध शयनाशन — कोई शयनयोग्य, कोई न शयनयोग्य होता है; द्विविध

जनपदप्रदेश — कोई रहने योग्य, कोई न रहने योग्य होता है; द्विविध ग्राम निगम—कोई रहने योग्य, कोई न रहने योग्य होता है॥

७. श्रुतवत्सूत्र : क्षीणाश्रव भिक्षु के अयोग्य नौ कर्म — १. कामभोगों में स्वच्छाचारिता; २. द्वेष; ३. मोह (आसक्ति); ४. भय; ५. प्राणातिपात; ६. अदत्तादान; ७. मैथुन धर्म; ८. असत्य भाषण; ९. मद्यपान॥

८. सज्झसूत्र : निर्वाण तक पहुँचे इस भिक्षु के लिये नौ कर्म असम्भव — १. बुद्ध की निन्दा; २. धर्म की निन्दा; ३. सङ्घ की निन्दा; ४. बुद्धोपदिष्ट शिक्षा का निषेध; ५. प्राणातिपात; ६. अदत्तादान; ७. मैथुन धर्म; ८. असत्य भाषण एवं ९. मद्यपान॥

९. पुद्गलसूत्र : लोक में प्राप्त नवविध पुद्गल — १. अर्हत्; २. अर्हन्मार्गारूढ; ३. अनागामी; ४. अनागामिफलसाक्षात्कारप्रतिपन्न; ५. सकृदागामी; ६. सकृदागामिफलसाक्षात्कारप्रतिपन्न; ७. स्रोतआपन्न; ८. स्रोतआपत्तिफलसाक्षात्कारप्रतिपन्न; ९. पृथग्जन॥

१०. आह्वनीयसूत्र : लोक के प्रणम्य नवविध पुद्गल — पूर्वसूत्रवत्॥

२. सिंहनादवर्ग —

१. सिंहनादसूत्र : सारिपुत्र का चरित्र — १. कायगता स्मृति का सातत्य; २. पृथ्वी; ३. जल; ४. अग्नि; ५. वायु; ६. मार्जनी (झाड़ू) आदि के समान स्वच्छता या अस्वच्छता के प्रति जुगुप्सा का अभाव; ७. शिक्षा के समय, चाण्डाल पुत्र के समान, मार्ग में शिर नीचा कर के चलना; ८. छिन्नशृङ्ग वृषभ के समान, मार्ग में किसी को कष्ट न पहुँचाना; ९. चर्बी भूने जाने वाले पात्र को देखने के समान अपने शरीर के प्रति घृणा॥

२. सोपधिशेषनिर्वाणसूत्र : नवविध पुद्गलों का सोपधिशेष स्थिति में मरणभाव प्राप्त होने पर भी नरकादि दुर्गतियोनियों में जाना असम्भव — १. अन्तरापरिनिर्वायी; २. उपहत्यपरिनिर्वायी; ३. असंस्कारपरिनिर्वायी; ४. ससंस्कारपरिनिर्वायी; ५. ऊर्ध्वस्रोतअकनिष्ठगामी; ६. सकृदागामी; ७. एकबीजी; ८. कोलसङ्कोल एवं ९. सात बार मनुष्ययोनि या देवयोनि में जन्म लेकर साधना करने वाला॥

३. कौष्ठिकसूत्र : अज्ञात की ज्ञानसाधना का प्रयोजन — १. अज्ञातदुःख; २. अज्ञात दुःख-समुदय; ३. अज्ञात दुःखनिरोध; ४. अज्ञातदुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा; या जो कुछ भी ५. अज्ञात; ६. अदृष्ट; ७. अप्राप्त; ८. असाक्षात्कृत एवं ९. अविज्ञात है उसके ज्ञान हेतु साधनाप्रतिपत्ति॥

४. समृद्धिसूत्र : नौ धर्मों के नौ आलम्बन — १. सङ्कल्प वितर्क नामरूप पर आश्रित; २. नामरूप की स्पर्श से उत्पत्ति; ३. वे नामरूप धातुओं में नानात्व प्राप्त करते हैं; ४. धातुओं की उत्पत्ति स्पर्श से होती हैं; ५. वे धातु वेदनाओं में एकत्र होती हैं; ६. समाधि उन वेदनाओं की प्रमुख हैं; ७. और वेदनाओं की अधिपति होती है स्मृति; ८. स्मृति के उत्तर है प्रज्ञा और; ९. उन वेदनाओं का सार है — विमुक्ति॥

५. गण्डसूत्र : हमारा शरीर पके हुए व्रण के समान — जैसे किसी का कोई व्रण पक जाय और उसके नौ मुख हों; उन सभी मुखों से व्रण का मलिन एवं दुर्गन्धियुक्त पूय रक्त ही बहता है; उसी प्रकार, हमारे इस घृणित शरीर के नौ मुखों से भी अशुचि एवं घृणित मल-मूत्रादि ही बहता है। अतः इस शरीर के प्रति साधक की ग्लानि होना उचित ही है॥

६. संज्ञासूत्र : निर्वाण तक पहुँचाने वाली नौ संज्ञाएँ — १. अशुभसंज्ञा; २. मरणसंज्ञा; ३. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा; ४. समग्र संसार में अनासक्तिसंज्ञा; ५. अनित्यसंज्ञा; ६. अनित्य में दुःखसंज्ञा; ७. दुःख में अनात्मसंज्ञा; ८. प्रहाणसंज्ञा; ९. विरागसंज्ञा॥

७. कुलसूत्र : (क) इन नौ अङ्गों से युक्त कुलों (गृहस्थों के घरों) में जाना उचित नहीं — १. जो जाने पर स्नेहपूर्वक आदर न करें; २. न स्नेहपूर्वक अभिवादन करे; ३. न स्नेहपूर्वक बैठने को लिये आसन दे; ४. जो, आवश्यक वस्तु के विद्यमान होने पर भी, उसको न दे; ५. वस्तु के अधिक होने पर भी अल्पमात्रा में ही दे; ६. उत्तम वस्तुओं के रहने पर भी रूक्ष एवं शुष्क वस्तुएँ ही सम्मुख रखे; ७. वह भी निरादरपूर्वक दे, आदरपूर्वक नहीं; ८. धर्मश्रवणहेतु सम्मुख न बैठे; ९. उपदिष्ट होते हुए धर्म को सुनने की इच्छा न करे॥

(ख)इन के विपरीत धर्म श्रेष्ठ कुल के बोधक हैं, इन कुलों में जाना चाहिये॥

८. नवाङ्ग उपोसथ सूत्र : नौ अङ्गों से युक्त उपोसथ व्रत का पालन अतिशय फलदायी — यहाँ १ से ८ तक के उपोसथ अङ्ग **अष्टकनिपात** के **उपोसथवर्ग** में पठित **उपोसथसूत्र** में वर्णित आठों अङ्गों को समझते हुए ९वें अङ्ग को मैत्रीसहगत चित्त की भावना के रूप में समझें॥

९. देवतासूत्र : साधना के नौ अङ्गों से हीन देवता — १. मानव जन्म में कुछ देवता उनके घरों में प्रव्रजितों के आने पर उन का आदर करते हुए भी अभिवादन नहीं करते थे; २. ...बैठने हेतु आसन नहीं देते थे; ३. ...भोजन (भिक्षा) नहीं देते थे; ४. ...उन से धर्मश्रवण नहीं करते थे; ५. ...उन से धर्मश्रवण करते हुए भी उस पर ध्यान नहीं देते थे; ६. ...धर्मश्रवण पर ध्यान दे कर भी उसको मन में धारण नहीं करते थे; ७. ... उसको धारण कर के भी उसका अर्थ-परीक्षण नहीं करते थे; ८. ...अर्थ-परीक्षण करते हुए भी उसको धारण नहीं करते थे; ९. ...धारण कर के भी उस पर आचरण नहीं करते थे। इस कर्महीनता के कारण वे देवता हीन देवयोनि में ही उत्पन्न हुए॥

१०. वेलामसूत्र : नौ दान उत्तरोत्तर अतिशय फलप्रद — १. सभी लौकिक दानों की अपेक्षा एक दृष्टिसम्पन्न (स्रोतआपन्न) साधक को भोजन कराना अतिशय फलदायी; २. सौ दृष्टिसम्पन्न साधकों को भोजनदान की अपेक्षा एक सकृदागामी को भोजन...; ३. सौ सकृदागामी को भोजनदान की अपेक्षा एक अनागामी को...; ४. सौ अनागामी को भोजनदान की अपेक्षा एक अर्हत् को... ५. सौ अर्हतों को भोजनदान की अपेक्षा एक प्रत्येकबुद्ध को...; ६. सौ प्रत्येकबुद्धों को भोजनदान की अपेक्षा एक तथागत सम्यक्सम्बुद्ध को...; ७. सम्यक्सम्बुद्ध की अपेक्षा बुद्धप्रमुख भिक्षुसङ्घ को...; ८. ...भिक्षुसङ्घ को भोजन कराने की अपेक्षा भिक्षुसङ्घ के निवास के लिये एक आवासस्थल (विहार) बनाना...; ९. ...सौ विहार की अपेक्षा भी प्रसन्नचित्त होकर प्राणातिपातविरति आदि पाँच शिक्षापद धारण करना सर्वातिशायी फलप्रद होता है॥ ●

३. सत्त्वावासवर्ग —

१. त्रिस्थानसूत्र : तीन तीन अङ्गों से विशेष श्रेष्ठ — (१) उत्तरकुरुदेशवासी त्रायस्त्रिंश देवों तथा जम्बूद्वीपवासी मनुष्यों से तीन गुणों में श्रेष्ठ होते हैं — १. अहन्त्वममत्वरहित, २. अपरिग्रही, एवं ३. निश्चित आयु वाले। (२) त्रायस्त्रिंश लोकवासी देव उत्तरकुरुदेशवासियों एवं जम्बूद्वीपवासी मनुष्यों से तीन गुणों में श्रेष्ठ होते हैं — १. दिव्य आयु से, २. दिव्य वर्ण से तथा ३. दिव्य सुख से।

(३) तथा जम्बूद्वीपवासी मनुष्य भी उत्तरकुरु देशवासियों एवं त्रायस्त्रिंशदेवलोकवासी देवों से तीन बातों में श्रेष्ठ होते हैं — १. वीरता में, २. स्मृतिमत्ता में, तथा ३. धर्मसाधना में॥

२. अश्वखळुङ्कसूत्र : नवविध अश्व एवं नवविध पुरुष — (इसी ग्रन्थ पीछे में **त्रिकनिपात** में १४. **योधाजीववर्ग** के ८. **अश्वखळुङ्कसूत्र**, ९. **अश्वपुरुषसूत्र** एवं १०. **अश्वाजानेयसूत्र** में यह वर्णन आ चुका है, कृपया इसे वहीं देखें।)॥

३. तृष्णामूलकसूत्र : तृष्णामूलक नौ धर्म — १. तृष्णा की अपेक्षा कर पर्येषणा; २. तृष्णा की अपेक्षा कर लाभ; ३. लाभ की अपेक्षा कर विनिश्चय; ४. विनिश्चय की अपेक्षा कर छन्दराग; ५. छन्दराग की अपेक्षा कर अध्यवसान (आसक्ति); ६. अध्यवसान की अपेक्षा कर परिग्रह; ७. परिग्रहकी अपेक्षा कर मात्सर्य (अभिमान); ८. मात्सर्य की अपेक्षा कर आरक्षा; ९. तथा इस आरक्षा की अपेक्षा से लोक में दण्ड एवं शस्त्र उठाना, परस्पर कलह, विवाद, असत्यभाषण आदि अकुशल धर्मों की उत्पत्ति॥

४. सत्त्वावाससूत्र : प्राणियों के नवविध आवास — १. मनुष्य, देवता या कुछ नरकभोगी प्राणी; २. ब्रह्मकायिक देव; जो शरीर से अनेक होते हुए भी संज्ञा उन सब की एक ही होती है; ३. आभास्वर देव; जो शरीर से एक होते हुए भी अनेक संज्ञाओं वाले ४. शुभकृत्स्न देव, जिनकी संज्ञा एवं शरीर एक ही होते हैं; ५. असंज्ञिसत्त्व, ये प्राणी असंज्ञी एवं अप्रतिसंवेदी (अनुभवरहित) होते हैं; ६. आकाशानन्त्यायनोपगदेव, जो रूपसंज्ञाओं का सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघसंज्ञाओं के सर्वथा अस्त हो जाने से तथा नानात्वसंज्ञाओं को मन में न करने से 'आकाश अनन्त है'—ऐसा मानते हैं; ७. विज्ञानानन्त्यायतनोपगदेव, जो आकाशानन्त्यायतन भूमि का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' ऐसा मानते हैं; ८. आकिञ्चन्यायतनोपग देव, ये भी विज्ञानानन्त्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ भी नहीं है' — ऐसा मानते हैं; ९. नैवसंज्ञानासंज्ञायतन देव, ये प्राणी आकिञ्चन्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर 'न संज्ञा, न असंज्ञा' ऐसा मानते हैं॥

५. प्रज्ञासूत्र : भिक्षु का प्रज्ञा द्वारा सुपरिचित नवविध चित्त — १. वीतराग चित्त; २. द्वेषरहित चित्त; ३. मोहरहित चित्त; ४. रागधर्मरहित चित्त; ५. द्वेषधर्मरहितचित्त; ६. मोहधर्मरहित चित्त; ७. कामभव के लिये अनावृत्तिस्वभाव वाला चित्त; ८. रूपभव के लिये अनावृत्तिस्वभाव वाला; ९. अरूपभव के लिये अनावृत्तिस्वभाव वाला चित्त॥

६. शिलायूपसूत्र : भिक्षु का शिलायूप स्तम्भ के समान नवविध अचल चित्त — पूर्वसूत्रवत्॥

७. प्रथमवैरसूत्र : पाँच भयवैरों से मुक्त एवं चार स्रोतआपत्ति अङ्गों से युक्त भिक्षु अपनी साधनास्थिरता की घोषणा करने योग्य — १. प्राणातिपाती जिस प्राणातिपात के कारण अपने लिये जो नानाविध भय या वैर प्रसूत कर लेता है, प्राणातिपातविरति के कारण उसके वे सब भय एवं वैर शान्त हो जाते हैं; २. अदत्तादायी...; ३. कामभोगों में मिथ्याचारी...; ४. असत्यभाषी...; ५. मद्यपायी, इस मद्यपान के कारण अपने लिये नानाविध भय एवं वैर प्रसूत कर लेता है, मद्यपानविरति के कारण उसके वे सब भय एवं वैर शान्त हो जाते हैं। तथा इसी प्रकार जब वह ६. बुद्ध के प्रति; ७. धर्म के प्रति; ८. सङ्घ के प्रति श्रद्धावान् एवं ९. शीलवान् होता है तो वह इन

चार स्रोतआपत्तिअङ्गों से युक्त कहलाता है। ऐसा पञ्चभयवैरमुक्त एवं चतुर्विध स्रोतआपत्ति अङ्गों से युक्त साधक ही अपनी स्थिर साधना की निभीक घोषणा कर सकता है॥

८. द्वितीयवैरसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

९. आघातवस्तुसूत्र : नौ आघात (घृणायुक्त द्वेष) कारक चिन्तन — १. 'इसने मेरा अनर्थ किया'; २. 'यह मेरा अनर्थ कर रहा है'; ३. 'यह मेरा अनर्थ करेगा'; ४. 'इसने मेरे प्रिय का अनर्थ किया'; ५. 'यह मेरे प्रिय का अनर्थ कर रहा है'; ६. 'यह मेरे प्रिय का अनर्थ करेगा'; ७. 'इसने मेरे प्रतिकूल एवं अप्रिय का हित किया'; ८. '...अप्रिय का हित कर रहा है'; ९. '...अप्रिय का हित करेगा'—यह सोच कर लागों से द्वेष करने लगता है॥

१०. आघातप्रतिविनयसूत्र : उपर्युक्त आघात की शान्ति के नौ प्रकार — १. 'इसने मेरा अनर्थ किया हो—यह कैसे सम्भव है'—ऐसा चिन्तन; २. 'यह मेरा अनर्थ कर रहा है—यह कैसे सम्भव है' — ऐसा चिन्तन; ३. 'यह मेरा अनर्थ करेगा — यह कैसे सम्भव है' — ऐसा चिन्तन; ४. 'इसने मेरे प्रिय का अनर्थ किया — यह कैसे सम्भव है' ऐसा चिन्तन; ५. 'यह मेरे प्रिय का अनर्थ कर रहा है — यह कैसे सम्भव है' ऐसा चिन्तन; ६. 'यह मेरे प्रिय का अनर्थ करेगा — यह कैसे सम्भव है' — ऐसा चिन्तन; ७. 'इसने मेरे अप्रिय का हित किया — यह कैसे सम्भव है' — ऐसा चिन्तन; ८. 'यह मेरे अप्रिय का हित कर रहा है — यह कैसे सम्भव है'—ऐसा चिन्तन; ९. 'यह मेरे अप्रिय का हित करेगा — यह कैसे सम्भव है' — ऐसा चिन्तन द्वेषशामक होता है॥

११. अनुपूर्वनिरोधसूत्र : नौ अनुपूर्व (क्रमिक) निरोध धर्म — १. प्रथम ध्यान प्राप्त साधक की काम संज्ञा का निरोध; २. द्वितीय ध्यान प्राप्त के वितर्क एवं विचारों का; ३. तृतीय ध्यान प्राप्त की प्रीति का; ४. चतुर्थ ध्यान प्राप्त के आश्वास प्रश्वास का; ५. आकाशानन्त्यायतनप्राप्त की रूपसंज्ञा का; ६. विज्ञानानन्त्यायतनप्राप्त की आकाशानन्त्यायतनसंज्ञा का; ७. आकिञ्चन्यायतनप्राप्त की विज्ञानानन्त्यायतन संज्ञा का; ८. नैवसंज्ञानासंज्ञायतन प्राप्त की आकिञ्चन्यायतन संज्ञा का निरोध; एवं ९. संज्ञावेदयितनिरोधप्राप्त साधक की संज्ञा एवं वेदना निरुद्ध हो जाती है॥ ●

४. महावर्ग —

१. अनुपूर्वविहारसूत्र : नौ क्रमिक साधनाएँ — १. प्रथम ध्यान; २. द्वितीय ध्यान; ३. तृतीय ध्यान; ४. चतुर्थ ध्यान; ५. आकाशानन्त्यायन; ६. विज्ञानाननत्यायतन; ७. आकिञ्चन्यायतन; ८. नैवसंज्ञानासंज्ञायतन एवं ९. संज्ञावेदयितनिरोध॥

२. अनुपूर्वविहारसमापत्तिसूत्र : नौ क्रमिक साधनाएँ — पूर्वसूत्रवत्॥

३. निर्वाणसुखसूत्र : नवविध निर्वाणसुख — पूर्वसूत्रवत्॥

४. गो-उपमासूत्र : अशिक्षित एवं शिक्षित गौ के नौ धर्मों के समान अशिक्षित एवं शिक्षित भिक्षु के नौ धर्म — (क) पूर्वसूत्र में वर्णित नौ साधनाओं का अज्ञान; (ख) उक्त नौ साधनाओं का ज्ञान॥

५. ध्यानसूत्र : आश्रवक्षय के नौ आलम्बन — पूर्वसूत्रवत्॥

६. आनन्दसूत्र : तथागतोपदिष्ट सरलतम मार्ग — १. सम्यक्दृष्टि...८. सम्यक्समाधि॥

७. लोकायतिकसूत्र : वास्तविक साधक के नौ धर्म — १. प्रथम ध्यान; २. द्वितीय ध्यान;

३. तृतीय ध्यान; ४. चतुर्थ ध्यान; ५. आकाशानन्त्यायतन; ६. विज्ञानानन्त्यायतन; ७. आकिञ्चन्यायतन; ८. नैवसंज्ञानासंज्ञायतन; ९. संज्ञावेदयितनिरोध॥

८. देवासुरसंग्रामसूत्र : तृष्णारहित पुद्गल ही भवपारगामी — पूर्वसूत्रवत्॥

९. नागसूत्र : हस्तिराज की उपमा द्वारा साधना में एकान्तवास का महत्त्व — साधक एकान्तवास के आश्रयण से अपने पाँच नीवरणों का प्रहाण कर प्रथम ध्यान आदि पूर्वोक्त नौ साधनाओं को पूर्ण करने में समर्थ हो सकता है॥

१०. तपुस्ससूत्र : साधना में निष्काम भावना का महत्त्व — निष्काम भावना से कामभोग करते हुए कामों में आदीनव देखकर उन से चित्त हटा कर प्रथम ध्यान आदि पूर्वोक्त नौ साधनाओं को पूर्ण किया जाता है॥

५. श्रामण्यवर्ग —

१. सम्बाधसूत्र : साधना में नौ सम्बाध (सङ्कट=रुकावट)—१. प्रथम ध्यान में वितर्क एवं विचारों का अनिरोध; २. द्वितीय ध्यान में प्रीति का अनिरोध; ३. तृतीय ध्यान में उपेक्षासुख का अनिरोध; ४. चतुर्थ ध्यान में रूपसंज्ञा का अनिरोध; ५. आकाशानन्त्यायतन में आकाशानन्त्यायतन संज्ञा का अनिरोध; ६. विज्ञानानन्त्यायतन में विज्ञानानन्त्यायतन का अनिरोध; ७. आकिञ्चन्यायतन में आकिञ्चन्यायतन संज्ञा का अनिरोध; ८. नैवसंज्ञानासंज्ञायतन में नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का अनिरोध; ९. संज्ञावेदयितनिरोध में भी प्रज्ञा के सहारे से ही आश्रवों का साक्षात्कार द्वारा क्षय किया जा सकता है, अत: इसी को वहाँ सम्बाध समझना चाहिये॥

२. कायसाक्षिसूत्र : काया से साक्षात्कार की नौ विधियाँ — पूर्वोक्त नौ साधनाओं में साधक जिस की भी साधना करता है उस को काया से साक्षात् करता हुआ ही पूर्ण करता है॥

३. प्रज्ञाविमुक्तसूत्र : नवविध प्रज्ञाविमुक्त धर्म — १. प्रथम ध्यान आदि नौ साधनाओं का प्रज्ञा से ही साक्षात्कार किया जाता है अत: इन को 'प्रज्ञाविमुक्त' कहते हैं॥

४. उभतो भागविमुक्तसूत्र : नवविध उभतो भागविमुक्त धर्म — उक्त प्रथम ध्यान आदि उन नौ साधनाविधियों का काया तथा प्रज्ञा — दोनों से साक्षात्कार कर लिया जाता है तब उस अवस्था को 'उभतोभाग विमुक्त' कहा जाता है॥

५. सान्दृष्टिकधर्मसूत्र : नवविध सान्दृष्टिक (प्रत्यक्षकृत) धर्म — उक्त प्रथम ध्यान आदि नौ साधनाओं में जिस किसी साधना को प्रज्ञा से प्रत्यक्ष (साक्षात्) कर लिया जाता है तब उसको 'सान्दृष्टिक धर्म' कहा जाता है॥

६. सान्दृष्टिकनिर्वाणसूत्र : सान्दृष्टिक निर्वाण धर्म — उक्त प्रथम ध्यान आदि नौ साधनाओं से प्राप्त निर्वाण का प्रज्ञा द्वारा साक्षात्करण किया जाता है, अत: उसे 'सान्दृष्टिक निर्वाण' कहा जाता है।

७. निर्वाणसूत्र : 'निर्वाण' शब्द का निर्वचन — नौ साधनाओं से 'निर्वाण' का ही प्रज्ञा द्वारा साक्षात्कार किया जाता है अत: इस समस्त विधि को 'निर्वाण' कहा जाता है॥

८. परिनिर्वाणसूत्र : पूर्वसूत्रवत्॥

९. तदङ्गनिर्वाणसूत्र : 'तदङ्गनिर्वाण' का निर्वचन — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. दृष्टधर्मनिर्वाणसूत्र : 'दृष्टधर्मनिर्वाण' का निर्वचन — पूर्वसूत्रवत्॥

६. क्षेमवर्ग —

१. क्षेमसूत्र : 'क्षेम' शब्द का नवविध निर्वचन — १. प्रथम ध्यान आदि सभी नौ साधना विधियों को 'क्षेम' कहा जाता है॥

२. क्षेमप्राप्तसूत्र : ....पूर्वसूत्रवत्॥ **३. अमृतसूत्र :** ....पूर्वसूत्रवत्॥

४. अमृतप्राप्तसूत्र : ....पूर्वसूत्रवत्॥ **५. अभयसूत्र :** ....पूर्वसूत्रवत्॥

६. अभयप्राप्तसूत्र : ....पूर्वसूत्रवत्॥ **७. प्रश्रब्धिसूत्र :** ....पूर्वसूत्रवत्॥

८. अनुपूर्वप्रश्रब्धिसूत्र : ....पूर्वसूत्रवत्॥

९. निरोधसूत्र : नवविध निरोध—....पूर्वसूत्रवत्॥

१०. अनुपूर्वनिरोधसूत्र : नवविध क्रमिक निरोध — पूर्वसूत्रवत्॥

११. अभव्यसूत्र : इन नौ दोषों के प्रहाण विना अर्हत्त्व प्राप्ति असम्भव — १. राग, २. द्वेष, ३. मोह, ४. क्रोध, ५. उपनाह (वैर), ६. म्रक्ष, ७. प्रदाश, ८. ईर्ष्या एवं ९. मात्सर्य॥

७. स्मृतिप्रस्थानवर्ग —

१. शिक्षादौर्बल्यसूत्र : पाँच शिक्षादौर्बल्यकारक — १. प्राणातिपात; २. अदत्तादान; ३. कामभोगों में मिथ्याचार; ४. असत्यभाषण एवं; ५. मद्यपान; एवं चार शिक्षादौर्बल्यनाशक धर्म —१. काया में कायानुपश्यना; २. वेदनाओं में वेदनानुपश्यना; ३. चित्तों में चित्तानुपश्यना; ४. धर्मों में धर्मानुपश्यना॥

२. नीवरणसूत्र : पाँच नीवरण और उनके नाशक चार धर्म — १. कामच्छन्दनीवरण; २. व्यापादनीवरण; ३. स्त्यानमृद्धनीवरण; ४. औद्धत्यकौकृत्यनीवरण; ५. विचिकिच्छानीवरण; ६. काया में कायानुपश्यना; ७. वेदनाओं में वेदनानुपश्यना; ८. चित्तों में चित्तानुपश्यना; ९. धर्मों में धर्मानुपश्यना॥

३. कामगुणसूत्र : पाँच कामगुण और उनके नाशक चार धर्म — १. चक्षुर्विज्ञेय रूप; २. श्रोत्रविज्ञेय शब्द; ३. घ्राणविज्ञेय गन्ध; ४. जिह्वाविज्ञेय रस एवं ५. कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य। उनके नाशक चार स्मृतिप्रस्थान (पूर्वसूत्रोक्त)॥

४. उपादानस्कन्धसूत्र : पाँच उपादानस्कन्ध और उनके नाशक चार धर्म — १. रूपोपादानस्कन्ध, २. वेदनोपादानस्कन्ध, ३. संज्ञोपादानस्कन्ध, ४. संस्कारोपादानस्कन्ध एवं ५. विज्ञानोपादानस्कन्ध। उन के नाशक चार स्मृतिप्रस्थान॥

५. अवरभागीयसूत्र : पाँच अवरभागीय संयोजन और उनके नाशक चार धर्म — १. सत्कायदृष्टि, २. विचिकित्सा, ३. शीलव्रतपरामर्श, ४. कामच्छन्द एवं ५. व्यापाद। उन के नाशक चार स्मृतिप्रस्थान॥

६. गतिसूत्र : पाँच गति (योनि) एवं उनके नाशक चार धर्म — १. निरययोनि, २. पशुयोनि, ३. प्रेतयोनि, ४. देवयोनि एवं ५. मनुष्ययोनि। उनके नाशक चार स्मृतिप्रस्थान (पूर्वोक्त)॥

७. मात्सर्यसूत्र : पाँच मात्सर्य एवं उन के नाशक चार धर्म — १. आवासमात्सर्य, २. कुलमात्सर्य, ३. वर्णमात्सर्य, ४. लाभमात्सर्य, ५. धर्ममात्सर्य। और उनके नाशक चार स्मृतिप्रस्थान॥

८. ऊर्ध्वभागीयसूत्र : पाँच ऊर्ध्वभागीय संयोजन और उनके नाशक चार धर्म — १. रूपराग, २. अरूपराग, ३. मान, ४. औद्धत्य एवं ५. अविद्या। एवं उनके नाशक चार धर्म — चार स्मृतिप्रस्थान॥

९. चेतःकीलसूत्र : पाँच चित्त की कठोरता और उनके नाशक चार धर्म — १. शास्ता के प्रति, २. धर्म के प्रति, ३. सङ्घ के प्रति एवं ४. शिक्षा के प्रति शङ्का, सन्देह तथा ५. साथी भिक्षुओं के प्रतिव्यर्थ क्रोध। इन पाँच धर्मों के नाशक चार पूर्वोक्त स्मृतिप्रस्थान॥

१०. चेतोविनिबन्धसूत्र : चित्त की पाँच आसक्तियाँ (विनिबन्ध), तथा उनके नाशक चार धर्म — १. कामभोगों में आसक्ति, २. काया में, ३. रूपों में, ४. शय्यासुख में तथा ५. किसी देवनिकाय में आसक्ति। इन पाँच धर्मों के नाशक चार स्मृतिप्रस्थान॥ ●

८. सम्यक्प्रधानवर्ग —

अनुपद में वर्णित ७. स्मृतिप्रस्थानवर्ग के समान ही इस वर्ग का भी उसी सूत्रक्रम से विस्तार कर लें॥

९. ऋद्धिपादवर्ग —

इस वर्ग का भी स्मृतिप्रस्थानवर्ग के समान उसी सूत्रक्रम से विस्तार कर लें॥ ●

विशेष ज्ञातव्य : चार ऋद्धिपाद — १. छन्दसमाधिप्रधानसंस्कारसमन्वागत, २. वीर्य-समाधिप्रधानसंस्कारसमन्वागत, ३. चित्तसमाधिप्रधानसंस्कारसमन्वागत, एवं ४. मीमांसा-समाधिसंस्कारसमन्वागत ऋद्धिपाद॥ ●

१०. रागपेय्याल (रागविस्तार)

१. राग के अभिज्ञान के लिये इन नौ धर्मों की भावना करनी चाहिये — १. अशुभसंज्ञा, ३. मरणसंज्ञा, ३. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा, ४. समस्त संसार में अनभिरतिसंज्ञा, ५. अनित्यसंज्ञा, ६. अनित्य में दुःखसंज्ञा, ७. दुःख में अनात्मसंज्ञा, ८. प्रहाणसंज्ञा, ९. विरागसंज्ञा॥

२. राग के अभिज्ञान के लिये नौ धर्मों की भावना करनी चाहिये — १. प्रथम ध्यान; २. द्वितीय ध्यान; ३. तृतीय ध्यान; ४. चतुर्थ ध्यान; ५. आकाशानन्त्यायतन; ६. विज्ञानानन्त्यायतन; ७. आकिञ्चन्यायतन; ८. नैवसंज्ञानासंज्ञायतन; ९. संज्ञावेदयितनिरोध॥

३-२०. राग के परिज्ञान के लिये...परिक्षय के लिये...प्रहाण के लिये...क्षय के लिये...व्यय के लिये...विराग के लिये...निरोध के लिये...त्याग के लिये...प्रतिनिसर्ग के लिये पूर्वोक्त नौ धर्मों की भावना करनी चाहिये॥

२१-३४०. द्वेष के...मोह के...क्रोध के...उपनाह के...म्रक्ष के...प्रदाश के...ईर्ष्या के...मात्सर्य के...माया के...शांठ्य के...स्तम्भ के...सारम्भ (क्रोध या उत्तेजना) के...मान के...अतिमान के...मद के...प्रमाद के अभिज्ञान के लिये...परिज्ञान...परिक्षय...प्रहाण...क्षय... व्यय...विराग...निरोध...त्याग...प्रतिनिसर्ग के लिये ...पूर्ववत्... इन नौ धर्मों की भावना करनी चाहिये॥ ●

नवकनिपातपालिसंक्षेप सम्पन्न॥

●

दशक निपात

१. आनृशंस्यवर्ग —

१. किमर्थसूत्र : कुशल धर्मों की साधना — १. पापधर्मों के पश्चात्तापनिवारण हेतु; २. पापधर्मों का पश्चात्तापनिवारण प्रमोद के लिये; ३. प्रमोद की साधना प्रीति-उत्पाद हेतु; ४. प्रीति की साधना शरीर में प्रश्रब्धि हेतु; ५. प्रश्रब्धि साधना — सुखप्राप्ति हेतु; ६. सुखप्राप्ति की साधना समाधि में कुशलता हेतु; ७. समाधि में कुशलताप्राप्ति — यथाभूत (सत्य) के ज्ञानदर्शन हेतु; ८. यथाभूत ज्ञानदर्शन — निर्विदा एवं वैराग्य की प्राप्ति; ९. निर्विदा एवं वैराग्य की साधना का प्रयोजन है विमुक्तिज्ञानदर्शन। इस प्रकार ये कुशल शील साधना-धर्मों को आगे से आगे बढाते रहते हैं॥

२. चेतनाकरणीयसूत्र : अपार से पार जाने के साधनभूत दश धर्म शीलवान् शीलसम्पन्न साधक को स्वभावतः उत्पन्न होते रहते हैं — १. अविप्रतिसार; २. प्रमोद; ३. प्रीति; ४. प्रश्रब्धि; ५. सुख; ६. समाधि; ७. यथाभूत ज्ञानदर्शन; ८. निर्विदा एवं विराग; ९. विमुक्तिज्ञानदर्शन॥

३. प्रथम उपनिषत्सूत्र : उत्पत्ति-कारण विहीन दश धर्म — १. शीलविनष्ट को अविप्रतिसार असम्भव; २. अविप्रतिसारविहीन को प्रमोद; ३. प्रमोदविहीन को प्रीति; ४. प्रीति-विहीन को प्रश्रब्धि; ५. प्रश्रब्धिविहीन को सुख; ६. सुखविहीन को समाधि; ७. समाधिविहीन को यथाभूतज्ञानदर्शन; ८. यथाभूतज्ञानदर्शन विहीन को निर्विदा एवं विराग; ९. निर्विदा एवं विराग से विहीन को विमुक्तिज्ञान का साक्षात्कार असम्भव है॥

४. द्वितीय उपनिषत्सूत्र : उत्पत्ति-कारणविहीन दश धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

५. तृतीय उपनिषत्सूत्र : उत्पत्तिकारणविहीन दश धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

६. समाधिसूत्र : विशेष समाधि द्वारा विशेष साधनास्थिति — एक ऐसी समाधि भी होती है जहाँ साधक की १. पृथ्वी में पृथ्वी संज्ञा, २. जल में जल संज्ञा, ३. तेज में तेजःसंज्ञा, ४. वायु में वायु संज्ञा, ५. आकाशानन्त्यायतन में आकाशानन्त्यायतनसंज्ञा, ६. विज्ञानानन्त्यायतन में विज्ञानानन्त्यायतनसंज्ञा; ७. नैवसंज्ञानासंज्ञायतन में नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसंज्ञा, ८. इह लोक में इहलोकसंज्ञा तथा ९. परलोक में परलोकसंज्ञा नहीं रहती; परन्तु फिर भी वह १०. संज्ञावान् रहता है॥

७. सारिपुत्र सूत्र : विशेष समाधि द्वारा विशेष साधना लाभ — पूर्वसूत्रवत्॥

८. ध्यानसूत्र : भिक्षु के लिये दश साधनाधर्म — १. श्रद्धा; २. शील; ३. बहुश्रुतता; ४. धर्म-कथिकता; ५. परिषदवचरता; ६. परिषद् में धर्मकुशलता; ७. विनयधरता; ८. अरण्य में एकान्तसाधना के प्रति उत्साह; ९. चारों ध्यानों का लाभ एवं १०. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति का इसी जन्म में साक्षात्कार॥

९. शान्तविमोक्षसूत्र : भिक्षु के लिये आवश्यक दश धर्म — पूर्वसूत्रवत् (नवम स्थान पर ध्यानलाभ के स्थान पर 'रूपसंज्ञा को अतिक्रान्त कर अरूप धर्मों का काया से स्पर्श करना' जोड़ लें।) ॥

१०. विद्यासूत्र : भिक्षु के लिये आवश्यक दश धर्म — पूर्वसूत्रवत् (अष्टम एवं नवम स्थान

पर, ८. अपने पूर्वजन्मों का स्मरण तथा ९. स्वचित्त से अन्य प्राणियों के कर्मभोगों का पहचानना' — यह जोड़ लें।) ॥

२. नाथवर्ग —

१. शयनासन सूत्र : भिक्षु के पालनीय दश धर्म — जो भिक्षु १. रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु; २. स्वस्थ (नीरोग); ३. शठता एवं माया से विहीन; ४. साधना में सतत उद्योगी; ५. अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं कुशल धर्मों के उत्पाद में प्रयास करता हुआ ऐसे एकान्त वास में रहता हो जो ६. ग्राम से न बहुत दूर न बहुत समीप; ७. जहाँ चीवर पिण्डपात आदि सुविधा से मिल जाते हों; ८. जहाँ विद्वान् विनयधर एवं मातृकाधर भिक्षु रहते हों; ९. जिनसे वह उनसे धर्मविषयक प्रश्न पूछ सके, तथा १०. वे भिक्षु उसके प्रश्नों का उचित उत्तर दे सके॥

२. पञ्चाङ्गसूत्र : पाँच अङ्गों से हीन तथा पाँच अङ्गों से युक्त साधक — १. कामच्छन्द; २. व्यापाद; ३. स्त्यानमृद्ध; ४. औद्धत्यकौकृत्य एवं ५. विचिकित्सा — इन अङ्गों से हीन; तथा जो ६. शीलस्कन्ध से; ७. समाधिस्कन्ध से; ८. प्रज्ञास्कन्ध से; ९. विमुक्तिस्कन्ध से तथा १०. विमुक्ति-ज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त भिक्षु ही इस आर्यविनय में 'केवली' कहलाता है॥

३. संयोजनसूत्र : दश संयोजन : पाँच अवरभागीय — १. सत्कायदृष्टि, २. विचिकित्सा, ३. शीलव्रतपरामर्श, ४. कामच्छन्द एवं ५. व्यापाद। पाँच ऊर्ध्वभागीय — ६. रूपराग, ७. अरूप-राग, ८. मान, ९. औद्धत्य एवं १०. अविद्या॥

४. चेतःकीलसूत्र : (क) पाँच चेतःकील — १. तथागत के प्रति; २. धर्म के प्रति; ३. सङ्घ के प्रति; ४. शिक्षा के प्रति या ५. अपने साथी भिक्षुओं के प्रति अश्रद्धालु एवं शङ्कालु होता है॥ (ख) पाँच चित्तप्रतिबद्ध धर्म — १. कामों में वीतराग न होना, २. काया में वीतराग न होना, ३. रूप में वीतराग न होना, ४. अरूप में वीतराग न होना, ५. शय्यासुख में वीतराग न होना॥

५. अप्रमादसूत्र : अप्रमाद की श्रेष्ठता में दशविध उपमा — १. समस्त प्राणियों में तथागत की श्रेष्ठता के समान सभी कुशल धर्मों में अप्रमाद की अग्रता (श्रेष्ठता); २. हस्तिपद के समान अप्रमाद की श्रेष्ठता; ३. कूटागार में कूट के समान अप्रमाद की अग्रता; ४. कालानुसारि (गन्धक्षुप) के समान...; ५. काष्ठगन्धों में चन्दन के समान....; ६. पुष्पगन्धों में वस्सिका (जूही) के पुष्प के समान...; ७. राजाओं में चक्रवर्ती राजा के समान...; ८. तारागण में चन्द्रमा के समान...; ९. प्रकाशकर पदार्थों में सूर्य समान..., १०. सभी जलसमूहों में समुद्र की श्रेष्ठता के समान सभी कुशल धर्मों में अप्रमाद की श्रेष्ठता॥

६. आह्वनीयसूत्र : दश पूजनीय पुद्गल — १. तथागत सम्यक्सम्बुद्ध; २. प्रत्येकबुद्ध; ३. उभतोभागविमुक्त; ४. प्रज्ञाविमुक्त; ५. कायसाक्षी; ६. दृष्टिप्राप्त; ७. श्रद्धाविमुक्त; ८. श्रद्धानुसारी; ९. धर्मानुसारी एवं १०. गोत्रभू॥

७. प्रथम नाथसूत्र : दशविध नाथकरण धर्म — १. शीलवान् होना; २. कल्याणकर मित्रों साथियों से घिरा होना; ३. बहुश्रुत एवं श्रुतधर होना; ४. नम्र होना; ५. साथियों के कार्य की पूर्ति में आलस्यरहित होना; ६. अभिधर्म एवं विनय के धर्मोपदेशों को ससम्मान सुनना; ७. अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं कुशल धर्मों के उत्पाद के उद्योग; ८. जिस किसी तरह से भी प्राप्त चीवर, पिण्डपात

आदि से सन्तोष; ९. सदा स्मृतिमान् तथा स्मृतिपरिपाक से युक्त होना एवं १०. दुःख क्षय को जानने वाली प्रज्ञा से युक्त होना॥

८. द्वितीय नाथसूत्र : दश नाथकरण धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

९. प्रथमआर्यावाससूत्र : दश आर्यावास (साधनापद्धति) — १. पञ्चाङ्ग से विप्रहीण; २. षडङ्गयुक्त; ३. एकारक्ष; ४. चतुरपाश्रयण; ५. प्रनुन्न प्रत्येकसत्य; ६. सम्यग्विसृष्टैषण; ७. अनाविलसङ्कल्प; ८. प्रश्रब्ध कायसंस्कार; ९. विमुक्तचित्त एवं १०. विमुक्तप्रज्ञ॥

१०. द्वितीयआर्यावाससूत्र : दश आर्यावास — पूर्वसूत्रवत्॥

३. महावर्ग —

१. सिंहनादसूत्र : तथागत के दशबल — १. तथागत को स्थान से स्थान का तथा अस्थान से अस्थान का ज्ञान; २. तथागत को अतीत, अनागत एवं वर्तमान के कर्मसमादानों का स्थान तथा हेतु रूप से विपाक (फल) ज्ञान; ३. आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का यथार्थ ज्ञान; ४. तथागत को अनेक धातुओं वाले इस ब्रह्माण्ड (लोक) का ज्ञान; ५. प्राणियों के नानाधिमुक्तिकृत कार्यों का ज्ञान; ६. अन्य प्राणियों की इन्द्रियों द्वारा कृत कार्यों का ज्ञान; ७. तथागत को ध्यान, विमोक्ष, समाधि की समापत्तियों के क्लेश, शुद्धि एवं व्युत्थान का ज्ञान; ८. अपने अनेक पूर्व जन्मों का ज्ञान; ९. अन्य प्राणियों के पूर्वजन्म कृत कर्मों का ज्ञान; १०. आश्रवक्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति की साधना॥

२. अध्युक्तिपदसूत्र : तथागत के दश बल : पूर्वसूत्रवत्॥

३. कायसूत्र : काय, वाक् एवं प्रज्ञा से त्याज्य दश धर्म — १. काया द्वारा किसी आपत्ति से ग्रस्त होने पर, साथियों के समझाने पर उस आपत्ति को त्याग देना — काया से त्याज्य धर्म है। इसी प्रकार २. वाणी द्वारा, किसी आपत्ति से ग्रस्त होने पर, साथियों के समझाने पर उस आपत्ति को त्याग देना — यह वाणी से त्याज्य धर्म है। प्रज्ञा से त्याज्य धर्म हैं — ३. द्वेष; ४. मोह; ५. क्रोध; ६. उपनाह; ७. म्रक्ष; ८. प्रदाश; ९. मात्सर्य एवं १०. ईर्ष्या॥

४. महाचुन्दसूत्र : ज्ञानवाद, भावनावाद एवं ज्ञानवाद — भावनावाद के सहारे से त्याज्य दश धर्म — १. लोभ; २. द्वेष; ३. मोह; ४. क्रोध; ५. उपनाह; ६. म्रक्ष; ७. प्रदाश; ८. मात्सर्य; ९. पापमय ईर्ष्या एवं १०. पापमय इच्छा॥

५. कृत्स्न (कसिण) सूत्र : दश कृत्स्नायतन — १. प्रमाणरहित पृथ्वीकात्स्न्र्य का ज्ञान, २. अप्कात्स्न्र्य का; ३. तेजःकात्स्न्र्य का; ४. वायुकात्स्न्र्य का; ५. नीलकात्स्न्र्य का ज्ञान; ६. पीतकात्स्न्र्य का ज्ञान; ७. लोहितकात्स्न्र्य का; ८. अवदातकात्स्न्र्य का; ९. आकाशकात्स्न्र्य का एवं; १०. अप्रमाण विज्ञानकात्स्न्र्य का ज्ञान॥

६. कालीसूत्र : दश कृत्स्नायतन धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

७. महाप्रश्नसूत्र : दश महाप्रश्न और उनके क्रमशः उत्तर — १. एक प्रश्न का एक उद्देश, एक व्याकरण क्या है? *सभी प्राणी आहार पर आश्रित हैं।* २. दो प्रश्न के दो उद्देश, दो व्याकरण क्या हैं? *नाम एवं रूप में* समीचीनतया निर्वेद एवं वैराग्य। ३. तीन प्रश्न के तीन उद्देश, तीन व्याकरण क्या हैं? *तीन वेदनाओं में* समीचीनतया निर्वेद एवं वैराग्य। ४. चार प्रश्न के चार उद्देश, चार व्याकरण क्या हैं? चतुर्विध आहारों में समीचीनतया निर्वेद एवं वैराग्य। ५. पाँच प्रश्न के पाँच

उद्देश, पाँच व्याकरण क्या हैं? *पाँच उपादान स्कन्धों में* समीचीनतया निर्वेद एवं वैराग्य। ६. छह प्रश्नों के छह उद्देश, छह व्याकरण क्या हैं? *छह आध्यात्मिक आयतनों में* समीचीनतया निर्वेद एवं वैराग्य। ७. सात प्रश्न के सात उद्देश, सात व्याकरण क्या हैं? *सात विज्ञानस्थितियों में* समीचीनतया निर्वेद एवं वैराग्य। ८. आठ प्रश्न के आठ उद्देश, आठ व्याकरण क्या हैं? *आठ लोक धर्मों में* समीचीनतया निर्वेद एवं वैराग्य। ९. नौ प्रश्न के नौ उद्देश, नौ व्याकरण क्या हैं? *नौ सत्त्वावासों में* समीचीनतया निर्वेद एवं वैराग्य। १०. दश प्रश्न के दश उद्देश, दश व्याकरण क्या हैं? *दश अकुशल कर्मपथों में* समीचीनतया निर्वेद एवं वैराग्य॥

८. द्वितीयमहाप्रश्नसूत्र : दश महाप्रश्न और उनके उत्तर — पूर्वसूत्रवत्॥

९. प्रथम महाकौशलसूत्र : (क) दश कृत्स्नायतन (कसिण) — १. पृथ्वीकात्स्न्यं; २. अप्कात्स्न्यं; ३. तेज:कात्स्न्यं; ४. वायुकात्स्न्यं; ५. नीलकात्स्न्यं; ६. पीतकात्स्न्यं; ७. लोहित-कात्स्न्यं; ८. अवदातकात्स्न्यं; ९. आकाशकात्स्न्यं एवं १०. विज्ञान कात्स्न्यं॥

(ख) आठ अभिभ्वायतन — द्र. — अष्टकनिपात के सप्तम भूमिचालवर्ग का ५. अभिभ्वायतनसूत्र॥

(ग) चार प्रतिपदा — १. दु:खा प्रतिपदा, विलम्ब से ज्ञान वाली, २. दु:खा प्रतिपदा, शीघ्र ज्ञानवाली, ३. सुखाप्रतिपदा, विलम्ब से ज्ञानवाली, ४. सुखाप्रतिपदा, शीघ्र ज्ञानवाली॥

(घ) चार संज्ञा — १. एक कुछ ही जानता है, २. एक बहुत कुछ जानता है, ३. एक अप्रमाण जानता है, ४. एक कुछ भी नहीं जानता॥

१०. द्वितीयकौशलसूत्र : राजा प्रसेनजित् द्वारा वर्णित भगवान् बुद्ध की दश विशेषताएँ — १. बहुजनहित-सुख को लक्ष्य कर बहुत जनों को कल्याणमय धर्म का उपदेश; २. त्रिविध शील से युक्त; ३. दीर्घकाल तक अरण्यसाधना; ४. साधारण चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं भैषज्य से सन्तुष्टि; ५. लोक के लिये पुण्यस्थली; ६. धर्मकथाओं के कथिक; ७. चारों ध्यानों के लाभी; ८. अपने अनेक पूर्वजन्मों के स्मर्ता; ९. स्वदिव्यचक्षु से दूसरे प्राणियों के सभी कर्मों का ज्ञान एवं १०. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति की प्राप्ति॥

४. उपालिवर्ग —

१. उपालिसूत्र : शिष्यों को शिक्षापदों के उपदेश में तथा प्रातिमोक्ष के संक्षेपकथन में दश प्रयोजन — सङ्घ में सुष्ठुता (अच्छाई या शुद्धि) के लिये; २. सङ्घ के अनुशासन में फासुता (सरलता=सुविधा) के लिये; ३. वाक्चपल (मुखर=मुँहफट) पुद्गलों पर निग्रह के लिये; ४. सदा-चरणयुक्त भिक्षुओं को सरलतापूर्वक साधना में सहायता के लिये; ५. इस लोक से सम्बद्ध आश्रवों (अकुशल विचारों) के क्षय के लिये; ६. इस आर्यविनय पर अश्रद्धालुओं की भी श्रद्धा के लिये, तथा ८. श्रद्धालुओं की श्रद्धा पर अभिवृद्धि के लिये; ९. परलोक से सम्बद्ध आश्रवों के क्षय के लिये; १०. सद्धर्म की चिरस्थिति के स्थापन के लिये; एवं १०. भिक्षुओं की जीवनचर्या के नियम-उपनियमों के उपदेश से उन पर अनुग्रह (कृपा) के लिये इन शिक्षापदों एवं प्रातिमोक्ष का उपदेश किया गया है॥

२. प्रातिमोक्षस्थगनसूत्र : प्रातिमोक्षस्थगन के दश कारण — १. यदि प्रातिमोक्षपाठ के समय वहाँ कोई पाराजिकापन्न पुद्गल उपस्थित हो; २. किसी भी प्रकार के पाराजिक की चर्चा

आरम्भ हो गयी हो; ३. उपसम्पदा न प्राप्त हुआ कोई पुद्गल बैठा हो; ४. या ऐसे अनुपसम्पन्न की चर्चा आरम्भ होने पर; ५. आर्यविनय (बौद्धधर्म) से बहिष्कृत की उपस्थिति पर; ६. ऐसे पुरुष की चर्चा आरम्भ होने पर; ७. किसी षण्डक (नुपुंसक=हिजड़ा) के उपस्थित होने पर; ८. या उस समय किसी पण्डक की चर्चा आरम्भ होने पर; ९. किसी भिक्षुणी से व्यभिचार के आरोप से आरोपित भिक्षु के उपस्थित होने पर; या १०. ऐसे आरोपित पुद्गल की चर्चा आरम्भ होने पर भी प्रातिमोक्ष पाठ स्थगित कर दिया जाना चाहिये॥

३. उद्वाहिकासूत्र : किसी विशेष समिति में निर्वाचन योग्य भिक्षु की दश विशेषताएँ — १. जो भिक्षु शीलवान् हो; २. बहुश्रुत हो; ३. जिसको उभय प्रातिमोक्ष विस्तारपूर्वक ज्ञात हों; ४. जो स्वयं भिक्षु नियमों का दृढतया पालनकर्ता हो; ५. जो अनुकूल प्रतिकूल पक्षों को समझने और समझाने में समर्थ हो; ६. वाद के उत्थान एवं शमन में कुशल हो; ७. सम्बद्ध वाद का ज्ञाता हो; ८. उसके उत्पाद को जानता हो; ९. उस के निरोध को जानता हो; १०. उस वाद के निरोध-उपाय को भी जानता हो॥

४. उपसम्पदासूत्र : उपसम्पदा देने योग्य भिक्षु के दश गुण — जो १. शीलवान् हो; २. बहुश्रुत हो; ३. जिसे समस्त प्रातिमोक्ष का सूत्रशः और व्यञ्जनशः कण्ठस्थ हो; ४. जो रोगी की परिचर्या में कुशल हो; ५. जो धर्मगत अनभिरति को हटाने या हटवाने में; ६. जो उत्पन्न कुकृत्य को धर्मोपदेश द्वारा हटाने में; ७. जो मिथ्यादृष्टिगत धर्मों को दूर करने में; ८. जो शील-पालन कराने में; ९. जो आध्यात्मिक शान्तिप्रदान में सर्वथा समर्थ हो; १०. एवं जो प्रज्ञासम्बद्ध धर्मों से सम्पृक्त रखने में कुशल हो॥

५. निःश्रयसूत्र : निश्रयदाता भिक्षु की दश योग्यताएँ — पूर्वसूत्रवत्॥

६. श्रामणेरसूत्र : श्रामणेर रखने वाले स्थविर भिक्षु की दश योग्यता — पूर्वसूत्रवत्॥

७. सङ्घभेदसूत्र : सङ्घ की समग्रता (एकता) के नाशक दश धर्म — १. अधर्म को धर्म बताना; २. धर्म को अधर्म बताना; ३. अविनय को विनय बताना; ४. विनय को अविनय बताना; ५. तथागत द्वारा अकथित को उनके द्वारा कथित बताना; ६. तथागत द्वारा कथित को अकथित बताना; ७. उनके द्वारा अनभ्यस्त को अभ्यस्त बताना; ८. अभ्यस्त को अनभ्यस्त बताना; ९. उनके द्वारा अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त बताना; १०. तथा प्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त बताना॥

८. सङ्घसामग्रीसूत्र : सङ्घ में एकताकारक दश धर्म — १. धर्म को धर्म; २. अधर्म को अधर्म; ३. अविनय को अविनय; ४. विनय को विनय; ५. तथागत द्वारा कथित को कथित; ६. अकथित को अकथित; ७. अनभ्यस्त को अनभ्यस्त; ८. अभ्यस्त को अभ्यस्त; ९. अप्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त; तथा १०. प्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त बताना सङ्घता में एकताकारक कर्म होता है॥

९. प्रथम आनन्दसूत्र : सङ्घ में भेद का दुष्परिणाम — पूर्व सूत्र (७) में उक्त दश धर्मों से सङ्घ में भेद (फूट) करने वाले को एक कल्पपर्यन्त दुर्गतिमय नरक में वास का कुपरिणाम (फल) प्राप्त होता है॥

१०. द्वितीय आनन्दसूत्र : सङ्घ में एकता का सुपरिणाम — पूर्वसूत्र (८) में उक्त दश धर्मों से सङ्घ में एकता रखने वाले श्रावकों को ब्राह्म सुखप्राप्ति का फल मिलता है। एक कल्प पर्यन्त स्वर्ग में सुख भोगना ही 'ब्राह्मसुख' कहलाता हैं॥

❀

५. आक्रोशकवर्ग —

१. विवादसूत्र : सङ्घ में विवाद (कलह) के दश कारण — १. अधर्म को धर्म बताना... (द्र.—वर्ग का ७. सङ्घभेदसूत्र) १०. तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त बताना। इन कारणों से भिक्षु सुख-सुविधापूर्वक साधना नहीं कर पाते॥

२. प्रथम विवादमूलसूत्र : सङ्घ में विवाद के दश कारण — १. अधर्म को धर्म बताना ... १०. तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त बताना (सङ्घभेदसूत्रवत्)॥

३. द्वितीय विवादमूलसूत्र : सङ्घ में विवाद के (अन्य) दश कारण — १. अनापत्ति को आपत्ति बताना; २. आपत्ति को अनापत्ति बताना; ३. लघु आपत्ति को गुरु आपत्ति बताना; ४. गुरु आपत्ति को लघु आपत्ति बताना; ५. दुस्थूल (फूहड़) आपत्ति को अदुस्थूल आपत्ति बताना; ६. अदुस्थूल आपत्ति को दुस्थूल आपत्ति बताना; ७. सावशेष आपत्ति को निरवशेष आपत्ति बताना; ८. निरवशेष आपत्ति को सावशेष बताना; ९. सप्रतिकर्म आपत्ति को अप्रतिकर्म आपत्ति बताना; तथा १०. अप्रतिकर्म आपत्ति को सप्रतिकर्म आपत्ति बताना॥

४. कुशीनारसूत्र : दूसरों पर आरोपकर्ता को पहले स्वयं इन दश धर्मों की समीक्षा एवं धारण करना चाहिये — १. क्या वह स्वयं परिशुद्ध काययुक्त है? २. क्या वह स्वयं वाणी से परिशुद्ध है; ३. क्या वह अपने साथियों से मैत्रीपूर्ण व्यवहार कर रहा है? ४. क्या वह स्वयं बहुश्रुत है? ५. क्या उसको स्वयं दोनों प्रातिमोक्ष भली प्रकार से हृदयङ्गम हैं। तथा उसको स्वयं पहले ये बातें अपने मन में धारण कर लेनी चाहियें — ६. कोई बात समय से कहूँगा, असमय पर नहीं; ७. सत्य ही कहूँगा, असत्य नहीं; ८. मधुरवाणी से ही कहूँगा, कठोर वाणी से नहीं; ९. सार्थक बात ही कहूँगा; १०. निरर्थक नहीं॥

५. राजान्तःपुरप्रवेशनसूत्र : राजा के अन्तःपुर में भिक्षुगमन के दश दोष — क्यों कि १. जब कभी समय असमय में भिक्षु के वहाँ जाने पर भिक्षु को देख कर रानी मुस्करा दे या रानी भिक्षु से मुस्करा दे, इस मुस्कराहट को देखकर राजा को इनके अनैतिक सम्बन्धों का सन्देह हो सकता है; २. किसी रानी के गर्भवती होने पर, उसके साथ हुए मैथुन सम्बन्ध का विस्मरण होने पर, उस गर्भ के प्रति राजा का सन्देह भिक्षु पर ही होता है; ३. कभी राजमहल में रत्न आदि की चौरी होने पर उस के लिये भी भिक्षु पर ही सन्देह होगा; ४. राजमहलकी कोई गोपनीय बात बाहर प्रकट होने पर भी भिक्षु पर सन्देह हो सकता है; ५. राजमहल ने पिता ने पुत्र से कुछ माँगा हो और यह बात किसी कारण से जनता में फैल जाय तो इसके लिये भी भिक्षु पर ही सन्देह जायगा; ६. किसी निम्न स्थान के अधिकारी की उच्चपद पर नियुक्ति होने पर उसके विरोधी भिक्षु पर ही सन्देह करेंगे; ७. इसी प्रकार उच्चपदासीन अधिकारी की अवनति होने पर उसके मित्र इस भिक्षु पर ही सन्देह करेंगे कि इसके कहने से ही ऐसा हुआ है; ८. राजा द्वारा अकस्मात् की गयी घोषणा से भिक्षु पर भी विरोधि सन्देह कर सकते हैं; ९. राजा द्वारा युद्ध पर गयी सेना को पीछे लौटने का आदेश देने पर विरोधीजन भिक्षु पर ही सन्देह करेंगे; १०. राजा के महल में प्रायः हाथियों की, घोड़ों की, रथों की दौड़ होती रहती है, इसको देखना भिक्षु के लिये दोष माना गया है॥

६. शाक्यसूत्र : शाक्यों का उपोसथ व्रत न करने से शोक-मरणभययुक्त जीवनयापन — यद्यपि कोई एक कार्षापण, दो कार्षापण, ...दश कार्षापण, बीस कार्षापण, तीस कार्षापण, चालीस

कार्षापण, पचास कार्षापण, सौ कार्षापण से जीवनपर्यन्त सुखमय ऐश्वर्य नहीं भोग सकता; परन्तु कोई तथागतशिष्य दश वर्ष, नौ वर्ष...एक वर्ष सावधानतया साधना कर स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी या अर्हत् हो सकता है॥ यदि कोई तथागत के उपदेशानुसार एक रात्रि दिन भी सावधान एवं संयतचित्त से साधना कर ले तो उस के पुण्यप्रभाव से सौ वर्ष तक, हजार वर्ष तक आनन्दानुभव कर सकता है। वह इस साधना के बल पर सकृदागामी, अनागामी, अपर्णक (निर्दोष), स्रोतआपन्न हो सकता है॥

७. महालिसूत्र : पापकर्म की क्रिया एवं प्रवृत्ति में पाँच हेतु — १. लोभ, २. द्वेष, ३. मोह, ४. अयोनिशःमनस्कार, ५. मिथ्यासङ्कल्प।

इसी प्रकार शुभ कर्म की क्रिया एवं प्रवृत्ति में पाँच हेतु — १. अलोभ, २. अद्वेष, ३. अमोह, ४. योनिशःमनस्कार, ५. सम्यक्सङ्कल्प। इस प्रकार अधर्मचर्या एवं धर्मचर्या के ये दश हेतु हैं। इन दश हेतुओं से इन दोनों चर्याओं का ज्ञान हो पाता है॥

८. प्रव्रजित अभीक्ष्णसूत्र : भिक्षु द्वारा इन दश धर्मों का निरन्तर प्रत्यवेक्षण — १. 'मैं किसी विकार के कारण समाज में कलङ्कित तो नहीं हो रहा हूँ'; २. 'मेरी जीविका दूसरों पर तो आधृत नहीं है?'; ३. 'मेरा ईर्यापथ विकृत तो नहीं है'; ४. 'कोई मेरे सदाचार की निन्दा तो नहीं कर रहा है'; ५. 'विद्वान् साथी मेरे शील पर अङ्गुलि तो नहीं उठा रहे हैं'; ६. 'मेरा सभी अनुकूल प्रियों मित्रों के साथ नानाभाव विनाभाव है क्या?'; ७. 'मैं स्वकर्माधीन हूँ, स्वकीय कर्मों का अधिकारी हूँ'; ८. 'मेरे रात दिन कैसे बीत रहे हैं'; ९. 'मुझे शून्यागार में रहना अच्छा लगता है कि नहीं?'; १०. 'क्या मैंने साधारण साधकों की अपेक्षा, कोई आर्यज्ञानदर्शनविशेष प्राप्त कर लिया है'॥

९. शरीरस्थ धर्मसूत्र : दश शरीरस्थ धर्म — १. शीत, उष्ण, ३. जिघत्सा, ४. पिपासा, ५. मलोत्सर्जन, ६. मूत्रोत्सर्जन, ७. कायसंयम, ८. वाक्संयम, ९. आजीवसंवर, एवं १०. पुनर्जन्म-सम्बद्ध भवसंस्कार॥

१०. भण्डनसूत्र : भिक्षुओं में एकतास्थापक दश धर्म — १. सदाचार का पालन; २. बहुश्रुतता; ३. कल्याणमित्रता; ४. आज्ञाकारिता; ५. साथियों के छोटे बड़े कार्यों में सहयोग; ६. धर्मसाधना में उत्सुकता; ७. अकुशल धर्मों के प्रहाण हेतु प्रयास; ८. साधारणतः प्राप्त चीवर, पिण्डपात आदि से सन्तोष; ९. स्मृति, सम्प्रजन्य; एवं १०. प्रज्ञा॥

६. स्वचित्तवर्ग —

१. स्वचित्तसूत्र : स्वचित्तज्ञानकुशलता के दश धर्म — भिक्षु को अपने इन दश धर्मों की प्रत्यवेक्षणा करनी चाहिये — १. 'मैं अभिध्यालु होकर साधना कर रहा हूँ या अनभिध्यालु हो कर'; २. 'व्यापन्न चित्त हो कर ही साधना कर रहा हूँ या अव्यापन्न चित्त हो कर'; ३. 'स्त्यानमृद्ध हो कर साधना कर रहा हूँ या अस्त्यानमृद्ध हो कर'; ४. 'उद्धतचित्त हो कर साधना कर रहा हूँ या अनुद्धतचित्त हो कर'; ५. 'क्रोधचित्त हो कर साधना कर रहा हूँ, या अक्रोधचित्त होकर'; ६. 'संक्लिष्टचित्त हो कर साधना कर रहा हूँ या असंक्लिष्टचित्त हो कर'; ७. 'सारब्धचित्त हो कर साधना कर रहा हूँ या असारब्धचित्त हो कर'; ८. 'अलसचित्त हो कर साधना कर रहा हूँ या निरलसचित्त होकर'; ९. 'असमाहितचित्त होकर साधना कर रहा हूँ या समाहितचित्त होकर'; १०. 'यदि वह भिक्षु प्रत्यवेक्षणा करता हुआ यह जान ले कि मैं अनभिध्यालु होकर ही साधना कर

रहा हूँ...असमाहित हो कर नहीं; तो उस को अपने कुशल धर्मों की स्थिरता हेतु अपने आश्रवक्षय के लिये प्रयास आरम्भ कर देना चाहिये ॥

२. सारिपुत्रसूत्र : स्वचित्तज्ञानकुशलताहेतु दश धर्म — पूर्वसूत्रवत् ॥

३. स्थितिसूत्र : कुशल धर्मों में वृद्धि ही साधना का लक्ष्य — इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु साधक को स्वचित्त की प्रत्यवेक्षणा करनी चाहिये — इसी वर्ग के प्रथमसूत्रवत् ॥

४. शमथसूत्र : स्वचित्तज्ञानकुशलता हेतु यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये — यदि साधक को प्रत्यवेक्षणा करने पर यह अनुभव हो — 'मैं आध्यात्मिक चित्तशान्ति एवं प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना — दोनों का लाभी हूँ' तो उसको, उन कुशल धर्मों को प्रतिष्ठित कर साधना में आगे बढ़ते हुए, आश्रवक्षय हेतु प्रयास करना चाहिये ॥

५. परिहाणसूत्र : स्वचित्तज्ञानकुशलता हेतु — पूर्वसूत्रवत् ॥

६. प्रथमसंज्ञासूत्र : इन दश संज्ञाओं के अभ्यास से साधनावृद्धि — १. अशुभसंज्ञा; २. मरणसंज्ञा; ३. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा; ४. समस्त लोक में अनभिरतिसंज्ञा; ५. अनित्यसंज्ञा; ६. अनित्य में दुःखसंज्ञा; ७. दुःख में अनात्मसंज्ञा; ८. प्रहाणसंज्ञा; ९. विरागसंज्ञा एवं १०. निरोधसंज्ञा ॥

७. द्वितीयसंज्ञासूत्र : इन दश संज्ञाओं की भावना से साधना वृद्धि — १. अनित्यसंज्ञा; २. अनात्मसंज्ञा; ३. मरणसंज्ञा; ४. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा; ५. समस्त लोक में अनिभिरतिसंज्ञा; ६. अस्थिकसंज्ञा; ७. पुळवकसंज्ञा; ८. विनीलकसंज्ञा; ९. विच्छिद्रकसंज्ञा; एवं १०. उद्धूमातकसंज्ञा ॥

८. मूलकसूत्र : धर्मों का मूल कारण आदि — १. सभी धर्म इच्छामूलक हैं; २. मनः सङ्कल्प इन का उत्पत्तिस्थल है; ३. स्पर्श इनकी उत्पत्ति है; ४. वेदना से ये एकत्र होते हैं; ५. समाधि उन सभी धर्मों का प्रमुख है; ६. स्मृति उनकी स्वामी है; ७. वे सभी एकमात्र प्रज्ञा से ज्ञेय हैं; ८. विमुक्ति उनका सार है; ९. सभी धर्म अमृत में डुबकी लगाते हैं; १०. निर्वाण उनकी सीमा है ॥

९. प्रव्रज्यासूत्र : दश प्रव्रज्याधर्म — १. अशुभ संज्ञा...१० निरोधसंज्ञा (प्रथम संज्ञासूत्रवत्)। साधक का चित्र यदि इन प्रव्रज्या धर्मों से सतत परिचित रहेगा तो उसके दो ही फल सम्भव हैं —१. इसी जन्म में अर्हत्त्वप्राप्ति, २. यदि प्रारब्धवश यह न मिले तो अनागामिता तो अवश्यम्भावी है ॥

१०. गिरिमानन्दसूत्र : दश संज्ञाओं के ज्ञान का महत्त्व — १. अनित्यसंज्ञा; २. अनात्मसंज्ञा; ३. अशुभसंज्ञा; ४. आदीनवसंज्ञा; ५. प्रहाणसंज्ञा; ६. विरागसंज्ञा; ७. निरोधसंज्ञा; ८. समस्त लोक के प्रति अनभिरति संज्ञा; ९. सब संस्कारों में अनिच्छासंज्ञा एवं १०. आनापानस्मृति। इन संज्ञाओं के अभ्यास से सभी प्रकार के रोग क्रमशः शान्त हो जाते हैं ॥ ●

७. यमकवर्ग —

१. अविद्यासूत्र : अविद्या एवं विद्या के उत्पादक कारण — (क) १. अविद्या के आहार (कारण) हैं — पाँच नीवरण; २. पाँच नीवरण के कारण हैं — तीन दुश्चरित; ३. तीन दुश्चरितों का कारण हैं—इन्द्रियों का असंवर; ४. इन्द्रियअसंवर का कारण है — अस्मृति एवं असम्प्रजन्य; ५. अस्मृति का कारण है—अयोनिशः मनस्कार; ६. अयोनिशः मनस्कार का कारण है — अश्रद्धा; ७. अश्रद्धा का कारण है — असद्धर्मश्रवण; ८. असद्धर्मश्रवण का कारण है — असत्पुरुषों की सङ्गति। ९. इस कुसङ्गति से अविद्या बढती रहती है ॥

(ख) इसके विपरीत, १. सत्पुरुषों की सङ्गति से सद्धर्मश्रवण की वृद्धि; २. सद्धर्मश्रवण से श्रद्धावृद्धि; ३. श्रद्धा से योनिशः मनस्कार (उचित मनःसङ्कल्प) की वृद्धि; ४. योनिशः मनस्कार से स्मृति, सम्प्रजन्य की वृद्धि; ५. स्मृतिसम्प्रजन्य से इन्द्रियसंयम की वृद्धि; ६. इन्द्रियसंयम से तीन सुचरितों की वृद्धि; ७. तीन सुचरितों से चार स्मृतिप्रस्थानों की वृद्धि; ८. चार स्मृतिप्रस्थानों से सात बोध्यङ्गों की वृद्धि; ९. सात बोध्यङ्गों से विद्याविमुक्ति की वृद्धि होती रहती है॥

२. तृष्णासूत्र : तृष्णा एवं तृष्णाविमुक्ति के आहार (कारण) — पूर्वोक्त अविद्यासूत्रवत्॥

३. निष्ठागतसूत्र : दशविध साधकों की निष्ठा (स्थिति) — सभी दशविध दृष्टिसम्पन्न साधकों की निष्ठा तथागत में होती है। इन में पाँच की निष्ठा इसी लोक में है, क्यों कि इन को साधना के बाद दूसरे लोक में नहीं जाना पड़ता; कारण कि वे यहीं अर्हत्त्व प्राप्त कर लेते हैं; परन्तु पाँच की निष्ठा अन्यत्र लोकों में हैं; क्योंकि साधनासमाप्ति तक अन्य लोकों में भी रहना पड़ता है। (क) इस लोक में निष्ठावाले दृष्टिसम्पन्न — १. सात जन्म तक यहाँ उत्पन्न होने वाले; २. एक कुल से दूसरे कुल में जन्म लेने वाले; ३. एक ही बार जन्म लेने वाले; ४. सकृदागामी तथा; ५. इसी जन्म में अर्हत्व प्राप्त करने वाले साधक।

(ख) अन्य लोक में निष्ठा वाले दृष्टिसम्पन्न — १. अन्तरापरिनिर्वायी, २. उपहत्य परिनिर्वायी, ३. असंस्कारपरिनिर्वायी, ४. ससंस्कारपरिनिर्वायी एवं ५. ऊर्ध्वस्रोता अकनिष्ठगामी॥

४. अवेत्यप्रसन्नसूत्र : श्रद्धालु साधकों की दशविध निष्ठा — सभी दशविध दृष्टिसम्पन्न तथागत के प्रति श्रद्धालु हैं। इन में पाँच की निष्ठा ... पूर्वसूत्रवत्॥

५. प्रथम सुखसूत्र : (क) जन्म लेने पर दशविध दुःखों की सम्भावना — १. शीत, २. उष्ण, ३. भूख, ४. प्यास, ५. मल-मूत्र का त्याग, ६. अग्निदाह, ७. कहीं किसी कारण से दण्डित होना, ८. शस्त्र का आघात, ९. सम्बन्धिजनों एवं १०. मित्रगण की क्रियाओं से रोष॥

(ख) जन्म न लेने पर दशविध सुखों की सम्भावना — १. न शीत, २. न उष्ण, ३. न भूख, ४. न प्यास, ५. न मल-मूत्र का त्याग, ६. न अग्निदाह, ७. न कहीं किसी कारण से दण्ड का भय, ८. न शस्त्र का आघात, ९. न सम्बन्धिजनों एवं १०. मित्रगण की क्रियाओं से रोष॥

६. द्वितीय सुखसूत्र : (क) धर्मविनय में दश दुःख — १. धर्मविनय में अनभिरति के कारण २. वह चलता हुआ भी; ३. खड़ा हुआ भी; ४. बैठा हुआ भी; ५. सोता हुआ भी; ६. ग्राम या; ७. अरण्य में गया हुआ भी; ८. वृक्ष की छाया में बैठा हुआ भी; ९. शून्यागार में या एकान्त में बैठा हुआ भी तथा १०. भिक्षुओं के बीच बैठा हुआ भी दुःख अनुभव करता है॥

(ख) धर्मविनय में दश सुख — १. धर्मविनय में अभिरति (रुचि) होना सुख है इस अभिरति के कारण वह; २. चलता हुआ भी; ३. खड़ा हुआ भी; ४. बैठा हुआ भी; ५. सोता हुआ भी; ६. ग्राम गया हुआ भी; ७. अरण्य गया हुआ भी; ८. वृक्ष की छाया में; ९. शून्यागार या एकान्त में तथा १०. भिक्षुओं के बीच बैठा हुआ भी सुखानुभव ही करता है॥

७. प्रथम नळकपानसूत्र : अश्रद्धालु के कुशल धर्मों की हानि — (क) जिस साधक की कुशल धर्मों के प्रति १. श्रद्धा नहीं है; २. लज्जा नहीं है; ३. पापभीरुता नहीं है; ४. उद्योग (वीर्य) नहीं है; ५. प्रज्ञा है, ऐसे साधक के आगे आने वाले रात-दिनों में कुशलहानि ही समझनी चाहिये॥

(ख) परन्तु जिस साधक की कुशल धर्मों के प्रति १. श्रद्धा है, २. लज्जा है, ३. पापभीरुता

है, ४. उद्योग एवं ५. प्रज्ञा है, ऐसे साधक के आगे आने वाले रात दिनों में कुशलवृद्धि ही समझनी चाहिये॥

८. द्वितीय नळकपानसूत्र : प्रमादी साधक के कुशल धर्मों की हानि — १. कुशल धर्मों में अश्रद्धा; २. निर्लज्जता; ३. पापभीरुता का अभाव; ४. उद्योग का अभाव; ५. प्रज्ञा का अभाव; ६. धर्मश्रवण में सावधानी का अभाव; ७. धर्मधारणा नहीं है; ८. अर्थपरीक्षण नहीं है; ९. धर्मानुसार आचरण का अभाव; १०. अप्रमाद नहीं है॥

(ख) परन्तु इसके विपरीत १. श्रद्धा...१०. अप्रमाद — इन धर्मों से कुशल धर्मों की वृद्धि ही होती है॥

९. प्रथम कथावत्थुसूत्र : साधक के लिये उपयोगी दश कथाएँ — १. अल्पेच्छकथा; २. सन्तुष्टिकथा; ३. प्रविवेककथा; ४. असंसर्गकथा; ५. वीर्यारम्भकथा; ६. शीलकथा; ७. समाधि-कथा; ८. प्रज्ञाकथा; ९. विमुक्तिकथा एवं १०. विमुक्तिज्ञानदर्शनकथा॥

१०. द्वितीय कथावस्तुसूत्र : साधक के लिये अन्य दश कथायें — १. जो स्वयं अल्पेच्छ हो, तथा दूसरों को भी अल्पेच्छता की महत्ता समझाये;...पूर्वसूत्रवत् विस्तार; १०. स्वयं विमुक्ति-ज्ञानदर्शन सम्पन्न हो, तथा दूसरों को भी विमुक्तिज्ञानदर्शन की विशेषता समझाये॥

८. आकांक्षवर्ग —

१. आकांक्षसूत्र : साधक की दश आकांक्षाओं की पूर्ति — १. 'अपने साथियों का प्रिय बनूँ'; २. 'चीवर, पिण्डपात आदि अनायास पाता रहूँ'; ३. 'मेरे चीवर, पिण्डपात आदि के दाताओं को इस दान का अतिशय पुण्य फल मिले'; ४. 'मेरे प्रेत सम्बन्धियों को, जो मेरा प्रेमपूर्वक स्मरण करते हैं, उनको अतिशय पुण्यफल मिले'; ५. 'अनायास प्राप्त चीवर, पिण्डपात का लाभी बनूँ'; ६. 'मुझको शीत, उष्ण, मच्छर आदि का काटना, भूख, प्यास न सताये'; ७. 'मैं अरति एवं रति को सहन करने वाला बनूँ'; ८. 'मैं साधना के समय होने वाले भीषण भय को सहन कर सकूँ'; ९. 'मैं चारों ध्यानों को प्राप्त कर सकूँ', 'मैं आश्रवों के क्षय से चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति का साक्षात्कार करूँ' — साधक की इन आकांक्षाओं की पूर्ति उस के द्वारा सदाचार का दृढता से पालन करने पर ही हो सकेगी॥

२. कण्टकसूत्र : धर्मसाधना के दश कण्टक (बाधक दोष) — १. एकान्त साधना में मनुष्यों की भीड़; २. अशुभनिमित्तसाधक का शुभ निमित्तों में ध्यान; ३. इन्द्रियसंयम में नृत्य, नाट्य आदि देखना; ४. ब्रह्मचर्य साधना में नारीदर्शन; ५. प्रथम ध्यान में शब्द; ६. द्वितीय ध्यान में वितर्क एवं विचार; ७. तृतीय ध्यान में प्रीति; ८. चतुर्थ ध्यान में श्वास-प्रश्वास; ९. संज्ञावेदयितनिरोध साधना में संज्ञा एवं वेदना; तथा १०. राग, द्वेष, मोह॥

३. इष्टधर्मसूत्र : इन दश धर्मों का सर्वथा इष्ट प्रिय होना लोक में दुर्लभ — १. कामभोग; २. शरीर का वर्ण (रूप); ३. शील; ४. ब्रह्मचर्य (धर्मसाधना); ५. आरोग्य (स्वास्थ्य); ६. मित्रजन; ७. अतिविद्वत्ता; ८. प्रज्ञा; ९. धर्म एवं; १०. स्वर्गसुख॥

४. वृद्धिसूत्र : आर्यश्रावक की ये दश वृद्धियाँ 'आर्यवृद्धि' कहलाती हैं — १. क्षेत्र की वृद्धि; २. धन धान्य की वृद्धि; ३. पुत्र-पौत्रों की वृद्धि; ४. गृहोपयोगी पशुओं की वृद्धि; ५. दास, दासी, कर्मकरों की वृद्धि; ६. श्रद्धा; ७. शील; ८. धर्मश्रवण; ९. त्याग; एवं १०. प्रज्ञा॥

५. मृगशालासूत्र : दो साधकों में स्थूल दृष्टि से समानता दिखायी देने पर भी आध्यात्मिक दृष्टि से भिन्नता का वर्णन ॥

६. धर्मत्रयसूत्र : लोक में १. जन्म, २. जरा, ३. मरण — ये तीन धर्म न होते तो तथागत को लोक में अवतरित हो कर धर्मोपदेश की आवश्यता ही न होती ॥

१. राग, २. द्वेष एवं ३. मोह — इन तीन धर्मों को छोड़े विना १. जाति, २. जरा एवं ३. मरण का त्याग नहीं हो सकता ॥

और, १. सत्कायदृष्टि, २. विचिकित्सा एवं ३. शीलव्रतपरामर्श — इन तीन धर्मों के प्रहाण के विना १. राग, २. द्वेष एवं ३. मोह का प्रहाण नहीं हो सकता ॥

सूत्र में वर्णित अन्य त्रिकों को भी इसी पद्धति से समझ लें ॥

७. काकसूत्र : काक (कौआ) के दश असद्धर्म — १. यह नष्ट भ्रष्ट करने वाला; २. प्रगल्भ (चालाक); ३. अतिशय लोभी; ४. अत्यधिक खाने वाला (पेटू); ५. लालची; ६. निर्दय; ७. दुर्बल; ८. डरपोक; ९. व्यर्थ चिल्लाने वाला; एवं १०. विस्मरणशील होता है ॥

८. निर्ग्रन्थसूत्र : निर्ग्रन्थ मतानुयायी श्रमण दश असद्धर्मों से युक्त — १. रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धालु; २. दुःशील; ३. निर्लज्ज; ४. पापों से न डरने वाले; ५. असत्पुरुषों की सङ्गति वाले; ६. आत्मश्लाघी एवं परनिन्दक; ७. निरर्थक शीलव्रतों के भ्रम में पड़े रहने वाले, दुराग्रही; ८. कृत्रिम आचरण वाले; ९. पापेच्छुक; एवं १०. पापियों के मित्र ॥

९. आघातवस्तुसूत्र : दश द्वेषोत्पादक बातें — १. 'इसने मेरा अनर्थ किया'; २. 'यह मेरा अनर्थ कर रहा है'; ३. 'यह मेरा अनर्थ करेगा'; ४. 'इसने मेरे प्रिय का अनर्थ किया'; ५. 'यह मेरे प्रिय का अनर्थ करेगा'; ६. 'यह मेरे प्रिय का अनर्थ करता है'; ७. 'इसने मेरे अप्रिय का हित किया'; ८. 'यह मेरे अप्रिय का हित करेगा'; ९. 'यह मेरे अप्रिय का हित करता है' — इन नौ कारणों से कोई किसी के प्रति द्वेष बाँध लेता है, या १०. अकारण क्रोध करता है ॥

१०. आघातप्रतिविनयसूत्र : द्वेषशामक दश बातें — १. 'इसने मेरा अनर्थ किया — यह कैसे सम्भव है'; २. 'यह मेरा अनर्थ करता है — यह कैसे सम्भव है'; (३ से ९ तक इसी प्रकार पूर्वसूत्रवत् विस्तार कर लें) तथा १०. सकारण तथा प्रसङ्ग आने पर ही क्रोध करना ॥ ●

९. स्थविरवर्ग —

१. वाहनसूत्र : तथागत की साधना दश धर्मों से असम्पृक्त — १. रूप से; २. वेदना से; ३. संज्ञा से; ४. संस्कारों से; ५. विज्ञान से; ६. जाति से; ७. जरा से; ८. मरण से; ९. दुःखों से; एवं १०. क्लेशों से असम्पृक्त ॥

२. आनन्दसूत्र : (क) धर्मविनय में अवृद्धिकारक दश धर्म — १. अश्रद्धा, २. दुःशील; ३. अल्पधर्मश्रवण; ४. अनाज्ञाकारिता; ५. पापियों का संसर्ग; ६. आलस्य; ७. विस्मृति; ८. असन्तोष; ९. पापवासना; १०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) धर्मविनय में वृद्धिकारक दश धर्म — १. श्रद्धा; २. शील; ३. बहुश्रुतता; ४. आज्ञाकारिता; ५. कल्याणमित्र; ६. उद्योग; ७. स्मृति; ८. सन्तोष; ९. अल्पेच्छता एवं १०. सम्यग्दृष्टि ॥

३. पुण्णियसूत्र : दश गुणों से युक्त साधक को तथागत की धर्मदेशना — १. श्रद्धालु;

२. सम्मुख आने वाला; ३. पर्युपासक; ४. प्रश्नकर्ता; ५. देशना को ध्यान से सुनने वाला; ६. सुन कर धारण करने वाला; ७. उसके अर्थज्ञान में सचेष्ट; ८. उस पर आचरणकर्ता; ९. मङ्गलमय वाणी बोलने वाला; १०. साथियों का धर्महेतु समुत्तेजक, सम्प्रहर्षक॥

४. व्याकरणसूत्र : धर्मों का दशविध व्याकरण — १. क्रोधी; २. उपनाही; ३. म्रक्षी; ४. प्रदाशी; ५. ईर्ष्यालु; ६. मत्सरी; ७. शठ; ८. मायावी; ९. पापेच्छुक — ऐसा साधक साधना के क्रम में व्यवधान रखता है। १०. यह व्यवधान रखना भी धर्मविनय में हानिकारक माना गया है॥

इनके विपरीत दशविध धर्मों वाला साधक अपनी साधना में व्यवधान नहीं रखता। यह अव्यवहित साधना ही धर्मवृद्धिकारक मानी जाती है॥

५. कत्थीसूत्र : हानिकारक दश धर्मवाला धर्मव्याख्याता — १. दुःशील; २. अश्रद्धालु; ३. अल्पश्रुत; ४. अनाज्ञाकारी; ५. पापमित्र; ६. आलसी; ७. लुप्तस्मृति; ८. कुहक (ढोंगी); ९. दुर्भर (कठिनता से पालन पोषण योग्य); एवं १०. दुष्प्रज्ञ॥

६. अधिमानसूत्र : स्वसाधना का मिथ्याव्याख्याता — जो १. अभिध्यालु; २. व्यापादचित्त; ३. आलसी; ४. उद्धत; ५. सन्दिग्धचित्त; ६. लौकिक कर्म को ही सुख मानने वाला; ७. कलह; ८. निद्रा; एवं ९. जनसम्मर्द में ही सुख मानने वाला; १०. ऐसा व्याख्याता अपनी साधना में कुछ व्यवधान रखता है। यह व्यवधान भी धर्मविनय में हानिकारक ही माना गया है॥

७. नप्रियसूत्र : साधक द्वारा इन दश धर्मों का त्याग आवश्यक — जो १. विवाद आरम्भ कर के भी उस विवाद की प्रशंसा नहीं करता; २. न स्वयं धर्मशिक्षा चाहता है, वह दूसरों को प्रेरित करता है; ३. स्वयं पापेच्छु होता हुआ दूसरों को पापकर्म की प्रेरणा; ४. स्वयं क्रोधी, दूसरों को भी क्रोध की प्रेरणा; ५. स्वयं म्रक्षी, दूसरों को...; ६. स्वयं मायावी, दूसरों को भी...; ७. स्वयं शठ, दूसरों को भी....; ८. स्वयं धर्मश्रवण नहीं करता, दूसरों को भी....; ९. स्वयं में एकान्त साधना का अभाव, दूसरों को भी...; १०. न स्वयं आगत अतिथियों का स्वागत करता है,न दूसरों को एतदर्थ प्रेरित करता है ऐसा साधक किसी का प्रिय नहीं हो सकता। अतः इन धर्मों का त्याग आवश्यक॥

८. आक्रोशकसूत्र : दूसरों के अपमानकर्त्ता के दश धर्म — १. अप्राप्त की अप्राप्ति; २. प्राप्त का नाश; ३. सद्धर्म में अशुद्धि; ४. सद्धर्मपालन का अभाव; ५. सद्धर्मपालन में अरुचि; ६. मलिन आपत्ति से सम्पर्क; ७. गम्भीर रोग; ८. उन्माद या चित्तविक्षेप; ९. विस्मृतियुक्त मृत्यु; १०. मरणानन्तर दुर्गतिमय नरकयोनि में पात॥

९. कोकालिकसूत्र : दशविध नरक — १. अर्बुदनिरय; २. निरर्बुद; ३. अबब; ४. अटट; ५. अहह; ६. कुमुद निरय; ७. सौगन्धिक; ८. उत्पलक; ९. पुण्डरीक एवं १०. पद्म निरय॥

१०. क्षीणाश्रवबलसूत्र : क्षीणाश्रव भिक्षु के दश बल — १. सभी संस्कारों में अनित्यता; २. कामभोग अङ्गारतुल्य; ३. विवेक की ओर झुका हुआ चित्त; ४. चार स्मृतिप्रस्थान; ५. चार सम्यक्प्रधान; ६. चार ऋद्धिपाद; ७. पाँच इन्द्रिय; ८. पाँच बल; ९. सात बोध्यङ्ग; १०. आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग॥

१०. उपालिवर्ग —

१. कामभोगिसूत्र : दशविध कामभोगी पुद्गल — विस्तार यथास्थान ग्रन्थ में ही देखें॥

२. भयसूत्र : जिस आर्यश्रावकके पाँच भय शान्त हो चुके होते हैं, जो चार स्रोतआपत्ति अङ्गों

से युक्त होता है, तथा जिसने प्रज्ञा द्वारा आर्यज्ञान साक्षात् कर लिया है वह अपने प्राप्त आर्यज्ञान की घोषणा कर सकता है। (क) पाँच भय — १. प्राणातिपात से, २. अदत्तादान से, ३. कामभोगों में मिथ्याचार से, ४. असत्यभाषण से तथा ५. मद्यपान से उत्पन्न भय।

(ख) चार स्रोतआपत्ति अङ्ग — १. बुद्ध, २. धर्म, ३. सङ्घ के प्रति श्रद्धा, ४. तथा अखण्ड शील॥ (ग) प्रज्ञा द्वारा ज्ञान का साक्षात्कार — प्रतीत्यसमुत्पाद पद्धति से॥

३. किन्दृष्टिकसूत्र : आर्यविनय के दश अव्याकृत सिद्धान्त — १. यह लोक शाश्वत है; २. यह लोक अशाश्वत है; ३. यह लोक अन्तवान् है; ४. यह लोक अन्तरहित है; ५. वही जीव है वही शरीर है; ६. अन्य जीव है, शरीर अन्य है; ७. तथागत मरणानन्तर भी रहते हैं; ८. तथागत मरणानन्तर नहीं रहते; ९. तथागत मरणानन्तर रहते भी हैं नहीं भी रहते; १०. तथागत मरणानन्तर नहीं होते न नहीं होते। ये सभी मत अव्याकृत हैं; क्योंकि ये दूसरों के अनुचित मनःसङ्कल्प से कल्पित अत एव प्रतीत्यसमुत्पन्न हैं॥

४. वज्जियमाहितसूत्र : परिव्राजकों से तपोविषयक संवाद — १. तथागत के मत में सभी तप न निन्दनीय होते हैं न प्रशंसनीय; २. तथागत विनय एवं धर्म — दोनों के प्रज्ञापक हैं; ३. जिस आचरण से; ४. जिस प्रधान से; ५. जिस विमुक्तिसाधना से कुशल धर्म बढते हैं वे धर्म ग्राह्य हैं तथा उपर्युक्त जिन धर्मों से अकुशल धर्म बढते हों वे धर्म त्याज्य हैं॥

५. उत्तियसूत्र : दश अव्याकृत धर्म — पूर्वोक्त ३. किन्दृष्टिकसूत्रवत्॥

६. कोकनदसूत्र : दश अव्याकृत धर्म — पूर्वोक्त ३. किन्दृष्टिकसूत्रवत्॥

७. आह्वनीयसूत्र : दश धर्मों से युक्त भिक्षु उपहारयोग्य, प्रणामयोग्य — १. जो शीलवान् हो; २. जो बहुश्रुत हो; ३. जो भिक्षुओं का कल्याणमित्र हो; ४. सम्यग्दृष्टिसम्पन्न हो; ५. ऋद्धिसम्पन्न हो; ६. दिव्य श्रोत्र से दूर या समीप के शब्द सुनने में समर्थ हो; ७. दूसरों के चित्त से स्वचित्त को सम्पृक्त कर उन की मानसिक स्थिति जानने में समर्थ हो; ८. अनेक स्वकीय पूर्वजन्मों का स्मरणकर्ता हो; ९. अन्य प्राणियों को इस संसार से च्युत होते या यहाँ जन्म लेते हुए देखने में समर्थ हो; १०. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को साक्षात् कर उसकी साधना करता हो॥

८. स्थविरसूत्र : दश धर्मों से युक्त भिक्षु कहीं भी रह कर सरलतया साधना कर सकता है — १. जो स्थविर चिरप्रव्रजित एवं चिरप्रतिष्ठित हो; २. शीलवान् हो; ३. प्रातिमोक्ष का सुविज्ञ हो; ४. वाद के उत्पाद एवं शमन के ज्ञान में कुशल हो; ५. धर्मसाधना का अतिशय इच्छुक हो; ६. प्रियभाषी हो; ७. अनायास उपलब्ध चीवर पिण्डपात आदि से सन्तुष्ट हो; ८. शरीर के वस्त्रों को सुव्यवस्थित रखने वाला; ९. चार ध्यानों का अतिशय लाभी; १०. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति का साधक हो॥

९. उपालिसूत्र : भगवान् द्वारा उपालि स्थविर को सरोवर में स्नान करने वाले हाथी एवं खरगोश की उपमा के सहारे से अरण्य साधना की कठिनाइयाँ बताते हुए, कुमार की उपमा से ग्राम के समीप एकान्त साधना की प्रशंसा॥

१०. अभव्यसूत्र : इन दश धर्मों को छोड़े विना अर्हत्त्वप्राप्ति असम्भव — १. राग, २. द्वेष, ३. मोह, ४. क्रोध, ५. वैर, ६. म्रक्ष, ७. प्रदाश, ८. ईर्ष्या, ९. मात्सर्य एवं १०. मान॥ ●

११. श्रमणसंज्ञावर्ग —

१. श्रमणसंज्ञासूत्र : तीन श्रमणसंज्ञाओं के रहने से सात धर्मों की पूर्ति सम्भव — १. 'मैं कलङ्कित तो नहीं हो गया'?; २. 'क्या मेरी जीविका दूसरों पर आधृत है?'; ३. 'मेरी गतिविधि (चालढाल) बदल तो नहीं गयी है?' — इन तीन प्रत्यवेक्षणों (श्रमणसंज्ञाओं) द्वारा इन सात धर्मों में वृद्धि होती है — १. लोभ, २. अद्वेष, ३. अमान, ४. शिक्षा की इच्छा, ५. जीवनोपयोगी साधनों में सन्तोष, ६. साधना में उद्योग॥

२. बोध्यङ्गसूत्र : सात बोध्यङ्गों के अभ्यास से तीन विद्याओं की पूर्ति — (क) सात बोध्यङ्ग — १. स्मृतिसम्बोध्यङ्ग; २. धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग; ३. वीर्यसम्बोध्यङ्ग; ४. प्रीति-सम्बोध्यङ्ग; ५. प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग; ६. समाधिसम्बोध्यङ्ग; ७. उपेक्षासम्बोध्यङ्ग; इन से तीन विद्याओं की पूर्ति — (ख) १. प्रथमा विद्या, २. द्वितीया विद्या एवं ३. तृतीया विद्या॥

३. मिथ्यात्वसूत्र : मिथ्यात्व से दश मिथ्या धर्मों की उत्पत्ति — १. मिथ्यादृष्टि; २. मिथ्या-सङ्कल्प; ३. मिथ्यावाणी; ४. मिथ्याकर्मान्त; ५. मिथ्याआजीव; ६. मिथ्याव्यायाम; ७. मिथ्यास्मृति; ८. मिथ्यासमाधि; ९. मिथ्याज्ञान एवं १०. मिथ्याविमुक्ति॥

४. बीजसूत्र : (क) १. मिथ्यादृष्टिक...१०. मिथ्याविमुक्तिक पुरुष के १. कायकर्म; २. वाक्कर्म; ३. मनःकर्म; ४. चेतना; ५. प्रणिधि; ६. संस्कार; ७. प्रार्थना — ये सभी कर्म पापदृष्टिमय ही होते हैं॥

(ख) इसी प्रकार, १. सम्यग्दृष्टिक...१०. सम्यग्विमुक्तिक पुरुष के १. कायकर्म; २. वाक्कर्म; ३. मनःकर्म; ४. चेतना; ५. प्रणिधि; ६. प्रार्थना एवं ७. संस्कार — ये सभी सम्यग्दृष्टिक ही होते हैं॥

५. विद्यासूत्र : अविद्या एवं विद्या के अनुगामी दश धर्म — (क) अविद्या के दश धर्म — १. मिथ्यादृष्टि ...पूर्वसूत्रवत्... १०. मिथ्याविमुक्ति। निर्लज्जता एवं पाप से न डरना — ये दो धर्म अविद्या के अनुगामी होते हैं।

(ख) विद्या के दश धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति। लज्जा, एवं पापभीरुता — ये दो धर्म विद्या के अनुगामी होते हैं॥

६. निर्जरसूत्र : ये दश वस्तुएँ निर्जर (निःशेषेण जीर्ण) होती हैं — १. सम्यग्दृष्टि पुद्गल की मिथ्यादृष्टि एवं उस के अनुगामी अकुशल धर्म भी निर्जीर्ण हो जाते हैं; २. सम्यक्सङ्कल्प के मिथ्यासङ्कल्प निर्जीण हो जाते हैं,साथ ही सम्यक्सङ्कल्प के कारण अनेक कुशल धर्म उद्भूत हो जाते हैं; ३. सम्यग्वाक् की मिथ्यावाक्...; ४. सम्यक्कर्मान्त का मिथ्याकर्म...; ५. सम्यगाजीव का मिथ्याआजीव नष्ट...; ६. सम्यग्व्यायाम का मिथ्याव्यायाम...; ७. सम्यक्स्मृति की मिथ्यास्मृति...; ८. सम्यक्समाधि की मिथ्यासमाधि...; ९. सम्यग्ज्ञान का मिथ्याज्ञान...एवं सम्यग्विमुक्ति की मिथ्याविमुक्ति तथा उसके कारण उद्भूत हुए अकुशल धर्म भी नष्ट हो जाते हैं। तथा सम्यग्विमुक्ति के प्रभाव से कुशल धर्म उद्भूत होते हैं॥

७. धोवनसूत्र : दश विध आर्य धोवन (मलशुद्धि) — १. सम्यग्दृष्टि पुद्गल की मिथ्यादृष्टि पूर्णतः धुल जाती है, २. सम्यक्सङ्कल्प पुरुष के मिथ्यासङ्कल्प धुल जाते हैं...पूर्वसूत्रवत्...विस्तार कर लें॥

८. चिकित्सकसूत्र : दशविध आर्यविरेचन (आध्यात्मिक विरेचन) — १. सम्यग्दृष्टि से

पुद्गल की मिथ्यादृष्टि मन से निकल (विरिक्त हो) जाती है...पूर्वसूत्रवत्, १०. सम्यग्विमुक्ति से पुद्गल की मिथ्याविमुक्ति मन से निकल जाती है॥

९. वमनसूत्र : दशविध आर्यवमन — १. सम्यग्दृष्टि पुरुष की मिथ्यादृष्टि का वमन (उल्टी हो जाना) हो जाता है;...पूर्वसूत्रवत्; १०. सम्यग्विमुक्त पुरुष की मिथ्याविमुक्ति का वमन हो जाता है॥

१०. निर्धमनीयसूत्र : दशविध निर्धमनीय (बाहर निकाल देने योग्य) धर्म — १. सम्यग्दृष्टि की मिथ्यादृष्टि का निर्धमन हो जाता है; पूर्वसूत्रवत्; १०. सम्यग्विमुक्ति की मिथ्याविमुक्ति का निर्धमन हो जाता है॥

११. प्रथम अशैक्ष्यसूत्र : दश अशैक्ष्य भिक्षु — १. अशैक्ष्य सम्यग्दृष्टि; पूर्वसूत्रवत् विस्तार; १०. अशैक्ष्य सम्यग्विमुक्त॥

१२. द्वितीय अशैक्ष्यसूत्र : दशविध अशैक्ष्य धर्म — १. अशैक्ष्य सम्यग्दृष्टि; पूर्वसूत्रवत्; १०. अशैक्ष्य सम्यग्विमुक्त॥ ●

१२. प्रत्यवरोहिणीवर्ग —

१. प्रथम अधर्मसूत्र : दश अधर्म, धर्म एवं अनर्थ, अर्थ — (क) अधर्म एवं अनर्थ — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति। (ख) धर्म एवं अर्थ — सम्यग्दृष्टि ... १०. सम्यग्विमुक्त॥

२. द्वितीय अधर्मसूत्र : दश अधर्म, अनर्थ एवं धर्म, अर्थ — पूर्वसूत्रवत्॥

३. तृतीय अधर्मसूत्र : दश अधर्म, अनर्थ; एवं धर्म, अर्थ — पूर्वसूत्रवत्॥

४. अजितसूत्र : दश अधर्म, अनर्थ; एवं धर्म, अर्थ — पूर्वसूत्रवत्॥

५. सङ्गारवसूत्र : संसार के इस पार तथा उस पार का किनारा — (क) १. मिथ्यादृष्टि;...१०. मिथ्याविमुक्ति। (ख) १. सम्यग्दृष्टि ... १०. सम्यग्विमुक्ति॥

६. ओरिमतीरसूत्र : संसार के इस पार तथा उस पार का किनारा — पूर्वसूत्रवत्॥

७. प्रथम प्रत्यवरोहिणीसूत्र : दश त्याज्य धर्म — १. मिथ्यादृष्टि; २. मिथ्यासङ्कल्प; ३. मिथ्यावाक्; ४. मिथ्याकर्म; ५. मिथ्याआजीव; ६. मिथ्याव्यायाम; ७. मिथ्यास्मृति; ८. मिथ्यासमाधि; ९. मिथ्याज्ञान एवं १०. मिथ्याविमुक्ति। इन का पापमय परिणाम होता है॥

८. द्वितीय प्रत्यवरोहिणीसूत्र : साधक के दश त्याज्य धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

९. पूर्वङ्गमसूत्र : कुशल धर्मों के उत्पाद से पूर्व उत्पन्न होने वाले धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥

१०. आश्रवक्षयसूत्र : आश्रवक्षय से पूर्व उत्पन्न होने वाले धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥ ●

१३. परिशुद्धवर्ग —

१. प्रथमसूत्र : दश परिशुद्ध धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥

२. द्वितीयसूत्र : तथागतोपदिष्ट धर्मसाधना से ही प्राप्त होने वाले दश धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

३. तृतीयसूत्र : अतिशय शुभफलदायी दश धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

४. चतुर्थसूत्र : राग, द्वेष, मोह के नाशक दश धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

५. पञ्चमसूत्र : संसार के प्रति वैराग्य आदि के उत्प्रेरक दश धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

६. षष्ठसूत्र : आर्यविनय की साधना से ही उत्पन्न होने वाले दश धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

७. सप्तमसूत्र : आर्यविनय से ही साध्य अतिशयफलदायी दश धर्म — पूर्वसूत्रवत् ॥

८. अष्टमसूत्र : आर्य विनयपद्धति से अभ्यस्त होने पर रागद्वेष मोहनाशक दश धर्म — पूर्वसूत्रवत् ॥

९. नवमसूत्र : आर्य विनयपद्धति से अभ्यस्त किये जाने पर रागद्वेष मोहनाशक दश धर्म — पूर्वसूत्रवत् ॥

१०. दशमसूत्र : दश मिथ्यात्वधर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

११. एकादशसूत्र : दश सम्यक्त्वधर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥ ●

१४. साधुवर्ग —

१. साधुसूत्र : (क) दश असाधु धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश साधु धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

२. आर्यधर्मसूत्र : (क) दश अनार्य धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश आर्य धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

३. अकुशलसूत्र : (क) दश अकुशल धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश कुशल धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

४. अर्थसूत्र : (क) दश अनर्थ धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश अर्थ — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

५. धर्मसूत्र : (क) दश अधर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

६. साश्रवसूत्र : (क) दश साश्रव धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश अनाश्रव धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

७. सावद्यसूत्र : (क) दश सावद्य धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश निरवद्य धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

८. तपनीयसूत्र : (क) दश तपनीय (कष्टकर) धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश अतपनीय (सुखकर) धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

९. आचयगामिसूत्र : (क) दश आचयगामी (मिथ्याविकारसंग्राहक) धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...२. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश अपचयगामी (जन्ममरणनिरोधक) धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

१०. दुःखोद्रयसूत्र : (क) दश दुःखकारक धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश सुखकारक धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

११. दुःखविपाकसूत्र : (क) दश दुःखफलप्रद धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥ ●

१५. आर्यवर्ग —

१. आर्यमार्गसूत्र : (क) दश अनार्यमार्गधर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति ॥

(ख) दश आर्यमार्गधर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति ॥

२. कृष्णमार्गसूत्र : (क) दश कृष्णमार्ग — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति॥
(ख) दश शुक्लमार्ग — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥

३. सद्धर्मसूत्र : (क) दश असद्धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति॥
(ख) दश सद्धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥

४. सत्पुरुषधर्मसूत्र : (क) दश असत्पुरुषधर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति॥
(ख) दश सत्पुरुषधर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥

५. उत्पादयितव्यसूत्र : (क) दश अनुत्पादनीय धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति॥

(ख) दश उत्पादनीय धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥

६. आसेवितव्यसूत्र : (क) दश अनाचरणीय धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति॥

(ख) दश आचरणीय धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥

७. भावयितव्यसूत्र : (क) असाधनीय दश धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति॥
(ख) साधनीय दश धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥

८. बहुलीकर्तव्यसूत्र : (क) अवृद्धियोग्य दश धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति॥

(ख) वृद्धियोग्य दश धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥

९. अनुस्मर्तव्यसूत्र : (क) अस्मरणीय दश धर्म — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति॥

(ख) स्मरणीय दश धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥

१०. साक्षात्करणीयसूत्र : (क) असाक्षात्करणीय दश धर्म — १. मिथ्यादृष्टि... १०. मिथ्याविमुक्ति॥

(ख) साक्षात्करणीय दश धर्म — १. सम्यग्दृष्टि...१०. सम्यग्विमुक्ति॥ ●

१६. पुद्गलवर्ग —

१. सेवितव्यसूत्र : (क) दश मिथ्याधर्मयुक्त पुद्गल संगति न करने योग्य — १. मिथ्यादृष्टि...१०. मिथ्याविमुक्ति॥ (ख) दश सद्धर्मयुक्त पुद्गल संगति करने योग्य — १. सम्यग्दृष्टि... १०. सम्यग्विमुक्ति॥

२-१२. भजनीयादिसूत्र : (क) इन उपर्युक्त मिथ्यादृष्टि आदि दश धर्मों से युक्त पुद्गल की १. उपासना, २. पूजा, ३. प्रशंसा एवं ४. सम्मान नहीं करना चाहिये; क्यों कि ५. वह धर्म का विद्रोही हो जाता है, ६. अनाराधक हो जाता है, ७. वह शुद्ध नहीं होता, ८. सम्मान प्राप्त नहीं करता, ९. उस की प्रज्ञावृद्धि नहीं होती, १०. अतिशय पाप का भागी होता है॥

(ख) ऐसे पुद्गल की उपासना, पूजा आदि करनी चाहिये जो १. सम्यग्दृष्टि... १०. सम्यग्विमुक्त होता है; क्योंकि ऐसा पुरुष अतिशय पुण्य का भागी होता है॥ ●

१७. जाणुश्रोणिवर्ग —

१. ब्राह्मणप्रत्यवरोहिणीसूत्र : आर्यविनय का प्रत्यवरोहिणी पर्व : दश पापमय अकुशल

धर्मों का त्याग — १. प्राणातिपात, २. अदत्तादान, ३. कामभोगों में मिथ्याचार, ४. असत्य भाषण, ५. पिशुन वाणी, ६. कठोर वाणी, ७. सम्प्रलाप, ८. लोभ, ९. द्वेष एवं १०. मिथ्यादृष्टि ॥

२. **आर्यप्रत्यवरोहिणीपर्व :** आर्यविनय का प्रत्यवरोहिणी पर्व — पूर्वसूत्रवत् ॥

३. **सङ्गारवसूत्र :** संसार के इस पार उस पार के दो किनारे — १. प्राणातिपात — इस पार का किनारा एवं प्राणातिपातविरति उस पार का किनारा। २-१०. इसी प्रकार अदत्तादान से मिथ्यादृष्टिविरति तक विस्तार कर लेना चाहिये ॥

४. **अवरसूत्र :** संसार के इस पार उस पार के दो किनारे — पूर्वसूत्रवत् विस्तार ॥

५. **प्रथम अधर्मसूत्र :** (क) दशविध अधर्म एवं अनर्थ — १. प्राणातिपात ... १०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दशविध धर्म एवं अर्थ — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

६. **द्वितीय अधर्मसूत्र :** (क) दशविध अधर्म, अनर्थ — पूर्वसूत्रवत् ॥

(ख) दशविध धर्म, अर्थ — पूर्वसूत्रवत् ॥

७. **तृतीय अधर्मसूत्र :** (क) अधर्म एवं अनर्थ — पूर्वसूत्रवत् ॥

(ख) धर्म एवं अर्थ — पूर्वसूत्रवत् ॥

८. **कर्मनिदानसूत्र :** दशविध कर्मों की उत्पत्ति में तीन हेतु — १. लोभ, २. द्वेष एवं ३. मोह। दशविध कर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

९. **परिक्रमणसूत्र :** सभी धर्मों के अपने विरोधी धर्म होते हैं — १. प्राणातिपात का विरोधी धर्म — प्राणातिपातविरति। इसी प्रकार १०. मिथ्यादृष्टि का विरोधी धर्म सम्यग्दृष्टि ॥

१०. **चुन्दसूत्र :** दशविध अपवित्रता एवं दशविध पवित्रता — (क) दश अपवित्रता १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि। (ख) दशविध पवित्रता — १. प्राणातिपातविरति; पूर्ववत्... १०. सम्यग्दृष्टि। इन दशविध धर्मों को त्रिविध कायिक परिशुद्धि, चतुर्विध वाक्परिशुद्धि एवं त्रिविध मन:परिशुद्धि में भी विभक्त किया जा सकता है ॥

११. **जानुश्रोणिसूत्र :** सभी प्रकार के दान फलप्रद — जो पुरुष १. प्राणातिपातप्रतिविरत ...१०. सम्यग्दृष्टिसम्पन्न होता है, वह यदि श्रमण ब्राह्मणों को अन्न, पान, वस्त्र आदि का भी दान करता है तो वह, इस देहपात के बाद मरणानन्तर, देवलोक में जा कर दिव्य पाँच कामगुणों का उपभोग करता है। अत: श्राद्ध दान करना चाहिये ॥ ●

१८. साधुवर्ग —

१. **साधुसूत्र :** दो कर्म — असाधु, साधु। (क) असाधु धर्म — १. प्राणातिपात, २. अदत्तादान...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) साधु धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

२. **आर्यधर्मसूत्र :** (क) अनार्य धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) आर्य धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

३. **कुशलधर्मसूत्र :** (क) अकुशल धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) कुशल धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

४. **अर्थसूत्र :** (क) अनर्थ धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) अर्थ धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

५. **धर्मसूत्र :** (क) दशविध अधर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दशविध धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

६. **आश्रवसूत्र :** (क) दशविध साश्रव धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दशविध अनाश्रव धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

७. **वद्यसूत्र :** (क) दश सावद्य (सदोष) धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दश निरवद्य (निर्दोष) धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

८. **तपनीयसूत्र :** (क) दश तपनीय धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दश अतपनीय धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

९. **आचयगामिसूत्र :** (क) आचय (संग्रह) गामी दश धर्म — १. प्राणातिपात... १०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) अपचय (निरोध) गामी दश धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

१०. **दुःखोद्रयसूत्र :** (क) दश दुःखकर धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दश सुखकर धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

११. **विपाकसूत्र :** (क) दश दुःखविपाकधर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दश सुखविपाकधर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

१९. आर्यमार्गवर्ग —

१. **आर्यमार्गसूत्र :** (क) दश अनार्य धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि !!

(ख) दश आर्य मार्ग — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

२. **कृष्णमार्गसूत्र :** (क) दश कृष्णमार्ग — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दश शुक्ल मार्ग — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

३. **सद्धर्मसूत्र :** (क) दश असद्धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दश सद्धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

४. **सत्पुरुषधर्मसूत्र :** (क) दश असत्पुरुषधर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दश सत्पुरुषधर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

५. **उत्पादयितव्यधर्मसूत्र :** (क) दश उत्पादनीय धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्या-दृष्टि ॥

(ख) दश अनुत्पादनीय धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

६. **आसेवितव्यधर्मसूत्र :** (क) दश अनाचरणीयधर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्या-दृष्टि ॥

(ख) दश आचरणीय धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

७. **भावयितव्यधर्मसूत्र :** (क) दश असाधनायोग्य धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्या-दृष्टि ॥

(ख) दश साधनायोग्य धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

८. **बहुलीकर्तव्यसूत्र :** (क) दश अनभ्यसनीय धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दश अभ्यसनीय धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

९. अनुस्मर्तव्यसूत्र : (क) दश नअनुस्मरणीय धर्म — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दश अनुस्मरणीय धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

१०. साक्षात्करणीयसूत्र : (क) दश असाक्षात्करणीय धर्म — १. प्राणातिपात... १०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दश साक्षात्करणीय धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

२०. अपरपुद्गल वर्ग —

१-१२. नसेवितव्यादिसूत्र : (क) दश मिथ्याधर्मों से युक्त पुद्गल न सङ्गति करने योग्य — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टिक ॥ (ख) दश कुशल धर्मों से युक्त पुद्गल सङ्गति करने योग्य — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टिक ॥

शेष सूत्रों का व्याख्यान-संक्षेप भी पीछे ***१६ पुद्गलवर्ग*** *में किये गये व्याख्यान के समान — प्राणातिपात एवं प्राणातिपातविरति आदि धर्म लगा कर समझ लिया जाय ॥*

२१. करजकायवर्ग —

१. प्रथम निरयसूत्र : (क) दशधर्मयुक्त पुद्गल नरकगामी — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि ॥

(ख) दशधर्मयुक्त पुद्गल स्वर्गगामी — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि ॥

२. द्वितीय निरयस्वर्गसूत्र : (क) (ख) पूर्वसूत्रवत् ॥

३. मातृग्रामसूत्र : (क) नरकगामिनी नारी — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि धर्मों से युक्त ॥

(ख) स्वर्गगामिनी नारी — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि धर्मों से युक्त ॥

४. उपासिकासूत्र : (क) नरकगामिनी उपासिका — १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि धर्मों से युक्त ॥

(ख) स्वर्गगामिनी उपासिका — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि से युक्त ॥

५. विशारदसूत्र : (क) १. प्राणातिपात...१०. मिथ्यादृष्टि धर्मों से युक्त कोई गृहस्थ नारी अपना घर अदक्षतापूर्वक चलाती हुई, देहपात के बाद, नरकगामिनी ही होती है ॥

(ख) प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि धर्मों से युक्त कोई सद्गृहस्थ नारी अपना घर दक्षतापूर्वक चलाती हुई, मरणानन्तर, स्वर्गगामिनी ही होती है ॥

६. संसर्पणीयसूत्र : सभी प्राणी स्वकर्माधीन होते हैं, अतः २. प्राणातिपात...मिथ्यादृष्टिकर्म करने वाले प्राणी नरकगामी होते हैं या साँप बिच्छू आदि संसर्पण (रेंगने वाली) जाति में जन्म लेते हैं ।

७. प्रथम सञ्चेतनिकसूत्र : जानते बूझते किये कर्मों का फल भोगे विना दुःखों का अन्त नहीं — प्राणी स्वकर्माधीन होते हैं अतः उन के द्वारा कृत अकुशल कायकर्म तीन प्रकार से, अकुशल वाक्कर्म चार प्रकार से एवं अकुशल मनः कर्म तीन प्रकार से दुःखवर्धक होते हैं।

त्रिविध अकुशल कायकर्म — १. प्राणातिपात, २. अदत्तादान एवं ३. कामभोगों में

मिथ्याचार; चतुर्विध अकुशल वाक्कर्म — ४. मृषावाद, ५. पिशुनवाक्, ६. परुषवाक् एवं ७. सम्प्रलाप; त्रिविध अकुशल मनःकर्म — ८. अभिध्या (लोभ), ९. व्यापाद (द्वेष) एवं १०. मिथ्यादृष्टि॥

८. द्वितीय सञ्चेतनिकसूत्र : जानते बूझते कृत कर्मों का फल भोगे विना दुःखों का अन्त नहीं — पूर्वसूत्रवत्॥

९. करजकायसूत्र : चतुर्विध ब्रह्मविहार से ही सर्वविध दुःखों का अन्त—१. मैत्रीसहगत चित्त से साधना; २. करुणासहगत चित्त से... ३. मुदितासहगत चित्त से... ४. उपेक्षासहगत चित्त से साधना। यह साधना साधक को अनागामिता की ओर बढाती है॥

१०. अधर्मचर्यासूत्र : (क) अधर्ममय या पापमय जीवनचर्या के कारण पुद्गल की नरकगति, एवं (ख) धर्ममय, पुण्यमय जीवनचर्या पुद्गल को स्वर्ग की ओर ले जाती है। इन दोनों जीवनचर्याओं को क्रमशः पापमय दश धर्म — १. प्राणातिपात...१० मिथ्यादृष्टि; तथा कुशल दश धर्म — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि प्रभावित करते हैं॥ ●

२२. श्रामण्यवर्ग —

१. स्मृतिसम्प्रजन्यसूत्र : १. (क) **दश** धर्मों से युक्त पुद्गल पुनः नरकगामी होता है — १. प्राणातिपात...१० मिथ्यादृष्टि॥ (ख) दश धर्मों से युक्त पुद्गल पुनः स्वर्गगामी ही होता है — १. प्राणातिपातविरति...१०. सम्यग्दृष्टि॥

२. (क) **बीस** धर्मों से युक्त प्राणी पुनः नरकगामी होता है — १. जो स्वयं प्राणातिपाती होता है तथा २. दूसरों को भी प्राणातिपात की प्रेरणा देता है...१९. स्वयं मिथ्यादृष्टि होता है तथा २०. दूसरों को भी मिथ्यादृष्टि के लिये प्रेरित करता है॥ (ख) बीस धर्मों से युक्त प्राणी पुनः स्वर्गगामी होता है — १. जो स्वयं प्राणातिपात विरत रहता है तथा २. दूसरों को भी प्राणातिपातविरति की प्रेरणा देता है...१९. स्वयं सम्यग्दृष्टि होता है तथा २०. दूसरों को भी सम्यग्दृष्टि की प्रेरणा देता है॥

३. (क) **तीस** धर्मों से युक्त प्राणी पुनः नरकगामी होता है — १. जो स्वयं प्राणातिपाती होता है, २. दूसरों को प्राणातिपात हेतु प्रेरित करता है, ३. प्राणातिपात का समर्थन करता है...२८. स्वयं मिथ्यादृष्टि होता है; २९. दूसरों को ऐसा होने के लिये प्रेरित करता है, और ३०. मिथ्यादृष्टि का समर्थन करता है॥ (ख) ...स्वर्गगामी होता है — १. जो स्वयं प्राणातिपातविरत होता है, २. दूसरों को एतदर्थ प्रेरित भी करता है, ३. प्राणातिपातविरति का समर्थन करता है...२८. सम्यग्दृष्टि होता है, २९. सम्यग्दृष्टि के लिये प्रेरित करता है तथा ३०. सम्यग्दृष्टि का समर्थन करता है॥

४. (क) **चालीस** धर्मों से युक्त प्राणी पुनः नरकगामी ही होता है — १. जो स्वयं प्राणातिपाती होता है, २. जो दूसरों को एतदर्थ प्रेरित करता है; ३. इसका समर्थन करता है; ४. जो इसकी प्रशंसा करता है... ३७. मिथ्यादृष्टि होता है, ३८. मिथ्यादृष्टि हेतु प्रेरित करता है; ३९. मिथ्यादृष्टि का समर्थन करता है, ४०. मिथ्यादृष्टि की प्रशंसा करता है॥ (ख) चालीस धर्मों से युक्त पुनः स्वर्गगामी ही होता है — १. जो स्वयं प्राणातिपातविरत होता है, २. दूसरों को भी इस विरतिहेतु प्रेरित करता है, ३. इसका समर्थन करता है, ४. दूसरों के सामने इसकी प्रशंसा करता है...३७. सम्यग्दृष्टि होता है, ३८. सम्यग्दृष्टि के लिये प्रेरित करता है; ३९. इस का समर्थन करता है तथा ४०. सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा करता है॥

५-८. दश धर्मों से युक्त...बीस धर्मों से युक्त...तीस धर्मों से युक्त...चालीस धर्मों से युक्त प्राणी स्वयं को क्षत उपहत समझता है...पूर्वसूत्रवत् विस्तार कर लें॥ ●

२३. रागपेय्याल (रागविस्तार) —

१. राग के अभिज्ञान हेतु इन दश धर्मों की भावना करनी चाहिये — १. अशुभसंज्ञा; २. मरणसंज्ञा; ३. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा; ४. समस्त लोक में अनभिरतिसंज्ञा; ५. अनित्यसंज्ञा; ६. अनित्य में दुःखसंज्ञा; ७. दुःख में अनात्मसंज्ञा; ८. प्रहाणसंज्ञा; ९. विरागसंज्ञा; १०. निरोधसंज्ञा॥

२. राग के अभिज्ञान हेतु इन दशधर्मों की भावना आवश्यक है — १. अनित्यसंज्ञा; २. अनात्मसंज्ञा; ३. आहार में प्रतिकूलसंज्ञा; ४. समस्त लोक में अनभिरतिसंज्ञा; ५. अस्थिकसंज्ञा; ६. पुडुवकसंज्ञा; ७. विलीनकसंज्ञा; ८. विपूयकसंज्ञा; ९. विच्छिद्रकसंज्ञा; १०. उद्धूमातकसंज्ञा॥

३. राग के अभिज्ञान हेतु इन दश धर्मों की भावना आवश्यक है — १. सम्यग्दृष्टि; २. सम्यक्सङ्कल्प; ३. सम्यग्वाक्; ४. सम्यक्कर्म; ५. सम्यगाजीव; ६. सम्यग्व्यायाम; ७. सम्यक्स्मृति; ८. सम्यक्समाधि; ९. सम्यग्ज्ञान; १०. सम्यग्विमुक्ति॥

४-३०. राग की परिज्ञा के लिये...परिक्षय के लिये...प्रहाण के लिये...क्षय के लिये...व्यय के लिये...विराग के लिये...निरोध के लिये...त्याग के लिये...प्रतिनिसर्ग के लिये...इन दश धर्मों की भावना करने चाहिये।

३१-५१०. द्वेष के...मोह के...क्रोध के...उपनाह के...म्रक्ष के...प्रदाश के...ईर्ष्या के...मात्सर्य के...माया के...शठता के...स्तम्भ के...सारम्भ के...मान के...अतिमान के...मद के...प्रमाद के अभिज्ञान के लिये...परिज्ञान के लिये...परिक्षय के लिये...प्रहाण के लिये...क्षय के लिये...व्यय के लिये...विराग के लिये...निरोध के लिये...त्याग के लिये...प्रतिनिसर्ग के लिये...इन दश धर्मों की भावना करनी चाहिये॥ ●

दशक निपात सम्पन्न॥

●

एकादशक निपात

१. निश्रयवर्ग —

१. किमर्थीयसूत्र : १. कुशल धर्मों की साधना २. पापधर्मों के पश्चात्ताप हेतु; ३. पाप धर्मों का पश्चात्ताप प्रमोदहेतु; ४. प्रमोद प्रीति के उत्पादहेतु; ५. प्रीति कायप्रश्रब्धिहेतु; ६. कायप्रश्रब्धि सुखप्राप्तिहेतु; ७. सुखप्राप्ति समाधिकुशलताहेतु; ८. समाधिकुशलता यथाभूतज्ञानदर्शनहेतु; ९. यथाभूतज्ञानदर्शन निर्विदा के उत्पादहेतु; १०. निर्विदा का उत्पाद वैराग्य प्राप्तिहेतु; ११. वैराग्य-प्राप्ति विमुक्तिज्ञानदर्शनहेतु की जाती है। इस प्रकार ये कुशल शील क्रमशः साधनाधर्मों को आगे बढाते रहते हैं॥

२. चेतनाकरणीयसूत्र : शीलवान् साधक को संसार से पार जाने में साधनभूत धर्मों की चिन्ता अनावश्यक — १. शीलवान् को २. अविप्रतिसार; अविप्रतिसारी को, ३. प्रमोद; प्रमोदवान्

को ४. प्रीति; प्रीतियुक्त को ५. प्रश्रब्धि; प्रश्रब्धिवान् को ६. सुख; सुखी को ७. समाधि; समाधिनिष्ठ को ८. यथाभूतज्ञानदर्शन; यथाभूतज्ञानद्रष्टा को ९. निर्विदा; निर्विदायुक्त को १०. वैराग्य; एवं वैराग्यवान् को ११. विमुक्तिज्ञानदर्शन स्वतः उद्भूत हो जाता है; क्यों कि इन धर्मों का स्वभाव है कि इनसे आगे वाले धर्म स्वतः उद्भूत होते चलते हैं॥

३. प्रथम उपनिषत्सूत्र : उत्पत्तिकारणविहीन एकादश धर्म असम्भव — (क) १. शील-विनष्ट को २. अविप्रतिसार; अविप्रतिसारविहीन को ३. प्रमोद, प्रमोदविहीन को ४. प्रीति, प्रीतिविहीन को ५. कायप्रश्रब्धि, कायप्रश्रब्धिविहीन को ६. सुख, सखविहीन को ७. समाधि, समाधिविहीन को ८. यथाभूतज्ञानदर्शन, यथाभूतज्ञानदर्शनविहीन को ९. निर्विदा, निर्विदाविहीन को १०. वैराग्य, एवं वैराग्यविहीन को ११. विमुक्तिज्ञानदर्शन असम्भव है॥

(ख) परन्तु १. शीलवान् को २. अविप्रतिसार...पूर्वसूत्रवत्...वैराग्यवान् को ११. विमुक्ति-ज्ञानदर्शन सम्भव है॥

४. द्वितीय उपनिषत्सूत्र : उत्पत्तिकारणविहीन को एकादशधर्म असम्भव — पूर्वसूत्रवत्॥

५. तृतीय उपनिषत्सूत्र : उत्पत्तिकारणविहीन को एकादश धर्म असम्भव — पूर्वसूत्रवत्॥

६. व्यसनसूत्र : आर्यनिन्दक का सङ्कटग्रस्त होना ही सम्भव — १. आर्यों के अपमानकर्ता एवं निन्दक पुरुष के लिये यही सम्भव है कि वह इन एकादश सङ्कटों में से किसी से घिर जाय — १. अप्राप्त को प्राप्त नहीं कर पाता; २. प्राप्त भी नष्ट हो जाता है; ३. सद्धर्म की विस्मृति; ४. सद्धर्म-पालन का अभिमान; ५. धर्म के प्रति अरुचि रखते हुए साधना करना; ६. किसी मलिन दोष (आपत्ति) से ग्रस्त हो जाना; ७. धर्मशिक्षा त्याग कर पुनः गृहस्थ धर्म में चले जाना; ८. गम्भीर रोग; ९. पागल या विक्षिप्तचित्त हो जाना; १०. मुग्ध (बेहोश) हो कर मृत्यु पाना; ११. मरणानन्तर दुर्गतिमय नरकयोनि में जा गिरना॥

७. संज्ञासूत्र : संज्ञाभावना की विशेषता — ऐसी साधना की प्राप्ति, जिसमें न पृथ्वीसंज्ञा, न जलसंज्ञा, न तेजःसंज्ञा; न वायुसंज्ञा, न आकाशानन्त्यायनसंज्ञा, न विज्ञानानन्त्यायतनसंज्ञा; न आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा; न नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसंज्ञा, न इह लोक में इहलोकसंज्ञा; न परलोक में परलोकसंज्ञा, यहाँ तक कि मन से किसी भी चिन्तित की संज्ञा न रह जाय। परन्तु इस अवस्था में भी वह संज्ञावान् रहे॥

८. मनसिकारसूत्र : मनस्कार संज्ञा की विशेषता — पूर्वसूत्रवत्॥

९. श्रद्धसूत्र : ध्यान की श्रेष्ठता — अरण्य या किसी शून्य गृह में बैठ कर भी साधक को १. कामरागयुक्त चित्त से; २. व्यापादयुक्त चित्त से; ३. स्त्यानमृद्धयुक्त चित्त से; ४. औद्धत्य कौकृत्ययुक्त चित्त से; ५. विचिकित्साप्रेरित चित्त से ध्यानाभ्यास नहीं करना चाहिये। क्यों कि तब वह न पृथ्वी का, न जल का, न तेज का, न वायु का, न आकाशानन्त्यायतन का, न विज्ञाना-नन्त्यायतन का, न आकिञ्चन्यायतन का, न नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का, न इह लोक का, न परलोक का, न मन से चिन्तित किसी विषय का संज्ञान ही यथार्थतः करता है; परन्तु तब भी ध्यान करता है।

१०. मयूरनिवापसूत्र : एकादश धर्मों से युक्त साधक सर्वश्रेष्ठ — १. अशैक्ष्य शीलस्कन्ध; २. अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध; ३. अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध; ४. ऋद्धिप्रातिहार्य; ५. आदेशनाप्रातिहार्य; ६. विनयप्रातिहार्य; ७. सम्यग्दृष्टि; ८. सम्यग्ज्ञान; ९. सम्यग्विमुक्ति; १०. विद्या एवं ११. चरण —

इन एकादश धर्मों से युक्त साधक अतिशय निष्ठावान्, अतिशय धर्मसाधक एवं साधना की सीमा तक पहुँचा हुआ होता है। अत: वह सर्वश्रेष्ठ कहलाता है॥

२. अनुस्मृति वर्ग —

१. प्रथम महानामसूत्र : गृहस्थों के लिये उचित साधनापद्धति — उपासक १. श्रद्धालु; २. उद्योगी; ३. स्मृतिमान्; ४. समाधिरत एवं ५. प्रज्ञावान् रहता हुआ — ६. बुद्धानुस्मृति; ७. धर्मानुस्मृति; ८. सङ्घानुस्मृति; ९. शीलानुस्मृति; १०. त्यागानुस्मृति एवं ११. देवतानुस्मृति की भावना करे॥

२. द्वितीय महानामसूत्र : साधक के द्वारा अभ्यसनीय एकादश धर्म — पूर्वसूत्रवत्॥

३. नन्दियसूत्र : साधक द्वारा एकादश धर्मों का पालन आवश्यक — पूर्वसूत्रवत्॥

४. सुभूतिसूत्र : श्रद्धालु के एकादश लक्षण — १. शीलवान्; २. बहुश्रुत; ३. अकुशल धर्मों के प्रहाण में सतत उद्योगरत; ४. आध्यात्मिक चारों ध्यानों का लाभी, कल्याणमित्रता; ४. नम्र (विनय धर्म सम्पन्न), ५. साथियों के छोटे बड़े कार्य को पूर्ण कर देने वाला॥

४. सुभूतिसूत्र : श्रद्धालु साधक के एकादश लक्षण — १. शीलवान्; २. बहुश्रुत; ३. कल्याणमित्र; ४. विनययुक्त; ५. अपने छोटे बड़े साथियों का कार्य करने वाला; ६. धर्मश्रवण का इच्छुक; ७. अकुशलधर्मों के प्रहाण में सतत उद्योगरत; ८. चारों ध्यानों का लाभी; ९. पूर्वजन्मों का स्मर्ता; १०. अन्य प्राणियों के कर्मों के देखने का सामर्थ्य; ११. अनाश्रवा चेतोविमुक्ति से प्रज्ञाविमुक्तिसाधना॥

५. मैत्रीसूत्र : मैत्री भावना की साधना के एकादश लाभ — १. सुख से शयन; २. सुख से जागरण; ३. पापमय स्वप्न न देखना; ४. मनुष्यों का प्रिय; ५. अमनुष्यों का भी प्रिय; ६. देवताओं द्वारा रक्षा; ७. अग्नि, विष आदि का भय नहीं; ८. मन द्वारा शीघ्र चिन्तन; ९. सदा प्रसन्नमुख; १०. अमुग्ध (सचेत) अवस्था में मरण; ११. कम से कम ब्रह्मलोक तक पहुँचने वाला॥

६. अष्टकनागरसूत्र : भगवान् द्वारा उपदिष्ट साधना — १. प्रथम ध्यान; २. द्वितीय ध्यान; ३. तृतीय ध्यान; ४. चतुर्थ ध्यान; ५. मैत्री सहगत चित्त से; ६. करुणासहगत चित्त से; ७. मुदितासहगत चित्त से; ८. उपेक्षासहगत चित्त से भावना; ९. आकाशानन्त्यायतन; १०. विज्ञानानन्त्यायतन की एवं ११. आकिञ्चन्यायतन की भावना॥

७. गोपालसूत्र : एकादश धर्मयुक्त गोपाल के समान साधक साधना में समर्थ — १. रूपज्ञ; २. लक्षणज्ञ; ३. मक्खियाँ उड़ाने वाला; ४. व्रणरोपक; ५. धूआँ करने वाला; ६. तीर्थज्ञ; ७. धर्मामृतपान की स्थिति का ज्ञाता; ८. वीथिज्ञ; ९. गोचरकुशल; १०. सावशेषदोही; एवं ११. पितृसमान स्थविर भिक्षुओं की पूजा, सम्मान करने वाला॥

८. प्रथम समाधिसूत्र : विशिष्ट समाधिभावना — (इसी निपात के द्वितीयवर्गस्थ **संज्ञासूत्र** के समान विस्तार कर लें)॥

९. द्वितीय समाधिसूत्र : विशिष्ट समाधिभावना — पूर्वसूत्रवत्॥

१०. तृतीय समाधिसूत्र : विशिष्ट समाधिभावना — पूर्वसूत्रवत्॥

११. चतुर्थसमाधिसूत्र : विशिष्ट समाधि भावना — पूर्वसूत्रवत्॥

३. श्रामण्यवर्ग —

१-८. उपर्युक्त एकादश धर्मों से विरहित कोई साधक चक्षु में दुःखानुपश्यना, अनात्मानुपश्यना, क्षयानुपश्यना, व्ययानुपश्यना, विरागानुपश्यना, निरोधानुपश्यना, प्रतिनिसर्गानुपश्यना नहीं कर सकता॥

९-४८. श्रोत्र में..., घ्राण में..., जिह्वा में..., काया में..., मन में...प्रतिनिसर्गानुपश्यना नहीं कर सकता॥

४९-९६. रूपों में...शब्दों में...गन्धों में...रसों में...स्प्रष्टव्य विषयों में...धर्मों में...पूर्ववत्... ॥

९७-१४४. चक्षुर्विज्ञान में..., श्रोत्रविज्ञान में..., घ्राणविज्ञान में..., जिह्वाविज्ञान में..., कायविज्ञान में..., मनोविज्ञान में...पूर्ववत्॥

१४५-१९२. चक्षुःसंस्पर्श में...श्रोत्रसंस्पर्श में...घ्राणसंस्पर्श में..., जिह्वासंस्पर्श में...कायसंस्पर्श में...मनःसंस्पर्श में... ॥

१९३-२४०. चक्षुःसंस्पर्शज वेदना में..., श्रोत्रसंस्पर्शज वेदना में..., घ्राणसंस्पर्शज वेदना में..., जिह्वासंस्पर्शज वेदना में...कायसंस्पर्शज वेदना में...मनःसंस्पर्शज वेदना में... ॥

२४१-२८८. रूपसंज्ञा में..., शब्दसंज्ञा में..., गन्धसंज्ञा में..., रससंज्ञा में...स्प्रष्टव्यसंज्ञा में...धर्मसंज्ञा में... ॥

२८९-३३६. रूपसञ्चेतना में..., शब्दसञ्चेतना में..., गन्धसञ्चेतना में...रससञ्चेतना में...स्प्रष्टव्यसञ्चेतना में...धर्मसञ्चेतना में... ॥

३३७-३८४. रूपतृष्णा में...शब्दतृष्णा में..., गन्धतृष्णा में..., रसतृष्णा में..., स्प्रष्टव्यतृष्णा में..., धर्मतृष्णा में... ॥

३८५-४३२. रूपवितर्क में..., शब्दवितर्क में...; गन्धवितर्क में...; रसवितर्क में...; स्प्रष्टव्य वितर्क में...; धर्मवितर्क में... ॥

४३३-४८०. रूपविचार में...; शब्दविचार में...; गन्धविचार में...; रसविचार में...; स्प्रष्टव्य विचार में...; धर्मविचार में अनित्यानुपश्यी, दुःखानुपश्यी, अनात्मानुपश्यी, क्षयानुपश्यी, व्ययानुपश्यी, विरागानुपश्यी, निरोधानुपश्यी, प्रतिनिसर्गानुपश्यी नहीं हो पाता॥

४. रागपेय्याल (रागविस्तार) —

१. राग के अभिज्ञान के लिये इन एकादश धर्मों की साधना करनी चाहिये — १. प्रथम ध्यान, २. द्वितीय ध्यान, ३. तृतीय ध्यान, ४. चतुर्थ ध्यान, ५. मैत्रीचेतोविमुक्ति, ६. करुणा-चेतोविमुक्ति, ७. मुदिताचेतोविमुक्ति, ८. उपेक्षाचेतोविमुक्ति, ९. आकाशानन्त्यायतन, १०. विज्ञाना-नन्त्यायतन, ११. आकिञ्चन्यायतन॥

२-१०. राग के परिज्ञान के लिये...परिक्षय के लिये...प्रहाण के लिये...क्षय के लिये...व्यय के लिये...विराग के लिये...निरोध के लिये...त्याग के लिये...प्रतिनिसर्ग के लिये उपर्युक्त एकादश धर्मों की साधना करनी चाहिये॥

११-१७०. द्वेष के...मोह के...क्रोध के...उपनाह के...म्रक्ष के...प्रदाश के...ईर्ष्या के..., मात्सर्य के...माया के...शाठ्य के...स्तम्भ के...सारम्भ (उत्तेजना) के..., मान के..., अतिमान के..., मद के...प्रमाद के अभिज्ञान के लिये...पूर्ववत्..., परिज्ञा के लिये..., परिक्षय के लिये...प्रहाण के

लिये..., क्षय के लिये..., व्यय के लिये..., विराग के लिये... निरोध के लिये..., त्याग के लिये..., प्रतिनिसर्ग के लिये उपर्युक्त एकादश धर्मों की भावना करनी चाहिये॥

एकादशक निपात संक्षेप सम्पन्न॥

इस अङ्गुत्तरनिकायपालि में नौ हजार, पाँच सौ, सत्तावन सूत्र संगृहीत हैं — ऐसा धर्म-सङ्गीतिकारों का कथन है॥

॥ अङ्गुत्तरनिकाय का संक्षेप सम्पन्न॥



INTRODUCTION

I. The Pāli Tipiṭaka

After the passing away of the Buddha at Kusinārā, the disciples had assembled to pay their last homage to him. The Venerable Mahā Kassapa, the chief of the congregation, was delivering words of consolation to the bereaved assembly, reminding them of the declaration of the Buddha :—"It is the very nature of all things near and dear to us that we must divide ourselves from them." Subhadra, a monk who had received ordination in an advanced age, however, did not look gloomy. He took a perverted view of the situation and spoke—"Do not grieve, brothers, for now we are definitely released from the restraint of the Great Teacher and his too rigid discipline. While the Teacher lived, we were constantly rebuked for failing to observe the hard rules; but, now we are at liberty to do as we please; therefore, do not grieve." These words sounded a note of warning against the future possible distortion of the Dhamma at the hands of faithless members of a similar category. The Venerable Mahā Kassapa felt an urgent need for convening a Grand Council of the leading Elders of the Saṅgha to make a full collection of the teachings, and also to adopt means for their right preservation and transmission to posterity. He addressed the Bhikkhus thus :—"Come, friends, let us chant together the Dhamma and the Vinaya..." The Venerable Mahā Kassapa drew a list of five hundred names of the topmost disciples to be appointed as members of the Council. At first, the name of the Venerable Ananda was left out in view of the fact that he had not attained Arhat-hood till then. But, as no one else in the Saṅgha had the privilege of listening to the Teacher so very closely and for such a long period of time, his participation was deemed necessary and important. He was, consequently, asked to go to a suitable abode and develop insight, so as to become an Arhat and be able in time to join the Council. King Ajātasattu made necessary arrangements for the accommodation and convenience of the convention at Rājagaha, a favourite resort of the Teacher himself. A spacious beautiful pavilion was raised for the meeting art the entrance of the Sattapaṇṇi cave, on the northern side of the Vebhāra Hill.

Venerable Ānanda made the best efforts to train himself in developing insight. He kept walking up and down for the whole night absorbed in deep meditation; and, early in the morning, as he was going to stretch himself on the bed, his feet had left the ground and the

head had not reached the pillow, at that moment, as if by a flash of light, darkness was dispelled and the sublime light of saint-hood dawned upon him. And, through his miraculous superhuman power of an Arhat, he appeared all of a sudden on his appointed seat in the hall, as if emerging out of the ground, exactly as the proceedings were going to be started.

With the permission of the Saṅgha, Venerable Mahā Kassapa asked Upāli questions on Vinaya, relating to the different monastic transgressions; the matter, the occasion, the individuals concerned, the principal rules (paññatti), the amended rules (anupaññatti) and all other details about them. In this, the Vinaya text was agreed upon and settled. Then, again, with the permission of the Saṅgha, he asked Ānanda questions on the Dhamma; the occasion of a sermon and the person or persons with reference to whom it was preached. *[Cullavagga, Chapter xi.]*

The commentary, Aṭṭhakathā, of a much later date, assumes that the Abhidhamma-Piṭaka was also included in the collection of the Dhamma, and that the Tipitaka, as it is available to us, was finalised at this very stage. *[Sumaṅgalavilāsinī, Nidānakathā]*

A century after the passing away of the Buddha, a great controversy arose in the Saṅgha concerning the interpretation of some Vinaya rules. This necessitated the holding of the Second Council at Vesālī. Seven hundred leading Elders from distant parts of the country assembled to take part in it; and they had drawn up a new edition of the Scripture, resulting in the fixing up of the Piṭakas, Nikāyas, Aṅgas and Dhammakkhandhas. *[Cullavagga, Chapter xi.]*

A century after, when King Asoka embraced Buddhism and gave patronage to its propagation, the richly furnished monasteries became centres of attraction even for the members of other sects. They donned the yellow robe, either by proper ordination or stealthily, and went about as Bhikkhus enjoying the privileges and honour given to them. They could not, however, leave their own inclinations behind, and began to twist and distort the Doctrine in their own ways. This led to a state of confusion and it became difficult to distinguish the true principles from the coloured ones. The Elders felt the necessity of safeguarding the purity of the Dhamma by affecting a total purge of the alien elements in the philosophical life of the Saṅgha. This task was entrusted to the Venerable Moggaliputta Tissa, a saint, a thinker and a writer. He compiled a book called the Kathāvatthu, refuting all the for-

eign theories, which was adopted as a book of the Tipiṭaka at the Third Council held at Pāṭāliputta under his presidentship. After the council, Asoka dispatched missionaries to the then civilised parts of the world for a wide propagation of the Dhamma. *[Mahāvaṁsa, chapter v]*

Prince Mahinda and Princess Saṅghamittā renounced the world and joined the Order to lead a mission to Sīhaladīpa (Ceylon). Since then, the island became a stronghold of Buddhism, and, even up to this day, has maintained the tradition of Pāli Tipiṭaka with all religious zeal. *[Mahāvaṁsa, op. cit.]*

The following chart will show the distribution of books in the literature :—

TIPIṬAKA

Vinaya Pitaka	Sutta Piṭaka	Abhidhamma Piṭaka
1. Mahāvagga	1. Dīghanikāya	1. Dhammasaṅgaṇi
2. Cullavagga	2. Majjhimanikāya	2. Vibhaṅga
3. Pārājika	3. Saṁyuttanikāya	3. Dhātukathā
4. Pācittiya	4. Aṅguttaranikāya	5. Puggalapaññatti
5. Parivāra.	5. Khuddakanikāya which contains the following fifteen **books :—**	5. Kathāvatthu
	i. Khuddakapāṭha	6. Yamaka
	ii. Dhammapada	7. Paṭṭhāna
	iii. Udāna	
	iv. Itivuttaka	
	v. Suttanipāta	
	vi. Vimānavatthu	
	vii. Petavatthu	
	viii. Theragāthā	
	ix. Therīgāthā	
	x. Jātaka	
	xi. Niddesa	
	xii. Paṭisambhidāmagga	
	xiii. Apadāna	
	xiv. Buddhavaṁsa &	
	xv. Cariyāpiṭaka	

1. The Present Book

This big book, covering four volumes in our series, is the fourth *Nikāya* of the *Sutta Piṭaka*. The very name of the book, *'Aṅguttara'* reveals that the method of treatment in it is characterised by grouping numerical classifications of principles in the gradual ascending order. As far as the spirit and contents of its discourses are concerned, it is very much one with the other books of this *Piṭaka*. There are altogether eleven chapters in it, constituting so many groupings or *Nipātas*, making a collection of short *Suttas* arranged in divisions or *Vaggas*.

As an important book like the *Milindapañha* calls it by the name of *'Ekottara'*, it is evident that this title of it also must have been in vogue at a time or in a circle, which expresses a meaning not different from that of *'Aṅguttara'*. The Chinese translation of this book, in the collection of the Sanskṛt version of the *Tripiṭaka* of the *Sarvāstivāda* literally means the same as *'Ekottara.'*

This style of grouping numerical classifications of principles is not a new feature only of this *Nikāya*; though here it forms the chief basis of the composition of the entire work. The same method has been adopted at previous places, like—the *Saṅgītipariyāya Sutta* and the *Dasuttara Sutta* of the *Dīgha Nikāya*, the *Kumārapañha Sutta* of the *Khuddakapāṭha*, the *Theragāthā,* the *Therīgāthā*, the *Itivuttaka* and others. In the *Abhidhammapiṭaka* the method of such numerical classification becomes very prominent throughout. Specially, about the *Puggalapaññatti*, it can be asserted that it is so similar to the *Aṅguttara Nikāya*, that it is even possible to get the entire book assimilated in it without causing any loss either to the contents or the style.

The *Ṭhānaṅga Sutta* of the *Prākṛta Āgama* literature comes so near to the *Aṅguttara Nikāya*—in spirit, language, style and contents—that it would not even be improper to call it Jain edition of it. Even from the old Brahmanical literature, it is not difficult to collect portions parallel to these. It seems that during those days, when, for the preservation of their literary traditions, memory was a chief resort, this style of numerical classification was greatly helpful. Rather, it would be very valuable if a scholar undertakes to make studies in such numerical classifications on a comparative basis in the different traditions of Indian literature.

If we follow our usual plan in writing the introduction, as adopted in the previous volumes, we are committed to give a summary of the book at this place. But, it seems, it would be neither managable

nor profitable to do that in the case of this book, containing as many as 2308 small *Suttas*. The best we can do here is to give a cursory bird's eye view of it, as one would open it here and there.

VOLUME I

Ekaka Nipāta

(Collection of classifications by one)

One thing is very strong that arrests the heart of a man or woman—the form or sound of the opposite sex. [N.Vol.1,1]

** ** **

One thing leads to the arising of the 'hindrances'-a perverted thought. One thing leads to the suppression of the same - a disciplined thought. [N.4-5]

** ** **

One thing is restless most of all—our own mind. [N.6]

** ** **

The mind in itself is pure and bright; it is due to the foreign impurites that it gets defiled. [N.10]

** ** **

One thing—Loving kindness *(Mettā)*—practised even for the action of a second—yields great merit. [N.10]

** ** **

One thing—association with the noble—yields great results.

** ** **

One thing must be developed with vigilence—wisdom; for, it is much more valuable than wealth and property. [N.14]

** ** **

The only person who can turn the wheel of the *Dhamma* so well as the *Tathāgata* is *Sariputta*. [N.23]

** ** **

One who excells all in having long experience is *Añña Koṇḍañña* ... in wisdom is *Sāriputta* ... in having psychic powers is *Mahā Moggallana* ... in leading a coarse life is *Mahākassapa* ... in having supernatural vision is *Aniruddha* ... in coming from a high family is *Bhaddiya Kāligodhā* ... in having a sweet voice is *Lakuṇḍaka* ... in making roarous proclaimation is *Piṇḍola Bhāraduāja* ... in delivering sermons is *Maṇtāniputta* ... [N.23]

** ** **

The watery beings are far greater in number than those that live on land. Just, so, the number of other species is far greater than those who are born as human beings. Just so, the ignorant are far greater in number than those that are wise ... Just so, those that remain in bondage are far greater in number than those that are liberated.

2. Duka Nipāta

(Collection of classifications by two)

There are two evils of a bad action—of this world, and of the other. Due to a bad action one is subjected to reproach in the society and punishment in the court—this is the first; and, is born in a oweful state—this is the second. Man must be afraid of both, and refrain from committing a bad act. [N.46]

** ** **

There are two attitudes—gratefulness, and ungratefulness. A good man remains obliged to one who has done good to him—this is the first; and, a bad man does not remain such—this is the second.

** ** **

There are two, whose obligation one cannot be freed of—mother, and father. Even if one were to carry about one's mother and father on the head, nursing them as best as possible, there can be no freedom from their obligation. Such great is the obligation of mother and father. The only possibility of it is by helping them to see the truth and to follow the right path. [N.59]

** ** **

There are two statuses—of the elder, and of the youngster. This is not determined by the age of a person, but by the goodness one has.

** ** **

There are two conditions—of the criminal becoming powerful over the government, and of the government being powerful over the criminal. Just so, there are two conditions in the Order—of the bad monks becoming powerful over the good, and of the good monks being powerful over the the bad. [N.65]

** ** **

There are two states in an association—when the members remain undivided, and when there is a division amongst them. [N.66]

** ** **

There are two assemblies—that in which the members do not pay heed to a deep sermon on the *Dhamma*, but do that to a shallow

flowery lecture of a common speaker; and that in which the members do otherwise. [N.68]

** ** **

Two persons are born for the good of the many—the Perfectly Enlightened One and the *Cakkavattī* king. [N.71]

** ** **

Two persons do not get shaken at a sudden roar of the thunder—the Buddha, and a lion of the forest. ('The Buddha, because he is free from all egoism; and the lion, because his egoism is very strong).

** ** **

There are two states of blissfulness—that of the householder, and that of the homeless. The second is much superior to the first.

** ** **

There are two principles—mind, and matter. [N.77]

** ** **

There are two principles—shame in committing evil, and fear in it. [N.77]

** ** **

There are two fools—one who does not discharge a duty that is his own, and one who undertakes upon himself a duty that is of some one else. [N.78]

** ** **

Two hopes are difficult to give up—of gain., and of life. [N.80]

** ** **

Two persons are rare in this world—one who does first good to other, and one who remains grateful. [N.80]

** ** **

There are two gifts—of the articles, and of the Dhamma. The second is superior to the firsts. [N.84]

** ** **

There are two quests—of the things, and of the truth. The second is superior to the firsts.

Tika Nipāta

(Collection of classifications by three)

There are three places the king is always reminded of—of his birth, of his coronation, and of his victory. Just so, there are three places the *Bhikkhu* is always reminded of—of his ordination, of his

attainment of insight into the truth, and of his attainment of ultimate liberation. [N.98]

There are three persons—hopeless, hopeful; and free from hope. One who has no high ambition is the first; one who has it is the second; and one who has risen above all temptations—the saint—is the third. [N.99]

** ** **

Three things are essential for a good monk—mastery over the senses, moderation in food, and awakefulness. [N.104]

** ** **

There are three persons, whose obligation is very great—due to whom one gets faith in the Triple Gem, due to whom one gets the right view, and due to whom one is able to realise the ultimate freedom.

** ** **

There are three persons—like a rotting a sore on the body, like the lightening, and like a diamond. An easily irritable man is the first, who, like a rotting sore on the body, bursts forth being hurt even slightly. The second is one, who has got glimpse into the four noble truths, like a lightening in the sky, that makes visible all round in the dark. The *Arhat* is the third, who, like the diamond, does not get hurt by any external agency. [N.114]

** ** **

There are three persons—blind, one-eyed, and two-eyed. One who is neither wise in wordly dealings nor in a spirituality is blind of both the eyes. One who is wise in worldly dealings, but has no enterance in the spiritual life is blind of one eye. And one, who is wise in both, is like a two-eyed person. [N.118]

** ** **

There are three protections of the thief—a hiding in a place difficult to approach, a hiding in a thick jungle, and the sapport of the government authorities. [N.114]

** ** **

Kesamutti Sutta : '*0 Kālāmas*, not by heresay, not by tradition, not by customary, not by bookish authority, not by mere sophistry; not by an example, not by a grand form, not by the glamour of a philosophical view, not by grandeour, and not with the thought that one's teacher should be respected. But, *O Kālāmas*, be guided by your own knowledge and conviction'. [N.174]

** ** **

There are three trainings—in conduct, in concentration, and in insight. [N.212]

** ** **

One should realise the three—that there does exist pleasure in the world, that there are evils in it, and, that there is a freedom from the evils. [N.240]

** ** **

There are three persons—like the mark inscribed on stone, like the mark drawn on the ground, and like the mark drawn on the surface of water. The first is one whose anger is as strong as the mark inscribed on rock. The second is one whose anger is as short-lived as the mark drawn on the ground, which disappears quickly by wind or water. And, the third is one who does not get offended at all, like the mark that disappears out no sooner it is drawn on the surface of water. [N.263]

** ** **

There are three qualities of a true friend—readiness to offer whatever he has, readiness to render his best possible service, and not minding even a serious offences. [N.266]

VOLUME II

Catukka Nipāta

(Collection of classifications by four)

Four are the shortcomings in a judicial authority—giving decision by his own desire, by ill-will, by dullness, and by fear. [N.20]

** ** **

Four qualities are necessary for keeping others favourable to oneself—offering presents, sweet speech, assistance, and equal treatments. [N.35]

** ** **

There are four ways of disposing of a question—answered absolutely, answered with reservation, answered by a counter question, and by paying no heed to it. [N.48]

** ** **

There are four pervertions of a view—taking the transitory to be permanent, taking the miserable to be a bliss, taking the non-self to be self, and taking the dirty to be clean. [N.54]

** ** **

There are four defilements of the sun and the moon, due to which their brilliance get dulled—cloud, mist, dirt, and eclipse. [N.55]

** ** **

There are four marital relations--ugly with ugly, ugly with beautiful, beautiful with ugly, and beautiful with beautiful.

If both the husband and wife are immoral, it is a first type of the relation. If the wife is moral but the husband is not, it is the second type. If the husband is moral but the wife is not, it is the third type. And, if both of them are good, it is the fourth type. [N.61]

** ** **

Four gifts are given by one who makes a gift of food—life, beauty, happiness, and strength. [N.66]

** ** **

Four things are very rare—earning by fair means; fame, if earned by fair means; long life, if earned by fair means; and also having got fame; attainment of heaven, if the above conditions are fulfilled. [N.69]

** ** **

There are four families of the serpent-king—*Virūpakkha, Erāpatha, Chabyāputta,* and *Kaṇhāgotamaka*. One should developed loving kindness *(Mettā)* with them, and be safe from a danger from their side. [N.76]

** ** **

If the government is bad, the officers also become bad, the society becomes bad. Due to a bad state of affairs in the life of the world, there is a disturbance even in the natural agencies, which lead to a oweful state. [N.79]

** ** **

There are four qualities of a good man—he does not speak against others even being asked, he does readily speak in praise of others even without being asked, he discloses one's own fault even without being asked, and he feels shy in disclosing one's own merits even being asked. [N.81]

** ** **

There are four persons—dark destined to darkness, dark destined to light, light destined to darkness, and, light destined to light. The first person is one who is born in a low family, and is also given to immoral deeds. The second person is one who is born in a low family,

but is devoted to self discipline and a progressive life. The third person is one who is born in a high family, but is leading a bad life. And, the fourth person is one who is both born in a high family and is also leading a high life. [N.89]

** ** **

There are four clouds—that which thunders but does not rain, that which rains but does not thunder, that which neither thunders nor rains, and, that which both thunders and rains. Compared to these, there are four persons—one who speaks but does not act, one who acts but does not speak, one who neither speaks nor acts, and, one who does both act and speak.[N.107]

** ** **

There are four places that the devoted disciple should visit and get inspired where the Buddha was born, where he attained Perfect Enlightenment; where he turned the wheel of the *Dhamma*, and, where he got *Mahā Parinibbāna*.[N.126]

** ** **

There are four paths—difficult and slow, difficult but quick, easy but slow, and both easy and quick.[N.157]

** ** **

There are four originations—love from love, hatred from love, love from hatred, and hatred from hatred. One loves a man who loves him—this is the first. One hates a man who does ill of a person dear to him—this is the second. One loves him who is the enemy of his enemy—this is the third. One hates a man who hates him—this is the fourth.[N.226]

** ** **

There are four postures—the posture of a corpse, lying flat on the back; the posture of the sensual man, lying on the left side; the posture of the lion, lying on the right; and, the posture of the *Tathāgata*, absorbed in different stages of *Jhāna*.[N.259]

** ** **

Four things are greatly beneficial to a man—association of the noble, listening to a discourse on the *Dhamma*, right reflection, and a Dhammika life.[N.260]

** ** **

One, having the following four things in him, is destined to go to hell—commits a crime, encourages others to commit a crime, feels happy at a crime, and speaks in praise of a crime.[N.268]

Pañcaka Nipāta

There are five strengths of the learner *(Sekha)*—faith, shame in committing evil, fear in the same, energy, and insight.[N.273]

** ** **

Purity of life ensures right concentration, right concentration ensures insight and ultimate realisation, insight and ultimate realisation ensure detachment and renunciation, and, detachment and ultimate realisation ensure the realisation of emancipation.[N.273]

** ** **

There are five advantages in charity—love of people, association of the noble, name and fame, fulfilment of the duties of a householder, and birth in heaven hereafter.[N.306]

** ** **

There are five opportune charities—given to a visitor, given to one who is departing, given to an ailing patient, given during famine, and of a new yield of crop given to the unblamished monks.[N.307]

** ** **

There are five wealths—of faith, of purity in conduct, of learning, of renunciation, and, of wisdom.[N.318]

** ** **

One must constantly reflect on the five facts—that old age is sure to come, that disease is difficult to avoid, that there is an undoubted surity of death, that there is bound to be a separation from the near and dear ones, that one's own actions are the cause of one's state and destiny.[N.334]

** ** **

There are five soldiers—one who gets unnerved at the very sight of a battle from a distance, one who gets unnerved at the approach of the battle, one who gets unnerved when ordered to charge, one who get unnerved at the very attack of the enemy, and one who stands all these and is able to fight till the victory is won.[N.350]

** ** **

There are five factors that make a dacoit bold to carry on his crime—he is able to hide himself in an unapproachable place, he is able to hide himself in thick jungles, when caught he is able to get himself freed with the support of the ministers of the government, he is able to give big bribes and to get himself freed; and he carries on all alone without a partener.[N.384]

** ** **

These are the five qualities of an assistant accompaning monk—goes behind neither too far nor too close; holds what is put in the bowel, forbids while speaking undesirably, does not drop in while talking to some one else, is wise and sharp. [N.392]

** ** **

There are the five factors of a patient being easy to be waited upon—takes only that which is for the good of his health, is moderate in taking that, is ready to take medicine, is not shy in communicating his exact symptoms and, is able to bear the pain and agony of the disease. [N.398]

** ** **

There are the five requiste qualities of one, who waits upon a patient—is able to administer the medicine; knows what is good and what is bad for the patient; waits upon with a feeling of loving kindness, not with a greed of any gain; does not hesitate in removing the commode or the washing bowel of the patient; and, is able to deliver religious discourse to him from time to time. [N.399]

** ** **

These five factors are not conducive to the longevity of a man—takes that which is harmful, is not moderate in taking that which is healthy, is an over-eater, roams about untimely, is not controlled in the senses. [N.399]

** ** **

A devotional talk looks vain to the faithful, an ethical talk looks vain to the criminal, a learned talk looks vain to the ignorant, a talk on charity looks vain to the miser, and, a talk of wisdom looks vain to a fool. [N.430]

** ** **

The preacher should have the following five qualities in him—ability to make a speech gradualted, giving apt similes, compassion for the congregation, having no desire for fees, and, making the speech as Impersonal as possible. [N.434]

** ** **

Gotama had seen the following five dreams just before getting Buddha-hood—that he was sleeping flat on India, the Himalayas being his pillow, his right hand dipped the western sea, his left hand in the eastern sea, and the feet in the southern sea; that a certain kind of reeds sprang up from his navel and stood spreading on high in the sky; that a cluster of ants, of white body and black head, covered his feet up to the

knees; that birds of various colours come up to him from different directions and turned white at his feet; that he was walking on a hill of dung being unpolluted by it. [N.480]

** ** **

These are the five factors that make a speech good and perfect—spoken timely, consistently, softly, meaningfully, and, lovingly.

** ** **

There are five advantages in using a twig-stick as toothbrush—it is good for the eyes, it removes bad smell, the taste-buds get toned up, It avoids food being mixed up with cough or bile, and, It makes the food agreeable. [N.489]

** ** **

There are five faults in a chatterer—he speaks lie, he indulges in back-biting, his speech is rough; he goes on gossiping, is born in hell after death. [N.492]

** ** **

There are five evils in Madhurā (modern Mathura)—the land is uneven, it is full of dust, the dogs are fierce, there are evil spirits, and it is difficult to obtain alms. [N.494]

** ** **

There are five disadvantages in undertaking unnecessary long journeys—is unable to attend new lessons, is unable to revise the old lessons, is timid before others, is caught by some serious disease, and has no group of friends. [N.495]

** ** **

Just like the black serpent, the woman has five evils in her-excessive anger, revengefulness, poison, being doubletongued, and, unfaithfulnesss. [N.498]

VOLUME III

Chakka Nipāta

(Collection of classifications by six)

The following six are disadvantageous to a learner—having too much of business, gossiping, too much of sleep, having a large company, unrestraint in the senses, and, lack of moderation in foods. [N.46]

** ** **

There are six roots of action—Greed, ill will and dullness are the roots of bad actions; renunciation, kindness and wisdom are the roots of good actions. [N.54]

** ** **

Pūraṇa Kassapa has taught six classes of people—'greed-class' is of those who have a bad livelihood, 'blue-class' is of those who have a difficult livelihood, 'red-class' is of those who are the followers of *Nigaṇṭha.* [N.93]

** ** **

A monk who has the following six qualities in him is sure to make progress in spirituality—contentedness, devotion, purity of character, energy, mindfulness and wisdom. [N.135]

** ** **

There are the six impossibilities—that the person of right view would have disregard for the Buddha, for the *Dhamma;* for the *Saṅgha,* for the teaching, would fall in a woeful state, and would take on eighth births. [N.139]

Sattaka Nipāta

(Collection of classifications by seven)

These are the seven strengths—faith, energy, modesty, discretion, mindfulness, concentration, and insight. [N.152]

** ** **

There are the seven points in the Vajjis that make them undefeatable—assembling together very often, assembling together with unanimity, not breaking their tradition, respecting their superiors, not misbehaving with the girls and ladies of the community, worshipping their shrines, and giving protection to the saints. [N.163]

** ** **

There are the seven points that lead a lay disciple to prosper—does not neglect visiting the monks, listens to the religious discourse, trains himself in good conduct, is strong in devotion, does not indulge in seeing faults of the monks, does not look elsewhere for guidance, and offers his services for the good of the Order. [N.173]

** ** **

These are the seven qualities of a true friend—is ready to make his best sacrifice, is ready to render his best services, does not mind a fault of his, reveals the hidden to him, keeps his secrecy, does not

desert during adversity, and keeps regards for him even when he is striken by poverty. [N.177]

** ** **

Seven are the assessories of *Samādhi*—right view, right resolution, right speech, right action, right livelihood, right effort, and right mindfulness. [N.184]

** ** **

Aggī Sutta, : gives a description of bloody sacrifice, at which thousands of animals were brought near the sacrificial post for being slaughtered. The Buddha gave a spiritual interpretation of the procedure of the sacrifice, and converted the *Brāhmaṇa.* [N.184]

** ** **

There are seven kinds of wives—like an executioner, like a thief, like a grand mother, like a mother, like a sister, like a friend, and like a servant. A bad wife, having connection with someone else, ready even to murder her husband is the first. The wife who always tries to get money and ornaments from her husband, and is never ready to give him any from it—is the second. The wife who is lazy, inactive, easily irritable, and keeps her husband in hard control—is the third. The wife who is full of compassion for her husband—is the fourth. The wife who has great regards for her husbands the fifth. The wife who is faithful and friendly—is the sixth. And the wife who is always afraid of her husband, standing in obedience—is the seventh. [N.223]

** ** **

There are seven arrangements in a frontier city—a strong post at the gate, deep and wide mote all round, high and wide road all round, collection of arms, military cantonment, clever gate-keeper, high and wide boundary wall running all round. [N.234]

Aṭṭhaka Nipāta

(Collection of classifications by eight)

There are eight advantages in the practice of loving kindness *(Metta)*—sleeps peacefully, awakes peacefully, has no bad dreams, becomes lovable to men, the same to spirits, the gods give protection, fire or poison or weapon can do no harm, is atleast born in the plane of the Brahmas. [N.270]

** ** **

There are eight ways of the world—gain, loss, fame, blame, dispraise, praise, pleasure and pain. [N.275]

** ** **

Sīha Sutta : Narrates the conversion of the famous *Nigaṇṭha* disciple—Captain Sīha. [N.293]

** ** **

There are eight 'impurities-non-revision is the impurity of a memorised stanza, lack of upkeep is the impurity of a building, sloth is the impurity of beauty, negligence is the impurity of a watch-man, misconduct is the impurity of the wife, misery is the impurity of the charitable, evil deeds are the impurity of this world and the next, and ignorance is the worst of all impurities. [N.305]

** ** **

Woman has the following eight ways to entangle the heart of man—weeping, smiling, talking, moving on one side, twisting the brows, perfumes, offering good food and touchings. [N.306]

** ** **

There are eight wonderful points in the ocean-gradual depth, not rising beyond the shore, not betting a corpse stagnate in it, accommodating the water falling from the different rivers, constancy of volume, unity of saltish taste, treasure of all percious stones, and abode of huge beings. [N.313]

** ** **

There are eight kinds of gift—given due to attachment, given due to some hope from him, given considering it to be good, given to the monks thinking it to be proper, given for fame, and given for self purification. [N.336]

** ** **

As the seeds do not take root in a ground faulty in eight ways, so the charity does not yield good resultant that is given to one who is underserving in eight ways. [N.337]

VOLUME IV

Navaka Nipāta

(Collection of classifications by nine)

Four strengths beget freedom from five fears. The four strengths are—wisdom, energy, unblemishness and winning people in

favour. The five fears that are got rid of by these are—fear of livelihood, of bad name, of people going against, of death, and of falling in a bad state. [N.12-14]

** ** **

There are nine *person-Arhat;* one who is on the path of Arhathood; *Anāgāmī;* one who is on the path of the realisation of the fruition of *Anāgāmi; Sakadāgāmi;* one who is on the path of the realisation of the fruition of it; *Ṣotāpanna;* one who is on the path of the realisation of the fruition of it; and the *Puthujjana.* [N.19-20]

** ** **

These nine reflections; if developed and cultured, yield great results—reflection over the impurities of one's own body, over death, over abominableness of food, over non-attachment towards the world, over transitoriness, over all transitory states being misery, over all miserable states being non-substance, over the feelings of getting rid of, and, over renunciations. [N.32]

** ** **

The family having the following nine manners must not be visited by the monks—that does not greet respectfully, that does not pay due regard, that does not offer honourable seats, that does not give recognition to existing qualities, that offers little even if it is plenty, that offers bad things even if it has good, that offers with disregard, that does not come near, and that does not pay heed to the *Dhamma* that is being preached. [N.32]

** ** **

These are the nine considerations that cause one to get hurt—that he did harm to me, that he does harm to me, that he will do harm to me, that he did harm to my dear one, that he does harm to my dear one, that he will do harm to my dear one, that he did good to my enemy, that he does good to my enemy, and that he will do good to my enemy. [N.48]

** ** **

These are the nine graduated cessation—worldly desires cease in him who has got the First *Jhāna,* mental application cease in him who has got the Second *Jhāna,* thrill ceases in him who has got the third *Jhāna,* respiration ceases in him who has got the Fourth *Jhāna,* sense of *Rūpa* ceases in him who has got the *Ākāsānañcāyatana,* sense of space ceases in him who has got the *Viññāṇañcāyatana,* sense of consciousness ceases in him who has got the *Ākiñacaññāyatana,* sense

of nothingness ceases in him who has got *Nevasaññānāsaññāyatana*, cognition and affection cease in him who has got *Saññāvedayitanirodha*. [N.49]

** ** **

With the help of the simile of a young calf taking a jump in an unknown direction and thus falling off, it has been taught that, in the process of a meditative practice, one should not be impatient to take a step further, without first getting firmness in the acquired stage. [N.57]

** ** **

Nibbāna is realised with a concentration, atleast as strong as that of the first stage of *Jhāna*. It is much better if the concentration is of the strength of the higher stages. [N.61]

Dasaka Nipāta

(Collection of classifications by ten)

Purity of character generates non-repentedness; that generates joy; that generates thrill; that generates tranquility; that generates ease; that generates concentration; that generates insight; that generates detachment; that ensures the realisation of emancipation. [N.98]

** ** **

A man of impure character is repentful. A repenting man has no joy. Without joy there is no thrill. Without thrill there is no tranquility. Without tranquility there is no ease. Without ease there is no right concentration. Without right concentration there is no realisation of the truth. Without realisation of the truth, there is no detachment. Without detachment there is no realisation of Emancipation. [N.101]

** ** **

It would be very fruitful if a *Bhikkhu*, having the five qualities in him, dwells in an abode suitable in five ways. [N.109]

** ** **

There are ten fetters, that keep a being in the bondage of birth & death—static view of existence *(sakkāyadiṭṭhi)*, doubt *(vicikicchā)*, indulgence in rituals thinking that the performance of these would yield liberation *(sīlabbataparāmāsa)*, desire *(kāmacchanda)*, ill-will *(byāpāda)*, attachment for the blissful states of the *Rūpa Thāna*, for the *Arūna Thāna*, egoism, distractedness, and ignorance. [N.111]

** ** **

The universe is thousands of times bigger than this system in which there move the sun and the moon. The plane of *Mahā Brahmā* is

the highest of all. Even that is not beyond the limitation of the law of transitoriness. One should develop non-attachment even towards that.

** ** **

The *Tathāgata* has laid down the rules of *Pātimokkha* with a view to the following ten purposes—for the well being of the Order, for the convenience of the Order, for restraining the rough, for the destruction of the evils hereafter, for generating faith in the faithless, for developing faith in the faithful, for the long life of the *Dhamma*, and in the best interest of the Discipline. [N.154]

** ** **

A Bhikkhu must avoid entering the inner compartments of the royal palace, for the following ten considerations—a smile on his face in the presence of the queen might be misunderstood by the king; the king right suspect him of having caused conception in the queen, forgetting that it was actually done by himself; he might get involved unnecessarily in a case of theft; he might be suspected of having divulged the secrecy of the government etc. [N.163]

Ekādasaka Nipāta

(Collection of classifications by eleven)

There are eleven merits in loving kindness *(Mettā)*—he sleeps peacefully, gets up peacefully, does not see a bad dream, he wins the love of men, of the spirits, the gods give protection, is not harmed by fire or poison or weapon, attains concentration easily, gets a glowing face, has a peaceful death, and atleast he attains to the plane of *Brahma.* [N.383]

3. The Present Edition

This presents a co-ordinated edition in Devanāgarī of the *Aṅguttara Nikāya* of the *Sutta Piṭaka* based on the following versions of the text-Burmese, Chaṭṭha-saṅgāyana publication, 1956; Siamese, Mahāmakuṭa Government publication, 1926; Sinhalese, edited by Siri Devamitta Mahānāyaka Thera, 1929; and Roman, edited by Rev. Richard Morris (P.T.S. 1885.)

For preparing our MSS, we have adopted the Ghaṭṭhasangāyana edition as our basic text, an edition that has been brought out by the efforts and sanction of an international Saṅgha constituting of the zealous holders of the orthodox Theravada tradition. Very often, we have agreed in selecting the readings and in paragraph-arrangement; but, we

have broken new grounds by providing a system of headings and sub-headings and adopting a method of punctuation, thereby making the text more useful for the modern reader.

(a) Headings

In the old-fashioned books, no headings have been given in the beginning of a section. Instead, it is at the end that we have words like...*niṭṭhitaṁ*. But, to the modern reader, this presents a difficulty in forming a complete picture of the text as an organic unity. We have, therefore, ventured to provide headings, numbered and arranged, with the purpose of bringing to relief the order and sequence in the parts of it. As far as possible, the headings have been constructed with words picked up from the body of the text, the chief objective being to indicate at the outset what does the section contain. Our readers should note that they have been supplied by us and that they do not belong to the original text.

(b) Selection of readings

In selecting a reading for our text out of the variants available, philological justification, no doubt, has been the chief consideration; but, at the same time, we have not lost sight of the importance of the historical usage. When different forms are both grammatically correct and current in use, we have put one in the text and mentioned the others in the footnotes. In such cases, selection of one form does not mean the rejection of others.

(c) Punctuation marks

Originally, no punctuation marks were used in Pāli, except, perhaps, one for full-stop. The Siamese edition has followed the same tradition. But, as the syntax of Pāli is, at times, so very difficult and complicated, the use of the modern marks of punctuation is decidedly advantageous in making out the meaning explicit and in bringing out clearly the inter-connections between the different constituent clauses and phrases, which, in their absence, would have remained obscure, if not misleading. We have, therefore, used all the modern marks freely, not in a mechanically rigid manner; but, only with a view to facilitating the correct understanding of the sentences. And in this, we have tried to be systematic and consistent.

The following marks have been used—full-stop of Devanāgarī (।); comma (,); Colon (:); semicolon (;); note of interrogation (?); note of interjection (!); hyphen (-); dash (—); double inverted commas (" "); and single inverted commas (' ').

(d) Abbreviations

In the foot-note, the abbreviation सी० stands for the Sinhalese edition, स्या० for the Siamese edition, रो० for the Roman edition and म० for the Burmese edition.

In the margin, the abbreviation 'R' stands for the Roman, and 'B' for the Burmese and 'N' for the Devanāgarī editions. They indicate that the page number put by its side begins from that line. Reference to the page numbers of the Roman edition will facilitate the use of the P.T.S. Pāli English Dictionary, as well as other modern publications in or on Pāli, in which references are made to the books of the Roman edition.

(e) Spelling

About the mode of our spelling, it is necessary to note that we have generally treated the indeclinable particles *va,* pi and *ti* as independent words, as the initial vowels of *eva,* api and *iti* are very often dropped in Pāli.

The Parasavarṇa combination has essentially been made when occuring in the same words, *as—Saṅgha, Kiñci, Pañca* etc. At other places, this combination has been generally avoided *as-evaṁ pi, kammaṁ ti* etc. But, to show that the other forms are also grammatically valid, we have on occasions, used this form also—*evampi, kammanti* etc.

Some western editors have accepted the same method of spelling; but, in cases where *'ti'* is preceded by *'i'* or *'pi'* by *'a'* they have applied the Sanskrit rule of sandhi—*akaḥ savarṇe dīrghaḥ;* and have spelt the indeclinable particles together with the preceding words; as—*desesīti* and *tassāpi.* But, in such cases also, we have spelt them separately, as—*desesī ti* and *tassā pi.* The lengthening of the preceding vowels before *ti* and *pi* may well be explained by the rule—*Byañjane dīgharassā* (Moggallāna 1.33), which allows lengthening of a short vowel, if it precedes a consonant; as in—*muni+care=munī care; Khanti+paramaṁ=Khantī paramaṁ; Gotama*+ti=*Gotomā ti; Hoti+ti=Hotī ti.*

●

अङ्गुत्तरनिकायपालि

(एकक-दुक-तिकनिपाता)

सुत्तसूची

THE PĀLI ALPHABET IN DEVNĀGARĪ AND ROMAN CHARACTERS

VOWELS

अ = a आ = ā इ = i ई = ī उ = u ऊ = ū ए = e ओ = o

CONSONANTS WITH VOWEL "A"

क ka	ख kha	ग ga	घ gha	ङ ṅa
च ca	छ cha	ज ja	झ jha	ञ ña
ट ṭa	ठ ṭha	ड ḍa	ढ ḍha	ण ṇa
त ta	थ tha	द da	ध dha	न na
प pa	फ pha	ब ba	भ bha	म ma
य ya	र ra	ल la	व va	स sa
	ह ha	ळ ḷa	अं aṁ	

VOWELS IN COMBINATION

क ka	का kā	कि ki	की kī	कु ku	कू kū	के ke	को ko
ख kha	खा khā	खि khi	खी khi	खु khu	खू khū	खे khe	खो kho

CONJUNCT-CONSONANTS

क्क kka	ञ्च ñca	द्व dva	म्ब mba
क्ख kkha	ञ्छ ñcha	ध्य dhya	म्भ mbha
क्य kya	ञ्ज ṅja	ध्व dhva	म्म mma
क्र kra	ञ्झ ṅjha	न्त nta	म्य mya
क्ल kla	ट्ट ṭṭa	न्त्व ntva	म्ह mha
क्व kva	ट्ठ ṭṭha	न्थ ntha	य्य yya
ख्य khya	ड्ड ḍḍa	न्द nda	य्ह yha
ख्व khva	ड्ढ ḍḍha	न्द्र ndra	ल्ल lla
ग्ग gga	ण्ट ṇta	न्ध ndha	ल्य lya
ग्घ ggha	ण्ठ ṇṭha	न्न nna	ल्ह lha
ग्य gya	ण्ड ṇḍa	न्य nya	व्ह vha
ग्र gra	ण्ण ṇṇa	न्ह nha	स्त sta
ङ्क ṅka	ण्ह ṇha	प्प ppa	स्त्र stra
ङ्ख ṅkha	त्त tta	प्फ ppha	स्न sna
ङ्ग ṅga	त्थ ttha	प्य pya	स्य sya
ङ्घ ṅgha	त्व tva	प्ल pla	स्स ssa
च्च cca	त्य tya	ब्ब bba	स्म sma
च्छ ccha	त्र tra	ब्भ bbha	स्व sva
ज्ज jja	द्द dda	ब्य bya	ह्म hma
ज्झ jjha	द्ध ddha	ब्र bra	ह्व hva
ञ्ञ ñña	द्य dya	म्प mpa	ळ्ह ḷha
ञ्ह ñha	द्र dra	म्फ mpha	

ा = ā ि = i ी = ī ु = u ू = ū े = e ो = o

1	2	3	4	5	6	7	8	9	0
१	२	३	४	५	६	७	८	९	०

सुत्तपिटक

अङ्गुत्तरनिकायपालि

[हिन्दीअनुवादसहित]

(एकक-दुक-तिकनिपात)

❁ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ❁

अङ्गुत्तरनिकायपालि

१. एककनिपातो

१. रूपादिवग्गो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N. vol. I, 3, B. vol. I, 1, R. vol. I, 1] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि— ''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकरूपं पि समनुपस्सामि यं एवं पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, इत्थिरूपं। इत्थिरूपं, भिक्खवे, पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठती'' ति॥

२. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकसद्दं पि समनुपस्सामि यं एवं पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, इत्थिसद्दो। इत्थिसद्दो, भिक्खवे, पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठती'' ति॥

३. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकगन्धं पि समनुपस्सामि यं एवं पुरिसस्स चित्तं

❁ उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम ❁

अङ्गोत्तरनिकायपालि

१. एकक निपात

१. रूपादि वर्ग

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के जेतवन-स्थित अनाथपिण्डिक (श्रेष्ठी) द्वारा निर्मापित विहार (आराम=साधनास्थल) में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ (कभी) भगवान् ने भिक्षुओं को ''भिक्षुओ!'' सम्बोधन कर अपने सम्मुख बुलाया। ''हाँ, भन्ते!'' कहकर वे भिक्षु भगवान् के सम्मुख आये। भगवान् ने उनको यह उपदेश आरम्भ किया—

''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा कोई दूसरा एक भी आकार=**रूप** नहीं देखता, जो पुरुष के चित्त को अपनी ओर इतना अधिक आकृष्ट करता हुआ उसे निगृहीत कर बैठता है, जैसा यह किसी स्त्री का आकार (रूप) किसी पुरुष के चित्त को आकृष्ट कर निगृहीत कर बैठता है॥

२. ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा कोई दूसरा एक भी **शब्द** नहीं ...पूर्ववत्... जैसा यह किसी स्त्री का शब्द किसी पुरुष के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट करने की सामर्थ्य रखता है॥

३. ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसी कोई दूसरी एक भी **गन्ध** नहीं ...पूर्ववत्... जैसी यह किसी स्त्री की गन्ध किसी पुरुष-चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है॥

परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, इत्थिगन्धो। इत्थिगन्धो, भिक्खवे, पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठती'' ति॥

[R. 2] ४. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकरसं पि समनुपस्सामि यं एवं पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, इत्थिरसो। इत्थिरसो, भिक्खवे, पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठती'' ति॥

५. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकफोट्ठब्बं पि समनुपस्सामि यं एवं पुरिसस्स चित्तं
[B. 2] परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, इत्थिफोट्ठब्बो। इत्थिफोट्ठब्बो, भिक्खवे, पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठती'' ति॥

६. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकरूपं पि समनुपस्सामि यं एवं इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, पुरिसरूपं। पुरिसरूपं, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठती'' ति॥

[N.4] ७. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकसद्दं पि समनुपस्सामि यं एवं इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, पुरिससद्दो। पुरिससद्दो, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठती'' ति॥

८. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकगन्धं पि समनुपस्सामि यं एवं इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, पुरिसगन्धो। पुरिसगन्धो, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठती'' ति॥

९. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकरसं पि समनुपस्सामि यं एवं इत्थिया चित्तं

---

४. ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा कोई दूसरा एक भी **रस** (स्वाद) नहीं ...पूर्ववत्... जैसा यह किसी स्त्री का स्वाद किसी पुरुष-चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है॥

५. ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा कोई दूसरा एक भी **स्पर्श** नहीं ...पूर्ववत्... जैसा यह किसी स्त्री का स्पर्श किसी पुरुष-चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है॥ (क)

६. ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा कोई दूसरा एक भी **आकार** (रूप) नहीं देखता जो किसी स्त्री के चित्त को अपनी ओर इतना अधिक आकृष्ट करता हुआ उसे निगृहीत कर लेता हो जैसा यह किसी पुरुष का आकार (रूप) किसी स्त्री के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे निगृहीत कर बैठता है॥

७. ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा कोई दूसरा एक भी **शब्द** नहीं ...पूर्ववत्... जो किसी स्त्री के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे निगृहीत कर बैठता है॥

८. ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसी कोई एक भी अन्य **गन्ध** नहीं ...पूर्ववत्... जो किसी स्त्री के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे निगृहीत कर बैठता है॥

९. ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा कोई एक भी दूसरा **स्वाद** (रस) नहीं ...पूर्ववत्... जो किसी स्त्री-चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे निगृहीत कर बैठता है॥

परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, पुरिसरसो। पुरिसरसो, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठती'' ति॥

१०. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकफोट्ठब्बं पि समनुपस्सामि यं एवं इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठति यथयिदं, भिक्खवे, पुरिसफोट्ठब्बो। पुरिसफोट्ठब्बो, भिक्खवे, इत्थिया चित्तं परियादाय तिट्ठती'' ति॥ ●

२. नीवरणप्पहानवग्गो

१. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्नो वा [R.3] कामच्छन्दो उप्पज्जति उप्पन्नो वा कामच्छन्दो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, सुभनिमित्तं। सुभनिमित्तं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो चेव कामच्छन्दो उप्पज्जति उप्पन्नो च कामच्छन्दो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती'' ति॥

२. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्नो वा [B.3] ब्यापादो उप्पज्जति उप्पन्नो वा ब्यापादो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पटिघनिमित्तं। पटिघनिमित्तं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो चेव ब्यापादो उप्पज्जति उप्पन्नो च ब्यापादो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती'' ति॥

३. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्नं वा थीनमिद्धं उप्पज्जति उप्पन्नं वा थीनमिद्धं भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अरति तन्दि विजम्भिता भत्तसम्मदो चेतसो च लीनत्तं। लीनचित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्नं चेव थीनमिद्धं उप्पज्जति उप्पन्नं च थीनमिद्धं भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती'' ति॥ [N.5]

---

१०. ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा अन्य कोई एक भी **स्पर्श** नहीं ...पूर्ववत्... जो किसी स्त्री-चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे वश में कर लेता है॥''(ख) **रूपादिवर्ग प्रथम सम्पन्न**॥ ●

२. नीवरणप्रहाणवर्ग

१. ''भिक्षुओ! मैं लोक में इससे बढ़कर ऐसा कोई एक भी दूसरा धर्म नहीं देखता हूँ, जिससे एक भी कामराग उत्पन्न हो पाता हो, या उत्पन्न कामराग आगे किसी प्रकार की वृद्धि कर पाता हो, जैसा कि इस पुद्गल का किसी वस्तु में सौन्दर्य (शुभनिमित्त) का आरोप कर उसके प्रति आकृष्ट होना। भिक्षुओ! उसके द्वारा इस शुभनिमित्त की वास्तविकता न पहचान पाने के कारण उसका अनुत्पन्न कामराग उत्पन्न हो जाता है, और उस उत्पन्न कामराग की वृद्धि एवं पुनः पुनः उत्पत्ति होने लगती है॥

२. ''भिक्षुओ! मैं लोक में इससे बढ़कर ऐसा कोई एक भी ...पूर्ववत्... जिससे अनुत्पन्न व्यापाद (क्रोध या द्वेष) उत्पन्न हो पाता हो या ...पूर्ववत्... पुनः पुनः उत्पत्ति होने लगती है॥

३. ''भिक्षुओ! मैं लोक में इससे बढ़कर ऐसा कोई एक भी ...पूर्ववत्... जिससे अनुत्पन्न स्त्यान-मृद्ध (शारीरिक आलस्य) उत्पन्न होने लगता हो या उसकी पुनः पुनः वृद्धि होने लगती हो, जैसा कि भिक्षुओ! यह कर्म में अनुत्साह, तन्द्रा, जम्हाई आना या भोजन करने से उत्पन्न आलस्य

४. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्नं वा उद्धच्चकुक्कुच्चं उप्पज्जति उप्पन्नं वा उद्धच्चकुक्कुच्चं भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चेतसो अवूपसमो। अवूपसन्तचित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्नं चेव उद्धच्चकुक्कुच्चं उप्पज्जति उप्पन्नं च उद्धच्चकुक्कुच्चं भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती" ति।

[R.4] ५. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा विचिकिच्छा उप्पज्जति उप्पन्ना वा विचिकिच्छा भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसिकारो। अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना चेव विचिकिच्छा उप्पज्जति उप्पन्ना च विचिकिच्छा भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती" ति॥

६. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्नो वा कामच्छन्दो नुप्पज्जति उप्पन्नो वा कामच्छन्दो पहीयति यथयिदं, भिक्खवे, असुभनिमित्तं। असुभनिमित्तं, भिक्खवे, योनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नं चेव कामच्छन्दो नुप्पज्जति उप्पन्नो च कामच्छन्दो पहीयती" ति॥

७. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्नो वा ब्यापादो नुप्पज्जति उप्पन्नो वा ब्यापादो पहीयति यथयिदं, भिक्खवे, मेत्ता चेतोविमुत्ति। मेत्तं, भिक्खवे, चेतोविमुत्तिं योनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो चेव ब्यापादो नुप्पज्जति उप्पन्नो च [B.4] ब्यापादो पहीयती" ति॥

एवं चित्त का सङ्कोच (लीनता) होता है। इन दुर्गुणों से युक्त प्राणी का, भिक्षुओ! अनुत्पन्न स्त्यानमृद्ध उत्पन्न होने लगता है तथा उत्पन्न हुआ वह पुनः पुनः बढ़ने लगता है॥

४. "भिक्षुओ! मैं लोक में इससे बढ़कर ऐसा कोई एक भी ...पूर्ववत्... जिससे अनुत्पन्न औद्धत्य कौकृत्य (मन की चञ्चलता एवं पश्चात्ताप) उत्पन्न होने लगे या उत्पन्न होकर पुनः पुनः वृद्धिङ्गत होने लगे; जैसी कि यह चित्त की अशान्ति। भिक्षुओ! अशान्तचित्त पुद्गल का अनुत्पन्न औद्धत्य कौकृत्य उत्पन्न होने लगता है तथा उत्पन्न होकर पुनः पुनः वृद्धिङ्गत होने लगता है॥

५. "भिक्षुओ! मैं लोक में इससे बढ़कर ऐसा कोई एक भी ...पूर्ववत्... जिससे अनुत्पन्न विचिकित्सा (सन्देह) उत्पन्न होने लगे या उत्पन्न होकर पुनः पुनः बढ़ने लगे; जैसा कि भिक्षुओ! किसी पुरुष का किसी वस्तु के लिये सूक्ष्म विश्लेषण (योनिशः मनस्कार) न करना। भिक्षुओ! इस अयोनिशः मनस्कार वाले पुद्गल की अनुत्पन्न विचिकित्सा उत्पन्न होने लगती है, तथा वह उत्पन्न होकर पुनः पुनः बढ़ने लगती है॥ (क)

६. "भिक्षुओ! मैं लोक में ...पूर्ववत्... जिससे अनुत्पन्न कामराग उत्पन्न न हो तथा उत्पन्न कामच्छन्द प्रहीण हो जाय, जैसा कि भिक्षुओ! यह किसी वस्तु में सौन्दर्य (शुभ) का आरोप न करना (अशुभनिमित्त)। भिक्षुओ! इस अशुभ निमित्त का सूक्ष्मतया चिन्तन करने वाले प्राणी का अनुत्पन्न कामराग उत्पन्न नहीं हो पाता, तथा उत्पन्न हुआ कामराग भी प्रहीण होने लगता है॥

७. "भिक्षुओ! मैं लोक में ...पूर्ववत्... जिससे अनुत्पन्न व्यापाद... जैसा कि भिक्षुओ! इस

८. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्नं वा थीनमिद्धं नुप्पज्जति उप्पन्नं वा थीनमिद्धं पहीयति यथयिदं, भिक्खवे, आरम्भधातु निक्कमधातु परक्कमधातु। आरद्धविरियस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्नं चेव थीनमिद्धं नुप्पज्जति उप्पन्नं च थीनमिद्धं पहीयती" ति॥

९. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्नं वा उद्धच्च-कुक्कुच्चं नुप्पज्जति उप्पन्नं वा उद्धच्चकुक्कुच्चं पहीयति यथयिदं, भिक्खवे, चेतसो [N.6] वूपसमो। वूपसन्तचित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्नं चेव उद्धच्चकुक्कुच्चं नुप्पज्जति उप्पन्नं च उद्धच्चकुक्कुच्चं पहीयती" ति॥

१०. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा [R.5] विचिकिच्छा नुप्पज्जति उप्पन्ना वा विचिकिच्छा पहीयति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारो। योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना चेव विचिकिच्छा नुप्पज्जति उप्पन्ना च विचिकिच्छा पहीयती" ति॥ ●

३. अकम्मनियवग्गो

१. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं अभावितं अकम्मनियं होति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं अकम्मनियं होती" ति॥

मैत्रीचेतोविमुक्ति की भावना करते हुए प्राणी के चित्त में व्यापाद उत्पन्न नहीं हो पाता, तथा किसी कारण से उत्पन्न हुआ व्यापाद प्रहीण (नष्ट) होने लगता है॥

८. "भिक्षुओ! मैं लोक में ...पूर्ववत्... जिससे अनुत्पन्न स्त्यानमृद्ध... जैसी कि, भिक्षुओ! आरम्भधातु, निष्क्रमधातु एवं पराक्रमधातु का अभ्यास। भिक्षुओ! कुशल के लिये वीर्य आरम्भ करने वाले प्राणी का अनुत्पन्न स्त्यानमृद्ध उत्पन्न नहीं हो पाता, तथा पूर्व उत्पन्न स्त्यानमृद्ध भी प्रहीण होने लगता है॥

९. "भिक्षुओ! मैं लोक में ...पूर्ववत्... जिससे अनुत्पन्न औद्धत्य कौकृत्य... जैसी कि भिक्षुओ! चित्त की यह शान्ति। भिक्षुओ! शान्तचित्त प्राणी का अनुत्पन्न औद्धत्य कौकृत्य उत्पन्न नहीं हो पाता; तथा किसी कारण से पूर्व उत्पन्न औद्धत्य कौकृत्य भी प्रहीण होने लगता है॥

१०. "भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा कोई दूसरा धर्म नहीं देखता, जिससे अनुत्पन्न विचि-कित्सा उत्पन्न न हो तथा उत्पन्न विचिकित्सा (संशय) भी प्रहीण हो जाय। जैसा कि, भिक्षुओ! चित्त का यथार्थ चिन्तन (योनिशः मनस्कार)। भिक्षुओ! कुशल के लिये यथार्थ चिन्तन करने वाले प्राणी की अनुत्पन्न विचिकित्सा उत्पन्न नहीं हो पाती, तथा उत्पन्न विचिकित्सा भी प्रहीण होने लगती है॥

नीवरणप्रहाणवर्ग द्वितीय सम्पन्न॥ ●

३. अकमनीयवर्ग

१. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा एक भी धर्म नहीं देख पा रहा हूँ जो अनिगृहीत चित्त के

२. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं भावितं कम्मनियं होति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भावितं कम्मनियं होती" ति॥

[B.5] ३. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं अभावितं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं महतो अनत्थाय संवत्तती" ति॥

४. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं भावितं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भावितं महतो अत्थाय संवत्तती" ति॥

५. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं अभावितं अपातुभूतं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं महतो अनत्थाय संवत्तती" ति॥

[R.6] ६. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं भावितं पातुभूतं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भावितं पातुभूतं महतो अत्थाय संवत्तती" ति॥

७. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं अभावितं अबहुलीकतं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं अबहुलीकतं महतो अनत्थाय संवत्तती" ति॥

समान अकमनीय (अवाञ्छनीय) हो। भिक्षुओ! यह अनिगृहीत चित्त (सभी के लिये) अवाञ्छनीय होता है॥

२. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा कोई एक भी धर्म नहीं देखता जो निगृहीत चित्त के समान वाञ्छनीय हो। भिक्षुओ! यह निगृहीत चित्त सभी को वाञ्छनीय होता है॥

३. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा ...पूर्ववत्... जो अनिगृहीत चित्त के समान अत्यधिक अनर्थप्रद हो; क्योंकि भिक्षुओ! यह अनिगृहीत चित्त ही अत्यधिक अनर्थप्रद होता है॥

४. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा ...पूर्ववत्... जो निगृहीत चित्त के समान अत्यधिक कल्याणकर अर्थ (प्रयोजन=हित) का सम्पादक हो; क्योंकि भिक्षुओ! यह निगृहीत चित्त ही अत्यधिक अर्थ का सम्पादक होता है॥

५. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा ...पूर्ववत्... जो अनिगृहीत चित्त के समान अपवित्र (मलिन=दोषपूर्ण) एवं अत्यधिक अनर्थ का दाता हो; क्योंकि भिक्षुओ! ऐसा अनिगृहीत चित्त ही अपवित्र एवं अत्यधिक अनर्थों का दाता होता है॥

६. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा ...पूर्ववत्... जो निगृहीत होने के कारण पवित्र (निर्मल) एवं अत्यधिक हितप्रद हो; क्योंकि ऐसा निगृहीत चित्त ही पवित्र एवं अत्यधिक हितकारक होता है॥

७. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा ...पूर्ववत्... जो अनिगृहीत एवं अनभ्यस्त चित्त के समान

८. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं भावितं बहुलीकतं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भावितं बहुलीकतं महतो अत्थाय संवत्तती" ति॥

९. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं अभावितं अबहुलीकतं दुक्खाधिवाहं होति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अभावितं अबहुलीकतं दुक्खाधिवाहं होती" ति॥

१०. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं भावितं बहुलीकतं सुखाधिवाहं होति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भावितं बहुलीकतं सुखाधिवाहं होती" ति॥ ●

४. अदन्तवग्गो

१. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं अदन्तं महतो [B.6] अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अदन्तं महतो अनत्थाय संवत्तती" ति॥

२. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं दन्तं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, दन्तं महतो अत्थाय संवत्तती" ति॥

अत्यधिक अनर्थप्रद हो; क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसा अनिगृहीत एवं अनभ्यस्त चित्त ही अत्यधिक अनर्थकारी हुआ करता है॥

८. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा ...पूर्ववत्... जो निगृहीत एवं अभ्यस्त चित्त के समान अत्यधिक अर्थकारी हो; क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसा निगृहीत एवं अभ्यस्त चित्त ही अत्यधिक अर्थकारी हुआ करता है॥

९. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा ...पूर्ववत्... जो अनिगृहीत एवं अनभ्यस्त चित्त के समान प्राणियों को दु:ख देनेवाला हो; क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसा अनिगृहीत एवं अनभ्यस्त चित्त ही प्राणियों को दु:ख देनेवाला होता है॥

१०. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा ...पूर्ववत्... जो निगृहीत एवं अभ्यस्त चित्त के समान प्राणियों को सुखदायी हो; क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसा निगृहीत एवं अभ्यस्त चित्त ही प्राणियों के लिये सुखप्रद हुआ करता है॥

अकमनीय वर्ग तृतीय सम्पन्न॥ ●

४. अदान्तवर्ग

१. "भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा ...पूर्ववत्... जो अदान्त (अनिगृहीत) चित्त के समान अत्यधिक अनर्थों का दाता हो; क्योंकि, भिक्षुओ! यह अदान्त (अनिगृहीत) चित्त ही प्राणियों के लिये अत्यधिक अनर्थप्रद होता है॥

२. "भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा ...पूर्ववत्... जो दान्त (निगृहीत) चित्त के समान प्राणियों

[R.7] ३. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं अगुत्तं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अगुत्तं महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

४. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं गुत्तं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, गुत्तं महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

५. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं अरक्खितं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अरक्खितं महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

[N.8] ६. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं रक्खितं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, रक्खितं महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

७. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं असंवुतं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, असंवुतं महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

८. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं संवुतं महतो

का अत्यधिक हित सम्पादन करनेवाला हो; क्योंकि, भिक्षुओ! यह निगृहीत चित्त ही प्राणियों के लिये अत्यधिक सुखदायी होता है॥

३. ''भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा एक भी ...पूर्ववत्... जो असुरक्षित (अनियन्त्रित) चित्त के समान प्राणियों का अत्यधिक अनर्थकारी हो; क्योंकि, भिक्षुओ! अनियन्त्रित चित्त ही प्राणियों के लिये अत्यधिक अनर्थकारी हुआ करता है॥

४. ''भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा एक भी ...पूर्ववत्... जो सुरक्षित (नियन्त्रित) चित्त के समान प्राणियों का हितावह हो; क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसा नियन्त्रित चित्त ही प्राणियों का अत्यधिक हितकारी हुआ करता है॥

५. ''भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा एक भी ...पूर्ववत्... जो अरक्षित (सर्वथा अनियन्त्रित) चित्त के समान प्राणियों के लिये अत्यधिक अनर्थप्रद हो; क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसा अरक्षित चित्त ही प्राणियों के लिये अत्यधिक अनर्थप्रद हुआ करता है॥

६. ''भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा एक भी ...पूर्ववत्... जो सर्वथा रक्षित चित्त के समान प्राणियों के लिये अत्यधिक अर्थकारक हो; क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसा सर्वथा रक्षित चित्त ही प्राणियों का सर्वथा अर्थसाधक हुआ करता है॥

७. ''भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा एक भी ...पूर्ववत्... जो सर्वथा असंवृत (असंयत) चित्त के समान प्राणियों के लिये अनर्थकर हो; क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसा असंयत चित्त ही प्राणियों के लिये अत्यधिक अनर्थकर हुआ करता है॥

८. ''भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा एक भी ...पूर्ववत्... जो सर्वथा संयत चित्त के समान

अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, संवुतं महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

९. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं अदन्तं अगुत्तं [B.7] अरक्खितं असंवुतं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, अदन्तं अरक्खितं असंवुतं महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

१०. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं दन्तं गुत्तं रक्खितं संवुतं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, दन्तं रक्खितं संवुतं महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥ ●

५. पणिहितअच्छवग्गो

१. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, सालिसूकं वा यवसूकं वा मिच्छापणिहितं हत्थेन [R.8] वा पादेन वा अक्कन्तं हत्थं वा पादं वा भेच्छति लोहितं वा उप्पादेस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। तं किस्स हेतु? मिच्छापणिहितत्ता, भिक्खवे, सूकस्स। एवमेव खो, भिक्खवे, सो वत भिक्खु मिच्छापणिहितेन चित्तेन अविज्जं भेच्छति, विज्जं उप्पादेस्सति, निब्बानं सच्छिकरिस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। तं किस्स हेतु? मिच्छापणिहितत्ता, भिक्खवे, चित्तस्सा'' ति॥

प्राणियों के लिये अत्यधिक हितकारी हो; क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसा सर्वथा संयत चित्त ही प्राणियों के लिये अत्यधिक हितकारी हुआ करता है॥

९. ''भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा एक भी ...पूर्ववत्... जो अदान्त, असुरक्षित, अरक्षित एवं असंयत चित्त के समान प्राणियों का अत्यधिक अनर्थकारी हो; क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसा अदान्त, असुरक्षित, अरक्षित एवं असंयत चित्त ही प्राणियों का अत्यधिक अनर्थकारी हुआ करता है।

१०. ''भिक्षुओ! लोक में मैं ऐसा एक भी ...पूर्ववत्... जो दान्त, सुरक्षित, रक्षित एवं संयत चित्त के समान प्राणियों का अत्यधिक हितकारी हो; क्योंकि, भिक्षओ! ऐसा दान्त, सुरक्षित, रक्षित एवं संयत चित्त ही प्राणियों का अत्यधिक अर्थसाधक हुआ करता है॥''

अदान्तवर्ग चतुर्थ सम्पन्न॥ ●

५. प्रणिहित-अच्छवर्ग

१. ''जैसे, भिक्षुओ! कोई धान या जौ की तीखी बाल गलत ढंग से रखी गयी हो, और वह हाथ या पैर से स्पृष्ट हो (छू) जाय तो इससे उसका हाथ या पैर बिंध जाय या इससे रक्त बहने लगे—यह सम्भव नहीं है, वह क्यों? वह इसलिये कि वह धान या जौ की बाल, भिक्षुओ! अनुचित ढंग से रखी हुई थी। इसी प्रकार, भिक्षुओ! यह भी सम्भव नहीं है कि कोई (असंगत) भिक्षु मिथ्याप्रणिहित चित्त से अविद्या का भेदन कर दे, उसके स्थान पर विद्या का उत्पादन कर ले, या निर्वाण का साक्षात्कार कर ले। वह क्यों? वह इसलिये, भिक्षुओ! कि उस असंयत भिक्षु का चित्त मिथ्याप्रणिहित है॥

२. "सेय्यथापि, भिक्खवे, सालिसूकं वा यवसूकं वा सम्मापणिहितं हत्थेन वा पादेन वा अक्कन्तं हत्थं वा पादं वा भेच्छति लोहितं वा उप्पादेस्सती ति ठानमेतं विज्जति। तं किस्स हेतु? सम्मापणिहितत्ता, भिक्खवे, सूकस्स। एवमेव खो, भिक्खवे, सो वत भिक्खु [N.9] सम्मापणिहितेन चित्तेन अविज्जं भेच्छति, विज्जं उप्पादेस्सति, निब्बानं सच्छि-करिस्सती ति ठानमेतं विज्जति। तं किस्स हेतु? सम्मापणिहितत्ता, भिक्खवे, चित्तस्सा" ति।

[B.8] ३. "इधाहं, भिक्खवे, एकच्चं पुग्गलं पदुट्ठचित्तं एवं चेतसा चेतो परिच्च पजानामि—'इमम्हि चे अयं समये पुग्गलो कालं करेय्य, यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये'। तं किस्स हेतु? चित्तं हिस्स, भिक्खवे, पदुट्ठं॥

"चेतोपदोसहेतु पन, भिक्खवे, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ती" ति।

४. "इधाहं, भिक्खवे, एकच्चं पुग्गलं पसन्नचित्तं एवं चेतसा चेतो परिच्च पजानामि—'इमम्हि चे अयं समये पुग्गलो कालं करेय्य, यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'। तं [R.9] किस्स हेतु? चित्तं हिस्स, भिक्खवे, पसन्नं।

"चेतोपसादेहेतु पन, भिक्खवे, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती" ति॥

---

२. "जैसे, भिक्षुओ! कोई धान या जौ की तीखी बाल का सही ढंग से किसी के हाथ या पैर से स्पर्श हो जाय तो वह उस हाथ या पैर को भेद देगी या वहाँ रक्त प्रवाहित होने लगेगा। वह किसलिये? वह इसलिये कि वह धान या जौ की बाल, भिक्षुओ! ठीक ढंग से रखी हुई थी। इसी प्रकार, भिक्षुओ! वह (संयत) भिक्षु सम्यक्प्रणिहित (सम्यक्सङ्कल्पित) चित्त से अविद्या का भेदन (नाश) कर देगा, विद्या का उत्पाद कर देगा और अन्त में निर्वाण का साक्षात्कार कर लेगा—यह सम्भव है; वह किस कारण? वह इसलिये, भिक्षुओ! कि उस संयत भिक्षु का चित्त सम्यक् सङ्कल्पित है"॥

३. "यहाँ, भिक्षुओ! मैं एक ऐसे पुद्गल को जानता हूँ, जिसका चित्त रागादि विकारों से दूषित है; उसका यदि इस समय देहपात हो जाय तो वह निश्चित ही नरक योनि में जा गिरेगा। वह किस कारण? भिक्षुओ! वह इसलिये कि उस पुद्गल का चित्त दूषित है।

"इस चित्त प्रदोष के कारण ही यहाँ कुछ प्राणी इस काया के नष्ट होने पर मरणानन्तर, अपाय, दुर्गति, विनिपात या नरक में उत्पन्न होते हैं॥"

४. "और, भिक्षुओ! यहाँ मैं एक ऐसे पुद्गल को जानता हूँ, जिसके चित्त से अपने चित्त को मिलाकर मैं जान पाया हूँ कि यदि उसका अभी मरण हो जाय तो निश्चय ही उस श्रेष्ठ पुद्गल का स्वर्ग में जन्म होगा। वह किस कारण? भिक्षुओ! वह इसलिये कि उसका चित्त प्रसन्न (निर्मल) है॥

"इस चित्त-प्रसन्नता के कारण यहाँ कुछ प्राणी अपने देहपात के बाद, मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं॥"

५. "सेय्यथापि, भिक्खवे, उदकरहदो आविलो लुळितो कललीभूतो, तत्थ चक्खुमा पुरिसो तीरे ठितो न पस्सेय्य सिप्पिसम्बुकं पि सक्खरकठलं पि मच्छगुम्बं पि चरन्तं पि तिट्ठन्तं पि। तं किस्स हेतु? आविलत्ता, भिक्खवे, उदकस्स। एवमेव खो, भिक्खवे, सो वत भिक्खु आविलेन चित्तेन अत्तत्थं वा ञस्सति परत्थं वा ञस्सति उभयत्थं वा ञस्सति उत्तरिं वा मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरिस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। तं किस्स हेतु? आविलत्ता, भिक्खवे, चित्तस्सा" ति॥

६. "सेय्यथापि, भिक्खवे, उदकरहदो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो, तत्थ चक्खुमा पुरिसो तीरे ठितो पस्सेय्य सिप्पिसम्बुकं पि सक्खरकठलं पि मच्छगुम्बं पि चरन्तं पि तिट्ठन्तं पि। तं किस्स हेतु? अनाविलत्ता, भिक्खवे, उदकस्स। एवमेव खो, भिक्खवे, सो वत भिक्खु अनाविलेन चित्तेन अत्तत्थं वा ञस्सति परत्थं वा ञस्सति उभयत्थं वा [N.10] ञस्सति उत्तरिं वा मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरिस्सती ति ठानमेतं विज्जति। तं किस्स हेतु? आविलत्ता, भिक्खवे, चित्तस्सा" ति॥

७. "सेय्यथापि, भिक्खवे, यानि कानिचि रुक्खजातानं फन्दनो तेसं अग्ग-मक्खायति यदिदं मुदुताय चेव कम्मञ्ञताय च। एवमेव खो अहं, भिक्खवे, नाञ्ञं [B.9]

---

५. "जैसे, भिक्षुओ! कोई ऐसा सरोवर (तालाब) हो जिसका जल मैला हो, पङ्क (कीचड़) से युक्त हो; वहाँ किसी चक्षुष्मान् (आँखों से ठीक देखनेवाले) पुरुष को भी उस सरोवर में न कोई सीप दिखायी दे, न उसके बालुकाकण, न उसमें तैरती हुई या एक जगह ठहरी हुई मछलियाँ ही दिखायी दें। वह किस कारण? क्योंकि वह सरोवर कीचड़ से युक्त है, अत: उसका जल भी मैला है। इसी प्रकार, भिक्षुओ! वैसे ही असंयत भिक्षु भी अपने चित्त के रागादि दोषों से मलिन होने के कारण, न अपना और न दूसरे का ही हित सोच पाता है, न दोनों का ही हित सोच पाता है। और न वह साधारण मानव के गुणों से ऊपर उठकर आर्य ज्ञानदर्शनविशेष का ही साक्षात्कार कर पायगा—यही सम्भव है। वह क्यों? भिक्षुओ! वह इसलिये कि उसका चित्त रागादि दोषों से मलिन है"॥

६. "जैसे, भिक्षुओ! कोई ऐसा सरोवर हो, जिसका जल स्वच्छ हो, साफ हो, पङ्क आदि से रहित हो; वहाँ कोई चक्षुष्मान् पुरुष उसके किनारे पर बैठकर उस सरोवर में देखे तो उसको इस सरोवर में पड़े सीपी भी दिखायी दें, उसके बालुकाकण भी स्पष्ट दिखायी दें तथा उसमें तैरती एवं ठहरी हुई मछलियाँ भी स्पष्ट दिखायी दें। वह किसलिये? वह इसलिये कि उस सरोवर का जल स्वच्छ है। इसी तरह, भिक्षुओ! कोई संयत भिक्षु स्वच्छ (निर्दोष) चित्त से आत्महित, परहित तथा दोनों का हित देखे; तथा इस सामान्य मानव धर्मों से ऊपर उठकर आर्य ज्ञानदर्शनविशेष का भी साक्षात्कार कर ले—यह सम्भव है। वह किस कारण? वह इसलिये कि भिक्षुओ! उसका चित्त निर्मल (शुद्ध=दोषरहित) है"॥

७. "भिक्षुओ! जैसे ये जितने भी वृक्षसमूह हैं उनकी चञ्चलता ही उनमें मुख्य कहलाती है। वह इन वृक्षों की मृदुता एवं कमनीयता के कारण उनमें रहती है। इसी तरह, भिक्षुओ! मैं इस

एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं भावितं बहुलीकतं मुदु च होति कम्मञ्ञं च यथयिदं चित्तं। चित्तं, भिक्खवे, भावितं बहुलीकतं मुदु च होति कम्मञ्ञं च होती" ति॥

[R.10] ८. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं लहुपरिवत्तं यथयिदं चित्तं। यावञ्चिदं, भिक्खवे, उपमा पि न सुकरा याव लहुपरिवत्तं चित्तं" ति॥

९. "पभस्सरमिदं, भिक्खवे, चित्तं। तं च खो आगन्तुकेहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठं" ति॥

१०. "पभस्सरमिदं, भिक्खवे, चित्तं। तं च खो आगन्तुकेहि उपक्किलेसेहि विप्पमुत्तं" ति॥ ●

६. अच्छरासङ्घातवग्गो

१. "पभस्सरमिदं, भिक्खवे, चित्तं। तं च खो आगन्तुकेहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठं। तं अस्सुतवा पुथुज्जनो यथाभूतं नप्पजानाति। तस्मा अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स चित्तभावना नत्थी ति वदामी" ति॥

२. "पभस्सरमिदं, भिक्खवे, चित्तं। तं च खो आगन्तुकेहि उपक्किलेसेहि विप्पमुत्तं। तं सुत्वा अरियसावको यथाभूतं पजानाति। तस्मा सुतवतो अरियसावकस्स चित्तभावना अत्थी ति वदामी" ति॥

निगृहीत एवं अभ्यस्त चित्त से बढ़कर किसी अन्य धर्म को नहीं जानता जो इस ऐसे चित्त से मृदु भी हो तथा कमनीय भी हो॥

८. "भिक्षुओ! मैं इस लोक में ऐसे किसी अन्य धर्म को नहीं जानता जो इस चित्त की अपेक्षा अपने में अधिक सूक्ष्मता से परिवर्तन ला सके। इसके इस सूक्ष्म परिवर्तन के लिये लोक में कोई अन्य उपमा (दृष्टान्त) देना भी सुलभ नहीं है॥

९. "भिक्षुओ! यह चित्त, स्वयं सर्वथा स्वच्छ रहता है। हाँ, यह आगन्तुक मलों से, उपक्लेशों के सङ्ग से मलिन एवं उपक्लिष्ट होता रहता है॥

१०. भिक्षुओ! यह चित्त स्वयं सर्वथा स्वच्छता के कारण दीप्तिमान् है। यह केवल समय समय पर आगन्तुक मलों से उपक्लिष्ट होता रहता है॥" **प्रणिहित-अच्छवर्ग पञ्चम सम्पन्न॥** ●

६. अप्सरासङ्घातवर्ग

१. "भिक्षुओ! यह चित्त स्वयं उज्ज्वल (निष्कलङ्क) ही रहता है; (परन्तु) यह कभी कभी आगन्तुक (बाह्य रागादि) विकारों से दूषित होता रहता है। इस बात को कोई शास्त्रश्रवण न किया हुआ पृथग्जन (मूढ पुरुष) यथार्थतः नहीं समझ पाता। अतः ऐसे मूढ पुरुष का चित्त समाधिरत नहीं रह सकता॥

२. "भिक्षुओ! यह चित्त स्वयं उज्ज्वल ही रहता है; (परन्तु) यह कभी कभी बाह्य विकारों से दूषित होता रहता है। इस बात को कोई शास्त्रश्रवण किया हुआ बुद्धिमान् आर्यश्रावक ही यथार्थतः जानता है। अतः ऐसे बुद्धिमान् आर्यश्रावक का चित्त समाधिरत रह पाता है"॥

३. ''अच्छरासङ्घातमत्तं पि चे, भिक्खवे, भिक्खु मेत्ताचित्तं आसेवति; अयं वुच्चति, भिक्खवे—'भिक्खु अरित्तज्झानो विहरति सत्थुसासनकरो ओवादपतिकरो, अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति'। को पन वादो ये नं बहुलीकरोन्ती'' ति!

४. ''अच्छरासङ्घातमत्तं पि चे, भिक्खवे, भिक्खु मेत्ताचित्तं भावेति; अयं वुच्चति, भिक्खवे—'भिक्खु अरित्तज्झानो विहरति सत्थुसासनकरो ओवादपतिकरो, [N.11, B.10] अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति'। को पन वादो ये नं बहुलीकरोन्ती'' ति!

५. ''अच्छरासङ्घातमत्तं पि चे, भिक्खवे, भिक्खु मेत्ताचित्तं मनसि करोति; [R.11] अयं वुच्चति, भिक्खवे—'भिक्खु अरित्तज्झानो विहरति सत्थुसासनकरो ओवादपतिकरो, अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति'। को पन वादो ये नं बहुलीकरोन्ती'' ति!

६. ''ये केचि, भिक्खवे, धम्मा अकुसला अकुसलभागिया अकुसलपक्खिका, सब्बे ते मनोपुब्बङ्गमा। मनो तेसं धम्मानं पठमं उप्पज्जति, अन्वदेव अकुसला धम्मा'' ति॥

७. ''ये केचि, भिक्खवे, धम्मा कुसला कुसलभागिया कुसलपक्खिका, सब्बे ते मनोपुब्बङ्गमा। मनो तेसं धम्मानं पठमं उप्पज्जति, अन्वदेव अकुसला धम्मा'' ति॥

८. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, पमादो। पमत्तस्स,

---

३. ''भिक्षुओ! यदि कोई साधक भिक्षु चुटकी बजाने (अप्सरासङ्घात) मात्र के समय तक भी **मैत्रीचित्त की भावना** करता है, तो भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु भी लोक में 'ध्यानसम्पृक्त', 'शास्ता द्वारा उपदिष्ट धर्म का साधक' एवं 'उनके उपदेशों को माननेवाला' ही कहलाता है। उन साधकों की तो बात ही क्या, जो इस (मैत्री) भावना का निरन्तर अभ्यास करते रहते हैं!''॥

४. ''भिक्षुओ! यदि कोई साधक भिक्षु चुटकी बजाने मात्र के समय तक भी मैत्रीचित्त की भावना करता है... उपरिवत्... उपदेशों को माननेवाला ही कहलाता है। उसके द्वारा (भिक्षा द्वारा) खाया हुआ राष्ट्र का अन्न भी व्यर्थ नहीं जाता। उन साधकों की तो बात ही क्या कही जाय जो इस (मैत्री) भावना का सतत अभ्यास करते रहते हैं!॥''

५. ''भिक्षुओ! यदि कोई साधक भिक्षु चुटकी बजाने मात्र के समय तक भी मैत्रीचित्त की बात को मन में रखता है... उपरिवत्... जो इस मैत्रीभावना का सतत अभ्यास करते हैं॥''

६. ''भिक्षुओ! मन में जो भी अकुशल या अकुशल सदृश या अकुशल पक्षवाले धर्म उद्भूत होते हैं, उन सभी धर्मों का यह **मन ही पूर्वगामी** (उनके आगे चलनेवाला) होता है। अर्थात् यह मन ही उन अकुशल धर्मों का अपने में आकार बनाता है, उसके बाद ये अकुशल धर्म.वहाँ पहुँचते हैं॥''

७. (इसी तरह) ''भिक्षुओ! मन में जो भी कुशल या कुशल सदृश या कुशल पक्षवाले धर्म... उपरिवत्... ये कुशल धर्म पहुँचते हैं॥''

८. ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसे एक भी धर्म को नहीं जानता जिससे उत्पन्न हुए विना अकुशल धर्म स्वयं उत्पन्न हो पाते हों, या उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण हो जाते हों। ये सब तो साधक

भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

९. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पमादो। अप्पमत्तस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

१०. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, कोसज्जं। कुसीतस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥ ●

७. विरियारम्भवग्गो

[N.12, B.11, R.12] १. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, विरियारम्भो। आरद्धविरियस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

२. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसला

के एकमात्र **प्रमाद** (साधना में अव्यवस्था) से ही उत्पन्न या विनष्ट हो पाते हैं; क्योंकि भिक्षुओ! प्रमत्त भिक्षु के ही ये अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होते रहते हैं, तथा उत्पन्न कुशल धर्म विलीन होते रहते हैं॥''

९. (इसी तरह) ''भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसे भी किसी धर्म के विषय में नहीं जानता कि जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न हो पाते हों या उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण हो जाते हों। भिक्षुओ! ऐसी शक्ति तो केवल साधक भिक्षु के **अप्रमाद** (व्यवस्थित साधना) में ही है। क्योंकि, भिक्षुओ! अप्रमत्त (व्यवस्थित साधना वाले) भिक्षु के ही अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न हो पाते हैं या उत्पन्न अकुशल धर्म क्षीण हो जाते हैं॥''

१०. ''भिक्षुओ! मैं लोक में **कौसीद्य** (शुभ कर्म में आलस्य) के अतिरिक्त ऐसे किसी भी अन्य धर्म को नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होते हों या उत्पन्न कुशल धर्म भी क्षीण हो जाते हों; क्योंकि, भिक्षुओ! इस आलस्यरूप महान् दुर्गुण से ही ये अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न कुशल धर्म भी क्षीण हो जाते हैं॥'' **अप्सरासङ्घातवर्ग षष्ठ सम्पन्न॥**

७. वीर्यारम्भवर्ग

१. भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसे किसी अन्य धर्म को नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हों तथा उत्पन्न हुए अकुशल धर्म क्षीण होने लगते हों। भिक्षुओ! ऐसा धर्म एकमात्र **वीर्यारम्भ** (साधक द्वारा कुशल की उत्पत्ति एवं अकुशल के नाश हेतु साधना में प्रयासरत

धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, महिच्छता। महिच्छस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

३. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पिच्छता। अप्पिच्छस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

४. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, असन्तुट्ठिता। असन्तुट्ठस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

५. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, सन्तुट्ठिता। सन्तुट्ठस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

होना) ही है। भिक्षुओ! ऐसे आरब्धवीर्य (साधना में तत्पर) भिक्षु के ही अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न अकुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं''॥

२. ''भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसे किसी अन्य धर्म को नहीं देखता जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हों या उत्पन्न हुए कुशल धर्म भी क्षीण होने लगते हों। ऐसा धर्म तो केवल **महेच्छता** (अत्यधिक लोभ) ही है। भिक्षुओ! इस अत्यधिक लोभसम्पन्न मिथ्यासाधक भिक्षु के ही, साधना के समय, अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न हुए कुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं॥''

३. ''भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसे किसी अन्य धर्म को नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होना आरम्भ कर देते हों, या उत्पन्न अकुशल धर्म भी क्षीण होने लगते हों। भिक्षुओ! ऐसा धर्म तो एकमात्र **अल्पेच्छता** (यथालाभ संतोष) ही है। भिक्षुओ! यह अल्पेच्छता गुण ही अनुत्पन्न कुशल धर्मों को उत्पन्न करता है तथा उत्पन्न अकुशल धर्मों को क्षीण करने लगता है॥''

४. ''भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसे किसी अन्य धर्म को नहीं देखता जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हों तथा उत्पन्न कुशल धर्म भी क्षीण होने लगते हों। भिक्षुओ! ऐसा धर्म तो एकमात्र **असन्तोष** ही है। भिक्षुओ! यथालाभ-असन्तुष्ट भिक्षुसाधक के ही अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं, तथा पहले से उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं॥''

५. ''भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसा एक भी अन्य धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हों तथा उत्पन्न अकुशल धर्म भी क्षीण होने लगते हों; जैसा कि भिक्षुओ! यह

[R.13] ६. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसिकारो। अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

७. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा कुसला [N.13, B.12] धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारो। योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

८. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, असम्पजञ्ञं। असम्पजानस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

९. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, सम्पजञ्ञं। सम्पजानस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

सन्तोष धर्म है। भिक्षुओ! सन्तोषी साधक भिक्षु के ही अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न अकुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं॥''

६. ''भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसे किसी अन्य धर्म को नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हों तथा उत्पन्न कुशल दर्म ही क्षीण होने लगते हों। भिक्षुओ! एकमात्र ऐसा धर्म तो मिथ्या साधक भिक्षु द्वारा धर्मों का **सूक्ष्मतया अनन्वीक्षण** (मनस्कार न करना) ही है; क्योंकि भिक्षुओ! धर्मों का सूक्ष्मतया अन्वीक्षण न करनेवाले मिथ्यादृष्टि साधक के अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं॥''

७. ''भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसा एक भी अन्य धर्म नहीं देखता जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगें तथा उत्पन्न अकुशल धर्म भी नष्ट होने लगें। ऐसा धर्म, भिक्षुओ! साधक द्वारा **धर्मों का सूक्ष्म विश्लेषण** (मनस्कार) ही है। धर्मों के ऐसे सूक्ष्म विश्लेषक साधक के अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न अकुशल धर्मों का क्षय आरम्भ हो जाता है॥''

८. ''भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसा एक भी अन्य धर्म नहीं देखता जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हों तथा उत्पन्न कुशल धर्म क्षय की ओर बढ़ने लगते हों। भिक्षुओ! ऐसा एकमात्र धर्म **असम्प्रजन्य** (अज्ञान=ज्ञान या विवेक के अभाव की स्थिति) ही है। भिक्षुओ! ऐसे अज्ञानी या अविवेकी साधक के ही अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं॥''

९. ''भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसा एक भी अन्य धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल

१०. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, पापमित्तता। पापमित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसला धम्मा परिहायन्ती" ति॥ ●

८. कल्याणमित्तादिवग्गो

१. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा [R.14] कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, कल्याणमित्तता। कल्याणमित्तस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुसला धम्मा परिहायन्ती" ति॥

२. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो अकुसलानं धम्मानं, अननुयोगो कुसलानं धम्मानं। अनुयोगा, भिक्खवे, अकुसलानं धम्मानं, अननुयोगा कुसलानं धम्मानं अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा [B.13, N.14] उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसला धम्मा परिहायन्ती" ति॥

धर्म उत्पन्न होते हों तथा उत्पन्न अकुशल धर्म विनाश की ओर बढ़ने लगते हों। भिक्षुओ! ऐसा धर्म **सम्प्रजन्य** (ज्ञान या विवेक) ही है। भिक्षुओ! ऐसे ज्ञानी या विवेकी पुरुष के अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न अकुशल धर्म, इस सम्प्रजन्य के अभ्यास से, क्षीण होने लगते हैं॥"

१०. "भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसा एक भी अन्य धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हों तथा उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण होने लगते हों। भिक्षुओ! ऐसा धर्म तो **पापमित्रता** (पापियों का सङ्ग) ही है। भिक्षुओ! ऐसे पापियों का सङ्ग करने वाले साधक भिक्षु के अनुत्पन्न अकुशल धर्म भी उदित होने लगते हैं तथा उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं॥"

वीर्यारम्भवर्ग सप्तम सम्पन्न॥ ●

८. कल्याणमित्रादिवर्ग

१. "भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसा एक भी अन्य धर्म नहीं जानता, जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म वृद्धिङ्गत होने लगें तथा उत्पन्न अकुशल धर्म क्षीण होने लगें। भिक्षुओ! ऐसा धर्म तो एकमात्र यह **कल्याणमित्रता** ही है। भिक्षुओ! ऐसे कल्याणमित्र साधक के ही अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न अकुशल धर्म विनाश की ओर बढ़ने लगते हैं॥"

२. "भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसा एक भी अन्य धर्म नहीं जानता, जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हो तथा उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण होने लगते हों। भिक्षुओ! ऐसा धर्म तो **अकुशल धर्मों की साधना** करना या **कुशल धर्मों की साधना** न करना ही है। भिक्षुओ! इन अकुशल धर्मों की साधना करने एवं कुशल धर्मों की साधना न करने से अनुत्पन्न अकुशल धर्मों का उत्पाद, तथा उत्पन्न कुशल धर्मों का क्षय होने लगता है॥"

३. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलानं धम्मानं, अननुयोगो अकुसलानं धम्मानं। अनुयोगा, भिक्खवे, कुसलानं धम्मानं, अननुयोगा अकुसलानं धम्मानं अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुसला धम्मा परिहायन्ती" ति॥

४. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा बोज्झङ्गा नुप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा बोज्झङ्गा भावनापारिपूरिं गच्छन्ति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारो। योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना चेव बोज्झङ्गा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च बोज्झङ्गा भावनापारिपूरिं गच्छन्ती" ति॥

५. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा बोज्झङ्गा [R.15] उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा बोज्झङ्गा भावनापारिपूरिं गच्छन्ति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारो। योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना चेव बोज्झङ्गा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च बोज्झङ्गा भावनापारिपूरिं गच्छन्ती" ति॥

६. "अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, परिहानि यदिदं ञातिपरिहानि। एतं पतिकिट्ठं, भिक्खवे, परिहानीनं यदिदं पञ्ञापरिहानी" ति॥

७. "अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, वुद्धि यदिदं ञातिवुद्धि। एतदग्ग, भिक्खवे,

---

३. "भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसा एक भी अन्य कोई धर्म नहीं देखता, जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगें तथा अकुशल धर्म क्षीण होने लगे। भिक्षुओ! ऐसा धर्म तो एकमात्र **कुशल धर्मों की साधना करना** तथा **अकुशल धर्मों की साधना न करना** ही है। भिक्षुओ! इस कुशल धर्मों की साधना क्रिया एवं अकुशल धर्मों की असाधना क्रिया के कारण अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होते रहते हैं तथा उत्पन्न अकुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं॥"

४. "भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसा एक भी अन्य कोई धर्म नहीं देखता, जिससे अनुत्पन्न बोध्यङ्ग उत्पन्न न हो पायें तथा उत्पन्न बोध्यङ्गों का अभ्यास पूर्णता तक न पहुँच पाये। भिक्षुओ! ऐसा धर्म है **धर्मों का सूक्ष्मतः अन्वीक्षण न करना।** भिक्षुओ! धर्मों के इस सूक्ष्मतः अन्वीक्षण न करने के कारण ही ऐसे साधक भिक्षु के अनुत्पन्न बोध्यङ्ग उत्पन्न नहीं हो पाते, तथा उत्पन्न बोध्यङ्गों का अभ्यास पूर्णता तक नहीं पहुँच पाता॥

५. "भिक्षुओ! (लोक में) मैं ऐसा एक भी अन्य कोई धर्म नहीं देखता, जिससे अनुत्पन्न बोध्यङ्ग उत्पन्न होने लगें तथा उत्पन्न बोध्यङ्गों का अभ्यास पूर्णता तक पहुँच पावे। भिक्षुओ! ऐसा एकमात्र धर्म तो **धर्मों का सूक्ष्मतः मन में लाना** ही है। भिक्षुओ! धर्मों का इस प्रकार सूक्ष्मतः मनस्कार करने से अनुत्पन्न बोध्यङ्ग उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न बोध्यङ्ग भी अभ्यास की पूर्णता तक पहुँच पाते हैं॥"

६. "भिक्षुओ! लोक में जब हमारे किसी प्रिय का हमसे सदा के लिये साथ छूट जाता है तो यह साथ छूटना (परिहानि) उसकी अपेक्षा बहुत साधारण (अल्प) माना जायगा जबकि,

वुद्धीनं यदिदं पञ्ञावुद्धि। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'पञ्ञावुद्धिया वद्धिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

८. ''अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, परिहानि यदिदं भोगपरिहानि। एतं पतिकिट्ठं, भिक्खवं, परिहानीनं यदिदं पञ्ञापरिहानी'' ति॥

९. ''अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, वुद्धि यदिदं भोगवुद्धि। एतदग्गं, [N.15, B.14] भिक्खवे, वुद्धीनं यदिदं पञ्ञावुद्धि। तस्मातिह, भिक्खवे एवं सिक्खितब्बं—'पञ्ञावुद्धिया वद्धिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

१०. ''अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, परिहानि यदिदं यसोपरिहानि। एतं पतिकिट्ठं, भिक्खवे, परिहानीनं यदिदं पञ्ञापरिहानी'' ति॥

११. ''अप्पमत्तिका एसा, भिक्खवे, वुद्धि यदिदं यसोवुद्धि। एतदग्गं, भिक्खवे, वुद्धीनं यदिदं पञ्ञावुद्धि। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'पञ्ञावुद्धिया वद्धिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

भिक्षुओ! आध्यात्मिक जगत् में किसी साधक की **प्रज्ञा** (हिताहितविमर्शिनी बुद्धि) **का नाश** (परिहानि) होने लगे। यही वस्तुतः सबसे बड़ी परिहानि है॥''

७. (इसी तरह) ''भिक्षुओ! लौकिक जगत् की उस वृद्धि को भी हम साधारण वृद्धि ही मानते हैं जब हमारे यहाँ किसी के परिवार में किसी नये सदस्य (पुत्रादि) की वृद्धि होती है, इसकी अपेक्षा हम यही इच्छा समझते हैं कि हमारे अपने आध्यात्मिक जगत् में सब ओर से **प्रज्ञा की वृद्धि** होने लगे। अतः भिक्षुओ! हमें अपने साधनाकाल में यही सतत प्रयास करना चाहिये कि हमारी प्रज्ञावृद्धि निरन्तर होती रहे। भिक्षुओ! हमें यही सतत प्रयास करना चाहिये''॥

८. ''भिक्षुओ! हम अपने लौकिक जगत् के धनादि के क्षय को भी साधारण (अल्पमात्र) हानि ही मानते हैं, परन्तु आध्यात्मिक जगत् में सब और से हमारी **प्रज्ञा की हानि** ही हमारी सब हानियों की वस्तुतः पराकाष्ठा है॥''

९. (इसी तरह) ''भिक्षुओ! लौकिक जगत् में हुई अपनी धनादि वृद्धि को साधारण वृद्धि ही समझते हैं। सबसे श्रेष्ठ वृद्धि वह है जब (आध्यात्मिक जगत् में) हमारी **प्रज्ञावृद्धि** होने लगे॥''

१०. ''भिक्षुओ! इसी प्रकार अपने यश आदि की परिहानि को भी साधारण परिहानि ही समझो। वास्तविक और सबसे बड़ी परिहानि वह है जब आध्यात्मिक जगत् में हमारी **प्रज्ञा परिहानि** होने लगे॥''

११. ''भिक्षुओ! लोक में हमारे यश आदि की वृद्धि होना साधारण (अल्पमात्र) ही समझो। सबसे श्रेष्ठ वृद्धि है—**प्रज्ञावृद्धि**। अतः भिक्षुओ! हमें निरन्तर यही प्रयास करना चाहिये कि हमारी प्रज्ञावृद्धि होती रहे। भिक्षुओ! हमें यही प्रयास करना चाहिये; क्योंकि, भिक्षुओ! यहाँ होनेवाली हमारी परिहानियों में प्रज्ञापरिहानि ही सबसे बड़ी परिहानि है॥''

कल्याणमित्रादिवर्ग अष्टम सम्पन्न॥ ●

९. पमादादिवग्गो

[R.16] १. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पमादो। पमादो, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

२. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पमादो। अप्पमादो, ... महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

३. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, कोसज्जं। कोसज्जं, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

४. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, विरियारम्भो। विरियारम्भो, भिक्खवे, महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

५. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, महिच्छता। महिच्छता, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

[B.15] ६. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो

---

९. प्रमादादिवर्ग

१. ''भिक्षुओ! मैं इस लोक में ऐसा कोई एक अन्य धर्म नहीं देखता जो साधक के सम्मुख ऐसा महान् अनर्थ उपस्थित कर दे, जैसा यह (साधक का) **प्रमाद** (साधना में असावधानी) उपस्थित कर देता है। अत: भिक्षुओ! (मैं तो ऐसा मानता हूँ कि) प्रमाद ही अनर्थ का मूल है॥''

२. ''भिक्षुओ! मैं इस लोक में ऐसा कोई एक अन्य धर्म नहीं देखता जो साधक के सम्मुख महान् हित (कल्याण) उपस्थित कर दे जैसा कि यह **अप्रमाद** (साधना में सावधानता) उपस्थित करता है। अत: भिक्षुओ! मेरा मानना है कि अप्रमाद ही हमारे सब हितकर कार्यों का जनक है॥''

३. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... जो हमारे लिये अनर्थ उपस्थित कर दे जैसा कि यह हमारा **आलस्य** उपस्थित कर देता है। अत:, भिक्षुओ! हमारा यह साधना में आलस्य ही सब अनर्थों का मूल है॥''

४. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... जो हमारे लिये महान् हितकर हो जैसा कि भिक्षुओ! हमारा **आध्यात्मिक साधनाहेतु प्रयास** हमारे लिये हितकर होता है। अत:, भिक्षुओ! हमारा यह आध्यात्मिक साधनाहेतु प्रयास ही हमारे लिये सर्वथा हितकर है॥''

५. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... जो हमारे सम्मुख महान् अनर्थ उपस्थित कर दे जैसी कि हमारी यह **महेच्छता** (अत्यधिक लोभ) उपस्थित कर दिया करती है। अत: भिक्षुओ! हमारी यह महेच्छता ही हमारे सब अनर्थों की मूल है॥''

६. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... जो हमारे लिये महान् हितकर सिद्ध हो, जैसा कि भिक्षुओ!

अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पिच्छता। अप्पिच्छता, भिक्खवे, महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

७. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, असन्तुट्ठिता। असन्तुट्ठिता, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

८. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, सन्तुट्ठिता। सन्तुट्ठिता, भिक्खवे, महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

९. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसिकारो। अयोनिसो मनसिकारो, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

१०. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारो। योनिसो मनसिकारो, भिक्खवे, महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

११. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, असम्पजञ्ञं। असम्पजञ्ञं, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

यह **अल्पेच्छता** (यथालाभ-सन्तोष) महान् हितकारक होती है। अत:, भिक्षुओ! यह अल्पेच्छता गुण हमारा महान् हितकारी है॥''

७. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... महान् अनर्थ उपस्थित कर दे जैसा कि हमारा यह **असन्तोष** उपस्थित कर दिया करता है। अत:, भिक्षुओ! हमारा यह असन्तोष भी हमारे लिये महान् अहितकर है॥''

८. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... महान् हितकर सिद्ध होता है जैसा कि, भिक्षुओ! हमारा यह **सन्तोष**। अत: भिक्षुओ! सन्तोष ही हमारा सर्वाधिक हितकर सिद्ध होता है॥''

९. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... महान् अनर्थ कर सिद्ध होता हो जैसा कि, भिक्षुओ! हमारा **धर्मों का सूक्ष्मतया अन्वीक्षण न करना**। अत:, भिक्षुओ! यह 'धर्मों का सूक्ष्मतया अन्वीक्षण न करना' भी हमारे लिये महान् अनर्थों का जनक है॥''

१०. (इसके विपरीत) ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... महान् हितकारी होता हो, जैसा कि, भिक्षुओ! यह धर्मों का **सूक्ष्मतया अन्वीक्षण करना**। अत:, भिक्षुओ! धर्मों का सूक्ष्मतया अन्वीक्षण करना भी हमारा हितकर धर्म है॥''

११. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... महान् अनर्थ कर सिद्ध होता हो, जैसा कि, भिक्षुओ! हमारा यह **असम्प्रजन्य** (अज्ञान या अविवेक) होता है। अत: भिक्षुओ! हमारा यह असम्प्रजन्य भी सब अनर्थों का जनक है॥''

१२. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, सम्पजञ्ञं। सम्पजञ्ञं, भिक्खवे, महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

१३. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पापमित्तता। पापमित्तता, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

[B.16] १४. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, कल्याणमित्तता। कल्याणमित्तता, भिक्खवे, महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

[N.17] १५. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो अकुसलानं धम्मानं, अननुयोगो कुसलानं धम्मानं। अनुयोगो, भिक्खवे, अकुसलानं धम्मानं, अननुयोगो कुसलानं धम्मानं महतो अनत्थाय संवत्तती'' ति॥

१६. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलानं धम्मानं, अननुयोगो अकुसलानं धम्मानं। अनुयोगो, भिक्खवे, कुसलानं धम्मानं, अननुयोगो अकुसलानं धम्मानं महतो अत्थाय संवत्तती'' ति॥

---

१२. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... महान् हितकर सिद्ध होता हो, जैसा कि, भिक्षुओ! **सम्प्रजन्य** (ज्ञान या विवेक) होता है। अतः, भिक्षुओ! यह सम्प्रजन्य भी हमारा सर्वथा हितकर ही है॥''

१३. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... जो हमारे लिये महान् अनर्थ कर सिद्ध हो, जैसी कि, भिक्षुओ! यह **पापमित्रता** (कुसङ्गति)। अतः भिक्षुओ! यह पापमित्रता भी हमारे अनर्थों की जनक है।''

१४. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... जो हमारे लिये सर्वथा हितकर हो जैसी कि भिक्षुओ! हमारी यह **कल्याणमित्रता** (सत्सङ्ग)। कल्याणमित्रता ही हमारे लिये, भिक्षुओ! सर्वथा हितकर है॥''

१५. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... जो हमारे लिये अत्यधिक अनर्थकर सिद्ध होता हो, जैसी कि, भिक्षुओ! यह **अकुशल धर्मों की साधना** (अनुयोग) या **कुशल धर्मों की असाधना** (अननुयोग)। अतः भिक्षुओ! यह अकुशल धर्मों की साधना तथा कुशल धर्मों की असाधना भी हमारे लिये अनर्थ की जनक हैं॥''

१६. ''भिक्षुओ! मैं ...पूर्ववत्... जो हमारे लिये अत्यधिक हितकर सिद्ध हो, जैसी कि, भिक्षुओ! हमारी **कुशल धर्मों की साधना एवं अकुशल धर्मों की असाधना**। अतः, भिक्षुओ!

१०. दुतियपमादादिवग्गो

१. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अङ्गं ति करित्वा नाञ्ञं एकङ्गं पि समनुपस्सामि यं एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पमादो। पमादो, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तती" ति॥

२. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अङ्गं ति करित्वा नाञ्ञं एकङ्गं पि समनुपस्सामि यं एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पमादो। अप्पमादो, भिक्खवे, महतो अत्थाय संवत्तती" ति॥ [R.17]

३. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अङ्गं ति करित्वा नाञ्ञं एकङ्गं पि समनुपस्सामि यं एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, कोसज्जं। कोसज्जं, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तती" ति॥

४. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अङ्गं ति करित्वा नाञ्ञं एकङ्गं पि समनुपस्सामि यं एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, विरियारम्भो। विरियारम्भो, भिक्खवे, महतो अत्थाय संवत्तती" ति॥

५-१२. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अङ्गं ति करित्वा नाञ्ञं एकङ्गं पि [B.17] समनुपस्सामि यं एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, महिच्छता ...पे०...

यह कुशल धर्मों की साधना एवं अकुशल धर्मों की असाधना भी हमारे लिये अत्यधिक हितकर है॥"

प्रथमप्रमादादिवर्ग नवम सम्पन्न॥ ●

१०. द्वितीय प्रमादादिवर्ग

(क) **आध्यात्मिक अङ्ग** :

१. "भिक्षुओ! मैं साधना के आध्यात्मिक अङ्गों में **प्रमाद** के अतिरिक्त कोई अन्य ऐसा धर्म नहीं देखता जो साधक के लिये महान् अनर्थ उत्पन्न कर सकता हो। अत: भिक्षुओ! प्रमाद ही (साधना में) महान् अनर्थकारी होता है॥"

२. "भिक्षुओ! मैं साधना के आध्यात्मिक अङ्गों में **अप्रमाद** के अतिरिक्त कोई ऐसा अन्य धर्म नहीं देखता जो साधक के लिये अत्यधिक हितकर सिद्ध होता हो। अत: भिक्षुओ! अप्रमाद ही (साधना में) अतिशय हितकर होता है॥"

३. "भिक्षुओ! मैं साधना के आध्यात्मिक अङ्गों में **कौसीद्य** (आलस्य) के अतिरिक्त ऐसा अन्य धर्म नहीं देखता जो साधक के लिये अत्यधिक अनर्थकारी सिद्ध होता हो। अत:, भिक्षुओ! यह आलस्य ही (साधना में) अत्यधिक अनर्थकारी है॥"

४. "भिक्षुओ! मैं साधना के आध्यात्मिक अङ्गों में **वीर्यारम्भ** (लक्ष्य-प्राप्तिहेतु साधना का आरम्भ) को भिक्षु की साधना में अतिशय लाभकारी समझता हूँ। अत: भिक्षुओ! यह वीर्यारम्भ ही भिक्षु की साधना में अतिशय लाभकारी है॥"

५-१२. "भिक्षुओ! मैं साधना के आध्यात्मिक अङ्गों में दूसरा कोई ऐसा अत्यधिक

अप्पिच्छता... असन्तुट्ठिता... सन्तुट्ठिता... अयोनिसो मनसिकारो... योनिसो मनसिकारो... असम्पजञ्ञं... सम्पजञ्ञं... ॥

[N.18] **१३.** "बाहिरं, भिक्खवे, अङ्गं ति करित्वा नाञ्ञं एकङ्गं पि समनुपस्सामि यं एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पापमित्तता। पापमित्तता, भिक्खवे, महतो अनत्थाय संवत्तती" ति॥

१४. "बाहिरं, भिक्खवे, अङ्गं ति करित्वा नाञ्ञं एकङ्गं पि समनुपस्सामि यो एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, कल्याणमित्तता। कल्याणमित्तता, भिक्खवे, महतो अत्थाय संवत्तती" ति॥

१५. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अङ्गं ति करित्वा नाञ्ञं एकङ्गं पि समनुपस्सामि यं एवं महतो अनत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो अकुसलानं धम्मानं, अननुयोगो कुसलानं धम्मानं। अनुयोगो, भिक्खवे, अकुसलानं धम्मानं, अननुयोगो कुसलानं धम्मानं महतो अत्थाय संवत्तती" ति॥

१६. "अज्झत्तिकं, भिक्खवे, अङ्गं ति करित्वा नाञ्ञं एकङ्गं पि समनुपस्सामि यं एवं महतो अत्थाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलानं धम्मानं, अननुयोगो अकुसलानं धम्मानं। अनुयोगो, भिक्खवे, कुसलानं धम्मानं, अननुयोगो अकुसलानं धम्मानं महतो अत्थाय संवत्तती" ति॥

अनर्थकारी धर्म नहीं समझता हूँ, जैसा कि यह **महेच्छता** (अतिशय लोभ) है. ...पूर्ववत्... **अल्पेच्छता** ...पूर्ववत्... **असन्तुष्टि** ...पूर्ववत्... **सन्तुष्टि** ...पूर्ववत्... **धर्मों का सूक्ष्मतया पर्यवेक्षण न करना** ...पूर्ववत्... धर्मों का **सूक्ष्मतया पर्यवेक्षण करना** ...पूर्ववत्... **असम्प्रजन्य** (अज्ञान या अविवेक) ...**सम्प्रजन्य** (ज्ञान या विवेक) है, अत: भिक्षुओ! यह सम्प्रजन्य ही साधक भिक्षु की साधना में अतिशय लाभकारी है॥"

(ख) **बाह्य अङ्ग :**

१३. "भिक्षुओ! साधना के बाह्य अङ्गों पर विचार करने पर मैं ऐसा कोई एक भी अन्य धर्म साधना में अतिशय अनर्थकारी नहीं समझता जैसी की यह **पापमित्रता** (दुष्टों की सङ्गति) है। ...पूर्ववत्... ॥

१४. "भिक्षुओ! ...साधना में अतिशय हितकारी... जैसी कि यह **कल्याणमित्रता** (सत्सङ्गति) है। ...पूर्ववत्... ॥

१५. "भिक्षुओ! ...आध्यात्मिक अङ्गों पर... साधना में अनर्थकारी... जैसा कि यह **अकुशल धर्मों का अनुयोग** (साधना) एवं **कुशल धर्मों का अननुयोग**। ...पूर्ववत्... ॥

१६. "भिक्षुओ! साधना के आध्यात्मिक अङ्गों पर विचार करने पर मैं कोई दूसरा धर्म साधना में ऐसा अतिशय हितकारी नहीं समझता, जैसा यह **अकुशल धर्मों का अननुयोग** एवं **कुशल धर्मों का अनुयोग**। अत: भिक्षुओ! यह अकुशल धर्मों का अननुयोग एवं कुशल धर्मों का अनुयोग ही साधना में अतिशय हितकारी है॥"

१७. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, पमादो। पमादो, भिक्खवे, सद्धम्मस्य सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तती'' ति॥

१८. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अप्पमादो। [R.18] अप्पमादो, भिक्खवे, सद्धम्मस्य ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तती'' ति॥

१९. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं [B.18] सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, कोसज्जं। कोसज्जं, भिक्खवे, सद्धम्मस्य सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तती'' ति॥

२०. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, विरियारम्भो। विरियारम्भो, भिक्खवे, सद्धम्मस्य ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय [N.19] संवत्तती'' ति॥

२१-३१. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, महिच्छता ...पे०... अप्पिच्छता... असन्तुट्ठिता... सन्तुट्ठिता... अयोनिसो मनसिकारो... योनिसो मनसिकारो... असम्पजञ्ञं... सम्पजञ्ञं... पापमित्तता... कल्याणमित्तता... अनुयोगो अकुसलानं धम्मानं, अननुयोगो

---

१७. ''भिक्षुओ! मैं ऐसा कोई अन्य एक भी धर्म नहीं जानता जो सद्धर्म की मूढता (वृद्धि में रुकावट=अस्थिरता) तथा अन्तर्धान (नाश) में अत्यधिक सहायक हो, जैसा कि (मिथ्यादृष्टिसाधक भिक्षु का साधना में) **प्रमाद** (भूल करना) हुआ करता है। ...पूर्ववत्... ॥

१८. (इसके विपरीत) ''भिक्षुओ! मैं ऐसा कोई अन्य एक भी धर्म नहीं जानता जो सद्धर्म की चिरस्थिति, असम्मोष (अमूढता=ज्ञान) या अनन्तर्धान (अलोप) में अत्यधिक सहायक हो, जैसा कि यह (साधना में भिक्षु का) **अप्रमाद** (सतत सावधानता) है। ...पूर्ववत्... ॥

१९. ''भिक्षुओ! ...जो सद्धर्म की मूढता (वृद्धि में रुकावट), या अन्तर्धान (लोप) में अत्यधिक सहायक हो, जैसा कि यह साधक का साधना में **आलस्य** (कौषीद्य) होता है। ...पूर्ववत्... ॥

२०. ''भिक्षुओ! ...सद्धर्म की स्थिति, वृद्धि एवं सत्ता रखने में अत्यधिक सहायक हो, जैसा कि यह **वीर्यारम्भ** होता है। अत: भिक्षुओ! यह वीर्यारम्भ भी सद्धर्म की स्थिति, वृद्धि एवं सत्ता में अत्यधिक सहायक होता है॥''

२१-३१. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्...सद्धर्म की अस्थिरता, वृद्धि में बाधा या इसकी सत्ता का लोप करने में अत्यधिक सहायक हो, जैसी यह **महेच्छता... अल्पेच्छता... असन्तोष... सन्तोष... धर्मों का सूक्ष्मता से पर्यवेक्षण न करना... पर्यवेक्षण करना... असम्प्रजन्य... सम्प्रजन्य... पापमित्रता... कल्याणमित्रता... अकुशल धर्मों का अनुयोग** एवं **कुशल धर्मों का**

कुसलानं धम्मानं। अनुयोगो, भिक्खवे, अकुसलानं धम्मानं, अननुयोगो कुसलानं धम्मानं सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तती'' ति॥

३२. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यो एवं सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति यथयिदं, भिक्खवे, अनुयोगो कुसलानं धम्मानं, अननुयोगो अकुसलानं धम्मानं। अनुयोगो, भिक्खवे, कुसलानं धम्मानं, अननुयोगो अकुसलानं धम्मानं सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तती'' ति॥

३३. ''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू अधम्मं धम्मो ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनअहिताय पटिपन्ना बहुजनअसुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू अपुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अन्तरधापेन्ती'' ति॥

३४. ''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू धम्मं अधम्मो ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनअहिताय पटिपन्ना बहुजनअसुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय [B.19] देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू अपुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अन्तरधापेन्ती'' ति॥

३५-४२. ''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू अविनयं विनयो ति दीपेन्ति ...पे०... विनयं अविनयो ति दीपेन्ति ...पे०... अभासितं अलपितं तथागतेन भासितं लपितं तथागतेना ति [R.19] दीपेन्ति ...पे०... भासितं लपितं तथागतेन अभासितं अलपितं तथागतेना ति दीपेन्ति ...पे०... अनाचिण्णं तथागतेन आचिण्णं तथागतेना ति दीपेन्ति ...पे०... आचिण्णं तथागतेन [N.20] अनाचिण्णं तथागतेना ति दीपेन्ति ...पे०... अपञ्ञत्तं तथागतेन पञ्ञत्तं तथागतेना ति

अननुयोग। भिक्षुओ! यह **कुशल धर्मों का अनुयोग** एवं **अकुशल धर्मों का अननुयोग** ही सद्धर्म की स्थिति, वृद्धि एवं विद्यमानता में सर्वाधिक सहायक हैं॥''

३३. ''भिक्षुओ! जो भिक्षु अधर्म को धर्म कहकर उपदेश करते हैं, वे भिक्षु ऐसा करके बहुत लोगों का अहित करने में, बहुत लोगों को दुःख पहुँचाने में ही लगे हुए हैं; वे नहीं समझते कि ऐसा करके वे कितने ही देवताओं और मनुष्यों को अनर्थ, अहित एवं दुःख की ओर ढकेल रहे हैं। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु अपने लिये तो अपुण्य का सञ्चय करते ही हैं, साथ ही वे अपने इस अपुण्य कार्य से धर्म का लोप भी निश्चित रूप से करेंगे॥''

३४. ''और, भिक्षुओ! जो भिक्षु धर्म को अधर्म बताते हुए उपदेश करते हैं, भिक्षुओ! वे भिक्षु भी ऐसा करके ...पूर्ववत्... धर्म का लोप भी निश्चित रूप से करेंगे॥''

३५-४२. ''और, भिक्षुओ! जो भिक्षु **अविनय को विनय** कहकर ...पूर्ववत्... **विनय को अविनय** कहकर ...पूर्ववत्... **तथागत द्वारा न कहे हुए, न बोले हुए वचन को, तथागत द्वारा कहा हुआ** बताते हैं ...पूर्ववत्... **तथागत के कहे हुए, बोले हुए वचन को तथागत द्वारा न कहा हुआ, न बोला हुआ वचन** बताते हैं ...पूर्ववत्... **तथागत द्वारा अनभ्यस्त को तथागत**

दीपेन्ति ...पे०... पञ्ञत्तं तथागतेन अपञ्ञत्तं तथागतेना ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनअहिताय पटिपन्ना बहुजनअसुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू अपुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अन्तरधापेन्ती'' ति॥ ●

११. अधम्मवग्गो

१. ''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू अधम्मं अधम्मो ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनहिताय पटिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू, पुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं ठपेन्ती'' ति॥

२. ''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू धम्मं धम्मो ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनहिताय पटिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू, पुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं ठपेन्ती'' ति॥

३-१०. ''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू अविनयं अविनयो ति दीपेन्ति ...पे... विनयं विनयो ति दीपेन्ति ...पे०... अभासितं अलपितं तथागतेन अभासितं अलपितं तथागतेना ति दीपेन्ति ...पे०... भासितं लपितं तथागतेन भासितं लपितं तथागतेना ति दीपेन्ति [B.20,R.20]

द्वारा अभ्यस्त बताते हैं, या **तथागत द्वारा अभ्यस्त को तथागत द्वारा अनभ्यस्त** बताते हैं..., पूर्ववत्... **तथागत द्वारा अनाज्ञप्त को तथागत द्वारा आज्ञप्त** बताते हैं, या **तथागत द्वारा आज्ञप्त को तथागत द्वारा अनाज्ञप्त** बताते हैं, भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु बहुत लोगों का अहित करने में तथा बहुत लोगों को दुःख पहुँचाने में ही लगे हुए हैं। वे नहीं समझते कि ऐसा करके वे कितने ही देवताओं और मनुष्यों को अहित अनर्थ एवं दुःख की ओर ढकेल रहे हैं। ऐसे ये भिक्षु अपने लिये तो अपुण्य का सञ्चय करते ही हैं, साथ ही वे अपने इस अपुण्य कर्म से सद्धर्म का लोप भी निश्चित रूप से करेंगे॥''

द्वितीय प्रमादादिवर्ग दशम सम्पन्न॥ ●

११. अधर्मवर्ग

१. ''भिक्षुओ! जो भिक्षु **अधर्म को अधर्म** बताते हुए उपदेश करते हैं, वे भिक्षु बहुत लोगों का हित करने में, बहुत लोगों को सुख देने में लगे हुए हैं; देवता एवं मनुष्य आदि बहुत से प्राणियों का हित, सुख एवं प्रयोजन सिद्ध कर रहे हैं—ऐसा समझना चाहिये। भिक्षुओ! वे भिक्षु अपने पुण्यार्जन के साथ साथ इस सद्धर्म की भी चिरस्थिति बनाते हैं॥''

२. (इसी प्रकार) ''जो भिक्षु **धर्म को धर्म** के रूप में बताते हुए उपदेश करते हैं, वे भिक्षु ...पूर्ववत्... चिरस्थिति बनाते हैं॥''

३-१०. ''और, भिक्षुओ! जो भिक्षु **अविनय को अविनय** के रूप में ...पूर्ववत्... **विनय को विनय** के ही रूप में ...पूर्ववत्... **तथागत द्वारा न कहे हुए न बोले हुए वचन को तथागत द्वारा न कहा हुआ न बोला हुआ वचन** ही ...पूर्ववत्... **तथागत द्वारा कहे हुए तथा बोले हुए**

...पे०... अनाचिण्णं तथागतेन अनाचिण्णं तथागतेना ति दीपेन्ति ...पे०... आचिण्णं तथागतेन आचिण्णं तथागतेना ति दीपेन्ति ...पे०... आचिण्णं तथागतेना ति दीपेन्ति ...पे०... अपञ्ञत्तं तथागतेन अपञ्ञत्तं तथागतेना ति दीपेन्ति ...पे०... पञ्ञत्तं तथागतेन पञ्ञत्तं तथागतेना ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनहिताय पटिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू पुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं ठपेन्ती'' ति॥ ●

१२. अनापत्तिवग्गो

१. ''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू अनापत्तिं आपत्ती ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनअहिताय पटिपन्ना बहुजनअसुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू अपुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अन्तरधापेन्ती'' ति॥

[N.21] २. ''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू आपत्तिं अनापत्ती ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनअहिताय पटिपन्ना बहुजनअसुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू अपुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अन्तरधापेन्ती'' ति॥

वचन को तथागत द्वारा कहा हुआ या बोला हुआ वचन ही ...पूर्ववत्... **तथागत द्वारा अनाज्ञप्त को तथागत द्वारा अनाज्ञप्त** ही... **तथागत द्वारा आज्ञप्त को आज्ञप्त** ही ...पूर्ववत्... **तथागत द्वारा अनभ्यस्त को तथागत द्वारा अनभ्यस्त** ही... **तथागत द्वारा अभ्यस्त को तथागत द्वारा अभ्यस्त** ही ...पूर्ववत्... **तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त को तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त** ही ...पूर्ववत्... **तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को तथागत द्वारा प्रज्ञप्त** ही बताते हैं, भिक्षुओ! वे भिक्षु बहुत लोगों का हित एवं सुख सम्पादित करते हैं, तथा देवताओं तथा मनुष्यों सहित बहुत से प्राणियों का हित, सुख एवं प्रयोजन सिद्ध करते हैं। भिक्षुओ! वे भिक्षु अपने लिये पुण्यसञ्चय के साथ साथ सद्धर्म की भी चिरस्थिति बनाते हैं—ऐसा जानना चाहिये॥''　　**अधर्मवर्ग एकादश सम्पन्न॥** ●

१२. अनापत्तिवर्ग

१. ''भिक्षुओ! जो भिक्षु (दूसरों की) अनापत्ति (विनयपालन) को 'आपत्ति' (विनय का उल्लङ्घन) बताते हैं, भिक्षुओ! वे भिक्षु ऐसा करके बहुत लोगों का अहित करने में या बहुत लोगों का असुख करने में ही लगे हुए हैं। वे नहीं समझते कि ऐसा करके वे कितने ही देवताओं एवं मनुष्यों को अनर्थ, अहित एवं दुःख की ओर ढकेल रहे हैं। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु अपने लिये तो अपुण्य (पाप) का सञ्चय करते ही हैं, साथ ही वे अपने इस अपुण्य कर्म से धर्म का लोप भी निश्चित रूप से करेंगे—ऐसा समझिये॥''

२. ''इसी तरह, भिक्षुओ! जो भिक्षु आपत्ति (विनयोल्लङ्घन) को अनापत्ति (विनयपालन) बताते हैं, भिक्षुओ, वे भिक्षु भी, ऐसा करके ...पूर्ववत्... धर्म का लोप भी निश्चित रूप से करेंगे—ऐसा समझना चाहिये॥''

३-१०. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खू लहुकं आपत्तिं गरुका आपत्ती ति दीपेन्ति ...पे०... गरुकं आपत्तिं लहुका आपत्ती ति दीपेन्ति ...पे०... दुट्ठुल्लं आपत्तिं अदुट्ठुल्ला आपत्ती ति दीपेन्ति ...पे०... अदुट्ठुल्लं आपत्तिं दुट्ठुल्ला आपत्ती ति दीपेन्ति ...पे०... सावसेसं आपत्तिं अनवसेसा आपत्ती ति दीपेन्ति ...पे०... अनवसेसं आपत्तिं सावसेसा आपत्ती [R.21] ति दीपेन्ति ...पे०... सप्पटिकम्मं आपत्तिं अप्पटिकम्मा आपत्ती ति दीपेन्ति ...पे०... अप्पटिकम्मं आपत्तिं सप्पटिकम्मा आपत्ती ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनहिताय पटिपन्ना बहुजनअसुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू अपुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अन्तरधापेन्ती" ति॥ [B.21]

११. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खू अनापत्तिं अनापत्ती ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनहिताय पटिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू पुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं ठपेन्ती" ति॥

१२. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खू आपत्तिं आपत्ती ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनहिताय पटिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू पुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं ठपेन्ती" ति॥

१३-२०. "ये ते, भिक्खवे, भिक्खू लहुकं आपत्तिं लहुका आपत्ती ति दीपेन्ति... गरुकं आपत्तिं गरुका आपत्ती ति दीपेन्ति... दुट्ठुल्लं आपत्तिं दुट्ठुल्ला आपत्ती ति दीपेन्ति...

३-१०. "भिक्षुओ! जो भिक्षु **छोटी आपत्ति को बड़ी आपत्ति** ...पूर्ववत्... या जो **बड़ी आपत्ति को छोटी आपत्ति** ...पूर्ववत्... **दुष्ठुल** (हीन, कुत्सार्थक) **आपत्ति को अदुष्ठुल** (उचित, शोभन) **आपत्ति** ...पूर्ववत्... या **अदुष्ठुल आपत्ति को दुष्ठुल आपत्ति** ...पूर्ववत्... जो **सावशेष** (अपूर्ण) **आपत्ति को अनवशेष** (पूर्ण) **आपत्ति** ...पूर्ववत्... जो **सप्रतिकर्म** (प्रायश्चित्तीय) **आपत्ति को अप्रतिकर्म** (प्रायश्चित्त के अयोग्य) **आपत्ति** ...पूर्ववत्... **या अप्रतिकर्म आपत्ति को सप्रतिकर्म आपत्ति** घोषित करते हैं, भिक्षुओ! वे भिक्षु ...पूर्ववत्...धर्म का लोप भी निश्चित रूप से कर रहे हैं—ऐसा समझना चाहिये॥"

११. "परन्तु, भिक्षुओ! जो भिक्षु **अनापत्ति को अनापत्ति** मानकर उपदेश करते हैं, भिक्षुओ! वे भिक्षु ...पूर्ववत्... सद्धर्म की स्थिति निश्चित रूप से बना रहे हैं—ऐसा समझना चाहिये॥"

१२. "तथा, भिक्षुओ! जो भिक्षु **आपत्ति को आपत्ति** मानकर उपदेश करते हैं वे भिक्षु, भिक्षुओ! बहुजन हित-सुख का सम्पादन करते हुए तथा देवताओं मनुष्यों सहित अनेक प्राणियों के लिये अनेक हित-सुखकारी प्रयोजन सिद्ध करते हैं। ऐसा करते हुए वे अपने लिये तो पुण्यराशि सञ्चित करते ही हैं साथ ही इस सद्धर्म की चिरस्थिति बनाने में भी सहायक होते हैं॥"

१३-२०. "तथा, भिक्षुओ! जो भिक्षु **लघु आपत्ति को लघु आपत्ति** ही मानकर... **गुरु आपत्ति को गुरु आपत्ति** मानकर... **दुष्ठुल** (हीन) **आपत्ति को दुष्ठुल आपत्ति** मानकर...

अदुट्ठुल्लं आपत्तिं अदुट्ठुल्ला आपत्ती ति दीपेन्ति... सावसेसं आपत्तिं सावसेसा आपत्ती ति दीपेन्ति... अनवसेसं आपत्तिं अनवसेसा आपत्ती ति दीपेन्ति... सप्पटिकम्मं आपत्तिं सप्पटिकम्मा आपत्ती ति दीपेन्ति... अप्पटिकम्मं आपत्तिं अप्पटिकम्मा आपत्ती ति दीपेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनहिताय पटिपन्ना बहुजनसुखाय; बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय [N.22] सुखाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू पुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं ठपेन्ती'' ति॥

१३. एकपुग्गलवग्गो

[R.22] १. ''एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कतमो एकपुग्गलो? [B.22] तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं'' ति॥

२. ''एकपुग्गलस्स, भिक्खवे, पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं। कतमस्स एकपुग्गलस्स? तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। इमस्स खो, भिक्खवे, एकपुग्गलस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं'' ति॥

३. ''एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति अच्छरियमनुस्सो। कतमो एकपुग्गलो? तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति अच्छरियमनुस्सो'' ति॥

४. ''एकपुग्गलस्स, भिक्खवे, कालकिरिया बहुनो जनस्स अनुतप्पा होति।

अदुष्ठुल आपत्ति को अदुष्ठुल आपत्ति मानकर... **सावशेष आपत्ति को सावशेष आपत्ति** मानकर... **अनवशेष आपत्ति को अनवशेष आपत्ति** मानकर... **सप्रतिकर्म** (प्रायश्चित्त योग्य) **आपत्ति को वैसा ही** मानकर... तथा **अप्रतिकर्म** (अप्रायश्चित्तीय) **को अप्रतिकर्म आपत्ति** मानकर वैसा ही उपदेश करते हैं, तो भिक्षुओ! वैसे भिक्षु बहुजन हित-सुख में लगे रहते हैं—ऐसा समझना चाहिये। वे देवमनुष्य सहित अनेक प्राणियों का हित सुख का ही प्रयोजन करते हुए अपने लिये पुण्यसञ्चय करने के साथ साथ सद्धर्म को भी चिरस्थायी बनाते हैं॥''

अनापत्तिवर्ग द्वादश सम्पन्न॥

१३. एकपुद्गलवर्ग

१. ''भिक्षुओ! एक ही श्रेष्ठ पुद्गल लोक में उत्पन्न होता हुआ बहुत जनों के हित एवं सुख के सम्पादन के लिये, लोक पर कृपा करने के लिये, देवता तथा मनुष्यों सहित प्राणियों के प्रयोजन की सिद्धि के लिये उत्पन्न होता है। कौन-सा एक पुद्गल? तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध। भिक्षुओ! यही एक पुद्गल लोक में उत्पन्न होता हुआ... प्राणियों के प्रयोजन की सिद्धि के लिये उत्पन्न होता है॥''

कतमस्स एकपुग्गलस्स? तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। इमस्स खो, भिक्खवे, एकपुग्गलस्स कालकिरिया बहुनो जनस्स अनुतप्पा होती'' ति॥

५. ''एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति अदुतियो असहायो अप्पटिमो अप्पटिसमो अप्पटिभागो अप्पटिपुग्गलो असमो असमसमो द्विपदानं अग्गो। कतमो एकपुग्गलो? तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति अदुतियो असहायो अप्पटिमो अप्पटिसमो अप्पटिभागो अप्पटि-पुग्गलो असमो असमसमो द्विपदानं अग्गो'' ति॥

६-१७. ''एकपुग्गलस्स, भिक्खवे, पातुभावा महतो चक्खुस्स पातुभावो होति, महतो आलोकस्स पातुभावो होति, महतो ओभासस्स पातुभावो होति, छन्नं अनुत्तरियानं पातुभावो होति, चतुन्नं पटिसम्भिदानं सच्छिकिरिया होति, अनेकधातुपटिवेधो होति, [N.23] नानाधातुपटिवेधो होति, विज्जाविमुत्तिफलसच्छिकिरिया होति, सोतापत्तिफल- [R.23] सच्छिकिरिया होति, सकदागामिफलसच्छिकिरिया होति, अनागामिफलसच्छिकिरिया होति, अरहत्तफलसच्छिकिरिया होति। कतमस्स एकपुग्गलस्स? तथागतस्स [B.23] अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। इमस्स खो, भिक्खवे, एकपुग्गलस्स पातुभावा महतो चक्खुस्स पातुभावो होति, महतो आलोकस्स पातुभावो होति, महतो ओभासस्स पातुभावो होति, छन्नं अनुत्तरियानं पातुभावो होति, चतुन्नं पटिसम्भिदानं सच्छिकिरिया होति, अनेकधातुपटिवेधो होति, नानाधातुपटिवेधो होति, विज्जाविमुत्तिफलसच्छिकिरिया होति, सोतापत्तिफल-

---

२. ''भिक्षुओ! लोक में इस एक पुद्गल का प्रादुर्भाव (जन्म=अवतार) लोक में दुर्लभ होता है। ...पूर्ववत्...।

३. ''भिक्षुओ! लोक में इस एक पुद्गल की उत्पत्ति एक आश्चर्यकारक मनुष्य के रूप में होती है।...

४. ''भिक्षुओ! लोक में इस एक पुद्गल का अवसान (तिरोभाव=मृत्यु) भी करोड़ों प्राणियों को अनुतप्त (सन्तप्त=दुःखी) करनेवाला होता है॥...

५. ''भिक्षुओ! लोक में उत्पन्न होता हुआ यह एक पुद्गल अद्वितीय (प्रधान), अन्य किसी की सहायता के प्रति अनपेक्ष, अप्रतिम, दूसरों द्वारा समानता (बराबर) न करने योग्य, अतुलनीय, असदृश, प्रतिद्वन्द्वितारहित (अप्रतिपुद्गल) अनुपम तथा मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ होता है।...

६-१७. ''भिक्षुओ! इस एक पुद्गल के प्रादुर्भाव से विशेष ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, विशेष प्रकाश का प्रादुर्भाव होता है, दर्शन, श्रवण, लाभ, शिक्षा, परिचर्या एवं अनुस्मृति—इन छह अनुत्तरीय (अप्रतिम) धर्मों का प्रादुर्भाव होता है। चारों प्रतिसंविदाओं (ज्ञान) का प्रादुर्भाव होता है, जैसे—१. धर्मविषयक ज्ञान, २. अन्वयज्ञान, ३. परिच्छेदज्ञान एवं ४. सम्मतिज्ञान। अनेक धातुओं में प्रतिवेध (अन्तःप्रवेश) होता है। नाना धातुओं में प्रतिवेध होता है। विद्या-विमुक्तिफल का साक्षात्कार होता है, स्रोतआपत्तिफल का...। सकृदागामिफल का... अनागामिफल का...

सच्छिकिरिया होति, सकदागामिफलसच्छिकिरिया होति, अनागामि-फलसच्छिकिरिया होति, अरहत्तफलसच्छिकिरिया होती'' ति॥

१८. ''नाहं भिक्खवे, अञ्ञं एकपुग्गलं पि समनुपस्सामि यो एवं तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति यथयिदं, भिक्खवे, सारिपुत्तो। सारिपुत्तो, भिक्खवे, तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेती'' ति॥ ●

१४. (क) एतदग्गवग्गो

१. ''एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं रत्तञ्ञूनं यदिदं अञ्ञासिकोण्डञ्ञो''॥

२. ... महापञ्ञानं यदिदं सारिपुत्तो॥

३. ... इद्धिमन्तानं यदिदं महामोग्गल्लानो॥

४. ... धुतवादानं यदिदं महाकस्सपो॥

५. ... दिब्बचक्खुकानं यदिदं अनुरुद्धो॥

६. ... उच्चाकुलिकानं यदिदं भद्दियो काळिगोधाय पुत्तो॥

७. ... मञ्जुस्सरानं यदिदं लकुण्डकभद्दियो॥

अर्हत्त्वफल का साक्षात्कार होता है। किस एक पुद्गल का? तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध का। भिक्षुओ! इस एक पुद्गल के प्रादुर्भाव से विशेष ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, विशेष प्रकाश का प्रादुर्भाव होता है ...पूर्ववत्... अर्हत्त्वफल का साक्षात्कार होता है। —ऐसा समझना चाहिये।

१८. ''भिक्षुओ! मैं लोक में किसी भी एक अन्य पुद्गल में ऐसा सामर्थ्य नहीं देखता जो तथागत द्वारा प्रवर्तित इस अद्वितीय धर्मचक्र (धर्मोपदेश) का अनुप्रवर्तन (पुनः चालन) कर सके, जैसा कि, भिक्षुओ! एकमात्र सारिपुत्र यह कर सकता है। भिक्षुओ! यही तथ्य है कि तथागत द्वारा प्रवर्तित इस अद्वितीय धर्मचक्र का अनुप्रवर्तन करने में केवल सारिपुत्र ही समर्थ है''॥

एक पुद्गलवर्ग त्रयोदश सम्पन्न॥ ●

१४. (क) एतदग्रवर्ग (भिक्षुवर्ग)

१. ''भिक्षुओ! मेरे **श्रद्धालु** प्रथम भिक्षुश्रावकों (शिष्यों) में यह **आज्ञातकौण्डिन्य** (या आज्ञाकौण्डिन्य) भिक्षु सर्वश्रेष्ठ (अग्र) है॥''

२. ...पूर्ववत्... मेरे **महाप्रज्ञ**शिष्यों में **सारिपुत्र** सर्वश्रेष्ठ (अग्रणी) है॥

३. ...मेरे **ऋद्धिमान्** (अलौकिक प्रतिभावान्) शिष्यों में **महामौद्गल्यायन** ही सर्वश्रेष्ठ है॥

४. ...मेरे **धुताङ्गसाधक** शिष्यों में यह **महाकाश्यप** ही सर्वश्रेष्ठ है॥

५. ...मेरे **दिव्यचक्षुष्क** (दिव्यज्ञानी) शिष्यों में **अनुरुद्ध** ही सर्वश्रेष्ठ है॥

६. ...उच्च कुल से आकर मेरे शिष्य बनने वालों में यह **कालिगोधापुत्र भद्दिय** श्रेष्ठ है॥

७. ...मनोरम (मञ्जु) स्वर से उपदेश करने वालों में यह मेरा शिष्य **लकुण्टक भद्दिय** सर्वश्रेष्ठ है॥

८. ... सीहनादिकानं यदिदं पिण्डोलभारद्वाजो ॥ [B.24]

९. ... धम्मकथिकानं यदिदं पुण्णो मन्ताणिपुत्तो ॥ [N.24]

१०. "एतदग्गं... सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं विभजन्तानं यदिदं महाकच्चानो" ति ॥ ●

(ख) एतदग्गवग्गो

१. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं मनोमयं कायं अभि- [R.24] निम्मिनन्तानं यदिदं चूळपन्थको" ॥

२. ... चेतोविवट्टकुसलानं यदिदं चूळपन्थको ॥

३. ... सञ्ञाविवट्टकुसलानं यदिदं महापन्थको ॥

४. ... अरणविहारीनं यदिदं सुभूति ॥

५. ... दक्खिणेय्यानं यदिदं सुभूति ॥

६. ... आरञ्ञकानं यदिदं रेवतो खदिरवनियो ॥

७. ... झायीनं यदिदं कङ्खारेवतो ॥

८. ... आरद्धविरियानं यदिदं सोणो कोळिविसो ॥

९. ... कल्याणवाक्करणानं यदिदं सोणो कुटिकण्णो ॥

---

८. ...सिंहनादतुल्य स्वर से उपदेश करनेवाले मेरे शिष्यों में यह **पिण्डोलभारद्वाज** श्रेष्ठ है ॥

९. ...धर्मकथिक (धर्मोपदेश करनेवाले) मेरे शिष्यों में पूर्ण **मैत्रायणी** (मंत्राणी०) **पुत्र** सर्वश्रेष्ठ है ॥

१०. ...मेरे संक्षेप से कहे वचनों का विस्तार से अर्थविभाजन (व्याख्यान) करनेवाले मेरे शिष्यों में यह **महाकच्चान** श्रेष्ठ है ॥ (१०)

१४. (ख) एतदग्रवर्ग (भिक्षुवर्ग)

१. ...अपने ऋद्धिप्रभाव से मनोमय काय निर्माण करने वाले मेरे शिष्यों में भी यह **चूड़पन्थक** सर्वश्रेष्ठ है।

२. ...स्वपरचित्तविवर्त ज्ञान में कुशल मेरे शिष्यों में भी यह **चूड़पन्थक** ही सर्वश्रेष्ठ है।

३. ...संज्ञाविवर्तज्ञान में कुशल मेरे सभी शिष्यों में यह **महापन्थक** श्रेष्ठ है।

४. ...शान्तचित्त होकर साधना करनेवालों (अरणविहारियों) में यह **सुभूति** सर्वश्रेष्ठ है।

५. ...दान के पात्र (दक्षिणेय) मेरे शिष्यों में भी यह **सुभूति** ही सर्वश्रेष्ठ है।

६. ...अरण्य में रहकर एकान्त साधना करने वाले मेरे शिष्यों में यह खदिरवन में साधना करनेवाला **रेवत** सर्वश्रेष्ठ है।

७. ...ध्यानभावना में रत रहनेवाले मेरे शिष्यों में यह **कङ्खारेवत** सर्वश्रेष्ठ है।

८. अपनी पूर्ण सामर्थ्य से साधना में रत रहनेवालों में यह **सोण कोटिविंश** सर्वश्रेष्ठ है।

१०. ... लाभीनं यदिदं सीवलि॥

११. "एतदग्गं... सद्धाधिमुत्तानं यदिदं वक्कली" ति॥

(ग) एतदग्गवग्गो

१. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं सिक्खाकामानं यदिदं राहुलो"॥

[R.25] २. ... सद्धापब्बजितानं यदिदं रट्ठपालो॥

३. ... पठमं सलाकं गण्हन्तानं यदिदं कुण्डधानो॥

४. ... पटिभानवन्तानं यदिदं वङ्गीसो॥

५. ... समन्तपासादिकानं यदिदं उपसेनो वङ्गन्तपुत्तो॥

६. ... सेनासनपञ्ञापकानं यदिदं दब्बो मल्लपुत्तो॥

७. ... देवतानं पियमनापानं यदिदं पिलिन्दवच्छो॥

८. ... खिप्पाभिञ्ञानं यदिदं बाहियो दारुचीरियो॥

[N.25] ९. ... चित्तकथिकानं यदिदं कुमारकस्सपो॥

---

९. ...परस्पर संवाद में शुभ वचनों का प्रयोग करनेवालों (कल्याणवाङ्करण) में यह **सोण कटिकर्ण** भिक्षु सर्वश्रेष्ठ है॥

१०. ...गृहस्थों से चारों प्रत्ययों (चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं भेषज) का लाभ करने वालों में **सीवलि भिक्षु** सर्वश्रेष्ठ है॥

११. ...रत्नत्रय के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखनेवालों में **वक्कलि भिक्षु** सर्वश्रेष्ठ है॥

(१९)

१४ (ग) एतदग्रवर्ग (भिक्षुवर्ग)

१. ...भिक्षु-नियमों का पूर्ण अनुशासन माननेवालों (शिक्षाकामों) में **राहुल** सर्वश्रेष्ठ है॥

२. ...रत्नत्रय के प्रति श्रद्धाभिभूत होकर इस धर्म में प्रव्रजित हुए भिक्षुओं में **राष्ट्रपाल** श्रेष्ठ है।

३. ...शलाका-भोजन को प्राथमिकता देकर भिक्षा करने वालों में **कुण्डधान** भिक्षु श्रेष्ठ है॥

४. ...प्रतिभा वालों (आशु कवियों) में **वङ्गीस** सर्वश्रेष्ठ है॥

५. ...शरीर, साधना, ईर्यापथ आदि सभी पक्षों से सुन्दर (समन्तप्रासादिक) भिक्षुओं में **उपसेन बङ्गन्तपुत्र** को श्रेष्ठ मानता हूँ॥

६. ...शयनासन-प्रज्ञापक (विहार-प्रबन्धक) भिक्षुओं में **द्रव्य मल्लपुत्र** मेरी दृष्टि में श्रेष्ठ है॥

७. ...देवताओं के लिये प्रिय एवं अनुकूल (मनाप) भिक्षुओं में **पिलिन्द वात्स्य** श्रेष्ठ है॥

८. ...बात को तत्काल समझनेवालों (क्षिप्राभिज्ञों) में **वाहिय दारुचीरिय** श्रेष्ठ है॥

९. ...उपमा, दृष्टान्त आदि के साथ, मन लगाकर श्रवणयोग्य धर्मकथा कहने वालों (चित्र-कथिकों) में **कुमारकाश्यप** भिक्षु श्रेष्ठ है॥

१०. "एतदग्गं ... पटिसम्भिदाप्पत्तानं यदिदं महाकोट्ठितो" ति॥

(घ) एतदग्गवग्गो

१. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं बहुस्सुतानं यदिदं आनन्दो"॥

२. ... सतिमन्तानं यदिदं आनन्दो॥

३. ... गतिमन्तानं यदिदं आनन्दो॥ [R.25]

४. ... धितिमन्तानं यदिदं आनन्दो॥

५. ... उपट्ठाकानं यदिदं आनन्दो॥

६. ... महापरिसानं यदिदं उरुवेलकस्सपो॥

७. ... कुलप्पसादकानं यदिदं काळुदायी॥

८. ... अप्पाबाधानं यदिदं बाकुलो॥

९. ... पुब्बेनिवासं अनुस्सरन्तानं यदिदं सोभितो॥

१०. ... विनयधरानं यदिदं उपालि॥

११. ... भिक्खुनोवादकानं यदिदं नन्दको॥

१२. ... इन्द्रियेसु गुत्तद्वारानं यदिदं नन्दो॥

१३. ... भिक्खुओवादकानं यदिदं महाकप्पिनो॥

---

१०. ...प्रतिसंविदा (मीमांसापूर्ण ज्ञान) प्राप्त करने वालों में **महाकोष्ठित** श्रेष्ठ भिक्षु है॥ (२९)

१४. (घ) एतदग्रवर्ग (भिक्षुवर्ग)

१. भिक्षुओ! मेरे श्रावकों (शिष्यों) में बहुश्रुत (पण्डित) भिक्षुओं में **आनन्द** श्रेष्ठ है॥

२. ...स्मृतिमान् भिक्षुओं में ...**आनन्द**... ॥

३. ...गतिमान् भिक्षुओं में ...**आनन्द**... ॥

४. ...स्थितिमान् भिक्षुओं में ...**आनन्द**... ॥

५. ...उपस्थायकों (उपट्ठाकों) में ...**आनन्द** ही श्रेष्ठ है॥

६. ...शिष्यों की विशाल मण्डली के साथ रहनेवाले भिक्षुओं में **उरुवेल काश्यप** श्रेष्ठ है॥

७. ...गृहस्थ कुलपुत्रों को अपने आचरण से प्रसन्न रखनेवाले भिक्षुओं में **काल उदायी** श्रेष्ठ है॥

८. ...नीरोग (स्वस्थ=अल्पाबाध) रहनेवालों में **वाकुल (वक्कुल)** भिक्षु श्रेष्ठ है॥

९. ...पूर्वजन्मों की स्मृति रखनेवालों में **शोभित भिक्षु** श्रेष्ठ है॥

१०. ...विनयपिटक का स्मरण रखनेवालों में **उपालि भिक्षु** श्रेष्ठ है॥

११. ...भिक्षुणियों को उपदेश देनेवाले कुशल भिक्षुओं में **नन्दक** श्रेष्ठ है॥

१२. ...इन्द्रियों पर अतिशय संयम रखनेवाले भिक्षुओं में **नन्दभिक्षु** श्रेष्ठ है॥

१४. ... तेजोधातुकुसलानं यदिदं सागतो ॥

१५. ... पटिभानेय्यकानं यदिदं राधो ॥

१६. "एतदग्गं ... लूखचीवरधरानं यदिदं मोघराजा" ति ॥

(ङ) एतदग्गवग्गो

१. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खुनीनं रत्तञ्ञूनं यदिदं महापजापतिगोतमी" ॥

२. ... महापञ्ञानं यदिदं खेमा ॥

३. ... इद्धिमन्तीनं यदिदं उप्पलवण्णा ॥

४. ... विनयधरानं यदिदं पटाचारा ॥

[N.26] ५. ... धम्मकथिकानं यदिदं धम्मदिन्ना ॥

६. ... झायीनं यदिदं नन्दा ॥

७. ... आरद्धविरियानं यदिदं सोणा ॥

८. ... दिब्बचक्खुकानं यदिदं बकुला ॥

९. ... खिप्पाभिञ्ञानं यदिदं भद्दा कुण्डलकेसा ॥

---

१३. ...भिक्षुओं को उपदेश देने में कुशल भिक्षुओं में **महाकप्पिन** श्रेष्ठ है ॥

१४. ...तेजोधातु (त्राटक) की साधना करनेवाले कुशल भिक्षुओं में **स्वागत भिक्षु** श्रेष्ठ है ॥

१५. ...प्रतिभान (प्रत्युत्पन्नमतिता) युक्तों (पटिभोनय्यक) में **राध** श्रेष्ठ है ॥

१६. ...रूक्ष चीवरधारियों में **मोघराज** श्रेष्ठ है ॥ (४१)

१४. (ङ) एतदग्गवर्ग (भिक्षुणीवर्ग)

१. भिक्षुओ! मेरे प्रति श्रद्धालु प्रथम भिक्षुणी श्राविकाओं में यह **महाप्रजापती गौतमी** भिक्षुणी श्रेष्ठ है ॥

२. ...महाप्रज्ञा भिक्षुणियों में **क्षेमा भिक्षुणी** श्रेष्ठ है ॥

३. ...ऋद्धिमती भिक्षुणियों में **उत्पलवर्णा भिक्षुणी** श्रेष्ठ है ॥

४. ...विनयपिटक को स्मरण रखनेवाली श्राविकाओं में **पटाचारा भिक्षुणी** श्रेष्ठ है ॥

५. ...विविध उपमा आदि के आश्रय से शास्त्रानुकूल मनोहर धर्मकथा करनेवाली भिक्षुणियों में **धर्मदत्ता (धम्मदिन्ना)** श्रेष्ठ है ॥

६. ...ध्यानभावना में निरन्तर रत रहनेवाली भिक्षुणियों में **नन्दा भिक्षुणी** श्रेष्ठ है ॥

७. ...अपने पूर्ण सामर्थ्य से ध्यान भावना में रत रहनेवाली भिक्षुणियों में **सोणा भिक्षुणी** श्रेष्ठ है ॥

८. ...दिव्य ज्ञान (दिव्यचक्षु) वाली भिक्षुणियों में **वकुला (सकुला)** भिक्षुणी श्रेष्ठ है ॥

९. ...बात को तत्काल (झटिति) समझ लेनेवाली (क्षिप्राभिज्ञा) भिक्षुणियों में **भद्रा कुण्डलकेशा** श्रेष्ठ है ॥

१०. ... पुब्बेनिवासं अनुस्सरन्तीनं यदिदं भद्दा कापिलानी ॥

११. ... महाभिञ्ञप्पत्तानं यदिदं भद्दकच्चाना ॥

१२. ... लूखचीवरधरानं यदिदं किसागोतमी ॥

१३. "एतदग्गं ... सद्धाधिमुत्तानं यदिदं सिङ्गालकमाता" ति ॥

(च) एतदग्गवग्गो

१. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं उपासकानं पठमं सरणं गच्छन्तानं [B.27] यदिदं तपस्सुभल्लिका वाणिजा" ॥ [R.26]

२. ... दायकानं यदिदं सुदत्तो गहपति अनाथपिण्डिको ॥

३. ... धम्मकथिकानं यदिदं चित्तो गहपति मच्छिकासण्डिको ॥

४. ... चतूहि सङ्गहवत्थूहि परिसं सङ्गण्हन्तानं यदिदं हत्थको आळवको ॥

५. ... पणीतदायकानं यदिदं महानामो सक्को ॥

६. ... मनापदायकानं यदिदं उग्गो गहपति वेसालिको ॥

७. ... सङ्घुपट्ठाकानं यदिदं हत्थिगामको उग्गतो गहपति ॥

८. ... अवेच्चप्पसन्नानं यदिदं सुरबन्धो ॥

---

१०. पूर्वजन्मों का वृत्त जाननेवाली भिक्षुणियों में **भद्रा कापिलायनी** श्रेष्ठ है ॥

११. महाभिज्ञा (विशिष्ट ज्ञान) प्राप्त भिक्षुणियों में **भद्रकच्चाना (भद्रकात्यायनी)** श्रेष्ठ है ॥

१२. रूक्षचीवरधारिणी भिक्षुणियों में **कृशा गौतमी** सर्वश्रेष्ठ है ॥

१३. ...रत्नत्रय के प्रति श्रद्धासङ्कल्पवाली भिक्षुणियों में **सिङ्गालकमाता (शृगाल-माता)** श्रेष्ठ है ॥ (५४)

१४. (च) एतदग्रवर्ग (उपासक वर्ग)

१. ...मेरे (शरणागत) श्रावक उपासकों में सर्वप्रथम मेरी शरण में आये हुए **तपस्सु एवं भल्लिक**—ये दो व्यापारी वणिक् श्रेष्ठ हैं ॥

२. ...मेरे दानदाता उपासकों में **सुदत्त अनाथपिण्डक** गृहपति श्रेष्ठ है ॥

३. ...मेरे धर्म की चर्चा (कथा) करनेवाले उपासकों में मत्स्यिकाषण्डवासी **चित्र गृहपति** श्रेष्ठ है।

४. ...चीवर-पिण्डपात आदि चार संग्रह वस्तुओं का दान करने वाले मेरे उपासकों में **हस्तक आळवक** श्रेष्ठ है ॥

५. ...सङ्घ को उत्तम तथा रुचिकर भोजन करानेवाले मेरे उपासकों में **महानाम शाक्य** श्रेष्ठ है ॥

६. ...मनोनुकूल प्रत्ययदाता मेरे उपासकों में वैशालीवासी **उग्र गृहपति** श्रेष्ठ है ॥

७. ...सङ्घ की सेवा करनेवाले मेरे उपासकों में हस्तिग्रामवासी **उद्गत गृहपति** श्रेष्ठ है ॥

९. ... पुग्गलप्पसन्नानं यदिदं जीवको कोमारभच्चो॥

१०. "एतदग्गं ... विस्सासकानं यदिदं नकुलपिता गहपती" ति॥

(छ) एतदग्गवग्गो

१. "एतदग्गं, भिक्खवे, मम साविकानं उपासिकानं पठमं सरणं गच्छन्तीनं यदिदं सुजाता सेनियधीता"॥

[N.27] २. ... दायिकानं यदिदं विसाखा मिगारमाता॥

३. ... बहुस्सुतानं यदिदं खुज्जुत्तरा॥

४. ... मेत्ताविहारीनं यदिदं सामावती॥

५. ... झायीनं यदिदं उत्तरा नन्दमाता॥

६. ... पणीतदायिकानं यदिदं सुप्पवासा कोलियधीता॥

[B.28] ७. ... गिलानुपट्ठाकीनं यदिदं सुप्पिया उपासिका॥

८. ... अवेच्चप्पसन्नानं यदिदं कातियानी॥

९. ... विस्सासिकानं यदिदं नकुलमाता गहपतानी॥

१०. "एतदग्गं ... अनुस्सवप्पसन्नानं यदिदं काळी उपासिका कुलघरिका" ति॥

---

८. ...रत्नत्रय के प्रति दृढ़ श्रद्धालु उपासकों में **सुरबन्ध** (सूर अम्बष्ठ) श्रेष्ठ है॥

९. ...व्यक्तिगत (पुद्गल पुद्गल के प्रति) श्रद्धालु उपासकों में **जीवक कौमारभृत्य** (वैद्य) श्रेष्ठ है॥

१०. ...रत्नत्रय में दृढ़ विश्वासी उपासकों में **नकुलपिता गृहपति** श्रेष्ठ है॥ (६५)

१४. (छ) एतदग्रवर्ग (उपासिकावर्ग)

१. भिक्षुओ! सर्वप्रथम मेरी शरण में आयी उपासिकाओं में श्रेणिय (सेनानी) कौटुम्बिक की पुत्री **सुजाता** श्रेष्ठ है॥

२. ...दान करनेवाली मेरी उपासिकाओं में **विशाखा मृगारमाता** श्रेष्ठ है॥

३. ...अधिक शास्त्रचर्चा सुनी हुई (बहुश्रुता) उपासिकाओं में **कुब्जा** (खुज्जा) उपासिका श्रेष्ठ है॥

४. ...मैत्री भावना से साधना करनेवाली उपासिकाओं में **सामावती** श्रेष्ठ है॥

५. ...ध्यान भावना से साधना करनेवाली मेरी उपासिकाओं में नन्दमाता **उत्तरा** श्रेष्ठ है॥

६. ...सङ्घ को उत्तम तथा रुचिकर भोजन देनेवाली मेरी उपासिकाओं में कोलियपुत्री **सुप्रवासा** श्रेष्ठ है॥

७. ...भिक्षु रोगियों की परिचर्या करनेवाली मेरी उपासिकाओं में **सुप्रिया** उपासिका श्रेष्ठ है॥

८. ...रत्नत्रय के प्रति दृढ़ श्रद्धा रखनेवाली मेरी सभी उपासिकाओं में **कात्यायनी** श्रेष्ठ

१५. (क) अट्ठानपालि

१. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो कञ्चि सङ्खारं निच्चतो उपगच्छेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं [R.27] पुथुज्जनो कञ्चि सङ्खारं निच्चतो उपगच्छेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

२. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो कञ्चि सङ्खारं सुखतो उपगच्छेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो कञ्चि सङ्खारं सुखतो उपगच्छेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

३. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो कञ्चि धम्मं अत्ततो उपगच्छेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो कञ्चि धम्मं अत्ततो उपगच्छेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

४. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो मातरं जीविता

---

९. ...रत्नत्रय के प्रति दृढ़ विश्वास रखनेवाली उपासिकाओं में गृहपत्नी **नकुलमाता** श्रेष्ठ है॥

१०. ...सद्धर्मचर्चा सुन (अनुश्रवण) कर श्रद्धालु बनी उपासिकाओं में कुररघर में विवाहित काली उपासिका श्रेष्ठ है॥ (७५)

एतदग्रवग्र चतुर्दश सम्पन्न॥ ●

१५. (क) अस्थानपालि

१. भिक्षुओ! यह सर्वथा असम्भव है कि कोई सम्यग्दृष्टियुक्त साधक किसी संस्कार को 'नित्य' मानकर उसपर विचार करे। यह उचित नहीं लगता। (क्योंकि संस्कार तो सर्वथा अनित्य हैं।) अपितु, भिक्षुओ! यहाँ यही सम्भव है कि कोई पृथग्जन (मूढ पुरुष) ही किसी संस्कार को नित्य मानकर इस पर विचार करे। (क्योंकि वह संस्कारों की अनित्यता समझ नहीं पाया है।) अत: यही सम्भव है॥''

●

२. ''भिक्षुओ! यह सम्भव नहीं लगता, तथा यह उचित भी नहीं है कि कोई सम्यग्दृष्टि-सम्पन्न साधक किसी संस्कार को 'सुख' समझकर विचार करे। (क्योंकि वह संस्कार को 'दु:ख' रूप समझता है।) अत: यह सम्भव नहीं लगता। यहाँ, भिक्षुओ! यही सम्भव है कि कोई पृथग्जन संस्कार को 'सुख' समझकर उसपर विचार करे। (क्योंकि वह संस्कार को सुखरूप समझता है।) यही उचित लगता है॥''

●

३. ''भिक्षुओ! यह सम्भव भी नहीं लगता, न यह उचित ही है कि कोई सम्यग्दृष्टिसम्पन्न पुरुष किसी धर्म को 'आत्म' रूप मानकर उस पर विचार करे। यह सम्भव नहीं है। (क्योंकि सभी धर्म 'अनात्म' होते हैं।) हाँ, यह सम्भव है कि कोई पृथग्जन किसी धर्म को 'आत्मा' मान कर उसमें विचार करने लगे। (क्योंकि वह धर्मों को 'आत्म' रूप समझता है।) यही उचित लगता है॥''

●

४. ''भिक्षुओ! यह भी सम्भव नहीं लगता, न उचित ही है कि कोई सम्यग्दृष्टि साधक

वोरोपेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो, भिक्खवे, एतं विज्जति यं पुथुज्जनो मातरं जीविता वोरोपेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

[N.28, B.29] ५. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो पितरं जीविता वोरोपेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो पितरं जीविता वोरोपेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

६. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो अरहन्तं जीविता वोरोपेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो अरहन्तं जीविता वोरोपेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

७. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो तथागतस्स पदुट्ठचित्तो लोहितं उप्पादेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो तथागतस्स पदुट्ठचित्तो लोहितं उप्पादेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

८. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो सङ्घं भिन्देय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो सङ्घं भिन्देय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

९. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो अञ्ञं सत्थारं उद्दिसेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुथुज्जनो अञ्ञं सत्थारं उद्दिसेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

१०. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे अरहन्तो [R.28] सम्मासम्बुद्धा अपुब्बं अचरिमं उप्पज्जेय्युं। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं,

---

अपनी माता की हत्या कर दे। यह उचित या सम्भव नहीं है। यहाँ यही सम्भव लगता है कि कोई मूर्ख ही अपनी माता का वध कर बैठे। यही सम्भव है॥'' ●

५. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... अपने पिता की हत्या कर दे ...पूर्ववत्...। यही सम्भव है॥'' ●

६. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... किसी अर्हत् की हत्या कर दे ...पूर्ववत्...। यही सम्भव है॥'' ●

७. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... तथागत के शरीर से रक्त बहाने का प्रयास करे ...पूर्ववत्...। यही सम्भव है॥'' ●

८. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... सङ्घ में अनेकता (फूट) ला दे। ...पूर्ववत्...। यही सम्भव है॥'' ●

९. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... किसी अन्य शास्ता से उपदेश ग्रहण करे ...पूर्ववत्...। यही सम्भव है॥'' ●

१०. ''भिक्षुओ! असम्भव भी है और अनुचित भी कि एक ही लोकधातु (ब्रह्माण्ड) में

भिक्खवे, विज्जति यं एकिस्सा लोकधातुया एको व अरहं सम्मासम्बुद्धो उप्पज्जेय्य। ठानमेतं विज्जती" ति॥ ●

(ख) अट्ठानपालि

१. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे राजानो चक्कवत्ती अपुब्बं अचरिमं उप्पज्जेय्युं। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं एकिस्सा लोकधातुया एको राजा चक्कवत्ती उप्पज्जेय्य। ठानमेतं [B.30] विज्जती" ति॥

२. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं इत्थी अरहं अस्स सम्मा- [N.29] सम्बुद्धो। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुरिसो अरहं अस्स सम्मासम्बुद्धो। ठानमेतं विज्जती" ति॥

३. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं इत्थी अरहं अस्स चक्कवत्ती। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुरिसो राजा अस्स चक्कवत्ती। ठानमेतं विज्जती" ति॥

४-६. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं इत्थी सक्कत्तं कारेय्य ...पे०... मारत्तं कारेय्य ...पे०... ब्रह्मत्तं कारेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं पुरिसो सक्कत्तं कारेय्य ...पे०... मारत्तं कारेय्य ...पे०... ब्रह्मत्तं कारेय्य। ठानमेतं विज्जती" ति॥

एक ही काल में दो अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध एक साथ, एक ही कालावधि में, आगे-पीछे विना देखे, अवतरित हों। यह सम्भव नहीं है। सम्भव यही है कि एक लोकधातु में एक समय में एक ही अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध अवतरित हों। यही उचित भी है॥" ●

१५. (ख) अट्ठानपालि

१. "भिक्षुओ! यह असम्भव भी है और अनुचित भी कि एक ही लोकधातु में दो चक्रवर्ती राजा एक ही समय में विना आगे-पीछे देखे, उत्पन्न हो। भिक्षुओ! सम्भव यही है कि एक ब्रह्माण्ड में एक समय में एक ही चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हो। यही उचित भी है॥ ●

२. "भिक्षुओ! यह भी असम्भव है और अनुचित भी कि कोई स्त्री अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध बन जाय। यह सम्भव भी नहीं है। अपितु, सम्भव यही है कि कोई पुरुष ही अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध बने। यही उचित भी है॥" ●

३. "भिक्षुओ! यह असम्भव भी है और अनुचित भी कि कोई स्त्री अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध या चक्रवर्ती राजा बन जाय। यह सम्भव भी नहीं है। अपितु, सम्भव यही है कि कोई पुरुष ही अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध या चक्रवर्ती राजा बने। यही उचित भी है॥" ●

४-६. "भिक्षुओ! यह असम्भव भी है, और अनुचित भी कि कोई स्त्री शक्रत्व (देवराज इन्द्र का आसन) प्राप्त करे... मार का आसन प्राप्त करे... ब्रह्मा का आसन प्राप्त करे। यह सम्भव भी

७. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं कायदुच्चरितस्स इट्ठो कन्तो मनापो विपाको निब्बत्तेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं कायदुच्चरितस्स अनिट्ठो अकन्तो अमनापो विपाको निब्बत्तेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

८-९. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं वचीदुच्चरितस्स ...पे०... यं मनोदुच्चरितस्स इट्ठो कन्तो मनापो विपाको निब्बत्तेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं मनोदुच्चरितस्स अनिट्ठो अकन्तो अमनापो विपाको निब्बत्तेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥ ●

(ग) अट्ठानपालि

१. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं कायसुचरितस्स अनिट्ठो अकन्तो अमनापो विपाको निब्बत्तेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, [B.31] विज्जति यं कायसुचरितस्स इट्ठो कन्तो मनापो विपाको निब्बत्तेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

[R.29] २-३. "अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं वचीसुचरितस्स ...पे०... मनोसुचरितस्स अनिट्ठो अकन्तो अमनापो विपाको निब्बत्तेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं मनोसुचरितस्स इट्ठो कन्तो मनापो विपाको निब्बत्तेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

नहीं है। अपितु सम्भव यही लगता है कि कोई पुरुष ही शक्रत्व ...मारत्व... ब्रह्मत्व पद प्राप्त करे। यही उचित भी है॥" ●

७. "भिक्षुओ! यह सम्भव नहीं है, न यह उचित ही है कि कोई स्वशरीर से दुराचरण करनेवाला उसका सुफल या सुपरिणाम या अनुकूल परिणाम प्राप्त कर पाये। अपितु सम्भव यही है कि ऐसे दुराचारी को उसका दुष्फल दुष्परिणाम ही भोगना पड़े। यही उचित भी है॥" ●

८-९. "भिक्षुओ! न यह सम्भव ही है, न उचित ही कि कोई वचन से दुराचरण (कटुभाषण) करे ...पूर्ववत्... मन से दुराचरण करे और वह उसका सुफल या सुपरिणाम भोग सके। अपितु, भिक्षुओ! यही सम्भव है कि वह उस मनोदुराचार का कुफल या कुपरिणाम या प्रतिकूल परिणाम ही भोगेगा। यही उचित भी है॥" ●

१५. (ग) अस्थानपालि

१. "भिक्षुओ! यह असम्भव तथा अनुचित है कि कोई अपने शरीर से सदाचरण करनेवाला पुरुष उस (सदाचार) का अनिष्ट, अप्रिय एवं प्रतिकूल फल प्राप्त करे। यह सम्भव नहीं है। अपितु, भिक्षुओ! यही सम्भव है कि ऐसा कायसुचरित पुरुष अपने सत्कर्मों का इष्ट, प्रिय एवं अनुकूल फल (परिणाम) ही प्राप्त करे। यही उचित भी है।" ●

२-३. "भिक्षुओ! यह भी असम्भव एवं अनुचित प्रतीत होता है कि कोई अपनी वाणी से ...पूर्ववत्... मन से सुचरित रहनेवाला पुरुष उस (सुचरित) का अनिष्ट, अप्रिय एवं प्रतिकूल

४. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं कायदुच्चरितसमङ्गी तन्निदाना [N.30] तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं कायदुच्चरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

५-६. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं वचीदुच्चरितसमङ्गी ...पे०... यं मनोदुच्चरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्येय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं मनोदुच्चरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

७. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं कायसुचरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं कायसुचरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥

८-९. ''अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं वचीसुचरितसमङ्गी ...पे०... यं मनोसुचरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा दुग्गतिं विनिपातं निरयं

फल या परिणाम भोगे। यह उचित भी नहीं है। अपितु, भिक्षुओ! ऐसा मन से सुचरित पुरुष इष्ट, प्रिय एवं अनुकूल परिणाम, फल ही भोगेगा। यही उचित भी है।'' ●

४. ''भिक्षुओ! यह सम्भव या उचित नहीं है कि कोई कायिक दुराचारों से युक्त (समङ्गी) उस कारण या उस हेतु से, इस काया के अवसान के बाद, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न हो। यह सम्भव भी नहीं है। अपितु, भिक्षुओ! यही सम्भव है कि वह कायिक दुराचरणयुक्त पुरुष उस कारण या उस हेतु के फलस्वरूप इस काया के अवसान के बाद, मरणानन्तर, अपाय एवं दुर्गतिमय नरक में गिरे, वहाँ उत्पन्न हो। यही उचित भी है॥'' ●

५-६. ''भिक्षुओ! यह असम्भव एवं अनुचित ही होगा कि कोई वाचसिक दुराचारों से युक्त ...पूर्ववत्... मानसिक दुराचारों से युक्त पुरुष उस कारण या उस हेतु के फलस्वरूप इस देहपात के बाद, मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में जाकर उत्पन्न हो। यह सम्भव भी नहीं है। अपितु, भिक्षुओ! ऐसा मनोदुश्चरित पुरुष उस कारण या उस हेतु के फलस्वरूप, मरणानन्तर, अपाय, दुर्गतिमय नरकयोनियों में जाकर उत्पन्न हो। यही उचित भी है॥'' ●

७. ''भिक्षुओ! यह असम्भव एवं अनुचित ही कहलायगा कि यदि कायिक सदाचारों से युक्त पुरुष उस कारण या उस हेतु से देहपात के बाद, मरणानन्तर, अपायभूत, दुर्गतिमय नरकयोनि में जाकर उत्पन्न हो। यह सम्भव भी नहीं है। अपितु, भिक्षुओ! यही सम्भव है कि ऐसा कायिक सदाचारी पुरुष उस कारण या उस हेतु के फलस्वरूप, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक जाकर वहाँ उत्पन्न हो। यही उचित भी है॥'' ●

८-९. ''भिक्षुओ! यह असम्भव या अनुचित ही लगता है कि कोई वाणी का सदाचारी

[R. 30] उपपज्जेय्य। नेतं ठानं विज्जति। ठानं च खो एतं, भिक्खवे, विज्जति यं मनोसुचरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य। ठानमेतं विज्जती'' ति॥ ●

१६. (क) एकधम्मपालि

[B. 32] १. ''एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुलीकतो एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? बुद्धानुस्सति। अयं खो, भिक्खवे, एकधम्मो भावितो बहुलीकतो एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तती'' ति॥

[N.31] २-१०. ''एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुलीकतो एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? धम्मानुस्सति ...पे०... सङ्घानुस्सति... सीलानुस्सति... चागानुस्सति... देवतानुस्सति... आनापानस्सति... मरणस्सति... कायगतासति... उपसमानुस्सति। अयं खो, भिक्खवे, एकधम्मो भावितो बहुलीकतो एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तती'' ति॥ ●

(ख) एकधम्मपालि

१. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसला

...पूर्ववत्... मानसिक सदाचारी उस कारण या उस प्रत्यय के फलस्वरूप देहपात के बाद, मरणानन्तर, अपायभूत दुर्गतिमय नरकयोनि में जाकर गिरे। यह सम्भव भी नहीं है। अपितु यही सम्भव है कि ऐसा मनःसदाचारी प्राणी, देहपात के बाद, मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न हो। यही उचित भी है॥''

अस्थानपालि पञ्चदश सम्पन्न॥ ●

१६. (क) एकधर्मपालि

१. ''भिक्षुओ! इस एक धर्म का पालन (साधना) एवं अभ्यास संसार से एकान्ततः उपेक्षा, वैराग्य, निरोध, आध्यात्मिक शान्ति, अभिज्ञा (विशिष्ट ज्ञान), सम्बोधि एवं निर्वाण की ओर ले जानेवाला होता है। कौन सा एक धर्म? **बुद्धानुस्मृति**। (तथागत बुद्ध को निरन्तर स्मरण रखना)। भिक्षुओ! यह एक (बुद्धानुस्मृति) धर्म की साधना एवं अभ्यास संसार से एकान्ततः उपेक्षा ...पूर्ववत्... निर्वाण की ओर ले जानेवाला होता है॥'' ●

२-१०. ''भिक्षुओ! इस एक धर्म का पालन एवं अभ्यास संसार से एकान्ततः निर्वेद, वैराग्य, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, सम्बोध, एवं निर्वाण की ओर ले जानेवाला होता है। कौन एकधर्म? **धर्मानुस्मृति... सङ्घानुस्मृति... शीलानुस्मृति... त्यागानुस्मृति... देवतानुस्मृति... आनापानस्मृति** (श्वास प्रश्वास की गति का स्मरण) **...मरणस्मृति... कायगतस्मृति ...उपशमानुस्मृति**। भिक्षुओ! इस एक धर्म का (स्मरणरूप) पालन एवं अभ्यास संसार से एकान्ततः निर्वेद ...पूर्ववत्... निर्वाण की ओर ले जानेवाला होता है॥'' ●

धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तन्ति यथयिदं, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुसला धम्मा भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तन्ती'' ति॥

२. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसला धम्मा भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तन्ति [R.31] यथयिदं, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि। सम्मादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसला धम्मा भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तन्ती'' ति॥

३. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा कुसला धम्मा नुप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा कुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, [B.33] मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा नुप्पज्जन्ति उप्पन्ना च कुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

४. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा अकुसला धम्मा नुप्पज्जन्ति उप्पन्ना वा अकुसला धम्मा परिहायन्ति यथयिदं, भिक्खवे, समादिट्ठि। सम्मादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा नुप्पज्जन्ति उप्पन्ना च अकुसला धम्मा परिहायन्ती'' ति॥

५. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा [N.32]

---

१६. (ख) एकधर्मपालि

१. ''भिक्षुओ! मैं इसके अतिरिक्त अन्य कोई एक भी धर्म नहीं देखता जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हों, या उत्पन्न हुए अकुशल धर्म आगे से आगे वृद्धिङ्गत होते रहते हों, भिक्षुओ! जैसा यह **मिथ्यादृष्टि** धर्म। भिक्षुओ! मिथ्यादृष्टि वाले भिक्षु के अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हैं तथा उत्पन्न हुए अकुशल धर्म आगे से आगे वृद्धिङ्गत होते रहते हैं॥''

२. ''भिक्षुओ! मैं इसके अतिरिक्त दूसरा कोई एक भी धर्म नहीं जानता, जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हों या उत्पन्न कुशल धर्म आगे से आगे वृद्धिङ्गत होते रहते हों; जैसा कि यह **सम्यग्दृष्टि** धर्म। भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टियुक्त पुरुष के अनुत्पन्न कुशल ...पूर्ववत्... वृद्धिङ्गत होते रहते हैं॥''

३. ''भिक्षुओ! मैं इसके अतिरिक्त दूसरा कोई एक भी धर्म नहीं जानता, जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म न उत्पन्न होते हों तथा उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण होने लगते हों, जैसा कि यह **मिथ्यादृष्टि** धर्म। भिक्षुओ! मिथ्यादृष्टि साधक के अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं॥''

४. ''और भिक्षुओ! मैं ऐसा भी कोई अन्य धर्म नहीं जानता, जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म न उत्पन्न हो, तथा उत्पन्न कुशल धर्म क्षीण होने लगते हो, जैसा कि यह **सम्यग्दृष्टि**। भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टि साधक के अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न नहीं होते तथा उत्पन्न अकुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं॥''

मिच्छादिट्ठि उप्पज्जति उप्पन्ना वा मिच्छादिट्ठि पवड्ढति यथयिदं, भिक्खवे, अयोनिसो मनसिकारो। अयोनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना चेव मिच्छादिट्ठि उप्पज्जति उप्पन्ना च मिच्छादिट्ठि पवड्ढती'' ति॥

६. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन अनुप्पन्ना वा सम्मादिट्ठि उप्पज्जति उप्पन्ना वा सम्मादिट्ठि पवड्ढति यथयिदं, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारो। योनिसो, भिक्खवे, मनसि करोतो अनुप्पन्ना चेव सम्मादिट्ठि उप्पज्जति उप्पन्ना च सम्मादिट्ठि पवड्ढती'' ति॥

७. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उप्पज्जन्ति यथयिदं, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिया, भिक्खवे, समन्नागता सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उप्पज्जन्ती'' ति॥

[R.32] ८. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि येन सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उप्पज्जन्ति यथयिदं, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि। सम्मादिट्ठिया, भिक्खवे, समन्नागता सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उप्पज्जन्ती'' ति॥

९. ''मिच्छादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, पुरिसपुग्गलस्स यं चेव कायकम्मं यथादिट्ठि समत्तं समादिन्नं यं च वचीकम्मं ...पे०... यं च मनोकम्मं, यथादिट्ठि समत्तं समादिन्नं या च

---

५. ''भिक्षुओ! मैं ऐसा भी कोई अन्य एक धर्म नहीं जानता, जिससे अनुत्पन्न मिथ्यादृष्टि उत्पन्न हो जाती हो तथा उत्पन्न मिथ्यादृष्टि वृद्धिङ्गत होने लगती हो, जैसा कि यह **अयोनिशः मनस्कार**। भिक्षुओ! अयोनिशः मनस्कार के रहते हुए अनुत्पन्न मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होने लगती है तथा उत्पन्न मिथ्यादृष्टि बढ़ने लगती है॥''

६. ''भिक्षुओ! मैं ऐसा भी कोई एक भी अन्य धर्म नहीं जानता, जिससे अनुत्पन्न सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होने लगती हो तथा उत्पन्न सम्यग्दृष्टि बढ़ने लगती हो, जैसा कि यह **योनिशः मनस्कार**। भिक्षुओ! योनिशः मनस्कार के रहते हुए अनुत्पन्न सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होने लगती है, तथा उत्पन्न सम्यग्दृष्टि बढ़ने लगती है॥''

७. ''भिक्षुओ! मैं ऐसा कोई एक भी अन्य धर्म नहीं जानता, जिससे प्राणी अपने देहपात के बाद, मरणानन्तर, अपायभूत दुर्गतिमय पतनभूमि नरक में जाकर उत्पन्न होते हों, जैसी कि यह **मिथ्यादृष्टि**। भिक्षुओ! इस मिथ्यादृष्टि से युक्त प्राणी देहपात के बाद, मरणानन्तर, अपायभूत दुर्गतिमय पतनभूमि नरक में जाकर गिरते हैं॥''

८. ''भिक्षुओ! मैं ऐसा कोई एक भी अन्य धर्म नहीं जानता, जिससे प्राणी देहपात के बाद, मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं, जैसी भिक्षुओ! यह **सम्यग्दृष्टि**। भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टि से युक्त प्राणी, देहपात के बाद मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं॥''

९. ''भिक्षुओ! मिथ्यादृष्टिसम्पन्न साधक का जो भी शारीरिक कर्म उस दृष्टि के अनुसार सम्पन्न हुआ हो, पूर्ण हुआ हो; जो वाक्कर्म ...पूर्ववत्... जो मन:कर्म इस दृष्टि के अनुसार सम्पन्न

चेतना या च पत्थना यो च पणिधि ये च सङ्खारा सब्बे ते धम्मा अनिट्ठाय अकन्ताय अमनापाय अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ति। तं किस्स हेतु? दिट्ठि हिस्स, भिक्खवे, पापिका। सेय्यथापि, भिक्खवे, निम्बबीजं वा कोसातकिबीजं वा तित्तकलाबुबीजं वा अल्लाय [B.34] पथविया निक्खित्तं यं चेव पथवीरसं उपादियति यं च आपोरसं उपादियति सब्बं तं तित्तकत्ताय कटुकत्ताय असातत्ताय संवत्तति। तं किस्स हेतु? बीजं हिस्स, भिक्खवे, पापकं। एवमेव खो, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठिकस्स पुरिसपुग्गलस्स यं चेव कायकम्मं यथादिट्ठि समत्तं समादिन्नं यं च वचीकम्मं ...पे०... यं च मनोकम्मं यथादिट्ठि समत्तं समादिन्नं या च [N.33] चेतना या च पत्थना यो च पणिधि ये च सङ्खारा सब्बे ते धम्मा अनिट्ठाय अकन्ताय अमनापाय अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ति। तं किस्स हेतु? दिट्ठि हिस्स, भिक्खवे, पापिका'' ति॥

१०. ''सम्मादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, पुरिसपुग्गलस्स यं चेव कायकम्मं यथादिट्ठि समत्तं समादिन्नं यं च वचीकम्मं ...पे०... यं च मनोकम्मं, यथादिट्ठि समत्तं समादिन्नं या च चेतना या च पत्थना यो च पणिधि ये च सङ्खारा सब्बे ते धम्मा इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तन्ति। तं किस्स हेतु? दिट्ठि हिस्स, भिक्खवे, भद्दिका। सेय्यथापि, भिक्खवे, उच्छुबीजं वा सालिबीजं वा मुद्दिकाबीजं वा अल्लाय पथविया निक्खित्तं यं चेव पथवीरसं उपादियति यं च आपोरसं उपादियति सब्बं तं मधुरत्ताय सातत्ताय असेचनकत्ताय संवत्तति।

हुआ हो, पूर्ण हुआ हो, जो चेतना... जो सङ्कल्प... जो प्रणिधि (निश्चय) जो संस्कार सम्पन्न एवं पूर्ण हुए हों वे सब कर्म अनिष्टमय, अप्रिय, अहितकर एवं प्रतिकूल दुःख के उत्पादक ही होते हैं। वह किसलिये? भिक्षुओ! वह इसलिये कि उस साधन की वह **दृष्टि** (चिन्तनविधि) ही **पापमय** थी। जैसे, भिक्षुओ, नीम, कड़वी तोरई, या तुम्बी का बीज आर्द्र (गीली) भूमि में गाड़ दिये जाने पर जो भी पृथ्वी या जल आदि का रस ग्रहण करेगा वह सब तिक्त, कटु एवं अप्रिय स्वाद वाला ही होता जायगा। वह किस कारण? क्योंकि उसका बीज ही पापमय (कटु रसस्वभाव वाला) था। इसी तरह, भिक्षुओ! मिथ्यादृष्टिसम्पन्न पुरुष का कोई भी कायकर्म इस दृष्टि के अनुसार सम्पन्न एवं पूर्ण हुआ हो, जो भी वाक्कर्म... जो भी मनःकर्म, जो चेतना, जो सङ्कल्प, जो प्रणिधि, जो संस्कार सम्पन्न एवं पूर्ण हुए हो वे सभी अनिष्ट अप्रिय एवं अहितकर एवं प्रतिकूल दुःख के उत्पादक ही होंगे। वह क्यों? क्योंकि उसकी वह कार्य सम्पादिका दृष्टि ही पापमय है॥''

१०. ''भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टिसम्पन्न साधक का जो भी कायिक कर्म उस दृष्टि के अनुसार सम्पन्न हुआ हो, पूर्ण हुआ हो, जो वाक्कर्म... जो मन, कर्म उस दृष्टि के अनुसार सम्पन्न अथवा पूर्ण हुआ हो; जो चेतना, जो सङ्कल्प, जो प्रणिधि (निश्चय), जो संस्कार सम्पन्न एवं पूर्ण हुए हों; वे सभी कर्म इष्ट, प्रिय, हितकर एवं अनुकूल सुखोत्पादक ही होते हैं। वह क्यों? वह इसलिये, भिक्षुओ! कि उस साधक की वह **दृष्टि** ही **मङ्गलमय** (भद्र) थी। जैसे, भिक्षुओ! इक्षु, शालि या मुद्रिका (मुलहठी या द्राक्षा) के बीज आर्द्र भूमि में गाड़ दिये जायँ, वहाँ वे जो भी पृथ्वी या जल का रस ग्रहण करेंगे वह सब मधुर एवं प्रिय मनोनुकूल तथा पथ्यकर या सन्तोषप्रद ही होता चला जायगा।

तं किस्स हेतु? बीजं हिस्स, भिक्खवे, भद्दकं। एवमेव खो, भिक्खवे, सम्मादिट्ठिकस्स पुरिसपुग्गलस्स यं चेव कायकम्मं यथादिट्ठि समत्तं समादिन्नं यं च वचीकम्मं ...पे०... यं च मनोकम्मं यथादिट्ठि समत्तं समादिन्नं या च चेतना या च पत्थना यो च पणिधि ये च सङ्खारा सब्बे ते धम्मा इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तन्ति। तं किस्स हेतु? दिट्ठि हिस्स, भिक्खवे, भद्दिका'' ति॥ ●

(ग) एकधम्मपालि

१. ''एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजन-[R.33] अहिताय बहुजनअसुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। कतमो एकपुग्गलो? मिच्छादिट्ठिको होति विपरीतदस्सनो। सो बहुजनं सद्धम्मा [B.35] वुट्ठापेत्वा असद्धम्मे पतिट्ठापेति। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनअहिताय बहुजनअसुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं'' ति॥

२. ''एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कतमो [N.34] एकपुग्गलो? सम्मादिट्ठिको होति अविपरीतदस्सनो। सो बहुजनं असद्धम्मा वुट्ठापेत्वा सद्धम्मे पतिट्ठापेति। अयं खो, भिक्खवे, एकपुग्गलो लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं'' ति॥

वह किसलिये? वह इसलिये, भिक्षुओ! कि वह बीज ही वैसे स्वभाव वाला था। इसी प्रकार भिक्षुओ! उस सम्यग्दृष्टि साधक का जो भी कायकर्म ...पूर्ववत्... जो भी संस्कार सम्पन्न या पूर्ण हुए हों वे सभी इष्ट, प्रिय, हित एवं अनुकूल सन्तोषप्रद सुखोत्पादक हो जाते हैं। वह किसलिये? वह इसलिये, भिक्षुओ! कि उसकी वह दृष्टि भद्र (मङ्गलमय) है॥'' ●

१६. (ग) एकधर्मपालि

१. भिक्षुओ! लोक में एक ऐसा भी पुद्गल होता है जो यहाँ उत्पन्न होकर बहुत जनों के लिये अहितकर, बहुत जनों के लिये दुःखोत्पादक ही होता है, इस प्रकार वह देवता तथा मनुष्यों के लिये अहितकारी ही सिद्ध होता है। यह ऐसा एक पुद्गल कौन है? जो **मिथ्यादृष्टि** हो, जिसका चिन्तन ही शास्त्र के विपरीत हो। वह बहुत से लोगों को सद्धर्म से च्युत कर असद्धर्म में व्यापृत कर देता है। भिक्षुओ! यह ऐसा पुद्गल लोक में उत्पन्न होकर बहुत प्राणियों का अहितकर एवं बहुत प्राणियों के लिये दुःखोत्पादक ही सिद्ध होता है, यहाँ तक बहुत से देवता एवं भले लोग भी उसके बहकावे में आ जाते हैं॥'' ●

२. ''परन्तु, भिक्षुओ! लोक में एक पुद्गल ऐसा भी होता है जो लोक में उत्पन्न होकर बहुजनहित एवं सुख में तत्पर रहता है, वह बहुत जनों के प्रयोजन, हित एवं देवता और मनुष्यों के सुखसम्पन्न में सन्नद्ध रहता है। वह एक पुद्गल कौन है? जो **सम्यग्दृष्टि** एवं शास्त्रानुकूल चिन्तन करने वाला हो। वह बहुत जनों का हित ...पूर्ववत्... सन्नद्ध रहता है॥'' ●

३. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकधम्मं पि समनुपस्सामि यं एवं महासावज्जं यथयिदं, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठि। मिच्छादिट्ठिपरमानि, भिक्खवे, महासावज्जानी" ति॥

४. "नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकपुग्गलं पि समनुपस्सामि यो एवं बहुजनअहिताय पटिपन्नो बहुजनअसुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं यथयिदं, भिक्खवे, मक्खलि मोघपुरिसो। सेय्यथापि भिक्खवे, नदीमुखे खिप्पं उड्डेय्य बहूनं मच्छानं अहिताय दुक्खाय अनयाय ब्यसनाय; एवमेव खो, भिक्खवे, मक्खलि मोघपुरिसो मनुस्सखिप्पं मञ्ञे लोके उप्पन्नो बहूनं सत्तानं अहिताय दुक्खाय अनयाय ब्यसनाया" ति॥

[R.34] ५. "दुरक्खाते, भिक्खवे, धम्मविनये यो च समादपेति यं च समादपेति यो च समादपितो तथत्ताय पटिपज्जति सब्बे ते बहुं अपुञ्ञं पसवन्ति। तं किस्स हेतु? दुरक्खातत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा" ति॥

[B.36] ६. "स्वाक्खाते, भिक्खवे, धम्मविनये यो च समादपेति यं च समादपेति यो च समादपितो तथत्ताय पटिपज्जति सब्बे ते बहुं पुञ्ञं पसवन्ति। तं किस्स हेतु? स्वाक्खातत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा" ति॥

७. "दुरक्खाते, भिक्खवे, धम्मविनये दायकेन मत्ता जानितब्बा, नो पटिग्गाहकेन। तं किस्स हेतु? दुरक्खातत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा" ति॥

---

३. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा कोई अन्य धर्म नहीं जानता, न देख पाता हूँ जो इतना अधिक निकृष्ट पापमय अतएव निन्दनीय हो, जैसा यह मिथ्यादृष्टिधर्म। क्योंकि, भिक्षुओ! ये सभी पापमय, निकृष्ट एवं निन्दनीय कर्म मिथ्यादृष्टि से उद्भूत होते हैं॥" ●

४. "भिक्षुओ! मैं लोक में ऐसा एक के अतिरिक्त किसी अन्य पुद्गल को नहीं जानता जो बहुत जनों का अहित कर रहा हो, उनके लिये दुःखराशि एकत्र कर रहा हो, देवताओं एवं सज्जनों के लिये भी अहित, असुख एवं अनर्थ का उत्पाद कर रहा हो, जैसा, भिक्षुओ! यह **मूर्ख मक्खलि**। भिक्षुओ! जैसे किसी नदी में उठा हुआ तीव्र वात्याचक्र (तूफान) वहाँ रहने वाली मछलियों के लिये अहित, दुःख, विपत्ति एवं सङ्कट उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार इस मूर्ख मक्खलि ने भी यहाँ के मनुष्यों के लिये मिथ्याधर्म का एक ऐसा दुश्चक्र उत्पन्न कर दिया है जो उनके लिये अहित, दुःख, विपत्ति एवं सङ्कट उत्पन्न कर रहा है॥" ●

५. "भिक्षुओ! **दुराख्यात** (मिथ्या कथित) **धर्म** के विषय में जो उत्साहित करता है, तथा जो उत्साहित होता है, इस उत्साह में जो प्रेरणा करता है—ये सभी बहुत पापों के भागी होते हैं। वह किसलिये? वह इसलिये कि वह धर्म दुराख्यात है॥" ●

६. इसके विपरीत "भिक्षुओ! जो **धर्म स्वाख्यात** है, उसके विषय में जो उत्साहित करता है, जो उत्साहित होता है तथा जो उस उत्साह में प्रेरणा करता है—ये तीनों ही अत्यधिक पुण्य के भागी होते हैं। वह क्यों? वह इसलिये कि वह धर्म स्वाख्यात है॥" ●

७. "भिक्षुओ! दुराख्यात धर्म के विषय में दाता (उपदेशक) का उत्तरदायित्व है कि वह धर्म की साधुता या असाधुता को जाने, श्रोता (प्रतिगृहीता) का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। वह

८. "स्वाक्खाते, भिक्खवे, धम्मविनये पटिग्गाहकेन मत्ता जानितब्बा, नो दायकेन। तं किस्स हेतु? स्वाक्खातत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा" ति॥

९. "दुरक्खाते, भिक्खवे, धम्मविनये यो आरद्धविनियो सो दुक्खं विहरति। तं किस्स हेतु? दुरक्खातत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा" ति॥

[N.35] १०. "स्वाक्खाते, भिक्खवे, धम्मविनये यो कुसीतो सो दुक्खं विहरति। तं किस्स हेतु? स्वाक्खातत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा" ति॥

११. "दुरक्खाते, भिक्खवे, धम्मविनये यो कुसीतो सो सुखं विहरति। तं किस्स हेतु? दुरक्खातत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा" ति॥

१२. "स्वाक्खाते, भिक्खवे, धम्मविनये यो आरद्धविरियो सो सुखं विहरति। तं किस्स हेतु? स्वाक्खातत्ता, भिक्खवे, धम्मस्सा" ति॥

किसलिये? वह इसलिये कि वह धर्म दुराख्यात है। (श्रोता जब समझेगा तभी तो उसकी साधुता या असाधुता का निर्णय कर सकेगा। अत: ऐसे धर्म की साधुता का निर्णय उपदेशक पर ही जाता है, श्रोता पर नहीं॥)

●

८. (परन्तु) "भिक्षुओ! **स्वाख्यात धर्मविनय की साधुता असाधुता** के विषय में श्रोता का उत्तरदायित्व है कि वह उस धर्म की साधुता असाधुता के विषय में परीक्षण करे। वह क्यों? वह इसलिये कि धर्म स्वाख्यात है। (श्रोता उसे समझ रहा है, अत: उसे ही उसकी साधुता-असाधुता का निर्णय करना चाहिये, तब वह उसे ग्रहण करे या न करे)॥"

●

९. "भिक्षुओ! जो साधक इस **दुराख्यात धर्मविनय की साधना में अपनी शक्ति** लगायगा, वह कष्ट ही पायगा। वह किसलिये? वह इसलिये कि उसने जब धर्म को भली भाँति समझा ही नहीं तो वह उस धर्म की साधना सरलता से कैसे कर पायगा!॥"

●

१०. "भिक्षुओ! **स्वाख्यात धर्म की साधना में** जो साधक आलस्य (करता हुआ विलम्ब) करेगा वह दु:ख प्राप्त करेगा। वह किसलिये? इसलिये कि धर्मस्वाख्यात है। (उसकी साधुता=अच्छाई समझ में आ चुकी है, तब उसकी साधना में आलस्य एवं विलम्ब कैसा!॥" ●

११. "भिक्षुओ! **दुराख्यात धर्म के विषय में** जो आलस्य करता हुआ विलम्ब करेगा वही सुख पायगा। वह किसलिये? वह इसलिये कि धर्म दुराख्यात है। (इस धर्म को अभी समझा ही कहाँ है कि तत्काल उसकी साधना में लगा जा सके। अत: विलम्ब ही श्रेयस्कर है, अन्यथा साधक को दु:खभाक् होना पड़ेगा।")॥

●

१२. " हाँ, भिक्षुओ! **स्वाख्यात धर्म** को सुनते ही जो साधक उसकी साधना में लग जाता है, वह सुखमय साधना कर सकता है। वह किसलिये? वह इसलिये कि धर्म स्वाख्यात है। (साधक को उस धर्म का तत्त्व समझ में आ चुका है, फिर उसकी साधना में विलम्ब या आलस्य कैसा!॥")

●

१३. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तको पि गूथो दुग्गन्धो होति; एवमेव खो अहं, भिक्खवे, अप्पमत्तकं पि भवं न वण्णेमि, अन्तमसो अच्छरासङ्घातमत्तं'' पि॥

१४-१७. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तकं पि मुत्तं दुग्गन्धं होति... अप्पमत्तको पि खेळो दुग्गन्धो होति... अप्पमत्तको पि पुब्बो दुग्गन्धो होति... अप्पमत्तकं पि लोहितं दुग्गन्धं होति; एवमेव खो अहं, भिक्खवे, अप्पमत्तकं पि भवं न वण्णेमि, अन्तमसो [R.35] अच्छरासङ्घातमत्तं'' पि॥ ●

(घ) एकधम्मपालि

१. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तकं इमस्मिं जम्बुदीपे आराम- [B.37] रामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खरणीरामणेय्यकं; अथ खो एतदेव बहुतरं यदिदं उक्कूलविकूलं नदीविदुग्गं खाणुकण्टकट्ठानं पब्बतविसमं; एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये थलजा, अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये ओदका''॥

२. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये मनुस्सेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये अञ्ञत्र मनुस्सेहि पच्चाजायन्ति। एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये मज्झिमेसु जनपदेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये पच्चन्तिमेसु जनपदेसु पच्चाजायन्ति अविञ्ञातारेसु मिलक्खेसु॥

---

१३. ''जैसे, भिक्षुओ! अल्पमात्र विष्ठा (गूथमल) से भी किसी स्थान का वायुमण्डल दूषित या घृणित हो जाता है, इसी तरह इस जगत् की अल्पमात्र चर्चा से भी आध्यात्मिक वायुमण्डल दूषित हो जाता है, अतः मैं (अपने धर्मोपदेश में) इस जगत् की उतने समय तक भी चर्चा नहीं करता, जितना समय एक चुटकी बजाने (अप्सरासङ्घात) में लगता है॥'' ●

१४-१५. ''जैसे, भिक्षुओ! अल्पमात्र मूत्र भी किसी स्थानविशेष के वायुमण्डल को दूषित बना देता है ...पूर्ववत्... अल्पमात्र भी क्ष्वेड़ (खखार) ...पूर्ववत्... अल्पमात्र भी पूय (मवाद) ...अल्पमात्र भी रक्त उस स्थानविशेष का वायुमण्डल दूषित बना देता है, इसीलिये, भिक्षुओ! मैं, इस प्रदूषण से बचने के लिये, अपने धर्मोपदेशों में इस जगत् की उतने समय भी चर्चा नहीं करता, जितना समय एक चुटकी बजाने में लगा करता है॥'' ●

१६. (घ) एकधर्मपालि

१. ''भिक्षुओ! जैसे इस जम्बू द्वीप में सुन्दर उद्यान, मनोरम वन, मनोहर भूखण्ड या रमणीय पुष्करणियाँ अल्पमात्रा में हैं; अधिक सङ्ख्या में तो, भिक्षुओ! नदियों के ऊँचे-नीचे किनारों, सूखे वृक्षों के ठूँठों (स्थाणुओं), कँटीली झाड़ियों से युक्त समविषम पर्वत ही हैं; उसी तरह, भिक्षुओ, यहाँ भूमिपर उत्पन्न होनेवाले प्राणी अल्पमात्रा में हैं, अपितु अधिक संख्या जल में उत्पन्न होनेवाले प्राणियों की ही है॥'' ●

२. भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... इसी तरह, वे प्राणी बहुत अल्प हैं जो मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं; अधिक सङ्ख्या तो उनकी ही है जो मनुष्यातिरिक्त अन्य योनियों में उत्पन्न होते हैं। ...इसी तरह,

३. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये पञ्ञवन्तो अजळा अनेळमूगा [N.36] पटिबला सुभासितदुब्भासितस्स अत्थमञ्ञातुं; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये दुप्पञ्ञा जळा एळमूगा न पटिबला सुभासितदुब्भासितस्स अत्थमञ्ञातुं॥

४. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये अरियेन पञ्ञाचक्खुना समन्नागता; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये अविज्जागता सम्मूळ्हा॥

५. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये लभन्ति तथागतं दस्सनाय; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये न लभन्ति तथागतं दस्सनाय॥

६. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये लभन्ति तथागतप्पवेदितं [R.36] धम्मविनयं सवनाय; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये न लभन्ति तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवनाय॥

[B.38] ७. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये सुत्वा धम्मं धारेन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये सुत्वा धम्मं न धारेन्ति॥

८. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये धातानं धम्मानं अत्थं उपपरिक्खन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये धातानं धम्मानं अत्थं न उपपरिक्खन्ति॥

भिक्षुओ! वे प्राणी अल्प ही हैं जो (जम्बूद्वीप के) मध्यम जनपद (मध्य देश) में उत्पन्न होते हैं; अपितु वे ही अधिसङ्ख्य हैं जो सीमान्त जनपदों या अज्ञात म्लेच्छदेशों में उत्पन्न होते हैं॥'' ●

३. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... इसी तरह, वे प्राणी भी अल्प ही हैं जो प्रज्ञावान् हैं, स्मृति-चेतनायुक्त (अजड़) हैं, गूँगे बहरे नहीं हैं, सुभाषित या दुर्भाषित से होने वाले हित या अहित को जानने में समर्थ हैं; अपितु वे ही अधिक सङ्ख्यावाले हैं जो दुष्प्रज्ञ हैं, जड़मति हैं, गूँगे बहरे हैं, सुभाषित या दुर्भाषित अर्थ या अनर्थ को जानने में असमर्थ हैं॥'' ●

४. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... इसी तरह, वे प्राणी भी अल्पसङ्ख्यक ही हैं जो आर्य प्रज्ञाचक्षु से समन्वित हैं; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जो अविद्याग्रस्त हैं, मूढ़ (हिताहितविवेकशून्य) हैं॥''

५. ...पूर्ववत्... इसी तरह, भिक्षुओ! वे प्राणी भी अल्प ही हैं जिनको तथागत का पुण्यदर्शन मिला हो, अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जिनको तथागत के दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला॥'' ●

६. ...पूर्ववत्... इसी तरह, भिक्षुओ! वे प्राणी भी अल्प ही हैं जो तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म का श्रवण कर चुके हैं; अपितु वे ही अधिक हैं जिनको तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-श्रवण का सौभाग्य नहीं मिला॥''

७. ...पूर्ववत्... इसी तरह, भिक्षुओ! वे प्राणी अल्प ही हैं जो तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म को सुनकर धारण करते हैं; अपितु, भिक्षुओ! वे ही अधिक हैं जो उसे सुनकर भी धारण नहीं कर पाते॥''

८. ...पूर्ववत्... इसी प्रकार, भिक्षुओ! वे प्राणी भी अल्प ही हैं, जिनने तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म को सुनकर धारण कर उसके अर्थ का चिन्तन-मनन करते हैं; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जो उसको सुनकर धारण करके भी उसके अर्थ का चिन्तन मनन नहीं करते॥''

९. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मं पटिपज्जन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये अत्थमञ्ञाय धम्मानुधम्मं न पटिपज्जन्ति॥

१०. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये संवेजनियेसु ठानेसु संविज्जन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये संवेजनियेसु ठानेसु न संविज्जन्ति॥

११. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये संविग्गा योनिसो पदहन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये संविग्गा योनिसो न पदहन्ति॥

१२. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये ववस्सग्गारम्मणं करित्वा लभन्ति समाधिं लभन्ति चित्तस्सेकग्गतं; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये ववस्सग्गारम्मणं करित्वा न लभन्ति समाधिं न चित्तस्सेकग्गतं॥

१३. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये अन्नग्गरसग्गानं लाभिनो; [N.37] अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये अन्नग्गरसग्गानं न लाभिनो, उञ्छेन कपालाभतेन यापेन्ति॥

१४. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये अत्थरसस्स धम्मरसस्स विमुत्तिरसस्स लाभिनो; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये अत्थरसस्स धम्मरसस्स विमुत्तिरसस्स न लाभिनो. तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'अत्थरसस्स [B.39] धम्मरसस्स विमुत्तिरसस्स लाभिनो भविस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खि-तब्बं ति॥

---

९. ...पूर्ववत्... इसी प्रकार, भिक्षुओ! वे प्राणी भी अल्प ही हैं जो अर्थ एवं धर्म को जानकर, धर्मानुसार साधना करते हैं; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जो धर्म को जानकर भी तदनुसार साधना नहीं करते॥"

१०. ...पूर्ववत्... इसी प्रकार, भिक्षुओ! वे प्राणी भी अल्प ही हैं जो संवेग (वैराग्य) योग्य स्थान प्राप्त कर, उनसे संवेग की प्रेरणा ले पाते हैं; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जो संवेग योग्य स्थान प्राप्त कर उनसे संवेग की प्रेरणा नहीं ले पाते॥"

११. ...पूर्ववत्... इसी प्रकार, भिक्षुओ! वे प्राणी भी अल्प ही हैं जो संविग्न होकर उस (धर्म) पर सूक्ष्मतया अन्वीक्षण करते हैं; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जो संविग्न होकर भी उस पर सूक्ष्मतया अन्वीक्षण नहीं कर पाते॥"

१२. ...पूर्ववत्... इसी प्रकार, भिक्षुओ! वे प्राणी भी अल्प ही हैं जो व्यवसर्ग (संन्यास) प्राप्त कर तदनुसार साधना करते हुए समाधि एवं चित्तनिरोध की स्थिति तक पहुँच पाते हैं; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जो व्यवसर्ग प्राप्त करके भी तदनुसार साधनारम्भ कर समाधि एवं चित्त की एकाग्रता तक नहीं पहुँच पाते॥"

१३. ...पूर्ववत्... जैसे, भिक्षुओ! वे प्राणी भी अल्प ही हैं जो उत्तम एवं रुचिकर भोजन कर पाते हैं; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जो उत्तम एवं रुचिकर भोजन न प्राप्त कर खाली कपाल (खप्पर=भिक्षापात्र) लिये हुए इधर उधर घूमते रह जाते हैं।

[R.37] **१५-१७.** ''सेय्यथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तकं इमस्मिं जम्बुदीपे आरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खरणीरामणेय्यकं; अथ खो एतदेव बहुतरं यदिदं उक्कूलविकूलं नदीविदुग्गं खाणुकण्टकट्ठानं पब्बतविसमं। एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये मनुस्सा चुता मनुस्सेसु पच्चाजायन्ति, अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये मनुस्सा चुता निरये पच्चाजायन्ति ...पे०... तिरच्छानयोनिया पच्चाजायन्ति ...पे०... पेत्तिविसये पच्चाजायन्ति''॥

१८-२०. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये मनुस्सा चुता देवेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये मनुस्सा चुता निरये पच्चाजायन्ति... तिरच्छानयोनिया पच्चाजायन्ति... पेत्तिविसये पच्चाजायन्ति॥

२१-२३. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये देवा चुता देवेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये देवा चुता निरये पच्चाजायन्ति... तिरच्छानयोनिया पच्चाजायन्ति... पेत्तिविसये पच्चाजायन्ति॥

२४-२६. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये देवा चुता मनुस्सेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये देवा चुता निरये पच्चाजायन्ति... तिरच्छानयोनिया पच्चाजायन्ति... पेत्तिविसये पच्चाजायन्ति॥

---

१४. ...पूर्ववत्... इसी प्रकार, भिक्षुओ! वे प्राणी भी अल्प ही हैं जो धर्म एवं उसके अर्थ का रस (स्वाद या तत्त्व) पाकर विमुक्ति रस का आनन्द ले पाते हैं; अपितु ऐसे ही प्राणी अधिक हैं जो धर्मरस एवं अर्थरस प्राप्त कर भी उसके सहारे से विमुक्ति रस का आनन्द नहीं ले पाते॥

१५-१७. ''भिक्षुओ! जैसे इस जम्बूद्वीप में सुन्दर उद्यान, मनोरम वन, मनोहर भूखण्ड अथवा रमणीय पुष्करणियाँ अल्पमात्रा में ही हैं, अधिक संख्या में तो, भिक्षुओ! नदियों के ऊँचे-नीचे किनारों, सूखे वृक्षों के ठूँठों (स्थाणुओं), एवं कँटीली झाड़ियों से युक्त सम विषम पर्वत ही हैं; उसी प्रकार, भिक्षुओ! यहाँ ऐसे प्राणी अल्प ही हैं जो अपना मनुष्यभाव का देहपात कर पुनः मनुष्य योनि में ही उत्पन्न हों; अपितु वे ही अधिक सङ्ख्या में हैं जो मानव देह से च्युत होकर निरय (दुर्गतिमय नरक) में गिरकर वहाँ उत्पन्न होते हैं...पशु-पक्षियोनि में उत्पन्न होते हैं... प्रेतयोनि में उत्पन्न होते हैं॥''

१८-२०. ...पूर्ववत्... भिक्षुओ! यहाँ ऐसे प्राणी अल्प ही हैं जो मनुष्यभाव से च्युत होकर देवयोनि में उत्पन्न होते हों; अपितु ऐसे ही प्राणियों की सङ्ख्या अधिक है जो मनुष्यभाव से च्युत होकर निरय में जाकर उत्पन्न होते हैं... या पशु-पक्षियों की योनियों में उत्पन्न होते हैं... या प्रेतयोनियों में उत्पन्न होते हैं॥''

२१-२३. ...पूर्ववत्... जो देवयोनि से च्युत होकर पुनः देवयोनि में ही उत्पन्न हों; अपितु ऐसे ही प्राणी अधिक हैं, जो देवत्व के देहपात के बाद निरय... पशुपक्षियों की योनि... प्रेतयोनि में उत्पन्न होते हैं॥''

२४-२६. ...पूर्ववत्... जो देवभाव से च्युत होकर मनुष्यभाव ही प्राप्त करते हों; अपितु

२७-२९. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये निरया चुता मनुस्सेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये निरया चुता निरये पच्चाजायन्ति... तिरच्छानयोनिया पच्चाजायन्ति... पेत्तिविसये पच्चाजायन्ति॥

३०-३२. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये निरया चुता देवेसु [N.38] पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये निरया चुता निरये पच्चाजायन्ति... तिरच्छानयोनिया पच्चाजायन्ति... पेत्तिविसये पच्चाजायन्ति॥

३३-३५. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये तिरच्छानयोनिया [B.40] चुता मनुस्सेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये तिरच्छानयोनिया चुता निरये पच्चाजायन्ति... तिरच्छानयोनिया पच्चाजायन्ति... पेत्तिविसये पच्चाजायन्ति॥

३६-३८. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये तिरच्छानयोनिया चुता देवेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये तिरच्छानयोनिया चुता निरये [R.38] पच्चाजायन्ति... तिरच्छानयोनिया पच्चाजायन्ति... पेत्तिविसये पच्चाजायन्ति॥

३९-४१. ...एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये पेत्तिविसया चुता मनुस्सेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये पेत्तिविसया चुता निरये पच्चाजायन्ति... तिरच्छानयोनिया पच्चाजायन्ति... पेत्तिविसये पच्चाजायन्ति॥

४२-४४. ''सेय्यथापि... एवमेव खो, भिक्खवे, अप्पका ते सत्ता ये पेत्तिविसया

ऐसे ही प्राणी अधिक हैं जो देवयोनि से च्युत होकर निरय में... पशुपक्षियों की योनियों में... प्रेतयोनियों में उत्पन्न होते हैं॥''

२७-२९. ...पूर्ववत्... जो निरय योनि से मुक्त होकर मनुष्यभाव को प्राप्त करते हों; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं, जो निरय से च्युत होकर पुनः निरय में ही ...पशु-पक्षियों की योनियों में... प्रेतयोनियों में उत्पन्न होते हैं॥''

३०-३२. ...पूर्ववत्... जो निरय से च्युत होकर देवताओं में उत्पन्न हों; अपितु ऐसे ही प्राणी अधिक हैं जो निरय से च्युत होकर पुनः निरय में ...पशु-पक्षियों की योनियों में... प्रेतयोनियों में उत्पन्न होते हैं॥''

३३-३५. ...पूर्ववत्... जो पशु-पक्षियोनि से च्युत होकर मनुष्यभाव को प्राप्त हों; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जो पशु-पक्षियोनि से च्युत होकर निरय में ...पशु-पक्षियों की योनि में... प्रेतयोनियों में उत्पन्न होते हैं॥''

३६-३८. ...पूर्ववत्... जो पशु-पक्षियोनि से च्युत होकर देवभाव को प्राप्त होते हों; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जो पशु-पक्षियोनि से च्युत होकर निरय में... पशु-पक्षियोनि में... प्रेतयोनि में उत्पन्न होते हैं॥''

३९-४१. ...पूर्ववत्... प्रेतभाव से च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न हों; अपितु वे ही प्राणी अधिक हैं जो प्रेतभाव से च्युत होकर निरय में... पशुपक्षियोनि में... प्रेतभाव में उत्पन्न होते हैं॥''

४२-४४. जैसे ...पूर्ववत्... प्रेतभाव से च्युत होकर देवभाव को प्राप्त होते हों, अपितु वे

चुता देवेसु पच्चाजायन्ति; अथ खो एतेव सत्ता बहुतरा ये पेत्तिविसया चुता निरये पच्चाजायन्ति... तिरच्छानयोनिया पच्चाजायन्ति... पेत्तिविसये पच्चाजायन्ति''॥ ●

१७. पसादकरधम्मवग्गो

१-१६. ''अद्धमिदं, भिक्खवे, लाभानं यदिदं आरञ्ञिकत्तं ...पे०... पिण्डपातिकत्तं... पंसुकूलिकत्तं... तेचीवरिकत्तं... धम्मकथिकत्तं... विनयधरत्तं... बाहुसच्चं... थावरेय्यं... आकप्पसम्पदा... परिवारसम्पदा... महापरिवारता... कोलपुत्ति... वण्णपोक्खरता... कल्याणवाक्करणता... अप्पिच्छता... अप्पाबाधता'' ति। ●

१८. अपरअच्छरासङ्घातवग्गो

[N.39, B.41] १. ''अच्छरासङ्घातमत्तं पि चे, भिक्खवे, भिक्खु पठमं झानं भावेति, अयं वुच्चति, भिक्खवे—'भिक्खु अरित्तज्झानो विहरति, सत्थुसासनकरो ओवादपतिकरो, अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति'। को पन वादो ये नं बहुलीकरोन्ती'' ति!॥

२-८. अच्छरासङ्घातमत्तं पि चे, भिक्खवे, भिक्खु दुतियं झानं भावेति ...पे०... ततियं झानं भावेति ...पे०... चतुत्थं झानं भावेति ...पे०... मेत्तं चेतोविमुत्तिं भावेति ...पे०...

ही प्राणी अधिक हैं जो प्रेतभाव से च्युत होकर निरय में... पशुपक्षियोनि में... प्रेतभाव में उत्पन्न होते हैं॥''

एकधर्मपालि षोडश सम्पन्न॥ ●

१७. प्रसादकरधर्मवर्ग

१-१६. ''भिक्षुओ! यह उस साधक के लाभ का आधा भाग ही समझना चाहिये कि यदि किसी को आरण्यक साधना की पूर्ण प्राप्ति हो जाय, ...पूर्ववत्... पिण्डपात साधना की... पांशुकूलिकता की... त्रैचीवरिकता की... धर्मवाचकता की... विनयधरता की... अतिशय विद्वत्ता की... स्थिरता (अचलता) की... आकल्प (सदाचार) सम्पदा की... परिवारसम्पदा की... महापरिवारता की... कुलपुत्रता की... वर्णपुष्कलता (सौन्दर्यातिशय) की... कल्याण (शुभ) वाक्पटुता की... अल्पेच्छता (सन्तोष) की... नीरोगता की पूर्ण प्राप्ति हो जाय। (पूर्ण लाभ तो उसे ही मानना चाहिये जब साधक को निर्वाण का साक्षात्कार हो जाये)॥'' ●

प्रसादकरधर्मवर्ग सप्तदश सम्पन्न॥

१८. अपरअप्सरासङ्घातवर्ग

१. ''भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु चुटकी बजाने मात्र के समय तक भी **प्रथम ध्यान की भावना** में स्थिर रह जाता है तो, भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु के लिये भी 'यह भिक्षु ध्यानभावना से रिक्त (खाली) नहीं हैं, शास्ता के आदेश का पालक है, शास्ता के अनुशासन को मानने वाला है, इसके द्वारा भिक्षा के द्वारा गृहीत राष्ट्र का अन्न व्यर्थ नहीं गया'— ऐसा कहा जा सकता है। फिर उनकी तो चर्चा ही क्या जो इस ध्यानभावना के सतत अभ्यास में लगे रहते हैं॥'' ●

२-८. ''भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु चुटकी बजाने मात्र के समय तक भी **द्वितीय ध्यान की भावना** में स्थिर रह जाता है ...पूर्ववत्... **तृतीय ध्यान की भावना** करता है ...पूर्ववत्... **चतुर्थ**

करुणं चेतोविमुत्तिं भावेति ...पे०... मुदितं चेतोविमुत्तिं भावेति ...पे०... उपेक्खं [R.39] चेतोविमुत्तिं भावेति ...पे०... ॥

९-१२. काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं ...पे०... वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति... चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति... धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति... चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति... धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं... ॥

१३-१६. अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति... उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति... अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति... उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति... ॥

१७-२०. छन्दसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति... विरियसमाधि-पधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति... चित्तसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति... वीमंसासमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति... ॥

ध्यान की भावना करता है ...पूर्ववत्... **मैत्रीचेतोविमुक्ति** ...पूर्ववत्... **करुणा चेतोविमुक्ति** ...पूर्ववत्... **मुदिताचेतोविमुक्ति** ...पूर्ववत्... **उपेक्षाचेतोविमुक्ति** की भावना में रत रहता है ...पूर्ववत्... फिर उसकी तो बात ही क्या जो इस भावना के सतत अभ्यास में रत रहता है॥'' ●

९-१२. ...पूर्ववत्... भिक्षु उद्योग के साथ, पूर्ण ध्यान रखता हुआ, स्मृतिमान् होकर, लोक सम्बन्धी अभिध्या (अतिलोभ) एवं दौर्मनस्य (पश्चात्ताप) को स्वचित्त से हटाकर **काया में कायानुपश्यना** (शरीर की वास्तविकता देखता हुआ) साधना करता है...पूर्ववत्... **वेदनाओं में वेदनानुपश्यना** की साधना करता है ...पूर्ववत्... **चित्त में चित्तानुपश्यना** की साधना करता है ...पूर्ववत्... उद्योग के साथ... **धर्मों में धर्मानुपश्यना** की साधना करता है ...पूर्ववत्... ॥

(चार स्मृतिप्रस्थान) ●

१३-१६. ...पूर्ववत्... भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों की उत्पत्ति न हों—एतदर्थ इच्छा करता है, उद्योग करता है, शक्ति लगाता है, चित्त का निग्रह करता है, एवं उस निग्रह के लिये प्रयास करता है ...पूर्ववत्... उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के विनाश हेतु इच्छा करता है ...पूर्ववत्... उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति के लिये, अक्षीणता के लिये, अधिकाधिक वृद्धि के लिये, विपुलता के लिये, अभ्यास के लिये एवं उनकी पूर्णता के लिये अपने मन में रुचि पैदा करता है, उद्योग करता है ...अभ्यास करता है ...पूर्ववत्... ॥ **(चार सम्यक्प्रधान)** ●

१७-२०. ...पूर्ववत्... भिक्षु छन्दसमाधिप्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है... चित्तसमाधिप्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है...वीर्य

२१-२५. सद्धिन्द्रियं भावेति... विरियिन्द्रियं भावेति... सतिन्द्रियं भावेति... समाधिन्द्रियं भावेति... पञ्ञिन्द्रियं भावेति... ॥

[N.41,B.42] २६-३०. सद्धाबलं भावेति... विरियबलं भावेति... सतिबलं भावेति... समाधिबलं भावेति... पञ्ञाबलं भावेति... ॥

[R.40] ३१-३७. सतिसम्बोज्झङ्गं भावेति... धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेति... विरियसम्बोज्झङ्गं भावेति... पीतिसम्बोज्झङ्गं भावेति... पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेति... समाधिसम्बोज्झङ्गं भावेति... उपेक्खासम्बोज्झङ्गं भावेति... ॥

३८-४५. सम्मादिट्ठिं भावेति... सम्मासङ्कल्पं भावेति... सम्मावाचं भावेति... सम्माकम्मन्तं भावेति... सम्माआजीवं भावेति... सम्मावायामं भावेति... सम्मासतिं भावेति... सम्मासमाधिं भावेति... ॥

४६-५३. अज्झत्तं रूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्णदुब्बण्णानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति—एवंसञ्ञी होति... अज्झत्तं रूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्णदुब्बण्णानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति—एवंसञ्ञी होति... अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्णदुब्बण्णानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति—एवंसञ्ञी होति... अज्झत्तं

समाधिप्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है ...मीमांसासमाधिप्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है ...पूर्ववत्... ॥ **(चार ऋद्धिपाद)** ●

२१-२५. ...पूर्ववत्... भिक्षु श्रद्धेन्द्रिय की भावना करता है ...पूर्ववत्... वीर्येन्द्रिय की... स्मृतीन्द्रिय की ...पूर्ववत्... समाधीन्द्रिय की... प्रज्ञेन्द्रिय की भावना करता है ...पूर्ववत्... ॥ **(पाँच इन्द्रिय भावना)** ●

२६-३०. ...पूर्ववत्... भिक्षु श्रद्धाबल की... वीर्यबल की... स्मृतिबल की... समाधिबल की... प्रज्ञाबल की भावना करता है ...पूर्ववत्... ॥ **(पाँच बल भावना)** ●

३१-३७. ...पूर्ववत्... भिक्षु स्मृति सम्बोध्यङ्ग की... धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग की... वीर्यसम्बोध्यङ्ग की... प्रीतिसम्बोध्यङ्ग की... प्रश्रब्धि सम्बोध्यङ्ग की... समाधि सम्बोध्यङ्ग की... उपेक्षा सम्बोध्यङ्ग की भावना करता है ...पूर्ववत्... ॥" **(सात सम्बोध्यङ्ग भावना)** ●

३८-४५. ...पूर्ववत्... भिक्षु सम्यग्दृष्टि की... सम्यक्सङ्कल्प की... सम्यग्वाक् की... सम्यक्कर्मान्त की... सम्यगाजीव की... सम्बग्व्यायाम की... सम्यक्स्मृति की... सम्यक्समाधि की भावना करता है ...पूर्ववत्... ॥" **(अष्टाङ्गिकमार्ग भावना)** ●

४६-५३. ...पूर्ववत्... १. कोई पुरुष अपने में रूपसंज्ञा का ध्यान करनेवाला होकर बाहर थोड़े से सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपों को देखता है, वह 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—ऐसी संज्ञा वाला होता है...पूर्ववत्... २. बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुवर्ण रूपों को देखता है, वह 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—ऐसी संज्ञा वाला होता है ...पूर्ववत्... ३. अपने में अरूप संज्ञा का ध्यान करने वाला होकर बाहर थोड़े से ...पूर्ववत्... ४. बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुवर्ण रूपों को

अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि नीलनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति—एवंसञ्ञी होति... अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीतवण्णानि पीतनिदस्सनानि पीतनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति—एवंसञ्ञी होति... अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि, लोहितकवण्णानि लोहितकनिदस्सनानिलोहितकनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति एवंसञ्ञी होति... अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदातानि ओदातवण्णानि ओदातनिदस्सनानि ओदातनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति—एवंसञ्ञी होति... ॥

५४-६१. रूपी रूपानि पस्सति... अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि [R.41] पस्सति सुभं तेव अधिमुत्तो होति... सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा अनन्तो आकासो ति आकासानञ्चायतनं [N.41] उपसम्पज्ज विहरति... सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म अनन्तं विञ्ञाणं ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति... सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म नत्थि [B.43] किञ्ची ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति... सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति... सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति... ॥

देखता है, वह 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—ऐसी संज्ञा वाला होता है ...पूर्ववत्... ५. बाहर नील, नीलवर्ण, नीलनिदर्शन एवं नीलनिर्भास रूपों को देखता है वह 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—ऐसी संज्ञावाला होता है ...पूर्ववत्... ६. बाहर पीत (पीला) पीतवर्ण, पीतनिदर्शन एवं पीतनिर्भास रूपों को देखता है, वह 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—ऐसी संज्ञा वाला होता है ...पूर्ववत्... ७. बाहर लोहित (लाल) लोहित वर्ण, लोहित निदर्शन, लोहित निर्भास रूपों को देखता है, वह 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—ऐसी संज्ञावाला होता है ...पूर्ववत्... ८. बाहर श्वेत, श्वेत वर्ण, श्वेत निदर्शन, श्वेत निर्भास रूपों को देखता है, वह 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—ऐसी संज्ञा वाला होता है...पूर्ववत्... ॥''

(आठ अभिभ्वायतन) ●

५४-६१. ...पूर्ववत्... १. रूपसंज्ञा वाला रूपों को देखता है ...पूर्ववत्... २. अपने में अरूपसंज्ञा का ध्यान करने वाला होकर बाहर रूपों को देखता है, वह उनको शुभ मानकर उनके प्रति अनुरक्त होता है ...पूर्ववत्... ३. समय आने पर रूपसंज्ञाओं का सर्वथा अतिक्रमण कर प्रविघ संज्ञाओं के सर्वथा अस्त हो जाने से, नानात्व संज्ञाओं को मन में न करने से 'आकाश-अनन्त है'—ऐसा मानकर आकाशानन्तयायतन की भावना करता है ...पूर्ववत्... आकाशानन्त्यायतन की भावना करता है ...पूर्ववत्... ५. ...विज्ञानानन्त्यायतन की साधना करता है ...पूर्ववत्... ६. विज्ञाना-नन्त्यायतन का भी सब ओर से सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ भी नहीं है'—ऐसा मानकर आकिञ्चन्यायतन की भावना करता है ...पूर्ववत्... ७. आकिञ्चन्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण

६२-७१. पथवीकसिणं भावेति... आपोकसिणं भावेति... तेजोकसिणं भावेति... वायोकसिणं भावेति... नीलकसिणं भावेति... पीतकसिणं भावेति... लोहितकसिणं भावेति... ओदातकसिणं भावेति... आकासकसिणं भावेति... विञ्ञाणकसिणं भावेति... ॥

७२-८१. असुभसञ्ञं भावेति... मरणसञ्ञं भावेति... आहारे पटिकूलसञ्ञं भावेति... सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञं भावेति... अनिच्चसञ्ञं भावेति... अनिच्चे दुक्खसञ्ञं भावेति... दुक्खे अनत्तसञ्ञं भावेति... पहानसञ्ञं भावेति... विरागसञ्ञं भावेति... निरोधसञ्ञं भावेति... ॥

८२-९१. अनिच्चसञ्ञं भावेति... अनत्तसञ्ञं भावेति... मरणसञ्ञं भावेति... [R.42] आहारे पटिरकूलसञ्ञं भावेति... सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञं भावेति... अट्ठिकसञ्ञं भावेति... पुळवकसञ्ञं भावेति... विनीलकसञ्ञं भावेति... विच्छिद्दकसञ्ञं भावेति... उद्धुमातकसञ्ञं भावेति... ॥

कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन (न संज्ञा है न असंज्ञा)—ऐसा मानकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की भावना करता है ...पूर्ववत्... नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध को सब कुछ मानकर उसी की भावना करता है ...पूर्ववत्... ॥ **(सात विज्ञानस्थितियाँ)** ●

६२-७१. ...पूर्ववत्... 'पृथ्वी ही सब कुछ है'—ऐसा मानकर **पृथ्वीकात्स्न्र्य** की भावना करता है... 'जल ही सब कुछ है'—ऐसा मानकर जलकात्स्न्र्य की भावना करता है ...पूर्ववत्... 'तेज ही सब कुछ है'—ऐसा मानकर **तेजःकात्स्न्र्य** की भावना करता है ...पूर्ववत्... 'वायु ही सब कुछ है'—ऐसा मानकर **वायुःकात्स्न्र्य** की भावना करता है ...पूर्ववत्... 'नीलवर्ण ही सब कुछ है'—ऐसा मानकर **नीलकात्स्न्र्य** की भावना करता है ...पूर्ववत्... 'पीतवर्ण ही सब कुछ है'—ऐसा मानकर **पीतकात्स्न्र्य** की भावना करता है ...पूर्ववत्... 'रक्तवर्ण ही सब कुछ है'—ऐसा मानकर **लोहितकात्स्न्र्य** की भावना करता है ...पूर्ववत्... 'श्वेतवर्ण ही सब कुछ है'—ऐसा मानकर **अवदातकात्स्न्र्य** की भावना करता है ...पूर्ववत्... 'आकाश ही सब कुछ है'—ऐसा मानकर **आकाशकात्स्न्र्य** की भावना करता है ...पूर्ववत्... 'विज्ञान ही सब कुछ है'—ऐसा मानकर **विज्ञानकात्स्न्र्य** की भावना करता है ...पूर्ववत्... ॥ **(दश कात्स्न्र्य)** ●

७२-८१. ...पूर्ववत्... शरीर में **अशुभसंज्ञा** की भावना करता है... **मरणसंज्ञा** की भावना करता है... **आहार में प्रतिकूलसंज्ञा** की भावना करता है... समस्त संसार में **अनभिरति** (अनुत्सुकता) की भावना करता है... **अनित्य संज्ञा** की भावना करता है... अनित्य पदार्थों में **दुःखसंज्ञा** की भावना करता है... दुःखोत्पादक पदार्थों में **अनात्मसंज्ञा** की भावना करता है... **प्रहाण** (नाश) **संज्ञा** की भावना करता है... **विरागसंज्ञा** की भावना करता है... **निरोधसंज्ञा की** भावना करता है...पूर्ववत्... ॥ **(दश संज्ञाएँ)** ●

८२-९१. ...पूर्ववत्... १. काया में **अनित्यसंज्ञा** की भावना करता है... २. **अनात्मसंज्ञा** की भावना करता है... ३. **मरणसंज्ञा** की भावना करता है... ४. **आहार में प्रतिकूल संज्ञा की** भावना करता है... ५. समस्त जगत् **अनभिरति** (अनुत्सुकता) की भावना करता है... ६. **'यह**

९२-१०१. बुद्धानुस्सतिं भावेति... धम्मानुस्सतिं भावेति... सङ्घानुस्सतिं भावेति... सीलानुस्सतिं भावेति... चागानुस्सतिं भावेति... देवतानुस्सतिं भावेति... आनापानस्सतिं भावेति... मरणस्सतिं भावेति... कायगतासतिं भावेति... उपसमानुस्सतिं भावेति... ॥

१०२-१११. पठमज्झानसहगतं सद्धिन्द्रियं भावेति... विरियिन्द्रियं [B.44] भावेति... सतिन्द्रियं भावेति... समाधिन्द्रियं भावेति... पञ्ञिन्द्रियं भावेति... [N.42] सद्धाबलं भावेति... विरियबलं भावेति... सतिबलं भावेति... समाधिबलं भावेति... पञ्ञाबलं भावेति... ॥

११२-१८१. ''दुतियज्झानसहगतं ...पे०... ततियज्झानसहगतं ...पे०... चतुत्थज्झानसहगतं ...पे०... मेत्तासहगतं ...पे०... करुणासहगतं ...पे०... मुदितासहगतं ...पे०... उपेक्खासहगतं ...पे०... सद्धिन्द्रियं भावेति... विरियिन्द्रियं भावेति... [R.43] सदिन्द्रियं भावेति... समाधिन्द्रियं भावेति... पञ्ञिन्द्रियं भावेति... सद्धाबलं भावेति... विरियबलं भावेति... सतिबलं भावेति... समाधिबलं भावेति... पञ्ञाबलं भावेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे,—'भिक्खु अरित्तज्झानो विहरति सत्थुसासनकरो ओवादपतिकरो, अमोघं रट्ठपिण्डं भुञ्जति'। को पन वादो ये नं बहुलीकरोन्ती'' ति!॥ ●

शरीर **हड्डियों का कङ्कालमात्र** है'—ऐसी भावना करता है... ७. 'यह शरीर **कीड़े पड़ने से सड़ गया** है'—ऐसी भावना करता है... ८. 'यह शरीर **नीला पड़ गया** है'—ऐसी भावना करता है... ९. 'यह शरीर **छिद्रों से भरा हुआ** है'—ऐसी भावना करता है... १०. 'यह शरीर विकृत होकर **फूल गया** है'—ऐसी भावना करता है ...पूर्ववत्... ॥''

(दश संज्ञाएँ) ●

९२-१०२. ...पूर्ववत्... **बुद्धानुस्मृति** की भावना करता है... **धर्मानुस्मृति** की भावना करता है... **सङ्घानुस्मृति** की भावना करता है... **शीलानुस्मृति** की भावना करता है... **त्यागानुस्मृति** की भावना करता है... **देवतानुस्मृति** की भावना करता है... **आनापानस्मृति** की भावना करता है... **मरणस्मृति** की भावना करता है... **कायगतस्मृति** की भावना करता है... **उपशमानुस्मृति** की भावना करता है ...पूर्ववत्... ॥''

(दश अनुस्मृतियाँ) ●

१०२-१११. ...पूर्ववत्... प्रथम ध्यानसहगत **श्रद्धेन्द्रिय** की भावना करता है... ...पूर्ववत्... **वीर्येन्द्रिय** की भावना करता है... **स्मृतीन्द्रिय** की भावना करता है... **समाधीन्द्रिय** की भावना करता है... **प्रज्ञेन्द्रिय** की भावना करता है... **श्रद्धाबल** की भावना करता है... **वीर्यबल** की भावना करता है... **स्मृतिबल** की भावना करता है... **समाधिबल** की भावना करता है... **प्रज्ञाबल** की भावना करता है...पूर्ववत्... ॥''

(पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल) ●

११२-१८१. ...पूर्ववत्... द्वितीय ध्यानसहगत...पूर्ववत्... तृतीय ध्यानसहगत...पूर्ववत्... चतुर्थ ध्यानसहगत ...पूर्ववत्... मैत्रीसहगत ...पूर्ववत्... करुणासहगत ...पूर्ववत्... मुदितासहगत ...पूर्ववत्... उपेक्षासहगत ...पूर्ववत्... **श्रद्धेन्द्रिय** की भावना करता है... **वीर्येन्द्रिय** की भावना करता है... **स्मृतीन्द्रिय** की भावना करता है... **समधीन्द्रिय** की भावना करता है... प्रज्ञेन्द्रिय की भावना करता है... **श्रद्धाबल** की भावना करता है... **वीर्यबल** की भावना करता है...

१९. कायगतासतिवग्गो

१. ''यस्स कस्सचि, भिक्खवे, महासमुद्दो चेतसा फुटो अन्तोगधा तस्स कुन्नदियो या काचि समुद्दङ्गमा; एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगता सति भाविता बहुलीकता अन्तोगधा तस्स कुसला धम्मा ये केचि विज्जाभागिया'' ति॥

२-८. ''एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुलीकतो महतो संवेगाय संवत्तति... महतो अत्थाय संवत्तति... महतो योगक्खेमाय संवत्तति... सतिसम्पजञ्ञाय संवत्तति... ञाणदस्सनप्पटिलाभाय संवत्तति... दिट्ठधम्मसुखविहाराय संवत्तति... विज्जाविमुत्ति-फलसच्छिकिरियाय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? कायगता सति। अयं खो, भिक्खवे, एकधम्मो भावितो बहुलीकतो महतो संवेगाय संवत्तति, महतो अत्थाय संवत्तति, महतो योगक्खेमाय संवत्तति, सतिसम्पजञ्ञाय संवत्तति, ञाणदस्सनप्पटिलाभाय संवत्तति, दिट्ठधम्मसुखविहाराय संवत्तति, विज्जाविमुत्तिफलसच्छिकिरियाय संवत्तती'' ति॥

[B.45] ९. ''एकधम्मं, भिक्खवे, भाविते बहुलीकते कायो पि पस्सम्भति, चित्तं पि पस्सम्भति, वितक्कविचारा पि वूपसम्मन्ति, केवला पि विज्जाभागिया धम्मा भावनापारिपूरिं

स्मृतिबल की भावना करता है... **समाधिबल** की भावना करता है... **प्रज्ञाबल** की भावना करता है। ऐसे भिक्षु के लिये भिक्षुओ! 'यह भिक्षु ध्यानभावना से रिक्त नहीं है, शास्ता के आदेश का पालन करता है, शास्त्र के अनुशासन को मानने वाला है, इसके द्वारा भिक्षा में गृहीत राष्ट्र का अन्न भी व्यर्थ नहीं गया'—ऐसा कहा जा सकता है। फिर उन (भिक्षु) की तो चर्चा ही क्या जो इस ध्यानभावना के सतत अभ्यास में लगे रहते हैं॥''

अपर अप्सरासङ्घातवर्ग अष्टादश सम्पन्न॥ ●

१९. कायगतस्मृतिवर्ग

१. ''भिक्षुओ! जैसे कोई भिक्षु अपने मन में किसी महासमुद्र का चिन्तन करे तो छोटी मोटी महानदियाँ भी, जो समुद्र की ओर जाती है, उस चिन्तन के अन्तर्गत आ ही गयीं; उसी तरह, भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु ने **कायगता स्मृति की भावना** कर ली है, उसका अभ्यास कर लिया है, तो उसके वे कुशलधर्म भी, जो विद्या के कारण उद्भूत होते हैं, उस कायगता स्मृति के अन्तर्गत ही समझे जाने चाहिये॥'' ●

२-८. ''भिक्षुओ! यह एक धर्म भावना किये जाने पर, अभ्यास किये जाने पर, अत्यधिक संवेग (वैराग्य) के लिये होता है... महान् प्रयोजन का साधक होता है... अतिशय योगक्षेम का संवाहक होता है... स्मृति सम्प्रजन्य में सहायक होता है... इससे ज्ञानदर्शन का प्रतिलाभ भी मिलता है... सुखसाधना में प्रत्यक्ष फल दिखायी देता है... विद्या-विमुक्तिफल के साक्षात्कार में भी यह एक धर्म सहायक होता है। वह एक धर्म कौन-सा है? वह है **कायगता स्मृति**। भिक्षुओ! यह एक धर्म भावना किये जाने पर ...पूर्ववत्... साक्षात्कार में भी सहायक होता है॥'' ●

९. ''भिक्षुओ! इस एक धर्म की भावना किये जाने पर, अभ्यास किये जाने पर काय एवं चित्त शान्त हो जाते हैं, वितर्क एवं विचारों का व्युपशमन (शान्ति) हो जाती है। एकमात्र विद्या पर

गच्छन्ति। कतमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सतिया। इमस्मिं खो, भिक्खवे, [R.44] एकधम्मे भाविते बहुलीकते कायो पि पस्सम्भति, चित्तं पि पस्सम्भति,वितक्क- [N.43] विचारा पि वूपसम्मन्ति, केवला पि विज्जाभागिया धम्मा भावनापारिपूरिं गच्छन्ती'' ति॥

१०. ''एकधम्मे, भिक्खवे, भाविते बहुलीकते अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा नुप्पज्जन्ति, उप्पन्ना च अकुसला धम्मा पहीयन्ति। कतमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सतिया। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भाविते बहुलीकते अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा नुप्पज्जन्ति, उप्पन्ना च अकुसला धम्मा पहीयन्ती'' ति॥

११. ''एकधम्मे, भिक्खवे, भाविते बहुलीकते अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति, उप्पन्ना च कुसला धम्मा भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तन्ति। कतमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सतिया। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भाविते बहुलीकते अनुप्पन्ना चेव कुसला धम्मा उप्पज्जन्ति, उप्पन्ना च कुसला धम्मा भिय्योभावाय वेपुल्लाय पहीयन्ती'' ति॥

१२. ''एकधम्मे, भिक्खवे, भाविते बहुलीकते अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति, अस्मिमानो पहीयति, अनुसया समुग्घातं गच्छन्ति, संयोजना पहीयन्ति। कतमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सतिया। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भाविते बहुलीकते अविज्जा पहीयति, विज्जा उप्पज्जति, अस्मिमानो पहीयति, अनुसया समुग्घातं गच्छन्ति, संयोजना पहीयन्ती'' ति॥

आधृत रहनेवाले धर्म भी भावित होने लगते हैं। किस एक धर्म की साधना करने पर? इसी **कायगता स्मृति** की साधना करने पर। भिक्षुओ! इस एक धर्म की भावना करने पर ...पूर्ववत्... विद्या पर आधृत रहने वाले धर्म भी भावित होने लगते हैं॥'' ●

१०. ''भिक्षुओ! एक धर्म की साधना करते रहने पर, अभ्यास करते रहने पर, अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न नहीं हो पाते तथा उत्पन्न अकुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं। कौन से एक धर्म की? इसी **कायगता स्मृति** की। भिक्षुओ! इस एक धर्म की साधना करते रहने पर ...पूर्ववत्... अकुशल धर्म प्रहीण होने लगते हैं॥'' ●

११. ''भिक्षुओ! एक धर्म की भावना करते रहने पर, अभ्यास करते रहने पर, अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं तथा उत्पन्न कुशल पुनः पुनः बढ़ने लगते हैं। किस एक धर्म की भावना करने पर? इसी **कायगता स्मृति** की भावना करने पर। भिक्षुओ! इस एक धर्म की साधना करने पर ...पूर्ववत्... कुशल धर्म पुनः पुनः बढ़ने लगते हैं॥'' ●

१२. ''भिक्षुओ! एक धर्म की साधना करने पर, दृढ अभ्यास करने पर अविद्या प्रहीण होने लगती है, विद्या उत्पन्न हो जाती है। ममत्व नष्ट हो जाता है, अनुशय (चित्त की कुपथगामी प्रवृत्तियाँ) विनाश के कगार पर पहुँच जाते हैं तथा संयोजन (बन्धन) भी विनष्ट होने लगते हैं। कौन से एक धर्म की? **कायगता स्मृति** की। भिक्षुओ! इस एक धर्म की ...पूर्ववत्... संयोजन विनष्ट होने लगते हैं॥'' ●

१३-१४. ''एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुलीकतो पञ्ञापभेदाय संवत्तति... अनुपादापरिनिब्बानाय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? कायगता सति। अयं खो, भिक्खवे, एकधम्मो भावितो बहुलीकतो पञ्ञापभेदाय संवत्तति, अनुपादापरिनिब्बानाय संवत्तती'' ति।

[B.46] १५-१७. ''एकधम्मे, भिक्खवे, भाविते बहुलीकते अनेकधातुपटिवेधो होति... नानाधातुपटिवेधो होति... अनेकधातुपटिसम्भिदा होति। कतमस्मिं एकधम्मे? कायगताय सतिया। इमस्मिं खो, भिक्खवे, एकधम्मे भाविते बहुलीकते अनेकधातुपटिवेधो होति, नानाधातुपटिवेधो होति, अनेकधातुपटिसम्भिदा होती'' ति।

१८-२१. ''एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुलीकतो सोतापत्तिफलसच्छि-[N.44, R.45] किरियाय संवत्तति... सकदागामिफलसच्छिकिरियाय संवत्तति... अनागामिफलसच्छिकिरियाय संवत्तति... अरहत्तफलसच्छिकिरियाय संवत्तति। कतमो एकधम्मो? कायगता सति। अयं खो, भिक्खवे, एकधम्मो भावितो बहुलीकतो सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय संवत्तति, सकदागामिफलसच्छिकिरियाय संवत्तति, अनागामिफलसच्छिकिरियाय संवत्तति, अरहत्तफलसच्छि- किरियाय संवत्ती'' ति॥

२२-३७. ''एकधम्मो, भिक्खवे, भावितो बहुलीकतो पञ्ञापटिलाभाय संवत्तति ...पञ्ञाबुद्धिया संवत्तति... पञ्ञावेपुल्लाय संवत्तति... महापञ्ञताय संवत्तति... पुथुपञ्ञताय संवत्तति... विपुलपञ्ञताय संवत्तति... गम्भीरपञ्ञताय संवत्तति... असमन्तपञ्ञताय संवत्तति... भूरिपञ्ञताय संवत्तति... पञ्ञाबाहुल्लाय संवत्तति... सीघपञ्ञताय संवत्तति... लहुपञ्ञताय संवत्तति... हासपञ्ञताय संवत्तति... जवनपञ्ञताय संवत्तति... तिक्खपञ्ञ-

---

१३-१४. ''भिक्षुओ! एक धर्म की साधना करने पर प्रज्ञा का विस्तार (प्रभेद) होने लगता है...अनुपादा परिनिर्वाण की प्राप्ति असन्दिग्ध हो जाती है। कौन से एक धर्म की? इसी **कायगता स्मृति** की। भिक्षुओ! यदि कोई साधक इस एक धर्म की साधना भलीभाँति कर ले तो उसकी प्रज्ञा का विस्तार होने लगता है तथा उसके अनुपादाय परिनिर्वाण की प्राप्ति असन्दिग्ध हो जाती है॥'' ●

१५-१७. ''भिक्षुओ! एक धर्म की साधना करने पर, उसका अभ्यास करने पर, साधक का अनेक धातुओं में अन्त:प्रवेश (प्रतिवेध) हो जाता है, नाना धातुओं में अन्त:प्रवेश हो जाता है, अनेक धातुओं का ज्ञान हो जाता है। किस एक धर्म की? **कायगता स्मृति** की। भिक्षुओ! इस एक धर्म की साधना करने पर ...पूर्ववत्... ज्ञान हो जाता है॥''

●

१८-२१. ''भिक्षुओ! यह एक धर्म साधना किये जाने पर, दृढ़ अभ्यास किये जाने पर, स्रोतआपत्तिफल का, सकृदागामिफल का, अनागामिफल का, अर्हत्त्वफल का साक्षात्कार करा देता है। कौन सा एक धर्म की? **कायगता स्मृति**। भिक्षुओ! इस एक धर्म ...पूर्ववत्... अर्हत्त्वफल का साक्षात्कार करा देता है॥''

●

२२-३७. ''भिक्षुओ! एक धर्मसाधना करने पर, अभ्यास करने पर प्रज्ञा की प्राप्ति... प्रज्ञावृद्धि... प्रज्ञा की विपुलता... महाप्रज्ञता... प्रज्ञा का विस्तार... प्रज्ञा की अधिकता... गम्भीर

ताय संवत्तति... निब्बेधिकपञ्ञताय संवत्तति। कतमो एकधम्मो ? कायगता सति। अयं खो, भिक्खवे, एकधम्मो भावितो बहुलीकतो पञ्ञापटिलाभाय संवत्तति, पञ्ञावुद्धिया संवत्तति, पञ्ञावेपुल्लाय संवत्तति, महापञ्ञताय संवत्तति, पुथुपञ्ञताय संवत्तति, विपुलपञ्ञताय संवत्तति, गम्भीरपञ्ञताय संवत्तति, असमन्तपञ्ञताय संवत्तति, भूरिपञ्ञताय संवत्तति, पञ्ञाबाहुल्लाय संवत्तति, सीघपञ्ञताय संवत्तति, लहुपञ्ञताय संवत्तति, हासपञ्ञताय संवत्तति, जवनपञ्ञताय संवत्तति, तिक्खपञ्ञताय संवत्तति, निब्बेधिकपञ्ञताय संवत्तति''॥

२०. अमतवग्गो

१. ''अमतं ते, भिक्खवे, न परिभुञ्जन्ति ये कायगतासतिं न परिभुञ्जन्ति। [B.47] अमतं ते, भिक्खवे, परिभुञ्जन्ति ये कायगतासतिं परिभुञ्जन्ती'' ति॥

२. ''अमतं तेसं, भिक्खवे, अपरिभुत्तं येसं कायगतासति अपरिभुत्ता। अमतं तेसं, भिक्खवे, परिभुत्तं येसं कायगतासति परिभुत्ता'' ति॥

३. ''अमतं तेसं, भिक्खवे, परिहीनं येसं कायगतासति परिहीना। अमतं [N.45] तेसं, भिक्खवे, अपरिहीनं येसं कायगतासति अपरिहीना'' ति॥

४. ''अमतं तेसं, भिक्खवे, विरद्धं येसं कायगतासति विरद्धा। अमतं तेसं, [R.46] भिक्खवे, आरद्धं येसं कायगतासति आरद्धा'' ति॥

प्रज्ञता, अतुलनीय प्रज्ञता... भूरिप्रज्ञता... प्रज्ञा की बहुलता... शीघ्रप्रज्ञता... लघु (सूक्ष्म) प्रज्ञता... प्रसन्नप्रज्ञता... वेग (जवन) प्रज्ञता... तीक्ष्णप्रज्ञता... निर्वेधिक (अन्तःप्रवेश=सूक्ष्मविचार) प्रज्ञता का लाभ करा देता है। कौन सा एक धर्म ? यही **कायगता स्मृति**। यह, भिक्षुओ! एक धर्म प्रज्ञा की प्राप्ति ...पूर्ववत्... निर्वेधिक प्रज्ञता का लाभ करा देता है॥''**कायगता स्मृति एकोनविंश सम्पन्न॥**

२०. अमृतवर्ग

१. ''भिक्षुओ! वे साधक अमृत (निर्वाण) का परिभोग (उपयोग) नहीं कर पाते जो कायगता स्मृति की साधना नहीं करते। अपितु, भिक्षुओ! वे ही साधक अमृत का परिभोग कर पाते हैं जो कायगता स्मृति की साधना कर लेते हैं॥''

२. ''भिक्षुओ! वे साधक अमृत (निर्वाण) का परिभोग ...पूर्ववत्... जो कायगता स्मृति की साधना कर लेते हैं॥''

३. ''भिक्षुओ! वे साधक अमृत से विहीन ही रहेंगे जिनने कायगता स्मृति की साधना नहीं की है। अपितु वे साधक अमृत से विहीन नहीं रहेंगे जिनने कायगता स्मृति की साधना पूर्ण कर ली है॥''

४. ''भिक्षुओ! वे साधक अमृतप्राप्ति से चूक ही जायँगे जो कायगता स्मृति की साधना से चूक गये हैं। भिक्षुओ! वस्तुतः अमृतत्व की अधिगति उन ही साधकों को होगी जो कायगता स्मृति की साधना पूर्ण कर चुके हैं॥''

५. "अमतं ते, भिक्खवे, पमादिंसु ये कायगतासतिं पमादिंसु। अमतं ते, भिक्खवे, न पमादिंसु ये कायगतासतिं पमादिंसु" ति॥

६. "अमतं तेसं, भिक्खवे, पमुट्ठं येसं कायगतासति पमुट्ठा। अमतं तेसं, भिक्खवे, अप्पमुट्ठं येसं कायगतासति अप्पमुट्ठा" ति॥

७. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अनासेवितं येसं कायगतासति अनासेविता। अमतं तेसं, भिक्खवे, आसेवितं येसं कायगतासति आसेविता" ति॥

८. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अभावितं येसं कायगतासति अभाविता। अमतं तेसं, भिक्खवे, भावितं येसं कायगतासति भाविता" ति॥

९. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अबहुलीकतं येसं कायगतासति अबहुलीकता। अमतं तेसं, भिक्खवे, बहुलीकतं येसं कायगतासति बहुलीकता" ति॥

१०. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अनभिञ्ञातं येसं कायगतासति अनभिञ्ञाता। अमतं तेसं, भिक्खवे, अभिञ्ञातं येसं कायगतासति अभिञ्ञाता" ति॥

११. "अमतं तेसं, भिक्खवे, अपरिञ्ञातं येसं कायगतासति अपरिञ्ञाता। अमतं तेसं, भिक्खवे, परिञ्ञातं येसं कायगतासति परिञ्ञाता" ति॥

---

५. "भिक्षुओ! अमृतत्व की प्राप्ति में उनका प्रमाद (भूल) ही माना जायगा जो कायगता स्मृति की साधना में प्रमाद कर बैठे हैं। भिक्षुओ! अमृतत्व की प्राप्ति में उससे प्रमाद नहीं होगा जिनसे कायगता स्मृति में प्रमाद नहीं हुआ है॥" ●

६. "भिक्षुओ! ऐसा समझो कि अमृतत्व उन साधकों से छिन गया जिनने कायगता स्मृति की साधना नहीं की। भिक्षुओ! अमृतत्व उनको ही मिल पायगा जिनने कायगता स्मृति की साधना पूर्ण की है॥" ●

७. "भिक्षुओ! वे साधक अमृतत्व का उपभोग नहीं कर सकते जिनने कायगता स्मृति की साधना न की हो। अपितु, भिक्षुओ! वे ही साधक अमृत का उपभोग कर सकते हैं जिनने कायगता स्मृतिपूर्ण कर ली है॥" ●

८. "भिक्षुओ! वे साधक अमृतत्व क्या प्राप्त कर पायेंगे जिनने कायगता स्मृति की साधन न की हो। भिक्षुओ! अमृतत्व तो वे ही प्राप्त कर पायेंगे जिनने कायगता स्मृति की साधना पूर्ण कर ली हो॥" ●

९. "भिक्षुओ! वे साधक अमृतत्व का अभ्यास नहीं ही कर पायेंगे जिनने कायगता स्मृति का अभ्यास न किया हो। भिक्षुओ! कायगता स्मृति का अभ्यास करने वाले ही अमृतत्व का अभ्यास कर पायेंगे॥" ●

१०. "भिक्षुओ! उन साधकों के लिये अमृतत्व भी अनभिज्ञात (सर्वथा अज्ञात) रह जायगा जिनने कायगता स्मृति का साधना द्वारा भलीभाँति ज्ञान नहीं किया है। भिक्षुओ! कायगता स्मृति का साधना द्वारा भलीभाँति ज्ञान करने वाले को ही अमृतत्व सर्वथा ज्ञात हो पायगा॥" ●

११. "भिक्षुओ! अमृतत्व उनके लिये सर्वथा अपरिज्ञात ही रह जायगा जिनको कायगता

१२. ''अमतं तेसं, भिक्खवे, असच्छिकतं येसं कायगतासति असच्छिकता। अमतं तेसं, भिक्खवे, सच्छिकतं येसं कायगतासति सच्छिकता'' ति॥

इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

एककनिपातो निट्ठितो॥

स्मृति परिज्ञात नहीं है। भिक्षुओ! कायगता स्मृति के परिज्ञाता साधक ही अमृतत्व के परिज्ञाता हो सकेंगे॥''

१२. ''भिक्षुओ! अमृतत्व उनके लिये असाक्षात्कृत ही रह जायगा, जिनने कायगता स्मृति का, साधना द्वारा, साक्षात्कार नहों किया हो। अपितु, भिक्षुओ! वे ही साधक अमृत का साक्षात्कार कर पायेंगे जिनने साधना द्वारा कायगता स्मृति का साक्षात्कार कर लिया है॥''

अमृतवर्ग बीसवाँ सम्पन्न॥

एकक निपात का व्याख्यान समाप्त॥

२. दुकनिपातो

१. कम्मकारणवग्गो

पठमपण्णासको

[N.46,B.49,R.47] **१. वज्जसुत्तं।** एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''द्वेमानि, भिक्खवे, वज्जानि। कतमानि द्वे? दिट्ठधम्मिकं च वज्जं सम्परायिकं च वज्जं।

कतमं च, भिक्खवे, दिट्ठधम्मिकं वज्जं? इध, भिक्खवे, एकच्चो पस्सति चोरं आगुचारिं राजानो गहेत्वा विविधा कम्मकारणा कारेन्ते; कसाहि पि ताळेन्ते, वेत्तेहि पि ताळेन्ते, अद्धदण्डकेहि पि ताळेन्ते, हत्थं पि छिन्दन्ते, पादं पि छिन्दन्ते, हत्थपादं पि छिन्दन्ते, कण्णं पि छिन्दन्ते, नासं पि छिन्दन्ते, हत्थपादं पि छिन्दन्ते, कण्णनासं पि छिन्दन्ते, विलङ्गथालिकं पि करोन्ते, सङ्खमुण्डकं पि करोन्ते, राहुमुखं पि करोन्ते, जोतिमालिकं पि [R.48] करोन्ते, हत्थपज्जोतिकं पि करोन्ते, एरकवत्तिकं पि करोन्ते, चीरकवासिकं पि [B.50] करोन्ते, एणेय्यकं पि करोन्ते, बळिसमंसिकं पि करोन्ते, कहापणिकं पि करोन्ते,

---

द्विक निपात

१. कर्मकारणवर्ग

प्रथम पञ्चाशत्क

१. वर्ज्यसूत्र : : **द्विविध निषिद्ध कर्म**

ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान ने 'भिक्षुओ' सम्बोधन से (जेतवनाराम में उपस्थित) भिक्षुओं को बुलाया। भिक्षु भी 'भन्ते' कहकर भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। (तब) भगवान् यों बोले—

''भिक्षुओ! ये दो वर्ज्य (दोष=निषिद्ध कर्म) हैं। कौन से दो? १. दृष्टधार्मिक (ऐहलौकिक) वर्ज्य एवं २. साम्परायिक (पारलौकिक) वर्ज्य। भिक्षुओ! इनमें दृष्टधार्मिक वर्ज्य कौन सा है? भिक्षुओ! यहाँ कोई (दर्शक) राजपुरुषों द्वारा विविध दण्ड देते हुए कुछ चौरों को देखें; उनमें कुछ कोड़ों से पीटे जा रहे हों, कुछ बेतों से पीटे जा रहे हों ...पूर्ववत्... तलवार से सिर काटा जा रहा हो।[१]

---

१. द्र०—म० नि० प्र० भा० पृ० १३० महादुःखस्कन्धसूत्र।

खारापतच्छिकं पि करोन्ते, पलिघपरिवत्तिकं पि करोन्ते, पलालपीठकं पि करोन्ते, तत्तेन पि तेलेन ओसिञ्चन्ते, सुनखेहि पि खादापेन्ते, जीवन्ते पि सूले उत्तासेन्ते, असिना पि सीसं छिन्दन्ते।''

''तस्स एवं होति—'यथारूपानं खो पापकानं कम्मानं हेतु चोरं आगुचारिं राजानो गहेत्वा विविधा कम्मकारणा कारेन्ति; कसाहि पि ताळेन्ति, वेत्तेहि पि ताळेन्ति, अद्धदण्डकेहि पि ताळेन्ति, हत्थं पि छिन्दन्ति, पादं पि छिन्दन्ति, हत्थपादं पि छिन्दन्ति, कण्णं पि छिन्दन्ति, नासं पि छिन्दन्ति, कण्णनासं पि छिन्दन्ति, विलङ्गथालिकं पि करोन्ति, सङ्खमुण्डिकं पि करोन्ति, राहुमुखं पि करोन्ति, जोतिमालिकं पि करोन्ति, हत्थपज्जोतिकं पि करोन्ति, एरकवत्तिकं पि करोन्ति, चीरकवासिकं पि करोन्ति, एणेय्यकं पि करोन्ति, बळिसमंसिकं पि करोन्ति, कहापणिकं पि करोन्ति, खारापतच्छिकं पि करोन्ति, पलिघपरिवत्तिकं पि करोन्ति, पलालपीठकं पि करोन्ति, तत्तेन पि तेलेन ओसिञ्चन्ति, सुनखेहि पि खादापेन्ति, जीवन्तं पि सूले उत्तासेन्ति, असिना पि सीसं छिन्दन्ति। अहं [N.47] चेव खो पन एवरूपं पापकम्मं करेय्यं, मं पि राजानो गहेत्वा एवरूपा विविधा कम्मकारणा कारेय्युं; कसाहि पि ताळेय्युं ...पे०... असिना पि सीसं छिन्देय्युं' ति। सो दिट्ठधम्मिकस्स वज्जस्स भीतो न परेसं पाभतं विलुम्पन्तो चरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, दिट्ठधम्मिकं वज्जं।'' (१)

''कतमं च, भिक्खवे, सम्परायिकं वज्जं? इध, भिक्खवे, एकच्चो इति पटिसञ्चिक्खति—'कायदुच्चरितस्स खो पन पापको दुक्खो विपाको अभिसम्परायं, वचीदुच्चरितस्स पापको दुक्खो विपाको अभिसम्परायं, मनोदुच्चरितस्स पापको दुक्खो विपाको अभिसम्परायं। अहं चेव खो पन कायेन दुच्चरितं चरेय्यं, वाचाय दुच्चरितं चरेय्यं, मनसा दुच्चरितं चरेय्यं। किं च तं याहं न कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्यं' ति। सो सम्परायिकस्स वज्जस्स भीतो कायदुच्चरितं पहाय [R.49]

''उस दर्शक को, राजपुरुषों के उस कर्म को देखकर, यह विचार हो—'जिन पापकर्मों के कारण ये राजपुरुष इस अपराधी चौर को विविध अपराधों के विषय में यह दण्ड दे रहे हैं—कि कोड़ों से पीट रहे हैं, बेंतों से पीट रहे हैं ...पूर्ववत्... तलवार से सिर काट रहे हैं; हो सकता है, यदि मैं ऐसा पापकर्म करूँ तो मुझको भी ये यही दण्ड देने लगें—कोड़ों से भी... तलवार से मेरा सिर काटने लगें।' इस प्रकार, इस प्रत्यक्ष आपराधिक दण्ड से भयत्रस्त होकर, वह दूसरों की वस्तुएँ चोरना लूटना छोड़ दे। भिक्षुओ! यह **दृष्टधार्मिक वर्ज्य** कहलाता है। (१)

''और, भिक्षुओ! साम्परायिक (पारलौकिक) वर्ज्य क्या है? भिक्षुओ! जैसे कोई साधक जिज्ञासु यह विचार करने लगे—'कायिक दुराचार का परलोक में जाने पर यह पापमय फल मिलता है, वाचसिक दुराचार का यह पापमय फल मिलता है, मानसिक दुराचार का यह पापमय परिणाम भोगना पड़ता है। अत: मैं भी यदि ऐसा कायिक दुराचार, वाचसिक दुराचार या मानसिक दुराचार

कायसुचरितं भावेति, वचीदुच्चरितं पहाय वचीसुचरितं भावेति, मनोदुच्चरितं पहाय मनोसुचरितं भावेति, सुद्धं अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, सम्परायिकं वज्जं।'' (२)

''इमानि खो, भिक्खवे, द्वे वज्जानि। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'दिट्ठधम्मिकस्स वज्जस्स भायिस्साम, सम्परायिकस्स वज्जस्स भायिस्साम, वज्जभीरुनो भविस्साम वज्जभयदस्साविनो' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं। [B.51] वज्जभीरुनो, भिक्खवे, वज्जभयदस्साविनो एतं पाटिकङ्खं यं परिमुच्चिस्सति सब्बवज्जेही'' ति॥

२. पधानसुत्तं। ''द्वेमानि, भिक्खवे, पधानानि दुरभिसम्भवानि लोकस्मिं। कतमानि द्वे ? यं च गिहीनं अगारं अज्झावसतं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानपच्चयभेसज्ज-परिक्खारानुप्पदानत्थं पधानं, यं च अगारस्मा अनगारियं पब्बजितानं सब्बूपधिपटि-निस्सग्गत्थं पधानं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे पधानानि दुरभिसम्भवानि लोकस्मिं।''

''एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं पधानानं यदिदं सब्बूपधिपटिनिस्सग्गत्थं पधानं। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'सब्बूपधिपटिनिस्सग्गत्थं पधानं पदहिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

करूँगा तो क्या यह नहीं होगा कि इस देहपात के बाद, मरणानन्तर मैं भी अपायभूत दुर्गतिमय नरकयोनि में उत्पन्न होऊँ'। इस तरह चिन्तन करता हुआ वह साधक इस साम्परायिक भय से त्रस्त होकर, कायदुराचारों का त्याग कर कायिक सदाचारों में प्रवृत्त हो जाय; वाचसिक दुराचारों को त्याग कर वाचसिक सदाचार में प्रवृत्त हो जाय, तथा मानसिक दुराचारों को त्याग कर मानसिक सदाचारों का आचरण करे। स्वयं को निर्दोष बना ले। यह **साम्परायिक वर्ज्य** है। (२)

''इस तरह, भिक्षुओ! ये दो वर्ज्य (त्याज्य दोष) गिना दिये गये। अत: भिक्षुओ! हमें ऐसे चिन्तन का अभ्यास करना चाहिये—'लौकिक आपराधिक दोषों से दूर रहेंगे, पारलौकिक दोषों से दूर रहेंगे। हम स्वयं दोषों से भय मानेंगे तथा दूसरों को भी दोषों से भय मानने हेतु प्रेरित करेंगे।' भिक्षुओ! हमें ऐसे चिन्तन का अभ्यास करना चाहिये। भिक्षुओ! ऐसे दोषों से भय मानने वाले तथा दूसरों को ऐसी प्रेरणा देनेवाले साधक से यही आशा करनी चाहिये कि वह एक न एक दिन सभी दोषों से दूर हो जायगा।''

●

२. प्रधानसूत्र : : द्विविध प्रयास

''भिक्षुओ! लोक में ये द्विविध प्रयास अतिशय कठिनता से आचरणीय हो पाते हैं। कौन से दो ? प्रथम यह कि गृहस्थ धर्म का आचरण करते हुए गृहस्थों द्वारा दूसरों को वस्त्र, भोजन, मकान, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएँ देने के लिये अधिकाधिक त्याग का प्रयास; एवं २. घर छोड़कर बेघर हुए परिव्राजकों द्वारा सब प्रकार की मानसिक आसक्तियों के त्याग का अधिकाधिक प्रयास। भिक्षुओ! ये दो प्रयास लोक में अतिशय कठिनता से हो पाते हैं।

''इन दोनों में भी (परिव्राजकों द्वारा) सर्वविध मानसिक आसक्तियों के त्याग का प्रयास

३. तपनीयसुत्तं। ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा तपनीया। कतमे द्वे? इध, [N.48] भिक्खवे, एकच्चस्स कायदुच्चरितं कतं होति, अकतं होति कायसुचरितं; वचीदुच्चरितं कतं होति; अकतं होति वचीसुचरितं; मनोदुच्चरितं कतं होति, अकतं होति मनोसुचरितं। सो 'कायदुच्चरितं मे कतं' ति तप्पंति, 'अकतं मे कायसुचरितं' ति तप्पति; 'वचीदुच्चरितं मे कतं' ति तप्पति, 'अकतं मे वचीसुचरितं' ति तप्पति; 'मनोदुच्चरितं मे कतं ति' तप्पति, 'अकतं मे मनोसुचरितं' ति तप्पति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा तपनीया'' ति॥

४. अतपनीयसुत्तं। ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा अतपनीया। कतमे द्वे? इध, [R.50] भिक्खवे, एकच्चस्स कायसुचरितं कतं होति, अकतं होति कायदुच्चरितं; वचीसुचरितं कतं होति, अकतं होति वचीदुच्चरितं; मनोसुचरितं कतं होति, अकतं होति मनोदुच्चरितं। सो 'कायसुचरितं मे कतं' ति न तप्पति, 'अकतं मे कायदुच्चरितं' ति न तप्पति; 'वचीसुचरितं मे कतं' ति न तप्पति, 'अकतं मे वचीदुच्चरितं' ति न तप्पति; 'मनोसुचरितं मे कतं' ति न तप्पति, 'अकतं मे मनोदुच्चरितं' ति न तप्पति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा अतपनीया'' ति॥

५. उपञ्ञातसुत्तं। ''द्विन्नाहं, भिक्खवे, धम्मानं उपञ्ञासिं—या च [B.52] असन्तुट्ठिता कुसलेसु धम्मेसु, या च अप्पटिवानिता पधानस्मिं। अप्पटिवानं सुदाहं,

---

अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। अत: भिक्षुओ! हमें यह सीखना चाहिये—'सर्वविध आसक्तियों के त्याग का प्रयास अधिक से अधिक करेंगे।' भिक्षुओ! हमें यह सीखना चाहिये॥''

३. तपनीयसूत्र : : द्विविध तपनीय

''भिक्षुओ! ये दो तपनीय (अनुताप के कारण) धर्म है। ये दो कौन से? यहाँ, भिक्षुओ! किसी पुरुष द्वारा कायदुराचार ही किया गया हो, कायसदाचार नहीं; वाचसिक दुराचार ही किया गया हो, वाचसिक सदाचरण नहीं; मानसिक दुराचार ही किया गया हो, मानसिक सदाचरण नहीं। वह 'मैंने कायदुराचार किया'—ऐसा मन में अनुताप (पश्चात्ताप) करता है; 'मैंने इस काया से कोई सदाचरण नहीं किया'—ऐसा अनुताप करता है; 'मैंने वाचसिक दुराचार ही किया, वाचसिक सदाचार नहीं किया'—ऐसा अनुताप करता है; 'मैंने मानसिक दुराचार ही किया, मानसिकसदाचरण नहीं'—ऐसा अनुताप करता है। भिक्षुओ! इस प्रकार ये दो धर्म तपनीय (अनुताप के हेतु) हैं॥''

४. अतपनीयसूत्र : : द्विविध अतपनीय

''भिक्षुओ! ये दो अतपनीय (अनुताप के अहेतु) धर्म हैं। कौन से दो? भिक्षुओ! यहाँ किसी पुरुष द्वारा कायिक सदाचरण ही किया गया हो, कायिक दुराचार नहीं; वाचसिक सदाचारण ही किया हो, वाचसिक दुराचार नहीं; मानसिक सदाचार ही किया हो, मानसिक दुराचार नहीं। वह 'मैंने कायिक सदाचार ही किया कायिक दुराचार नहीं'—ऐसा अनुताप नहीं करता; 'मैंने वाचसिक सदाचरण ही किया, वाचसिक दुराचार नहीं'—ऐसा अनुताप नहीं करता; मैंने मानसिक सदाचार का ही पालन किया, न कि मानसिक दुराचरण का'—ऐसा अनुताप नहीं करता। भिक्षुओ! ये दो धर्म अतपनीय (पश्चात्ताप के अयोग्य) हैं॥''

भिक्खवे, पदहामि—'कामं तचो च न्हारु च अट्ठि च अवसिस्सतु, सरीरे उपसुस्सतु मंसलोहितं, यं तं पुरिसथामेन पुरिसविरियेन पुरिसपरक्कमेन पत्तब्बं न तं अपापुणित्वा विरियस्स सण्ठानं भविस्सती' ति। तस्स मय्हं, भिक्खवे, अप्पमादाधिगता सम्बोधि, अप्पमादाधिगतो अनुत्तरो योगक्खेमो। तुम्हे चे पि, भिक्खवे, अप्पटिवानं पदहेय्याथ— 'कामं तचो च न्हारु च अट्ठि च अवसिस्सतु, सरीरे उपसुस्सतु मंसलोहितं, यं तं पुरिसथामेन पुरिसविरियेन पुरिसपरक्कमेन पत्तब्बं न तं अपापुणित्वा विरियस्स सण्ठानं भविस्सती' ति, तुम्हे पि, भिक्खवे, नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथ। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'अप्पटिवानं [N.49] पदहिस्साम। कामं तचो च न्हारु च अट्ठि च अवसिस्सतु, सरीरे उपसुस्सतु मंसलोहितं, यं ते पुरिसथामेन पुरिसविरियेन पुरसिपरक्कमेन पत्तब्बं न तं अपापुणित्वा विरियस्स सण्ठानं भविस्सती' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

६. **संयोजनसुत्तं।** ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? या च संयोजनियेसु धम्मेसु अस्सादानुपस्सिता, या च संयोजनियेसु धम्मेसु निब्बिदानुपस्सिता। संयोजनियेसु, भिक्खवे, [R.51] धम्मेसु, अस्सादानुपस्सी विहरन्तो रागं न पजहति, दोसं न पजहति, मोहं न

---

५. उपज्ञातसूत्र : : दो धर्मों का दृढ़ अभ्यास

''भिक्षुओ! मैंने इन दो धर्मों का दृढ़ अभ्यास किया है—१. कुशल धर्मों की प्राप्ति में असन्तोष तथा २. प्रयास करने में पीछे न हटना। भिक्षुओ! मैं 'लक्ष्य की प्राप्ति में पीछे न हटना' इसे कहता हूँ—'भले ही मेरी समस्त त्वचा, न्हारु (स्नायु=रक्तवाहिनी धमनी), अस्थियाँ शुष्क हो जायँ, मेरे शरीर का समस्त मांस एवं रक्त समाप्त हो जाय, तो भी मैं एक पुरुष की शक्ति (बल) एवं सामर्थ्य से, पुरुष के पराक्रम से जो भी प्राप्तव्य है, उसे प्राप्त करके ही रहूँगा, प्राप्ति से पूर्व मैं अपना प्रयास रोकूँगा नहीं।' इसीलिये, भिक्षुओ! मैंने यह जो सम्बोधि तथा यह अद्वितीय योगक्षेम प्राप्त किया है, वह इसी अप्रमाद के कारण प्राप्त किया है। अतः भिक्षुओ! तुम भी यदि इस 'प्रयास करने में पीछे न हटना' धर्म को—'भले ही मेरी समस्त त्वचा ...पूर्ववत्... अपना प्रयास रोकूँगा नहीं' स्वीकार कर इसकी साधना में तत्पर हो जाओगे तो, भिक्षुओ! तुम भी—जिसके लिये कुलपुत्र सर्वथा गृहत्याग कर संन्यासमय प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं—उस अद्वितीय धर्म को इसी जन्म में स्वयं जानकर, उसका साक्षात्कार कर भिक्षुभाव से साधना कर सकोगे। इसलिये, भिक्षुओ! तुम्हें यह सीखना चाहिये—'लक्ष्य की प्राप्ति में पीछे नहीं हटेंगे, भले ही हमारे शरीर की समस्त त्वचा, स्नायु ...पूर्ववत्... प्राप्ति से पूर्व अपना प्रयास रोकूँगा नहीं।' भिक्षुओ! तुम्हें यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये॥''

●

६. संयोजनसूत्र : : दो संयोजनीय धर्म

''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं। कौन से दो? पहला यह जो संयोजनीय धर्मों में आस्वाद (आसक्ति) दर्शन और दूसरा उन संयोजनीय धर्मों में विरक्ति। भिक्षुओ! संयोजनीय धर्मों में

पजहति। रागं अप्पहाय, दोसं अप्पहाय, मोहं अप्पहाय न परिमुच्चति जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि। न परिमुच्चति दुक्खस्मा ति वदामि।

''संयोजनियेसु, भिक्खवे, धम्मेसु निब्बिदानुपस्सी विहरन्तो रागं पजहति, दोसं पजहति, मोहं पजहति। रागं पहाय, दोसं पहाय, मोहं पहाय, परिमुच्चति जातिया [B.53] जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि। परिमुच्चति दुक्खस्मा ति वदामि। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा'' ति॥

७. **कण्हसुत्तं**।''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा कण्हा। कतमे द्वे? अहिरिकं च अनोत्तप्पं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा, कण्हा'' ति॥

८. **सुक्कसुत्तं**।''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा सुक्का। कतमे द्वे? हिरी च ओत्तप्पं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा, सुक्का'' ति॥

९. **चरियसुत्तं**।''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा सुक्का लोकं पालेन्ति। कतमे द्वे? हिरी च ओत्तप्पं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे सुक्का धम्मा लोकं न पालेय्युं, नयिध पञ्ञायेथ माता ति वा मातुच्छा ति वा मातुलानी ति वा आचरियभरिया ति वा गरूनं दारा ति वा। सम्भेदं लोको अगमिस्स, यथा अजेळका कुक्कुटसूकरा सोणसिङ्गाला। यस्मा च खो, भिक्खवे, इमे द्वे सुक्का धम्मा लोकं पालेन्ति तस्मा पञ्ञायति माता ति वा मातुच्छा ति वा मातुलानी ति वा आचरियभरिया ति वा गरूनं दारा ति वा'' ति॥

आसक्ति रखने वाला न राग छोड़ पाता है, न द्वेष छोड़ पाता है, न मोह छोड़ पाता है। इन राग, द्वेष एवं मोह को न छोड़ पाने के कारण वह जाति जरा मरण शोक परिदेव दुःख एवं दौर्मनस्य से भी छुटकारा नहीं पा सकता। वह 'दुःख' से नहीं छूट सकता—ऐसा मैं कहता हूँ।

संयोजनीय धर्मों वैराग्य (या ग्लानि) की भावना रखनेवाला राग, द्वेष, मोह—तीनों से मुक्ति पा जाता है। तब वह इन तीनों से मुक्ति पाने के कारण जाति जरामरण आदि से भी मुक्त हो जाता है। वह दुःख से छूट जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ। भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं॥'' ●

७. कृष्ण सूत्र : : दो कृष्ण धर्म

''भिक्षुओ! ये दो धर्म कृष्ण कहलाते हैं। कौन से दो? एक अह्री (लज्जा का अभाव) तथा दो अनवत्राप्य (पापभीरुता का अभाव)। भिक्षुओ! ये दो धर्म कृष्ण कहलाते हैं॥'' ●

८. शुक्ल सूत्र : : दो शुक्ल धर्म

''भिक्षुओ! ये दो धर्म शुक्ल कहलाते हैं। कौन से दो? एक लज्जा एवं दो अवत्राप्य (पापभीरुता)। भिक्षुओ! ये दो धर्म शुक्ल कहलाते हैं॥'' ●

९. चर्या सूत्र : : दो चर्या

''भिक्षुओ! ये दो शुक्ल धर्म लोक (की परम्परा) का पालन (रक्षा) करते हैं। कौन से दो? पहला—लज्जा एवं दूसरा—भय। भिक्षुओ! यदि ये दो शुक्ल धर्म न होते तो यहाँ न कोई माता को 'माता' समझता, न मौसी को 'मौसी', न मामी को 'मामी', न आचार्यपत्नी को 'आचार्यभार्या' और न गुरुभार्या को 'गुरुभार्या'। यह लोक विखण्डित हो जाता। इस मानव=समाज की वही दशा हो

[N.51] **१०. वस्सूपनायिकसुत्तं।** ''द्वेमा, भिक्खवे, वस्सूपनायिका। कतमा द्वे? पुरिमिका च पच्छिमिका च। इमा खो, भिक्खवे, द्वे वस्सूपनायिका'' ति॥

कम्मकरणवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

[R.52] वज्जा पधाना द्वे तपनीया, उपञ्ञातेन पञ्चमं।
संयोजनं च कण्हं च, सुक्कं चरिया वस्सूपनायिकेन वग्गो॥

२. अधिकरणवग्गो

[B.54] **१.** ''द्वेमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि द्वे? पटिसङ्खानबलं च भावनाबलं च। कतमं च, भिक्खवे, पटिसङ्खानबलं? इध, भिक्खवे, एकच्चो इति पटिसञ्चिक्खति—'कायदुच्चरितस्स खो पापको विपाको दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च, वचीदुच्चरितस्स पापको विपाको दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च, मनोदुच्चरितस्स पापको विपाको दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं चा' ति। सो इति पटिसङ्खाय कायदुच्चरितं पहाय कायसुचरितं भावेति, वचीदुच्चरितं पहाय वचीसुचरितं भावेति, मनोदुचरितं पहाय मनोसुचरितं भावेति, सुद्धं अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, पटिसङ्खानबलं।

''कतमं च, भिक्खवे, भावनाबलं। तत्र, भिक्खवे, यमिदं भावनाबलं सेखानमेतं बलं। सेखं हि सो, भिक्खवे, बलं आगम्म रागं पजहति, दोसं पजहति, मोहं पजहति। रागं

जाती जो भेड़ बकरियों की है, मुर्गे और सूअरों की है, या कुत्ते और शृगालों की है। क्योंकि भिक्षुओ! ये दो धर्म लोक की रक्षा कर रहे हैं इसीलिये माता को माता के स्थान पर, मौसी को मौसी के स्थान पर, मामी को मामी के स्थान पर तथा आचार्यपत्नी एवं गुरुपत्नी को आचार्यपत्नी एवं गुरुपत्नी के पवित्र स्थान पर देखा जाता है॥''

१०. वर्षोपनायिका सूत्र : : **दो वर्षोपनायिका**

''भिक्षुओ! ये दो वर्षोपनायिका (चतुर्मासव्रत के बाद का उपोसथदिवस) होती हैं। कौन सी दो? एक पहली तथा दो पीछे वाली। भिक्षुओ! ये दो वर्षोपनायिका होती हैं॥''

कर्मकारणवर्ग प्रथम सम्पन्न॥

२. अधिकरणवर्ग

दो बल : १. भिक्षुओ! ये दो बल हैं—१. प्रतिसङ्ख्यान (चिन्तन) बल एवं २. भावनाबल। भिक्षुओ! इनमें **प्रतिसङ्ख्यानबल** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई सज्जन यों चिन्तन करता है—'कायदुराचार, वाग्दुराचार एवं मनोदुराचार—इन तीनों के, प्रत्येक के दो-दो फल होते हैं—प्रत्यक्ष (इसी लोक में) भी तथा मरणोत्तर (परलोक में) भी।' वह इस प्रकार चिन्तन कर कायसुचरित की, वाक्सुचरित की, मनःसुचरित की ही भावना करता है। तथा स्वयं को शुद्ध सच्चरित्र बना लेता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—प्रतिसङ्ख्यानबल॥'' (१)

भिक्षुओ! **भावनाबल,** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! यह भावनाबल शैक्ष्य (साधना के

पहाय, दोसं पहाय, मोहं पहाय यं अकुसलं न तं करोति, यं पापं न तं सेवति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, भावनाबलं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे बलानी'' ति॥

२. ''द्वेमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि द्वे? पटिसङ्खानबलं च भावनाबलं च। कतमं च, भिक्खवे, पटिसङ्खानबलं? इध, भिक्खवे, एकच्चो इति पटिसञ्चिक्खति— 'कायदुच्चरितस्स खो पापको विपाको दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च, वचीदुच्चरितस्स पापको विपाको दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च, मनोदुच्चरितस्स पापको विपाको दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं चा' ति। सो इति पटिसङ्खाय कायदुच्चरितं पहाय कायसुचरितं [N.51] भावेति, वचीदुच्चरितं पहाय वचीसुचरितं भावेति, मनोदुच्चरितं पहाय मनोसुचरितं भावेति, सुद्धे अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, पटिसङ्खानबलं।

''कतमं च, भिक्खवे, भावनाबलं? इध, भिक्खवे, भिक्खु सतिसम्बोज्झङ्गं [R.53] भावेति विवेकसिस्सितं निरोधनिस्सितं वोसग्गपरिणामिं, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेति... विरियसम्बज्झङ्गं भावेति... पीतिसम्बोज्झङ्गं भावेति... पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेति... समाधिसम्बोज्झङ्गं भावेति... उपेक्खासम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोसग्गपरिणामिं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, भावनाबलं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे बलानी'' ति॥

३. ''द्वेमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि द्वे? पटिसङ्खानबलं च भावनाबलं च। कतमं च, भिक्खवे, पटिसङ्खानबलं ? इध, भिक्खवे, एकच्चो इति पटिसञ्चिक्खति-

---

उन्नतिपथ पर आरूढ़) साधकों का बल कहलाता है। यह शैक्ष्य साधक भावनाबल के सहारे से सांसारिक राग, द्वेष एवं मोह का परित्याग कर पाता है। वह इन राग, द्वेष, मोह का परित्याग कर जो अकुशल है जो पापमय कर्म है उसको नहीं करता। भिक्षुओ! यह कहलाता है भावनाबल। भिक्षुओ! ये दो बल होते हैं॥ (२) ●

अन्य दो बल : २. भिक्षुओ! शास्त्र में यहाँ दो बल (व्याख्यानभेद से) था अन्य भी परिगणित हैं। कौन से दो? एक प्रतिसङ्ख्यान बल एवं दो भावनाबल। भिक्षुओ! यहाँ **प्रतिसङ्ख्यानबल** कौन सा है? कोई सज्जन यों चिन्तन करता है—'कायदुराचार...पूर्ववत्... मनोदुश्चरित का त्याग कर मन:सदाचार की ही भावना करता है। इस तरह वह स्वयं को शुद्ध सच्चरित्र बना लेता है। यह कहलाता है—प्रतिसंङ्ख्यानबल।' (१)

''अथ च, भिक्षुओ! **भावनाबल** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु विवेक वैराग्य एवं निरोध पर आधृत एवं व्यवसर्ग (त्याग) परिणाम वाले स्मृतिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है... धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग की... वीर्यसम्बोध्यङ्ग की... प्रीतिसम्बोध्यङ्ग की... प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग की... समाधिसम्बोध्यङ्ग की... उपेक्षासम्बोध्यङ्ग की भावना करता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है— भावनाबल। भिक्षुओ! ये दो बल इस प्रकार भी कहलाते हैं॥'' (२) ●

अन्य दो बल : ३. ''भिक्षुओ! ये दोनों बल अन्यथा भी व्याख्यात हैं। कौन से दो? एक

[B.55] 'कायदुच्चरितस्स खो पापको विपाको दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च, वचीदुच्चरितस्स खो पापको विपाको दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च, मनोदुच्चरितस्स खो पापको विपाको दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं चा' ति। सो इति पटिसङ्खाय कायदुच्चरितं पहाय कायसुचरितं भावेति, वचीदुच्चरितं पहाय वचीसुचरितं भावेति, मनोदुच्चरितं पहाय मनोसुचरितं भावेति, सुद्धं अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, पटिसङ्खानबलं।

"कतमं च, भिक्खवे, भावनाबलं? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि, विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। [N.52] सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, भावनाबलं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे बलानी" ति॥

४. "द्वेमा, भिक्खवे, तथागतस्स धम्मदेसना। कतमा द्वे? सङ्खित्तेन च वित्थारेन च। इमा खो, भिक्खवे, द्वे तथागतस्स धम्मदेसना" ति॥

प्रतिसङ्ख्यानबल, एवं दूसरा भावनाबल। इनमें **प्रतिसङ्ख्यानबल** कौन है? यहाँ भिक्षुओ! कोई सज्जन यों चिन्तन करता है—'कायदुराचार, वाग्दुराचार एवं मनोदुराचार के दो-दो फल होते हैं— प्रत्यक्ष भी एवं पारलौकिक भी।' वह ऐसा चिन्तन कर कायदुराचार का त्याग करता हुआ कायिक सदाचार की साधना में लग जाता है, वाग्दुराचार... मनोदुराचार का त्याग करता हुआ मनःसदाचार की साधना में लग जाता है। और इस तरह वह स्वयं को शुद्ध सच्चरित्र बना लेता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—प्रतिसङ्ख्यानबल। (१)

"भिक्षुओ! **भावनाबल** क्या होता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहकर वितर्क विचार सहित, प्रीतिसुखयुक्त प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है; २. कुछ समय बाद, अभ्यास करते करते, वितर्क एवं विचारों का व्युपशम (शान्ति) हो जाने के बाद आध्यात्मिक सम्प्रसाद से चित्त की एकाग्रता (एकोदिभाव) एवं वितर्क-विचाररहित समाधिजन्य प्रीतिसुखयुक्त द्वितीय ध्यान प्राप्त कर साधना करता है; ३. फिर धीरे-धीरे प्रीति से भी वैराग्य हो जाने पर स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक उपेक्षामय सुख का काया से अनुभव करता है, जिसके विषय में आर्यजनों का कथन है—'वह स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ, उपेक्षक रहता हुआ सुखपूर्वक विहार (साधना) करता है'—ऐसे तृतीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है; ४. और अन्त में शनैः शनैः सुख-दुःख के प्रहाण से, पहले ही सौमनस्य दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से उपेक्षा एवं स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—भावनाबल। भिक्षुओ! ये दो बल कहलाते हैं॥" (२)

५. ''यस्मिं, भिक्खवे, अधिकरणे आपन्नो च भिक्खु चोदको च भिक्खु न साधुकं अत्तना व अत्तानं पच्चवेक्खति तस्मेतं, भिक्खवे, अधिकरणे पाटिकङ्खं दीघत्ताय [B.56, खरत्ताय वाळत्ताय संवत्तिस्सति, भिक्खु च न फासुं विहरिस्सन्ती ति। यस्मिं च खो, R,54] भिक्खवे, अधिकरणे आपन्नो च भिक्खु चोदको च भिक्खु साधुकं अत्तना व अत्तानं पच्चवेक्खति तस्मेतं, भिक्खवे, अधिकरणे पाटिकङ्खं न दीघत्ताय खरत्ताय वाळत्ताय संवत्तिस्सति, भिक्खु च फासुं विहरिस्सन्ती'' ति।

''कथं च, भिक्खवे, आपन्नो भिक्खु साधुकं अत्तना व अत्तानं पच्चवेक्खति? इध, भिक्खवे, आपन्नो भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खो अकुसलं आपन्नो कञ्चिदेव देसं कायेन। मं सो भिक्खु अद्दस अकुसलं आपज्जमानं कञ्चिदेव देसं कायेन। नो चे अहं अकुसलं आपज्जेय्यं कञ्चिदेव देसं कायेन, न मं सो भिक्खु पस्सेय्य अकुसलं आपज्जमानं कञ्चिदेव देसं कायेन। यस्मा च खो, अहं अकुसलं आपन्नो कञ्चिदेव देसं कायेन, तस्मा मं सो भिक्खु अद्दस अकुसलं आपज्जमानं कञ्चिदेव देसं कायेन। दिस्वा च पन मं सो भिक्खु अकुसलं आपज्जमानं कञ्चिदेव देसं कायेन अनत्तमनो अहोसि। अनत्तमनो समानो अनत्तमनवचनं मं सो भिक्खु अवच। अनत्तमनवचनाहं तेन भिक्खुना वुत्तो समानो अनत्तमनो अहोसिं। अनत्तमनो समानो परेसं आरोचेसिं। इति ममेव तत्थ अच्चयो अच्चगमा

तथागत की देशना : ४. ''भिक्षुओ! तथागत की देशना (उपदेश) दो प्रकार की होती है— १. संक्षिप्त एवं २. विस्तृत। इस तरह, भिक्षुओ! तथागत की देशना द्विविध कहलाती है॥'' ●

द्विविध विवाद : ५. ''भिक्षुओ! जिस विवाद में सम्पृक्त भिक्षु या आरोपकर्ता भिक्षु—दोनों ही शुद्ध चित्त से उस विवाद पर विचार नहीं करते, भिक्षुओ! उस विवाद में यही आशा करनी चाहिये कि वह बहुत समय तक चलेगा, उसमें रूक्ष (असभ्य) एवं मूर्खतापूर्ण संवाद होंगे। तथा वे भिक्षु भी सुखपूर्वक साधना में मन नहीं लगा सकेंगे। तथा भिक्षुओ! जिस विवाद में विवादापन्न एवं आरोपकर्ता—दोनों ही भिक्षु उस विवाद पर शुद्ध चित्त से चिन्तन करते हैं तो समझ लो कि वह बहुत समय तक नहीं चलेगा, उसमें रूक्ष एवं मूर्खतापूर्ण संवाद भी नहीं होंगे। वे भिक्षु भी अपनी अपनी साधना में सुविधापूर्व मन लगा सकेंगे।

कैसे, भिक्षुओ! विवाद में सम्पृक्त (विवादापन्न) भिक्षु शुद्धचित्त से उस विवाद पर विचार नहीं करता? यहाँ, भिक्षुओ! वह विवादापन्न भिक्षु यों विचार (चिन्तन) करता है—'मैं शारीरिक रूप से इस अकुशल (पापमय) धर्म से कुछ ही अंश में सम्पृक्त हुआ हूँ। आरोपकर्ता भिक्षु ने भी मुझको इतने ही अंश में देखा है। यदि मैं इतने ही अंश में उस पापमय कर्म सम्पृक्त न होता तो यह आरोपकर्ता भिक्षु भी क्या मुझे उतने अंश में देख पाता। क्योंकि मैं उतने ही अंश में उस पाप से सम्पृक्त हुआ हूँ अत: यह आरोपकर्ता भिक्षु भी मुझे उतने अंश में देख पाया है। उतने अंश में मुझको उस पापमय अकुशल से सम्पृक्त देखकर, यह मुझसे असन्तुष्ट (या अप्रसन्न) हो गया, तथा इसने असन्तुष्ट होकर ने मुझको अवाच्य (कटु) वचन बोले। उस असन्तुष्ट भिक्षु द्वारा ऐसा किया जाने पर मैं भी असन्तुष्ट (क्रुद्ध) हो गया, तब मैंने भी क्रुद्ध होकर उसको अपवचन कहे तथा दूसरे भिक्षुओं

सुङ्कदायकं व भण्डस्मिं' ति। एवं खो, भिक्खवे, आपन्नो भिक्खु साधुकं अत्तना व अत्तानं पच्चवेक्खति।

"कथं च, भिक्खवे, चोदको भिक्खु साधुकं अत्तना व अत्तानं पच्चवेक्खति? इध, भिक्खवे, चोदको भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'अयं खो भिक्खु अकुसलं आपन्नो [N.53] कञ्चिदेव देसं कायेन। अहं इमं भिक्खुं अद्दसं अकुसलं आपज्जमानं कञ्चिदेव देसं कायेन। नो चे अयं भिक्खु अकुसलं आपज्जेय्य कञ्चिदेव देसं कायेन, नाहं इमं भिक्खुं [R.55] पस्सेय्यं अकुसलं आपज्जमानं कञ्चिदेव देसं कायेन। यस्मा च खो, अयं भिक्खु अकुसलं आपन्नो कञ्चिदेव देसं कायेन, तस्मा अहं इमं भिक्खुं अद्दसं अकुसलं आपज्जमानं कञ्चिदेव देसं कायेन। दिस्वा च पनाहं इमं भिक्खुं अकुसलं आपज्जमानं कञ्चिदेव देसं [B.57] कायेन अनत्तमनो अहोसिं। अनत्तमनो समानो अत्तमनवचनाहं इमं भिक्खुं अवचं। अनत्तमनवचनायं भिक्खु मया वुत्तो समानो अनत्तमनो अहोसि। अनत्तमनो समानो परेसं आरोचेसि। इति ममेव तत्थ अच्चयो अच्चगमा सुङ्कदायकं व भण्डस्मिं' ति। एवं खो, भिक्खवे, चोदको भिक्खु साधुकं अत्तना व अत्तानं पच्चवेक्खति।

"यस्मिं, भिक्खवे, अधिकरणे आपन्नो च भिक्खु चोदको च भिक्खु न साधुकं अत्तना व अत्तानं पच्चवेक्खति तस्मेतं, भिक्खवे, अधिकरणे पाटिकङ्खं दीघत्ताय खरत्ताय वाळत्ताय संवत्तिस्सति, भिक्खू च न फासुं विहरिस्सन्ती ति। यस्मिं च खो, भिक्खवे, अधिकरणे आपन्नो च भिक्खु चोदको च भिक्खु साधुकं अत्तना व अत्तानं पच्चवेक्खति तस्मेतं, भिक्खवे, अधिकरणे पाटिकङ्खं न दीघत्ताय खरत्ताय वाळत्ताय संवत्तिस्सति, भिक्खू च फासु विहरिस्सन्ती" ति॥

६. अथ खो अञ्ञतरो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता

से इस अधिकरण की चर्चा की। अतः मैं ही वहाँ सभ्यता की सीमा उसी तरह लाँघ गया, जैसे कोई लोभी भाण्ड व्यापारी किसी भाण्ड पर कर देते समय व्यापार की सीमा लाँघ जाता है।' भिक्षुओ! यदि वह विवादापन्न भिक्षु इस प्रकार चिन्तन करता है तो वह अपने विषय में उचित ही चिन्तन करता है। (क)

कैसे, भिक्षुओ! आरोपकर्ता भिक्षु शुद्धचित्त से उस विवाद पर विचार करता है? यहाँ, भिक्षुओ! वह आरोपकर्ता भिक्षु उस विवाद पर यों चिन्तन करता है—'यह भिक्षु इस अकुशल कर्म में शारीरिक रूप से कुछ ही अंश में सम्पृक्त हो गया था।...पूर्ववत्... जैसे कोई लोभी व्यापारी क्रययोग्य भाण्ड पर कर देते समय व्यापार की सीमा लाँघ जाता है।'

"हाँ, भिक्षुओ! जिस विवाद में उक्त दोनों ही भिक्षु अपने अपने मन में शुद्ध तथा चिन्तन नहीं करते तो वह विवाद दीर्घकाल तक... सुखपूर्वक साधना नहीं कर सकेंगे। परन्तु यदि वे दोनों अपने अपने मन में इस विवाद पर साधुतया विचार करेंगे तो इस विवाद की दीर्घकाल तक चलने की सम्भावना नहीं रहेगी, तथा वे दोनों भिक्षु भी अपनी साधना सुखपूर्वक कर सकेंगे॥" (ख)●

सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ती" ति?

"अधम्मचरियाविसमचरियाहेतु खो, ब्राह्मण, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ती" ति।

"को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती" ति?

"धम्मचरियासमचरियाहेतु खो, ब्राह्मण, एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स [N.54, R.56] भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती" ति।

"अभिक्कन्तं, भो गोतम! अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति; एवमेव भोता गोतमेन अनेक-परियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ [B.58]

७. अथ खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो

नरक एवं स्वर्ग गति : ६. तब कोई ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर भगवान् से कुशल मङ्गलादि प्रश्न कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस ब्राह्मण ने भगवान् से यह पूछा—"भो गौतम! यहाँ क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि कुछ प्राणी इस देहपात के बाद, मरणानन्तर, उपायभूत दुर्गतिमय निरय (नरक) में जा गिरते हैं?"

(भगवान्—) "ब्राह्मण! अधर्मचर्या एवं विषम (शास्त्र के विपरीत) चर्या के कारण ही यहाँ कुछ प्राणी देहपात के बाद, मरणानन्तर अपायभूत दुर्गतिमय निरय में जा गिरते हैं।" (क)

(ब्राह्मण—) "भो गौतम! यहाँ क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि कुछ प्राणी इस देहपात के बाद मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग लोक में जाकर उत्पन्न होते हैं?"

(भगवान्) "ब्राह्मण! धर्मचर्या एवं सम (शास्त्र के अनुकूल) चर्या के कारण यहाँ कोई प्राणी इस देहपात के बाद मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में जाकर उत्पन्न होते हैं।" (ख)

"अद्भुत है, भो गौतम! आश्चर्य है, भो गौतम! जैसे कोई भो गौतम! उलटे (औंधे) पात्र को सीधा कर दे, आच्छादित (ढके हुए) पात्र को निरावरण कर (खोल) दे, अनजान (भूले भटके) को उचित मार्ग बता दे या कोई अन्धकारावृत मार्ग में जलता दीपक लेकर खड़ा हो जाय कि देखने वाले पथिक मार्ग को भली भाँति देख ले; वैसे ही, भो गौतम! आपने विविध प्रकार से (मेरे लिये) धर्म का प्रकाश कर दिया। (अत:) मैं, भो गौतम! आज से प्राण रहने तक आप पूज्य की शरण में जाता हूँ॥" ●

नरक-स्वर्ग गति : ७. तब जानुश्रोणि ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा।

खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ती" ति?

"कतत्ता च, ब्राह्मण, अकतत्ता च। एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ती" ति।

"को पन, भो गोतम, हेतु को पच्चयो येन मिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती" ति?

"कतत्ता च, ब्राह्मण, अकतत्ता च। एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती" ति।

"न खो अहं इमस्स भोतो गोतमस्स सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं आजानामि। साधु मे भवं गोतमो तथा धम्मं देसेतु यथा अहं इमस्स भोतो गोतमस्स सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं आजानेय्यं" ति।

"तेन हि, ब्राह्मण, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भो" [R.57] ति खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

[N.55] "इध, ब्राह्मण, एकच्चस्स कायदुच्चरितं कतं होति, अकतं होति कायसुचरितं; वचीदुच्चरितं कतं होति, अकतं होति वचीसुचरितं; मनोदुच्चरितं कतं होति, अकतं होति मनोसुचरितं। एवं खो, ब्राह्मण, कतत्ता च अकतत्ता च एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं

पहुँच कर भगवान् से कुशल मङ्गल प्रश्न के बाद एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने भगवान् से यह प्रश्न किया—"भो गौतम! इसका क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि यहाँ कुछ प्राणी (इस) देहपात के बाद, मरणानन्तर अपायभूत दुर्गतिमय पतनभूमि नरक में जा गिरते हैं?"

"ब्राह्मण! (अकुशल कर्म) करने के कारण तथा (कुशल कर्म) न करने के कारण, यहाँ कुछ प्राणी...पूर्ववत्... नरक में जा गिरते हैं।

"और क्या कारण है, भो गौतम! क्या प्रत्यय है कि यहाँ कुछ प्राणी देहपात के बाद सुगतिमय स्वर्ग में पहुँच जाते हैं?"

"ब्राह्मण! (कुशल कर्म) करने के कारण तथा (अकुशल कर्म) न करने के कारण। यों यहाँ कुछ प्राणी देहपात के बाद... स्वर्ग में जा पहुँचते हैं।"

"भो गौतम! मैं आपके इस संक्षिप्त भाषण का विस्तारपूर्वक अर्थ नहीं समझ पाया, कृपया आप गौतम इस धर्म का इस प्रकार व्याख्यान कर दें कि मैं इसका अर्थ भलीभाँति समझ सकूँ।"

"तो, ब्राह्मण! सुनो, इसको अपने मन में ठीक से बैठा लो, मैं बता रहा हूँ। "अच्छा, श्रीमन्!"—यह कर जानुश्रोणि ब्राह्मण ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् यों बोले—

"यहाँ ब्राह्मण किसी पुरुष द्वारा कायिक दुराचरण किया जाता है, परन्तु कायिक सदाचार कुछ भी नहीं किया जाता, वाचसिक दुराचार... मानसिक दुराचार किया जाता है, परन्तु मानसिक सदाचरण कुछ भी नहीं किया जाता। इस प्रकार इस कृत एवं अकृत के कारण, ब्राह्मण! कुछ लोग

मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति। इध पन, ब्राह्मण, एकच्चस्स काय-सुचरितं कतं होति, अकतं होति कायदुच्चरितं; वचीसुचरितं कतं होति, अकतं होति वचीदुच्चरितं; मनोसुचरितं कतं होति, अकतं होति मनोदुच्चरितं। एवं खो, ब्राह्मण, कतत्ता च अकतत्ता च एवमिधेकच्चे सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ती'' ति।

''अभिक्कन्तं भो गोतम ...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे [B.59] पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥

८. अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतद-वोच—''एकंसेनाहं, आनन्द, अकरणीयं वदामि कायदुच्चरितं वचीदुच्चरितं मनोदुच्चरितं'' ति।

''यमिदं, भन्ते, भगवता एकंसेन अकरणीयं अक्खातं कायदुच्चरितं वचीदुच्चरितं मनोदुच्चरितं तस्मिं अकरणीये कयिरमाने को आदीनवो पाटिकङ्खो'' ति?

''यमिदं, आनन्द, मया एकंसेन अकरणीयं अक्खातं कायदुच्चरितं वचीदुच्चरितं मनोदुच्चरितं तस्मिं अकरणीये कयिरमाने अयं आदीनवो पाटिकङ्खो—अत्ता पि अत्तानं उपवदति, अनुविच्च विञ्ञू गरहन्ति, पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति, सम्मूळ्हो कालं करोति, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। यमिदं, आनन्द,

---

देहपात के बाद, मरणानन्तर, अपायभूत दुर्गतिमय विनिपातभूमि नरक में जा गिरते हैं। फिर, ब्राह्मण! कोई पुरुष काया से सदाचरण ही करता है, कदाचरण नहीं करता, वाणी से... मन से सदाचरण ही करता है, कदाचरण नहीं करता। इस प्रकार, ब्राह्मण! इस कृत एवं अकृत के कारण भी कुछ लोग देहपात के मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में जा पहुँचते हैं।

''चमत्कार है, भो गौतम! अत्यधिक चमत्कार है...पूर्ववत्... भो गौतम आज से मुझको आप अपना जीवनपर्यन्त शरणागत उपासक समझें॥'' ●

करणीय, अकरणीय धर्म : ८. तदनन्तर, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द को भगवान् ने उपदेश किया—''आनन्द! मैं कायिक वाचिक एवं मानसिक दुराचारों को एकान्ततः (सम्पूर्णतः) न करने योग्य मानता हूँ।''

''भन्ते! आपने इन तीनों ही दुराचारों अकरणीय (न करने योग्य) बताया; परन्तु इन अकरणीयों के करने से किस आदीनव (दुष्परिणाम) की सम्भावना रहती है?''

''आनन्द! मैंने जो ये तीन अकरणीय बताये हैं, इनके करने पर साधक को इन दुष्परिणामों का सामना करना पड़ता है—१. कर्ता स्वयं ही अपने आप को हीन (अपमानित) समझने लगता है, विज्ञजन भी उस दोष का अन्वीक्षण कर उसकी निन्दा करने लगते हैं, २. लोक में उसकी अपकीर्ति होने लगती है, उसकी मृत्यु भी सम्मूढ (भ्रान्त) अवस्था में होती है, ३. तथा वह देहपात

मया एकंसेन अकरणीयं अक्खातं कायदुच्चरितं वचीदुच्चरितं मनोदुच्चरितं तस्मिं अकरणीये कयिरमाने अयं आदीनवो पाटिकङ्खो ति।

[R.58] ''एकंसेनाहं, आनन्द, करणीयं वदामि कायसुचरितं वचीसुचरितं मनोसुचरितं'' ति।

''यमिदं, भन्ते, भगवता एकंसेन करणीयं अक्खातं कायसुचरितं वचीसुचरितं मनोसुचरितं तस्मिं करणीये कयिरमाने को आनिसंसो पाटिकङ्खो'' ति?

[N.56] ''यमिदं, आनन्द, मया एकंसेन करणीयं अक्खातं कायसुचरितं वचीसुचरितं मनोसुचरितं तस्मिं करणीये कयिरमाने अयं आनिसंसो पाटिकङ्खो—अत्ता पि अत्तानं न उपवदति, अनुविच्च विञ्ञू पसंसन्ति, कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति, असम्मूळ्हो कालं करोति, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। यमिदं, आनन्द, मया एकंसेन करणीयं अक्खातं कायसुचरितं वचीसुचरितं मनोसुचरितं तस्मि करणीये कयिरमाने अयं आनिसंसो पाटिकङ्खो'' ति॥

९. ''अकुसलं, भिक्खवे, पजहथ। सक्का, भिक्खवे, अकुसलं पजहितुं। नो चेदं, भिक्खवे, सक्का अभविस्स अकुसलं पजहितुं, नाहं एवं वदेय्यं—'अकुसलं, भिक्खवे, [B.60] पजहथा' ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, सक्का अकुसलं पजहितुं तस्माहं एवं वदामि—'अकुसलं, भिक्खवे, पजहथा' ति। अकुसलं च हिदं, भिक्खवे, पहीनं अहिताय

के बाद, मरणानन्तर अपायभूत दुर्गतिमय पतितभूमि नरक में उत्पन्न होता है। आनन्द! मैंने जो अकरणीय कर्म बताये हैं, उनके करने से ये ही दुष्परिणाम कर्ता को भोगने पड़ते हैं।

(इसी प्रकार) ''आनन्द! कायिक, वाचिक एवं मानसिक सदाचारों को एकान्ततः करणीय (अवश्य कर्तव्य) बताता हूँ।'' (क)

''भन्ते! आपने ये जो कायिक सदाचार आदि तीन एकान्ततः करणीय बताये हैं इनके करने से कर्ता को क्या माहात्म्य (विशेषता) प्राप्त होने की सम्भावना रहती है?''

''आनन्द! मैंने ये जो कायिक सदाचार आदि तीन करणीय बताये हैं उनके कर्ता को ये माहात्म्य प्राप्त होते हैं—वह उनके करने से स्वयं में किसी प्रकार का दोष नहीं मानता, विज्ञजन भी उसके उन क्रिया-कलापों की समीक्षा कर उसकी प्रशंसा ही करते हैं, लोक में उनके कारण उसका यश बढ़ने लगता है, उसकी मृत्यु सचेत अवस्था में होती है, तथा देहपात के बाद मरणानन्तर वह सुगतिमय स्वर्ग में जाकर वास करता है। आनन्द! मेरे द्वारा बताये गये इन तीनों करणीयों को एकान्ततः क्रियात्मक रूप देने से कर्ता को यही माहात्म्य प्राप्त होता है॥'' (ख) ●

अकुशल कर्म का त्याग : ९. ''भिक्षुओ! अकुशल कर्मों को त्याग दो; क्योंकि इन अकुशल कर्मों का त्याग किया जा सकता है। भिक्षुओ! यदि इन अकुशल कर्मों का त्याग असम्भव होता तो मैं तुम्हें यह देशना न देता—'भिक्षुओ! अकुशल कर्मों को त्याग दो।' क्योंकि, भिक्षुओ! अकुशल कर्मों का त्याग सम्भव है, इसलिये मेरा तुमको यह उपदेश है—'भिक्षुओ! अकुशल कर्मों को त्याग दो।' भिक्षुओ! इन अकुशल कर्मों का त्याग तुम्हारे हित एवं सुख के लिये ही होगा,

दुक्खाय संवत्तेय्य, नाहं एवं वदेय्यं—'अकुसलं, भिक्खवे, पजहथा' ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, अकुसलं पहीनं हिताय सुखाय संवत्तति तस्माहं एवं वदामि—'अकुसलं, भिक्खवे, पजहथा' ति।

"कुसलं, भिक्खवे, भावेथ। सक्का, भिक्खवे, कुसलं भावेतुं। नो चेदं, भिक्खवे, सक्का अभविस्स कुसलं भावेतुं, नाहं एवं वदेय्यं—'कुसलं, भिक्खवे, भावेथा' ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, सत्ता कुसलं भावेतुं तस्माहं एवं वदामि—'कुसलं, भिक्खवे, भावेथा' ति। कुसलं च हिदं, भिक्खवे, भावितं अहिताय दुक्खाय संवत्तेय्य, नाहं एवं वदेय्यं—'कुसलं, भिक्खवे, भावेथा' ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, कुसलं भावितं हिताय सुखाय संवत्तति तस्माहं एवं वदामि—'कुसलं, भिक्खवे, भावेथा'' ति॥

१०. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे द्वे? दुन्निक्खित्तं च पदब्यञ्जनं अत्थो च दुन्नीतो। दुन्निक्खित्तस्स, भिक्खवे, [R.59] पदब्यञ्जनस्स अत्थो पि दुन्नयो होति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ती'' ति॥

११. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे द्वे? सुनिक्खित्तं च पदब्यञ्जनं अत्थो च सुनीतो। सुनिक्खित्तस्स, भिक्खवे,

---

इसलिये मैं तुम्हें यह उपदेश करता हूँ—'भिक्षुओ! अकुशल कर्मों को त्याग दो।' क्योंकि, भिक्षुओ! इन अकुशल कर्मों का त्याग तुम्हारे हित एवं सुख के लिये ही होगा, अतः मैं तुम्हें उपदेश करता हूँ—'भिक्षुओ! अकुशल कर्मों को त्याग दो।' (क)

कुशल कर्म का अभ्यास : "भिक्षुओ! कुशल कर्मों का अभ्यास (पुनः पुनः करना) करो; क्योंकि इन कुशल कर्मों का अभ्यास किया जा सकता है। भिक्षुओ! यदि इन कुशल कर्मों का अभ्यास असम्भव होता तो मैं तुम्हें यह देशना न करता—'भिक्षुओ! कुशल कर्मों का अभ्यास करो।' क्योंकि, भिक्षुओ! कुशल कर्मों का अभ्यास सम्भव है अतः मैं तुमको यह उपदेश करता हूँ—'भिक्षुओ! कुशल कर्मों का अभ्यास करो।' भिक्षुओ! यदि कुशल कर्मों का अभ्यास तुम्हारे हित एवं सुख का साधक न होता तो मैं तुम्हें यह उपदेश कभी न देता—'भिक्षुओ! कुशल कर्मों का अभ्यास करो।' क्योंकि, भिक्षुओ! कुशल कर्मों का अभ्यास तुम्हारे हित एवं सुख का अतिशय साधक है अतः मैं तुम्हें उपदेश करता हूँ—'भिक्षुओ! कुशल कर्मों का अभ्यास करो॥''(ख) ●

सद्धर्मलोप में कारण : १०. "भिक्षुओ! ये दो धर्म सद्धर्म के लोप (अदर्शन) एवं अन्तर्धान के साधक हैं। एक, शब्द या वाक्य के पद या वर्ण अशुद्ध लिखे जायँ या पढ़े जायँ, तथा दो उनका वास्तविक अर्थ, दुरूहता या भ्रामकता के कारण कठिनता से समझ में आवे। ऐसे अशुद्ध लिखे गये पद एवं वर्णों का वास्तविक अर्थ भी कठिनता से समझ में आता है। अतः मेरा मानना है कि ये दो धर्म सद्धर्म के लोप एवं अन्तर्धान के लिये उत्तरदायी हैं॥'' ●

सद्धर्मस्थिति में कारण : ११. और, भिक्षुओ! ये दो धर्म सद्धर्म की स्थिति (स्थायिता), सत्ता एवं निरन्तरता में सहायक हैं। कौन से दो? एक, शुद्ध लिखे या बोले गये पद एवं वर्ण तथा

[N.57] पदब्यञ्जनस्स अत्थो पि सुनयो होति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ती'' ति॥ ●

३. बालवग्गो

१. ''द्वेमे, भिक्खवे, बाला। कतमे द्वे? यो च अच्चयं अच्चयतो न पस्सति, यो च अच्चयं देसेन्तस्स यथाधम्मं नप्पटिग्गण्हाति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे बाला ति।

[B.61] ''द्वेमे, भिक्खवे, पण्डिता। कतमे द्वे? यो च अच्चयं अच्चयतो पस्सति, यो च अच्चयं देसेन्तस्स यथाधम्मं पटिग्गण्हाति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पण्डिता'' ति॥

२. ''द्वेमे, भिक्खवे, तथागतं अब्भाचिक्खन्ति। कतमे द्वे? दुट्ठो वा दोसन्तरो, सद्धो वा दुग्गहितेन। इमे खो, भिक्खवे, द्वे तथागतं अब्भाचिक्खन्ती'' ति॥

३. ''द्वेमे, भिक्खवे, तथागतं अब्भाचिक्खन्ति। कतमे द्वे? यो च अभासितं [R.60] अलपितं तथागतेन भासितं लपितं तथागतेना ति दीपेति, यो च भासितं लपितं तथागतेन अभासितं अलपितं तथागतेना ति दीपेति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे तथागतं अब्भाचिक्खन्ती ति।

दो, उन पदों का अर्थ भी सुबोध, सरल एवं अनायास समझ में आनेवाला हो। भिक्षुओ! इस प्रकार शुद्ध लिखे गये पद एवं वर्णों का अर्थ भी सरल एवं अनायास समझ में आनेवाला होता है। इस तरह, भिक्षुओ! ये दो धर्म सद्धर्म की स्थिति, सत्ता एवं नैरन्तर्य में सहायक होते हैं॥''

अधिकरणवर्ग द्वितीय सम्पन्न॥ ●

३. बालवर्ग

मूर्खद्वय : १. ''भिक्षुओ! ये दो 'बाल' (मूर्ख) कहलाते हैं—कौन से दो? प्रथम, वह जो अपराध को अपराध के रूप में नहीं समझता, द्वितीय वह जो किसी अन्य के द्वारा उस अपराध को बताये जाते समय उसे सम्यक् प्रकार से ग्रहण नहीं करता। भिक्षुओ! ये दोनों ही 'बाल' कहते हैं।

दो बुद्धिमान् : भिक्षुओ! ये दो 'पण्डित' (बुद्धिमान्) कहलाते हैं। कौन से दो? प्रथम, वह जो अपराध को अपराध के रूप में समझता है, तथा द्वितीय वह जो किसी अन्य द्वारा अपराध बोध कराये जाते समय उसकी बात को भलीभाँति समझता है। भिक्षुओ! ये दोनों ही 'पण्डित' कहलाते हैं॥'' ●

तथागत पर दोषारोप : २. ''भिक्षुओ! ये दो तरह के लोग तथागत पर दोषारोपण करते हैं। कौन से दो? प्रथम जो स्वयं द्विष्टस्वभाव हो, तथा द्वितीय जो किसी के बहकावे में आकर किसी अन्य के प्रति श्रद्धा रखता हो। भिक्षुओ! ये ही दो तरह के लोग तथागत पर दोषारोपण किया करते हैं॥ ●

तथागत पर दोषारोप : ३. ''भिक्षुओ! ये दो प्रकार के लोग भी तथागत पर मिथ्या दोषारोपण किया करते हैं। कौन से दो? एक वह जो तथागत द्वारा अकथित एवं अनुपदिष्ट वचन को 'तथागत द्वारा उपदिष्ट एवं कथित' बताता है; तथा द्वितीय वह जो तथागत द्वारा कथित एवं

"द्वेमे, भिक्खवे, तथागतं नाब्भाचिक्खन्ति। कतमे द्वे? यो च अभासितं अलपितं तथागतेन अभासितं अलपितं तथागतेना ति दीपेति, यो च भासितं लपितं तथागतेन भासितं लपितं तथागतेना ति दीपेति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे तथागतं नाब्भाचिक्खन्ती" ति॥

४. "द्वेमे, भिक्खवे, तथागतं अब्भाचिक्खन्ति। कतमे द्वे? यो च नेय्यत्थं सुत्तन्तं नीतत्थो सुत्तन्तो ति दीपेति, यो च नीतत्थं सुत्तन्तं नेय्यत्थो सुत्तन्तो ति दीपेति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे तथागतं अब्भाचिक्खन्ती" ति॥

५. "द्वेमे, भिक्खवे, तथागतं नाब्भाचिक्खन्ति। कतमे द्वे? यो च नेय्यत्थं सुत्तन्तं नेय्यत्थो सुत्तन्तो ति दीपेति, यो च नीतत्थं सुत्तन्तं नीतत्थो सुत्तन्तो ति दीपेति। इमे [N.58] खो, भिक्खवे, द्वे तथागतं नाब्भाचिक्खन्ती" ति॥

६. "पटिच्छन्नकम्मन्तस्स, भिक्खवे, द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरा गति पाटिकङ्खा— निरयो वा तिरच्छानयोनि वा ति। अप्पटिच्छन्नकम्मन्तस्स, भिक्खवे, द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरा गति पाटिकङ्खा—देवा वा मनुस्सा वा" ति॥

७. "मिच्छादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरा गति पाटिकङ्खा—[B.62] निरयो वा तिरच्छानयोनि वा" ति॥

उपदिष्ट वचन को 'तथागत द्वारा अकथित एवं अनुपदिष्ट' बताता है। भिक्षुओ! ये दोनों ही 'तथागत पर मिथ्या दोषारोपण करने वाले' कहलाते हैं।

(परन्तु) "भिक्षुओ! ये दो तरह के लोग तथागत पर मिथ्या दोषारोपण करने वाले नहीं कहलाते। कौन से दो? प्रथम, वह जो तथागत द्वारा अकथित एवं अनुपदिष्ट वचन को 'तथागत द्वारा अकथित एवं अनुपदिष्ट वचन' ही कहता है। तथा द्वितीय, वह जो तथागत द्वारा कथित एवं उपदिष्ट वचन को 'तथागत द्वारा कथित एवं उपदिष्ट' वचन ही कहता है। भिक्षुओ! इस प्रकार के ये दो लोग तथागत पर मिथ्या दोषारोपण नहीं करते॥ ●

तथागत पर दोषारोप : ४. "भिक्षुओ! ये दो भी तथागत पर मिथ्या दोषारोपण वाले कहलाते हैं। कौन से दो? प्रथम वह, जो नेयार्थ (व्यावहारिक अर्थ वाले) सूत्र को नीतार्थ (परमार्थपरक) बताता है; तथा दूसरा वह, जो नीतार्थ सूत्र को 'नेयार्थ' कहता है। भिक्षुओ! ये द्विविध पुरुष भी तथागत पर मिथ्यारोपण ही करते हैं॥" ●

तथागत पर दोषारोप नहीं : ५. (परन्तु) "भिक्षुओ! ये दो प्रकार के लोग तथागत पर मिथ्या दोषारोपण नहीं करते। कौन से दो? प्रथम वह, जो नेयार्थ सूत्र को नेयार्थ सूत्र ही कहता है। द्वितीय वह, जो नीतार्थ सूत्र को नीतार्थ सूत्र ही कहता है। भिक्षुओ! ये दो प्रकार के लोग भी तथागत पर मिथ्या दोषारोपण करने वाले नहीं कहलाते॥" ●

प्रतिच्छन्न कर्मकर दोषी : ६. "भिक्षुओ! चोरी-छिपे अकुशल (पापमय) कर्म के कर्ता की दो गतियों (मरणानन्तर जन्म) में से कोई एक गति सम्भव है—या तो उसका नरकपात, या फिर पशुपक्षियोनि में उत्पत्ति। सबके सम्मुख कुशल (पुण्यमय) कर्म करनेवाले की भी इन दो गतियों में से कोई एक गति सम्भव है—या तो वह देवलोक में पहुँचे या फिर मनुष्ययोनि में उत्पन्न हो॥" ●

८. ''सम्मादिट्ठिकस्स, भिक्खवे, द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरा गति पाटिकङ्खा—देवा वा मनुस्सा वा'' ति॥

९. ''दुस्सीलस्स, भिक्खवे, द्वे पटिग्गाहा—निरयो वा तिरच्छानयोनि वा। सीलवतो, भिक्खवे, द्वे पटिग्गाहा—देवा वा मनुस्सा वा'' ति॥

१०. ''द्वाहं, भिक्खवे, अत्थवसे सम्पस्समानो अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि [R.61] सेनासनानि पटिसेवामि। कतमे द्वे? अत्तनो च दिट्ठधम्मसुखविहारं सम्पस्समानो, पच्छिमं च जनतं अनुकम्पमानो। इमे खो अहं, भिक्खवे, द्वे अत्थवसे सम्पस्समानो अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवामी'' ति॥

११. ''द्वे मे, भिक्खवे, धम्मा विज्जाभागिया। कतमे द्वे? समथो च विपस्सना च। समथो, भिक्खवे, भावितो कमत्थमनुभोति? चित्तं भावीयति। चित्तं भावितं कमत्थमनुभोति? यो रागो सो पहीयति। विपस्सना, भिक्खवे, भाविता कमत्थमनुभोति? पञ्ञा भावीयति। पञ्ञा भाविता कमत्थमनुभोति? या अविज्जा सा पहीयति। रागुपक्किलिट्ठं

मिथ्यादृष्टि : ७. ''भिक्षुओ! मिथ्यादृष्टि पुरुष की भी इन दो गतियों में कोई एक गति सम्भव है—या तो नरकपात, या फिर पशुपक्षियोनि में जन्म॥''

●

सम्यग्दृष्टि : ८. ''भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टि पुरुष की भी इन दो गतियों में कोई एक गति सम्भव है—या तो सीधे देवलोक की प्राप्ति या फिर मनुष्यों के उच्चकुल में जन्म॥''

●

दुष्ट पुरुष की गति : ९. ''भिक्षुओ! दुष्टचरित्र पुरुष को भी इन दो गतियों में से एक गति स्वीकार करनी ही पड़ेगी—नरक या पशुपक्षियोनि। इसी प्रकार, भिक्षुओ! शीलवान् (सच्चरित्र) पुरुष को भी इन दो गतियों में से ही एक गति ग्रहण करनी पड़ेगी—या तो देवलोक या फिर मनुष्ययोनि॥

●

एकान्त साधना के दो कारण : १०. ''भिक्षुओ! मैं इन दो कारणों से अरण्य, वन एवं बीहड़ जंगलों में दूर एकान्त स्थानों को अपनी साधना हेतु चुनता हूँ—प्रथम यह मुझे इसमें प्रत्यक्ष सुख का अनुभव होता है; तथा दो, भविष्य में यहाँ आने वाली जनता पर अनुग्रहहेतु। (आने वाली जनता भी मेरा अनुकरण करती हुई साधना का प्रत्यक्ष सुख अनुभव करने हेतु ऐसे ही एकान्त स्थानों का चयन करे)। भिक्षुओ! इन दो कारणों से ही मैं साधनाहेतु ऐसे स्थानों का चयन करता हूँ।''

विद्याप्राप्ति के दो कारण : ११. ''भिक्षुओ! विद्याप्राप्ति से सम्बद्ध ये दो ही धर्म हैं। कौन से दो? शमथ एवं विपश्यना। शमथ की साधना से, भिक्षुओ! क्या लाभ होता है? चित्त एकाग्र होता है। यह उस स्थिति में क्या प्राप्त करता है? इस चित्त में वर्तमान लौकिक राग क्षीण हो जाता है। इसी तरह, भिक्षुओ! विपश्यना की साधना से क्या लाभ होता है? प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। प्रज्ञा से क्या लाभ होता है? चित्तस्थित अविद्या का प्रहाण हो जाता है। भिक्षुओ! वास्तवविकता यह है कि साधक का चित्त जब तक राग से सम्पृक्त (युक्त) रहेगा वह चित्त विमुक्त नहीं हो सकता; इसी

वा, भिक्खवे, चित्तं न विमुच्चति, अविज्जुपक्किलिट्ठा वा पञ्ञा न भावीयति। इति खो, भिक्खवे, रागविरागा चेतोविमुत्ति, अविज्जाविरागा पञ्ञाविमुत्ती'' ति। ●

४. समचित्तवग्गो

१. ''असप्पुरिसभूमिं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि सप्पुरिसभूमिं च। तं [N.59] सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ। भासिस्सामी'' ति। ''एवं भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''कतमा च, भिक्खवे, असप्पुरिसभूमि? असप्पुरिसो, भिक्खवे, अकतञ्ञू [B.63] होति अकतवेदी। असब्भि हेतं, भिक्खवे, उपञ्ञातं यदिदं अकतञ्ञुता अकतवेदिता। केवला एसा, भिक्खवे, असप्पुरिसभूमि यदिदं अकतञ्ञुता अकतवेदिता। सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, कतञ्ञू होति कतवेदी। सब्भि हेतं, भिक्खवे, उपञ्ञातं यदिदं कतञ्ञुता कतवेदिता। केवला एसा, भिक्खवे, सप्पुरिसभूमि यदिदं कतञ्ञुता कतवेदिता'' ति॥

२. ''द्विन्नाहं, भिक्खवे, न सुप्पतिकारं वदामि। कतमेसं द्विन्नं? मातु च पितु च। एकेन, भिक्खवे, अंसेन मातरं परिहरेय्य, एकेन अंसेन पितरं परिहरेय्य वस्स- [R.62] सतायुको वस्ससतजीवी सो च नेसं उच्छादनपरिमद्दनन्हापनसम्बाहनेन। ते च तत्थेव मुत्तकरीसं चजेय्युं। न त्वेव, भिक्खवे, मातापितूनं कतं वा होति पटिकतं वा। इमिस्सा च,

---

तरह अविद्या से युक्त चित्त से प्रज्ञा की भावना नहीं की जा सकती। इसलिये कहता हूँ कि राग के नाश से चित्तविमुक्ति एवं अविद्या के नाश से प्रज्ञाविमुक्ति हो पाती है॥''

बालवर्ग तृतीय सम्पन्न॥ ●

४. समचित्तवर्ग

दो भूमियाँ : १. ''भिक्षुओ! अब मैं तुमको असत्पुरुषभूमि एवं सत्पुरुषभूमि की देशना करूँगा। उसे सुनो, अपने मन में भलीभाँति बैठा लो। उसे कहता हूँ।'' ''अच्छा, भन्ते!'' कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् के आदेश को स्वीकार किया। भगवान् यह बोले—भिक्षुओ! **असत्पुरुष-भूमि** (असज्जनता) कौन सी है? भिक्षुओ! असज्जन (दुष्ट पुरुष) अकृतज्ञ होता है, किसी के द्वारा कृत उपकार का स्मरण नहीं करता। भिक्षुओ! इस अकृतज्ञता एवं अकृतवेदिता को 'असभ्य' (सज्जनों द्वारा अनाचरणीय) कहा है। भिक्षुओ! इस अकृतज्ञता एवं अकृतवेदिता को केवल दुष्ट पुरुष ही स्वीकार करते हैं। (इसके विपरीत) सज्जन, भिक्षुओ! कृतज्ञ एवं उपकार स्मरणकर्ता होते हैं। अतएव, भिक्षुओ! कृतज्ञता एवं कृतवेदिता को 'सभ्य' कहा गया है। इस **सत्पुरुषभूमि**—कृतज्ञता एवं कृतवेदिता को केवल सज्जन ही स्वीकार करते हैं॥'' ●

माता पिता का उपकार : २. ''भिक्षुओ! मेरा मानना है कि इन दोनों—माता एवं पिता द्वारा कृत उपकार का बदला नहीं चुकाया जा सकता। यदि कोई पुरुष एक ओर माता को तथा एक ओर पिता को बैठाकर, सौ वर्ष तक निरन्तर उनको सुख पहुँचाने हेतु उनके शरीर को मले, तैल लगावे, अभ्यङ्ग (मालिश) करे, भले ही वे जहाँ मल-मूत्र त्यागें उस स्थान को स्वच्छ करे तो भी

भिक्खवे, महापथविया पहूतरत्तरतनाय मातापितरो इस्सराधिपच्चे रज्जे पतिट्ठापेय्य, न त्वेव, भिक्खवे, मातापितूनं कतं वा होति पटिकतं वा। तं किस्स हेतु? बहुकारा, भिक्खवे, मातापितरो पुत्तानं आपादका पोसका इमस्स लोकस्स दस्सेतारो। यो च खो, भिक्खवे, मातापितरो अस्सद्धे सद्धासम्पदाय समादपेति निवेसेति पतिट्ठापेति, दुस्सीले सीलसम्पदाय समादपेति निवेसेति पतिट्ठापेति, मच्छरी चागसम्पदाय समादपेति निवेसेति पतिट्ठापेति, दुप्पञ्ञे पञ्ञासम्पदाय समादपेति निवेसेति पतिट्ठापेति, एत्तावता खो, भिक्खवे, मातापितूनं कतं च होति पटिकतं चा'' ति॥

३. अथ खो अञ्ञतरो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं ...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो सो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—''किंवादी भवं गोतमो किमक्खायी'' ति।

[N.60] ''किरियवादी चाहं, ब्राह्मण, अकिरियवादी चा'' ति।

''यथाकथं पन भवं गोतमो किरियवादी च अकिरियवादी चा'' ति?

''अकिरियं खो, अहं, ब्राह्मण, वदामि कायदुच्चरितस्स वचीदुच्चरितस्स मनोदुच्चरितस्स, अनेकविहितानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अकिरियं वदामि। किरियं च [B.64] खो अहं, ब्राह्मण, वदामि कायसुचरितस्स वचीसुचरितस्स मनोसुचरितस्स, अनेक-विहितानं कुसलानं धम्मानं किरियं वदामि। एवं खो अहं, ब्राह्मण, किरियवादी च अकिरियवादी चा'' ति।

वह उनके कृत का, उनके उपकार का बदला नहीं चुका सकता। भले ही कोई किसी तुला के एक पल्ले पर प्रभूतरत्नमयी इस समस्त पृथ्वी का राज्य रख दे तथा दूसरी ओर माता-पिता को बैठा दे तो भी माता-पिता द्वारा किये हुए उपकार का बदला नहीं चुकाया जा सकता। वह किस कारण? वह इसलिये कि माता पिता ने अपने पुत्रों का बहुत तरह से उपकार किया है, उनके प्रमाद-क्षणों में उनका मार्गदर्शन किया है। जो सत्पुरुष माता पिता के श्रद्धारहित होने पर भी श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करता है, उनके दुःशील होने पर भी अपने चरित्र से उनकी रक्षा करता है, उनके कंजूस होने पर भी अपने त्याग द्वारा उनका निर्वाह करता है, उनके दुष्टस्वभाव होनेपर अपनी प्रज्ञा सम्पत्ति से उनकी रक्षा करता है, उतने पर ही उनके लिये उपकार का बदला चुकाया जाना सम्भव हो सकता है॥''

क्रियावाद एवं अक्रियावाद : ३. तदनन्तर कोई ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया ...पूर्ववत्... उस ब्राह्मण ने उनसे प्रश्न किया—''भो गौतम! आप किस मत के मानने वाले हैं? तथा उसका निरूपण कैसे करते हैं?''

''ब्राह्मण! मैं स्वयं को क्रियावादी भी कहता हूँ एवं अक्रियावादी भी।''

''भो गौतम! आप क्रियावादी क्यों कर हैं तथा अक्रियावादी क्यों कर?''

''ब्राह्मण! मैं अक्रियावादी इसलिये हूँ; क्योंकि मैं जनता को कायदुराचार, वाचसिक दुराचार एवं मानसिक दुराचार न करने का आग्रह करता हूँ; तथा क्रियावादी इसलिये हूँ कि मैं जनता को

"अभिक्कन्तं, भो गोतम ...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

[R.63] ४. अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो अनाथपिण्डिको गहपति भगवन्तं एतदवोच—"कति नु खो, भन्ते, लोके दक्खिणेय्या, कत्थ च दानं दातब्बं" ति?

"द्वे खो, गहपति, लोके दक्खिणेय्या—सेखो च असेखो च। इमे खो, गहपति, द्वे लोके दक्खिणेय्या, एत्थ च दानं दातब्बं" ति।

इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"सेखो असेखो च इमस्मिं लोके,
आहुनेय्या यजमानानं होन्ति।
ते उज्जुभूता कायेन, वाचाय उद चेतसा।
खेत्तं तं यजमानानं, एत्थ दिन्नं महप्फलं" ति॥

५. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा सारिपुत्तो सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि—"आवुसो भिक्खवे" ति। "आवुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—"अज्झत्तसंयोजनं च, आवुसो, पुग्गलं देसेस्सामि बहिद्धा संयोजनं च। तं

निरन्तर कायिक सदाचार, वाचसिक सदाचार एवं मानसिक सदाचार के लिये उत्साहित करता रहता हूँ। इस तरह, ब्राह्मण! मैं क्रियावादी भी हूँ और अक्रियावादी भी।"

"भो गौतम! आपने यह चमत्कारपूर्ण बात कह दी। इससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। ...पूर्ववत्... भो गौतम! आज से आप मुझको जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें॥" ●

दान दक्षिणा के योग्य : ४. तदनन्तर (कभी) जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ अनाथपिण्डिक गृहपति आया ...पूर्ववत्... यह पूछने लगा—"भन्ते! इस लोक में कौन दान-दक्षिणा के योग्य है? कहाँ दान करना चाहिए?"

"गृहपति! यहाँ दो ही दक्षिणा (दान) के योग्य हैं—१. शैक्ष्य (अर्हत्=ज्ञानी) एवं २. अशैक्ष्य (शासन के उन्नतिपथ पर आरूढ़) भी। इन दोनों को ही दान करना चाहिये।

"इस लोक में शैक्ष्य एवं अशैक्ष्य—दोनों ही यजमानों के द्वारा बुलाकर अतिथि बनाये जाने योग्य होते हैं। वे (दोनों) शरीर, वाणी एवं मन—तीनों से सरल हैं, उदार हैं। वे यजमानों के लिये पुण्यक्षेत्र हैं। इनको किया हुआ दान अतिशय फलदायी होता है॥" ●

५. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र भी श्रावस्ती के ही पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में साधना में तत्पर थे। आयुष्मान् सारिपुत्र ने वहाँ रहनेवाले

[N.61] सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवमावुसो'' ति खो ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

''कतमो चावुसो, अज्झत्तसंयोजनो पुग्गलो? इधावुसो, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, [B.65] समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो कायस्स भेदा परं मरणा अञ्ञतरं देवनिकायं उपपज्जति। सो ततो चुतो आगामी होति, आगन्ता इत्थत्तं। अयं वुच्चति, आवुसो, अज्झत्तसंयोजनो पुग्गलो आगामी होति, आगन्ता इत्थत्तं।

[R. 64] ''कतमो चावुसो, बहिद्धासंयोजनो पुग्गलो? इधावुसो, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो अञ्ञतरं सन्तं चेतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरति। सो कायस्स भेदा परं मरणा अञ्ञतरं देवनिकायं उपपज्जति। सो ततो चुतो अनागामी होति, अनागन्ता इत्थत्तं। अयं वुच्चतावुसो, बहिद्धासंयोजनो पुग्गलो अनागामी होति, अनागन्ता इत्थत्तं।

''पुन च परं, भिक्खवे, सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो कामानंयेव निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति। सो भवानंयेव निब्बिदाय विरागाय

भिक्षुओं को ''आयुष्मन् भिक्षुओ!'' कहकर उपदेशहेतु अपने पास बुलाया। तब भिक्षुजन ''आयुष्मान्'' कहकर उनके पास गये। आयुष्मान् सारिपुत्र ने उन भिक्षुओं को यह उपदेश किया— ''आयुष्मानो! मैं तुम लोगों को आन्तरिक संयोजन युक्त एवं बाह्य संयोजन युक्त पुद्गल के विषय में कुछ बातें बताऊँगा। उसे सुनो और सावधानतापूर्वक अपने मन में बैठा लो। बताता हूँ।'' ''अच्छा, आयुष्मन्'' कहकर सभी भिक्षु उनके द्वारा दीयमान उपदेश के प्रति सावधान होकर बैठ गये। आयुष्मान् सारिपुत्र ने तब यह कहना आरम्भ किया—

''आयुष्मानो! **आन्तरिक संयोजनयुक्त पुद्गल** कौन होता है? भिक्षुओ! यहाँ जो भिक्षु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्ष संवर से युक्त होता है, आचारभूमि से सम्पन्न (पूर्ण) होता है, छोटे से छोटे दोष से संयुक्त होने में भी भय मानता है, भगवदुपदिष्ट शिक्षापदों का सर्वथा पालन करता है। वह किसी शान्त चेतोविमुक्ति का आलम्बन कर साधना में तत्पर होता है। ऐसा वह भिक्षु, देहपात के बाद, मरणानन्तर किसी देवलोक में उत्पन्न होता है। वहाँ से च्युत होकर आगामी रूप में होता है, तब वह इस लोक में आकर जन्म लेता है। यह साधक भिक्षु 'आन्तरिक संयोजन वाला' कहलाता है।

''तथा, भिक्षुओ! कौन पुद्गल **बाह्य संयोजनयुक्त** होता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु शीलवान् होता है ...पूर्ववत्... किसी देवलोक में उत्पन्न होता है। वहाँ से च्युत होकर वह अनागामी रूप में वहीं अर्हत्त्व कोटि में पहुँच जाता है। उसे एतदर्थ इस लोक में जन्म लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आयुष्मानो! यह साधक भिक्षु 'बाह्य संयोजनयुक्त पुद्गल' कहलाता है।

''फिर, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु शीलवान् (सदाचारसम्पन्न) ...पूर्ववत्... भगवदुपदिष्ट

निरोधाय पटिपन्नो होति। सो तण्हाक्खयाय पटिपन्नो होति। सो कायस्स भेदा परं मरणा अञ्ञतरं देवनिकायं उपपज्जति। सो ततो चुतो अनागामी होति, अनागन्ता इत्थत्तं। अयं वुच्चतावुसो, बहिद्धासंयोजनो पुग्गलो अनागामी होति, अनागन्ता इत्थत्तं'' ति॥

अथ खो सम्बहुला समचित्ता देवता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो ता देवता भगवन्तं एतदवोचुं—''एसो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो पुब्बारामे मिगारमातुपासादे भिक्खूनं अज्झत्तसंयोजनं च पुग्गलं देसेति बहिद्धासंयोजनं च। हट्ठा, भन्ते, परिसा। साधु, भन्ते, भगवा येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया'' ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो [N.62] भगवा—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसा सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा [B.66] बाहं सम्मिञ्जेय्य; एवमेव जेतवने अन्तरहितो पुब्बारामे मिगारमातुपासादे आयस्मतो सारिपुत्तस्स सम्मुखे पातुरहोसि। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। आयस्मा पि खो [R.65] सारिपुत्तो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं सारिपुत्तं भगवा एतदवोच—

''इध, सारिपुत्त, सम्बहुला समचित्ता देवता येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो, सारिपुत्त, ता देवता मं एतदवोचुं—'एसो,

---

शिक्षापदों का पूर्णतया पालन करता है। वह कामभोगों के प्रति उपेक्षा, वैराग्य, निरोध हेतु मार्गारूढ़ होता है, जन्ममरणपरम्परा (भव) के प्रति उपेक्षा... निरोध हेतु मार्गारूढ़ होता है, वह तृष्णाक्षय हेतु,... लोभ क्षयहेतु मार्गारूढ़ होता है। वह इस देहपात के बाद, मरणानन्तर किसी देवलोक में उत्पन्न होता है। वह वहाँ से च्युत होकर अनागामी ही हो जाता है। उसे इस लोक में आकर एतदर्थ मनुष्यत्व ग्रहण की आवश्यकता नहीं होती। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल भी बाह्य संयोजनों से ही युक्त कहलाता है। यह भी अनागामी होता है। इसे इस लोक में आकर एतदर्थ प्रयास की आवश्यकता नहीं होती।''

तब बहुत से देवता, जो कि इस विषय में समचित्त (एकमत) थे, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे, पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए उन देवताओं ने यह निवेदन किया—''भन्ते! ये आयुष्मान् सारिपुत्र इस समय पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में साथी भिक्षुओं को आन्तरिक संयोजनयुक्त एवं बाह्यसंयोजनयुक्त पुद्गल के विषय में बहुत कुछ बता रहे हैं। उसे सुनकर वहाँ उपस्थित भिक्षुपरिषद् बहुत सन्तुष्ट एवं प्रसन्न है। अच्छा होता, भन्ते! इस समय आप भी कृपा कर वहाँ पधारते।'' भगवान् ने मौन भाव से देवताओं का यह निवेदन स्वीकार किया। तब भगवान् जैसे कोई समर्थ पुरुष अपनी बाहु को सरलता एवं सहजता से सङ्कुचित एवं विस्तृत कर लेता है, उसी प्रकार जेतवन में अन्तर्हित (अदृष्ट) होकर पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में जा कर प्रज्ञप्त आसन पर विराजे। आयुष्मान् सारिपुत्र भी भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् सारिपुत्र को भगवान् ने यह कहा—

''सारिपुत्र, कुछ समय पहले कुछ एकमत देवता ...पूर्ववत्... अच्छा होता, भन्ते! आप भी

भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो पुब्बारामे मिगारमातुपासादे भिक्खूनं अज्झत्तसंयोजनं च पुग्गलं देसेति बहिद्धासंयोजनं च। हट्ठा, भन्ते, परिसा। साधु, भन्ते, भगवा येन आयस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया' ति। ता खो पन, सारिपुत्त, देवता दस पि हुत्वा वीसं पि हुत्वा तिंसं पि हुत्वा चत्तालीसं पि हुत्वा पञ्ञासं पि हुत्वा सट्ठि पि हुत्वा आरग्गकोटिनितुदनमत्ते पि तिट्ठन्ति, न च अञ्ञमञ्ञं ब्याबाधेन्ति, सिया खो पन सारिपुत्त, एवमस्स— 'तत्थ नून तासं देवतानं तथा चित्तं भावितं येन ता देवता दस पि हुत्वा वीसं पि हुत्वा तिंसं पि हुत्वा चत्तालीसं पि हुत्वा पञ्ञासं पि हुत्वा सट्ठि पि हुत्वा आरग्गकोटिनितुदनमत्ते पि तिट्ठन्ति न च अञ्ञमञ्ञं ब्याबाधेन्ती' ति। न खो पनेतं, सारिपुत्त, एवं दट्ठब्बं। इधेव खो, सारिपुत्त, तासं देवतानं तथा चित्तं भावितं, येन ता देवता दस पि हुत्वा ...पे०... न च अञ्ञमञ्ञं ब्याबाधेन्ति। तस्मातिह, सारिपुत्त, एवं सिक्खितब्बं-'सन्तिन्द्रियानं भविस्साम सन्तमानसा' ति। एवं हि वो, सारिपुत्त, सिक्खितब्बं। सन्तिन्द्रियानं हि वो, सारिपुत्त, सन्तमानसानं सन्तंयेव कायकम्मं भविस्सति सन्तं वचीकम्मं सन्तं मनोकम्मं। 'सन्तंयेव उपहारं उपहरिस्साम सब्रह्मचारीसू' ति—एवं हि वो, सारिपुत्त, सिक्खितब्बं। अनस्सुं खो, सारिपुत्त, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका ये इमं धम्मपरियायं न अस्सोसुं'' ति॥

६. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा महाकच्चानो वरणायं विहरति भद्दसारितीरे। [R.66] अथ खो आरामदण्डो ब्राह्मणो येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा [N.63] आयस्मता महाकच्चानेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा [B.67] एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आरामदण्डो ब्राह्मणो आयस्मन्तं महाकच्चानं एतदवोच—''को नु खो, भो कच्चान, हेतु को पच्चयो येन खत्तिया पि

इस समय वहाँ पधारते। वे देवता दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ होकर आरे के तीक्ष्ण अग्रभाग पर भी एक साथ, किसी दूसरे को कष्ट पहुँचाये बिना ही, बैठ सकते हैं। सारिपुत्र! सर्वत्र ऐसा न समझना। सारिपुत्र! केवल यहाँ ही (तुम्हारा उपदेश सुनकर) उन सब देवताओं का चित्त एकमत हो गया इसलिये वे देवता इस स्थिति में आ गये कि वे इतनी विशाल सङ्ख्या में होते हुए भी परस्पर कोई कष्ट न देते हुए आरे की नोंक पर एक साथ बैठ सकते हैं। अतः सारिपुत्र! तुम सबको भी यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि तुम सब भी शान्तेन्द्रिय एवं शान्तचित्त रहो। तुम्हें, सारिपुत्र! ऐसा ही सीखना चाहिये। सारिपुत्र! शान्तेन्द्रिय एवं शान्तचित्त साधकों का कायकर्म, वाक्कर्म एवं मानसकर्म भी शान्त ही होगा। तब तुम अपने सब्रह्मचारियों के साथ भी शान्त व्यवहार ही करोगे। अतः सारिपुत्र! तुम्हें यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। अन्य सम्प्रदायों के अवलम्बक परिव्राजक नष्ट ही हो गये; क्योंकि उनने हमारे इस उपदेश का श्रवण नहीं किया॥'' ●

परस्पर विवाद में हेतु : ६. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन वरणा में भद्रसारी नदी के तट पर साधना कर रहे थे। उस समय आरामदण्ड नामक ब्राह्मण आयुष्मान् महाकात्यायन के पास आया और ...पूर्ववत्... यों पूछने लगा—''भो कात्यायन! क्या

खत्तियेहि विवदन्ति, ब्राह्मणा पि ब्राह्मणेहि विवदन्ति, गहपतिका पि गहपतिकेहि विवदन्ती'' ति?

''कामरागाभिनिवेसविनिबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानहेतु खो, ब्राह्मण, खत्तिया पि खत्तियेहि विवदन्ति, ब्राह्मणा पि ब्राह्मणेहि विवदन्ति, गहपतिका पि गहपतिकेहि विवदन्ती'' ति।

''को पन, भो कच्चान, हेतु को पच्चयो येन समणा पि समणेहि विवदन्ती'' ति?

''दिट्ठिरागाभिनिवेसविनिबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानहेतु खो, ब्राह्मण, समणा पि समणेहि विवदन्ती'' ति।

''अत्थि पन, भो कच्चान, कोचि लोकस्मिं यो इमं चेव कामरागाभिनिवेसविनिबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानं समतिक्कन्तो, इमं च दिट्ठिरागाभिनिवेसविनिबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानं समतिक्कन्तो'' ति?

''अत्थि, ब्राह्मण, लोकस्मिं यो इमं चेव कामरागाभिनिवेसविनिबन्धपालिगेधपरियुट्ठानज्झोसानं समतिक्कन्तो, इमं च दिट्ठिरागाभिनिवेसविनिबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानं समतिक्कन्तो'' ति।

''को पन सो, भो कच्चान, लोकस्मिं यो इमं चेव कामरागाभिनिवेसविनिबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानं समतिक्कन्तो, इमं च दिट्ठिरागाभिनिवेसविनिबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानं समतिक्कन्तो'' ति?

''अत्थि, ब्राह्मण, पुरत्थिमेसु जनपदेसु सावत्थि नाम नगरं। तत्थ सो भगवा एतरहि विहरति अरहं सम्मानसम्बुद्धो। सो हि, ब्राह्मण, भगवा इमं चेव कामरागा-

---

हेतु या क्या प्रत्यय है कि ये क्षत्रिय क्षत्रियों से, ब्राह्मण ब्राह्मणों से या गृहपति गृहपतियों से विवाद करते रहते हैं?''

''ब्राह्मण! कामराग में अभिनिवेश बन्धन के कारण, अपने स्वार्थमय पूर्वसङ्कल्प में आसक्ति के कारण क्षत्रिय क्षत्रियों से, ब्राह्मण ब्राह्मणों से, गृहपति गृहपतियों से विवाद करते रहते हैं।''

''भो कात्यायन! क्या हेतु क्या प्रत्यय है कि कोई श्रमण अन्य श्रमणों से विवाद करते रहते हैं?''

''ब्राह्मण! दृष्टिराग में अभिनिवेशबन्धन के कारण... विवाद करते रहते हैं।''

''परन्तु भो कात्यायन! इस लोक में ऐसा भी कोई पुरुष है जो इस कामराग में अभिनिवेश बन्धन के कारण ...पूर्ववत्... दृष्टिराग में अभिनिवेश बन्धन के कारण अपने स्वार्थमय पूर्वसङ्कल्प में आसक्ति को पार कर चुका हो?''

''हाँ, ब्राह्मण! इस लोक में ऐसा भी पुरुष है जो ...पूर्ववत्... पार कर चुका है।''

''भो कात्यायन! ऐसा कौन पुरुष है जो इस कामराग... दृष्टिराग... को पार कर चुका है।''

''हाँ, ब्राह्मण! पूर्वजनपदों में एक श्रावस्ती नामक नगर है, वहाँ वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध इस समय साधना हेतु विराजमान हैं। ब्राह्मण! वे भगवान् इस कामराग ...पूर्ववत्...

भिनिवेसविनिबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानं समतिक्कन्तो, इमं च दिट्ठिरागाभिनिवेसवि-
[R.67] निबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानं समतिक्कन्तो'' ति।

एवं वुत्ते आरामदण्डो ब्राह्मणो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणं जाणुमण्डलं पथवियं निहन्त्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं उदानं उदानेसि-

''नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स, नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स, नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। यो हि सो भगवा इमं चेव कामरागाभिनिवेसविनिबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानं समतिक्कन्तो, इमं च दिट्ठिरागाभिनिवेसविनिबन्धपलिगेधपरियुट्ठानज्झोसानं समतिक्कन्तो ति।

''अभिक्कन्तं, भो कच्चान, अभिक्कन्तं, भो कच्चान! सेय्यथापि, भो कच्चान, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति; एवमेवं भोता कच्चानेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भो कच्चान, तं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं कच्चानो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥

७. एक समयं आयस्मा महाकच्चानो मधुरायं विहरति गुन्धावने। अथ खो कन्दरायनो ब्राह्मणो येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महाकच्चानेन सद्धिं ...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो कन्दरायनो ब्राह्मणो आयस्मन्तं

दृष्टिराग में अभिनिवेशबन्धन के कारण अपने स्वार्थमय पूर्वसङ्कल्पों की आसक्ति को अतिक्रान्त कर चुके हैं।''

ऐसा कहे जाने पर उस आरामदण्ड ब्राह्मण ने आसन से उठकर अपने उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर तथा अपने दक्षिण जानुमण्डल (घुटने) को पृथ्वी पर टिकाकर जिस दिशा में भगवान् विराजमान थे उधर प्रणाम कर तीन बार यह उदान (हर्षोद्गार) प्रकट किया—

''उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है, उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है, उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है। जो भगवान् इस कामरागाभिनिवेश बन्धन के कारण ...पूर्ववत्... दृष्टिरागाभिनिवेश बन्धन के कारण अपने स्वार्थमय पूर्व सङ्कल्पों की आसक्ति को अतिक्रान्त कर चुके हैं।''

''भो कात्यायन! आपने यह अतिशय चमत्कार कर दिखाया ...पूर्ववत्... इसी तरह आपने अनेक विधियों से धर्म का व्याख्यान किया। अतः, भो कात्यायन! मैं उन पूज्य गौतम की शरण में जाता हूँ, उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म एवं उनके मतावलम्बी सङ्घ की शरण में जाता हूँ। आप कात्यायन आज से आगे मेरे प्राण रहने तक मुझको अपना उपासक (सेवक) ही समझें॥''

अभिवादनीय पुरुष : ७. एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन मथुरा के गुन्दावन में साधना कर रहे थे। उस समय कोई कन्दरायण नामक ब्राह्मण आयुष्मान् महाकात्यायन के पास आया ...पूर्ववत्... आयुष्मान् महाकात्यायन यों पूछने लगा—''भो कात्यायन! मैंने सुना है—

महाकच्चानं एतदवोच–"सुतं मेतं, भो कच्चान, 'न समणो कच्चानो ब्राह्मणे जिण्णे वुद्धे महल्लके अद्धगते वयोअनुप्पत्ते अभिवादेति वा पच्चुट्ठेति वा आसनेन वा निमन्तेती' ति। तयिदं, भो कच्चान, तथेव? न हि भवं कच्चानो ब्राह्मणे जिण्णे वुद्धे महल्लके अद्धगते वयोअनुप्पत्ते अभिवादेति वा पच्चुट्ठेति वा आसनेन वा निमन्तेति। तयिदं, भो कच्चान, न सम्पन्नमेवा" ति।

"अत्थि, ब्राह्मण, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन [R.68] वुद्धभूमि च अक्खाता दहरभूमि च। वुद्धो चे पि, ब्राह्मण, होति आसीतिको वा नावुतिको व वस्ससतिको वा जातिया, सो च कामे परिभुञ्जति काममज्झावसति कामपरिळाहेन परिडय्हति कामवितक्केहि खज्जति कामपरियेसनाय उस्सुको। अथ खो सो बोलो, न थेरो त्वेव सङ्खं गच्छति। दहरो चे पि, ब्राह्मण, होति युवा सुसुकाळकेसो भद्रेन योब्बनेन [B.69] समन्नागतो पठमेन वयसा। सो च न कामे परिभुञ्जति न काममज्झावसति, न काम-परिळाहेन परिडय्हति, न कामवितक्केहि खज्जति, न कामपरियेसनाय उस्सुको। [N.65] अथ खो सो पण्डितो थेरो त्वेव सङ्खं गच्छती" ति।

एवं वुत्ते कन्दरायनो ब्राह्मणो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दहरानं सतं भिक्खूनं पादे सिरसा वन्दति—"वुद्धा भवन्तो, वुद्धभूमियं ठिता। दहरा मयं, दहरभूमियं ठिता" ति।

'श्रमण कात्यायन किसी लम्बी आयुवाले जीर्ण वृद्ध ब्राह्मण का न तो अभिवादन करते हैं, न अभ्युत्थान करते हैं, न किसी को बैठने के लिये आसन देते हैं। क्या भो कात्यायन! यह बात ऐसे ही है? क्या वस्तुतः आप किसी... वृद्ध ब्राह्मण को अभिनन्दन अभ्युत्थान आदि नहीं करते या उसको बैठने के लिये आसन भी नहीं देते? यदि ऐसा है तो, भो कात्यायन! यह उचित नहीं है।"

"ब्राह्मण! उन ज्ञानी सर्वद्रष्टा भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध (मेरे गुरु) ने 'वृद्ध' एवं 'युवा' की परिभाषाएँ स्पष्ट घोषित कर रखी हैं। (वे कहते हैं—) ब्राह्मण! यदि कोई जन्म (आयु) से अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष का हो जाय, परन्तु वह कामभोगों का पूर्ववत् उपभोग कर रहा है, उनमें उसी तरह आसक्त है, उनके मिलने या न मिलने से पूर्ववत् सुख या दुःख का अनुभव करता है, कामसङ्कल्पों को भोगता हुआ टूटता जा रहा है, तो भी कामभोगों की खोज में निरन्तर लगा रहता है तो ब्राह्मण! ऐसा वह वृद्ध, उनकी दृष्टि में, बालक ही है, उसको 'स्थविर' (वृद्ध) नहीं कहा जा सकता। (इसके विपरीत) जो पुरुष कामभोगों की ओर नहीं दौड़ता, उनमें आसक्ति नहीं रखता, कामभोगों से दग्ध नहीं होता, कामसङ्कल्पों में नहीं फँसता, कामभोगों की खोज में उत्सुक नहीं रहता। ऐसे पुरुष की आयु कुछ भी हो वह पण्डित ही है तथा वह 'स्थविर' (वृद्ध) ही कहलाता है।"

आयुष्मान् कात्यायन द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह कन्दरायण ब्राह्मण अपने उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर डालकर युवा भिक्षुओं को प्रणाम करता हुआ उनके चरणों में सिर झुका कर यह कहने लगा—"आप लोग ज्ञानी हैं, आप लोग ज्ञानियों की भूमिका (स्थिति) में पहुँच चुके हैं। वस्तुतः आप लोगों के सम्मुख हम (कामभोगी) ही युवा हैं, युवकों की भूमिका ही निभा रहे हैं।"

"अभिक्कन्तं, भो कच्चान ...पे०... उपासकं मं भवं कच्चानो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

८. "यस्मिं, भिक्खवे, समये चोरा बलवन्तो होन्ति राजानो तस्मिं समये दुब्बला होन्ति। तस्मिं, भिक्खवे, समये रञ्ञो न फासु होति अतियातुं वा निय्यातुं वा पच्चन्तिमे वा जनपदे अनुसञ्ञातुं। ब्राह्मणगहपतिकानं पि तस्मिं समये न फासु होति अतियातुं वा निय्यातुं वा बाहिरानि वा कम्मन्तानि पटिवेक्खितुं। एवमेव खो, भिक्खवे, यस्मिं समये पापभिक्खू पेसला बलवन्तो होन्ति, पेसला भिक्खू तस्मिं समये दुब्बला होन्ति। तस्मिं, भिक्खवे, समये भिक्खू तुण्हीभूता तुण्हीभूता व सङ्घमज्झे सङ्कसायन्ति, पच्चन्तिमे वा जनपदे अच्छन्ति। तयिदं, भिक्खवे, होति बहुजनाहिताय बहुजनासुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं।

[R.69] "यस्मिं, भिक्खवे, समये राजानो बलवन्तो होन्ति चोरा तस्मिं समये दुब्बला होन्ति; तस्मिं, भिक्खवे, समये रञ्ञो फासु होति अतियातुं वा निय्यातुं वा पच्चन्तिमे वा जनपदे अनुसञ्ञातुं। ब्राह्मणगहपतिकानं पि तस्मिं समये फासु होति अतियातुं वा निय्यातुं वा बाहिरानि वा कम्मन्तानि पटिवेक्खितुं। एवमेव खो, भिक्खवे, यस्मिं समये पेसला भिक्खू बलवन्तो होन्ति, पापभिक्खू तस्मिं समये दुब्बला होन्ति। तस्मिं, भिक्खवे, समये पापभिक्खू तुण्हीभूता तुण्हीभूता व सङ्घमज्झे सङ्कसायन्ति, येन वा पन तेन पक्कमन्ति।

"आश्चर्य है, भो कात्यायन! ...पूर्ववत्... शरणागत समझें॥"

पाप की अधिकता : ८. "भिक्षुओ! जब समाज में चौरों की प्रबलता होती है तब राजा (शासक) लोग दुर्बल हो जाते हैं। उस समय राजा लोग अपने शासित जनपदों में सासन के कार्य से, सरलता तथा सहजता से नहीं आ जा सकते, न सीमान्त प्रदेशों की ही सुदृढ़ सुरक्षा कर पाते हैं। इतना ही नहीं, उस समय ब्राह्मण या गृहपति भी सरलता व सुविधापूर्वक अपने घरों से बाहरी कृत्यों के लिये नहीं निकल पाते हैं। इसी प्रकार, भिक्षुओ! जब पापी भिक्षु समाज में अधिक हो जाते हैं तो चरित्रवान् सदाचारी भिक्षु दुर्बल हो जाते हैं। उस समय ये सदाचारी भिक्षु चुपचाप सङ्घ में रहते हुए कसमसाते रहते हैं, या सङ्घ छोड़ कर सीमान्त जनपदों के एकान्त में जाकर साधना करते हैं। भिक्षुओ! समाज की यह दशा अधिक जनों के लिये अहितकर है, अधिक जनों के लिये दुःखदायी है। देवताओं एवं मनुष्यों सहित अधिक लोगों के लिये यह स्थिति अनर्थकर, अहितकर एवं दुःखदायी ही होती है।

(परन्तु) "भिक्षुओ! जब समाज में राजा लोग शासन में सुदृढ़ होते हैं तब चौर, लुटेरे दुर्बल पड़ जाते हैं। उस समय राजा लोग अपने शासित जनपदों तथा सीमान्त जनपदों में शासन हेतु आने जाने में सरलता एवं सहजता अनुभव करते हैं। ब्राह्मण एवं गृहपति भी निश्चिन्ततापूर्वक अपने घरों से बाहर आ जा सकते हैं। इसी प्रकार, भिक्षुओ! जिस समय चरित्रवान् भिक्षु बहुमत में (अधिक) होते हैं तो उस समय पापी भिक्षु दुर्बल हो जाते हैं। उस समय पापी भिक्षु सङ्घ में पड़े पड़े अपने मन में कष्ट पाते रहते हैं, या सङ्घ छोड़कर अन्यत्र भाग जाते हैं। भिक्षुओ! समाज की यह स्थिति अधिक

तयिदं, भिक्खवे, होति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं'' ति॥

९. ''द्विन्नाहं, भिक्खवे, मिच्छापटिपत्तिं न वण्णेमि, गिहिस्स वा पब्बजितस्स वा। गिही वा, भिक्खवे, पब्बजितो वा मिच्छापटिपन्नो मिच्छापटिपत्ताधिकरणहेतु न [B.70] आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं॥''

''द्विन्नाहं, भिक्खवे, सम्मापटिपत्तिं न वण्णेमि, गिहिस्स वा पब्बजितस्स वा। [N.66] गिही वा, भिक्खवे, पब्बजितो वा सम्मापटिपन्नो सम्मापटिपत्ताधिकरणहेतु न आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं'' ति॥

१०. ''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू दुग्गहितेहि सुत्तन्तेहि ब्यञ्जनप्पतिरूपकेहि अत्थं च धम्मं च पटिवाहन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनाहिताय पटिपन्ना बहुजनासुखाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू अपुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं अन्तरधापेन्ति''।

''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू सुग्गहितेहि सुत्तन्तेहि ब्यञ्जनप्पतिरूपकेहि अत्थं च धम्मं च अनुलोमेन्ति ते, भिक्खवे, भिक्खू बहुजनहिताय पटिपन्ना बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। बहुं च ते, भिक्खवे, भिक्खू पुञ्ञं पसवन्ति, ते चिमं सद्धम्मं ठपेन्ती'' ति॥ ●

जनों के हित के लिये अधिक जनों के सुख के लिये हितकर एवं सुखकर होती है। देवताओं एवं मनुष्यों सहित बहुत जनों के लिये हितकारी सुखकारी एक उनके प्रयोजन साधिका होती है॥'' ●

मिथ्या क्रियाकलाप का समर्थन नहीं : ९. ''भिक्षुओ! मैं गृहस्थ एवं प्रव्रजित के मिथ्या क्रियाकलाप का समर्थन नहीं करता। भिक्षुओ! गृहस्थ हो या प्रव्रजित, यदि वह मिथ्या क्रियाकलापों में फँसा हुआ है तो वह निश्चित ही कुशल धर्मों को उचित रीति से प्राप्त नहीं कर सकता।

''तथा, भिक्षुओ! मैं गृहस्थ एवं प्रव्रजित के शास्त्रोचित सम्यक् क्रियाकलाप का समर्थन करता हूँ। भिक्षुओ! कोई गृहस्थ हो या प्रव्रजित, यदि वह शास्त्रोचित सम्यक् क्रियाकलापों में रत है, तो वह निश्चित ही कुश धर्मों की प्राप्ति में समर्थ हो सकता है॥''

अहितकारी एवं हितकारी धर्मोपदेशक : १०. ''भिक्षुओ! जो भिक्षु किन्हीं सूत्रों के पद व्यञ्जनों का शास्त्रविरुद्ध अर्थ कर धर्म का उपदेश करते हैं, भिक्षुओ! वे भिक्षु अनेक शिष्टजनों के अहित एवं दुःखोत्पाद में ही लगे हुए हैं। भिक्षुओ! वे भिक्षु अपने लिये तो अपुण्य का सञ्चय कर ही रहे हैं साथ ही अपने इस पापकृत्य से इस सद्धर्म का लोप करने में भी लगे हुए हैं।

''तथा, जो भिक्षु किन्हीं सूत्रों के पद व्यञ्जनों का शास्त्रोचित अर्थ द्वारा धर्म का उपदेश करते हैं वे भिक्षु अनेक साधुजनों के हित-सुख में लगे हुए हैं—ऐसा समझो। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु अपने लिये तो पुण्य का सञ्चय करते ही हैं, साथ ही अपने इस पुण्यकर्म से सद्धर्म की वृद्धि में भी सहायक होते हैं॥'' ●

५. परिसवग्गो

[R.70] १. ''द्वेमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा द्वे? उत्ताना च परिसा, गम्भीरा च परिसा।

कतमा च, भिक्खवे, उत्ताना परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू उद्धता होन्ति उन्नळा चपला मुखरा विकिण्णवाचा मुट्ठस्सती असम्पजाना असमाहिता विब्भन्तचित्ता पाकतिन्द्रिया। अयं वुच्चति. भिक्खवे, उत्ताना परिसा।

''कतमा च, भिक्खवे, गम्भीरा परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू अनुद्धता होन्ति अनुन्नळा अचपला अमुखरा अविकिण्णवाचा उपट्ठितस्सती सम्पजाना [B.71] समाहिता एकग्गचित्ता संवुतिन्द्रिया। अयं वुच्चति, भिक्खवे, गम्भीरा परिसा।

इमा खो, भिक्खवे, द्वे परिसा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परिसानं यदिदं गम्भीरा परिसा'' ति।

२. ''द्वेमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा द्वे? वग्गा च परिसा, समग्गा च परिसा। कतमा च, भिक्खवे, वग्गा परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, वग्गा परिसा।

[N.67] ''कतमा च, भिक्खवे, समग्गा परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू

---

५. परिषद्वर्ग

दो परिषद् : १. ''भिक्षुओ! लोक में ये दो प्रकार की परिषद् (सभा) कहलाती हैं। कौन सी दो? प्रथम—उत्तान (शास्त्रसम्मत बात कहने में असमर्थ) एवं दूसरी गम्भीर (शास्त्रसम्मत अर्थ का प्रतिपादन करने वाली)।

भिक्षुओ! इनमें **उत्तानपरिषद्** कौन सी होती है? जिस परिषद् में एकत्र हुए भिक्षु उद्धत (धृष्ट), उन्नड़ (अहङ्कारी), चञ्चल, मुखर (बकवादी) विखरी बातें बोलने वाले, भ्रान्तबुद्धि, असम्प्रज्ञ (असावधान) असमाहित, भ्रान्त चित्त एवं प्रत्येक बात पर लौकिक (भौतिक) दृष्टि से ही विचार करनेवाले (प्राकृतेन्द्रिय) होते हैं। भिक्षुओ! यह उत्तानपरिषद् कहलाती है।

''भिक्षुओ! **गम्भीर परिषद्** कौन कहलाती है? जिस परिषद् में एकत्र भिक्षु विनयी, अनुन्नड़ (नम्र), स्थिरचित्त, सोच-समझकर बोलनेवाले (अमुखर) व्यवस्थित (युक्तियुक्त) संवादकर्ता, स्थितप्रज्ञ, सावधान, समाहित, स्थिरचित्त एवं इन्द्रिय संयमी हैं। भिक्षुओ! यह गम्भीर परिषद् कहलाती है। भिक्षुओ ये दो परिषद् कहलाती हैं। इनमें यह द्वितीय गम्भीर परिषद् ही श्रेष्ठ हैं॥ ●

दो परिषद् : २. ''भिक्षुओ! ये भी दो परिषद् कहलाती है। कौन सी दो? प्रथम—वर्ग एवं द्वितीय—समग्र (एकमत)। भिक्षुओ! इनमें **वर्ग परिषद्** कौन सी होती है? भिक्षुओ! जिस परिषद् में एकत्र भिक्षु विवादकारी, कलहकारी, झगड़ा करने वाले, परस्पर अपशब्द बोलने वाले हों। भिक्षुओ! ऐसी परिषद् वर्ग (विभक्त) परिषद् कहलाती है।

''तथा भिक्षुओ! **समग्र परिषद्** कौन कहलाती है? भिक्षुओ! जिस परिषद् में विवाद, कलह

समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, समग्गा परिसा।

''इमा खो, भिक्खवे, द्वे परिसा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परिसानं यदिदं समग्गा परिसा'' ति।

३. ''द्वेमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा द्वे? अनग्गवती च परिसा, अग्गवती च परिसा। कतमा च, भिक्खवे, अनग्गवती परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं थेरा [R.71] भिक्खू बाहुलिका होन्ति साथलिका, ओक्कमने पुब्बङ्गमा, पविवेके निक्खित्तधुरा, न विरियं आरभन्ति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। तेसं पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं आपज्जति। सा पि होति बाहुलिका साथलिका, ओक्कमने पुब्बङ्गमा, पविवेके निक्खित्तधुरा, न विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अनग्गवती परिसा।

''कतमा च, भिक्खवे, अग्गवती परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं थेरा भिक्खू न बाहुलिका होन्ति न साथलिका, ओक्कमने निक्खित्तधुरा, पविवेके पुब्बङ्गमा, विरियं आरभन्ति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। तेसं पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं आपज्जति। सा पि होति न बाहुलिका न साथलिका, ओक्कमने न निक्खित्तधुरा, पविवेके पुब्बङ्गमा, विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया

या झगड़ा न करने वाले, परस्पर सम्यग्वचन बोलने वाले भिक्षु एकत्र होकर परस्पर मित्रभाव से संलाप करते हैं भिक्षुओ! वह परिषद् 'समग्र परिषद्' कहलाती है।

''भिक्षुओ! ये दो परिषदें भी हैं। इन दोनों परिषदों में समग्रपरिषद् ही श्रेष्ठ है॥''

अन्य दो परिषद् : ३. ''भिक्षुओ! परिषदों के दो प्रकार का विभाजन इस तरह से भी किया गया है। कौन सी दो? प्रथम अनग्रवती एवं द्वितीय अग्रवती। इनमें, भिक्षुओ! **अनग्रवती परिषद्** कौन कहलाती है? जिस परिषद् में एकत्र स्थविर भिक्षु लौकिक वस्तुओं के परिग्रही हों, साधनाकर्म में शिथिल (साथलिक), किसी बात में आगे रहने में सदा उत्सुक परन्तु तदर्थ साधना में जुआ टेक देने वाले, अप्राप्त की प्राप्ति में तथा अज्ञात के ज्ञान में एवं असाक्षात्कृत के साक्षात्कार में शक्ति न लगाने वाले होते हैं। परिणामस्वरूप आगामी जनता इन भिक्षुओं का ही अनुकरण करनेवाली हो जाती है तथा वह भी परिग्रही ...पूर्ववत्... शक्ति न लगाने वाली हो जाती है। भिक्षुओ! ऐसी परिषद् अनग्रवती (फलप्राप्ति में पिछड़नेवाली) होती है।

''तथा, भिक्षुओ! **अग्रवती परिषद्** कौन कहलाती है? भिक्षुओ! जिस परिषद् में एकत्र स्थविर भिक्षु अपरिग्रही, साधना में तत्पर, किसी कार्य में जल्दबाजी करने में अनुत्सुक परन्तु कार्य को स्वीकार कर लेने के बाद उसकी साधना (पूर्ति) में तत्पर हो जानेवाले, तथा अप्राप्त की प्राप्ति में, अज्ञात के ज्ञान में एवं असाक्षात्कृत के साक्षात्कार हेतु अपनी पूर्ण शक्ति लगा देने वाले होते हैं। वह परिषद्, भिक्षुओ! अग्रवती (फलप्राप्ति के कर्म में आगे रहने वाली) होती है। इसके परिणामस्वरूप उनके बाद में आने वाली जनता भी उनका अनुकरण करती हुई वैसी ही हो जाती

अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, [B.72] अग्गवती परिसा। इमा खो, भिक्खवे, द्वे परिसा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परिसानं यदिदं अग्गवती परिसा'' ति॥

४. ''द्वेमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा द्वे? अनरिया च परिसा अरिया च परिसा। कतमा, भिक्खवे, अनरिया परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानन्ति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं नप्पजानन्ति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं नप्पजानन्ति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं नप्पजानन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अनरिया परिसा।

[N.68] ''कतमा च, भिक्खवे, अरिया परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानन्ति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानन्ति, 'अयं [R.72] दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानन्ति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरिया परिसा। इमा खो, भिक्खवे, द्वे परिसा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परिसानं यदिदं अरिया परिसा'' ति॥

५. ''द्वेमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा द्वे? परिसाकसटो च परिसामण्डो च। कतमो च, भिक्खवे, परिसाकसटो? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू छन्दागतिं गच्छन्ति, दोसागतिं गच्छन्ति, मोहागतिं गच्छन्ति, भयागतिं गच्छन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, परिसाकसटो।

है। वह भी अपरिग्रही ...पूर्ववत्... अपनी पूर्ण शक्ति लगा देने वाली हो जाती है। यह कहलाती है अग्रवती परिषद्। इस तरह, भिक्षुओ! ये दो परिषदें कहलाती हैं। भिक्षुओ! इन दोनों में अग्रवती परिषद् ही श्रेष्ठ कहलाती है॥''

अन्य दो परिषद् : ४. ''ये परिषदें द्विविध इस प्रकार भी हैं। कौन सी दो? प्रथम अनार्य परिषद् एवं द्वितीय आर्य परिषद्। भिक्षुओ! इनमें **अनार्य परिषद्** कौन सी है? यहाँ, भिक्षुओ! जिस परिषद् में एकत्र भिक्षु 'यह दु:ख है'—यह भी भलीभाँति नहीं जानते; 'यह दु:खसमुदय है'—यह भी भलीभाँति नहीं जानते; 'यह दु:खनिरोध है'... 'यह दु:खनिरोधगामी मार्ग है'—यह भी भलीभाँति नहीं जानते। भिक्षुओ! यह कहलाती है—अनार्य परिषद्।

''तथा, भिक्षुओ! **आर्य परिषद्** कौन कहलाती है? यहाँ, भिक्षुओ! जिस परिषद् में एकत्र भिक्षु 'यह दु:ख है'—यह... 'यह दु:खसमुदय है'—...'यह दु:खनिरोध है'—यह...'यह दु:खनिरोधगामी मार्ग है'—यह भलीभाँति जानते हैं। भिक्षुओ! यह कहलाती है आर्य परिषद्। भिक्षुओ! ये हुईं दो परिषदें। इन दोनों में आर्य परिषद् ही श्रेष्ठ मानी जाती है॥''

५. ''भिक्षुओ! परिषदों के दो भेद ये भी हैं। कौन से दो? प्रथम—परिषत्कसट (परिषद् का कूड़ा कचरा) तथा द्वितीय—परिषन्मण्ड (परिषद् का मँड=मलाई)। भिक्षुओ! यह **परिषत्कसट** कौन कहलाती हैं? जिस परिषद् में उपस्थित भिक्षु पक्षपाती होते हैं, द्वेषी होते हैं, मुग्ध होते हैं, भीत (डरे हुए) होते हैं। भिक्षु ऐसी परिषद् 'परिषत्कसट' कहलाती है।

"कतमो च, भिक्खवे, परिसामण्डो? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू न छन्दागतिं गच्छन्ति, न दोसागतिं गच्छन्ति, न मोहागतिं गच्छन्ति, न भयागतिं गच्छन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, परिसामण्डो। इमा खो, भिक्खवे, द्वे परिसा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परिसानं यदिदं परिसामण्डो" ति॥

६. "द्वेमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा द्वे? ओक्काचितविनीता परिसा नो पटिपुच्छाविनीता, पटिपुच्छाविनीता परिसा नो ओक्काचितविनीता। कतमा च, भिक्खवे, ओक्काचितविनीता परिसा नो पटिपुच्छाविनीता? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू ये ते सुत्तन्ता तथागतभासिता गम्भीरा गम्भीरत्था लोकुत्तरा सुञ्ञतापटिसंयुत्ता तेसु [B.73] भञ्ञमानेसु न सुस्सूसन्ति न सोतं ओदहन्ति न अञ्ञाचित्तं उपट्ठपेन्ति न च ते धम्मे उग्गहेतब्बं परियापुणितब्बं मञ्ञन्ति। ये पन ते सुत्तन्ता कविता कावेय्या चित्तक्खरा चित्तब्यञ्जना बाहिरका सावकभासिता तेसु भञ्ञमानेसु सुस्सूसन्ति सोतं ओदहन्ति अञ्ञाचित्तं उपट्ठपेन्ति, ते धम्मे उग्गहेतब्बं परियापुणितब्बं मञ्ञन्ति, ते च तं धम्मं परियापुणित्वा न चेव अञ्ञमञ्ञं पटिपुच्छन्ति न च पटिविवरन्ति—'इदं कथं, [R.73] इमस्स को अत्थो' ति? ते अविवटं चेव न विवरन्ति, अनुत्तानीकतं च न उत्तानीकरोन्ति, अनेकविहितेसु च कङ्खाठानियेसु धम्मेसु कङ्खं न पटिविनोदेन्ति। अयं वुच्चति, [N.69] भिक्खवे, ओक्काचितविनीता परिसा नो पटिपुच्छाविनीता।

"भिक्षुओ! कौन सी परिषद् **परिषन्मण्ड** कहलाती है? भिक्षुओ! जिस परिषद् में एकत्र भिक्षु पक्षपाती न हों, द्वेषी न हों, मुग्ध (मोहप्राप्त) न हों, तथा किसी कारण भीत न हो, ऐसी परिषद् 'परिषन्मण्ड' कहलाती है। भिक्षुओ! ये दो परिषदें भी होती हैं। इनमें परिषन्मण्ड ही श्रेष्ठ परिषद् है।" ●

अन्य दो परिषद् : ६. "भिक्षुओ! ये दो प्रकार की परिषद् भी होती हैं? कौन सी दो? प्रथम ओक्काचितविनीत होती है परन्तु प्रतिपृच्छाविनीत नहीं होती है तथा द्वितीय प्रतिपृच्छाविनीत होती है परन्तु ओक्काचित्तविनीत नहीं होती। कैसे भिक्षुओ! कोई परिषद् **ओक्काचितविनीत** होती है **प्रतिपृच्छाविनीत नहीं** होती? भिक्षुओ! जिस परिषद् में ऐसे भिक्षु एकत्र होते हैं जो तथागतकथित ऐसे सूत्रों के सुनने पर ध्यान नहीं देते, कान नहीं लगाते जो तथागत प्रोक्त अध्यात्म प्रतिपादक गम्भीर अर्थ वाले हैं, न वे उन सूत्रों को उद्ग्रहीतव्य ही मानते हैं न समझने का प्रयास ही करते हैं। परन्तु इसके विपरीत, जो सूत्र कवितामय हैं, चित्र विचित्र पद व्यञ्जनों वाले हैं, बाह्यवृत्ति श्रावकों द्वारा प्रोक्त हैं, उनके कहे जाने पर ध्यान देते हैं, उन पर कान लगाते हैं, उनको समझने का प्रयास करते हैं, उन सूत्रों स्मरण करने योग्य मानते हैं। वे उन सूत्रों को सुनकर उनके विषय में न अन्य किसी से पूछते हैं—'यह क्या है' या 'इसका क्या अर्थ है?' वे वहाँ गुप्त अर्थ को स्पष्ट नहीं कर पाते, न अस्पष्ट को स्पष्ट कर पाते हैं। वहाँ अनेक प्रकार के शङ्कासन्देह होने पर भी अपनी ओर से कोई शङ्का-सन्देह प्रश्न नहीं उठाते। भिक्षुओ! यह परिषद् 'ओक्काचित्तविनीत एवं न प्रतिपृच्छा-विनीत' कहलाती है।

"कतमा च, भिक्खवे, पटिपुच्छाविनीता परिसा नो ओक्काचितविनीता? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू ये ते सुत्तन्ता कविता कावेय्या चित्तक्खरा चित्तब्यञ्जना बाहिरका सावकभासिता तेसु भञ्ञमानेसु न सुस्सूसन्ति न सोतं ओदहन्ति न अञ्ञाचित्तं उपट्ठपेन्ति, न च ते धम्मे उग्गहेतब्बं परियापुणितब्बं मञ्ञन्ति। ये पन ते सुत्तन्ता तथागतभासिता गम्भीरा गम्भीरत्था लोकुत्तरा सुञ्ञतापटिसंयुत्ता तेसु भञ्ञमानेसु सुस्सूसन्ति सोतं ओदहन्ति अञ्ञाचित्तं उपट्ठपेन्ति, ते च धम्मे उग्गहेतब्बं परियापुणितब्बं मञ्ञन्ति। ते तं धम्मं परियापुणित्वा अञ्ञमञ्ञं पटिपुच्छन्ति पटिविवरन्ति—'इदं कथं, इमस्स को अत्थो' ति? ते अविवटं चेव विवरन्ति, अनुत्तानीकतं च उत्तानीकरोन्ति, अनेकविहितेसु च कङ्खाठानियेसु धम्मेसु कङ्खं पटिविनोदेन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पटिपुच्छाविनीता परिसा नो ओक्काचितविनीता। इमा खो, भिक्खवे, द्वे परिसा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परिसानं यदिदं पटिपुच्छाविनीता परिसा नो ओक्काचितविनीता" ति॥

७. "द्वेमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा द्वे? आमिसगरु परिसा नो सद्धम्मगरु, सद्धम्मगरु परिसा नो आमिसगरु। कतमा च, भिक्खवे, आमिसकरु परिसा नो सद्धम्मगरु? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू गिहीनं ओदातवसनानं सम्मुखा अञ्ञमञ्ञस्स वण्णं भासन्ति—'असुको भिक्खू उभतोभागविमुत्तो, असुको पञ्ञाविमुत्तो, असुको कायसक्खि, [B.74, R.74] असुको दिट्ठिप्पत्तो, असुको पञ्ञाविमुत्तो, असुको कायसक्खि, असुको दिट्ठिप्पत्तो, असुको सद्धाविमुत्तो, असुको धम्मानुसारी, असुको सद्धानुसारी, असुको

"तथा भिक्षुओ! कौन सी परिषद् **'प्रतिपृच्छाविनीत एवं न ओक्काचितविनीत'** कहलाती है? भिक्षुओ! यहाँ जिस परिषद् में ऐसे भिक्षु एकत्र होते हैं जो काव्यमय सूत्रों को, जो चित्रविचित्र पदव्यञ्जन वाले हैं, बाह्यवृत्ति श्रावकों द्वारा प्रोक्त हैं, उनके कहे जाने पर न उनपर ध्यान देते हैं, न उनपर कान देते हैं, न उनको समझने का प्रयास ही करते हैं, न उनको ग्रहण करने योग्य ही समझते हैं। अपितु वहाँ जो ऐसे सूत्रान्तों का प्रवचन होने लगता है जो बुद्धप्रोक्त हैं, गम्भीर अर्थवाले लोकोत्तर हैं, शून्यताप्रतिपादक हैं, उनको स्मरण करने योग्य उनपर विचार करने योग्य मानते हैं। वे उन सूत्रों को सुनकर उनपर जिज्ञासा प्रकट करते हैं कि ये क्या हैं? तथा इनका क्या अर्थ है? वे वहाँ गुह्य को तथा अस्पष्ट को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं, वहाँ अपनी ओर से विविध शङ्का समाधान करते हैं। भिक्षुओ! ऐसी यह परिषद् भी 'प्रतिपृच्छविनीत परन्तु ओक्काचितविनीत नहीं' परिषद् कहलाती है। इस प्रकार भिक्षुओ! ये भी दो प्रकार की परिषदें होती हैं। भिक्षुओ! इन दोनों परिषदों में भी 'प्रतिपृच्छाविनीत परन्तु ओक्काचितविनीत नहीं' परिषद् ही श्रेष्ठ कहलाती हैं॥"

दो अन्य परिषद् : ७. "भिक्षुओ! ये भी दो परिषद् कहलाती हैं। कौन सी दो? प्रथम भोगप्रधानपरिषद् जिसे धर्मपरिषद् नहीं कह सकते। तथा द्वितीय सद्धर्मप्रधानपरिषद् जिसे भोगप्रधानपरिषद् नहीं कह सकते। भिक्षुओ! इनमें **भोगप्रधानपरिषद्** कौन है? भिक्षुओ! जिस परिषद् में भिक्षुजन श्वेतवस्त्रधारी उपासकों के सम्मुख एकत्र होकर परस्पर प्रशंसा में यों कहने लगें—'यह भिक्षु उभतोभागविमुक्त है', 'यह प्रज्ञाविमुक्त है', 'यह कायसाक्षी है', 'यह दृष्टिप्राप्त

सीलवा कल्याणधम्मो, असुको दुस्सीलो पापधम्मो' ति। ते तेन लाभं लभन्ति। ते तं लाभं लभित्वा गथिता मुच्छिता अज्झोपन्ना अनादीनवदस्साविनो अनिस्सरणपञ्ञा परिभुञ्जन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, आमिसगरु परिसा नो सद्धम्मगरु।

''कतमा च, भिक्खवे, सद्धम्मगरु परिसा नो आमिसगरु? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू गिहीनं ओदातवसनानं सम्मुखा अञ्ञमञ्ञस्स वण्णं न भासन्ति—[N.70] 'असुको भिक्खु उभतोभागविमुत्तो, असुको पञ्ञाविमुत्तो, असुको कायसक्खि, असुको दिट्ठिप्पत्तो, असुको सद्धाविमुत्तो, असुको धम्मानुस्सारी, असुको सद्धानुसारी, असुको सीलवा कल्याणधम्मो, असुको दुस्सीलो पापधम्मो' ति। ते तेन लाभं लभन्ति। ते तं लाभं लभित्वा अगथिता अमुच्छिता अनज्झोपन्ना आदीनवदस्साविनो निस्सरणपञ्ञा परि-भुञ्जन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सद्धम्मगरु परिसा नो आमिसगरु। इमा खो, भिक्खवे, द्वे परिसा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परिसानं यदिदं सद्धम्मगरु परिसा, नो आमिसगरू'' ति॥

८. ''द्वेमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा द्वे? विसमा च परिसा समा च परिसा। कतमा च, भिक्खवे, विसमा परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं अधम्मकम्मानि पवत्तन्ति धम्मकम्मानि नप्पवत्तन्ति, अविनयकम्मानि पवत्तन्ति विनयकम्मानि नप्पवत्तन्ति,

---

है', 'यह श्रद्धाविमुक्त है', 'यह धर्मानुसारी है', 'यह श्रद्धानुसारी है', 'यह शीलवान् कल्याणधर्मा है', 'यह दुर्विनीत पापधर्मा है'। वे ऐसी परस्पर प्रशंसाओं से उन श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थों से विविध लौकिक लाभ प्राप्त करते हैं। वे उस लौकिक लाभ से सम्पन्न होकर उन्मत्त होकर, अध्यवसन्न होकर, उसमें कोई भी दोष न देखते हुए उनसे छुटकारे का ध्यान न रखते हुए उस (लाभ) का यथेच्छ परिभोग करते हैं। भिक्षुओ! यह कहलाती है—भोगप्रधानपरिषद्। इसे सद्धर्मपरिषद् नहीं कहा जा सकता।

''भिक्षुओ! कौन सी परिषद् **धर्मप्रधानपरिषद्** कहलाती है, जिसे भोगप्रधानपरिषद् नहीं कहते? भिक्षुओ! जिस परिषद् में सभी भिक्षु एकत्र होकर उन श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थों के सम्मुख परस्पर एक दूसरे की इस प्रकार प्रशंसा न करें—'यह भिक्षु उभतोभागविमुक्त है' ...पूर्ववत्... 'यह भिक्षु दुःशील पापधर्मा है'। वे वैसा वर्णन न करने से केवल साधारण लाभ ही प्राप्त कर पाते हैं। परन्तु उसे प्राप्त कर उससे सम्पन्न होकर न उन्मत्त होते हैं, न अध्यवसन्न; अपितु वे उसमें भी दोष देखते हुए उससे छुटकारा पाने का प्रयास करते हुए उनका मात्रानुकूल ही परिभोग करते हैं। भिक्षुओ! यह कहलाती है सद्धर्मपरिषद्, जिसे भोगप्रधानपरिषद् कथमपि नहीं कहा जा सकता। इस तरह, भिक्षुओ! ये दो परिषद् हुईं। इनमें भी यह धर्मप्रधानपरिषद् ही श्रेष्ठ कहलाती है, भोगप्रधानपरिषद् नहीं॥''

दो अन्य परिषद् : ८. ''भिक्षुओ! इन परिषदों का द्विधा विभाजन इस प्रकार भी किया जा सकता है। किस प्रकार? प्रथम विषमपरिषद् और द्वितीय समपरिषद्। भिक्षुओ! इनमें विषम परिषद् कौन कहलाती है? जिस परिषद् में बैठकर, भिक्षुओ! सभी भिक्षु अधर्म की ही बात करते

अधम्मकम्मानि दिप्पन्ति धम्मकम्मानि न दिप्पन्ति, अविनयकम्मानि दिप्पन्ति [R.75] विनयकम्मानि न दिप्पन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, विसमा परिसा॥

''कतमा च, भिक्खवे, समा परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं धम्मकम्मानि पवत्तन्ति अधम्मकम्मानि नप्पवत्तन्ति, विनयकम्मानि पवत्तन्ति अविनयकम्मानि नप्पवत्तन्ति, धम्मकम्मानि दिप्पन्ति अधम्मकम्मानि न दिप्पन्ति, विनयकम्मानि दिप्पन्ति अविनयकम्मानि न दिप्पन्ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, समा परिसा। इमा खो, भिक्खवे, द्वे परिसा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परिसानं यदिदं समा परिसा'' ति॥

[B.75] **९.** ''द्वेमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा द्वे? अधम्मिका च परिसा धम्मिका च परिसा। इमा खो, भिक्खवे, द्वे परिसा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परिसानं यदिदं धम्मिका परिसा'' ति॥

१०. ''द्वेमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा द्वे? अधम्मवादिनी च परिसा धम्मवादिनी च परिसा। कतमा च, भिक्खवे, अधम्मवादिनी परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू अधिकरणं आदियन्ति धम्मिकं वा अधम्मिकं वा। ते तं अधिकरणं आदियित्वा न चेव अञ्ञमञ्ञं सञ्ञापेन्ति न च सञ्ञत्तिं उपगच्छन्ति, न च निज्झापेन्ति न च निज्झत्तिं उपगच्छन्ति। ते असञ्ञत्तिबला अनिज्झन्तिबला अप्पटिनिस्सग्गमन्तिनो तमेव अधिकरणं थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरन्ति—'इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अधम्मवादिनी परिसा।

हैं, धर्म की नहीं; अविनय की ही बात करते हैं, विनय की नहीं; अधर्मकर्म का ही वर्णन करते हैं, धर्म कर्म का नहीं। भिक्षुओ! ऐसी परिषद् 'विषमपरिषद्' कहलाती है।

''तथा, भिक्षुओ! समपरिषद् कौन कहलाती है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी परिषद् में एकत्र हुए सभी भिक्षु धर्मकर्म की ही बात करते हैं; अधर्म कर्म का नहीं; विनय की ही बात करते हैं अविनय की नहीं; धर्मकर्म का वर्णन करते हैं अधर्मकर्म का नहीं। भिक्षुओ! ऐसी परिषद् ही समपरिषद् कहलाती है। यों, भिक्षुओ! ये भी दो परिषद् हुईं। इनमें समपरिषद् ही श्रेष्ठ कहलाती है॥'' ●

दो अन्य परिषद् : ९. ''भिक्षुओ! इन परिषदों का वर्गीकरण इस प्रकार भी हो सकता है। वह कैसे? प्रथम **अधार्मिक परिषद्** तथा द्वितीय **धार्मिक परिषद्।** भिक्षुओ! इन दो परिषदों में भी धार्मिक परिषद् ही श्रेष्ठ मानी जाती है॥'' ●

दो अन्य परिषद् : १०.''भिक्षुओ! ये भी दो परिषदें होती हैं। कौन सी दो? अधर्मवादिनी परिषद् एवं धर्मवादिनी परिषद्। इनमें **अधर्मवादिनी परिषद्** कौन है? भिक्षुओ! यहाँ किसी परिषद् में बैठे भिक्षु न्याय के लिये किसी अभियोग को प्रस्तुत करें, फिर भले ही वह धार्मिक हो अधार्मिक। वे उस अधिकरण (अभियोग) को विचारार्थ स्वीकार कर उसके विषय में परस्पर कोई संज्ञापन करें और न किसी से संज्ञान लें, न स्वयं विचार करें, न किसी का विचार सुनें। इस प्रकार वे असंज्ञान तथा अविचार के सहारे से ही उस अधिकरण पर परस्पर मन्त्रणा न करते हुए अपना

"कतमा च, भिक्खवे, धम्मवादिनी परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू अधिकरणं आदियन्ति धम्मिकं वा अधम्मिकं वा। ते तं अधिकरणं आदियित्वा अञ्ञमञ्ञं सञ्ञापेन्ति चेव सञ्ञत्तिं च उपगच्छन्ति, निज्झापेन्ति चेव निज्झत्तिं च उपगच्छन्ति। ते सञ्ञत्तिबला निज्झत्तिबला पटिनिस्सग्गमन्तिनो, न तमेव अधिकरणं थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरन्ति—'इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, धम्मवादिनी परिसा। इमा खो, भिक्खवे, द्वे परिसा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परिसानं यदिदं धम्मवादिनी परिसा" ति॥ **परिसवग्गो पञ्चमो॥**

तस्सुद्दानं

उत्ताना वग्गा अग्गवती, अरिया कसटो च पञ्चमो।
ओक्काचितआमिसं चेव, विसमा अधम्माधम्मियेन चा ति॥

पठमो पण्णासको समत्तो॥

६. पुग्गलवग्गो

दुतिय पण्णासको

१. "द्वेमे, भिक्खवे, पुग्गला लोके उप्पज्जमाना उपज्जन्ति बहुजनहिताय [B.76] बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कतमे द्वे? तथागतो च अरहं सम्मासम्बुद्धो, राजा च चक्कवत्ती। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पुग्गला लोके उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं" ति॥

निश्चय घोषित कर दें—'यही सत्य है, शेष मिथ्या है।' भिक्षुओ! ऐसी परिषद् अधर्मवादिनी परिषद् कहलाती है।

(इसके विपरीत) भिक्षुओ! किसी परिषद् में एकत्र भिक्षु न्याय के लिये...पूर्ववत्... परस्पर संज्ञापन कर, दूसरों से संज्ञान ले कर, स्वयं विचार कर तथा दूसरों के विचार सुन कर उस अधिकरण पर परस्पर मन्त्रणा करके ही यह निर्णय दें—'यही सत्य है, अन्य मिथ्या।' भिक्षुओ! ऐसी परिषद् **धर्मवादिनी परिषद्** कहलाती है। भिक्षुओ! ये दो परिषदें हुई। इनमें द्वितीय धर्मवादिनी परिषद् ही श्रेष्ठ कहलाती है॥ " **परिषद्वर्ग पञ्चम सम्पन्न॥** ●

इस वर्ग में (व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. उत्तान, २. वर्ग, ३. अग्रवती, ४. आर्या, ५. कसट, ६. ओक्काचित, ७. आशिष, ८. विषम, ९. अधर्म एवं अधर्मवादिनी—ये दश सूत्र इस वर्ग में व्याख्यात हुए हैं॥ **प्रथम पञ्चाशत्क सम्पन्न॥**

६. पुद्गलवर्ग

द्वितीय पञ्चाशत्क

द्विविध प्राणी : १. "भिक्षुओ! लोक में ये दो प्राणी उत्पन्न होते हुए अनेक जनों के हित एवं सुख के साधक होते हैं, ये अनेक देवताओं एवं मनुष्यों सहित प्राणियों के प्रयोजन, हित, सुख

[N.72] २. ''द्वेमे, भिक्खवे, पुग्गला लोके उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अच्छरियमनुस्सा। कतमे द्वे? तथागतो च अरहं सम्मासम्बुद्धो, राजा च चक्कवत्ती। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पुग्गला लोके उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अच्छरियमनुस्सा'' ति॥

३. ''द्विन्नं, भिक्खवे, पुग्गलानं कालकिरिया बहुनो जनस्स अनुतप्पा होति। कतमेसं द्विन्नं? तथागतस्स च अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स, रञ्ञो च चक्कवत्तिस्स। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं पुग्गलानं कालकिरिया बहुनो जनस्स अनुतप्पा होती'' ति॥

४. ''द्वेमे, भिक्खवे, थूपारहा। कतमे द्वे? तथागतो च अरहं सम्मासम्बुद्धो, राजा च चक्कवत्ती। इमे खो, भिक्खवे, द्वे थूपारहा'' ति॥

५. ''द्वेमे, भिक्खवे, बुद्धा। कतमे द्वे? तथागतो च अरहं सम्मासम्बुद्धो, पच्चेकबुद्धो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे बुद्धा'' ति॥

६. ''द्वेमे, भिक्खवे, असनिया फलन्तिया न सन्तसन्ति। कतमे द्वे? भिक्खु च खीणासवो, हत्थाजानीयो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे असनिया फलन्तिया न सन्तसन्ती'' ति॥

७. ''द्वेमे, भिक्खवे, असनिया फलन्तिया न सन्तसन्ति। कतमे द्वे? भिक्खु च खीणासवो, अस्साजानीयो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे असनिया फलन्तिया न सन्तसन्ती'' ति॥

के सम्पादक होते हैं। कौन से दो? प्रथम—**तथागत** अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथा कोई **चक्रवर्ती राजा**। भिक्षुओ! ये दोनों पुद्गल लोक में...पूर्ववत्... सम्पादक होते हैं॥'' ●

द्विविध आश्चर्यमनुष्य : २. ''भिक्षुओ! लोक में उत्पन्न होते हुए ये दो प्राणी 'आश्चर्य मनुष्य' के रूप में देखे जाते हैं। कौन से दो? प्रथम—**तथागत** अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथा द्वितीय कोई **चक्रवर्ती राजा**। भिक्षुओ! ये दो प्राणी लोक में उत्पन्न होते हुए 'आश्चर्यपुरुष' के रूप में देखे जाते हैं॥ ●

प्राणियों के दुःखद देहपात : ३. ''भिक्षुओ! इन दो प्राणियों का देहपात (मरणभाव) भी अनेक जनों के मानसिक अनुताप (पश्चात्ताप=कष्ट) का कारक होता है। किन दो का? प्रथम—**तथागत** अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध का, तथा द्वितीय किसी **चक्रवर्ती राजा** का।...पूर्ववत्... ॥ ●

स्तूपयोग्य प्राणी : ४. ''भिक्षुओ! ये दो प्राणी (मरणानन्तर) स्तूप बनाने योग्य होते हैं। कौन दो? प्रथम **तथागत** अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथा द्वितीय कोई **चक्रवर्ती राजा**।...पूर्ववत्... ॥

बुद्धद्वय : ५. ''भिक्षुओ! लोक में ये दो बुद्ध कहलाते हैं। कौन दो? प्रथम—**तथागत** अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथा द्वितीय—**प्रत्येकबुद्ध**। भिक्षुओ! ये दो बुद्ध कहलाते हैं॥'' ●

दो निर्भीक : ६. भिक्षुओ! आकाश में कड़ाके से बिजली चमकने पर भयभीत नहीं होते। कौन दो? प्रथम—क्षीणास्रव भिक्षु एवं द्वितीय—श्रेष्ठ हाथी। भिक्षुओ! ये दो ...पूर्ववत्... ॥ ●

अन्य दो निर्भीक : ७. ''भिक्षुओ! आकाश में कड़ाके की बिजली चमकने पर भी ये दो भयभीत नहीं होते। कौन दो? प्रथम—**क्षीणास्रव भिक्षु** एवं द्वितीय—**श्रेष्ठ अश्व**। भिक्षुओ! ये दो ...पूर्ववत्... ॥ ●

८. ''द्वेमे, भिक्खवे, असनिया फलन्तिया न सन्तसन्ति। कतमे द्वे? भिक्खु च [B.77] खीणासवो, सीहो च मिगराजा। इमे खो, भिक्खवे, द्वे असनिया फलन्तिया न सन्तसन्ती'' ति॥

९. ''द्वेमे, भिक्खवे, अत्थवसे सम्पस्समाना किंपुरिसा मानुसिं वाचं न भासन्ति। कतमे द्वे? मा च मुसा भणिम्हा, मा च परं अभूतेन अब्भाचिक्खिम्हा ति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे अत्थवसे सम्पस्समाना किंपुरिसा मानुसिं वाचं न भासन्ती'' ति॥

१०. ''द्विन्नं धम्मानं, भिक्खवे, अतित्तो अप्पटिवानो मातुगामो कालं करोति। [R.78] कतमेसं द्विन्नं? मेथुनसमापत्तिया[3] च विजायनस्स च। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं धम्मानं [N.73] अतित्तो अप्पटिवानो मातुगामो कालं करोती'' ति॥

११. ''असन्तसन्निवासं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि सन्तसन्निवासं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवं भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—''कथं च, भिक्खवे, असन्तसन्निवासो होति, कथं च असन्तो सन्निवसन्ति? इध, भिक्खवे, थेरस्स भिक्खुनो एवं होति—'थेरो पि मं न वदेय्य, मज्झिमो पि मं न वदेय्य, नवो पि मं न वदेय्य; थेरं पाहं...मज्झिमं पाहं...नवम्पाहं न वदेय्यं। थेरो चे पि मं वदेय्य अहितानुकम्पी मं वदेय्य नो हितानुकम्पी, नो ति नं वदेय्यं विहेठेय्यं पस्सम्पिस्स नप्पटिकरेय्यं। मज्झिमो चे पि मं वदेय्य ...पे०... नवो चे पि मं वदेय्य अहितानुकम्पी मं वदेय्य नो हितानुकम्पी, नो ति नं

अन्य दो निर्भीक : ८. ''भिक्षुओ! आकाश में कड़ाके की बिजली चमकने पर ये दो चकपकाते नहीं हैं। कौन दो? प्रथम—**क्षीणास्त्रव भिक्षु** एवं द्वितीय—**मृगराज सिंह**। भिक्षुओ! ये दो ...पूर्ववत्... ॥ ●

किन्नरों के मौन में कारण : ९. ''भिक्षुओ! स्वार्थ उपस्थित होने पर भी किन्नर (देवविशेष) इन दो कारणों से मनुष्यों की वाणी नहीं बोलते। कौन से दो कारणों से? प्रथम—'हमें असत्य न बोलना पड़ जाय', तथा द्वितीय—'बाद में हम पर असत्य (मिथ्या) आरोप न लगे।' भिक्षुओ! स्वार्थ उपस्थित होने पर भी ...पूर्ववत्... ॥ ●

दो बातों में स्त्रियों की अतृप्ति : १०. ''भिक्षुओ! लोक में सभी स्त्रियाँ मृत्युपर्यन्त इन दो बातों से अतृप्त ही रहती हैं तथा इनको पूर्ण करने में वे कभी पीछे नहीं हटती। कौन दो बातें? प्रथम—**पुरुष के साथ सहवास** एवं द्वितीय—**सन्तानोत्पत्ति**। भिक्षुओ! लोक में सभी स्त्रियाँ ...पूर्ववत्... सन्तानोत्पत्ति॥'' ●

सङ्गतिद्वय : ११. ''भिक्षुओ! असत्पुरुषों तथा सत्पुरुषों के सङ्ग के विषय में (क्रमशः) बताऊँगा। उसे ध्यानपूर्वक सुनो और अपने मन में बैठा लो। मैं बताता हूँ।'' ''अच्छा भन्ते!'' कहकर भिक्षुओं ने भगवान् के आदेश को स्वीकार किया। भगवान् बोले—''भिक्षुओ! **असन्त की सङ्गति** कैसे होती है? या वे असन्त अपनी सङ्गति में क्या करते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! किसी स्थविर भिक्षु को यह विचार हो—'कोई स्थविर भिक्षु भी मुझसे बात न करे, कोई मध्यम भिक्षु भी... कोई नवीन भिक्षु भी मुझसे बात न करे। इसी तरह, मैं भी किसी स्थविर भिक्षु से... किसी मध्य भिक्षु से...

वदेय्यं विहेठेय्यं पस्सम्पिस्स नप्पटिकरेय्यं'। मज्झिमस्स पि भिक्खुनो एवं होति ...पे०... नवस्स पि भिक्खुनो एवं होति—'थेरो पि मं न वदेय्य, मज्झिमो पि मं न वदेय्य, नवो पि मं न वदेय्य; थेरम्पाहं न वदेय्यं, मज्झिमम्पाहं न वदेय्यं, नवम्पाहं न वदेय्यं। थेरो चे पि मं वदेय्य अहितानु-
[R.79] कम्पी मं वदेय्य नो हितानुकम्पी नो ति नं वदेय्यं विहेठेय्यं पस्सम्पिस्स नप्पटिकरेय्यं। मज्झिमो चे पि मं वदेय्य... नवो चे पि मं वदेय्य अहितानुकम्पी मं वदेय्यं नो हितानुकम्पी, नो
[B.78] ति नं वदेय्यं विहेठेय्यं पस्सम्पिस्स नप्पटिकरेय्यं'। एवं खो, भिक्खवे, असन्तसन्निवासो होति, एवं च असन्तो सन्निवसन्ति।

"कथं च, भिक्खवे, सन्तसन्निवासो होति, कथं च सन्तो सन्निवसन्ति? इदं, भिक्खवे, थेरस्स भिक्खुनो एवं होति—'थेरो पि मं वदेय्य, मज्झिमो पि मं वदेय्य, नवो पि मं वदेय्य; थेरम्पाहं वदेय्यं, मज्झिमम्पाहं वदेय्यं, नवम्पाहं वदेय्यं। थेरो चे पि मं वदेय्य हितानुकम्पी मं वदेय्य नो अहितानुकम्पी, साधू ति नं वदेय्यं न नं विहेठेय्यं पस्सम्पिस्स पटिकरेय्यं। मज्झिमो चे पि मं वदेय्य ...पे०... नवो चे पि मं वदेय्य हितानुकम्पी मं वदेय्य नो अहितानुकम्पी, साधू ति नं वदेय्यं न नं विहेठेय्यं पस्सम्पिस्स पटिकरेय्यं। मज्झिमस्स पि भिक्खुनो एवं होति ...पे०...
[N.74] नवस्स पि भिक्खुनो एवं होति—'थेरो पि मं वदेय्य, मज्झिमो पि मं वदेय्य, नवो पि मं वदेय्य; तेरम्पाहं वदेय्यं, मज्झिमम्पाहं वदेय्यं, नवम्पाहं वदेय्यं। थेरो चे पि मं वदेय्य हितानुकम्पी मं वदेय्य नो अहितानुकम्पी, साधू ति नं वदेय्यं न नं विहेठेय्यं पस्सम्पिस्स पटिकरेय्यं। मज्झिमो चे पि मं वदेय्य ...पे०... नवो चे पि मं वदेय्य हितानुकम्पी मं वदेय्य नो अहितानुकम्पी, साधू ति नं वदेय्यं न नं विहेठेय्यं पस्सम्पिस्स पटिकरेय्यं'। एवं खो, भिक्खवे, सन्तसन्निवासो होति, एवं च सन्तो सन्निवसन्ती" ति॥

किसी नवीन भिक्षु से बात न करूँ। कोई स्थविर मेरे विषय में कहे कि यह अहितानुकम्पी है या हितानुकम्पी नहीं है, मैं उसका विरोध नहीं करूँगा, देखते हुए भी उसका प्रतिकार नहीं करूँगा। कोई मध्य भिक्षु... कोई नवीन भिक्षु मेरे विषय में ...पूर्ववत्... प्रतीकार नहीं करूँगा।' किसी मध्यम भिक्षु को यह विचार हो—'कोई स्थविर भिक्षु मुझसे ...पूर्ववत्... प्रतीकार नहीं करूँगा।' किसी नवीन भिक्षु को यह विचार हो—'कोई स्थविर भिक्षु मुझसे ...पूर्ववत्... प्रतीकार नहीं करूँगा।' ऐसी होती है, भिक्षुओ! असन्त की सङ्गति, तथा असन्त अपनी सङ्गति में यह करते हैं।

(परन्तु) "भिक्षुओ! **सन्त की सङ्गति** कैसी होती है? तथा सन्त अपनी सङ्गति में क्या करते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! किसी स्थविर भिक्षु को यह विचार हो—'स्थविर भिक्षु भी मुझसे बात करें, मध्यम भिक्षु... नवीन भिक्षु भी मुझसे बात करें; स्थविर भिक्षुओं से... मध्यम भिक्षुओं से... नवीन भिक्षुओं से मैं भी बात करूँ। कोई स्थविर मेरे प्रति कहे कि यह मेरा अहितानुकम्पी ही है, हितानुकम्पी नहीं, तो मैं उसको साधुवाद ही दूँगा, उसको कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा, न उसका प्रत्यक्ष प्रतीकार (विरोध) ही करूँगा। कोई मध्यम भिक्षु भी मेरे प्रति कहे ...पूर्ववत्... कोई नवीन भिक्षु भी मेरे प्रति कहे ...पूर्ववत्... प्रतीकार नहीं करूँगा। कोई नवीन भिक्षु भी मेरे प्रति ...पूर्ववत्... प्रतीकार नहीं करूँगा।' किसी मध्यम भिक्षु को यह विचार हो ...पूर्ववत्... किसी नवीन भिक्षु को

१२. "यस्मिं, भिक्खवे, अधिकरणे उभतो वचीसंसारो दिट्ठिपळासो चेतसो [R.80] आघातो अप्पच्चयो अनभिरद्धि अज्झत्तं अवूपसन्तं होति, तस्मेतं, अधिकरणे पाटिकङ्खं— 'दीघत्ताय खरत्ताय वाळत्ताय संवत्तिस्सति, भिक्खू च न फासुं विहरिस्सन्ति'। यस्मिं च खो, भिक्खवे, अधिकरणे न उभतो वचीसंसारो दिट्ठिपळासो चेतसो आघातो अप्पच्चयो अनभिरद्धि अज्झत्तं सुवूपसन्तं होति, तस्मेतं, भिक्खवे, अधिकरणे पाटिकङ्खं—'न दीघत्ताय खरत्ताय वाळत्ताय संवत्तिस्सति, भिक्खू च फासुं विहरिस्सन्ती' " ति॥ ●

७. सुखवग्गो

[B.79] १. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? गिहिसुखं च पब्बजितसुखं च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं पब्बजितसुखं" ति॥

२. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? कामसुखं च नेक्खम्मसुखं च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं नेक्खम्मसुखं" ति॥

३. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? उपधिसुखं च निरुपधिसुखं च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं निरुपधिसुखं" ति॥

यह वितार हो—स्थविर भिक्षु भी मुझसे बात करे ...पूर्ववत्... प्रतीकार नहीं करूँगा। भिक्षुओ! सन्त की सङ्गति ऐसी होती है, तथा सन्त अपनी सङ्गति में यह करते हैं॥" ●

द्विविध कलह : १२. भिक्षुओ! जिस अधिकरण (न्यायिक कलह) में दोनों ओर से वाक्कलह (विविध व्यङ्ग्य) हों, नेत्रों के कटु सङ्केत हों, मन को कष्ट देनेवाले अपशब्द हो, परस्पर अविश्वास हो, दूसरे पक्ष को हानि पहुँचाने का विचार हो, उभय पक्ष का मन अशान्त हो; उस कलह के विषय में यही सम्भावना है कि वह कलह चिरकाल तक मूर्खतापूर्ण विधि से चलता रहेगा, तथा इस कलह से ग्रस्त भिक्षु भी तब तक शान्तिपूर्वक अपनी साधना नहीं कर पायेंगे। (परन्तु) भिक्षुओ! जिस कलह में उभय पक्ष की ओर से वाक्कलह न हो, नेत्रों से कटु संकेत न हो, मन को कष्ट देने वाले अपशब्द न बोले जायँ, परस्पर अविश्वास न हो, दूसरे पक्ष को हानि पहुँचाने का विचार न हो, उभय पक्ष का मन भी शान्त हो तो उस कलह के विषय में यह आशा रखनी चाहिये कि वह कलह शीघ्र ही शान्त हो जायगा, इसमें उभय पक्ष से कोई मूर्खता न की जायगी। और इसमें उभयपक्ष के आबद्ध भिक्षु भी अपनी साधना शान्त मन से कर पायँगे॥"

पुद्गलवर्ग षष्ठ सम्पन्न॥ ●

७. सुखवर्ग

दो सुख : १. "भिक्षुओ! लोक में ये दो सुख हैं। कौन से दो? पहला—**गृहस्थ सुख,** एवं द्वितीय—**प्रव्रजित सुख।** भिक्षुओ! ये ही दो सुख हैं। भिक्षुओ! इनमें प्रव्रजित सुख श्रेष्ठ है॥" ●

दो सुख : २. "भिक्षुओ! ये दो सुख हैं। कौन से दो? प्रथम—**कामसुख** एवं द्वितीय—**नैष्काम्यसुख।** भिक्षुओ! ये दो सुख हैं। इनमें नैष्काम्यसुख प्रधान है॥" ●

दो सुख : ३. "भिक्षुओ! ये भी दो सुख हैं। कौन से दो? प्रथम—**उपधिसुख** एवं द्वितीय **निरुपधिसुख।** ये ही दो सुख हैं। भिक्षुओ! इनमें निरुपधिसुख प्रधान है॥" ●

[R.81] ४. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? सासवसुखं च अनासवसुखं च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं अनासवसुखं'' ति॥

[N.75] ५. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? सामिसं च सुखं निरामिसं च सुखं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं निरामिसं सुखं'' ति॥

६. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? अरियसुखं च अनरियसुखं च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं अरियसुखं'' ति॥

७. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? कायिकं च सुखं चेतसिकं च सुखं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं चेतसिकं सुखं'' ति॥

८. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? सप्पीतिकं च सुखं निप्पीतिकं च सुखं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं निप्पीतिकं सुखं'' ति॥

९. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? सातसुखं च उपेक्खासुखं च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं उपेक्खासुखं'' ति॥

[B.80] १०. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? समाधिसुखं च असमाधिसुखं च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं समाधिसुखं'' ति॥

दो सुख : ४. "भिक्षुओ! ये भी दो सुख हैं। कौन से दो? प्रथम—**साश्रव सुख** एवं द्वितीय—**अनाश्रव सुख।** भिक्षुओ! ये ही दो सुख हैं। इनमें भी अनाश्रव सुख प्रधान है॥'' ●

दो सुख : ५. "भिक्षुओ! ये भी दो सुख हैं। कौन से दो? प्रथम—**सामिष** (भौतिक) एवं द्वितीय **निरामिष** (अभौतिक)। भिक्षुओ! ये ही दो सुख हैं। इनमें निरामिष सुख श्रेष्ठ है॥'' ●

दो सुख : ६. "भिक्षुओ! ये भी दो सुख हैं। कौन से दो? एक **आर्य** तथा दूसरा **अनार्य।** भिक्षुओ! ये ही दो सुख हैं। भिक्षुओ! इनमें भी आर्यसुख श्रेष्ठ है॥'' ●

दो सुख : ७. "भिक्षुओ! ये दो सुख हैं। कौन से दो? प्रथम—**कायिक सुख** एवं द्वितीय—**चैतसिक** (मानसिक) **सुख।** ये ही दो सुख हैं। भिक्षुओ! इनमें भी चैतसिक सुख श्रेष्ठ है॥'' ●

दो सुख : ८. "भिक्षुओ! ये दो सुख हैं। कौन से दो? एक **सप्रीतिक सुख** एवं दूसरा **निष्प्रीतिक सुख।** ये ही दो सुख हैं। भिक्षुओ! इनमें निष्प्रीतिक सुख श्रेष्ठ है॥'' ●

दो सुख : ९. "भिक्षुओ! ये दो सुख हैं। कौन से दो? प्रथम—**सात सुख** (आनन्दप्रद सुख) एवं द्वितीय—**उपेक्षासुख।** ये ही दो सुख हैं। भिक्षुओ! इनमें भी उपेक्षासुख श्रेष्ठ है॥''●

दो सुख : १०. "भिक्षुओ! ये दो सुख हैं। कौन से दो? प्रथम—**समाधिसुख** एवं द्वितीय—**असमाधिसुख।** ये दो सुख हैं। भिक्षुओ! इन दोनों में समाधिसुख प्रधान (अग्र) है॥''●

११. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? सप्पीतिकारम्मणं च सुखं निप्पीतिकारम्मणं च सुखं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं [R.82] द्विन्नं सुखानं यदिदं निप्पीतिकारम्मणं सुखं" ति॥

१२. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? सातारम्मणं च सुखं उपेक्खारम्मणं च सुखं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं उपेक्खारम्मणं सुखं" ति॥

१३. "द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? रूपारम्मणं च सुखं अरूपारम्मणं च सुखं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं अरूपारम्मणं सुखं" ति॥

८. सनिमित्तवग्गो

१. "सनिमित्ता, भिक्खवे, उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा, नो अनिमित्ता। तस्सेव निमित्तस्स पहाना एवं ते पापका अकुसला धम्मा न होन्ती" ति॥

२. "सनिदाना, भिक्खवे, उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा, नो अनिदाना। तस्सेव निदानस्स पहाना एवं ते पापका अकुसला धम्मा न होन्ती" ति॥

३. "सहेतुका, भिक्खवे, उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा, नो अहेतुका। तस्सेव हेतुस्स पहाना एवं ते पापका अकुसला धम्मा न होन्ती" ति॥

४. "ससङ्खारा, भिक्खवे, उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा, नो असङ्खारा। तेसंयेव सङ्खारानं पहाना एवं ते पापका अकुसला धम्मा न होन्ती" ति॥

दो सुख : ११. "भिक्षुओ! ये भी दो सुख हैं। कौन से दो? प्रथम—**सप्रीतिकालम्बन सुख** एवं द्वितीय—**निष्प्रीतिकालम्बन सुख**। ये ही दो सुख हैं। भिक्षुओ! इन दोनों में निष्प्रीतिकालम्बन सुख श्रेष्ठ है॥" ●

दो सुख : १२. "भिक्षुओ! ये दो सुख हैं। कौन से दो? प्रथम—**सातालम्बन सुख** एवं द्वितीय—**उपेक्षालम्बन सुख**। ये दो सुख हैं। भिक्षुओ! इन दोनों में उपेक्षालम्बन सुख श्रेष्ठ है॥" ●

दो सुख : १३. "भिक्षुओ! ये दो सुख हैं। कौन से दो? **रूपालम्बन सुख** एवं **अरूपालम्बन सुख**। ये ही दो सुख हैं। भिक्षुओ! इन दोनों में अरूपालम्बन सुख श्रेष्ठ है॥" ●

सुखवर्ग सप्तम सम्पन्न॥ ●

८. सनिमित्तवर्ग

अकुशल धर्मों की उत्पत्ति में कारण : १. "भिक्षुओ! किसी **निमित्त** को लेकर पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, निमित्त के बिना नहीं। उस निमित्त के नष्ट होने पर वे पापमय अकुशल कर्म भी नष्ट हो जाते हैं (उद्भूत नहीं हो पाते)॥" ●

२. "भिक्षुओ! किसी **निदान** से ही अकुशल धर्म उत्पन्न हो पाते हैं, निदान के विना नहीं। उसी निदान के नष्ट होने पर वे पापमय अकुशल धर्म भी नष्ट हो जाते हैं॥" ●

५. "सप्पच्चया, भिक्खवे, उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा, नो अहेतुका। तस्सेव पच्चयस्स पहाना एवं ते पापका अकुसला धम्मा न होन्ती" ति॥

६. "सरूपा, भिक्खवे, उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा, नो अरूपा। तस्सेव रूपस्स पहाना एवं ते पापका अकुसला धम्मा न होन्ती" ति॥

७. "सवेदना, भिक्खवे, उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा, नो अवेदना। तस्सायेव वेदनाय पहाना एवं ते पापका अकुसला धम्मा न होन्ती" ति॥

८. "ससञ्ञा, भिक्खवे, उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा, नो असञ्ञा। तस्सायेव सञ्ञाय पहाना एवं ते पापका अकुसला धम्मा न होन्ती" ति॥

९. "सविञ्ञाणा, भिक्खवे, उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा, नो अविञ्ञाणा। तस्सेव विञ्ञाणस्स पहाना एवं ते पापका अकुसला धम्मा न होन्ती" ति॥

१०. "सङ्खतारम्मणा, भिक्खवे, उप्पज्जन्ति पापका अकुसला धम्मा, नो असङ्खतारम्मणा। तस्सेव सङ्खतस्स पहाना एवं ते पापका अकुसला धम्मा न होन्ती" ति॥ ●

९. धम्मवग्गो

१. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? चेतोविमुत्ति च पञ्ञाविमुत्ति च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

२. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? पग्गाहो च अविक्खेपो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

---

३. "भिक्षुओ! ये पापमय अकुशल धर्म किसी **हेतु** के सहारे ही उत्पन्न हो ते हैं, हेतु के विना नहीं। उस हेतु के नष्ट होने पर... ॥" ●

४. "**संस्कारों** के साथ, भिक्षुओ! ये पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। उन संस्कारों के नष्ट होने पर... ॥" ●

५. किसी न किसी **प्रत्यय** (कारण) के सहारे से ही ये पापमय अकुशल धर्म... ॥ ●

६. किसी न किसी **रूप** के साथ ही ये पापमय अकुशल अकुशल धर्म... ॥ ●

७. किसी न किसी **वेदना** के साथ ही ये पापमय अकुशल धर्म... ॥ ●

८. किसी न किसी **संज्ञा** के सहारे से ही ये पापमय अकुशल धर्म... ॥ ●

९. किसी न किसी **विज्ञान** के सहारे से ही ये पापमय अकुशल धर्म... ॥ ●

१०. "भिक्षुओ! **संस्कृतालम्बन** के साथ ही ये पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। **असंस्कृतालम्बन** से नहीं। उस संस्कृत के प्रहीण होने पर ऐसे धर्म भी प्रहीण हो जाते हैं॥"

सनिमित्तवर्ग अष्टम सम्पन्न॥ ●

९. धर्मवर्ग

दो धर्म : १. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं। कौन से दो? **चेतोविमुक्ति** एवं **प्रज्ञाविमुक्ति।** भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं॥" ●

३. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? नामं च रूपं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

४. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? विज्जा च विमुत्ति च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

५. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? भवदिट्ठि च विभवदिट्ठि च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

६. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? अहिरिकं च अनोत्तप्पं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

७. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? हिरी च ओत्तप्पं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

८. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? दोवचस्सता च पापमित्तता च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

९. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? सोवचस्सता च कल्याणमित्तता च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

१०. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? धातुकुसलता च मनसिकारकुसलता च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

११. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? आपत्तिकुसलता च आपत्तिवुट्ठानकुसलता च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥ ●

---

२. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं... **प्रग्राह** (पराक्रम) एवं **अविक्षेप** (शान्ति)।...॥ ●

३. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं... **नाम** (संज्ञा) एवं **रूप** (आकार)।...॥ ●

४. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं... **विद्या** एवं **विमुक्ति**।...॥ ●

५. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं... **भवदृष्टि** (संसार का अस्तित्व मानना) एवं **विभवदृष्टि** (संसार का अनस्तित्व मानना)।...॥ ●

६. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं... **अह्रीक** (लज्जा का अभाव) तथा **अनवत्राप्य** (पापभीरुता का अभाव)।...॥ ●

७. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं... **ह्री** (लज्जा) एवं **अवत्राप्य** (पापभीरुता)।...॥ ●

८. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं... **दौर्वचस्य** (अनाज्ञाकारिता=धृष्टता) एवं **पापमित्रता**।...॥ ●

९. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं... **सौवचस्य** (आज्ञाकारिता=नम्रता) एवं **कल्याणमित्रता**।...॥ ●

१०. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं... **धातुकुशलता** (स्वाभाविक अवस्था) एवं **अधातुकुशलता**।...॥ ●

११. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं... **आपत्ति** (दोष) **कुशलता** एवं **अनापत्ति कुशलता**।...॥

धर्मवर्ग नवम सम्पन्न॥ ●

१०. बालवग्गो

[N.78] १. "द्वेमे, भिक्खवे, बाला। कतमे द्वे? यो च अनागतं भारं वहति, यो च आगतं भारं न वहति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे बाला" ति॥

[B.83] २. "द्वेमे, भिक्खवे, पण्डिता। कतमे द्वे? यो च अनागतं भारं न वहति, यो च आगतं भारं वहति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पण्डिता" ति॥

३. "द्वेमे, भिक्खवे, बाला। कतमे द्वे? यो च अकप्पिये कप्पियसञ्ञी, यो च कप्पिये अकप्पियसञ्ञी। इमे खो, भिक्खवे, द्वे बाला" ति॥

४. "द्वेमे, भिक्खवे, पण्डिता। कतमे द्वे? यो च अकप्पिये अकप्पियसञ्ञी, यो च कप्पिये कप्पियसञ्ञी। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पण्डिता" ति॥

५. "द्वेमे, भिक्खवे, बाला। कतमे द्वे? यो च अनापत्तिया आपत्तिसञ्ञी, यो च आपत्तिया अनापत्तिसञ्ञी। इमे खो, भिक्खवे, द्वे बाला" ति॥

६. "द्वेमे, भिक्खवे, पण्डिता। कतमे द्वे? यो च अनापत्तिया अनापत्तिसञ्ञी, यो च आपत्तिया आपत्तिसञ्ञी। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पण्डिता" ति॥

[R.85] ७. "द्वेमे, भिक्खवे, बाला। कतमे द्वे? यो च अधम्मे धम्मसञ्ञी, यो च धम्मे अधम्मसञ्ञी। इमे खो, भिक्खवे, द्वे बाला" ति॥

८. "द्वेमे, भिक्खवे, पण्डिता। कतमे द्वे? यो च धम्मे धम्मसञ्ञी, यो च अधम्मे अधम्मसञ्ञी। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पण्डिता" ति॥

---

१०. बालवर्ग

दो मूर्ख : १. भिक्षुओ! ये दो **बाल** (मूर्ख=नासमझ) कहलाते हैं। कौन से दो? जो अनागत (अनावश्यक) भार (बोझ) को ढोता है तथा जो आगत (आवश्यक) भार को नहीं ढोता (वहन करता)।... ॥ ●

दो बुद्धिमान् : २. "भिक्षुओ! ये दो **पण्डित** (बुद्धिमान्) कहलाते हैं।... जो आगत भार का वहन करता है या जो अनागत भार का वहन नहीं करता॥ ●

दो मूर्ख : ३. "भिक्षुओ! ये दो **मूर्ख** कहलाते हैं...। जो अकल्प्य (अयोग्य) को कल्प्य (योग्य) मान बैठता है या कल्प्य (योग्य) को अकल्प्य मान बैठता है।... ॥ ●

दो बुद्धिमान् : ४. "ये दो, भिक्षुओ! **पण्डित** माने जाते हैं।... जो कल्प्य को कल्प्य ही मानता है तथा अकल्प्य को अकल्प्य ही मानता है॥ ●

दो मूर्ख : ५. "ये भी दो, भिक्षुओ! **मूर्ख** कहलाते हैं।... जो अनापत्ति (अदोष) को आपत्ति (दोष) मानता है तथा आपत्ति (दोष) को अनापत्ति मान बैठता है।... ॥ ●

दो बुद्धिमान् : ६. "तथा, भिक्षुओ! ये दो **बुद्धिमान्** (पण्डित) कहलाते हैं।... जो अनापत्ति को अनापत्ति ही मानता है या फिर आपत्ति को आपत्ति मानता है।... ॥ ●

दो मूर्ख : ७. "भिक्षुओ! ये दो भी **बाल** ही कहलाते हैं।... जो अधर्म को धर्म मान बैठता है तथा जो धर्म को अधर्म समझता है।... ॥ ●

९. ''द्वेमे, भिक्खवे, बाला। कतमे द्वे? यो च अविनये विनयसञ्ञी, यो च विनये अविनयसञ्ञी। इमे खो, भिक्खवे, द्वे बाला'' ति॥

१०. ''द्वेमे, भिक्खवे, पण्डिता। कतमे द्वे? यो च अविनये अविनयसञ्ञी, यो च विनये विनयसञ्ञी। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पण्डिता'' ति॥

११. ''द्विन्नं, भिक्खवे, आसवा वड्ढन्ति। कतमेसं द्विन्नं? यो च न [N.79, B.34] कुक्कुच्चायितब्बं कुक्कुच्चायति, यो च कुकुकुच्चायितब्बं न कुक्कुच्चायति। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं आसवा वड्ढन्ती'' ति॥

१२. ''द्विन्नं, भिक्खवे, आसवा न वड्ढन्ति। कतमेसं द्विन्नं? यो च न कुक्कुच्चायितब्बं कुक्कुच्चायति, यो च कुकुकुच्चायितब्बं कुक्कुच्चायति। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं आसवा न वड्ढन्ती'' ति॥

१३. ''द्विन्नं, भिक्खवे, आसवा वड्ढन्ति। कतमेसं द्विन्नं? यो च अकप्पिये कप्पियसञ्ञी, यो च कप्पिये अकप्पियसञ्ञी। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं आसवा वड्ढन्ती'' ति॥

१४. ''द्विन्नं, भिक्खवे, आसवा न वड्ढन्ति। कतमेसं द्विन्नं? यो च अकप्पिये अकप्पियसञ्ञी, यो च कप्पिये कप्पियसञ्ञी। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं आसवा न वड्ढन्ती'' ति॥

१५. ''द्विन्नं, भिक्खवे, आसवा वड्ढन्ति। कतमेसं द्विन्नं? यो च आपत्तिया अनापत्ति-

---

दो बुद्धिमान् : ८. ''और, भिक्षुओ! ये दो **पण्डित** कहलाते हैं।... जो अधर्म को अधर्म एवं धर्म को धर्म मानता है।... ॥ ●

दो मूर्ख : ९. ''भिक्षुओ! ये दो **बाल** कहलाते हैं।... जो अविनय में विनय की धारणा बना लेता है तथा विनय में अविनय की।... ॥ ●

दो बुद्धिमान् : १०. ''तथा, भिक्षुओ! ये दो **पण्डित** कहलाते हैं।... जो अविनय को अविनय ही समझता है तथा विनय को विनय ही।... ॥ ●

द्विविध साधक : ११. ''भिक्षुओ! इन दो प्रकार के साधकों के आश्रव (चित्तविकार) बढने लगते हैं। किन दो के? जो कौकृत्य (पश्चात्ताप) योग्य धर्म (बात) को अकौकृत्ययोग्य समझता है तथा अकौकृत्य (अपश्चात्ताप) योग्य को कौकृत्ययोग्य समझता है।... ॥ ●

द्विविध साधक : १२. ''परन्तु, भिक्षुओ! इन दो प्रकार के साधकों के आश्रव नहीं बढ़ते।... जो अपश्चात्ताप योग्य धर्म (अकौकृत्य योग्य) को अपश्चात्ताप योग्य तथा पश्चात्ताप योग्य को पश्चात्ताप योग्य ही समझते हैं।... ॥ ●

द्विविध साधक : १३. ''भिक्षुओ! दो के आश्रव बढ़ने लगते हैं।... जो अकल्प्य को कल्प्य मान बैठते हैं, तथा कल्प्य को अकल्प्य... ॥ ●

द्विविध साधक : १४. ''तथा, भिक्षुओ! इन दो प्रकार के साधकों के आश्रव नहीं बढ़ते।... जो कल्प्य को कल्प्य ही मानता है, तथा जो अकल्प्य को अकल्प्य मानता है।... ॥ ●

[R.86] सञ्ञी, यो च अनापत्तिया आपत्तिसञ्ञी। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं आसवा वड्ढन्ती'' ति॥

१६. ''द्विन्नं, भिक्खवे, आसवा न वड्ढन्ति। कतमेसं द्विन्नं? यो च आपत्तिया आपत्तिं- सञ्ञी, यो च अनापत्तिया अनापत्तिसञ्ञी। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं आसवा न वड्ढन्ती'' ति॥

१७. ''द्विन्नं, भिक्खवे, आसवा वड्ढन्ति। कतमेसं द्विन्नं? यो च अधम्मे धम्मसञ्ञी, यो च धम्मे अधम्मसञ्ञी। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं आसवा वड्ढन्ती'' ति॥

१८. ''द्विन्नं, भिक्खवे, आसवा न वड्ढन्ति। कतमेसं द्विन्नं? यो च धम्मे धम्मसञ्ञी, यो च अधम्मे अधम्मसञ्ञी। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं आसवा न वड्ढन्ती'' ति॥

[B.85] १९. ''द्विन्नं, भिक्खवे, आसवा वड्ढन्ति। कतमेसं द्विन्नं? यो च अविनये विनयसञ्ञी, यो च विनये अविनयसञ्ञी। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं आसवा वड्ढन्ती'' ति॥

२०. ''द्विन्नं, भिक्खवे, आसवा वड्ढन्ति। कतमेसं द्विन्नं? यो च अविनये [N.80] अविनयसञ्ञी, यो च विनये विनयसञ्ञी। इमेसं खो, भिक्खवे, द्विन्नं आसवा न वड्ढन्ती'' ति॥

दुतियो पण्णासको समत्तो॥

द्विविध साधक : १५. ''भिक्षुओ! इन दो प्रकार के साधकों के आश्रव बढ़ने लगते हैं।... जो आपत्ति को भी अनापत्ति मानता है, या कोई दूसरा साधक अनापत्ति को आपत्ति मानता है।... ॥

द्विविध साधक : १६. ''भिक्षुओ! इन दो के आश्रव नहीं बढ़ते।... जो आपत्ति को आपत्ति ही मानता है तथा अनापत्ति को अनापत्ति।... ॥

द्विविध साधक : १७. ''भिक्षुओ! इन दो के आश्रव बढ़ने लगते हैं।... जो अधर्म को धर्म मान बैठता है तथा धर्म को अधर्म।... ॥

दो साधक : १८. ''तथा, भिक्षुओ! इन दो (पण्डित) साधकों के आश्रव नहीं बढ़ते।... जो धर्म को धर्म ही मानता है और अधर्म को अधर्म।... ॥

दो साधक : १९. ''भिक्षुओ! इन दो (मूर्ख) साधकों के आश्रव बढ़ने लगते हैं।... जो अविनय को विनय समझ लेते हैं तथा विनय को अविनय।... ॥

दो साधक : २०. ''तथा, भिक्षुओ! इन दो (पण्डित) साधकों के आश्रव नहीं बढ़ते।... जो अविनय को अविनय ही मानते हैं और विनय को विनय।... ॥

बालवर्ग दशम सम्पन्न॥

द्वितीय पञ्चाशत्क समाप्त॥

११. आसादुप्पजहवग्गो

ततियपण्णासको

१. "द्वेमे, भिक्खवे, आसा दुप्पजहा। कतमा द्वे? लाभासा च जीवितासा च। [B.86] इमा खो, भिक्खवे, द्वे आसा दुप्पजहा" ति॥

२. "द्वेमे, भिक्खवे, पुग्गला दुल्लभा लोकस्मिं। कतमे द्वे? यो च पुब्बकारी, [R.87] यो च कतञ्ञू कतवेदी। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पुग्गला दुल्लभा लोकस्मिं" ति॥

३. "द्वेमे, भिक्खवे, पुग्गला दुल्लभा लोकस्मिं। कतमे द्वे? तित्तो च तप्पेता च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पुग्गला दुल्लभा लोकस्मिं" ति॥

४. "द्वेमे, भिक्खवे, पुग्गला दुत्तप्पया। कतमे द्वे? यो च लद्धं लद्धं निक्खिपति, यो च लद्धं लद्धं विस्सज्जेति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पुग्गला दुत्तप्पया" ति॥

५. "द्वेमे, भिक्खवे, पुग्गला सुतप्पया। कतमे द्वे? यो च लद्धं लद्धं न निक्खिपति, यो च लद्धं लद्धं न विस्सज्जेति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पुग्गला सुतप्पया" ति।

६. "द्वेमे, भिक्खवे, पच्चया रागस्स उप्पादाय। कतमे द्वे? सुभनिमित्तं च अयोनिसो च मनसिकारो। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पच्चया रागस्स उप्पादाया" ति॥

---

११. आशादुष्प्रजहवर्ग

तृतीय पञ्चाशत्क

दो आशाएँ : १. "भिक्षुओ! (लोक में) ये दो आशाएँ बहुत कठिनता से त्यागी जा सकती है। कौन सी दो? एक—किसी (वस्तु की) प्राप्ति की आशा तथा जीवित रहने की आशा। भिक्षुओ! ये दो आशाएँ कठिनता से त्यागी जा सकती है॥" ●

दो दुर्लभ पुद्गल : २. "भिक्षुओ! लोक में ये दो पुद्गल दुर्लभ (कठिनता से प्राप्त) होते हैं।...। जो १. समय से पहले ही कार्य को पूर्ण कर लेता है तथा २. जो कृतज्ञ एवं उपकार माननेवाला है। भिक्षुओ! ये दो पुद्गल लोक में दुर्लभ होते हैं॥" ●

दो पुद्गल : ३. "भिक्षुओ! लोक में ये दो पुद्गल दुर्लभ हैं।...। एक—वह जो सब स्थितियों स्वयं तृप्त (सन्तुष्ट) रहता है; तथा २—वह जो दूसरों को सर्वथा तृप्त करता है।... ॥ ●

दो दुस्तर्प्य पुद्गल : ४. "भिक्षुओ! ये द्विविध पुद्गल दुस्तर्प्य (कठिनता से सन्तुष्ट किये जा सकने योग्य) होते हैं।...। एक—जो प्राप्त हुई वस्तुओं को एक ओर रखता चलता है (परिग्रही) तथा दूसरा—जो प्राप्त हुई वस्तु को त्याग देता है।... ॥ ●

दो सुतर्प्य पुद्गल : ५. "भिक्षुओ! ये दो पुद्गल सुतर्प्य (सहज सन्तुष्ट करने योग्य) है।...। एक—जो प्राप्त वस्तु को एक ओर नहीं रखता जाता तथा २—जो प्राप्त वस्तु को त्यागता नहीं है।... ॥ ●

राग के दो कारण : ६. "भिक्षुओ! लोक में राग (आसक्ति) के दो कारण हैं।... एक—

७. "द्वेमे, भिक्खवे, पच्चया दोसस्स उप्पादाय। कतमे द्वे? पटिघनिमित्तं च अयोनिसो च मनसिकारो। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पच्चया दोसस्स उप्पादाया" ति॥

८. "द्वेमे, भिक्खवे, पच्चया मिच्छादिट्ठिया उप्पादाय। कतमे द्वे? परतो च घोसो अयोनिसो च मनसिकारो। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पच्चया मिच्छादिट्ठिया उप्पादाया" ति॥

[N.81, B.87] ९. "द्वेमे, भिक्खवे, पच्चया सम्मादिट्ठिया उप्पादाय। कतमे द्वे? परतो च घोसो, योनिसो च मनसिकारो। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पच्चया सम्मादिट्ठिया उप्पादाया" ति॥

[R.88] १०. "द्वेमा, भिक्खवे, आपत्तियो। कतमा द्वे? लहुका च आपत्ति, गरुका च आपत्ति। इमा खो, भिक्खवे, द्वे आपत्तियो" ति॥

११. "द्वेमा, भिक्खवे, आपत्तियो। कतमा द्वे? दुट्ठुल्ला च आपत्ति, अदुट्ठुल्ला च आपत्ति। इमा खो, भिक्खवे, द्वे आपत्तियो" ति॥

१२. "द्वेमा, भिक्खवे, आपत्तियो। कतमे द्वे? सावसेसा च आपत्ति, अनवसेसा च आपत्ति। इमा खो, भिक्खवे, द्वे आपत्तियो" ति॥ ●

१२. आयाचनवग्गो

१. "सद्धो, भिक्खवे, भिक्खु एवं सम्मा आयाचमानो आयाचेय्य—'तादिसो होमि यादिसा सारिपुत्तमोग्गल्लाना' ति। एसा, भिक्खवे, तुला एतं पमाणं मम सावकानं भिक्खूनं यदिदं सारिपुत्तमोग्गलाना" ति॥

२. "सद्धा, भिक्खवे, भिक्खुनी एवं सम्मा आयाचमाना आयाचेय्य—'तादिसी होमि

अनित्य अनात्म एवं दुखात्मक वस्तुओं में शुभ की भावना, तथा दो—वस्तु का सूक्ष्मतया पर्यवेक्षण न करना।... ॥ ●

द्वेष के दो कारण : ७. "भिक्षुओ! लोक में द्वेषोत्पत्ति के भी ये दो कारण हैं।... एक—कोई द्वेष का निमित्त उपस्थित हो तथा दो—वस्तु का सूक्ष्मतया पर्यवेक्षण न करना।... ॥ ●

मिथ्यादृष्टि के दो कारण : ८. "भिक्षुओ! मिथ्यादृष्टि के उत्पाद के दो कारण हैं।...। एक—किसी दूसरे मिथ्यादृष्टि के बहकावे में आना, तथा दो—वस्तु का सूक्ष्मतया निरीक्षण न करना।... ॥ ●

सम्यग्दृष्टि के दो कारण : ९. "भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टि के भी दो कारण हैं।...। एक—किसी दूसरे सम्यग्दृष्टि की बात को मानना, तथा दो—वस्तु का सूक्ष्मतया पर्यवेक्षण करना।... ॥ ●

द्विविध आपत्ति : १०. "भिक्षुओ! आपत्तियाँ (दोष) दो तरह की होती है।...। एक—लघु आपत्ति, तथा दो—गुरु आपत्ति।... ॥ ●

द्विविध आपत्ति : ११. "भिक्षुओ! ये आपत्तियाँ अन्य प्रकार से भी द्विविध होती हैं।...। एक—दुष्ठुल (हीनस्तर) आपत्ति एवं दो—अदुष्ठुल (साधारण) आपत्ति।... ॥ ●

द्विविध आपत्ति : १२. "भिक्षुओ! ये आपत्तियाँ अन्यथा भी द्विविध होती हैं।...। एक—सावशेष (अपूर्ण) आपत्ति, तथा दो—अनवशेष (पूर्ण) आपत्ति।... ॥

आशादुष्प्रजहवर्ग एकादश सम्पन्न॥ ●

यादिसी खेमा च भिक्खुनी उप्पलवण्णा चा' ति। एसा, भिक्खवे, तुला एतं पमाणं मम सावकानं भिक्खुनीनं यदिदं खेमा च भिक्खुनी उप्पलवण्णा चा'' ति॥

३. ''सद्धो, भिक्खवे, उपासको एवं सम्मा आयाचमानो आयाचेय्य—'तादिसो होमि यादिसो चित्तो च गहपति हत्थको च आळवको' ति। एसा, भिक्खवे, तुला एतं पमाणं मम सावकानं उपासकानं यदिदं चित्तो च गहपति हत्थको च आळवको'' ति॥

४. ''सद्धा, भिक्खवे, उपासिका एवं सम्मा आयाचमाना आयाचेय्य— [B.88]
'तादिसी होमि यादिसी खुज्जुत्तरा च उपासिका वेळुकण्डकिया च नन्दमाता' ति। एसा, [R.89]
भिक्खवे, तुला एतं पमाणं मम साविकानं उपासिकानं यदिदं खुज्जुत्तरा च उपासिका [N.82]
वेळुकण्डकिया च नन्दमाता'' ति॥

५. ''द्वीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेहि द्वीहि? अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासति। इमेहि खो, भिक्खवे, द्वीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यतो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवती'' ति।

---

१२. आयाचन वर्ग

भिक्षु की उचित याच्त्रा : १. ''भिक्षुओ! किसी श्रद्धालु भिक्षु को यही याचना उचित होगी—'मैं भी वैसा ही भिक्षु बनूँ जैसे ये सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन है।' भिक्षुओ! सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन ही एक श्रेष्ठ भिक्षु के रूप में तुलाभूत एवं प्रमाणभूत हैं।'' ●

भिक्षुणी की उचित याच्त्रा : २. ''भिक्षुओ! किसी श्रद्धालु भिक्षुणी की यही याच्त्रा उचित होगी—'मैं भी वैसी ही भिक्षुणी बनूँ जैसी ये क्षेमा एवं उत्पलवर्णा भिक्षुणी हैं।' भिक्षुओ! क्षेमा एवं उत्पलवर्णा भिक्षुणियाँ ही एक श्रेष्ठ भिक्षुणी के रूप में तुलाभूत एवं प्रमाणभूत हैं॥'' ●

उपासक की उचित याच्त्रा : ३. ''भिक्षुओ! किसी श्रद्धालु उपासक की यही याच्त्रा उचित होगी—'मैं भी वैसा ही उपासक बनूँ जैसे ये चित्त गृहपति एवं हस्तक आळवक उपासक हैं।' भिक्षुओ! ये चित्त गृहपति एवं हस्तक आळवक उपासक ही एक श्रेष्ठ उपासक के रूप में तुला एवं प्रमाण (आदर्श) हैं॥'' ●

उपासिका की उचित याच्त्रा : ४. ''भिक्षुओ! किसी श्रद्धालु उपासिका की यही याच्त्रा उचित होगी—'मैं भी वैसी ही उपासिका बनूँ जैसी ये खुज्जुत्तरा (कुब्जोत्तरा) एवं वेणुकण्टकी (वेळुकण्डकी) नन्दमाता उपासिका हैं।' भिक्षुओ! मेरी उपासिकाओं में श्रेष्ठ उपासिका के रूप में ये दोनों आदर्श तुलाभूत एवं प्रमाणभूत हैं॥ ●

पापसञ्चायक मूर्ख : ५. ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों से युक्त कोई मूर्ख असावधान असज्जन (दुष्ट पुरुष) स्वयं को क्षत-विक्षत एवं सदोष (सावद्य) ही समझे। विद्वान् भी इसे दोषी ही बताते हैं। तथा ऐसा यह असज्जन अपने लिये पापराशि का ही सञ्चय करता है। किन दो धर्मों से? १. भिक्षुओ! कोई भिक्षु विना सोचे समझे किसी निन्दनीय पुरुष की प्रशंसा करे या २. विना सोचे-

"द्वीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति। कतमेहि द्वीहि? अनुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासति, अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति। इमेहि खो, भिक्खवे, द्वीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियतो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवती" ति॥

६. "द्वीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेहि द्वीहि? अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति। इमेहि खो, भिक्खवे, द्वीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यतो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवती" ति।

[B.89, R.90] "द्वीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति। कतमेहि द्वीहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति, अनुविच्च परियोगा-हेत्वा पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेहि। इमेहि खो, भिक्खवे, द्वीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो [N.83] वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवती" ति॥

समझे किसी प्रशस्त भिक्षु की निन्दा करने लगे। भिक्षुओ! इन दो धर्मों से युक्त कोई मूर्ख ...पूर्ववत्... पापराशि का ही सञ्चय करता है।

पुण्यसञ्चायक पण्डित : (इसके विपरीत) "भिक्षुओ! इन दो धर्मों से युक्त कोई बुद्धिमान् एवं अपने समस्त क्रिया कर्म में सावधान अपने को स्वस्थ एवं निर्दोष ही समझे। विद्वज्जन भी ऐसे पुरुष को निर्दोष ही मानते हैं। तथा ऐसा करता हुआ वह अपने लिये अतुलनीय पुण्यराशि का ही सञ्चय करता है। किन दो धर्मों से? सोच-समझकर किसी पापी की निन्दा करता है तथा सोच-समझ कर ही किसी पुण्यात्मा की प्रशंसा करता है। ऐसा करता हुआ वह इन दो धर्मों से युक्त पुरुष ...पूर्ववत्... पुण्यराशि का सञ्चय करता है॥" ●

दो धर्मों से युक्त पापी : ६. "भिक्षुओ! इन दो धर्मों से युक्त कोई पापी ...पूर्ववत्... अपुण्यराशि का सञ्चय करता है। किन दो धर्मों से? एक—विना सोचे-समझे, किसी अश्रद्धेय स्थान में अपनी श्रद्धा प्रकट करता है या २—श्रद्धेय स्थान में अपनी अश्रद्धा प्रकट करता है। इन दो धर्मों से युक्त वह... अपुण्य का ही सञ्चय करता है।"

दो धर्मों से युक्त पुण्यात्मा : "भिक्षुओ! इन दो धर्मों से युक्त कोई पुण्यवान् भिक्षु ...पूर्ववत्... पुण्यराशि का ही सञ्चय करता है। किन दो धर्मों से? एक—सोच समझकर किसी श्रद्धेय स्थान में अपनी श्रद्धा प्रकट करता है या दो—सोच-समझकर किसी अश्रद्धेय स्थान में अपनी श्रद्धा प्रकट करता है। इन दो धर्मों से युक्त वह ...पूर्ववत्... पुण्य का ही सञ्चय करता है॥"

७. ''द्वीसु, भिक्खवे, मिच्छापटिपज्जमानो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेसु द्वीसु? मातरि च पितरि च। इमेसु खो, भिक्खवे, द्वीसु मिच्छापटिपज्जमानो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवती'' ति।

''द्वीसु, भिक्खवे, सम्मापटिपज्जमानो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति। कतमेसु द्वीसु? मातरि च पितरि च। इमेसु खो, भिक्खवे, द्वीसु सम्मापटिपज्जमानो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवती'' ति॥

८. ''द्वीसु, भिक्खवे, मिच्छापटिपज्जमानो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेसु द्वीसु? तथागते च तथागतसावके च। इमेसु खो, भिक्खवे, मिच्छापटिपज्जमानो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवती'' ति।

''द्वीसु, भिक्खवे, सम्मापटिपज्जमानो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं [R.91] अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति। कतमेसु द्वीसु? तथागते च तथागतसावके च। इमेसु खो, भिक्खवे, द्वीसु [B.90] सम्मापटिपज्जमानो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवती'' ति॥

दो धर्मों से युक्त मिथ्यादृष्टि : ७. ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों में मिथ्यादृष्टि रखने वाला मूर्ख पुरुष ...पूर्ववत्...। किन दो धर्मों में? माता और पिता में। भिक्षुओ! इन दो धर्मों में मिथ्यादृष्टि रखने वाला ...पूर्ववत्... अपुण्य का ही सञ्चय करता है॥''

दो धर्मों से युक्त सम्यग्दृष्टि : ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों में सम्यग्दृष्टि रखने वाला बुद्धिमान् ...पूर्ववत्... पुण्य का ही सञ्चय करता है। किन दो धर्मों में? माता एवं पिता में। भिक्षुओ! इन दो धर्मों में सम्यग्दृष्टि रखने वाले बुद्धिमान् पुरुष... अपने लिये विपुल पुण्यराशि का ही सञ्चय करता है।'' ●

मिथ्यादृष्टि पापी : ८. ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों में मिथ्यादृष्टि रखने वाला पापी मूर्ख ...पूर्ववत्...। किन दो धर्मों से? तथागत तथा उनके शिष्यों में। ...पूर्ववत्... अपने लिये पापराशि का ही सञ्चय करता है।

दो धर्मों से युक्त सम्यग्दृष्टि : ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों में सम्यक्प्रतिपन्न बुद्धिमान् पुरुष ...पूर्ववत्... बहुत पुण्यराशि एकत्र करता है। किन दो धर्मों में? तथागत एवं उनके शिष्यों में। ...पूर्ववत्... विद्वानों से प्रशंसा प्राप्त करता है तथा अपने लिये बहुत पुण्य सञ्चय करता है॥'' ●

९. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? सचित्तवोदानं च न च किञ्चि लोके उपादियति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

[N.84] १०. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? कोधो च उपनाहो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥

११. "द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? कोधविनयो च उपनाहविनयो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा" ति॥ ●

१३. दानवग्गो

१. "द्वेमानि, भिक्खवे, दानानि। कतमानि द्वे? आमिसदानं च धम्मदानं च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे दानानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं दानानं यदिदं धम्मदानं" ति।

२. "द्वेमे, भिक्खवे, यागा। कतमे द्वे? आमिसयागो च धम्मयागो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे यागा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं यागानं यदिदं धम्मयागो" ति॥

[R.92] ३. "द्वेमे, भिक्खवे, चागा। कतमे द्वे? आमिसचागो च धम्मचागो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे चागा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं चागानं यदिदं धम्मचागो" ति॥

४. "द्वेमे, भिक्खवे, परिच्चागा। कतमे द्वे? आमिसपरिच्चागो च धम्मपरिच्चागो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे परिच्चागा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं परिच्चागानं यदिदं धम्मपरिच्चागो" ति॥

संग्राह्य दो धर्म : ९. "भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं। (इनका संग्रह करना चाहिये।) कौन से दो? एक—**स्वचित्तशुद्धि** एवं दो—लोक में किसी भी प्रकार का **परिग्रह न करना।** भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं॥" ●

त्याज्य दो धर्म : १०. "भिक्षुओ! ये दो धर्म (त्याज्य) हैं। कौन से दो? एक—क्रोध और दो—उपनाह (=शत्रुता, वैरभाव)। (दोनों ही त्याज्य हैं)। ●

संग्राह्य दो धर्म : ११. "भिक्षुओ! ये दो धर्म (संग्राह्य) हैं। कौन से दो धर्म? एक—**क्रोध का दमन,** एवं दो—**उपनाह** (वैर) **का दमन** (त्याग)। भिक्षुओ! ये दो धर्म संग्रहणीय है॥"

आयाचनवर्ग द्वादश सम्पन्न॥ ●

१३. दानवर्ग

दो दान : १. "भिक्षुओ! ये दो **दान** कहलाते हैं। कौन से दो? एक—भौतिक वस्तुओं (आमिष) का दान तथा दो—धर्म का दान। इन दोनों में धर्मदान ही श्रेष्ठ है॥" ●

दो यज्ञ : २. "भिक्षुओ! ये दो **याग** (यज्ञ) कहलाते हैं। कौन से दो? एक—भौतिक वस्तुओं द्वारा विहित याग, एवं दो—धर्मयाग। इन दोनों में धर्मयाग ही श्रेष्ठ है॥" ●

दो त्याग : ३. "भिक्षुओ! ये दो **त्याग** कहलाते हैं। कौन से दो? एक—आमिषत्याग, एवं दो—धर्मत्याग। इन दोनों में धर्म (मिथ्याधर्म) का त्याग ही श्रेष्ठ है॥" ●

दो परित्याग : ४. "भिक्षुओ! ये दो **परित्याग** कहलाते हैं। कौन से दो? एक—आमिष

५. ''द्वेमे, भिक्खवे, भोगा। कतमे द्वे? आमिसभोगो च धम्मभोगो च। इमे खो, [B.91] भिक्खवे, द्वे भोगा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं भोगानं यदिदं धम्मभोगो'' ति॥

६. ''द्वेमे, भिक्खवे, सम्भोगा। कतमे द्वे? आमिससम्भोगो च धम्मसम्भोगो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे सम्भोगा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सम्भोगानं यदिदं धम्मसम्भोगो'' ति॥

७. ''द्वेमे, भिक्खवे, संविभागा। कतमे द्वे? आमिससंविभागो च धम्मसंविभागो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे संविभागा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं संविभागानं यदिदं धम्मसंविभागो'' ति॥

८. ''द्वेमे, भिक्खवे, सङ्गहा। कतमे द्वे? आमिससङ्गहो च धम्मसङ्गहो [N.85] च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे सङ्गहा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सङ्गहानं यदिदं धम्मसङ्गहो'' ति॥

९. ''द्वेमे, भिक्खवे, अनुग्गहा। कतमे द्वे? आमिसानुग्गहो च धम्मानुग्गहो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे अनुग्गहा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं अनुग्गहानं यदिदं धम्मानुग्गहो'' ति॥

१०. ''द्वेमा, भिक्खवे, अनुकम्पा। कतमा द्वे? आमिसानुकम्पा च धम्मानुकम्पा च। इमा खो, भिक्खवे, द्वे अनुकम्पा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं अनुकम्पानं यदिदं धम्मानुकम्पा'' ति॥ ●

१४. सन्थारवग्गो

१. ''द्वेमे, भिक्खवे, सन्थारा। कतमे द्वे? आमिससन्थारो च धम्मसन्थारो च। [R.93]

परित्याग (=भौतिक वस्तुओं का सर्वथा त्याग) तथा दो—धर्म (मिथ्याधर्म) का परित्याग। इनमें धर्मपरित्याग ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो भोग : ५. ''भिक्षुओ! ये दो **भोग** (सेवन) कहलाते हैं। कौन से दो? एक—आमिषभोग, एवं दो—धर्मभोग। इनमें धर्मभोग ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो परिभोग : ६. ''भिक्षुओ! ये दो **परिभोग** कहलाते हैं। कौन से दो? एक—आमिषसम्भोग, एवं दो—धर्मसम्भोग। इनमें धर्मसम्भोग ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो संविभाग : ७. ''भिक्षुओ! ये दो **संविभाग** (विभाजन) कहलाते हैं। कौन से दो? एक—आमिषसंविभाग एवं दो—धर्मसंविभाग। इनमें धर्मसंविभाग ही श्रेष्ठ है॥ ●

दो संग्रह : ८. ''भिक्षुओ! ये दो **संग्रह** कहलाते हैं। कौन से दो? एक—आमिषसंग्रह एवं दो—धर्मसंग्रह। इनमें धर्मसंग्रह ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो अनुग्रह : ९. ''भिक्षुओ! ये दो **अनुग्रह** (कृपा) कहलाते हैं। कौन से दो? एक—आमिष से अनुग्रह, एवं दो—धर्म से अनुग्रह। इनमें धर्मानुग्रह ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो अनुकम्पा : १०. ''भिक्षुओ! ये दो अनुकम्पा (दया) कहलाती है। कौन सी दो? एक—आमिषानुकम्पा, एवं दो—धर्मानुकम्पा। भिक्षुओ! इन दोनों अनुकम्पाओं में धर्मानुकम्पा ही अग्र (प्रधान=मुख्य=श्रेष्ठ) है॥''

दानवर्ग त्रयोदश सम्पन्न॥ ●

इमे खो, भिक्खवे, द्वे सन्थारा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सन्थारानं यदिदं धम्मसन्थारो'' ति॥

[B.92] २. ''द्वेमे, भिक्खवे, पटिसन्थारा। कतमे द्वे? आमिसपटिसन्थारो च धम्मसन्थारो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे पटिसन्थारा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं पटिसन्थारानं यदिदं धम्मपटिसन्थारो'' ति॥

३. ''द्वेमा, भिक्खवे, एसना। कतमा द्वे? आमिसेसना च धम्मेसना च। इमा खो, भिक्खवे, द्वे एसना। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं एसनानं यदिदं धम्मेसना'' ति॥

४. ''द्वेमा, भिक्खवे, परियेसना। कतमा द्वे? आमिसपरियेसना च धम्मपरियेसना च। इमा खो, भिक्खवे, द्वे परियेसना। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परियेसनानं यदिदं धम्मपरियेसना'' ति॥

५. ''द्वेमा, भिक्खवे, परियेट्ठियो। कतमा द्वे? आमिसपरियेट्ठि च धम्मपरियेट्ठि च। इमा खो, भिक्खवे, द्वे परियेट्ठियो। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं परियेट्ठीनं यदिदं धम्मपरियेट्ठी'' ति॥

६. ''द्वेमा, भिक्खवे, पूजा। कतमा द्वे? आमिसपूजा च धम्मपूजा च। इमा खो, भिक्खवे, द्वे पूजा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं पूजानं यदिदं धम्मपूजा'' ति॥

[N.86] ७. ''द्वेमानि, भिक्खवे, आतिथेय्यानि। कतमानि द्वे? आमिसातिथेय्यं च धम्मातिथेय्यं च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे आतिथेय्यानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं आतिथेय्यानं यदिदं धम्मातिथेय्यं'' ति॥

---

१४. संस्तारवर्ग

दो संस्तार : १. ''भिक्षुओ! ये दो संस्तार (विस्तार) कहलाते हैं। कौन से दो? एक—आमिष (सांसारिक वस्तुओं) का संस्तार, एवं दो—धर्म का संस्तार। भिक्षुओ! इनमें धर्मसंस्तार ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो प्रतिसंस्तार : २. ''भिक्षुओ! ये दो **पटिसन्थार** (प्रतिसंस्तार=मैत्रीपूर्ण स्वागत) कहलाते हैं। कौन से दो? एक—आमिष (लौकिक वस्तुओं) से पटिसन्थार, एवं दो—धर्म से पटिसन्थार। इनमें धर्म से पटिसन्थार ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो एषणा : ३. ''भिक्षुओ! ये दो **एषणा** (इच्छा या खोज=गवेषणा) कहलाती हैं। कौन सी दो? एक—आमिष-एषणा, एवं दो—धर्म-एषणा। इनमें, भिक्षुओ! धर्मैषणा ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो पर्येषणा : ४. ''भिक्षुओ! ये दो **पर्येषणा** (=खोज=गवेषणा) कहलाती हैं।...। एक आमिषपर्येषणा, एवं धर्मपर्येषणा। इनमें, भिक्षुओ! धर्मपर्येषणा ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो परीष्टि : ५. ''भिक्षुओ! ये भी दो **परीष्टि** (गवेषणा) हैं।...। एक—आमिषपरीष्टि, एवं दो—धर्मपरीष्टि। इनमें, भिक्षुओ! धर्मपरीष्टि ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो पूजा : ६. ''भिक्षुओ! ये दो **पूजा** (भक्तिपूर्ण उपहार) कहलाती है।...। एक—आमिषपूजा, एवं दो—धर्मपूजा। इनमें, भिक्षुओ! धर्मपूजा ही श्रेष्ठ है॥'' ●

८. ''द्वेमा, भिक्खवे, इद्धियो। कतमा द्वे? आमिसिद्धि च धम्मिद्धि च। इमा खो, भिक्खवे, द्वे इद्धियो। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं इद्धीनं यदिदं धम्मिद्धि'' ति॥

९. ''द्वेमा, भिक्खवे, वुद्धियो। कतमा द्वे? आमिसवुद्धि च धम्मवुद्धि च। इमा [R.94] खो, भिक्खवे, द्वे वुद्धियो। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं द्विन्नं वुद्धीनं यदिदं धम्मवुद्धी'' ति॥

१०. ''द्वेमानि, भिक्खवे, रतनानि। कतमानि द्वे? आमिसरतनं च धम्मरतनं [B.93] च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे रतनानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं रतनानं यदिदं धम्मरतनं'' ति॥

११. ''द्वेमे, भिक्खवे, सन्निचया। कतमे द्वे? आमिससन्निचयो च धम्मसन्निचयो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे सन्निचया। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सन्निचयानं यदिदं धम्मसन्निचयो'' ति॥

१२. ''द्वेमानि, भिक्खवे, वेपुल्लानि। कतमानि द्वे? आमिसवेपुल्लं च धम्मवेपुल्लं च। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे वेपुल्लानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं वेपुल्लानं यदिदं धम्मवेपुल्लं'' ति॥ ●

१५. समापत्तिवग्गो

१. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? समापत्तिकुसलता च समापत्तिवुट्ठानकुसलता च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा'' ति॥

दो उपहार : ७. ''भिक्षुओ! ये दो **आतिथ्य के योग्य** उपहार हैं।...। एक—आमिष आतिथ्य, एवं दो—धर्मातिथ्य। इनमें, भिक्षुओ! धर्मातिथ्य ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो ऋद्धि : ८. ''भिक्षुओ! ये दो ऋद्धि (चमत्कार) हैं।...। एक—आमिष-ऋद्धि, एवं दो—धर्म-ऋद्धि। इनमें, भिक्षुओ! धर्म-ऋद्धि ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो वृद्धि : ९. ''भिक्षुओ! ये दो **वृद्धि** कहलाती हैं।...। एक—आमिष वृद्धि, एवं दो—धर्मवृद्धि। इनमें, भिक्षुओ! धर्मवृद्धि ही श्रेष्ठ है॥'' ●

दो रत्न : १०. ''भिक्षुओ! ये दो रत्न कहलाते हैं।...। एक—आमिषरत्न तथा दो—धर्मरत्न। इनमें, भिक्षुओ! धर्मरत्न श्रेष्ठ है॥'' ●

दो सन्निचय : ११. ''भिक्षुओ! ये दो **सन्निचय** (संग्रह) कहलाते हैं।...। एक—आमिषसन्निचय, एवं दो—धर्मसन्निचय। इनमें भिक्षुओ! धर्मसन्निचय श्रेष्ठ है॥ ●

दो वैपुल्य : १२. ''भिक्षुओ! ये दो **वैपुल्य** (वृद्धि) कहलाते हैं।...। एक—आमिषवैपुल्य, एवं दो—धर्मवैपुल्य। इन दोनों में, भिक्षुओ! धर्मवैपुल्य श्रेष्ठ हैं॥''

संस्तारवर्ग चतुर्दश सम्पन्न॥ ●

१५. समापत्तिवर्ग

दो कुशलता : १. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म होते हैं। कौन से दो? एक—समापत्तिकुशलता, एवं दो—समापत्तिव्युत्थानकुशलता (समाधिप्राप्ति के उत्थान में कुशलता)। भिक्षुओ! ये दो धर्म होते हैं॥'' ●

२. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? अज्जवं च मद्दवं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

३. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? खन्ति च सोरच्चं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

[N.87] ४. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? साकल्यं च पटिसन्थारो च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

५. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? अहिंसा च सोचेय्यं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

६. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारता च भोजने अमत्तञ्ञुता च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

[B.94] ७. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? इन्द्रियेसु गुत्तद्वारता च भोजने मत्तञ्ञुता च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

८. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? पटिसङ्खानबलं च भावनाबलं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

९. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? सतिबलं च समाधिबलं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

आर्जव, मार्दव : २. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म भी (साधना में सहयोगी होते) हैं। कौन से दो? एक आर्जव (ऋजुता=सरलता) तथा २ मार्दव (मृदुता=मृदुभाव=कोमलता) भिक्षुओ! ये दो धर्म होते हैं॥'' ●

क्षान्ति, सौरत्य : ३. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म होते हैं। कौन से दो? एक—क्षान्ति (सहनशीलता) एवं दो—सौरत्य (=विनम्रता)। भिक्षुओ! ये दो धर्म होते हैं॥'' ●

साकल्य, प्रतिसंस्तार : ४. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म होते हैं।...। एक साकल्य (समग्रभाव) एवं दो—प्रतिसंस्तार (मैत्रीपूर्ण स्वागत) भिक्षुओ! ये दो धर्म होते हैं॥'' ●

अहिंसा, शुचिता : ५. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म होते हैं।...। एक—अहिंसा एवं दो—शुचिता (काय, वाक् एवं मन की शुद्धि)॥'' ●

इंद्रियसंयम, भोजन मात्रा का अभाव : ६. ''भिक्षुओ! ये (साधना में बाधक) दो धर्म है।...। एक इन्द्रियों में संयम का अभाव, एवं दो भोजन में मात्रा के ज्ञान का अभाव॥'' ●

इंद्रियसंयम, भोजन मात्रा : ७.'' और भिक्षुओ! (साधनासाधक) ये दो धर्म हैं।...। एक—इन्द्रियों में संयम और दो—भोजन में मात्रा का ज्ञान॥'' ●

प्रतिसङ्ख्यानबल, भावनाबल : ८.''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं।...। एक—प्रतिसङ्ख्यानबल (मीमांसा का सामर्थ्य) एवं दो—भावना का बल॥'' ●

स्मृतिबल, समाधिबल : ९. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं।...। एक—स्मृतिबल एवं दो—समाधिबल॥'' ●

१०. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? समथो च विपस्सना च। इमे खो, [R.95] भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

११. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? सीलविपत्ति च दिट्ठिविपत्ति च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

१२. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? सीलसम्पदा च दिट्ठिसम्पदा च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

१३. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? सीलविसुद्धि च दिट्ठिसम्पदा च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

१४. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? दिट्ठिविसुद्धि च यथादिट्ठिस्स च पधानं। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

१५. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? असन्तुट्ठिता च कुसलेसु धम्मेसु, अप्पटिवानिता च पधानस्मिं। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

१६. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? मुट्ठस्सच्चं च असम्पजञ्ञं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

१७. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? सति च सम्पजञ्ञं च। इमे खो, [N.88] भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

ततियो पण्णासको समत्तो॥ ●

शमथ, विपश्यना : १०. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं।...। एक—शमथ (चित्त की शान्ति) एवं दो—विपश्यना (लोकोत्तर समाधि)॥'' ●

शीलविपत्ति, दृष्टिविपत्ति : ११. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म है।...। एक—शीलविपत्ति (सदाचार सङ्कट) तथा दो—दृष्टिविपत्ति (धारणाओं पर सङ्कट)।...॥ ●

शीलसम्पत्ति, दृष्टिसम्पत्ति : १२. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं।...। एक—शीलसम्पत्ति, एवं दो—दृष्टिसम्पत्ति।...॥ ●

शीलविशुद्धि, दृष्टिविशुद्धि : १३. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं।...। एक—शीलविशुद्धि, एवं दो—दृष्टिविशुद्धि।...॥ ●

दृष्टिविशुद्धि, तदर्थ प्रयास : १४. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं।...। एक—दृष्टिविशुद्धि एवं दो—दृष्टिविशुद्धि के लिये प्रयास।...॥ ●

धर्मवृद्धि, तदर्थ प्रयास : १५. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं।...। एक—कुशल धर्मों की वृद्धि में असन्तोष तथा दो—उस वृद्धि के प्रयास में पीछे न हटना।...॥ ●

स्मृतिभ्रंश, असम्प्रजन्य : १६. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म है।...। एक—स्मृति का भ्रष्ट होना तथा दो—असम्प्रजन्य (विवेक का अभाव)। भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं॥'' ●

स्मृति, सम्प्रजन्य : १७. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं।...। एक—स्मृति, तथा दो—सम्प्रजन्य। भिक्षुओ! ये दो धर्म है॥''

समापत्तिवर्ग पञ्चदश सम्पन्न॥

तृतीय पञ्चाशत्क सम्पन्न॥ ●

१६. कोधवग्गो

(१) कोधपेय्यालं

[B.95] १-५. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? कोधो च उपनाहो च ...पे०...मक्खो च पलासो च...इस्सा च मच्छरियं च...माया च साठेय्यं च...अहिरिकं च अनोत्तप्पं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

६-१०. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे द्वे? अक्कोधो च अनुपनाहो च... अमक्खो च अपलासो च...अनिस्सा च अमच्छरियं च...अमाया च असाठेय्यं च...हिरी च ओत्तप्पं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा''॥

११-१५. ''द्वीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो दुक्खं विहरति। कतमेहि द्वीहि? कोधेन च उपनाहेन च...मक्खेन च पलासेन च...इस्साय च मच्छरियेन च...मायाय च साठेय्येन च...अहिरिकेन च अनोत्तप्पेन च। इमेहि खो, भिक्खवे, द्वीहि धम्मेहि समन्नागतो दुक्खं विहरती'' ति॥

१६-२०. ''द्वीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो सुखं विहरति। कतमेहि द्वीहि? अक्कोधेन च अनुपनाहेन च...अमक्खेन च अपलासेन च...अनिस्साय च अमच्छरियेन च...अमायाय च असाठेय्येन च...हिरिया च ओत्तप्पेन च। इमेहि खो, भिक्खवे, द्वीहि धम्मेहि समन्नागतो सुखं विहरती'' ति॥

---

१६. क्रोधवर्ग

(१) क्रोध पेय्याल

क्रोध, उपनाह आदि : १-५. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं। कौन से दो धर्म? एक—क्रोध, एवं दो—उपनाह (वैर)।...। एक—म्रक्ष (दूसरे के गुणों का तिरस्कार, एवं दो—पळास (प्रदाश= ईर्ष्या)।... एक—ईर्ष्या एवं दो—मात्सर्य (वृथाभिमान)।... एक—माया (धूर्तता) एवं दो—शठता (कपटता)।... एक—अह्रीकता (निर्लज्जता) एवं दो—अनवत्राप्य (पाप से न डरना)। भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं॥ ●

अक्रोध, अवैर आदि : ६-१०. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं। कौन से दो? एक—अक्रोध एवं दो—अवैर।... एक—अम्रक्ष (दूसरे के गुणों की प्रशंसा) एवं दो—अप्रसाद (ईर्ष्या का अभाव)... एक—ईर्ष्या न करना एवं दो—अमात्सर्य (वृथाभिमान न करना)... एक अमाया एवं दो—अशठता... एक—लज्जा एवं दो—पापभीरुता। भिक्षुओ! ये दो धर्म हैं॥ ●

क्रोध, उपनाह आदि : ११-१५. ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों से युक्त होने पर साधक की साधना कष्टमय हो जाती है। कौन से दो धर्म? क्रोध एवं उपनाह से... भ्रक्ष एवं प्रदाश से... ईर्ष्या एवं मात्सर्य से... माया एवं शाठ्य से... अह्रीकता एवं अनवत्राप्य से ...पूर्ववत्...॥ ●

अक्रोध, अवैर आदि : १६-२०. (परन्तु) ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों से सम्पन्न होने पर साधक की साधना सुकर हो जाती है। किन दो धर्मों से? अक्रोध एवं अनुपनाह से... अम्रक्ष एवं

२१-२५. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा सेखस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तन्ति। कतमे द्वे? कोधो च उपनाहो च...मक्खो च पलासो च...इस्सा च मच्छरियं च...माया च साठेय्यं च...अहिरिकं च अनोत्तप्पं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा सेखस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तन्ती'' ति॥

२६-३०. ''द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ति। [N.89] कतमे द्वे? अक्कोधो च अनुपनाहो च...अमक्खो च अपलासो च...अनिस्सा च अमच्छरियं च...अमाया च असाठेय्यं च...हिरी च ओत्तप्पं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ती'' ति॥

३१-३५. ''द्वीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि द्वीहि? कोधेन च उपनाहेन च...मक्खेन च पलासेन च...इस्साय च मच्छरियेन च...मायाय च साठेय्येन च...अहिरिकेन च अनोत्तप्पेन च। इमेहि खो, भिक्खवे, द्वीहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये''॥

३६-४०. ''द्वीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। [B.96] कतमेहि द्वीहि? अक्कोधेन च अनुपनाहेन च...अमक्खेन च अपलासेन च...अनिस्साय [R.97] च अमच्छरियेन च...अमायाय च असाठेय्येन च...हिरिया च ओत्तप्पेन च। इमेहि खो, भिक्खवे, द्वीहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे''॥

४१-४५. ''द्वीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो इधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा

अप्रदाश से... अनीर्ष्या एवं अमात्सर्य से... अमाया एवं अशाठ्य से... ह्री (लज्जा) एवं अवत्राप्य (पापभीरुता) से। भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... साधना सुकर हो जाती है॥'' ●

क्रोध उपनाह आदि : २१-२५. ''भिक्षुओ! शैक्ष्य (साधना में आरूढ़) भिक्षु को ये दो धर्म अपने चित्त से निकाल देने चाहिये। कौन से दो धर्म? क्रोध एवं उपनाह... वृक्ष एवं प्रदाश... ईर्ष्या एवं मात्सर्य... माया एवं शाठ्य... अह्रीकता (निर्लज्जता) एवं अनवत्राप्य (पाप से न डरना)... ॥ ●

अक्रोध, अनुपनाह आदि : २६-३०. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म शैक्ष्य भिक्षु को अपने चित्त में निरन्तर बनाये रखने चाहिये। कौन से दो धर्म? अक्रोध एवं अनुपनाह... अम्रक्ष एवं अप्रदाश... अनीर्ष्या एवं अमात्सर्य... अमाया एवं अशाठ्य... लज्जा एवं पापभीरुता... ॥ ●

क्रोध, उपनाह आदि : ३१-३५. ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों से युक्त पुद्गल जैसे आया वैसे ही पुनः नरक में जा गिरेगा। कौन दो धर्मों से? अक्रोध एवं उपनाह से... म्रक्ष एवं प्रदाश से... ईर्ष्या एवं मात्सर्य से... माया एवं शाठ्य से... अह्रीकता एवं अनवत्राप्य से... ॥ ●

अक्रोध, अनुपनाह आदि : ३६-४०. (परन्तु) ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों से युक्त पुद्गल जैसे आया वैसे ही पुनः स्वर्ग में जा गिरेगा। किन दो धर्मों से? अक्रोध एवं अनुपनाह से... अम्रक्ष एवं अप्रदाश से... अनीर्ष्या एवं अमात्सर्य से... अमाया एवं अशाठ्य से... लज्जा एवं पापभीरुता से... ॥ ●

अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। कतमेहि द्वीहि? कोधेन च उपनाहेन च...मक्खेन च पलासेन च...इस्साय च मच्छरियेन च...मायाय च साठेय्येन च...अहिरिकेन च अनोत्तप्पेन च। इमेहि खो, भिक्खवे, द्वीहि धम्मेहि समन्नागतो इधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती'' ति॥

४६-५०. ''द्वीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो इधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा सुग्गतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। कतमेहि द्वीहि? अक्कोधेन च अनुपनाहेन च...अमक्खेन च अपलासेन च...अनिस्साय च अमच्छरियेन च...अमायाय च असाठेय्येन च...हिरिया च ओत्तप्पेन च। इमेहि खो, भिक्खवे, द्वीहि धम्मेहि समन्नागतो इधेकच्चो कायस्स भेदा परं मरणा सुग्गतिं सग्गं लोकं उपपज्जती'' ति॥ ●

२. अकुसलपेय्यालं

५१-१००. '' द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा अकुसला...। द्वेमे, भिक्खवे धम्मा कुसला...। [N.90] द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा सावज्जा...। द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा अनवज्जा...। द्वेमे, भिक्खवे, [B.98] धम्मा दुक्खुद्रया...। द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा सुखुद्रया...। द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा दुक्खविपाका...। द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा सुखविपाका...। द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा सब्याबज्झा...। द्वेमे, भिक्खवे, धम्मा अब्याबज्झा। कतमे द्वे? अक्कोधो च अनुपनाहो च...अमक्खो च अपलासो च...अनिस्सा च अमच्छरियं च...अमाया च असाठेय्यं च...हिरि च ओत्तप्पं च। इमे खो, भिक्खवे, द्वे धम्मा अब्याबज्झा'' ति॥ ●

क्रोध, उपनाह आदि : ४१-४५. ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों से युक्त पुद्गल, देहपात के बाद मरणान्तर... नरक में ही जा गिरता है। किन दो धर्मों से? क्रोध एवं उपनाह से... भ्रक्ष एवं प्रदाश से... ईर्ष्या एवं मात्सर्य से... माया एवं शाठ्य से... निर्लज्जता एवं अपापभीरुती (अवत्राप्य) से...॥ ●

अक्रोध, अनुपनाह आदि : ४६-५०. ''भिक्षुओ! इन दो धर्मों से युक्त पुद्गल... स्वर्ग में ही उत्पन्न होते हैं। कौन से दो धर्मों से? अक्रोध एवं अनुपनाह से... अभ्रक्ष एवं अप्रदाश से... अनीर्ष्या एवं अमात्सर्य से... अमाया एवं अशाठ्य से... लज्जा एवं पापभीरुता से... स्वर्ग में ही उत्पन्न होते हैं॥''

क्रोधपेय्याल सम्पन्न॥ ●

(२) अकुशलपेय्याल (पुनरावर्तन)

५१-१००. ''भिक्षुओ! ये दो धर्म अकुशल हैं... ये दो धर्म कुशल है... ये दो धर्म सदोष हैं... ये दो धर्म निर्दोष हैं... ये दो धर्म दुःख को बढ़ाने वाले हैं... ये दो धर्म सुख को बढ़ाने वाले हैं... ये दो धर्म दुःखफल देनेवाले हैं... यो धर्म सुख-फल देने वाले हैं... ये दो धर्म हानि पहुँचाने वाले हैं... ये दो धर्म हानि पहुँचाने वाले नहीं हैं। कौन से दो धर्म? अक्रोध एवं अनुपनाह... अम्रक्ष एवं अप्रदाश... अनीर्ष्या एवं अमात्सर्य... अमाया एवं अशाठ्य... ह्री एवं अवत्राप्य...। भिक्षुओ! ये दो धर्म हानि पहुँचाने वाले नहीं हैं॥''

क्रोधवर्ग षोडश सम्पन्न॥ ●

१७. अत्थवसवग्गो

१. विनयपेय्यालं

१-१०. ''द्वेमे, भिक्खवे, अत्थवसे पटिच्च तथागतेन सावकानं सिक्खापदं [B.97] पञ्ञत्तं। कतमे द्वे? सङ्घसुट्ठुताय सङ्घफासुताय...दुम्मङ्कूनं पुग्गलानं निग्गहाय, पेसलानं भिक्खूनं फासुविहाराय...दिट्ठधम्मिकानं आसवानं संवराय, सम्परायिकानं आसवानं पटिघाताय... दिट्ठधम्मिकानं वेरानं संवराय, सम्परायिकानं वेरानं पटिघाताय...दिट्ठधम्मिकानं वज्जानं संवराय, सम्परायिकानं वज्जानं पटिघाताय...दिट्ठधम्मिकानं भयानं संवराय, सम्परायिकानं भयानं पटिघाताय दिट्ठधम्मिकानं अकुसलानं धम्मानं संवराय, सम्परायिकानं अकुसलानं धम्मानं पटिघाताय...गिहीनं अनुकम्पाय, पापिच्छानं भिक्खूनं पक्खुपच्छेदाय... अप्पसन्नानं पसादाय, पसन्नानं भिय्योभावाय...सद्धम्मट्ठितिया विनयानुग्गहाय। इमे खो, भिक्खवे, द्वे अत्थवसे पटिच्च तथागतेन सावकानं सिक्खापदं अञ्ञत्तं'' ति॥

११-३००. ''द्वेमे, भिक्खवे, अत्थवसे पटिच्च तथागतेन सावकानं पातिमोक्खं पञ्ञत्तं...पे०...पातिमोक्खुद्देसो पञ्ञत्तो...पातिमोक्खट्ठपनं पञ्ञत्तं...पवारणा पञ्ञत्ता... [R.99] पवारणट्ठपनं पञ्ञत्तं...तज्जनीयकम्मं पञ्ञत्तं...नियस्सकम्मं पञ्ञत्तं...पब्बाजनीयकम्मं पञ्ञत्तं ...पटिसारणीयकम्मं पञ्ञत्तं...उक्खेपनीयकम्मं पञ्ञत्तं...परिवासदानं पञ्ञत्तं...मूलाय पटिकस्सनं पञ्ञत्तं...मानत्तदानं पञ्ञत्तं...अब्भानं पञ्ञत्तं...ओसारणीयं पञ्ञत्तं... [N.91]

---

१७. अर्थवशवर्ग

(१) विनयपेय्याल

१-१०. भिक्षुओ! दो प्रयोजनों के कारण ही तथागत ने अपने शिष्यों को शिक्षाप्रद प्रज्ञप्त किये हैं। कौन से दो? (१) सङ्घ में स्वच्छता एवं साधनाजन्य सरलता बनी रहे... (२) अविनीत पुद्गलों के निग्रह तथा सदाचारी भिक्षुओं की साधना में सहजता के लिये... (३) वर्तमान आश्रवों के संवरण एवं पारलौकिक आश्रवों के प्रतिघात के लिये... (४) वर्तमान (लौकिक) वैरों के संवरण एवं पारलौकिक वैरों के प्रतिघात के लिये... (५) वर्तमान दोषों के संवरण एवं पारलौकिक दोषों के प्रतिघात के लिये... (६) वर्तमान भयों के संवरण एवं पारलौकिक भयों के प्रतिघात के लिये... (७) वर्तमान अकुशल धर्मों के संवरण एवं पारलौकिक अकुशल धर्मों के प्रतिघात के लिये... (८) गृहस्थजनों पर अनुकम्पा हेतु, पापी भिक्षुओं के पक्ष को रोकने के लिये... (९) धर्म में अश्रद्धालुओं की श्रद्धा के लिये, श्रद्धालुओं की श्रद्धा की वृद्धि के लिये... (१०) सद्धर्म की स्थिति हेतु अनुशासन पर बल देने के लिये। भिक्षुओ! तथागत ने दो प्रयोजनों से श्रावकों के लिये ये शिक्षाप्रद तथागत ने प्रज्ञप्त किये हैं॥''

११-३००. ''भिक्षुओ! इन दो प्रयोजनों से तथागत ने श्रावकों को प्रातिमोक्ष (शिक्षापद) का प्रज्ञापन किया है ...पूर्ववत्... प्रातिमोक्ष का उद्देश प्रज्ञप्त किया है... प्रातिमोक्ष का स्थपन... प्रवारणास्थपन... तर्जनीय कर्म... न्यस्य कर्म... प्रव्राजनीय कर्म... प्रतिसारणीय कर्म... उत्क्षेपणीय कर्म... परिवासदान... मूल से प्रतिकर्षण... मानत्वदान... आह्वान... अवसारणीय... निस्सारणीय...

निस्सारणीयं पञ्ञत्तं...उपसम्पदा पञ्ञत्ता...ञत्तिकम्मं पञ्ञत्तं...ञत्तिदुतियकम्मं पञ्ञत्तं... ञत्तिचतुत्थकम्मं पञ्ञत्तं...अपञ्ञत्ते पञ्ञत्तं...पञ्ञत्ते अनुपञ्ञत्तं...सम्मुखाविनयो पञ्ञत्तो... सतिविनयो पञ्ञत्तो...अमूळ्हविनयो पञ्ञत्तो...पटिञ्ञातकरणं पञ्ञत्तं...येभुय्यसिका पञ्ञत्ता ...तस्सपापियसिका पञ्ञत्ता...तिणवत्थारको पञ्ञत्तो। कतमे द्वे? सङ्घसुट्ठुताय, सङ्घफासुताय...दुम्मङ्कूनं पुग्गलानं निग्गहाय, पेसलानं भिक्खूनं फासुविहाराय...दिट्ठधम्मिकानं आसवानं संवराय, सम्परायिकानं आसवानं पटिघाताय...दिट्ठधम्मिकानं वेरानं संवराय, सम्परायिकानं वेरानं पटिघाताय...दिट्ठधम्मिकानं वज्जानं संवराय, सम्परायिकानं वज्जानं पटिघाताय... दिट्ठधम्मिकानं भयानं संवराय, सम्परायिकानं भयानं पटिघाताय...दिट्ठधम्मिकानं अकुसलानं धम्मानं संवराय, सम्परायिकानं अकुसलानं धम्मानं पटिघाताय...गिहीनं [R.100] अनुकम्पाय, पापिच्छानं भिक्खूनं पक्खुपच्छेदाय...अप्पसन्नानं पसादाय, पसन्नानं [B.98] भिय्योभावाय...सद्धम्मट्ठितिया, विनयानुग्गहाय। इमे खो, भिक्खवे, द्वे अत्थवसे पटिच्च तथागतेन सावकानं तिणवत्थारको पञ्ञत्तो'' ति॥ ●

२. रागपेय्यालं

१. ''रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय द्वे धम्मा भावेतब्बा। कतमे द्वे? समथो च विपस्सना च। रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे द्वे धम्मा भावेतब्बा'' ति।

२-१०. ''रागस्स, भिक्खवे, परिञ्ञाय ... परिक्खयाय ... पहानाय ... खयाय ... वयाय ... विरागाय ... निरोधाय ... चागाय ... पटिनिस्सग्गाय द्वे धम्मा भावेतब्बा ...पे०... ॥''

११-१७०. ''दोसस्स ...पे०... मोहस्स ... कोधस्स ... उपनाहस्स ... मक्खस्स ... पलासस्स ... इस्साय ... मच्छरियस्स ... मायाय ... साठेय्यस्स ... थम्भस्स ... सारम्भस्स ...

उपसम्पदा... ज्ञप्ति चतुर्थ कर्म... अप्रज्ञप्त में प्रज्ञप्त... प्रज्ञप्त में अनुप्रज्ञप्त... सम्मुखविनय... स्मृतिविनय... अमूढविनय... प्रतिज्ञातकरण... यद्भूयसिक... तत्पापीयसिका... तृणावस्तारक प्रज्ञप्त किया है। कौन से दो प्रयोजन? सङ्घ में स्वच्छता एवं साधनाजन्य सरलता बनी रहे ...पूर्ववत्... (द्र० पीछे पृ० १३३)। भिक्षुओ! इन दो प्रयोजनों से तथागत ने श्रावकों को तृणावस्तारक प्रज्ञप्त किया है॥'' ●

(२) रागपेय्याल

१.''भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान (अभिज्ञान) हेतु इन दो धर्मों की भावना करनी चाहिये। कौन से दो? शमथ एवं विपश्यना। भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान के लिये इन दो धर्मों की भावना (साधना) करनी चाहिये।'' ●

२-१०. ''भिक्षुओ! राग के सम्यग्ज्ञान या पूर्ण ज्ञान (परिज्ञा) के लिये... परिक्षय के लिये... प्रहाण के लिये... क्षय के लिये... व्यय के लिये... विराग के लिये... निरोध के लिये... त्याग के लिये... प्रतिनिसर्ग के लिये ये दो धर्म कहे गये हैं॥'' ●

११-१७०. ''द्वेष के...पूर्ववत्... मोह के... क्रोध के... उपनाह के... म्रक्ष के... प्रदाश के... ईर्ष्या के... मात्सर्य के... माया के... शाठ्य के... स्तम्भ के... सारम्भ (उत्तेजना) के... मान के...

मानस्स ... अतिमानस्स ... मदस्स ... पमादस्स अभिञ्ञाय ... परिञ्ञाय ... परिक्खयाय ... पहानाय ... खयाय ... वयाय ... विरागाय ... निरोधाय ... चागाय ... पटिनिस्सग्गाय द्वे [N.92] धम्मा भावेतब्बा। कतमे द्वे? समथो च विपस्सना च। पमादस्स, भिक्खवे, पटिनिस्सग्गाय इमे द्वे धम्मा भावेतब्बा'' ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥ ●

दुकनिपातो निट्ठितो॥

●

अतिमान के... मद के... प्रमाद की... अभिज्ञा के... परिज्ञा के... परिक्षय के... प्रहाण के... क्षय के... व्यय के... विराग के... निरोध के... त्याग के... प्रतिनिसर्ग के लिये ये दो धर्म कहे गये हैं। कौन से दो? शमथ एवं विपस्सना। भिक्षुओ! प्रमाद के प्रतिनिसर्ग हेतु ये दो धर्म कहे गये हैं।

भगवान् ने यह कहा। इसे सुनकर सन्तुष्ट होते हुए भिक्षुओं ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

रागपेय्याल सम्पन्न॥

द्विक निपात सम्पन्न॥

●

३. तिकनिपातो

१. बालवग्गो

पठम पण्णासको

१. भयसुत्तं : एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने [N.93,B.99,R.101] अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– "भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"यानि कानिचि, भिक्खवे, भयानि उप्पज्जन्ति सब्बानि तानि बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो। ये केचि उपद्दवा उप्पज्जन्ति सब्बे ते बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो। ये केचि उपसग्गा उप्पज्जन्ति सब्बे ते बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो। सेय्यथापि, भिक्खवे, नळागारा वा तिणागारा वा अग्गिमुत्तो कूटागारानि पि डहति उल्लित्तावलित्तानि निवातानि फुसितग्गळानि पिहितवातपानानि; एवमेव खो, भिक्खवे, यानि कानिचि भयानि उप्पज्जन्ति सब्बानि तानि बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो। ये केचि उपद्दवा उप्पज्जन्ति सब्बे ते बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो। ये केचि उपसग्गा उप्पज्जन्ति सब्बे ते बालतो उप्पज्जन्ति, नो [B.100] पण्डिततो। इति खो, भिक्खवे, सप्पटिभयो बालो, अप्पटिभयो पण्डितो। सउपद्दवो बालो, अनुपद्दवो पण्डितो। सउपसग्गो बालो, अनुपसग्गो पण्डितो। नत्थि, भिक्खवे, पण्डिततो भयं, नत्थि पण्डिततो उपद्दवो, नत्थि पण्डिततो उपसग्गो। तस्मातिह,

---

३. त्रिक निपात

बालवर्ग

प्रथम पञ्चाशत्क

१. भयसूत्र : : **तीन भय**

ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवन के विहार में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को "भिक्षुओ!" सम्बोधन कर बुलाया। भिक्षुजन "भन्ते!" कहकर भगवान् के सम्मुख प्रस्तुत हुए। भगवान् ने उनको यह उपदेश किया—

"भिक्षुओ! लोक में जितने भी भय हैं वे सब मूर्खों द्वारा ही उत्पन्न किये जाते हैं, पण्डितों द्वारा नहीं। जितने भी उपद्रव (उत्पात) हैं वे सब मूर्खों द्वारा ही उत्पन्न किये जाते हैं, पण्डितों द्वारा नहीं। जितने भी उपसर्ग (सङ्कट) हैं ...पूर्ववत्... पण्डितों द्वारा नहीं। जैसे भिक्षुओ! नड या तृण से बने घर में लगकर उठी हुई अग्नि अच्छे भले बने झरोखेदार ऊँचे ऊँचे महलों को भी जला डालती है; इसी प्रकार, भिक्षुओ! लोक में जितने भी भय... उपद्रव... उपसर्ग हैं सभी मूर्खों द्वारा ही उत्पन्न किये जाते हैं, बुद्धिमानों द्वारा नहीं। भिक्षुओ! ये सब मूर्ख ही इन भय... उत्पात... उपसर्ग के जनक हैं, पण्डित नहीं। अतः भिक्षुओ! मूर्ख को ही भयभीत, उत्पाती एवं उपद्रवी मानना चाहिये, पण्डित

भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'येहि तीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो तयो धम्मे अभिनिवज्जेत्वा, येहि तीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो ते तयो धम्मे समादाय वत्तिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

२. लक्खणसुत्तं : ''कम्मलक्खणो, भिक्खवे, बालो, कम्मलक्खणो पण्डितो, अपदानसोभनी पञ्ञा ति। तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो। [R.102] कतमेहि तीहि? कायदुच्चरितेन, वचीदुच्चरितेन, मनोदुच्चरितेन। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो।'' [N.94]

''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो। कतमेहि तीहि? काय-सुचरितेन, वचीसुचरितेन, मनोसुचरितेन। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'येहि तीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो ते तयो धम्मे अभिनिवज्जेत्वा, येहि तीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो ते तयो धम्मे समादाय वत्तिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

३. चिन्तीसुत्तं : ''तीणिमानि, भिक्खवे, बालस्स बाललक्खणानि बालनिमित्तानि बालापदानानि। कतमानि तीणि? इध, भिक्खवे, बालो दुच्चिन्तितचिन्ती च होति दुब्भासितभासी च दुक्कटकम्मकारी च। नो चेदं, भिक्खवे, बालो दुच्चिन्तितचिन्ती च अभविस्स दुब्भासितभासी च दुक्कटकम्मकारी च, केन नं पण्डिता जानेय्युं—'बालो अयं

को नहीं। भिक्षुओ! क्योंकि पण्डित से न कोई भय हो सकता है, न कोई उत्पात या न कोई उपसर्ग, इसलिये भिक्षुओ! तुमको भी ऐसा ही सीखना चाहिये—'उपर्युक्त जिन तीन धर्मों से कोई पुद्गल मूर्ख माना जाता है उनको पूर्णत: त्याग कर, जिन तीन धर्मों से पुद्गल पण्डित समझा जाता है उनको ग्रहण कर हमें लोक में व्यवहार करना चाहिये'''॥ ●

२. लक्षणसूत्र : : तीन दुराचार

''भिक्षुओ! मूर्ख अपने कर्मों से पहचान में आता है, तथा पण्डित भी अपने कर्मों से ही पहचान में आता है। वहाँ प्रज्ञा उसके चरित्र को बढ़ानेवाली होती है। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त को मूर्ख समझना चाहिये। कौन से तीन? जो कायदुराचारी, वाग्दुराचारी एवं मनोदुराचारी हो; इन तीन धर्मों से युक्त को मूर्ख समझना चाहिये।

''तथा, भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त को पण्डित जानना चाहिये। कौन से तीन? जो कायिक सदाचार से, वाचसिक तथा मानसिक सदाचार से युक्त हो उसको पण्डित मानना चाहिये। अत: भिक्षुओ! हमें यही सीखना चाहिये—'जिन तीन धर्मों से युक्त को मूर्ख समझा जाता है उन तीन धर्मों का त्याग कर, तथा जिन तीन धर्मों से युक्त को पण्डित समझा जाता है उन तीन धर्मों को स्वीकार कर हमें आचरण करना चाहिये।' ऐसा हमें सीखना चाहिये॥'' ●

३. चिन्तीसूत्र : : मूर्खता के तीन लक्षण

''भिक्षुओ! मूर्ख की पहचान के ये तीन चिह्न होते हैं—उसमें मूर्खता के लक्षण हों, उसमें मूर्खता के कारण हों तथा उसमें मूर्खता के चरित्र हों। कौन से तीन? वह अशुभ विचार अपने मन

[B.101] भवं असप्पुरिसो' ति! यस्मा च खो, भिक्खवे, बालो दुच्चिन्तितचिन्ती च होति दुब्भासितभासी च दुक्कटकम्मकारी च, तस्मा नं पण्डिता जानन्ति—'बालो अयं भवं असप्पुरिसो' ति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि बालस्स बाललक्खणानि बालनिमित्तानि बालापदानानि।''

''तीणिमानि, भिक्खवे, पण्डितस्स पण्डितलक्खणानि पण्डितनिमित्तानि पण्डिता-पदानानि। कतमानि तीणि? इध, भिक्खवे, पण्डितो सुचिन्तितचिन्ती च होति सुभासित-भासी च सुकतकम्मकारी च। नो चेदं, भिक्खवे, पण्डितो सुचिन्तितचिन्ती च अभविस्स [R.103] सुभासितभासी च सुकतकम्मकारी च, केन नं पण्डिता जानेय्युं—'पण्डितो अयं भवं सप्पुरिसो' ति! यस्मा च खो, भिक्खवे, पण्डितो सुचिन्तितचिन्ती च होति सुभासित-भासी च सुकतकम्मकारी च, तस्मा नं पण्डिता जानन्ति—'पण्डितो अयं भवं सप्पुरिसो' ति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि पण्डितस्स पण्डितलक्खणानि पण्डितनिमित्तानि पण्डिता-पदानानि। तस्मातिह...सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

[N.95] ४. **अच्चयसुत्तं :** ''तीहि, भिक्खवे धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो। कतमेहि तीहि? अच्चयं अच्चयतो न पस्सति, अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं नप्पटिकरोति, परस्स खो पन अच्चयं देसेन्तस्स यथाधम्मं नप्पटिग्गण्हाति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदतब्बो।

''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदतब्बो। कतमेहि तीहि? अच्चयं

में रखता हो, कटु भाषा बोलता हो तथा उसके कायिक कर्म दुष्टतापूर्ण हों। भिक्षुओ! वह मूर्ख यदि इन तीन गुणों से युक्त न हो तो सज्जन उसे कैसे पहचानें कि यह मूर्ख 'दुष्ट' है! क्योंकि, भिक्षुओ! मूर्ख उपर्युक्त तीन दुर्गुणों से युक्त रहता है अत: सज्जन उसको पहचान ही लेते हैं कि यह मूर्ख दुष्ट है। भिक्षुओ! ये तीन मूर्खताबोधक लक्षण, निमित्त एवं चरित्र होते हैं॥

''इसी तरह, भिक्षुओ! पण्डित की पहचान के भी तीन लक्षण होते हैं—इसमें पण्डित के लक्षण हों, पण्डित के निमित्त हों तथा पण्डित का चरित्र हो। कौन से तीन? वह शुभ चिन्तन करता हो, मधुरभाषी हो तथा काया से सदाचारी हो। यदि वह इन तीन गुणों से युक्त न होता तो सज्जन उसको कैसे पहचानते कि वह 'पण्डित' है! क्योंकि, भिक्षुओ! उसमें ये तीन गुण प्रचुर मात्रा में होते हैं, अत: भले लोग उसे देखते ही पहचान लेते हैं कि वह 'पण्डित' है। इस प्रकार, भिक्षुओ! पण्डित के ये तीन लक्षण, निमित्त एवं आचरण होते हैं। अत: भिक्षुओ! हमें यह सीखना चाहिये कि जिन तीन धर्मों से युक्त को ...पूर्ववत्... हमें आचरण करना चाहिये॥'' ●

४. अत्ययसूत्र : : तीन धर्मों से युक्त मूर्ख

''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त को मूर्ख ही समझना चाहिये। किन तीनों से? जो अपराध को अपराध के रूप में नहीं समझता, उस अपराध को अपराध समझ कर प्रतीकार नहीं करता तथा उसको उस अपराध के विषय में समझाया जाय तो उसे यथार्थत: स्वीकार नहीं करता। इन तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' समझना चाहिये।

अच्चयतो पस्सति, अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोति, परस्स खो पन अच्चयं देसेन्तस्स यथाधम्मं पटिग्गण्हाति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो। तस्मातिह ... सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

५. **अयोनिसोसुत्तं** : ''तीहि, भिक्खवे धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो। कतमेहि तीहि? अयोनिसो पञ्हं कत्ता होति, अयोनिसो पञ्हं विस्सज्जेता होति, परस्स खो पन योनिसो पञ्हं विस्सज्जितं परिमण्डलेहि पदब्यञ्जनेहि सिलिट्ठेहि उपगतेहि [B.102] नाब्भनुमोदिता होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो।

''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो। कतमेहि तीहि? योनिसो पञ्हं कत्ता होति, योनिसो पञ्हं विस्सज्जेता होति, परस्स खो पन योनिसो पञ्हं विस्सज्जितं परिमण्डलेहि पदब्यञ्जनेहि सिलिट्ठेहि उपगतेहि अब्भनुमोदिता होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो। तस्मातिह ... सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

६. **अकुसलसुत्तं** : ''तीहि, भिक्खवे धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो। कतमेहि तीहि? अकुसलेन कायकम्मेन, अकुसलेन वचीकम्मेन, अकुसलेन [R.104] मनोकम्मेन। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो।

''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो। कतमेहि तीहि? कुसलेन

''तीन धर्मों से युक्त, भिक्षुओ! पुद्गल को 'पण्डित' जानना चाहिये। किन तीन धर्मों से? जो अपराध को अपराध के रूप में समझता है, अत: उस अपराध को अपराध समझ कर उसका प्रतीकार करता है, तथा उस अपराध के विषय में कोई समझाता हो तो उसको यथार्थत: स्वीकार करता है। इन तीन धर्मों से युक्त पुद्गल को 'पण्डित' मानना चाहिये। अत: भिक्षुओ! हमें ...पूर्ववत्... यह सीखना चाहिये।'' ●

५. अयोनिशःसूत्र : : तीन दुराचार

''भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त पुद्गल को 'मूर्ख' कहते हैं। किन तीन धर्मों से? वह सूक्ष्मविचार कर स्वयं प्रश्न नहीं करता, सूक्ष्म विचार कर उसका उत्तर नहीं देता, तथा यदि कोई दूसरा उसका श्लक्ष्ण पदव्यञ्जनों से उत्तर दे तो उसको भी स्वीकार नहीं करता। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष 'मूर्ख' कहलाता है।

''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुद्गल 'पण्डित' समझा जाना चाहिये। किन तीन से? जो स्वयं सूक्ष्म विचार कर प्रश्न करता है ...पूर्ववत्... उत्तर देता है तो उसको स्वीकार करता है। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष 'पण्डित' कहलाता है॥'' ●

६. अकुशलसूत्र : : तीन धर्मों से युक्त पुरुष

''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष को 'मूर्ख' ही समझना चाहिये। कौन से तीन? अकुशल कायकर्म से, अकुशल वाक्कर्म से, अकुशल मन:कर्म से। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' ही समझना चाहिये।

''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त को 'पण्डित' समझना चाहिये। किन तीन से? कुशल

कायकम्मेन, कुसलेन वचीकम्मेन, कुसलेन मनोकम्मेन। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो। तस्मातिह ... सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

[N.96] ७. **सावज्जसुत्तं :** ''तीहि, भिक्खवे धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो। कतमेहि तीहि? सावज्जेन कायकम्मेन, सावज्जेन वचीकम्मेन, सावज्जेन मनोकम्मेन ...पे०... अनवज्जेन कायकम्मेन, अनवज्जेन वचीकम्मेन, अनवज्जेन मनोकम्मेन ... । तस्मातिह ... सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

८. **सब्यावज्झसुत्तं :** ''तीहि, भिक्खवे धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो। कतमेहि तीहि? सब्याबज्झेन कायकम्मेन, सब्याबज्झेन वचीकम्मेन, सब्याबज्झेन मनो-[B.103] कम्मेन ...पे०... अब्याबज्झेन कायकम्मेन, अब्याबज्झेन वचीकम्मेन, अब्याबज्झेन मनोकम्मेन। इमेहि, खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो।

''तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'येहि तीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो वेदितब्बो ते तयो धम्मे अभिनिवज्जेत्वा, येहि तीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वेदितब्बो ते तयो धम्मे समादाय वत्तिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

[R.105] ९. **खतसुत्तं :** ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेहि तीहि? कायदुच्चरितेन, वचीदुच्चरितेन, मनोदुच्चरितेन। इमेहि खो,

---

कायकर्म, कुशल वाक्कर्म एवं कुशल मनःकर्म से। भिक्षुओ! इन तीन कर्मों से युक्त को पण्डित समझना चाहिये॥'' ●

७. सावद्य सूत्र : : त्रिविध मूर्ख

''भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त पुरुष 'मूर्ख' कहलाता है। किन तीन धर्मों से? सदोष (सावद्य) कायकर्म से, सदोष वाक्कर्म से, सदोष मनःकर्म से। ...पूर्ववत्... निर्दोष (अनवद्य) कायकर्म से, निर्दोष वाक्कर्म से, निर्दोष मनःकर्म से। इसलिये, भिक्षुओ! हमें ...पूर्ववत्... यह सीखना चाहिये॥'' ●

८. सव्यावध्य सूत्र : : त्रिविध मूर्ख

''इन तीन धर्मों से युक्त को, भिक्षुओ! 'मूर्ख' समझना चाहिये। किन तीन से? हानि पहुँचाने वाले (सव्यावध्य) कायकर्म... वाक्कर्म... मनःकर्म से। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष को मूर्ख ही समझना चाहिये। ...पूर्ववत्... हानि न पहुँचाने वाले कायकर्म... वाक्कर्म... मनःकर्म से ...पूर्ववत्... पण्डित समझना चाहिये।

''इसलिये, भिक्षुओ! हमें यह सीखना चाहिये ...पूर्ववत्... उन धर्मों को धारण कर ही साधना करेंगे॥'' ●

९. क्षत सूत्र : : तीन धर्मों से युक्त पुरुष

''भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त पुद्गल अपण्डित (नासमझ), असज्जन, स्वयं को क्षत उपहत (टूटा-फूटा) मानता है, अपराधी मानता है, विद्वज्जन भी उसको दोषवान् समझते हैं, तथा वह अपने

भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति।

"तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति। कतमेहि तीहि? कायसुचरितेन, वचीसुचरितेन, मनोसुचरितेन। इमेहि खो भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवती" ति॥

●

१०. **मलसुत्तं** : "तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो तयो मले अप्पहाय यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि तीहि? दुस्सीलो च होति, दुस्सील्यमलं चस्स अप्पहीनं होति; इस्सुकी च होति, इस्सामलं चस्स अप्पहीनं होति; मच्छरी च होति, [N.97] मच्छेरमलं चस्स अप्पहीनं होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो इमे तयो मले अप्पहाय यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

"तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो तयो मले पहाय यथाभतं निक्खित्तो [B.104] एवं सग्गे। कतमेहि तीहि? सीलवा च होति, दुस्सील्यमलं चस्स पहीनं होति; अनिस्सुकी च होति, इस्सामलं चस्स पहीनं होति; अमच्छरी च होति, मच्छेरमलं चस्स पहीनं होति।

लिये (इन तीन धर्मों के कारण) पापराशि ही सञ्चित करता है। किन तीन से? कायिक दुराचार से, वाचसिक दुराचार से एवं मानसिक दुराचार से। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुद्गल नासमझ... सञ्चित करता है।

"भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त पुद्गल पण्डित, सज्जन, स्वयं को अक्षत एवं अनुपहत (सर्वथा स्वस्थ) समझता है, निर्दोष समझता है, विद्वज्जन भी इस कारण उसकी प्रशंसा ही करते हैं तथा वह स्वयं के लिये भी प्रभूत पुण्यसञ्चय करता है। किन तीन से? कायिक सदाचार, वाचसिक सदाचार एवं मानसिक सदाचार से। इन तीन धर्मों से युक्त पुद्गल पण्डित ...पूर्ववत्... प्रभूत पुण्यसञ्चय करता है॥"

●

१०. मल सूत्र : : त्रिविध मूर्ख

"भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त पुद्गल तीन मलों (दोषों) को विना छोड़े (उनके साथ) जैसे आया था वैसे ही नरक में जा गिरता है। कौन से तीन? वह दुःशील होता है तथा दुःशीलता का दोष भी इसे छोड़ता नहीं है; यह ईर्ष्यालु होता है और इसका यह ईर्ष्यामल भी इसका त्याग नहीं करता; यह मत्सरी (कंजूस) होता है (किसी को कुछ दान करने की इसकी इच्छा ही नहीं होती) तथा यह मात्सर्य भी इसका साथ नहीं छोड़ता। इस प्रकार, भिक्षुओ! इन तीन धर्मों (दुर्गुणों) से युक्त इन तीन धर्मों के साथ ही नरक में जा गिरता है।

"भिक्षुओ! तीन धर्मों (सद्गुणों) से युक्त, तीन मलों (दोषों) को छोड़कर... स्वर्ग में जाता है। किन तीन धर्मों से? वह शीलवान् होता है, इस कारण, इसकी दुःशीलता शनैः शनैः नष्ट हो जाती है; यह किसी के प्रति ईर्ष्यालु नहीं होता, अतः इसका ईर्ष्यामल भी शनैः शनैः नष्ट हो जाता

इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो इमे तयो मले पहाय यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

बालवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

भयं लक्खणचिन्ती च, अच्चयं च अयोनिसो।
अकुसलं च सावज्जं, सब्याबज्झखतं मलं ति॥ ●

२. रथकारवग्गो

[R.106] **१. ञातसुत्तं।** ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो ञातो भिक्खु बहुजन-अहिताय पटिपन्नो होति बहुजनदुक्खाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। कतमेहि तीहि? अननुलोमिके कायकम्मे समादपेति, अननुलोमिके वचीकम्मे समादपेति, अननुलोमिकेसु धम्मेसु समादपेति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो ञातो भिक्खु बहुजनअहिताय पटिपन्नो होति बहुजनदुक्खाय, बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं।

''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो ञातो भिक्खु बहुजनहिताय पटिपन्नो होति बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कतमेहि तीहि?

है; यह मत्सरी नहीं होता, अत: इसका मात्सर्य भी शनै: शनै: नष्ट हो जाता है। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष इन तीनों मलों से शुद्ध (रहित) होकर अन्त में स्वर्ग में जा पहुँचता है॥'' ●

बालवर्ग प्रथम सम्पन्न॥

इस बालवर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. भय, २. लक्षण, ३. चिन्ती, ४. अत्यय, ५. अयोनिश:, ६. अकुशल, ७. सावद्य, ८. सव्यावध्य, ९. क्षत एवं मल सूत्र॥ ●

२. रथकारवर्ग

१. ज्ञात सूत्र : : त्रिविध पुद्गल

''भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त प्रसिद्ध पुद्गल बहुत जनों का अहित एवं दु:ख सम्पादन करता है, देवता एवं मनुष्यों सहित अनेक जनों के प्रयोजनों का नाशक, उनके लिये दु:खदायी एवं अहितकर होता है। किन तीन धर्मों से? वह दूसरों को क्रमरहित कायकर्मों की प्रेरणा करता है, क्रमरहित वाक्कर्मों की... क्रमरहित मन:कर्मों की प्रेरणा करता है। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त होने के कारण यह प्रसिद्ध पुद्गल भी बहुत जनों का ...पूर्ववत्... अहितकर होता है।

''भिक्षुओ! तीन धर्मों से समन्वित प्रसिद्ध भिक्षु बहुत जनों के हित एवं सुख का सम्पादक होता है ...पूर्ववत्...। किन तीन धर्मों से? वह दूसरों को क्रमपूर्वक कायकर्मों की, क्रमपूर्वक

अनुलोमिके कायकम्मे समादपेति, अनुलोमिके वचीकम्मे समादपेति, अनुलोमिकेसु धम्मेसु समादपेति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो ञातो भिक्खु बहुजनहिताय पटिपन्नो होति बहुजनसुखाय, बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय [N.98] देमनुस्सानं'' ति॥

●

२. **सारणीयसुत्तं :** ''तीणिमानि, भिक्खवे, रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धाव- [B.105] सित्तस्स यावजीवं सारणीयानि भवन्ति। कतमानि तीणि? यस्मिं, भिक्खवे, पदेसे राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो जातो होति। इदं, भिक्खवे, पठमं रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स यावजीवं सारणीयं होति।

''पुन च परं, भिक्खवे, यस्मिं पदेसे राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो होति। इदं, भिक्खवे, दुतियं रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स यावजीवं सारणीयं होति।

''पुन च परं, भिक्खवे, यस्मिं पदेसे राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो सङ्गामं अभिविजनित्वा विजितसङ्गामो तमेव सङ्गामसीसं अज्झावसति। इदं भिक्खवे, ततियं रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स यावजीवं सारणीयं होति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स यावजीवं सारणीयानि भवन्ति।

''एवमेव खो, भिक्खवे, तीणिमानि भिक्खुस्स यावजीवं सारणीयानि [R.107] भवन्ति। कतमानि तीणि? यस्मिं, भिक्खवे, पदेसे भिक्खु केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति। इदं, भिक्खवे, पठमं भिक्खुस्स यावजीवं सारणीयं होति।

वाक्कर्मों की एवं क्रमपूर्वक मन:कर्मों की पूर्ति की प्रेरणा करता है। इन तीन धर्मों से समन्वित भिक्षु बहुत जनों के हित सुख का सम्पादन करता है...पूर्ववत्...।''

●

२. **सारणीय सूत्र** : : **त्रिविध स्मरणीय धर्म**

''भिक्षुओ! ये तीन धर्म मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय (राजा) को जीवनपर्यन्त स्मरण रखने चाहिये। कौन तीन धर्म? (१) उस मूर्धाभिषिक्त राजा को यह स्मरण करना चाहिये कि वह किस प्रदेश में उत्पन्न हुआ है तथा (२) किस प्रदेश का मूर्धाभिषिक्त राजा बना है।

(३) ''फिर, भिक्षुओ! किसी मूर्धाभिषिक्त राजा को उस प्रादेशिक मूर्धाभिषिक्त राजा से युद्ध करते हुए उसको विजित कर उसके राज्य की सीमा पर अपनी सुरक्षाहेतु सेना की स्थायी सुरक्षा चौकी बना देनी चाहिये। इसी प्रकार, भिक्षुओ! भिक्षु को भी ये तीन धर्म यावज्जीवन स्मरण रखना चाहिये। कौन से तीन? भिक्षुओ! जिस प्रदेश से भिक्षु गृहस्थ धर्म छोड़कर (दाढ़ी, मूछ एवं केश कटाकर) काषाय वस्त्र पहन कर प्रव्रजित हुआ हो, उस प्रदेश को जीवन-पर्यन्त स्मरण रखना चाहिये। (१)

''पुन:, भिक्षुओ! भिक्षु जिस प्रदेश में (वास कर साधना करता हुआ) 'यह दु:ख है'—यह ज्ञान सम्यक्तया प्राप्त करे, 'यह दु:खसमुदय है'—... 'यह दु:खनिरोध है'—... 'यह दु:ख-

''पुन च परं, भिक्खवे, यस्मिं पदेसे भिक्खु 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। इदं, भिक्खवे, दुतियं भिक्खुस्स यावजीवं सारणीयं होति।

''पुन च परं, भिक्खवे, यस्मिं पदेसे भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इदं, भिक्खवे, ततियं भिक्खुस्स यावजीवं सारणीयं होति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि भिक्खुस्स यावजीवं सारणीयानि भवन्ती'' ति॥ ●

[N.99, B.106] **३. आसंससुत्तं :** ''तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? निरासो, आसंसो, विगतासो। कतमो च, भिक्खवे पुग्गलो निरासो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो नीचे कुले पच्चाजातो होति, चण्डालकुले वा वेनकुले वा नेसादकुले वा रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा दलिद्दे अप्पन्नपानभोजने कसिरवुत्तिके, यत्थ कसिरेन घासच्छादो लब्भति। सो च होति दुब्बण्णो दुद्दसिको ओकोटिमको बव्हाबाधो काणो वा कुणी वा खञ्जो वा पक्खहतो वा, न लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो सुणाति— 'इत्थन्नामो किर खत्तियो खत्तियेहि खत्तियाभिसेकेन अभिसित्तो' ति। तस्स न एवं होति—

निरोधगामी मार्ग है'—यह ज्ञान सम्यक्तया प्राप्त करे उस प्रदेश को जीवनपर्यन्त स्मरण रखना चाहिये। (२)

''पुनः, भिक्षुओ! भिक्षु जिस प्रदेश में आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्राप्त करे तथा इसी जन्म में प्रत्यक्षरूप से स्वयं जानकर साक्षात्कार कर उपसम्पन्न होकर साधना करे; वह प्रदेश भी उस भिक्षु को जीवनपर्यन्त स्मरण रखना चाहिये। (३)

''इस तरह, भिक्षुओ! इस भिक्षु को भी ये तीनों धर्म जीवनपर्यन्त स्मरण रखने चाहिये॥''●

३. आशंसासूत्र : : त्रिविध पुद्गल

भिक्षुओ! लोक में तीन प्रकार के पुद्गल होते हैं। कौन से तीन? १. निराशावादी, २. आशावादी एवं ३. आशारहित (विगताश)।

भिक्षुओ! इनमें निराश (निराशावादी) किसे कहते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल हीन कुल में उत्पन्न हो, फिर भले ही वह चाण्डाल कुल हो, या वेण कुल हो, नैषाद कुल हो, या रथकार कुल हो, या पुल्कस कुल हो, जो कि दरिद्र होते हैं, जिनकी जीवनयात्रा बहुत कठिनता से चलती है, खाना-पीना भी यथेच्छ (पेटभर) नहीं मिल पाता, जिस कुल में उत्पन्न को दैनिक भोजन भी बहुत कठिनता से मिल पाता है। फिर वह कुरूप हो, जिसका दर्शन भी दु:खद एवं दौर्भाग्यपूर्ण माना जाय, शरीर से वामन (ओकोटमिक) हो, रोगग्रस्त हो, काणा हो, लूला हो, लँगड़ा हो; उसको (अन्य पुरुषों की तरह) अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला गन्धविलेपन आदि भी उपलब्ध न हों। वह

'कुदास्सु नाम ममं पि खत्तिया खत्तियाभिसेकेन अभिसिञ्चिस्सन्ती' ति! अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो निरासो।

''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो आसंसो? इध, भिक्खवे, रञ्ञो खत्तियस्स [R.108] मुद्धावसित्तस्स जेट्ठो पुत्तो होति आभिसेको अनभिसित्तो अचलप्पत्तो। सो सुणाति—'इत्थन्नामो किर खत्तियो खत्तियेहि खत्तियाभिसेकेन अभिसित्तो' ति। तस्स एवं होति—'कुदास्सु नाम ममं पि खत्तिया खत्तियाभिसेकेन अभिसिञ्चस्सन्ती' ति! अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो आसंसो।

''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो विगतासो? इध, भिक्खवे, राजा होति खत्तियो मुद्धावसित्तो। सो सुणाति—'इत्थन्नामो किर खत्तियो खत्तियेहि खत्तियाभिसेकेन अभिसित्तो' ति। तस्स न एवं होति—'कुदास्सु नाम ममं पि खत्तिया खत्तियाभिसेकेन अभिसिञ्चस्सन्ती' ति! तं किस्स हेतु? या हिस्स, भिक्खवे, पुब्बे अनभिसित्तस्स अभिसेकासा सा पटिप्पस्सद्धा। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो विगतासो। इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

''एवमेव खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसु। कतमे [B.107] तयो? निरासो, आसंसो,विगतासो। कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो निरासो? इध, भिक्खवे,

---

यदि कभी सुने—'इस नाम का क्षत्रिय अन्य क्षत्रियों द्वारा राजा के रूप में मूर्धाभिषिक्त किया जा रहा है।' यह सुनकर उसके मन में यह इच्छा नहीं होती कि कभी मुझे भी ये क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त राजा बनायें। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—'निराश' (निराशावादी)। (१)

''फिर, भिक्षुओ! आशंस (आशावादी) कौन कहलाता है? कोई क्षत्रिय किसी राजा का ज्येष्ठ पुत्र हो, अभिषेकयोग्य हो परन्तु मूर्धाभिषिक्त न हुआ हो, स्वस्थ, सुन्दर एवं युवा हो तथा राजा की समस्त सम्पत्ति का पूर्ण अधिकारी हो। वह कभी किसी के विषय में सुने—'अमुक क्षत्रिय अन्य क्षत्रियों द्वारा मूर्धाभिषिक्त कर राजा बना दिया गया है।' तब उसके मन में भी यह इच्छा हो—'क्या कभी दूसरे क्षत्रिय मुझको भी मूर्धाभिषिक्त करेंगे।' भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल कहलाता है—'आसंस' (आशावादी)।

''फिर, भिक्षुओ! विगताश (आशारहित) पुद्गल कौन कहलाता है? यहाँ कोई मूर्धाभिषिक्त राजा हो, वह कभी अन्य राजा के विषय में सुने कि उसको अन्य क्षत्रियों ने मूर्धाभिषिक्त कर अपना राजा बना लिया। उसे तब यह इच्छा नहीं होती कि कब मुझे भी अन्य क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त कर अपना राजा बनायेंगे; क्योंकि वह तो पहले से ही राजा है, अत: उसकी यह आशा पहले ही पूर्ण हो चुकी है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'विगताश' (पूर्णाश) कहलाता है। इस प्रकार भिक्षुओ! लोक में ये त्रिविध पुद्गल होते हैं।

इसी तरह, भिक्षुओ! भिक्षु भी तीन प्रकार के होते हैं—१. निराश, २. आशावान् (आशंस), ३. विगताश। इनमें 'निराश' भिक्षु कौन कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल दुराचारी, पापकर्मा हो, जिसका आचरण हीनतम (कूड़े करकट के समान) हो, जो लुक-छिपकर पापमय आचरण

एकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो असुचि सङ्कस्सरसमाचारो पटिच्छन्नकम्मन्तो [N.100] अस्समणो समणपटिञ्ञो अब्रह्मचारी ब्रह्मचारिपटिञ्ञो अन्तोपूति अवस्सुतो कसम्बुजातो। सो सुणाति—'इत्थन्नामो किर भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती' ति। तस्स न एवं होति—'कुदास्सु नाम अहं पि आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिसञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सामी' ति! अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो निरासो।

"कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो आसंसो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति [R.109] कल्याणधम्मो। सो सुणाति—'इत्थन्नामो किर भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती' ति। तस्स एवं होति—'कुदास्सु नाम अहं पि आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिसञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सामी' ति! अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो आसंसो।

"कतमो च, भिक्खवे पुग्गलो विगतासो? इध, भिक्खवे, भिक्खु अरहं होति खीणासवो। सो सुणाति—'इत्थन्नामो किर भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती' ति। तस्स न एवं

करता रहता हो, श्रमणधर्म से हीन हो, परन्तु श्रमणों के तुल्य दिखायी देता हो, धर्म की साधना न करता हो, परन्तु धर्मसाधक का अभिनय करता हो, अन्तरङ्ग (मन) से मैला, विविध वासनायुक्त एवं कूड़ा करकट के समान हेय हो। वह कभी किसी भिक्षु के विषय में सुने—'अमुक भिक्षु अपने चित्तदोषों का क्षय कर, अनाश्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति प्राप्त कर प्रत्यक्ष ही अभिज्ञान कर साक्षात्कार करता हुआ निर्वाण की साधना कर रहा है।' तो भी उसको अपने विषय में कभी यह विचार नहीं उठता—'कब मैं भी स्वचित्त दोषों का क्षय कर ...पूर्ववत्... निर्वाण की साधना कर पाऊँगा।' क्योंकि इस साधना की आशा वह अपने लिये करता ही नहीं। भिक्षुओ! इसे कहते हैं— निराश भिक्षु। (१)

"फिर, भिक्षुओ! किस भिक्षु को 'आशावान्' (आशंस) कहते हैं? यहाँ कोई भिक्षु सदाचारी कल्याणकर्ता है। वह कभी सुने—'इस नाम का भिक्षु अपने आश्रवों का क्षय कर अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को प्रत्यक्षतः स्वयं जानकर साक्षात्कार कर निर्वाणप्राप्त्यर्थ साधना कर रहा है।' तब उसके मन में भी यह विचार हो कि मैं भी कब इसी प्रकार अपने आश्रवों का क्षय कर... निर्वाण प्राप्त्यर्थ साधना कर पाऊँगा। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु 'आशावान्' कहलाता है। (२)

"फिर, भिक्षुओ! कौन सा भिक्षु 'विगताश' (जिसकी आशा पूर्ण हो चुकी हो) कहलाता है। यहाँ कोई भिक्षु, साधना के बल पर, अर्हत् क्षीणाश्रव की स्थिति तक पहुँच जाय। वह कभी सुने—

होति—'कुदास्सु नाम अहं पि आसवानं खया ...पे०... सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सामी' ति! तं किस्स हेतु? या हिस्स, भिक्खवे, पुब्बे अविमुत्तस्स विमुत्तासा सा पटिप्पस्सद्धा। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो विगतासो। इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसु'' ति॥

४. **चक्कवत्तिसुत्तं** : ''यो पि सो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा सो पि न अराजकं चक्कं वत्तेती'' ति। एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच— ''को पन, भन्ते, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स धम्मिकस्स धम्मरञ्ञो राजा'' ति? ''धम्मो, [B.108] भिक्खू,'' ति भगवा अवोच—''इध, भिक्खु, राजा चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा धम्मंयेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपत्तेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहति अन्तोजनस्मिं। पुन च परं, [N.101] भिक्खु, राजा चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा धम्मंयेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहति खत्तियेसु, अनुयन्तेसु, बलकायस्मिं, ब्राह्मणगहपतिकेसु, नेगमजान- [R.110] पदेसु, समणब्राह्मणेसु, मिगपक्खीसु। स खो सो भिक्खु राजा चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा धम्मंयेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहित्वा अन्तोजनस्मिं, धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहित्वा खत्तियेसु, अनुयन्तेसु, बलकायस्मिं, ब्राह्मणगहपतिकेसु,

---

'एतन्नामक भिक्षु आश्रवों को क्षय कर ...पूर्ववत्... साधना कर रहा है।' तब भी उसको अपने लिये यह विचार नहीं होता कि मैं भी कब इसी तरह... निर्वाण प्राप्ति हेतु साधना कर पाऊँगा; क्योंकि इसका यह विचार तो उसकी साधना द्वारा पहले ही पूर्ण हो चुका है। अत: ऐसा पुद्गल भिक्षु 'विगताश' कहलाता है। इस तरह, भिक्षुओ! जैसे वे त्रिविध पुद्गल होते हैं, वैसे ही भिक्षुओं में ये त्रिविध भिक्षु होते हैं॥''

४. चक्रवर्तिसूत्र : : त्रिविध पुद्गल

''भिक्षुओ! जो धार्मिक चक्रवर्ती धर्मपूर्वक राज्य करनेवाला हो वह भी किसी राजा के विना शासन नहीं चला सकता।'' भगवान् के ऐसा कहे जाने पर, किसी भिक्षु ने भगवान् से पूछा— ''भन्ते! इस चक्रवर्ती धर्मराज का कौन राजा होगा?'' ''भिक्षु! इसका भी राजा 'धर्म' होता है''— भगवान् बोले—''यहाँ, भिक्षु! कोई धार्मिक चक्रवर्ती राजा अपने परिजनों के मध्य धर्म का आलम्बन कर, धर्म का सत्कार करता हुआ, उसका गौरव मानता हुआ, उसकी पूजा करता हुआ, उसकी ध्वजा उठाकर, उसका आधिपत्य स्वीकार कर, अपने लिये उसका धार्मिक कवच (रक्षावरणगुप्ति) बना लेता है। फिर धर्म का ...पूर्ववत्... अपनी सेना के बीच ऐसा कवच बनाता है, फिर अपने अनुयायियों में, प्रजाजनों में, ब्राह्मण एवं गृहपतियों, नगरों, कस्बों एवं ग्रामों में, यहाँ तक कि अपने राज्य के पशुपक्षियों में भी यह धार्मिक कवच बना लेता है। ...पूर्ववत्... धर्म से ही

नेगमजानपदेसु, समणब्राह्मणेसु, मिगपक्खीसु धम्मेनेव चक्कं वत्तेति। तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं केनचि मनुस्सभूतेन पच्चत्थिकेन पाणिना।

"एवमेव खो, भिक्खु, तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मिको धम्मराजा धम्मंयेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहति कायकम्मस्मिं—'एवरूपं कायकम्मं सेवितब्बं, एवरूपं कायकम्मं न सेवितब्बं' ति।

"पुन च परं, भिक्खु, तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मिको धम्मराजा धम्मंयेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहति वचीकम्मस्मिं—'एवरूपं वचीकम्मं सेवितब्बं, एवरूपं वचीकम्मं न सेवितब्बं' ति ...पे०... मनोकम्मस्मिं—'एवरूपं मनोकम्मं सेवितब्बं, एवरूपं मनोकम्मं न सेवितब्बं' ति।"

[B.109] "स खो सो, भिक्खु, तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मिको धम्मराजा धम्मंयेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गुरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहित्वा कायकम्मस्मिं, धम्मिकं ...पे०... वचीकम्मस्मिं, धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहित्वा मनोकम्मस्मिं, धम्मेनेव अनुत्तरं [N.102] धम्मचक्कं पवत्तेति। तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं" ति॥

५. सचेतनसुत्तं : एकं समयं भगवा बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्च-

---

अपना शासन चलाता है। तब उस धर्मसम्मत शासनचक्र को कोई भी बलवान् से बलवान् उसका शत्रु या अन्य प्राणी उलट नहीं सकता।

"इसी प्रकार, भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भी धर्मपूर्वक राज्य करनेवाले 'धर्मराज' हैं। जो कि धर्म का आलम्बन कर... अपने शरीर की रक्षार्थ कवच बना लेते हैं कि ऐसा कायिक कर्म करना चाहिये तथा ऐसा कायिक कर्म नहीं करना चाहिये।

"इसी प्रकार भिक्षु! तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ...पूर्ववत्... ऐसा वाचसिक कर्म करना चाहिये, ऐसा वाचसिक कर्म नहीं करना चाहिये...पूर्ववत्... ऐसा मानसिक कर्म करना चाहिये, ऐसा मानसिक कर्म नहीं करना चाहिये।

"भिक्षु! वे धार्मिक धर्मराज तथागत धर्म का आलम्बन कर ...पूर्ववत्... कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों पर यह धर्मरक्षावरणगुप्ति (कवच) बनाकर अपना ऐसा धर्मचक्र प्रवर्तित करते हैं जो इस लोक में किसी अन्य श्रमण, ब्राह्मण, देवता, मार या ब्रह्मा द्वारा प्रतिवर्तित नहीं किया जा सकता॥"

●

५. सचेतनसूत्र : : त्रिविध पुद्गल

एक समय भगवान् (बुद्ध) वाराणसी के ऋषिपत्तन मृगदाव में साधनाहेतु विराजमान थे।

स्सोसुं। भगवा एतदवोच—"भूतपुब्बं, भिक्खवे, राजा अहोसि सचेतनो नाम। अथ खो, भिक्खवे, राजा सचेतनो रथकारं आमन्तेसि—'इतो मे, सम्म रथकार, छन्नं मासानं अच्चयेन सङ्गामो भविस्सति। सक्खिस्ससि मे, सम्म रथकार, नवं चक्कयुगं कातुं' ति? 'सक्कोमि देवा' ति खो, भिक्खवे, रथकारो रञ्ञो सचेतनस्स पच्चस्सोसि। अथ खो, भिक्खवे, रथकारो छहि मासेहि छारत्तूनेहि एकं निट्ठापेसि। अथ खो, भिक्खवे, राजा सचेतनो रथकारं आमन्तेसि—'इतो मे, सम्म रथकार, छन्नं दिवसानं अच्चयेन सङ्गामो भविस्सति, निट्ठितं नवं चक्कयुगं' ति?' 'इमेहि खो, देव, छहि मासेहि छारत्तूनेहि एकं चक्कं निट्ठितं' ति।

'सक्खिस्ससि पन मे, सम्मरथकार, इमेहि छहि दिवसेहि दुतियं चक्कं निट्ठापेतुं' ति? 'सक्कोमि देवा' ति खो भिक्खवे, रथकारो छहि दिवसेहि दुतियं चक्कं निट्ठापेत्वा नवं चक्कयुगं आदाय येन राजा सचेतनो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा राजानं सचेतनं एतदवोच—'इदं ते, देव, नवं चक्कयुगं निट्ठितं' ति।

'यञ्च ते इदं, सम्म रथकार, चक्कं छहि मासेहि निट्ठितं छारत्तूनेहि यञ्च ते इदं चक्कं छहि दिवसेहि निट्ठितं, इमेसं कि नानाकरणं? नेसाहं किञ्चि नानाकरणं पस्सामी' ति? 'अत्थेसं, देव, नानाकरणं। पस्सतु देवो नानाकरणं' ति।

"अथ खो, भिक्खवे, रथकारो यं तं चक्कं छहि दिवसेहि निट्ठितं तं [B.110] पवत्तेसि। तं पवत्तितं समानं यावतिका अभिसङ्खारस्स गति तावतिकं गन्त्वा [R.112] चिङ्गुलायित्वा भूमियं पपति। यं पन तं चक्कं छहि मासेहि निट्ठितं छारत्तूनेहि तं पवत्तेसि। तं पवत्तितं समानं यावतिका अभिसङ्खारस्स गति तावतिकं गन्त्वा अक्खाहतं मञ्ञे अट्ठासि।

यहाँ भगवान् ने ...पूर्ववत्...। भगवान् यह बोले—"भिक्षुओ! पहले कभी मैं सचेतन नामक राजा हुआ था। तब, भिक्षुओ! उस सचेतन राजा ने रथकार (बढ़ई=खाती) को बुलाकर कहा—'रथकार आज से छह मास बाद मेरा (किसी से) युद्ध होगा। क्या, सौम्य रथकार! तुम (मेरे रथ के) दोनों पहिये (चक्र) नये बना सकते हो?'' 'देव! अवश्य बना सकता हूँ'—रथकार ने राजा को यह उत्तर दिया। तब, भिक्षुओ! उस रथकार ने छह मास में छह रात्रि कम रहते ही एक पहिया बनाया। उसी समय राजा ने रथकार को बुलाया और पूछा—'सौम्य रथकार.. क्या रथ के दोनों पहिये बनाये?' 'नहीं, देव! अभी तो एक ही पहिया बना है।' 'अरे! क्या शेष छह दिनों में एक पहिया बना सकोगे?' 'हाँ, देव! बना सकूँगा'—कहकर उस ने शेष छह दिनों में दूसरा पहिया भी बना दिया। तथा बनाने के बाद वह दोनों पहिये लेकर, राजा के पास गया तथा यों बोला—'देव! ये दोनों पहिये बन गये हैं।'

" 'तुमने, सौम्य रथकार, यह जो छह रात्रि कम छह मास में पहला पहिया बनाया, तथा दूसरा केवल छह दिन में बना दिया, इनमें क्या विशेषता है? मुझे तो इन दोनों में कोई अन्तर नहीं ज्ञात होता?' 'देव! इनमें अन्तर है। श्रीमान् स्वयं, इस अन्तर को समझ लेंगे।'

"तब, भिक्षुओ! इस रथकार ने पहले उस पहिये को घुमाया, जो छह दिन में बनाया था। वह वेग के साथ घूमकर रुकते ही एक तरफ भूमि पर गिर गया। फिर उसने उस पहिये को घुमाया जो छह मास में बनाया था। वह घूमने के साथ, जितनी दूर जा सकता था जाकर खड़ा ही रह गया।

[N.103] 'को नु खो, सम्म रथकार, हेतु को पच्चयो यमिदं चक्कं छहि दिवसेहि निट्ठितं तं पवत्तितं समानं यावतिका अभिसङ्खारस्स गति तावतिकं गन्त्वा चिङ्गुलायित्वा भूमियं पपति? को पन, सम्म रथकार, हेतु को पच्चयो यमिदं चक्कं छहि मासेहि निट्ठितं छारत्तूनेहि तं पवत्तितं समानं यावतिका अभिसङ्खारस्स गति तावतिकं गन्त्वा अक्खाहतं मञ्ञे अट्ठासी' ति?

'यमिदं, देव, चक्कं छहि दिवसेहि निट्ठितं तस्स नेमि पि सवङ्का सदोसा सकसावा, अरा पि सवङ्का सदोसा सकसावा, नाभि पि सवङ्का सदोसा सकसावा। तं नेमिया पि सवङ्कत्ता सदोसत्ता सकसावत्ता, अरानं पि सवङ्कता सदोसत्ता सकसावत्ता, नाभिया पि सवङ्कत्ता सदोसत्ता सकसावत्ता पवत्तितं समानं यावतिका अभिसङ्खारस्स गति तावतिकं गन्त्वा चिङ्गुलायित्वा भूमियं पपति। यं पन तं, देव, चक्कं छहि मासेहि निट्ठितं छारत्तूनेहि तस्स नेमि पि अवङ्का अदोसा अकसावा, अरा पि अवङ्का अदोसा अकसावा, नाभि पि अवङ्का अदोसा अकसावा। तं नेमिया पि अवङ्कत्ता अदोसत्ता अकसावत्ता, अरानं पि अवङ्कत्ता अदोसत्ता अकसावत्ता, नाभिया पि अवङ्कत्ता अदोसत्ता अकसावत्ता पवत्तितं समानं यावतिका अभिसङ्खारस्स गति तावतिकं गन्त्वा अक्खाहतं मञ्ञे अट्ठासी' ति।

''सिया खो पन, भिक्खवे, तुम्हाकं एवमस्स—'अञ्ञो नून तेन समयेन सो रथकारो अहोसी' ति! न खो पनेतं, भिक्खवे, एवं दट्ठब्बं। अहं तेन समयेन सो रथकारो अहोसिं। तदाहं, भिक्खवे, कुसलो दारुवङ्कानं दारुदोसानं दारुकसावानं। एतरहि खो पनाहं, भिक्खवे, [B.111] अरहं सम्मासम्बुद्धो कुसलो कायवङ्कानं कायदोसानं कायकसावानं, कुसलो वचीवङ्कानं वचीदोसानं वचीकसावानं, कुसलो मनोवङ्कानं मनोदोसानं मनोकसावानं। यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा कायवङ्को अप्पहीनो कायदोसो [R.113] कायकसावो, वचीवङ्को अप्पहीनो वचीदोसो वचीकसावो, मनोवङ्को अप्पहीनो

(तब राजा ने पूछा—) 'सौम्य रथकार! क्या कारण है कि यह छह दिन में बनाया हुआ पहिया... भूमि पर गिर गया तथा दूसरा छह मास में बनाया हुआ पहिया... खड़ा रहा?'

'' 'देव! छह दिन में बने हुए पहिये की नेमि, अर तथा नाभि—सभी कुछ टेढ़े, सदोष तथा विकारयुक्त थे, अत: यह... भूमि पर गिर गया तथा छह मास में बने हुए पहिये के, देव! नेमि, नाभि तथा अर—सभी कुछ सीधे, निर्दोष एवं विकाररहित थे। अत:... यह इतनी तीव्र गति से घूमकर भी अन्त में रुकने पर सीधा खड़ा रह गया'।

''हो सकता है, भिक्षुओ! तुम्हें यह विचार हो कि उस समय कोई अन्य ही रथकार था जिसके चातुर्य की मैं प्रशंसा कर रहा हूँ। परन्तु, भिक्षुओ! मैं ही उस समय यह रथकार था। तब मैं काष्ठ के टेढ़ेपन (वङ्किमा) को, दोषों को तथा विकारों को भलीभाँति जानता था। आज मैं, भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध होकर अपने कौशल से काय, वाक् एवं मन के टेढ़ेपन को, दोषों को, विकारों को भलीभाँति जानता हूँ। भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी का काय, वाक् एवं मन

मनोदोसो मनोकसावो, एवं पपतिता ते, भिक्खवे, इमस्मा धम्मविनया, सेय्यथापि तं चक्कं छहि दिवसेहि निट्ठितं।

''यस्स कस्सचि, भिक्खवे, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा कायवङ्को [N.104] पहीनो कायदोसो कायकसावो, वचीवङ्को पहीनो वचीदोसो वचीकसावो, मनोवङ्को पहीनो मनोदोसो मनोकसावो, एवं पतिट्ठिता ते, भिक्खवे, इमस्मिं धम्मविनये, सेय्यथापि तं चक्कं छहि मासेहि निट्ठितं छारत्तूनेहि।

''तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'कायवङ्कं पजहिस्साम कायदोसं कायकसावं, वचीवङ्कं पजहिस्साम वचीदोसं वचीकसावं, मनोवङ्कं पजहिस्साम मनोदोसं मनोकसावं' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

६. **अपण्णकसुत्तं :** ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अपण्णकपटिपदं पटिपन्नो होति, योनि चस्स आरद्धा होति आसवानं खयाय। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति, भोजने मत्तञ्ञू होति, जागरियमनुयुत्तो होति।

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खू चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुव्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा ... घानेन

को टेढ़ापन, दोष या विकार नष्ट नहीं हुआ तो समझ लो कि वे इस (मेरे) धर्मानुशासन से वैसे ही च्युत हो गये, जैसे वह छह दिन में बना रथ का पहिया गिर गया था।

(परन्तु) ''भिक्षुओ! जिस भिक्षु या भिक्षुणी के काय, वाक् या मन का टेढ़ापन, दोष तथा विकार नष्ट हो चुके हैं उनकी प्रतिष्ठा लोक में वैसे ही बनी रहेगी जैसे वह छह रात्रि कम छह मास में बना रथ का पहिया, अपनी गति की समाप्ति के बाद यथास्थान स्थिर रह गया था।

''इसलिये, भिक्षुओ! तुम्हे यह सीखना चाहिये—'हम अपने काया, वाक् एवं मन के टेढ़ेपन को, दोषों को, विकारों को सर्वथा त्याग देंगे।' भिक्षुओ! तुम्हें यही सीखना चाहिये॥''●

६. अपर्णकसूत्र : : त्रिविध पुरुष ही संशयरहित

''भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त पुरुष संशयरहित (अपर्णक) मार्ग पर आरूढ़ हो सकता है तथा इसके अभ्यास का मूल (योनि) भी आश्रवों के क्षय हेतु आरम्भ हो सकता है। कौन से तीन? भिक्षुओ! जो भिक्षु—१. अपनी इन्द्रियों पर संयम रखता है, २. अपने भोजन की मात्रा जानता है तथा ३. सतत जाग्रत् रहता है।

''भिक्षुओ! कैसे कोई भिक्षु इन्द्रियों पर संयम रख सकता है? भिक्षुओ! कोई भिक्षु रूप (के विषयों) को देखकर उसके भ्रामक निमित्त एवं चाकचिक्य (चकाचौंध) के जाल में नहीं फँसता है। इस असंगत चक्षुरिन्द्रिय को आधार मानकर विहरण करने वाले उसकी इन्द्रिय को पापमय अकुशल धर्म अपना आवास न बना लें एतदर्थ भिक्षु को अपनी चक्षुरिन्द्रिय पर संवरण (नियन्त्रण)

[B.112] गन्धं घायित्वा... जिव्हाय रसं सायित्वा... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा... मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति।

[R.114] ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु भोजने मत्तञ्ञू होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु पटिसङ्खा योनिसो आहारं आहारेति—'नेव दवाय न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय, यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुग्गहाय, इति पुराणं च वेदनं [N.105] पटिहङ्खामि, नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति अनवज्जता च फासुविहारो चा' ति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु भोजने मत्तञ्ञू होति।

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु जागरियं अनुयुत्तो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु दिवसं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति, रत्तिया पठमं यामं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति, रत्तिया मज्झिमं यामं दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेति पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनसि करित्वा, रत्तिया पच्छिमं यामं पच्चुट्ठाय चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु जागरियं अनुयुत्तो होति।

करना चाहिये। उसकी उनसे रक्षा करनी चाहिये, संयम करना चाहिये। श्रोत्र से शब्द सुनकर... घ्राण से गन्ध सूँघकर... रसना से स्वाद चखकर... शरीर से स्प्रष्टव्य विषय का स्पर्श कर... मन से धर्मों को जानकर उनके भ्रामक निमित्त ...पूर्ववत्... मन की उनसे रक्षा करनी चाहिये, संयम करना चाहिये। (१)

''कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु भोजन की मात्रा का जाननेवाला हो सकता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु विचार कर आहार (भोजन) ग्रहण करता है; न कामक्रीड़ा के लिये, न मद के लिये, न शरीर के मण्डन (अलङ्करण) के लिये, न उसके विभूषण (साज-सज्जा) के लिये; जितने भोजन की मात्रा से इस शरीर का निर्वाह हो जाय, हिंसा से दूर रहने के लिये, धर्मसाधना में उसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए ही उस (आहार) को ग्रहण करता है। तथा उस समय यह चिन्तन करते रहता है कि मैं पुरानी वेदनाओं को जानता रहूँ, नयी वेदनाएँ उत्पन्न न होने दूँ, तथा मेरा शरीरनिर्वाह भी भलीभाँति होता रहे। इस तरह इस साधक की अनवद्यता (निर्दोषता) भी सुरक्षित रहेगी तथा इसकी धर्मसाधना भी सुखपूर्वक होती रहेगी। यह हुआ—'मात्राज्ञ'। (२)

''भिक्षुओ! कैसे कोई भिक्षु साधना में उचित जागरण से युक्त होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु समस्त दिन चंक्रमण या सुखासन से बैठकर साधनारत रहता हुआ आवरणीय धर्मों से चित्त की रक्षा करता रहे। तथा रात्रि के प्रथम प्रहर में भी चंक्रमण...पूर्ववत्...। रात्रि के मध्यम प्रहर में दक्षिण पार्श्व से 'सिंहशय्या' आसन से वाम जानु पर दक्षिण पैर रखकर लेटता हुआ स्मृति एवं सम्प्रजन्य से युक्त रहता हुआ, उत्थानसंज्ञा का मन में चिन्तन करता रहे। तथा रात्रि के पश्चिम

''इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अपण्णकपटिपदे पटिपन्नो होति, योनि चस्स आरद्धा होति आसवानं खयाया'' ति॥ ●

७. **अत्तब्याबाधसुत्तं :** ''तयोमे, भिक्खवे, धम्मा अत्तब्याबाधाय पि संवत्तन्ति, परब्याबाधाय पि संवत्तन्ति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तन्ति। कतमे तयो? कायदुच्चरितं, वचीदुच्चरितं, मनोदुच्चरितं। इमे खो, भिक्खवे, तयो धम्मा अत्तब्याबाधाय पि संवत्तन्ति, परब्याबाधाय पि संवत्तन्ति, उभयब्याबाधाय पि संवत्तन्ति।

''तयोमे, भिक्खवे, धम्मा नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तन्ति, न परब्याबाधाय पि संवत्तन्ति, न उभयब्याबाधाय पि संवत्तन्ति। कतमे तयो? कायसुचरितं, वचीसुचरितं, मनोसुचरितं। इमे खो, भिक्खवे, तयो धम्मा नेवत्तब्याबाधाय पि संवत्तन्ति, न [B.113] परब्याबाधाय पि संवत्तन्ति, न उभयब्याबाधाय पि संवत्तन्ती'' ति॥ ●

८. **देवलोकसुत्तं :** ''सचे वो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं [R.115] पुच्छेय्युं—'देवलोकूपपत्तिया, आवुसो, समणे गोतमे ब्रह्मचरियं वुस्सथा' ति? ननु तुम्हे, भिक्खवे, एवं पुट्ठा अट्टीयेय्याथ हरायेय्याथ जिगुच्छेय्याथा'' ति? ''एवं, भन्ते''।

''इति किर तुम्हे, भिक्खवे, दिब्बेन आयुना अट्टीयथ हरायथ जिगुच्छथ, दिब्बेन वण्णेन दिब्बेन सुखेन दिब्बेन यसेन दिब्बेनाधिपतेय्येन अट्टीयथ हरायथ जिगुच्छथ; [N.106] पगेव खो पन, भिक्खवे, तुम्हेहि कायदुच्चरितेन अट्टीयितब्बं हरायितब्बं जिगुच्छितब्बं, वचीदुच्चरितेन ... मनोदुच्चरितेन अट्टीयितब्बं हरायितब्बं जिगुच्छितब्बं'' ति॥ ●

(अन्तिम) प्रहर में शय्याशन के उठकर चंक्रमण या सुखासन (निषद्या) द्वारा आवरणीय धर्मों से स्वकीय चित्त की रक्षा करे। यह जागरणसाधना कहलाती है। (३)

इस तरह, भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु संशयरहित (असन्दिग्ध) साधना मार्ग पर आरूढ होता है। इस तरह इस धर्मसाधना का मूल भी आश्रवक्षयहेतु आरम्भ किया जा सकता है॥'' ●

७. आत्मव्याबाधसूत्र : : सङ्कटकारक तीन धर्म

''भिक्षुओ! ये तीन धर्म आत्मसङ्कट, परसङ्कट तथा आत्म एवं पर—उभयसङ्कट के लिये होते हैं। कौन से तीन? कायिक दुराचार, वाचसिक दुराचार एवं मानसिक दुराचार। ये तीन धर्म, भिक्षुओ! ...पूर्ववत्...। फिर, भिक्षुओ! ये तीन धर्म न आत्मसङ्कट, न परसङ्कट न आत्म एवं पर—उभयसङ्कट के लिये होते हैं। कौन तीन? कायिक सदाचार... मानसिक सदाचार। भिक्षुओ! ये तीन धर्म ...पूर्ववत्... आत्म एवं पर-उभयसङ्कट के लिये होते हैं॥'' ●

८. देवलोकसूत्र : : त्रिविध दुःख

''भिक्षुओ! यदि दूसरे सम्प्रदायों के परिव्राजक तुमसे यह पूछें—'आयुष्मानो! क्या तुम लोग देवलोक में उत्पत्ति के लक्ष्य से श्रमण गौतम द्वारा उपदिष्ट धर्म की साधना करते हो?' क्या ऐसा प्रश्न किये जाने पर तुम दुःखी, हैरान एवं परेशान होते हो?'' ''हाँ भन्ते!''

९. पठमपापणिकसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे, अङ्गेहि सम्पन्नागतो पापणिको अभब्बो अनधिगतं वा भोगं अधिगन्तुं, अधिगतं वा भोगं फातिं कातुं। कतमेहि तीहि ? इध, भिक्खवे, पापणिको पुब्बण्हसमयं न सक्कच्चं कम्मन्तं अधिट्ठाति, मज्झन्हिकसमयं न सक्कच्चं कम्मन्तं अधिट्ठाति, सायन्हसमयं न सक्कच्चं कम्मन्तं अधिट्ठाति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो पापणिको अभब्बो अनधिगतं वा भोगं अधिगन्तुं, अधिगतं वा भोगं फातिं कातुं।

''एवमेव खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अभब्बो अनधिगतं वा कुसलं धम्मं अधिगन्तुं, अधिगतं वा कुसलं धम्मं फातिं कातुं। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु पुब्बण्हसमयं न सक्कच्चं समाधिनिमित्तं अधिट्ठाति, मज्झन्हिकसमयं न सक्कच्चं समाधिनिमित्तं अधिट्ठाति, सायन्हसमयं न सक्कच्चं समाधिनिमित्तं अधिट्ठाति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अभब्बो अनधिगतं वा कुसलं धम्मं अधिगन्तुं, अधिगतं वा कुसलं धम्मं फातिं कातुं।

[B.114, R.116] ''तीहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो पापणिको भब्बो अनधिगतं वा भोगं अधिगन्तुं, अधिगतं वा भोगं फातिं कातुं। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, पापणिको पुब्बण्हसमयं सक्कच्चं कम्मन्तं अधिट्ठाति। मज्झन्हिकसमयं ...पे०... सायन्हसमयं सक्कच्चं कम्मन्तं अधिट्ठाति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो पापणिको भब्बो अनधिगतं वा भोगं अधिगन्तुं, अधिगतं वा भोगं फातिं कातुं।

''तो तुम, भिक्षुओ ! दिव्य आयु, दिव्य वर्ण, दिव्य सुख एवं दिव्य यश तथा दिव्य आधिपत्य से दु:खी, हैरान, परेशान होते हो। भिक्षुओ ! तुम्हें इससे पूर्व अपने कायदुराचार, वाग्दुराचार एवं मनोदुराचार से दु:खी, हैरान, परेशान होना चाहिये॥''

●

९. प्रथम प्रापणिकसूत्र : : व्यापार के तीन अङ्ग

''भिक्षुओ ! तीन अङ्गों से युक्त व्यापारी (दुकानदार) अप्राप्त भोगों को प्राप्त करने में असमर्थ होता है तथा प्राप्त भोगों का उपयोग करने में असमर्थ होता है। कौन से तीन ? जो व्यापारी प्रात:काल अपना कार्य सावधानी से आरम्भ नहीं करता, जो व्यापारी मध्याह्न काल अपना व्यापार सावधानी से आरम्भ नहीं करता, सायङ्काल अपना व्यापार सावधानी से आरम्भ नहीं करता, ऐसा व्यापारी, भिक्षुओ ! इन तीन अङ्गों से युक्त होने के कारण अप्राप्त भोग प्राप्त नहीं कर पाता तथा प्राप्त भोगों का उपभोग नहीं कर पाता।

''इसी प्रकार, भिक्षुओ ! कोई भिक्षु इन तीन धर्मों से युक्त होने के कारण अप्राप्त कुशल धर्मों को प्राप्त नहीं कर पाता तथा प्राप्त कुशल धर्मों का विस्तार (वृद्धि) नहीं कर पाता। कौन से तीन ? जो, भिक्षुओ ! भिक्षु प्रात:काल... मध्याह्नकाल... सायङ्काल अपनी साधना सावधानीपूर्वक आरम्भ नहीं करता वह अप्राप्त कुशल धर्मों... प्राप्त कुशल धर्मों का विस्तार नहीं कर पाता।

''भिक्षुओ ! तीन अङ्गों से युक्त व्यापारी अप्राप्त भोगों को प्राप्त कर सकता है तथा प्राप्त भोगों का उपभोग (विस्तार) कर सकता है। कौन से तीन? यहाँ कोई व्यापारी प्रात:काल...

"एवमेव खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु भब्बो अनधिगतं वा कुसलं धम्मं अधिगन्तुं, अधिगतं वा कुसलं धम्मं फातिं कातुं। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु पुब्बण्हसमयं न सक्कच्चं समाधिनिमित्तं अधिट्ठाति, मज्झन्हिकसमयं ...पे०... सायन्हसमयं न सक्कच्चं समाधिनिमित्तं अधिट्ठाति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु भब्बो अनधिगतं वा कुसलं धम्मं अधिगन्तुं, अधिगतं [N.107] वा कुसलं धम्मं फातिं कातुं" ति॥

१०. दुतियपापणिकसुत्तं : "तीहि, भिक्खवे, अङ्गेहि सम्पन्नागतो पापणिको न चिरस्सेव महत्तं वेपुल्लत्तं पापुणाति भोगेसु। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, पापणिको चक्खुमा च होति विधुरो च निस्सयसम्पन्नो च। कथं च, भिक्खवे, पापणिको चक्खुमा होति? इध, भिक्खवे, पापणिको पणियं जानाति—'इदं पणियं एवं कीतं, एवं विक्कयमानं, एत्तकं मूलं भविस्सति, एत्तको उदयो' ति। एवं खो, भिक्खवे, पापणिको चक्खुमा होति। (१)

"कथं च, भिक्खवे, पापणिको विधुरो होति? इध, भिक्खवे, पापणिको कुसलो होति पणियं केतुं च विक्केतुं च। एवं खो, भिक्खवे, पापणिको विधुरो होति। (२)

"कथं च, भिक्खवे, पापणिको निस्सयसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, [R.117] पापणिकं ये ते गहपती वा गहपतिपुत्ता वा अड्ढा महद्धना महाभोगा ते एवं जानन्ति—'अयं खो भवं पापणिको चक्खुमा विधुरो च पटिबलो पुत्तदारं च पोसेतुं, अम्हाकं च [B.115]

मध्याह्नकाल... सायङ्काल अपना व्यापार सावधानीपूर्वक आरम्भ करता है वह अप्राप्त ...प्राप्त भोगों का विस्तार कर सकता है।

"इसी तरह, भिक्षुओ! कोई भिक्षु इन तीन धर्मों से युक्त होकर अप्राप्त कुशल धर्मों को प्राप्त एवं प्राप्त कुशल धर्मों में वृद्धि कर सकता है। कौन से तीन? वह भिक्षु पूर्वाह्न समय... मध्याह्न समय... सायङ्काल अपनी साधना सावधानीपूर्वक आरम्भ करता है वह अप्राप्त कुशल धर्मों को प्राप्त कर सकता है तथा प्राप्त कुशल धर्मों का विस्तार कर सकता है॥"

१०. द्वितीय प्रापणिकसूत्र : : तीन अङ्गों से युक्त व्यापार

"भिक्षुओ! तीन अङ्गों से युक्त व्यापारी शीघ्र ही अपने व्यापार में अतिशय विस्तार पा लेता है। किन तीन से? भिक्षुओ! यहाँ कोई व्यापार में समझदार (चक्षुष्मान्) होता है, विधुर (कुशल) होता है, तथा निःश्रयसम्पन्न होता है।

"कैसे, भिक्षुओ! कोई व्यापारी व्यापार में इतना समझदार होता है? वह जानता है कि यह वस्तु इतने में खरीदी जाय, इतने में बेची जाय, इससे इतना मूलधन निकल आयगा, इतना लाभ मिल जायगा।

"कैसे, भिक्षुओ! वह व्यापारी 'विधुर' (कुशल) होता है? वह वस्तु के बेचने एवं खरीदने में ऐसा कुशल होता है कि उसकी समानता कोई नहीं कर पाता, अतः वह 'विधुर' कहलाता है।

कालेन कालं अनुप्पदातुं' ति। ते नं भोगेहि निपतन्ति—'इतो, सम्म पापणिक, भोगे करित्वा पुत्तदारं च पोसेहि, अम्हाकं च कालेन कालं अनुप्पदेही' ति। एवं खो, भिक्खवे, पापणिको निस्सयसम्पन्नो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो पापणिको नचिरस्सेव महत्तं वेपुल्लत्तं पापुणाति भोगेसु। (३) (क)

''एवमेव खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु न चिरस्सेव महत्तं वेपुल्लत्तं पापुणाति कुसलेसु धम्मेसु। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुमा च होति विधुरो च निस्सयसम्पन्नो च। कथं च, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुमा होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुमा होति। (१)

[N.108] ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु विधुरो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु विधुरो होति। (२)

''कथं च, भिक्खवे भिक्खु निस्सयसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु ये ते भिक्खू बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा ते कालेन कालं उपसङ्कमित्वा

''कैसे, भिक्षुओ! वह व्यापारी नि:श्रय (आश्रय) सम्पन्न होता है? यहाँ, भिक्षुओ! उस व्यापारी को वहाँ के अन्य व्यापारी यों जानते हैं कि यह व्यापारी स्वयं इस व्यापार से अपने परिवार का पालन-पोषण कर लेता है तथा अपने व्यापार में वृद्धि भी करता है, अत: उसके व्यापार में अपना धन भी लगा देते हैं और कहते हैं—'भो सौम्य! हमारे इस धन से अपने बाल बच्चों का पोषण करिये तथा समय समय पर हमें भी इसका कुछ लाभ देते रहिये।' इस तरह, भिक्षुओ! इन तीन अङ्गों से युक्त वह व्यापारी शीघ्र ही अपने व्यापार में अतिशय विस्तार कर लेता है। (क)

''इसी तरह, भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त साधक भिक्षु भी अपनी साधना में शीघ्र ही अतिशय वृद्धि कर लेता है। किन तीन अङ्गों से? यहाँ, भिक्षुओ! १. कोई साधक भिक्षु इतना समझदार होता है, २. इतना अनुपम एकाकी साधक होता है, तथा ३. नि:श्रयसम्पन्न होता है।

कैसे, भिक्षुओ! वह समझदार होता है? वह जानता है कि यह दु:ख है... यह दु:खनिरोधगामी मार्ग है, इस प्रकार वह 'समझदार' कहलाता है। (१)

''कैसे, भिक्षुओ! वह साधक भिक्षु अनुपम एकाकी होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु अकुशल धर्मों के प्रहाण में, कुशल धर्मों के उत्पाद में अपनी पूर्ण शक्ति लगाता है, इस कार्य में अतिशय धैर्य एवं दृढ़ पराक्रम का आश्रय लेता है, वह इन कुशल धर्मों की साधना के बीच में ही जुआ फेंककर (साधना छोड़कर) दूर नहीं हट जाता। इस तरह भिक्षुओ! यह साधक 'अनुपम एकाकी' कहलाता है। (२)

''और, भिक्षुओ! कैसे वह भिक्षु 'निश्रयसम्पन्न' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! वह भिक्षु जो सङ्घ में अन्य बहुश्रुत, आगमों के ज्ञाता, धर्मधारी, विनयज्ञ, मातृकाओं के ज्ञाता स्थविर भिक्षु हों,

परिपुच्छति परिपञ्हति—'इदं, भन्ते, कथं, इमस्स को अत्थो' ति? तस्स ते आयस्मन्तो अविवटं चेव विवरन्ति, अनुत्तानीकतं च उत्तानीकरोन्ति, अनेकविहितेसु च कङ्खाठानियेसु धम्मेसु कङ्खं पटिविनोदेन्ति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु निस्सयसम्पन्नो होति। [R.118] इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो नचिरस्सेव महत्तं वेपुल्लत्तं पापुणाति कुसलेसु धम्मेसू'' ति॥ (३) (ख) ●

पठमभाणवारो निट्ठितो॥ रथकारवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

ञातो सारणीयो भिक्खु, चक्कवत्ती सचेतनो। [B.116]
अपण्णकत्ता देवो च, दुवे पापणिकेन चा ति॥ ●

३. पुग्गलवग्गो

१. समिद्धसुत्तं : एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मा च समिद्धो आयस्मा च महाकोट्ठिको येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं समिद्धं आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

''तयोमे, आवुसो समिद्ध, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो?

उनके पास जाकर धर्म के विषय में यह पूछता रहता है—'भन्ते! यह क्या है? तथा इसका क्या अर्थ है?' उस साधक को वे स्थविर उस धर्म का शास्त्रोचित विस्तार करते हैं, गूढ़ का रहस्यभेदन करते हैं, उसकी विविध शङ्काओं का समाधान करते हैं, उसके धर्मविषयक सन्देहों का निराकरण करते हैं। इस तरह, भिक्षुओ! वह भिक्षु 'निश्रयसम्पन्न' कहलाता है। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त वह भिक्षु शीघ्र अपनी इन कुशल धर्मों की साधना में अतिशय वृद्धि कर लेता है॥''

प्रथम भाणवार सम्पन्न॥ रथकारवर्ग द्वितीय सम्पन्न॥ ●

इल वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. ज्ञात, २. सारणीय, ३. भिक्षु, ४. चक्रवर्ती, ५. सचेतन, ६. अपर्णक, ७. आत्मब्याबाध, ८. देव, ९. प्रथम प्रापणिक, १०. द्वितीय प्रापणिकसूत्र॥ ●

३. पुद्गलवर्ग

१. समृद्ध सूत्र : : **त्रिविध पुद्गल**

ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित श्रावस्ती के जेतवनविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। तब आयुष्मान् समृद्ध एवं आयुष्मान् महाकौष्ठिक, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे, वहाँ गये। जाकर ...पूर्ववत्...। आयुष्मान् समृद्ध से आयुंष्मान् सारिपुत्र यों बोले—

कायसक्खि, दिट्ठिप्पत्तो, सद्धाविमुत्तो। इमे खो, आवुसो, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना [N.109] लोकस्मिं। इमेसं, आवुसो, तिण्णं पुग्गलानं कतमो ते पुग्गलो खमति अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा'' ति?

''तयोमे, आवुसो सारिपुत्त, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? कायसक्खि, दिट्ठिप्पत्तो, सद्धाविमुत्तो। इमे खो, आवुसो, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। इमेसं, आवसो, तिण्णं पुग्गलानं ग्वायं पुग्गलो सद्धाविमुत्तो, अयं मे पुग्गलो खमति इमेसं तिण्णं पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च। तं किस्स हेतु? इमस्स, आवुसो, पुग्गलस्स सद्धिन्द्रियं अधिमत्तं'' ति।

अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महोकोट्ठिकं एतदवोच—''तयोमे, आवुसो कोट्ठिक, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? कायसक्खि, दिट्ठिप्पत्तो, [B.117] सद्धाविमुत्तो। इमे खो, आवुसो, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। इमेसं, [R.119] आवुसो, तिण्णं पुग्गलानं कतमो ते पुग्गलो खमति अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा'' ति?

''तयोमे, आवुसो सारिपुत्त, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? कायसक्खि, दिट्ठिप्पत्तो, सद्धाविमुत्तो। इमे खो, आवुसो, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। इमेसं, आवुसो, तिण्णं पुग्गलानं ग्वायं पुग्गलो कायसक्खि, अयं मे पुग्गलो खमति इमेसं तिण्णं पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च। तं किस्स हेतु? इमस्स, आवुसो, पुग्गलस्स समाधिन्द्रियं अधिमत्तं'' ति।

अथ खो आयस्मा महाकोट्ठिको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—''तयोमे, आवुसो सारिपुत्त, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? कायसक्खि, दिट्ठिप्पत्तो, सद्धाविमुत्तो। इमे खो, आवुसो, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। इमेसं, आवुसो, तिण्णं पुग्गलानं कतमो ते पुग्गलो खमति अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा'' ति?

''आयुष्मन् समृद्ध! लोक में दो त्रिविध पुद्गल होते हैं। कौन से तीन? १. कायसाक्षी, २. दृष्टिप्राप्त एवं ३. श्रद्धाविमुक्त। आयुष्मन्! लोक में ये तीन पुद्गल होते हैं। आयुष्मन्! इनमें तुम किसको श्रेष्ठ एवं ज्योति:सम्पन्न समझते हो?''

आयुष्मन् सारिपुत्र!...पूर्ववत्... इन तीनों में तृतीय श्रद्धाविमुक्त पुद्गल ही मुझे श्रेष्ठ एवं ज्योति:सम्पन्न लगता है। क्योंकि इस पुद्गल की श्रद्धेन्द्रिय अतिवृद्ध होती है।''

तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने आयुष्मान् समृद्ध से किया गया उपर्युक्त प्रश्न ही आयुष्मान् महाकौष्ठिक से भी पूछा। आयुष्मान् महाकौष्ठिक ने बताया—

''आयुष्मन् सारिपुत्र!...पूर्ववत्... इन तीनों में मुझको कायसाक्षी (शरीर से सत्य का साक्षात्कर्ता) ही मुझे श्रेष्ठ लगता है; क्योंकि उसमें समाधीन्द्रिय की प्रबलता अपेक्षाकृत अधिक रहती है।''

तब आयुष्मान् महाकौष्ठिक ने उलट कर पुन: यही प्रश्न आयुष्मान् सारिपुत्र से पूछा। तब

तयोमे, आवुसो कोट्ठिक, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? कायसक्खि, दिट्ठिप्पत्तो, सद्धाविमुत्तो। इमे खो, आवुसो, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। इमेसं, आवुसो, तिण्णं पुग्गलानं य्वायं पुग्गलो दिट्ठिप्पत्तो, अयं मे पुग्गलो खमति इमेसं तिण्णं पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च। तं किस्स हेतु? इमस्स, [N.110] आवुसो, पुग्गलस्स पञ्ञिन्द्रियं अधिमत्तं'' ति।

अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं च समिद्धं आयस्मन्तं च महाकोट्ठिकं एतदवोच—''ब्याकतं खो, आवुसो, अम्हेहि सब्बेहेव यथासकं पटिभानं। आयामावुसो, येन भगवा तेनुपङ्कमिस्साम; उपसङ्कमित्वा भगवतो एतत्थं आरोचेस्साम। यथा नो भगवा ब्याकरिस्सति तथा नं धारेस्सामा'' ति। ''एवमावुसो'' ति खो आयस्मा च समिद्धो [B.118] आयस्मा च महाकोट्ठिको आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। अथ खो आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च समिद्धो आयस्मा च महाकोट्ठिको येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो [R.120] आयस्मा सारिपुत्तो यावतको अहोसि आयस्मता च समिद्धेन आयस्मता च महाकोट्ठिकेन सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं भगवतो आरोचेसि।

''न ख्वेत्थ, सारिपुत्त, सुकरं एकंसेन ब्याकातुं—'अयं इमेसं तिण्णं पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा' ति। ठानं हेतं, सारिपुत्त, विज्जति य्वायं पुग्गलो सद्धाविमुत्तो स्वास्स अरहत्ताय पटिपन्नो, य्वायं पुग्गलो कायसक्खि स्वास्स सकदागामी वा अनागामी वा, यो चायं पुग्गलो दिट्ठिप्पत्तो सोपस्स सकदागामी वा अनागामी वा।

''न ख्वेत्थ, सारिपुत्त, सुकरं एकंसेन ब्याकातुं—'अयं इमेसं तिण्णं पुग्गलानं

आयुष्मान् सारिपुत्र ने कहा—''आयुष्मन् कौष्ठिक! ...पूर्ववत्... इन तीनों में मुझको दृष्टिप्राप्त साधक ही श्रेष्ठ एवं उत्तम लगता है; क्योंकि इस दृष्टिप्राप्त साधक की प्रज्ञेन्द्रिय की प्रबलता अपेक्षाकृत अधिक रहती है।''

तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने आयुष्मान् समृद्ध एवं आयुष्मान् महाकौष्ठिक से यह कहा—''आयुष्मानो! प्रस्तुत प्रसङ्ग पर हम सबने अपना अपना मत बता दिया, अच्छा हो कि हम सब भगवान् के सम्मुख चलें तथा भगवान् जैसा इसका व्याख्यान उसे हम सब धारण कर लें।'' ''अच्छा, आयुष्मन्'' कहकर वे दोनों स्थविर आयुष्मान् सारिपुत्र के साथ भगवान् के सम्मुख पहुँचे...पूर्ववत्...। वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र ने तीनों स्थविरों में हुआ संवाद भगवान् को सुनाया। सुनकर भगवान् बोले—

''सारिपुत्र! यह बात एकान्ततः नहीं कही जा सकती कि इनमें से यह एक श्रेष्ठ या उत्तम है; क्योंकि सारिपुत्र! यह उचित ही है कि इनमें से यह 'श्रद्धाविमुक्त' पुद्गल अर्हत्त्व मार्ग पर आरूढ हो गया हो तथा कोई 'कायसाक्षी' भी सकृदागामी या अनागामी हो चुका हो, और कोई 'दृष्टिप्राप्त' भी सकृदागामी एवं अनागामी हो चुका हो।

अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा' ति। ठानं हेतं, सारिपुत्त, विज्जति य्वायं पुग्गलो कायसक्खि स्वास्स अरहत्ताय पटिपन्नो, य्वायं पुग्गलो सद्धाविमुत्तो स्वास्स सकदागामी वा अनागामी वा, यो चायं पुग्गलो दिट्ठिप्पत्तो सोपस्स सकदागामी वा अनागामी वा।

"न ख्वेत्थ, सारिपुत्त, सुकरं एकंसेन ब्याकातुं—'अयं इमेसं तिण्णं पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा' ति। ठानं हेतं, सारिपुत्त, विज्जति य्वायं पुग्गलो दिट्ठिप्पत्तो स्वास्स अरहत्ताय पटिपन्नो, य्वायं पुग्गलो सद्धाविमुत्तो स्वास्स सकदागामी वा अनागामी वा, यो चायं पुग्गलो कायसक्खि सोपस्स सकदागामी वा अनागामी वा।

"न ख्वेत्थ, सारिपुत्त, सुकरं एकंसेन ब्याकातुं—'अयं इमेसं तिण्णं पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा''' ति॥ ●

[N.111] **२. गिलानसुत्तं :** "तयोमे, भिक्खवे, गिलाना सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? इध, भिक्खवे, एकच्चो गिलानो लभन्तो वा सप्पायानि भोजनानि अलभन्तो वा [R.121] सप्पायानि भोजनानि, लभन्तो वा सप्पायानि भेसज्जानि अलभन्तो वा सप्पायानि [B.119] भेसज्जानि, लभन्तो वा पतिरूपं उपट्ठाकं अलभन्तो वा पतिरूपं उपट्ठाकं नेव वुट्ठाति तम्हा आबाधा।

"इध पन, भिक्खवे, एकच्चो गिलानो लभन्तो वा सप्पायानि भोजनानि अलभन्तो

"सारिपुत्र! यह बात इसलिये भी एकान्ततः नहीं कही जा सकती कि इनमें से यह एक श्रेष्ठ या उत्तम है; क्योंकि हो सकता है कोई 'कायसाक्षी' साधक अर्हत्त्व मार्ग पर आरूढ़ हो चुका हो, तथा कोई 'श्रद्धाविमुक्त' सकृदागामी या अनागामी ही रह गया हो, या फिर कोई 'दृष्टिविमुक्त' भी सकृदागामी या अनागामी ही रह गया हो।

"सारिपुत्र! इस प्रसङ्ग में एकान्ततः यह व्याख्यान करना सरल नहीं लगता कि इन तीनों पुद्गल साधकों में यही श्रेष्ठ एवं उत्तम है; क्योंकि, सारिपुत्र! हो सकता है कि कोई 'दृष्टिप्राप्त' साधक अर्हत्त्वपद पर आरूढ़ हो गया हो, 'श्रद्धाविमुक्त' सकृदागामी या अनागामी ही रह गया हो, या कायसाक्षी भी अभी सकृदागामी या अनागामी ही रह गया हो। अतः, सारिपुत्र! इस प्रसङ्ग में एकान्ततः यह कहना सरल नहीं है कि इन तीनों में कौन साधक श्रेष्ठ एवं उत्तम है॥" ●

२. ग्लानसूत्र : : त्रिविध रोगी

"भिक्षुओ! लोक में तीन प्रकार के रोगी मिलते हैं। १. किसी को अनुकूल भोजन मिल पाता है, किसी को नहीं; २. किसी को अनुकूल औषध मिल पाती है, किसी को नहीं; ३. किसी को अनुकूल परिचारक मिल पाता है, किसी को नहीं मिल पाता। अतः वह रोग से मुक्त नहीं हो पाता।

"यहाँ, भिक्षुओ! दूसरा कोई रोगी अनुकूल भोजन मिलने या न मिलने पर भी, अनुकूल औषध मिलने या न मिलने पर भी, अनुकूल परिचारक मिलने या न मिलने पर भी उस रोग से मुक्त हो जाता है।

"यहाँ, भिक्षुओ! जो रोगी अनुकूल भोजन मिलने पर ही, न कि प्रतिकूल भोजन मिलने

वा सप्पायानि भोजनानि, लभन्तो वा सप्पायानि भेसज्जानि अलभन्तो वा सप्पायानि भेसज्जानि, लभन्तो वा पतिरूपं उपट्ठाकं अलभन्तो वा पतिरूपं उपट्ठाकं वुट्ठाति तम्हा आबाधा।

"इध पन, भिक्खवे, एकच्चो गिलानो लभन्तो वा सप्पायानि भोजनानि नो अलभन्तो, लभन्तो व सप्पायानि भेसज्जानि नो अलभन्तो, लभन्तो व पतिरूपं उपट्ठाकं नो अलभन्तो वुट्ठाति तम्हा आबाधा।

"तत्र, भिक्खवे, य्वायं गिलानो लभन्तो व सप्पायानि भोजनानि नो अलभन्तो, लभन्तो व सप्पायानि भेसज्जानि नो अलभन्तो, लभन्तो व पतिरूपं उपट्ठाकं नो अलभन्तो वुट्ठाति तम्हा आबाधा, इमं खो, भिक्खवे, गिलानं पटिच्च गिलानभत्तं अनुञ्ञातं गिलानभेसज्जं अनुञ्ञातं गिलानुपट्ठाको अनुञ्ञातो। इमं च पन, भिक्खवे, गिलानं पटिच्च अञ्ञे पि गिलाना उपट्ठातब्बा। इमे खो, भिक्खवे, तयो गिलाना सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

"एवमेव खो, भिक्खवे, तयोमे गिलानूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लभन्तो वा तथागतं दस्सनाय अलभन्तो वा तथागतं दस्सनाय, लभन्तो व तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवनाय अलभन्तो वा तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवनाय नेव ओक्कमति नियामं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं।

"इध, पन भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लभन्तो वा तथागतं दस्सनाय अलभन्तो वा तथागतं दस्सनाय, लभन्तो वा तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवनाय अलभन्तो वा तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवनाय ओक्कमति नियामं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं।

पर...पूर्ववत्... न कि प्रतिकूल परिचारक मिलने पर उस रोग से मुक्त हो पाता है। इस रोगी को जो अनुकूल भोजन, अनुकूल औषध या अनुकूल परिचारक मिला है, ऐसे ही साधन अन्य रोगियों को भी मिलने चाहिये। इसी आधार पर अन्य रोगियों का भी उपचार होना चाहिये। भिक्षुओ! इस प्रकार ये तीन तरह के रोगी लोक में मिलते हैं।

"इसी प्रकार, भिक्षुओ! इस साधारण रोगी के समान ही तीन प्रकार के आध्यात्मिक पुद्गल भी होते हैं। कौन से तीन? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल तथागत के दर्शन मिलने पर या न मिलने पर, तथागतोपदिष्ट धर्म का श्रवण मिलने पर या न मिलने पर कुशल धर्मों की नियमित आराधना में प्रवेश नहीं कर पाता। (१)

"यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल तथागत के दर्शन मिलें या न मिलें, तथागतोपदिष्ट धर्मोपदेश सुन पाये या न सुन पाये वह कुशल धर्मों की नियमित आराधना में प्रवेश कर जाता है। (२)

"और, भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल तथागत का दर्शन पाकर ही, न कि तथागत का दर्शन न पाकर, तथागतोपदिष्ट धर्म का श्रवण करके, न कि उक्त धर्म का श्रवण न करने पर ही कुशल धर्मों की नियमित आराधना में प्रवेश कर पाता है। (३)

[N.112] ''इध, पन भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लभन्तो व तथागतं दस्सनाय नो अलभन्तो, लभन्तो व तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवनाय नो अलभन्तो ओक्कमति नियामं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं।

[B.120, R.122] ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो लभन्तो व तथागतं दस्सनाय नो अलभन्तो, लभन्तो व तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवनाय नो अलभन्तो ओक्कमति नियामं, कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं, इमं खो भिक्खवे, पुग्गलं पटिच्च धम्मदेसना अनुञ्ञाता। इमं च पन, भिक्खवे, पुग्गलं पटिच्च अञ्ञेसं पि धम्मो देसेतब्बो।

''इमे खो, भिक्खवे, तयो गिलानूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥●

३. सङ्खारसुत्तं : ''तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा सब्याबज्झं लोकं उपपज्जति। तमेनं सब्याबज्झं लोकं उपपन्नं समानं सब्याबज्झा फस्सा उपपज्जन्ति। सो सब्याबज्झेहि फस्सेहि फुट्ठो समानो सब्याबज्झं वेदनं वेदयति एकन्तदुक्खं, सेय्यथापि सत्ता नेरयिका।

''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, अब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, अब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो अव्याबज्झं कामसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, अब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, अब्याबज्झं

''भिक्षुओ! इन उपर्युक्त त्रिविध पुद्गलों में तृतीय पुद्गल जो तथागत का दर्शन पाकर तथा धर्मश्रवण कर ही कुशल धर्मों की आराधना में नियमित प्रवेश कर पाता है, इस तृतीय पुद्गल की अपेक्षा करके ही मेरी यह समस्त धर्मदेशना अनुज्ञात है। इसी पुद्गल के अनुसार, दूसरे साधारण जिज्ञासु साधकों को धर्मदेशना की जानी चाहिये। (३)

''भिक्षुओ! ये तीन पुद्गल भी साधारण रोगी के समान ही लोक में माने जाते हैं॥'' ●

३. संस्कारसूत्र : : त्रिविध संस्कार

''भिक्षुओ! लोक में तीन प्रकार के पुद्गल हैं। कौन से तीन? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल दुःखसहित कायसंस्कारों की... वाक्संस्कारों की... मनःसंस्कारों की रचना करता है। वह इन त्रिविध संस्कारों की रचना के कारण दुःखमय लोक में उत्पन्न होता है। इस लोक में उत्पन्न हुए ऐसे उस पुद्गल को दुःखमय स्पर्शों का स्पर्श होता है वह इस तरह के दुःखमय स्पर्शों से स्पृष्ट होकर दुःखमय वेदनाओं का अनुभव करता है जो एकान्ततः दुःखदायी होती हैं, जैसी की नारकीय जीवों को अनुभव होती हैं। (१)

''भिक्षुओ! कोई पुद्गल दुःखरहित कायसंस्कारों की... वाक्संस्कारों की... मनःसंस्कारों की रचना कर दुःखरहित लोक में उत्पन्न होता है। वहाँ उत्पन्न हुए इसको सुखद स्पर्शजन्य विषयों का

मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा अब्याबज्झं लोकं उपपज्जति। तमेनं अब्याबज्झं लोकं उपपन्नं समानं अब्याबज्झा फस्सा फुस्सन्ति। सो अब्याब्जझेहि फस्सेहि फुट्ठो समानो अब्याबज्झं वेदनं वेदयति एकन्तसुखं, सेय्यथापि देवा सुभकिण्हा।

''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि [N.113] कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं [R.123] पि लोकं उपपज्जति। तमेनं सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि लोकं उपपन्नं समानं [B.121] सब्याबज्झा पि अब्याबज्झा पि फस्सा फुसन्ति। सो सब्याबज्झेहि पि अब्याबज्झेहि पि फस्सेहि फुट्ठो समानो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वेदनं वेदयति वोकिण्णसुखदुक्खं, सेय्यथापि मनुस्सा एकच्चे च देवा एकच्चे च विनिपातिका। इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

४. **बहुकारसुत्तं :** ''तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला पुग्गलस्स बहुकारा। कतमे तयो? यं, भिक्खवे, पुग्गलं आगम्म पुग्गलो बुद्धं सरणं गतो होति, धम्मं सरणं गतो होति, सङ्घं सरणं गतो होति; अयं, भिक्खवे, पुग्गलो इमस्स पुग्गलस्स बहुकारो।

''पुन च परं, भिक्खवे, यं पुग्गलं आगम्म पुग्गलो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति,

---

स्पर्श होता है। इस स्पर्श से वह सुखमय वेदनाओं का अनुभव करता है, जो एकान्ततः सुखदायी होती हैं, जैसी कि शुभकृत्स्न देवता अनुभव करते हैं। (२)

''भिक्षुओ! परन्तु तीसरे प्रकार का पुद्गल दुःखमय एवं सुखमय—उभय प्रकार के कायसंस्कारों की... वाक्संस्कारों की... मनःसंस्कारों की रचना कर सुखदुःखमय लोक में उत्पन्न होता है। वहाँ उत्पन्न हुए इसको सुखमय एवं दुःखमय स्पृश्य विषयों के स्पर्श का अनुभव करता है। तदनन्तर इन ऐसे स्पर्शों से स्पृष्ट होती हुई दुःखमय एवं दुःखरहित वेदनाओं का अनुभव करता है। इन ऐसी मिश्रित वेदनाओं का वह वैसे ही अनुभव करता है जैसे कोई देवयोनि में उत्पन्न देवता या कोई हीनयोनि नरक आदि में पतित पुद्गल। भिक्षुओ! ऐसे ये तीन प्रकार के पुद्गल इस लोक में मिलते हैं॥'' (३) ●

४. बहुकारसूत्र : : त्रिशरणगत अतिशय सहायक

''भिक्षुओ! ये त्रिविध पुद्गल अन्य पुद्गलों के अतिशय सहायक होते हैं। कौन से तीन? जो पुद्गल बुद्ध की शरण में... धर्म की शरण में... सङ्घ की शरण में जा चुका है। इस प्रकार, भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल अन्य पुद्गलों का अतिशय सहायक होता है। (१)

जो पुद्गल 'यह दुःख है'... 'यह दुःखसमुदय है'... 'यह दुःखनिरोध है'... 'यह

'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति; अयं, भिक्खवे, पुग्गलो इमस्स पुग्गलस्स बहुकारो।

"पुन च परं, भिक्खवे, यं पुग्गलं आगम्म पुग्गलो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति; अयं, भिक्खवे, पुग्गलो इमस्स पुग्गलस्स बहुकारो। इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला पुग्गलस्स बहुकारा।

"इमेहि च पन, भिक्खवे, तीहि पुग्गलेहि इमस्स पुग्गलस्स नत्थञ्ञो पुग्गलो बहुकारो ति वदामि। इमेसं पन, भिक्खवे, तिण्णं पुग्गलानं इमिना पुग्गलेन न सुप्पतिकारं वदामि, यदिदं अभिवादनपच्चुट्ठानअञ्जलिकम्मसामीचिकम्मचीवरपिण्डपातसेनासन-गिलानपच्चयभेसज्जपरिक्खारानुप्पदानेना" ति॥ ●

५. **वजिरूपमसुत्तं :** "तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। [R.124] कतमे तयो? अरुकूपमचित्तो पुग्गलो, विज्जूपमचित्तो पुग्गलो, वजिरूपमचित्तो [N.114] पुग्गलो। कतमो च, भिक्खवे, अरुकूपमचित्तो पुग्गलो? इध, भिक्खवे, एकच्चो [B.122] पुग्गलो कोधनो होति उपायासबहुलो अप्पं पि वुत्तो समानो अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सेय्यथापि, भिक्खवे, दुट्ठारुको कट्ठेन वा कठलाय वा घट्टितो भिय्योसोमत्ताय आसवं देति; एवमेव खो, भिक्खवे,

---

दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—इसको यथार्थतः जानता है; भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल भी अन्य पुद्गलों का बहुत उपकारक होता है। (२)

"पुनश्च, भिक्षुओ! जो पुद्गल आश्रवों को क्षीण कर अनाश्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को प्रत्यक्षतः स्वयं जानकर, साक्षात् कर साधना में रत रहता है; भिक्षुओ! यह पुद्गल भी अन्य पुद्गलों की आध्यात्मिक साधना में बहुत सहायक हो सकता है। (३)

"भिक्षुओ! इन त्रिविध पुद्गलों से बढ़कर किसी साधनारत पुद्गल का अन्य कोई पुद्गल अतिशय सहायक नहीं हो सकता—ऐसी मेरी मान्यता है। इन तीनों पुद्गलों का यह साधक पुद्गल इतने ही कर्म से उपकार का बदला नहीं चुका सकता कि वह उनका, सामने आने पर अभिवादन, प्रत्युपस्थान, हाथ जोड़ना, मैत्रीपूर्ण व्यवहार, भोजनदान, शयनासन की व्यवस्था, रुग्णावस्था में ओषधादि का प्रबन्ध करता रहे॥" ●

५. **वज्रोपमसूत्र : : त्रिविध चित्त**

"भिक्षुओ! लोक में त्रिविध चित्तवाले पुरुष होते हैं। कौन से तीन? १. अरुकोपमचित्त, २. विद्युदुपमचित्त, एवं ३. वज्रोपमचित्त। इनमें कौन सा पुद्गल अरुकोपमचित्त वाला होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल क्रोधी होता है, अत्यधिक पश्चात्ताप करने वाला होता है, वह आकार में लघु होते हुए भी अत्यधिक आसक्ति, क्रोध, द्वेष एवं शत्रुता करनेवाला होता है। अतिशय क्रोध द्वेष एवं अविश्वास का उत्पादक होता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई सूखे काठ से बना हुआ तीखा कील अतिशय

इधेकच्चो पुग्गलो कोधनो होति उपायासबहुलो अप्पं पि वुत्तो समानो अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरुकूपमचित्तो पुग्गलो।

''कतमो च, भिक्खवे, विज्जूपमचित्तो पुग्गलो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। सेय्यथापि, भिक्खवे, चक्खुमा पुरिसो रत्तन्धकारतिमिसायं विज्जन्तरिकाय रूपानि पस्सेय्य; एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, विज्जूपमचित्तो पुग्गलो।

''कतमो च, भिक्खवे, वजिरूपमचित्तो पुग्गलो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। सेय्यथापि, भिक्खवे, वजिरस्स नत्थि किञ्चि अभेज्जं मणि वा पासाणो वा; एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो आसवानं खया ...पे०... उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, वजिरूपमचित्तो पुग्गलो।

''इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

६. **सेवितब्बसुत्तं :** ''तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

दुःखदायी होता है; उसी प्रकार, भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल क्रोधी एवं पश्चात्तापदायक एवं छोटा होते हुए भी अतिशय आसक्ति, क्रोध, द्वेष एवं शत्रुता तथा अविश्वास का आधायक होता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—**अरुकोपमचित्त पुद्गल**। (१)

''फिर, भिक्षुओ! विद्युदुपमचित्त पुद्गल कौन कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'यह दुःख है' ...पूर्ववत्... 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—ऐसा यथार्थतः जानता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई आँखोंवाला पुरुष अन्धकारमयी रात्रि में बिजली चमकने पर कोई रूप (आकृति) देख पावे; इसी प्रकार, भिक्षुओ! कोई पुरुष साधक 'यह दुःख है'... 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—ऐसा यथार्थ जान पाता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है, **विद्युदुपमचित्त पुद्गल**। (२)

तथा, भिक्षुओ! वज्रोपमचित्त पुद्गल कौन कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई साधक पुरुष आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को प्रत्यक्षतः स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर साधानारत रहता है। जैसे, भिक्षुओ! वज्र के लिये कोई अभेद्य (न छेदने योग्य) नहीं है, फिर भले ही वह कोई मणि हो, रत्न हो या सुदृढ़ पत्थर; इसी तरह, भिक्षुओ! आश्रवों के क्षय से...पूर्ववत्... साधनारत रहता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—**वज्रोपमचित्त पुद्गल**। (३)

भिक्षुओ! ऐसे तीन उपर्युक्त पुद्गल लोक में उपलब्ध होते हैं॥'' ●

६. सेवितव्यसूत्र : : त्रिविध सेवनीय, असेवनीय

''भिक्षुओ! यहाँ तीन प्रकार के पुद्गल होते हैं? कौन से तीन? प्रथम—जिस पुद्गल की न

कतमे तयो? अत्थि, भिक्खवे, पुग्गलो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो। [R.125] अत्थि, भिक्खवे, पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। अत्थि, भिक्खवे, पुग्गलो सक्कत्वा गरुं कत्वा सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। कतमो च, [B.123] भिक्खवे, पुग्गलो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो? इध, भिक्खवे, [N.115] एकच्चो पुग्गलो हीनो होति सीलेन समाधिना पञ्ञाय। एवरूपो भिक्खवे, पुग्गलो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो अञ्ञत्र अनुद्दया अञ्ञत्र अनुकम्पा।

''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सदिसो होति सीलेन समाधिना पञ्ञाय। एवरूपो, भिक्खवे, पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। तं किस्स हेतु? सीलसामञ्ञगतानं सतं सीलकथा च नो भविस्सति, सा च नो पवत्तिनी भविस्सति, सा च नो फासु भविस्सति। समाधिसामञ्ञगतानं सतं समाधिकथा च नो भविस्सति, सा च नो पवत्तिनी भविस्सति, सा च नो फासु भविस्सति। पञ्ञासामञ्ञगतानं सतं पञ्ञाकथा च नो भविस्सति, सा च नो पवत्तिनी भविस्सति, सा नो फासु भविस्सती ति। तस्मा एवरूपो पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो।

''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो सक्कत्वा गरुं कत्वा सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपा-

---

सेवा, न उसका गुणगान या न उपासना करनी चाहिये। द्वितीय—इस पुद्गल की सेवा, गुणगान तथा उपासना करनी चाहिये। तृतीय—ऐसे पुरुष का सत्कार करते हुए, उसको गौरव देते हुए उसकी सेवा, उसका गुणगान एवं उसकी उपासना करनी चाहिये।

किस पुरुष की, भिक्षुओ! सेवा... उपासना नहीं करनी चाहिये? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल शील, समाधि एवं प्रज्ञा से हीन (रहित) होता है। ऐसा पुद्गल सेवा, गुणगान एवं उपासना के योग्य नहीं होता। उस पर केवल कृपा या अनुकम्पा ही की जा सकती है। (१)

''और, भिक्षुओ! किस पुरुष की सेवा... उपासना करनी चाहिये? भिक्षुओ! जो पुद्गल साधक शील समाधि एवं प्रज्ञा में हमारे समान हो, भिक्षुओ! ऐसे पुरुष की सेवा... करनी चाहिये। वह किस कारण? वह इसलिये कि उसके साथ शीलश्रामण्य, समाधिश्रामण्य, एवं प्रज्ञाश्रामण्य प्राप्त सन्तों की शीलकथा, समाधिकथा एवं प्रज्ञाकथा हमें सुनने को मिलेगी, वे कथाएँ हमें साधनारत रहने में उत्साहवर्धन करेगी, इससे हमारी साधना में सरलता भी आयगी। अत: भिक्षुओ! ऐसे पुद्गल की सेवा, गुणगान तथा उपासना करनी चाहिये। (२)

तथा, भिक्षुओ! किस पुद्गल का सत्कार एवं गौरव कर सेवा, पूजा एवं उपासना करनी चाहिये? यहाँ भिक्षुओ! जो कोई पुद्गल शील, समाधि एवं प्रज्ञा में हमसे अधिक हो उसकी सेवा, पूजा एवं उपासना करनी चाहिये। वह क्यों? वह इसलिये कि वह पुद्गल सोचता है कि इनकी सेवा उपासना से मैं अपने अपूर्ण शीलस्कन्ध की साधना को पूर्ण कर सकूँगा या परिपूर्ण शीलस्कन्ध को वहाँ वहाँ प्रज्ञा से अनुगृहीत कर पाऊँगा; इसी तरह अपने अपूर्ण समाधिस्कन्ध को पूर्ण कर पाऊँगा या पूर्ण समाधिस्कन्ध को वहाँ वहाँ प्रज्ञा से अनुगृहीत कर पाऊँगा; या अपरिपूर्ण प्रज्ञास्कन्ध को पूर्ण

सितब्बो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अधिको होति सीलेन समाधिना पञ्ञाय। एवरूपो, भिक्खवे, पुग्गलो सक्कत्वा गरुं कत्वा सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। तं किस्स हेतु ? इति अपरिपूरं वा सीलक्खन्धं परिपूरेस्सामि, परिपूरं वा सीलक्खन्धं तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामि; अपरिपूरं वा समाधिक्खन्धं परिपूरेस्सामि, परिपूरं वा समाधिक्खन्धं तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामि; अपरिपूरं वा पञ्ञाक्खन्धं परिपूरेस्सामि, परिपूरं वा पञ्ञाक्खन्धं तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामी ति। तस्मा एवरूपो पुग्गलो सक्कत्वा गरुं कत्वा सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं ति।

''निहीयति पुरिसो निहीनसेवी, न च हायेथ कदाचि तुल्यसेवी। [R.126]
सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं, तस्मा अत्तनो उत्तरिं भजेथा'' ति। ●

७. जिगुच्छितब्बसुत्तं : ''तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना [B.124] लोकस्मिं। कतमे तयो ? अत्थि, भिक्खवे, पुग्गलो जिगुच्छितब्बो न सेवितब्बो न [N.116] भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो। अत्थि, भिक्खवे, पुग्गलो अज्झुपेक्खितब्बो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो। अत्थि, भिक्खवे, पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो जिगुच्छितब्बो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो असुचि सङ्कस्सरसमाचारो पटिच्छन्नकम्मन्तो, अस्समणो समणपटिञ्ञो, अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी-

---

कर पाऊँगा या परिपूर्ण प्रज्ञास्कन्ध को प्रज्ञा से अनुगृहीत कर पाऊँगा। अत: ऐसे पुद्गल का, सत्कार एवं गुरुभाव करते हुए, सेवा पूजा एवं उपासना करनी चाहिये। (३)

''यो, भिक्षुओ ! लोक में ये तीन पुद्गल होते हैं।

''इनमें हीनसाधनासेवी पुद्गल तो स्वयं हीन है, अत: उसकी सेवा, पूजा, उपासना नहीं करनी चाहिये। और समान साधक का कभी त्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि, अपने से श्रेष्ठ की सेवा, पूजा, उपासना करने से अपनी साधना में वृद्धि होती है अत: अपने से श्रेष्ठ साधक का सदा सत्कार, उसमें गुरुभाव एवं उसकी सेवा, पूजा तथा उपासना अवश्य करनी चाहिये॥'' ●

७. जुगुप्सितव्यसूत्र : : तीन घृणास्पद पुरुष

''भिक्षुओ ! लोक में ये तीन प्रकार के लोग विद्यमान हैं। कौन से तीन ? भिक्षुओ ! प्रथम पुद्गल ऐसा होता है कि उससे घृणा (अरुचि) ही रखनी चाहिये। उसकी सेवा पूजा या उपासना नहीं करनी चाहिये। दूसरा, भिक्षुओ ! पुद्गल ऐसा होता है जिसकी उपेक्षा ही करनी चाहिये। उसकी सेवा, पूजा या उपासना पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, भिक्षुओ ! एक तीसरे प्रकार का पुद्गल भी है, जिसकी सेवा पूजा तथा उपासना अवश्य करनी चाहिये।

''भिक्षुओ ! कौन सा पुद्गल घृणा करने योग्य है, तथा उसकी सेवा पूजा एवं उपासना नहीं करनी चाहिये ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई पुद्गल दुराचारी पापी एवं कूड़े करवट के समान चरित्र वाला होता है, वह चौरी-छिपे दुष्कर्म करता रहता है, चेष्टाओं से श्रमण नहीं लगता, धर्म का साधक नहीं

पटिञ्ञो, अन्तोपूति अवस्सुतो कसम्बुजातो। एवरूपो, भिक्खवे, पुग्गलो जिगुच्छितब्बो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो। तं किस्स हेतु? किं चा पि, भिक्खवे, एवरूपस्स पुग्गलस्स न दिट्ठानुगतिं आपज्जति, अथ खो नं पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति—'पापमित्तो पुरिसपुग्गलो पापसहायो पापसम्पवङ्को' ति। सेय्यथापि, भिक्खवे, अहि गूथगतो किं चा पि न दंसति, अथ खो नं मक्खेति; एवमेव खो, भिक्खवे, किं चा पि एवरूपस्स पुग्गलस्स न दिट्ठानुगतिं आपज्जति, अथ खो नं पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति—'पापमित्तो पुरिसपुग्गलो पापसहायो पापसम्पवङ्को' ति। तस्मा एवरूपो पुग्गलो जिगुच्छितब्बो, न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो। (१)

"कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो अज्झुपेक्खितब्बो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो कोधनो होति उपायासबहुलो, अप्पं पि [R.127] वुत्तो समानो अभिसज्जति कुप्पति व्यापज्जति पतित्थीयति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सेय्यथापि, भिक्खवे, दुट्ठारुको कट्ठेन वा कठलाय वा घट्टितो भिय्योसोमत्ताय आसवं देति; एवमेव खो, भिक्खवे ...पे०...। सेय्यथापि, भिक्खवे, तिन्दुकालातं कट्ठेन वा कठलाय वा घट्टितं भिय्योसोमत्ताय चिच्चिटायति चिटिचिटायति; एवमेव खो भिक्खवे ...पे०...। सेय्यथापि, भिक्खवे, गूथकूपो कट्ठेन वा कठलाय वा घट्टितो [B.125] भिय्योसोमत्ताय दुग्गन्धो होति; एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो कोधनो होति उपायासबहुलो, अप्पं पि वुत्तो समानो अभिसज्जति कुप्पति व्यापज्जति पतित्थीयति,

---

होता, परन्तु धर्मसाधना का अभिनय (दिखावा) करता है, मन का मैला, विविध वासनाओं से भरा हुआ, तथा मलिनचरित्र होता है। ऐसा पुद्गल घृणा के योग्य है, उसकी सेवा पूजा या उपासना नहीं करनी चाहिये। वह क्यों? वह इसलिये कि वह पुद्गल सम्यग्दृष्टि तो हो ही नहीं सकता; अपितु उसके विषय में लोक में यह प्रवाद भी फैल जाता है—'यह पुद्गल पापियों की सङ्गति करता है, पापी ही इसके मित्र (सहायक) हैं, यह पाप में सर्वथा लिप्त है।' जैसे, भिक्षुओ! मैले से लिपटा हुआ साँप भी दूसरों को डस ही लेता है, अपितु इससे उस (सर्प) का मूल्य ही घटता है; इसी प्रकार, भिक्षुओ! उस पुद्गल की शुद्ध दृष्टि तो होगी ही क्या! अपितु उसके विषय में यही दुष्प्रवाद फैला रहता है कि यह पापी है, पापियों का साथ करता है, यह पाप कर्मों में लिप्त है—आदि। अतः ऐसे भिक्षु से घृणा ही करनी चाहिये। इसकी सेवा पूजा आदि नहीं करनी चाहिये। (१)

"और, भिक्षुओ! कौन पुद्गल उपेक्षणीय है, किसके प्रति, सेवा, पूजा या उपासना का भाव नहीं रखना चाहिये? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल क्रोधी, प्रायः अपने किये पर पछताने वाला होता है। वह कुछ भी कहने पर आसक्ति, क्रोध, द्वेष या शत्रुभाव पर उतर आता है तथा क्रोध द्वेष एवं अविश्वास करने लगता है। ...पूर्ववत्...[१] ऐसे पुद्गल की सेवा, पूजा, उपासना नहीं करनी चाहिये। (२)

---

१. द्र० सेवितव्यसूत्र, पृ० १६६।

कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। एवरूपो, भिक्खवे, पुग्गलो अज्झुपेक्खितब्बो, न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो। तं किस्स हेतु? अक्कोसेय्य पि मं [N.117] परिभासेय्य पि मं अनत्थं पि मं करेय्या ति। तस्मा एवरूपो पुग्गलो अज्झुपेक्खितब्बो, न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो। (२)

''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलवा होति कल्याणधम्मो। एवरूपो, भिक्खवे, पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। तं किस्स हेतु? किञ्चा पि, भिक्खवे, एवरूपस्स पुग्गलस्स न दिट्ठानुगतिं आपज्जति, अथ खो नं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति— 'कल्याणमित्तो पुरिसपुग्गलो कल्याणसहायो कल्याणसम्पवङ्को' ति। तस्मा एवरूपो पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। (३)

''इमे खो, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं ति।

''निहीयति पुरिसो निहीनसेवी, न च हायेथ कदाचि तुल्यसेवी।
सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं, तस्मा अत्तनो उत्तरिं भजेथा''॥ ति। ●

८. गूथभाणीसुत्तं : ''तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? गूथभाणी, पुप्फभाणी, मधुभाणी। कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो [R.128] गूथभाणी? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सभग्गतो वा परिसग्गतो वा ञातिमज्झगतो वा पूगमज्झगतो वा राजकुलमज्झगतो वा अभिनीतो सक्खिपुट्ठो—'एहम्भो पुरिस, यं जानासि तं वदेही' ति। सो अजानं वा आह 'जानामी' ति, जानं वा आह 'न पस्सामी' ति; इति अत्तहेतु वा परहेतु वा आमिसकिञ्चिक्खहेतु वा सम्पजानमुसा भासिता होति। अयं [B.126] वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो, गूथभाणी। (१)

पुनश्च, भिक्षुओ! किस पुद्गल की सेवा, पूजा एवं उपासना करनी चाहिये? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल शीलवान्...पूर्ववत्...[१] अपने से श्रेष्ठ की सेवा, पूजा एवं उपासना करनी चाहिये॥ ●

८. गूथमणिसूत्र : : त्रिभाषी पुरुष

''भिक्षुओ! लोक में ये तीन प्रकार के पुद्गल उपलब्ध होते हैं। कौन से तीन? १. गूथभाणी, २. पुष्पभाणी एवं ३. मधुभाणी।

''भिक्षुओ! इनमें कौन पुद्गल गूथभाणी (मलभाषी) है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल सभा या परिषद् (पंचायत) या ज्ञातियों के समूह में बैठकर या किसी अन्य गणसमूह में या राजदरबार (न्यायालय) में बुलाये जाने पर उससे साक्षी के रूप में कुछ बताने के लिये यह कहा जाय—'अरे पुरुष! जो तुम जानते हो वह कहो।' तब वह उस विषय में कुछ न जानता हुआ भी कहे—'हाँ, जानता हूँ', या जानता हुआ कहे—'नहीं जानता हूँ', या न देखा हुआ भी कहे—'हाँ, देखा है' या देखे हुए को भी कहे—'यह नहीं देखा है।' यों, वह अपने लिये या दूसरों के लिये, या किसी प्राप्ति

---

१. द्र० सेवितव्यसूत्र, तीसरा उपबन्ध, पृ० १६६।

''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो पुप्फभाणी? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सभग्गतो वा परिसग्गतो वा ञातिमज्झगतो वा पूगमज्झगतो वा राजकुलमज्झगतो वा [N.118] अभिनीतो सक्खिपुट्ठो—'एहम्भो पुरिस, यं पजानासि तं वदेही' ति, सो अजानं वा आह 'न जानामी' ति, जानं वा आह 'जानामी' ति, अपस्सं वा आह 'न पस्सामी' ति, पस्सं वा आह 'पस्सामी' ति; इति अत्तहेतु वा परहेतु वा आमिसकिञ्चिक्खहेतु वा न सम्पजानमुसा भासिता होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो पुप्फभाणी। (२)

''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो मधुभाणी? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति; या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपं वाचं भासिता होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो मधुभाणी। (३)

इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

९. **अन्धसुत्तं :** ''तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? अन्धो, एकचक्खु, द्विचक्खु। कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो अन्धो? इध, भिक्खवे, [R.129] एकच्चस्स पुग्गलस्स तथारूपं चक्खु न होति यथारूपेन चक्खुना अनधिगतं वा भोगं अधिगच्छेय्य अधिगतं वा भोगं फातिं करेय्य; तथारूपं पिस्स चक्खु न होति यथारूपेन चक्खुना कुसलाकुसले धम्मे जानेय्य, सावज्जानवज्जे धम्मे जानेय्य, हीनप्पणीते धम्मे

के लोभवश जानता हुआ भी असत्य भाषण करे, तो वह ऐसा मिथ्याभाषी पुद्गल 'गूथभाणी' कहलाता है। (१)

''और, भिक्षुओ! कौन पुद्गल 'पुष्पभाणी' होता है? यहाँ कोई पुद्गल सभा या परिषद् में ...पूर्ववत्... कहो। तब वह न जाने हुए को 'नहीं जानता' कहता है, न देखे हुए को 'नहीं देखा' कहता है तथा जाने या देखे हुए को क्रमशः 'जानता हूँ' या 'देखा है'—कहता है तो वह 'जानता हुआ मिथ्याभाषी' नहीं होता। अतः उसे, भिक्षुओ! लोग 'पुष्पभाणी' पुद्गल कहते हैं। (२)

''और यहाँ, भिक्षुओ! 'मधुभाणी' पुद्गल कौन कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल कठोर वाणी न बोलकर कठोर वाणी से विरत रहता है, या जो वाणी नैतिक, कर्णमधुर, प्रेमपूर्ण, हृदय पर प्रभाव डालने वाली, सभ्य, अधिक जनों को प्रिय, अधिक जनों के लिये मनोरम हो ऐसी वाणी बोलने वाला हो। ऐसा पुद्गल ही, भिक्षुओ! 'मधुभाणी' कहलाता है। (३)

''भिक्षुओ! ये तीन पुद्गल लोक में विद्यमान हैं॥'' ●

९. अन्धसूत्र : : त्रिविध अन्ध

''भिक्षुओ! ये तीन प्रकार के पुद्गल लोक में देखे जाते हैं। कौन से तीन? १. अन्ध, २. एक नेत्रवाला, एवं ३. दो नेत्रवाला। भिक्षुओ! इनमें 'अन्ध' कौन कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ किसी पुद्गल को ऐसे नेत्र नहीं होते, जिनके बल पर वह अप्राप्त भोगों को प्राप्त कर सके तथा प्राप्त भोगों की वास्तविकता को पहचान सके। इसको वैसे नेत्र (ज्ञान) भी नहीं होते कि जिनके बल पर वह कुशल एवं अकुशल धर्मों की वास्तविकता जान सके। सदोष एवं निर्दोष धर्मों को, अच्छे बुरे धर्मों

जानेय्य, कण्हसुक्कसप्पटिभागे धम्मे जानेय्य। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो अन्धो। (१)

''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो एकचक्खु? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स तथारूपं चक्खु होति यथारूपेन चक्खुना अनधिगतं वा भोगं अधिगच्छेय्य अधिगतं वा भोगं फातिं करेय्य; तथारूपं पनस्स चक्खु न होति यथारूपेन चक्खुना कुसला- [B.127] कुसले धम्मे जानेय्य, सावज्जानवज्जे धम्मे जानेय्य, हीनप्पणीते धम्मे जानेय्य, कण्हसुक्क-सप्पटिभागे धम्मे जानेय्य। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो एकचक्खु। (२)

''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो द्विचक्खु? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स तथारूपं चक्खु होति यथारूपेन चक्खुना अनधिगतं वा भोगं अधिगच्छेय्य, अधिगतं वा भोगं फातिं करेय्य; तथारूपं पिस्स चक्खु होति यथारूपेन चक्खुना कुसलाकुसले धम्मे जानेय्य, सावज्जानवज्जे धम्मे जानेय्य, हीनप्पणीते धम्मे जानेय्य, कण्हसुक्क- [N.119] सप्पटिभागे धम्मे जानेय्य। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो द्विचक्खु। (३)

''इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं ति।

''न चेव भोगा तथारूपा, न च पुञ्ञानि कुब्बति।
उभयत्थ कलिग्गाहो, अन्धस्स हतचक्खुनो॥
''अथापरायं अक्खातो, एकचक्खु च पुग्गलो।
धम्माधम्मेन सठो सो, भोगानि परियेसति॥

को पहचान सके।' कृष्ण (पाप) एवं शुक्ल (पुण्य) धर्मों की परीक्षा कर सके। ऐसा पुद्गल, भिक्षुओ! 'अन्धा' कहलाता है। (१)

''तथा, भिक्षुओ! कौन सा पुद्गल 'एक नेत्रवाला' कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! किसी पुद्गल को वैसे नेत्र न हो जिनके बल पर ...पूर्ववत्... वह 'एक नेत्रवाला पुद्गल' कहलाता है। (२)

''और, भिक्षुओ! कौन पुद्गल 'दो नेत्रवाला' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी पुद्गल को ऐसे नेत्र हों जिनके बल पर वह अप्राप्त भोग प्राप्त कर सके, तथा प्राप्त भोगों की पहचान कर सके; वैसे नेत्र भी हों जिनके बल पर वह कुशल अकुशल धर्मों के विषय में ज्ञान कर सके, धर्मों की सदोषता एवं निर्दोषता को जान सके, उनकी हीनता तथा उत्तमता को जान सके, उनमें पाप-पुण्य कर्मों का भेद कर सके। ऐसा पुद्गल 'दो नेत्रोंवाला' कहलाता है। (३)

''भिक्षुओ! इस प्रकार ये तीन पुद्गल इस लोक में देखे जाते हैं—

अन्ध—''ऐसा पुद्गल जो न लौकिक भोगों का संग्रह कर पाता है, न परलोक में साथ देनेवाले पुण्यों का ही। उसके लिये दोनों ही ओर पाशबन्धन है, उसके ज्ञानचक्षु विनष्ट हो चुके हैं, अत: उसे 'अन्धा' ही समझना चाहिये।

एकचक्षु—''यह दूसरा पुद्गल जो 'एकचक्षु एक आँखवाला' कहा गया है, वह भी धर्म एवं अधर्म—दोनों से ही सम्पृक्त होकर अपने लौकिक भोगों को खोजता है॥

"थेय्येन कूटकम्मेन, मुसावादेन चूभयं।
कुसलो होति सङ्घातुं, कामभोगी च मानवो।
इतो सो निरयं गन्त्वा, एकचक्खु विहञ्ञति॥
"द्विचक्खु पन अक्खातो, सेट्ठो पुरिसगुपग्गलो।
धम्मलद्धेहि भोगेहि, उट्ठानाधिगतं धनं॥
[R.130] "ददाति सेट्ठसङ्कप्पो, अब्यग्गमानसो नरो।
उपेति भद्दकं ठानं, यत्थ गन्त्वा न सोचति॥
"अन्धं च एकचक्खुं च, आरका परिवज्जये।
द्विचक्खुं पन सेवेथ, सेट्ठं पुरिसपुग्गलं" ति॥

[B.128] **१०. अवकुज्जसुत्तं :** "तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? अवकुज्जपञ्ञो पुग्गलो, उच्छङ्गपञ्ञो पुग्गलो, पुथुपञ्ञो पुग्गलो। कतमो च, भिक्खवे, अवकुज्जपञ्ञो पुग्गलो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवनाय। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने, निसिन्नो तस्सा कथाय नेवादिं मनसि करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति; वुट्ठितो पि तम्हा आसना तस्सा कथाय नेवादिं मनसि

"वह चौरी से, धोखा देकर (जालसाजी से), झूठ बोलकर, कुशल धर्मों की हत्या कर लौकिक कामभोगों को प्राप्त कर पाता है, अत: वह यहाँ से देहपात के बाद, मरणानन्तर नरक में ही जाता है, इसलिये वह अभागा 'एकचक्षु' कहलाता है॥

द्विचक्षु—"हाँ, वह पुरुष अवश्य 'द्विचक्षु' कहलाता है, जो अपने धार्मिक कर्मों से भोगों की प्राप्ति करता है। तथा उस प्राप्त धन को श्रेष्ठ सङ्कल्प से निश्चल (स्थिर) चित्त होकर दान करता है॥

"वह मरणानन्तर मङ्गलमय स्वर्ग में ही जाता है। जहाँ जाने पर उसको कोई लौकिक चिन्ता नहीं सताती॥

"अत: इन तीनों में से 'अन्ध' एवं 'एकचक्षु' पुरुष को दूर से ही त्याग देनी चाहिये। परन्तु इस उत्तम पुद्गल 'द्विचक्षु' की सभी प्रकार से सेवा करनी चाहिये॥"

१०. अवकुब्जसूत्र : : त्रिविध पुद्गल

"भिक्षुओ! लोक में तीन प्रकार के पुद्गल देखे जाते हैं। कौन से तीन? १. अवकुब्जप्रज्ञ, २. उत्सङ्गप्रज्ञ एवं ३. पृथुप्रज्ञ। भिक्षुओ! इनमें 'अवकुब्जप्रज्ञ पुद्गल' कौन सा है?

"भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल भिक्षुओं से धर्मश्रवणहेतु विहार में जाता हो, उस पुद्गल को वे भिक्षुजन आदिकल्याण, मध्यकल्याण एवं पर्यवसानकल्याण वाले, परिच्छेद एवं अर्थसहित, परिशुद्ध धर्म का उपदेश करते हैं। परन्तु वह वहाँ बैठा हुआ पुद्गल न उस धर्म के आदि पर ध्यान देता है, न मध्य पर, न अन्त पर ही ध्यान देता है। न वहाँ से उठकर ही उस धर्म के आदि अन्त पर

करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति। सेय्यथापि भिक्खवे, कुम्भो निक्कुज्जो तत्र उदकं आसित्तं विवट्टति, नो सण्ठाति; एवमेव खो, भिक्खवे, [N.120] इधेकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवनाय। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय नेवादिं मनसि करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति; वुट्ठितो पि तम्हा आसना तस्सा कथाय नेवादिं मनसि करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अवकुज्जपञ्ञो पुग्गलो। (१)

''कतमो च, भिक्खवे, उच्छङ्गपञ्ञो पुग्गलो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवनाय। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति; वुट्ठितो च खो तम्हा आसना तस्सा कथाय नेवादिं मनसि करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसस्स उच्छङ्गं नाना खज्जकानि आकिण्णानि—तिला [R.131] तण्डुला मोदका बदरा। सो तम्हा आसना वुट्ठहन्तो सतिसम्मोसा पकिरेय्य। एवमेव [B.129] खो, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मसवनाय। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति; वुट्ठितो च खो तम्हा आसना तस्सा कथाय नेवादिं मनसि करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, उच्छङ्गपञ्ञो पुग्गलो। (२)

ध्यान देता है। जैसे, भिक्षुओ! किसी अवकुब्ज (अधोमुख=ओंधा) घड़े में डाला हुआ जल न उसके अन्दर जाता है न उसपर ठहरता ही है; उसी तरह वह पुद्गल भिक्षुओं से धर्मश्रवणहेतु ...पूर्ववत्... न वहाँ से उठकर ही उस धर्म के आदि अन्त पर ध्यान देता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है **अवकुब्जप्रज्ञ पुद्गल**। (१)

तथा भिक्षुओ! 'उत्सङ्गप्रज्ञ पुद्गल' कौन कहलाता है? यहाँ कोई पुद्गल भिक्षुओं से धर्मश्रवण हेतु ...पूर्ववत्... धर्म के आदि पर भी ध्यान देता है, मध्य एवं अन्त पर भी ध्यान देता है। परन्तु वहाँ से उठने पर न उस धर्म के आदि पर विचार करता है, न उसके मध्य या अन्त पर विचार करता है। जैसे भिक्षुओ! बैठे हुए किसी पुरुष की गोद में विविध खाद्य रखे हों—जैसे तिल, तण्डुल, मोदक या बेर। वह आसन से उठता हुआ उन्हें भूल जाय और वे गोद से नीचे भूमि पर विखर जायँ। उसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल धर्मश्रवणहेतु ...पूर्ववत्... परन्तु वहाँ से उठने पर न वह उस धर्म

''कतमो च, भिक्खवे, पुथुपञ्ञो पुग्गलो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवनाय। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं [N.121] ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति; वुट्ठितो पि तम्हा आसना तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति। सेय्यथापि, भिक्खवे, कुम्भो उक्कुज्जो तत्र उदकं आसित्तं सण्ठाति नो विवट्टति; एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवनाय। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति; वुट्ठितो पि तम्हा आसना तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुथुपञ्ञो पुग्गलो। (३)

''इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं ति।

(१) ''अवकुज्जपञ्ञो पुरिसो, दुम्मेधो अविचक्खणो।
अभिक्खणं पि चे होति, गन्ता भिक्खून सन्तिके॥
''आदि कथाय मज्झं च, परियोसानं च तादिसो।
उग्गहेतुं न सक्कोति, पञ्ञा हिस्स न विज्जति॥

[R.130] (२) ''उच्छङ्गपञ्ञो पुरिसो, सेय्यो एतेन वुच्चति।
अभिक्खणं पि चे होति, गन्ता भिक्खून सन्तिके॥

के आदि पर विचार करता है, न अन्त या मध्य पर। भिक्षुओ! उसे कहते हैं—**'उत्सङ्गप्रज्ञ पुद्गल'**। (२)

और, भिक्षुओ! 'पृथुप्रज्ञ पुद्गल' कौन कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष धर्मश्रवणहेतु विहार में ...पूर्ववत्... धर्म के आदि, अन्त एवं मध्य—सभी पर विचार करता है; वहाँ से उठने पर भी उस पर आदि, अन्त एवं मध्य पर विचार करता है। जैसे कोई घड़ा उत्कुब्ज (सीधा) रखा हो, वहाँ (उसमें) डाला हुआ जल उसमें ठहरेगा, नीचे नहीं गिरेगा; इसी तरह, भिक्षुओ! ऐसे पुद्गल का धर्मश्रवण भी आदि अन्त, मध्य से स्थिर रहेगा, वह उसे नहीं भूलेगा। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल **पृथुप्रज्ञ** कहलाता है। (३)

भिक्षुओ! लोक में ऐसे भी तीन पुद्गल होते हैं।

''कोई मूर्ख मन्दमति पुद्गल भिक्षुओं से निरन्तर धर्मश्रवण करके भी उस धर्मकथा का आदि, अन्त या मध्य का ग्रहण नहीं कर पाता, क्योंकि उसकी प्रज्ञा ग्रहण करनेवाली नहीं होती, ऐसा पुद्गल **अवकुब्जप्रज्ञ** कहलाता है॥'' (१)

''आदिं कथाय मज्झं च, परियोसानं च तादिसो।
निसिन्नो आसने तस्मिं, उग्गहेत्वान ब्यञ्जनं।
वुट्ठितो नप्पजानाति, गहितं पिस्स मुस्सति॥

(३) ''पुथुपञ्ञो च पुरिसो, सेय्यो एतेहि वुच्चति।
अभिक्खणं पि चे होति, गन्ता भिक्खून सन्तिके॥
''आदिं कथाय मज्झं च, परियोसानं च तादिसो।
निसिन्नो आसने तस्मिं, उग्गहेत्वान ब्यञ्जनं॥
''धारेति सेट्ठसङ्कप्पो, अब्यग्गमानसो नरो।
धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो, दुक्खस्सन्तकरो सिया''ति॥

पुग्गलवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

समिद्ध गिलान सङ्खारा, बहुकारा वजिरेन च। [N.122]
सेवि जिगुच्छ गूथभाणी, अन्धो च अवकुज्जता ति॥

''तथा 'उत्सङ्गप्रज्ञ पुद्गल' उसे कहते हैं जो भिक्षुओं के पास जाकर जब धर्मश्रवण करता है तब तो उसे वह ग्रहण कर लेता है; परन्तु वहाँ से उठने पर वह उस धर्म का आदि, अन्त, मध्य—सब कुछ विस्मृत कर बैठता है; ग्रहण किया हुआ सभी कुछ भूल जाता है। ऐसे पुद्गल को ही **उत्सङ्गप्रज्ञ** कहते हैं॥ (२)

''और **पृथुप्रज्ञ पुद्गल** वह कहलाता है जो भिक्षुओं के पास धर्मश्रवण कर लेता है, उसे आदि से अन्त तक ग्रहण कर लेता है। वहाँ से उठने पर भी वह उसको इसी प्रकार ग्रहण किये रखता है, उसे विस्मृत नहीं होने देता। तथा उस धर्म को वह श्रेष्ठसङ्कल्प होकर उसका अभ्यास करता रहता है और उसका धर्मानुधर्म आचरण कर उसके प्रभाव से अपने दुःखों का अन्त कर लेता है॥'' (३)

पुद्गलवर्ग तृतीय सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. समृद्ध, २. ग्लान, ३. संस्कार, ४. बहुकार, ५. वज्रोपम, ६. सेवितव्य, ७. जुगुप्सितव्य, ८. गूथभाणी, ९. अन्धसूत्र, १०. अवकुब्जसूत्र॥

४. देवदूतवग्गो

[R.132] **१. सब्रह्मकसुत्तं :** "सब्रह्मकानि, भिक्खवे, तानि कुलानि येसं पुत्तानं मातापितरो अज्झागारे पूजिता होन्ति। सपुब्बाचरियकानि, भिक्खवे, तानि कुलानि येसं पुत्तानं मातापितरो अज्झागारे पूजिता होन्ति। साहुनेय्यानि, भिक्खवे, तानि कुलानि येसं पुत्तानं मातापितरो अज्झागारे पूजिता होन्ति। 'ब्रह्मा' ति, भिक्खवे, मातापितूनं एतं अधिवचनं। 'पुब्बाचरिया' ति, भिक्खवे, मातापितूनं एतं अधिवचनं 'आहुनेय्या' ति, भिक्खवे, माता-
[B.131] पितूनं एतं अधिवचनं। तं किस्स हेतु? बहुकारा, भिक्खवे, मातापितरो पुत्तानं, आपादका पोसका, इमस्स लोकस्स दस्सेतारो ति।

"ब्रह्मा ति मातापितरो, पुब्बाचरिया ति वुच्चरे।
आहुनेय्या च पुत्तानं, पजाय अनुकम्पका॥
"तस्मा हि ने नमस्सेय्य, सक्करेय्य च पण्डितो।
अन्नेन अथ पानेन, वत्थेन सयनेन च।
उच्छादनेन न्हापनेन, पादानं धोवनेन च॥
"ताय नं पारिचरियाय, मातापितूसु पण्डिता।
इधेव नं पससन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती" ति॥

---

४. देवदूतवर्ग

१. सब्रह्मकसूत्र : : कुलों के त्रिविध नाम

"भिक्षुओ! वे कुल ब्रह्मा के आवास ही कहलाते हैं जिनके पुत्रों के माता पिता उनके घरों में पूजित होते हैं। उन कुलों की पूर्वाचार्यपरम्परा को भी जीवित ही समझो जिनके पुत्रों के माता पिता घरों में पूजित होते हैं। वे कुल आह्वनीय हैं जिनके पुत्रों के माता पिता घरों में उपहार (भेंट) पाते रहते हैं।

"भिक्षुओ! 'ब्रह्मा' माता पिता का ही नाम (संज्ञा) है। 'पूर्वाचार्य' भी माता पिताओं को ही कहते हैं। भिक्षुओ! 'आहुनेय्य' भी माता पिता ही होते हैं। वह किस कारण? वह इसलिये भिक्षुओ! कि माता पिता पुत्रों के अनेक कार्यसाधक होते हैं, लाभ करानेवाले तथा पोषक होते हैं तथा उनके लिये इस लोक के दर्शयिता होते हैं। (क्योंकि माता पिता न होते तो पुत्र इस लोक में आते कैसे?)

"माता पिता ही 'ब्रह्मा' एवं 'पूर्वाचार्य' कहलाते हैं।
वे पुत्रों के लिये 'आहुनेय्य' एवं अपनी सभी सन्ततियों के पोषक होते हैं॥
"अत: वे बुद्धिमान् जनों द्वारा प्रणाम तथा सत्कार करने योग्य हैं।

बुद्धिमान् लोग अन्न, पान, वस्त्र, शय्या, शरीर का अभ्यङ्ग (मालिश), स्नान, चरणप्रक्षालन आदि परिचर्याओं (सेवाओं) द्वारा इन (माता-पिता) को सदा सन्तुष्ट रखें। इससे इनके पुत्रों की इस लोक में प्रशंसा होती है, तथा मरणानन्तर ये (पुत्र) स्वर्ग-सुख भोगते हैं॥"

२. **आनन्दसुत्तं** : अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"सिया नु खो, भन्ते, भिक्खुनो तथारूपो समाधिपटिलाभो यथा इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये अहङ्कारममङ्कारमानानुसया नास्सु, बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया नास्सु; यं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं [N.123] उपसम्पज्जं विहरतो अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ति तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरेय्या" ति?

"सिया, आनन्द, भिक्खुनो तथारूपो समाधिपटिलाभो यथा इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये अहङ्कारममङ्कारमानानुसया नास्सु, बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया नास्सु; यं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरतो अङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ति तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरेय्या" ति।

"यथा कथं पन, भन्ते, सिया भिक्खुनो तथारूपो समाधिपटिलाभो यथा इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये अहङ्कारममङ्कारमानानुसया नास्सु, बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया नास्सु; यं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं उपसम्पज्ज [B.132] विहरतो अहङ्कारममङ्कारमानानुसया नहोन्ति तं च चेतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरेय्या" ति?

"इधानन्द, भिक्खुनो एवं होति—'एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं सब्ब- [R.133] सङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हाक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं' ति। एवं खो,

---

२. आनन्दसूत्र : : **त्रिविध समाधि**

तदनन्तर, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गये तथा उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—"क्या, भन्ते! साधक भिक्षु द्वारा ऐसी समाधि-साधना भी की जा सकती है जिससे इस विज्ञानसहित काय में कुछ भी अहङ्कार, ममकार, मान तथा अनुशय (चित्त की कुपथगामी प्रवृत्ति) न रह जायँ, तथा सभी बाह्य निमित्तों में ये अहङ्कार आदि न रह जायँ, और जिस चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति की दीक्षा लेकर साधना करने वाले को अहङ्कार... अनुशय नहीं होते उन चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति की भी साधना की जा सके?"

"हाँ, आनन्द! साधक भिक्षु द्वारा ऐसा समाधिलाभ किया जा सकता है ...पूर्ववत्... प्रज्ञाविमुक्ति की भी साधना की जा सके।"

"भन्ते! साधक भिक्षु द्वारा ऐसा समाधिलाभ कैसे किया जा सकता है ...पूर्ववत्... प्रज्ञाविमुक्ति की भी साधना की जा सके?"

"आनन्द! यहाँ किसी भिक्षु को यह होने लगे—'सभी पुनर्जन्म की आसक्तियों का त्याग, तृष्णा का क्षय, वैराग्य, निरोध एवं निर्वाण—यही वस्तुसत्य है, यही उत्तम है।' इस तरह, आनन्द!

आनन्द, सिया भिक्खुनो तथारूपो समाधिपटिलाभो यथा इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये अहङ्कारममङ्कारमानानुसया नास्सु, बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया नास्सु; यं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरतो अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ति तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरेय्या ति।

"इदं च पन मेतं, आनन्द, सन्धाय भासितं **पारायने पुण्णकपञ्हे**—

'सङ्खाय लोकस्मिं परोपरानि, यस्सिञ्जितं नत्थि कुहिञ्चि लोके।

सन्तो विधूमो अनीघो निरासो, अतारि सो जाति जरं ति ब्रूमी' " ति॥

[सु. नि., ४२६ पि.] ●

३. सारिपुत्तसुत्तं : अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं [N.124] सारिपुत्तं भगवा एतदवोच—"सङ्खित्तेन पि खो अहं, सारिपुत्त, धम्मं देसेय्यं; वित्थारेन पि खो अहं, सारिपुत्त, धम्मं देसेय्यं; सङ्खित्तवित्थारेन पि ख़ो अहं, सारिपुत्त, धम्मं देसेय्यं; अञ्ञातारो च दुल्लभा" ति।

"एतस्स, भगवा, कालो, एतस्स, सुगत, कालो यं भगवा सङ्खित्तेन पि धम्मं देसेय्य, वित्थारेन पि धम्मं देसेय्य, सङ्खित्तवित्थारेन पि धम्मं देसेय्य। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो" ति।

"तस्मातिह, सारिपुत्त, एवं सिक्खितब्बं—'इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये

उस साधक भिक्षु द्वारा वैसा समाधिलाभ ...पूर्ववत्... चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति की भी साधना की जा सके।

"आनन्द! यही बात ध्यान में रखकर मैंने **सुत्तनिपात में पारायण वर्ग के पूर्णक प्रश्न** में यह कहा है—

"लोक में ऊँच-नीच का ध्यान रखते हुए जिसमें कोई हलचल नहीं होती, जो शान्त है, जो रागरहित है, जो दुःखरहित है, जो वीततृष्ण है उसने अपनी जन्म-मरण परम्परा एवं बुढ़ापे को पार कर लिया है॥" (सु० नि०, पा० व०, पु० प० ७३ गा०)

●

३. सारिपुत्रसूत्र : : त्रिविध धर्मोपदेश

तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गये... आयुष्मान् सारिपुत्र को भगवान् ने कहा—"सारिपुत्र! मैं संक्षेप में भी धर्मोपदेश करता हूँ, विस्तार से भी... संक्षिप्त एवं विस्तार—दोनों विधियाँ मिलाकर भी धर्मोपदेश करता हूँ। परन्तु यहाँ उसके सुननेवाले ही दुर्लभ हैं।"

"भगवन्! इसी का अब उचित समय है। भले ही संक्षेप से या विस्तार से या संक्षेप विस्तार दोनों विधियों से आप धर्मोपदेश करें। श्रोता भी मिल जायँगे।"

"तो, सारिपुत्र! तुम्हें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'इस सविज्ञानक काय में ...पूर्ववत्...

अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न भविस्सन्ति, बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कार-मानानुसया न भविस्सन्ति, यं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरतो [B.133] अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ति तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरिस्सामा' ति। एवं हि खो, सारिपुत्त, सिक्खितब्बं।

''यतो च खो, सारिपुत्त, भिक्खुनो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये [R.134] अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ति, बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ति, यं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरतो अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ति तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरति; अयं वुच्चति, सारिपुत्त—'भिक्खु अच्छेच्छि तण्हं, विवत्तयि संयोजनं, सम्मा मानाभिसमया अन्तमकासि दुक्खस्स'। इदं च पन मेतं, सारिपुत्त, सन्धाय भासितं **पारायने उदयपञ्हे**—

'पहानं कामसञ्ञानं, दोमनस्सान चूभयं।
थीनस्स च पनूदनं, कुक्कुच्चानं निवारणं॥
'उपेक्खासतिसंसुद्धं, धम्मतक्कपुरेजवं।
अञ्ञाविमोक्खं पब्रूमि, अविज्जाय पभेदनं'' ति॥

[सु० नि०, पि० ४३५] ●

४. निदानसुत्तं : ''तीणिमानि, भिक्खवे, निदानानि कम्मानं समुदयाय। कतमानि तीणि? लोभो निदानं कम्मानं समुदयाय, दोसो निदानं कम्मानं समुदयाय, मोहो निदानं कम्मानं समुदयाय।

''यं, भिक्खवे, लोभपकतं कम्मं लोभजं लोभनिदानं लोभसमुदयं, यत्थस्स

उस प्रज्ञाविमुक्ति एवं चेतोविमुक्ति को उपसम्पन्न करते हुए साधना करेंगे'—ऐसा सीखना चाहिये।

''सारिपुत्र! जिस साधक भिक्षु के सविज्ञानक काय में ...पूर्ववत्... ऐसी साधना करता हुआ वह भिक्षु 'अपनी तृष्णा का नाश कर चुका, अपने संयोजनों को ढीला कर दिया, स्पष्ट ज्ञान से दुःखों का अन्त कर चुका'—ऐसा कहलाता है। इसी विषय को ध्यान में रखकर मैंने **सुत्तनिपात** की **उदयमाणवकपरिपृच्छा** में कहा है—

'कामसंज्ञाओं के नाशक, उभयविध दौर्मनस्यों के घातक, स्त्यान (आलस्य) को दूर करने वाले, कौकृत्यों के निवारक, उपेक्षा एवं स्मृति भावना द्वारा शुद्ध, शास्त्र एवं युक्ति से आगे बढ़ाये हुए ज्ञानविमोक्ष को मैं अविद्या का नाशक मानता हूँ॥' '' (सु० नि०, उ० मा० प०, १३१-१३२ गा०)

●

४. निदानसूत्र : : तीन निदान

''भिक्षुओ! कर्मोत्पत्ति के ये तीन निदान होते हैं। कौन से तीन? लोभ... द्वेष... एवं मोह कर्मोत्पत्ति का निदान होता है।

''भिक्षुओ! जो कर्म लोभप्रकृतिक लोभजन्य, लोभनिदान एवं लोभ से उत्पन्न होता है, जहाँ

अत्तभावो निब्बत्तति तत्थ तं कम्मं विपच्चति। यत्थ तं कम्मं विपच्चति तत्थ तस्स [N.125] कम्मस्स विपाकं पटिसंवेदेति, दिट्ठे व धम्मे उपपज्ज वा अपरे वा परियाये।

''यं, भिक्खवे, दोसपकतं कम्मं दोसजं दोसनिदानं दोससमुदयं, यत्थस्स [B.134] अत्तभावो निब्बत्तति तत्थ तं कम्मं विपच्चति। यत्थ तं कम्मं विपच्चति तत्थ तस्स कम्मस्स विपाकं पटिसंवेदेति, दिट्ठे व धम्मे उपपज्ज वा अपरे वा परियाये।

''यं, भिक्खवे, मोहपकतं कम्मं मोहजं मोहनिदानं मोहसमुदयं, यत्थस्स अत्तभावो निब्बत्तति तत्थ तं कम्मं विपच्चति। यत्थ तं कम्मं विपच्चति तत्थ तस्स कम्मस्स [R.135] विपाकं पटिसंवेदेति, दिट्ठे व धम्मे उपपज्ज वा अपरे वा परियाये।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, बीजानि अखण्डानि अपूतीनि अवातातपहंतानि सारादानि सुखसयितानि सुखेत्ते सुपरिकम्मकताय भूमिया निक्खित्तानि। देवो च सम्माधारं अनुप्पवेच्छेय्य। एवस्सु तानि, भिक्खवे, बीजानि बुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्युं। एवमेव खो, भिक्खवे, यं लोभपकतं कम्मं लोभजं लोभनिदानं लोभसमुदयं, यत्थस्स अत्तभावो निब्बत्तति तत्थ तं कम्मं विपच्चति। यत्थ तं कम्मं विपच्चति तत्थ तस्स कम्मस्स विपाकं पटिसंवेदेति, दिट्ठे व धम्मे उपपज्ज वा अपरे वा परियाये।

''यं दोसपकतं कम्मं ...पे०... यं मोहपकतं कम्मं मोहजं मोहनिदानं मोहसमुदयं, यत्थस्स अत्तभावो निब्बत्तति तत्थ तं कम्मं विपच्चति। यत्थ तं कम्मं विपच्चति तत्थ तस्स कम्मस्स विपाकं पटिसंवेदेति, दिट्ठे वा धम्मे उपपज्ज वा अपरे वा परियाये।

''इमानि खो, भिक्खवे, तीणि निदानानि कम्मानं समुदयाय।

''तीणिमानि, भिक्खवे, निदानानि कम्मानं समुदयाय। कतमानि तीणि? अलोभो

इसकी सत्ता (आत्मभाव) उद्भूत होती है, वहीं उसका विपाक (फल=परिणाम) होता है। जहाँ उस कर्म का विपाक होता है, वहीं उस कर्म का प्रतिसंवेदन (अनुभव) होता है, वह भले ही उसी समय हो या कुछ समय के बाद।

''भिक्षुओ! जो द्वेषप्रकृतिक कर्म, द्वेषजन्य, लोभकारण ...पूर्ववत्...।

''भिक्षुओ! जो मोहप्रकृतिक कर्म, मोहजन्य, मोहकारण ...पूर्ववत्...।

''जैसे, भिक्षुओ! किसी फल के बीज अखण्ड, विना सड़े-गले, जो वायु या जल से अन्यथा न हुए हों, सारयुक्त हों, सुरक्षापूर्वक रखे गये हों, व्यवस्थित खेत में बोये गये हों। वर्षा भी उचित ढंग से हुई हो। भिक्षुओ! जो कर्म लोभप्रकृतिक, लोभजन्य, लोभनिदान एवं लोभोत्पन्न हों वे जहाँ सत्ता में आवेंगे वहीं उनका विपाक होगा। जहाँ उनका विपाक होगा वहीं उनका अनुभव (भोग) होगा। भले ही वह इसी जन्म में हो या किसी अन्य जन्म में।

''भिक्षुओ! जो कर्म द्वेषप्रकृतिक ...पूर्ववत्...।

''भिक्षुओ! जो कर्म मोहप्रकृतिक ...पूर्ववत्... या किसी अन्य जन्म में।

''भिक्षुओ! कर्मोत्पत्ति के तीन कारण होते हैं। कौन से तीन? अलोभ... अद्वेष... अमोह कर्मों की उत्पत्ति का कारण होता है।

निदानं कम्मानं समुदयाय, अदोसो निदानं कम्मानं समुदयाय, अमोहो निदानं कम्मानं समुदयाय।

"यं, भिक्खवे, अलोभपकतं कम्मं अलोभजं अलोभनिदानं अलोभसमुदयं, लोभे विगते एवं तं कम्मं पहीनं होति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं।

"यं, भिक्खवे, अदोसपकतं कम्मं अदोसजं अदोसनिदानं अदोससमुदयं, [N.126] दोसे विगते एवं तं कम्मं पहीनं होति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं।

"यं, भिक्खवे, अमोहपकतं कम्मं अमोहजं अमोहनिदानं अमोहसमुदयं, [B.135] मोहे विगते एवं तं कम्मं पहीनं होति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं।

[R.136] "सेय्यथापि, भिक्खवे, बीजानि अखण्डानि अपूतीनि अवातातपहतानि सारादानि सुखसयितानि। तानि पुरिसो अग्गिना डहेय्य। अग्गिना डहित्वा मसिं करेय्य। मसिं करित्वा महावाते वा ओफुणेय्य नदिया वा सीघसोताय पवाहेय्य। एवस्सु तानि, भिक्खवे, बीजानि उच्छिन्नमूलानि तालावत्थुकतानि अनभावङ्कतानि आयतिं अनुप्पाद-धम्मानि। एवमेव खो, भिक्खवे, यं अलोभपकतं कम्मं अलोभजं अलोभनिदानं अलोभसमुदयं, लोभे विगते एवं तं कम्मं पहीनं होति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं।

"यं अदोसपकतं कम्मं ...पे०... यं अमोहपकतं कम्मं अमोहजं अमोहनिदानं अमोहसमुदयं, मोहे विगते एवं तं कम्मं पहीनं होति ...पे०... आयतिं अनुप्पादधम्मं। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि निदानानि कम्मानं समुदयाया ति।

"भिक्षुओ! जो कर्म अलोभप्रकृतिक... अलोभ से उत्पन्न होता है वह लोभ के नष्ट होने के कारण मूलतः वहीं प्रहीण हो जाता है, तथा भविष्य में पुनः उत्पन्न होने की उसकी स्थिति नहीं होती।

"भिक्षुओ! जो कर्म अद्वेषप्रकृतिक ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! जो कर्म अमोहप्रकृतिक ...पूर्ववत्... भविष्य में पुनः उत्पन्न होने की उसकी स्थिति नहीं रहती।

"जैसे, भिक्षुओ! किसी फल या धान्य के बीज अखण्ड ...पूर्ववत्... सुरक्षापूर्वक रखे गये हों। उनको कोई पुरुष अग्नि में जला दे, अग्नि में जलाकर उनकी काली स्याही बना दे, स्याही बनाकर उन्हें या तो तेज हवा में उड़ा दे या तीव्र वेगवती नदी में बहा दे। भिक्षुओ! ऐसे वे बीज, मूल नष्ट होने के कारण, पुनः उत्पन्न होने की स्थिति में नहीं रहते। इसी प्रकार, भिक्षुओ! ये अलोभप्रकृतिक कर्म भी ऐसी स्थिति में पहुँचने के कारण, पुनः उत्पाद की स्थिति में नहीं रहते।

"भिक्षुओ! जो कर्म अद्वेषप्रकृतिक... अमोहप्रकृतिक, अमोहजन्य अमोहनिदान हैं वे, मोह के नष्ट होने पर, स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं... पुनः उत्पन्न होने की स्थिति में नहीं रहते।

"लोभजं दोसजं चेव, मोहजं चापि विद्दसु।
यं तेन पकतं कम्मं, अप्पं वा यदि वा बहुं।
इधेव तं वेदनियं, वत्थु अञ्ञं न विज्जति॥
"तस्मा लोभं च दोसं च, मोहजं चापि विद्दसु।
विज्जं उप्पादयं भिक्खु, सब्बा दुग्गतियो जहे" ति॥ ●

५. **हत्थकसुत्तं** : एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा आळवियं विहरति गोमग्गे सिंसपावने पण्णसन्थरे। अथ खो हत्थको आळवको जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुचिरमानो अद्दस भगवन्तं गोमग्गे सिंसपावने पण्णसन्थरे निसिन्नं। दिस्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो हत्थको आळवको भगवन्तं एतदवोच—"कच्चि, भन्ते, भगवा सुखमसयित्था" ति?
[N.127, B.136] "एवं, कुमार, सुखमसयित्थं। ये च पन लोके सुखं सेन्ति, अहं तेसं अञ्ञतरो" ति।

"सीता, भन्ते, हेमन्तिका रत्ति, अन्तरट्ठको हिमपातसमयो, खरा गोकण्डकहता भूमि, तनुको पण्णसन्थरो, विरळानि रुक्खस्स पत्तानि, सीतानि कासायानि वत्थानि, सीतो च वेरम्भो वातो वायति। अथ च पन भगवा एवमाह—'एवं, कुमार, सुखमसयित्थं। ये च पन लोके सुखं सेन्ति, अहं तेसं अञ्ञतरो' " ति?

इस प्रकार, भिक्षुओ! इन तीन कारणों के कर्मों की उत्पत्ति होती है।

"लोभजन्य, द्वेषजन्य एवं मोहजन्य कर्म जिस प्रकृति से उत्पन्न होते हैं, वे फिर भले ही अल्प हों या बहुत, अविद्वान् के द्वारा उनको यहीं भोगना पड़ता है। उनके लिये दूसरा स्थान नहीं खोजना पड़ता॥

"अत: विद्वान् भिक्षु साधक को लोभ, द्वेष एवं मोहजन्य दोषों को जानने के लिये विद्या (ज्ञान) उत्पन्न कर सभी दुर्गतियों से मुक्त हो जाना चाहिये"॥ ●

५. हस्तकसूत्र : : सुख-शयन

ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) आड़वी के सिंसपावन में, जहाँ गौओं के गमनागमन का मार्ग था, तृणराशि के आसन पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय, आड़वीवासी हस्तक पैदल ही घूमता हुआ वहाँ आया और उसने वहाँ भगवान् को उस साधना-स्थिति में विराजमान देखा। तब वह उनके पास गया, तथा उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने भगवान् से पूछा—"भगवान्! क्या आप सुख से सोये?" "हाँ, कुमार! मैं सुख से सोया। एक बात और! इस लोक में जो सुख से सोते हैं उन में एक मैं हूँ।"

"भन्ते! यह हेमन्त ऋतु की ठण्ढी रात है। इस समय बर्फ पड़ती है। नीचे यह भूमि भी गौओं के चलने-फिरने से ऊँची नीची हो गयी है। यह नीचे बिछी हुई तृणराशि भी अल्प ही दिखाई दे रही है। इस वृक्ष पर पत्र भी कम ही हैं। ये ऊपर की ठण्ढी हवा नहीं रोक पाते। आपके ये काषाय वस्त्र भी ठण्ढे ही हैं। ऊपर से यह हेमन्त ऋतु की शरीर गला देनेवाली ठण्ढी हवा चल रही है, फिर भी,

"तेन हि, कुमार, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं व्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, कुमार, इधस्स गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा कूटागारं उल्लित्तावलित्तं निवातं फुसितग्गळं, पिहितवातपानं। तत्रस्स पल्लङ्को गोणकत्थतो पटिकत्थतो पटलिकत्थतो कदलिमिगपवरपच्चत्थरणो सउत्तरच्छदो उभतो लोहित-कूपधानो; तेलप्पदीपो चेत्थ झायेय्य; चतस्सो च पजापतियो मनापामनापेन पच्चुपट्ठिता अस्सु। तं किं मञ्ञसि,कुमार, सुखं वा सो सयेय्य नो वा? कथं वा ते एत्थ होती" ति?

"सुखं सो, भन्ते, सयेय्य। ये च पन लोके सुखं सेन्ति, सो तेसं अञ्ञतरो" ति।

"तं किं मञ्ञसि, कुमार, अपि नु तस्स गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा उप्पज्जेय्युं रागजा परिळाहा कायिका वा चेतसिका वा येहि सो रागजेहि परिळाहेहि परिडय्हमानो दुक्खं सयेय्या" ति?

"एवं, भन्ते" ति।

"येहि खो सो, कुमार, गहपति वा गहपतिपुत्तो वा रागजेहि परिळाहेहि परिडय्हमानो दुक्खं सयेय्य, सो रागो तथागतस्स पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। तस्माहं सुखमसयित्थं।

"तं किं मञ्ञसि, कुमार, अपि नु तस्स गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा उप्पज्जेय्युं

भगवन्, आप कह रहे हैं—'हाँ, कुमार! मैं सुख से ही सोया। तथा इस लोक में जो सुख से सोनेवाले हैं, उन में मैं एक हूँ?"

"तो, कुमार! मैं तुमसे ही पूछता हूँ, जैसा तुम उचित समझो उत्तर दो। क्या मानते हो, कुमार! यहाँ कोई धनी गृहपति या गृहपतिपुत्र हो, उसका एक सर्वसुविधासम्पन्न, सुन्दर, लिपा पुता, सब तरफ से खिड़की बन्द, आगल लगा हुआ सुन्दर प्रासाद हो। वहाँ लम्बा-चौड़ा पलंग बिछा हो जिस पर कदली मृग का चर्म बिछा हो जो सुन्दर चादर से ढका हो। दोनों तरफ लाल तकिये लगे हों, जहाँ दीपक का प्रकाश हो, चार स्त्रियाँ उसकी सुख-सुविधा पूछने के लिये चारों ओर खड़ी हों। क्या मानते हो, कुमार! ऐसी स्थिति में वह गृहपति सुख से सोयेगा या नहीं?"

"हाँ, भन्ते! वह सुख से ही सोयेगा। अपितु कहना चाहिये कि लोक में जो सुख से सोनेवाले हैं, उनमें वह एक है।"

"तो क्या मानते हों, कुमार! उस गृहपति या गृहपतिपुत्र को कभी रागजन्य सन्ताप हो जाय, उसे उस कारण कायिक या मानसिक वेदना होने लगें, क्या उस समय भी वह सुख से सो पायगा, या दुःख से?"

"दुःख से, भन्ते!"

"कुमार! वह गृहपति या गृहपतिपुत्र जिन रागजन्य पीड़ाओं को अनुभव दुःखपूर्वक सोता है, वे तथागत की रागजन्य पीड़ाएँ मूलतः नष्ट हो चुकी हैं, अब भविष्य में वे कभी उत्पन्न न होंगी। अतः मैं सुखपूर्वक सोया। (१)

"तो क्या मानते हो, कुमार! उस गृहपति या गृहपतिपुत्र को द्वेषजन्य सन्ताप ...पूर्ववत्...

दोसजा परिळाहा ...पे०... मोहजा परिळाहा कायिका वा चेतसिका वा येहि सो मोहजेहि [N.128] परिळाहेहि परिडय्हमानो दुक्खं सयेय्या'' ति? ''एवं, भन्ते'' ति। [B.137] ''ये हि खो सो, कुमार, गहपति वा गहपतिपुत्तो वा मोहजेहि परिळाहेहि परिडय्हमानो दुक्खं सयेय्य, सो मोहो तथागतस्स पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो [R.138] अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। तस्माहं सुखमसयित्थं ति।

''सब्बदा वे सुखं सेति, ब्राह्मणो परिनिब्बुतो।
यो न लिम्पति कामेसु, सीतिभूतो निरूपधि॥
''सब्बा आसत्तियो छेत्वा, विनेय्य हदये दरं।
उपसन्तो सुखं सेति, सन्ति पप्पुय्य चेतसो'' ति॥ ●

६. देवदूतसुत्तं : ''तीणिमानि, भिक्खवे, देवदूतानि। कतमानि तीणि? इध, भिक्खवे, एकच्चो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा, वाचाय दुच्चरितं चरित्वा, मनसा दुच्चरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला नानाबाहासु गहेत्वा यमस्स रञ्ञो दस्सेन्ति—'अयं, देव, पुरिसो अमत्तेय्यो अपेत्तेय्यो असामञ्ञो अब्रह्मञ्ञो, न कुले जेट्ठापचायी। इमस्स देवो दण्डं पणेतू' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा पठमं देवदूतं समनुयुञ्जति समनुगाहति समनु-

---

मोहजन्य कायिक मानसिक परिताप... वेदनाओं से दुःखी होता हुआ वह दुःखपूर्वक सोयगा?'' ''हाँ, भन्ते!''

''कुमार! जिन द्वेषजन्य... मोहजन्य परितापों से उत्पन्न शारीरिक एवं चैतसिक वेदनाओं के कारण वह सुखपूर्वक नहीं सो पाया, तथागत की वे वेदनाएँ मूलतः नष्ट हो चुकी हैं कि भविष्य में उत्पन्न होने का भी सामर्थ्य नहीं रह गया है। अतः मैं सुखपूर्वक सोया। (२-३)

''वह निर्वाणप्राप्त ब्राह्मण सुखपूर्वक ही सोता है जो कामरागों में लिप्त नहीं होता। जिसकी वासनाएँ शान्त हो चुकी हैं, जिसके चित्तविकार नष्ट हो चुके हैं॥

''जो सभी प्रकार की आसक्तियों को छिन्न भिन्न कर हृदय को सर्वविध भयों को दूर कर चुका है, वही (साधक भिक्षु), मन की शान्ति के कारण सुखपूर्वक सो पाता है॥'' ●

६. देवदूतसूत्र : : तीन देवदूत (जरा, व्याधि, मृत्यु)

''भिक्षुओ! ये तीन देवदूत होते हैं। कौन से तीन? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुरुष काया के माध्यम से... कोई वाणी के माध्यम से या कोई मन के माध्यम से दुराचार करता है,...। वह इस देहपात के बार मरणानन्तर अपायभूत, दुर्गतिमय विनिपात भूमि नरक में जा गिरता है। भिक्षुओ! वहाँ नरकपाल, दोनों बाहुओं से पकड़ कर इसको यमराज के सम्मुख यह कहते हुए प्रस्तुत करते हैं—''देव! इस पुरुष ने न माता की सेवा की, न पिता की, न श्रमणभाव की साधना की, न ब्राह्मण धर्म की, न कुल के बड़े-बूढ़ों का ही सम्मान किया। इसके लिये दण्ड का निर्धारण करें।''

''तब, भिक्षुओ! यमराज प्रथम देवदूत की ओर इसका ध्यान दिलाते हुए इससे पूछते हैं—

भासति—'अम्भो, पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु पठमं देवदूतं पातुभूतं' ति? सो एवमाह—'नाद्दसं, भन्ते' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु इत्थिं वा पुरिसं वा आसीतिकं वा नावुतिकं वा वस्ससतिकं वा जातिया जिण्णं गोपानसिवङ्कं भोग्गं दण्डपरायणं पवेधमानं गच्छन्तं आतुरं गतयोब्बनं खण्डदन्तं पलितकेसं विलूनं खल्लितसिरं वलितं तिलकाहतगत्तं' ति? सो एवमाह—'अद्दसं, भन्ते' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो, पुरिस, तस्स ते विञ्ञुस्स [B.138] सतो महल्लकस्स न एतदहोसि—अहं पि खोम्हि जराधम्मो जरं अनतीतो, हन्दाहं कल्याणं करोमि, कायेन वाचाय मनसा' ति? सो एवमाह—'नासक्खिस्सं, भन्ते। [R.139] पमादस्सं, भन्ते' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो, पुरिस, पमादताय न [N.129] कल्याणमकासि कायेन वाचाय मनसा। तग्घ त्वं, अम्भो पुरिस, तथा करिस्सन्ति यथा तं पमत्तं। तं खो पन ते एतं पापकम्मं नेव मातरा कतं, न पितरा कतं, न भातरा कतं, न भगिनिया कतं, न मित्तामच्चेहि कतं, न ञातिसालोहितेहि कतं, न देवताहि कतं, न समणब्राह्मणेहि कतं; अथ खो तयावेतं पापकम्मं कतं, त्वञ्ञेवेतस्स विपाकं पटिसंवेदिस्ससी' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा पठमं देवदूतं समनुयुञ्जित्वा समनुगाहित्वा

''क्यों रे पुरुष! मनुष्यभाव में रहते हुए तूँने वहाँ उत्पन्न हुए प्रथम देवदूत को नहीं देखा?'' वह बोला—''नहीं, भन्ते!''

''भिक्षुओ! तब यमराज ने उससे फिर पूछा—'क्या तूँने मनुष्यभाव में क्या ऐसे स्त्री या पुरुष को नहीं देखा जो जन्म से अस्सी या नब्बै या सौ वर्ष का होकर मकान की पुरानी धरण की तरह टेढ़ा हुआ, सहारे के लिये लाठी हाथ में लेकर काँपते काँपते चलते हुए, रोगी, युवावस्था पार कर चुके, टूटे दाँतों वाले, श्वेत बालों वाले केशरहित गंजे सिर वाले, झुर्री पड़े हुए शरीर में सर्वत्र काले एवं दुर्वर्ण चिह्नों वाले पुरुष को नहीं देखा?"''देखा तो था, भन्ते!''

''भिक्षुओ! तब यमराज ने उस पुरुष से कहा—'अरे! पुरुष तुम तो समझदार थे। वैसे लोगों को देखकर तुम्हें यह विचार नहीं हुआ कि मैं भी कभी बुड्ढा होऊँगा। अतः मुझे तन मन वचन से कुशल कर्म करने चाहिये?''

''नहीं, भन्ते! ऐसा विचार नहीं कर सका, मुझसे भूल (प्रमाद) हो गयी, भन्ते!''

''भिक्षुओ! तब उसको यमराज ने कहा—''अरे, पुरुष! तुमने प्रमाद के कारण ही तन मन एवं वाणी से कुशल कर्म नहीं किये। तुमने निश्चय ही वह किया जो एक प्रमादी किया करता है। तुमसे यह पापकर्म न पिता ने, न माता ने, न भाइयों ने, न बहनों ने, न मित्रों या साथियों ने कराया; अपितु तुमने यह स्वयं ही किया है, अतः इसका फल भी तुम ही भोगोगे।'' (१)

''भिक्षुओ! उसको यमराज ने प्रथम देवदूत के विषय में बताकर, दूसरे देवदूत के विषय में

समनुभासित्वा, दुतियं देवदूतं समनुयुञ्जति समनुगाहति समनुभासति—'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु दुतियं देवदूतं पातुभूतं' ति? सो एवमाह—'नाद्दसं, भन्ते' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु इत्थिं वा पुरिसं वा आबाधिकं दुक्खितं बाळ्हगिलानं, सके मुत्तकरीसे पलिपन्नं सेमानं, अञ्ञेहि वुट्ठापियमानं, अञ्ञेहि संवेसियमानं' ति? सो एवमाह—'अद्दसं, भन्ते' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, तस्स ते विञ्ञुस्स सतो महल्लकस्स न एतदहोसि—अहं पि खोम्हि ब्याधिधम्मो ब्याधिं अनतीतो, हन्दाहं कल्याणं करोमि कायेन वाचाय मनसा' ति? सो एवमाह—'नासक्खिस्सं, भन्ते। पमादस्सं, भन्ते' ति।

[R.140] ''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, पमादताय न कल्याणमकासि कायेन वाचाय मनसा। तग्घ त्वं, अम्भो पुरिस, तथा करिस्सन्ति यथा तं पमत्तं। तं खो पन ते एतं पापकम्मं नेव मातरा कतं, न पितरा कतं, न भारता कतं, न भगिगिया [B.139] कतं, न मित्तामच्चेहि कतं, न ञातिसालोहितेहि कतं, न देवताहि कतं, न समणब्राह्मणेहि कतं; अथ खो तयावेतं पापकम्मं कतं। त्वञ्ञेवेतस्स विपाकं पटिसंवेदिस्ससी' ति।

बताना आरम्भ किया—'अरे पुरुष! तुमने उन मनुष्यों में उत्पन्न उस द्वितीय देवदूत को भी नहीं देखा?' 'नहीं देखा, भन्ते!'

''तब, भिक्षुओ! यमराज ने फिर पूछा—'अरे पुरुष! क्या तुमने मनुष्यों के बीच रहते हुए किसी ऐसे पुरुष या स्त्री को भी नहीं देखा जोरोग से ग्रस्त एवं अतिशय कष्ट पा रहा हो, अपने भी मलमूत्र में लिपटा हुआ हो, दूसरे लोग उसे सहारा देकर उसकी परिचर्या कर रहे हों?''

''देखा था, भन्ते!''

'अरे पुरुष! तुम तो समझदार थे। वैसे लोगों को देखकर तुम्हें यह विचार नहीं हुआ कि मैं भी किसी दिन रोग से ग्रस्त हो सकता हूँ। अत: मुझे मन, वचन काय से कुछ कुशल कर्म करना चाहिये?' 'नहीं कर पाया, भन्ते! मुझसे प्रमाद हो गया, भन्ते!'

''तब उसको यमराज ने कहा—'अरे पुरुष! तुमने प्रमादवश ये कर्म किये। तुमने वही किया जो एक प्रमादी पुरुष किया करता है। तुमने ये पापकर्म न माता के कहने से किये ...पूर्ववत्... तुम ही अब इसका फल भोगोगे।' (२)

''इस तरह यमराज ने उस पुरुष को इस दूसरे देवदूत के विषय में बताकर तीसरे देवदूत के विषय में बताना आरम्भ किया—'रे पुरुष! तूँ ने मनुष्यों में रहते किसी तीसरे देवदूत को नहीं देखा?' 'नहीं, देखा, भन्ते!'

तब उसको यमराज ने पूछा—'क्या तुमने उन मनुष्यों में किसी ऐसे पुरुष या स्त्री को नहीं देखा जो एक दिन या दो दिन या तीन दिन का मरा हुआ हो, जिसका वह मृत शरीर फूल उठा हो, नीला (काला) पड़ गया हो, या कीड़े पड़ने से सड़ गया हो?' 'देखा था, भन्ते!'

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा दुतियं देवदूतं समनुयुञ्जित्वा समनुगाहित्वा समनुभासित्वा, ततियं देवदूतं समनुयुञ्जति समनुगाहति समनुभासति—'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु ततियं देवदूतं पातुभूतं' ति? सो एवमाह—'नाद्दसं, भन्ते' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस [N.130] मनुस्सेसु इत्थिं वा पुरिसं वा एकाहमतं वा द्वीहमतं वा तीहमतं वा उद्धुमातकं विनीलकं विपुब्बकजातं' ति? सो एवमाह—'अद्दसं, भन्ते' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, तस्स ते विञ्ञुस्स सतो महल्लकस्स न एतदहोसि—अहं पि खोम्हि मरणधम्मो मरणं अनतीतो, हन्दाहं कल्याणं करोमि कायेन वाचाय मनसा' ति? सो एवमाह—'नासक्खिस्सं, भन्ते। पमादस्सं, भन्ते' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, पमादताय न कल्याणमकासि कायेन वाचाय मनसा। तग्घ त्वं, अम्भो पुरिस, तथा करिस्सन्ति यथा तं पमत्तं। तं खो पन ते एतं पापकम्मं नेव मातरा कतं, न पितरा कतं, न भातरा कतं, न भगिनिया कतं, न मित्तामच्चेहि कतं, न ञातिसालोहितेहि कतं, न देवताहि कतं, न समणब्राह्मणेहि कतं; अथ खो तयावेतं पापकम्मं कतं। त्वञ्ञेवेतस्स विपाकं पटिसंवेदिस्ससी' ति।

''तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा ततियं देवदूतं समनुयुञ्जित्वा समनुगाहित्वा समनुभासित्वा तुण्ही होति। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला पञ्चविधबन्धनं नाम [R.141] कारणं करोन्ति। तत्तं अयोखिलं हत्थे गमेन्ति। तत्तं अयोखिलं दुतियस्मिं हत्थे गमेन्ति। तत्तं अयोखिलं पादे गमेन्ति। तत्तं अयोखिलं दुतियस्मिं पादे गमेन्ति। तत्तं अयोखिलं मज्झे उरस्मिं गमेन्ति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदियति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं व्यन्तीहोति।

[B.140] ''तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला सङ्कड्डित्वा कुधारीहि तच्छेन्ति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदियति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति।

''उसे देखकर यह विचार नहीं आया—किसी दिन मैं भी मर जाऊँगा, मेरे शरीर की भी यही दशा हो जायगी। अत: मुझे मन वचन कर्म से कुछ कुशल कर्म करने चाहिये। अरे पुरुष! तुमने तो वही किया जो एक प्रमादी किया करता है। तुमने ये कर्म न माता के कहने से किये ...पूर्ववत्...। तुमको इनका फल भोगना पड़ेगा।' (३)

''इस प्रकार यमराज उस पुरुष को तृतीय देवदूत के विषय में बताकर चुप हो गये। तब भिक्षुओ! वे यमदूत उस पुरुष को पाँच प्रकार का दण्ड देने के लिये ले गये। वहाँ उसके एक हाथ पर, एक पैर पर, दूसरे हाथ पर, दूसरे पैर पर तथा उसकी छाती पर उष्ण लौहपिण्ड रखा। उससे अत्यधिक दु:खद वेदनाएँ हुईं, परन्तु वह उन वेदनाओं को सहकर भी तब तक नहीं मरा जब तक उसके पापकर्म का दण्डभोग पूर्ण नहीं हुआ।

"तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला उद्धंपादं अधोसिरं गहेत्वा वासीहि तच्छेन्ति ...पे०...। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला रथे योजेत्वा आदित्ताय भूमिया सम्पज्जलिताय सजोतिभूताय सारेन्ति पि पच्चासारेन्ति पि ...पे०...। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला महन्तं अङ्गारपब्बतं [N.131] आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं आरोपेन्ति पि ...पे०...। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला उद्धंपादं अधोसिरं गहेत्वा तत्ताय लोहकुम्भिया पक्खिपन्ति, आदित्ताय सम्पज्जलिताय सजोतिभूताय। सो तत्थ फेणुद्देहकं पच्चमानो सकिं पि उद्धं गच्छन्ति, सकिं पि अधो गच्छति, सकिं पि तिरियं गच्छति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदियति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति।

तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला महानिरये पक्खिपन्ति। सो खो पन, भिक्खवे, महानिरयो—

"चतुक्कण्णो चतुद्वारो, विभत्तो भागसो मितो।
अयोपाकारपरियन्तो, अयसा पटिकुज्जितो॥
[R.142] "तस्स अयोमया भूमि, जलिता तेजसा युता।
समन्ता योजनसतं, फरित्वा तिट्ठति सब्बदा" ति॥

●

७. यमराजसुत्तं : "भूतपुब्बं, भिक्खवे, यमस्स रञ्ञो एतदहोसि—'ये किर, भो, लोके पापकानि कम्मानि करोन्ति ते एवरूपा विविधा कम्मकारणा करीयन्ति। अहो वताहं मनुस्सत्तं लभेय्यं, तथागतो च लोके उप्पज्जेय्य अरहं सम्मासम्बुद्धो, तं चाहं भगवन्तं

"भिक्षुओ! उन नरकपालों ने उस पापी को पैर ऊपर तथा सिर नीचा कर (औंधा लटका कर) कुल्हाड़ी से काटा... रथ के पीछे बाँधकर जलती भूमि पर आगे-पीछे, उलटा सीधा खींचा... उसको जलती अङ्गार राशि (पर्वत) पर चढ़ाया, उतारा... उसको औंधाकर उष्ण जल के लोह कटाह में गिराया, वह वहाँ मुख से झाग फेंकता हुआ कभी ऊपर आता था, कभी नीचे जाता था। इस प्रकार वह वहाँ विविध कष्ट भोगता हुआ भी तब तक नहीं मरा जब तक उसने अपने उन पापों के समस्त फल न भोग लिये। इस तरह, भिक्षुओ! वे नरकपाल उस पापी को उस भीषण नरक में भीषण यातनाएँ देते हैं। भिक्षुओ! वह महानिरय (महानरक) इस प्रकार का होता है—

"उस नरक के चार कोण होते हैं, चार द्वार होते हैं। वह अनेक विभागों में विभक्त होता है। इसके चारों ओर लौह का प्राकार (परकोटा) बना होता है। इसके ऊपर छत भी लौहनिर्मित ही होती है। नीचे फर्श (भूमि) भी लोहे से ढकी रहती है। उसके नीचे अग्नि जलते रहने के कारण, वह भी बहुत अधिक उष्ण रहती है। यह नरक एक सौ योजन तक फैला हुआ होता है। इसकी स्थायिता असन्दिग्ध है॥"

●

७. यमराजसूत्र : : त्रिविध पुद्गल

"भिक्षुओ! पहले कभी यमराज के मन में यह विचार हुआ—'लोक में जो भी पापकर्म होते हैं वे सब इन पाप कारणों से ही होते हैं। क्या ही अच्छा हो कि मैं भी मनुष्य लोक में उत्पन्न होऊँ, उधर तथागत भी लोक में उत्पन्न हों। मैं उनकी सेवा-आराधना करूँ। वे भगवान् मुझे धर्मोपदेश

पयिरुपासेय्यं। सो च मे भगवा धम्मं देसेय्य, तस्स चाहं भगवतो धम्मं आजानेय्यं' ति। तं खो पनाहं, भिक्खवे, न अञ्ञस्स समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा सुत्वा एवं वदामि, अपि च खो, भिक्खवे, यदेव मे सामं ञातं सामं दिट्ठं सामं विदितं तदेवाहं वदामी ति।

''चोदिता देवदूतेहि, ये पमज्जन्ति माणवा। [B.141]
ते दीघरत्तं सोचन्ति, हीनकायूपगा नरा॥
''ये च खो देवदूतेहि, सन्तो सप्पुरिसा इध।
चोदिता नप्पमज्जन्ति, अरियधम्मे कुदाचनं॥
''उपादाने भयं दिस्वा, जातिमरणसम्भवे।
अनुपादा विमुच्चन्ति, जातिमरणसङ्खये॥
''ते अप्पमत्ता सुखिनो, दिट्ठधम्माभिनिब्बुता।
सब्बवेरभयातीता, सब्बदुक्खं उपच्चगुं'' ति॥ ●

८. **चतुमहाराजसुत्तं :** ''अट्ठमियं, भिक्खवे, पक्खस्स चतुन्नं महाराजानं अमच्चा पारिसज्जा इमं लोकं अनुविचरन्ति—'कच्चि बहू मनुस्सा मनुस्सेसु मत्तेय्या पेत्तेय्या [N.132] सामञ्ञा ब्रह्मञ्ञा कुले जेट्ठापचायिनो उपोसथं उपवसन्ति पटिजागरोन्ति पुञ्ञानि करोन्ती' ति। चातुद्दसिं, भिक्खवे, पक्खस्स चतुन्नं महाराजानं पुत्ता इमं लोकं अनुविचरन्ति—'कच्चि बहू मनुस्सा मनुस्सेसु मत्तेय्या पेत्तेय्या सामञ्ञा ब्रह्मञ्ञा कुले जेट्ठापचायिनो [R.143]

करें, मैं उन भगवान् के उपदेश को सुनूँ।' भिक्षुओ! तुम्हें मैं यह बात, किसी भिक्षु या अन्य श्रमण या ब्राह्मण से सुनकर नहीं कह रहा हूँ; अपितु जो मैंने स्वयं जाना, स्वयं देखा, स्वयं समझा, उसी को मैं बता रहा हूँ।

''हीन देवदूतों द्वारा प्रेरित होकर जो मनुष्य यहाँ प्रमाद करते हैं वे चिरकाल तक हीनयोनियों में उत्पन्न होकर कष्ट भोगते हैं॥

''परन्तु उच्च श्रेणी के देवताओं द्वारा प्रेरणा पाकर जो सत्पुरुष यहाँ उत्पन्न होते हैं, वे आर्यधर्मों के आचरण में कभी प्रमाद नहीं करते॥

''जरामरण से सम्बद्ध उपादान (सांसारिक परिग्रह) में भय मान कर जो जन्म-मरण के विषय में यथाविधि जानकर उपादान से रहित रहते हैं, वे इस भवबन्धन से मुक्त हो जाते हैं॥

''वैसे लोग अप्रमत्त, सुखी, इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त करनेवाले, सर्वविध लौकिक वैर या भय से अतिक्रान्त रहते हैं। इस प्रकार वे लौकिक दुःखों को सर्वथा पार कर जाते हैं॥'' ●

त्रिविध पुद्गल

८. चतुर्महाराजसूत्र : :

''भिक्षुओ! पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन चारों महाराजाओं (दिक्पालों) के दूत एवं सभासद् इस लोक में यह देखने के लिये विचरण करते हैं—'यहाँ कितने अधिक मनुष्य माता-पिता की सेवा करते हैं, श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य के उपासक हैं, घर में बड़े बूढ़ों क' पूजा-सम्मान करते हैं, उपोसथ व्रत रखते हैं, सावधान रहते हुए पुण्यकर्म करते हैं।

उपोसथं उपवसन्ति पटिजागरोन्ति पुञ्ञानि करोन्ती' ति। तदहु, भिक्खवे, उपोसथे पन्नरसे चत्तारो महाराजानो सामञ्ञेव इमं लोकं अनुविचरन्ति—'कच्चि बहू मनुस्सा मनुस्सेसु मत्तेय्या पेत्तेय्या सामञ्ञा ब्रह्मञ्ञा कुले जेट्ठापचायिनो उपोसथं उपवसन्ति पटिजागरोन्ति पुञ्ञानि करोन्ती' ति।

''सचे, भिक्खवे, अप्पका होन्ति मनुस्सा मनुस्सेसु मत्तेय्या पेत्तेय्या सामञ्ञा ब्रह्मञ्ञा कुले जेट्ठापचायिनो उपोसथं उपवसन्ति पटिजागरोन्ति पुञ्ञानि करोन्ति। तमेनं, भिक्खवे, चत्तारो महाराजानो देवानं तावतिंसानं सुधम्माय सभाय सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं आरोचेन्ति—'अप्पका खो, मारिसा, मनुस्सा मनुस्सेसु मत्तेय्या पेत्तेय्या सामञ्ञा ब्रह्मञ्ञा कुले जेट्ठापचायिनो उपोसथं उपवसन्ति पटिजागरोन्ति पुञ्ञानि करोन्ती' ति।

[B.142] ''तेन खो, भिक्खवे, देवा तावतिंसा अनत्तमना होन्ति—'दिब्बा वत भो काया परिहायिस्सन्ति, परिपूरिस्सन्ति असुरकाया' ति।

''सचे पन, भिक्खवे, बहू होन्ति मनुस्सा मनुस्सेसु मत्तेय्या पेत्तेय्या सामञ्ञा ब्रह्मञ्ञा कुले जेट्ठापचायिनो उपोसथं उपवसन्ति पटिजागरोन्ति पुञ्ञानि करोन्ति। तमेनं, भिक्खवे, चत्तारो महाराजानो देवानं तावतिंसानं सुधम्माय सभाय सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं आरोचेन्ति—'बहू खो, मारिसा, मनुस्सा मनुस्सेसु मत्तेय्या पेत्तेय्या सामञ्ञा ब्रह्मञ्ञा कुले जेट्ठापचायिनो उपोसथं उपवसन्ति पटिजागरोन्ति पुञ्ञानि करोन्ती' ति। तेन, भिक्खवे, देवा तावतिंसा अत्तमना होन्ति—'दिब्बा वत, भो, काया परिपूरिस्सन्ति, परिहायिस्सन्ति असुरकाया' ति।

''पक्ष की चतुर्दशी के दिन, भिक्षुओ! इन चारों महाराजाओं के पुत्र इस लोक में यह देखने के लिये विचरण करते हैं कि यहाँ कितने अधिक लोग माता-पिता की सेवा ...पूर्ववत्... पुण्यकर्म करते हैं।

और, उपोसथ की पूर्णिमा के दिन स्वयं चारों महाराज इस लोक में यह देखने के लिये विचरण करते हैं कि यहाँ कितने अधिक लोग माता पिता की सेवा ...पूर्ववत्... पुण्यकर्म करते हैं।

''इस निरीक्षण के समय, भिक्षुओ! यदि ऐसे सत्कर्मा पुरुष अल्प दिखायी देते हैं जो ...पूर्ववत्... पुण्यकर्म करते हैं तो वे भिक्षुओ! चारों महाराज त्रायस्त्रिंश देवों को सुधर्मा सभा में जाकर सूचित करते हैं कि लोक में ऐसे लोग अल्पसङ्ख्यक हो गये हैं जो माता पिता की सेवा ...पूर्ववत्... पुण्यकर्म करते हैं।

''तब, भिक्षुओ! वे त्रायस्त्रिंश देव यह सुनकर चिन्तित होते हैं कि यों तो अब देवकायों की हानि होने लगेगी तथा असुरकायों की वृद्धि होने लगेगी।

''भिक्षुओ! यदि उक्त निरीक्षण के समय उन चारों महाराजाओं को ऐसे सत्कर्मा पुरुष अधिक दिखायी देते हैं तो वे चारों इसकी सूचना भी, उस त्रायस्त्रिंश देवों की सुधर्मा सभा में जाकर, देते हैं। तब वे त्रायस्त्रिंश देव प्रसन्न होते हैं कि अब देवकायों में वृद्धि होगी एवं असुरकायों की हानि।

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे अनुनयमानो तायं वेलायं इमं गाथं अभासि—

''चातुद्दसिं पञ्चदसिं या च पक्खस्स अट्ठमी। [N.133, R.144]
पाटिहारियपक्खं च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
उपोसथं उपवसेय्य, योपिस्स मादिसो नरो' ति॥

''सा खो पनेसा, भिक्खवे, सक्केन देवानमिन्देन गाथा दुग्गीता न सुगीता दुब्भासिता न सुभासिता। तं किस्स हेतु? सक्को हि, भिक्खवे, देवानमिन्दो अवीतरागो अवीतदोसो अवीतमोहो।

''यो च खो सो, भिक्खवे, भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा ब्रह्मचरियो कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञा विमुत्तो, तस्स खो एतं, भिक्खवे, भिक्खुनो कल्लं वचनाय—

''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी। ...पे०...॥

[B.143] ''तं किस्स हेतु? सो हि, भिक्खवे, भिक्खु वीतरागो, वीतदोसो वीतमोहो ति।

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे ...पे०...।

'चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी। ...पे०...।

''सा खो पनेसा, भिक्खवे, सक्केन देवानमिन्देन गाथा दुग्गीता न सुगीता दुब्भासिता न सुभासिता। तं किस्स हेतु? सक्को हि, भिक्खवे, देवानमिन्दो अपरिमुत्तो जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, अपरिमुत्तो दुक्खस्मा ति वदामि।

''भिक्षुओ! पहले कभी शक्र देवेन्द्र ने, सन्तुष्ट होते हुए, यह गाथा कही थी—'चतुर्दशी, पञ्चदशी या अष्टमी एवं प्रातिहार्य पक्ष में आठ अङ्गों से युक्त होकर वही पुरुष उपोसथ करेगा जो मेरे जैसा होगा।'

परन्तु, भिक्षुओ! देवराज इन्द्र द्वारा अपने मुख से ऐसी गाथा बोलना शोभा नहीं देता; क्योंकि, भिक्षुओ! न वह वीतराग है, न वीतद्वेष और न वीतमोह। हाँ, भिक्षुओ! कोई क्षीणाश्रव, पूर्ण धर्मपालक, कर्तव्य पूर्ण किया हुआ, सांसारिक भार को दूर फेंक कर अपना लक्ष्य पूर्ण कर चुका हो, जिसके भवबन्धन क्षीण हो चुके हों, सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर विमुक्त हो चुका हो, ऐसे भिक्षु के मुख से निःसृत होने पर ही यह गाथा शोभा देती है कि—

'चतुर्दशी, पञ्चदशी या अष्टमी...पूर्ववत्... जो मेरे जैसा होगा। यह क्यों? क्योंकि वह भिक्षु वीतराग है, वीतद्वेष है तथा वीतमोह है।'

भिक्षुओ! पहले और भी देवेन्द्र शक्र ने, सन्तुष्ट होते हुए, यह गाथा कही थी—'चतुर्दशी, पञ्चदशी या अष्टमी...पूर्ववत्... जो मेरे जैसे होगा।'

''परन्तु, भिक्षुओ! देवराज शक्र द्वारा अपने मुख से यह गाथा बोलना शोभा नहीं देता;

"यो च खो सो, भिक्खवे, भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञा विमुत्तो, तस्स खो एतं, भिक्खवे, भिक्खुनो कल्लं वचनाय—

[R.145] "चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी। ...पे०... ॥

[N.134] "तं किस्स हेतु? सो हि, भिक्खवे, भिक्खु परिमुत्तो जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, परिमुत्तो दुक्खस्मा ति वदामी" ति।

९. सुखुमालसुत्तं : "सुखुमालो अहं, भिक्खवे, परमसुखुमालो अच्चन्त-सुखुमालो। मम सुदं, भिक्खवे, पितु निवेसने पोक्खरणीयो कारिता होन्ति। एकत्थ सुदं, भिक्खवे, उप्पलं वप्पति, एकत्थ पदुमं, एकत्थ पुण्डरीकं, यावदेव ममत्थाय। कासिकं, [B.144] भिक्खवे, सु मे तं वेठनं होति, कासिका कञ्चुका, कासिकं निवासनं, कासिको उत्तरासङ्गो। रत्तिन्दिवं खो पन मे सु तं, भिक्खवे, सेतच्छत्तं धारीयति—'मा नं फुसि सीतं वा उण्हं वा तिणं वा रजो वा उस्सावो वा' ति।

"तस्स मय्हं, भिक्खवे, तयो पासादा अहेसुं—एको हेमन्तिको, एको गिम्हिको, एको वस्सिको। सो खो अहं, भिक्खवे, वस्सिके पासादे वस्सिके चत्तारो मासे निप्पुरिसेहि तूरियेहि परिचारयमानो न हेट्ठापासादं ओरोहामि। यथा खो पन, भिक्खवे, अञ्ञेसं निवेसने दासकम्मकरपोरिसस्स कणाजकं भोजनं दीयति विलङ्गदुतियं, एवमेवस्सु मे, भिक्खवे, पितु निवेसने दासकम्मकरपोरिसस्स सालिमंसोदनो दीयति।

क्योंकि जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास (पश्चात्ताप) रहित नहीं है। अतः वह दुःख से मुक्त नहीं है—ऐसा मेरा मानना है।

"हाँ, भिक्षुओ! कोई ज्ञानी क्षीणाश्रव...पूर्ववत्... भिक्षु यह गाथा बोले तो उसके मुख से यह शोभा देती है; ...क्योंकि वह जाति, जरा, मरण ...पूर्ववत्... रहित है। वह दुःखमुक्त है—ऐसा मेरा मानना है॥"

९. सुकुमारसूत्र : : त्रिविध सुकुमारता

"भिक्षुओ! मैं १. सुकुमार हूँ, २. उत्तम सुकुमार हूँ, ३. अतिशय सुकुमार हूँ। भिक्षुओ! मेरे लिये मेरे पिता के आवास में अनेक पुष्करणियाँ बनी हुई थीं। उनमें नाना प्रकार के कमल के फूल खिले होते थे—उत्पल भी, पद्म भी, पुण्डरीक भी। मैंने कभी काशी के अतिरिक्त किसी अन्य चन्दन का उपयोग नहीं किया। मेरे सब वस्त्र—वेष्टन, कञ्चुक, चोला एवं उत्तरासङ्ग—सभी कुछ काशी के बने हुए वस्त्रों के होते थे। रात दिन मेरे सेवक मुझ पर श्वेत छत्र लगाये रखते थे कि मुझपर शीत, घाम (ताप), धूल, गर्दा या ओस न गिरे।

"उस समय, भिक्षुओ! मेरे लिये तीन प्रासाद बने हुए थे—एक शरद् ऋतु के लिये, एक ग्रीष्म ऋतु के लिये, एक वर्षा ऋतु के लिये। उनमें मैं वर्षाऋतु वाले प्रासाद में, साधारण पुरुषों से दूर, नृत्य, गीत वाद्य का आनन्द लेता हुआ रहता था। मुझे कभी उस प्रासाद के नीचे उतरने की आवश्यकता ही नहीं होती थी। जैसे भिक्षुओ! दूसरे घरों में नौकर चाकर परिचारकों को खाने के

''तस्स मय्हं, भिक्खवे, एवरूपाय इद्धिया समन्नागतस्स एवरूपेन च सुखुमालेन एतदहोसि—'अस्सुतवा खो पुथुज्जनो अत्तना जराधम्मो समानो जरं अनतीतो परं जिण्णं दिस्वा अट्टीयति हरायति जिगुच्छति अत्तानंयेव अतिसित्वा, अहं पि खोम्हि जराधम्मो जरं अनतीतो। अहं चेव खो पन जराधम्मो समानो जरं अनतीतो परं जिण्णं दिस्वा अट्टीयेय्यं हरायेय्यं जिगुच्छेय्यं न मेतं अस्स पतिरूपं' ति। तस्स मय्हं, भिक्खवे, इति पटि- [R.146] सञ्चिक्खतो यो योब्बने योब्बनमदो सो सब्बसो पहीयि।

''अस्सुतवा खो पुथुज्जनो अत्तना ब्याधिधम्मो समानो ब्याधिं अनतीतो परं ब्याधितं दिस्वा अट्टीयति हरायति जिगुच्छति अत्तानंयेव अतिसित्वा—'अहं पि खोम्हि ब्याधिधम्मो ब्याधिं अनतीतो, अहं चेव खो पन ब्याधिधम्मो समानो ब्याधिं अनतीतो परं ब्याधिकं दिस्वा अट्टीयेय्यं हरायेय्यं जिगुच्छेय्यं, न मेतं अस्स पतिरूपं' ति। तस्स मय्हं, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खतो यो आरोग्ये आरोग्यमदो सो सब्बसो पहीयि।

''अस्सुतवा खो पुथुज्जनो अत्तना मरणधम्मो समानो मरणं अनतीतो परं [N.135] मदं दिस्वा अट्टीयति हरायति जिगुच्छति अत्तानंयेव अतिसित्वा—'अहं पि खोम्हि मरणधम्मो, समानो मरणं अनतीतो परं मतं दिस्वा अट्टीयेय्यं हरायेय्यं जिगुच्छेय्यं, न मेतं अस्स पतिरूपं' ति। तस्स मय्हं, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खतो यो जीविते [B.145] जीवितमदो सो सब्बसो पहीयी ति।

लिये मोटा अन्न दिया जाता था, परन्तु मेरे पिता के घर में नौकर चाकरों को शालि चावल का भात ही खाने के लिये दिया जाता था।

''भिक्षुओ! मुझ ऐसे सुकुमार की ऐसी जीवनचर्या थी। एक दिन मुझे यह विचार हुआ—'कोई मूर्ख साधारणजन जो जरास्वभाव का होने के कारण जरा (बुढ़ापे) को अतिक्रान्त नहीं कर पाता, अतः, समय आने पर, अपने में अतिशय बुढ़ापा देखकर दुःखी होता है, हैरान होता है, पश्चात्ताप करता है। मैं भी जराधर्मा हूँ, मैं भी इसको अतिक्रान्त नहीं कर पाऊँगा; परन्तु मैं भी इसके कारण इन सामान्यजनों के समान दुःखी होऊँ, हैरान होऊँ, पश्चात्ताप करूँ—यह मेरे शोभानुरूप नहीं है।' इस तरह विचार करते हुए मेरा समस्त यौवनमद पूर्णतः क्षीण हो गया।

...पूर्ववत्... विचार हुआ—'कोई साधारण मूर्खजन जो व्याधिधर्मा होने के कारण व्याधि को अतिक्रान्त न कर सके, तथा उसके कारण वह दुःखी हो, हैरान हो, पश्चात्ताप करे। मैं भी मनुष्य होने के कारण व्याधिधर्मा हूँ, मैं उसको अतिक्रान्त नहीं कर पाऊँगा; परन्तु इसके कारण मैं एक साधारण जन की भाँति दुःखी, हैरान होऊँ या पश्चात्ताप करूँ—यह भी मेरे लिये शोभास्पद नहीं है।' इस प्रकार विचार करते हुए मेरा अपने स्वास्थ्य के विषय में जो आरोग्यमद था वह सर्वथा प्रहीण हो गया।

''...पूर्ववत्... 'कोई मूर्ख साधारण जन अपने को मरणधर्मा मानकर भी मृत्यु को अतिक्रान्त न कर पाने के कारण दुःखी, हैरान तथा पश्चात्ताप करता है, उसी प्रकार मैं भी मरणधर्मा होते हुए,

''तयोमे, भिक्खवे, मदा। कतमे तयो? योब्बनमदो, आरोग्यमदो, जीवितमदो। योब्बनमदमत्तो वा, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा, वाचाय दुच्चरितं चरित्वा, मनसा दुच्चरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। आरोग्यमदमत्तो वा, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो ...पे०... जीवितमदमत्तो वा, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा, वाचाय दुच्चरितं चरित्वा, मनसा दुच्चरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। योब्बनमदमत्तो वा, भिक्खवे, भिक्खु सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। आरोग्यमदमत्तो वा, भिक्खवे, भिक्खु ...पे०... [R.147] जीवितमदमत्तो वा, भिक्खवे, भिक्खु सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तती ति।

''ब्याधिधम्मा जराधम्मा, अथो मरणधम्मिनो।
यथाधम्मा तथासन्ता, जिगुच्छन्ति पुथुज्जना॥
''अहं चेतं जिगुच्छेय्यं, एवंधम्मेसु पाणिसु।
न मेतं पतिरूपस्स, मम एवंविहारिनो॥
''सोहं एवं विहरन्तो, ञत्वा धम्मं निरूपधिं।
आरोग्ये योब्बनस्मिं च, जीवितस्मिं च ये मदा॥
''सब्बे मदे अभिभोस्मि, नेक्खम्मे दट्ठु खेमतं।
तस्स मे अहु उस्साहो, निब्बानं अभिपस्सतो॥

मृत्यु को अतिक्रान्त न कर पाने के कारण, दुःखी, हैरान होऊँ; यह मेरे लिये शोभास्पद नहीं है।' इस प्रकार विचार करते हुए, जीवित रहने पर भी, मेरा जीवितमद सर्वथा प्रहीण हो गया।

''भिक्षुओ! लोक में (साधारण मनुष्यों को) ये तीन मद होते हैं—१. यौवनमद, २. आरोग्यमद एवं ३. जीवितमद। १. यौवनमद से मत्त होकर कोई मूर्ख पृथग्जन काय वाक् एवं मन से दुराचार करता है। वह ऐसा कर, देहपात के बाद, मरणानन्तर अपायभूत दुर्गतिमय नरकयोनि में जा गिरता है। इसी तरह आरोग्य मद से मत्त होकर ...पूर्ववत्... जीवित मद से मत्त कोई पृथग्जन त्रिविधि दुराचरण कर मरणानन्तर अपायभूत दुर्गतिमय नरक में जा गिरता है।

''भिक्षुओ! यौवनमद, आरोग्यमद एवं जीवितमद से मत्त भिक्षु साधक धर्म (शिक्षा) को छोड़कर पुनः गृहस्थ धर्म में मिल सकता है॥

''मूर्ख पृथग्जन व्याधिस्वभाव, जरास्वभाव एवं मरणस्वभाव होने पर भी वह इसके कारण दुःखी तथा हैरान होता है॥

''यदि मैं भी इस कारण, इन बातों से इन अन्य प्राणियों के समान दुःखी या हैरान होऊँ तो यह मेरे लिये शोभास्पद नहीं है॥

''इन तीनों (यौवन, आरोग्य एवं जीवित) मदों पर विचार करते हुए निरुपधि धर्म को

"नाहं भब्बो एतरहि, कामानि पटिसेवितुं।
अनिवत्ति भविस्सामि, ब्रह्मचरियपरायणो" ति॥

१०. आधिपतेय्यसुत्तं : "तीणिमानि, भिक्खवे, आधि- [N.136, B.146] पतेय्यानि। कतमानि तीणि? अत्ताधिपतेय्यं, लोकाधिपतेय्यं, धम्माधिपतेय्यं। कतमं च, भिक्खवे, अत्ताधिपतेय्यं? इव, भिक्खवे, भिक्खु अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो पनाहं चीवरहेतु अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। न पिण्डपातहेतु, न सेनासनहेतु, न इतिभवाभवहेतु अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। अपि च खोम्हि ओतिण्णो जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो। अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा ति। अहं चेव खो पन यादिसके कामे [R.140] ओहाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो तादिसके वा कामे परियेसेय्यं ततो वा पापिट्ठतरे, न मेतं पतिरूपं' ति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'आरद्धं खो पन मे विरियं भविस्सति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, पस्सद्धो कायो असारद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं' ति। सो अत्तानंयेव अधिपतिं करित्वा अकुसलं पजहति, कुसलं भावेति, सावज्जं पजहति, अनवज्जं भावेति, सुद्धं अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **अत्ताधिपतेय्यं**।

जानकर इन तीनों मदों पर विजय पाकर नैष्काम्य साधना की तरफ बढ़ने लगा। और अन्त में मैं निर्वाण के साक्षात्कार की स्थिति में आ गया॥

"अतः मेरे लिये यह शोभास्पद नहीं है कि मैं अन्य साधारण जनों की तरह कामभोगों का सेवन करूँ। मैं तो धर्मसाधना करता हुआ निर्वाण की ओर ही बढ़ूँगा॥" ●

१०. आधिपत्यसूत्र : : तीन स्वामित्व

भिक्षुओ! ये तीन आधिपत्य (स्वामित्व) कहलाते हैं—१. आत्माधिपत्य, २. लोकाधिपत्य एवं ३. धर्माधिपत्य।

"भिक्षुओ! इनमें कौन सा है **आत्माधिपत्य?** कोई साधक भिक्षु किसी वन, वृक्षमूल या किसी शून्य स्थान में बैठकर यों चिन्तन करे—'मैं केवल चीवरप्राप्ति के लिये घर छोड़कर प्रव्रजित नहीं हुआ हूँ। न भिक्षाप्राप्ति के लिये, न शयनासन की प्राप्ति के लिये या न यह होने या यह न होने के लिये घर छोड़कर प्रव्रजित हुआ हूँ। अपितु, मैं जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास से युक्त यहाँ अवतरित हुआ हूँ। क्यों न मैं इस समस्त दुःखसमूह के नाशहेतु साधना करूँ। मैं जिन कामभोगों को छोड़कर घर से प्रव्रजित हुआ हूँ, उनकी ही या उनसे भी अधिक पापमय कर्मों की खोज करूँ'—यह मेरी शोभा के अनुरूप नहीं है! वह फिर विचार करता है—'मैंने एतदर्थ जो वीर्यारम्भ किया है वह मध्य में ही रुकेगा नहीं। मेरी स्मृति भी असम्मृष्ट ही रहेगी। शान्त काय उत्साही रहेगा तथा मेरा समाहित चित्त भी एकाग्र रहेगा।' इस तरह, वह आत्मा को ही अधिपति मानकर अकुशल धर्मों के त्याग कर निदोष धर्मों की भावना करता हुआ स्वयं को शुद्ध (निर्दोष) बनाने के प्रयास में लगता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—**आत्माधिपत्य**। (१)

''कतमं च, भिक्खवे, लोकाधिपतेय्यं? इध, भिक्खवे, भिक्खु अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो पनाहं चीवरहेतु अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। न पिण्डपातहेतु, न सेनासनहेतु, न इतिभवाभवहेतु अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। अपि च खोम्हि ओतिण्णो जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो। अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति। अहं चेव खो पन एवं पब्बजितो समानो कामवितक्कं वा वितक्केय्यं, ब्यापादवितक्कं वा वितक्केय्यं, विहिंसावितक्कं वा वितक्केय्यं, महा खो पनायं लोकसन्निवासो। महन्तस्मिं खो पन लोकसन्निवासे सन्ति समणब्राह्मणा इद्धिमन्तो दिब्बचक्खुका परचित्तविदुनो। ते दूरतो पि पस्सन्ति, आसन्ना पि न [B.147] दिस्सन्ति, चेतसा पि चित्तं जानन्ति। ते पि मं एवं जानेय्युं—'पस्सथ, भो, इमं कुलपुत्तं, सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो समानो वोकिण्णो विहरति पापकेहि अकुसलेहि धम्मेही' ति। देवता पि खो सन्ति इद्धिमन्तिनियो दिब्बचक्खुका परचित्तविदुनियो। ता दूरतो पि पस्सन्ति, आसन्ना पि न दिस्सन्ति, चेतसा पि चित्तं जानन्ति। ता पि मं एवं जानेय्युं—'पस्सथ, भो, इमं कुलपुत्तं, सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो [N.137] समानो वोकिण्णो विहरति पापकेहि अकुसलेहि धम्मेही' ति। सो इति पटि-[R.149] सञ्चिक्खति—'आरद्धं खो पन मे विरियं भविस्सति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, पस्सद्धो कायो असारद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं' ति। सो लोकंयेव अधिपतिं करित्वा अकुसलं पजहति, कुसलं भावेति, सावज्जं पजहति, अनवज्जं भावेति, सुद्धं अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **लोकाधिपतेय्यं**।

भिक्षुओ! यह **लोकाधिपत्य** क्या है? यहाँ कोई साधक भिक्षु वन में जाकर, या किसी वृक्ष के नीचे या किसी एकान्त स्थान में बैठकर यों विचार करता है—'मैं न चीवरप्राप्ति... पिण्डपातप्राप्ति... शयनासनप्राप्ति... न यह या वह बन जाने के लिये घर से बेघर होकर प्रव्रजित हुआ हूँ। मैं तो जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास एवं दुःख से समन्वित होकर यहाँ अवतरित हुआ हूँ। क्यों न मैं इस दुःखसमूह के नाशहेतु प्रयत्न आरम्भ करूँ। मैं जैसे कामभोगों को छोड़कर घर से बेघर होकर प्रव्रजित हुआ, वैसे ही क्यों न मैं कामवितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिसावितर्क पर विचार करूँ। यह संसार में रहना तो बहुत लम्बा है। इस लम्बे भववास में ऐसे ऋद्धिमान् ज्ञानवान् परचित्तवेदी श्रमण-ब्राह्मण है। वे दूर से ही जान लेते हैं, परन्तु स्वयं समीप से भी नहीं दिखायी देते, वे स्वचित्त से ही परचित्त की बातें जान लेते हैं। वे मेरे विषय में भी जानते होंगे—'यह कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक घर छोड़कर प्रव्रजित हुआ है अपने पापमय अकुशल धर्मों **के** परित्याग के लिये'। इसी तरह देवता भी ऐसे ऋद्धिमान् ज्ञानवान् ...पूर्ववत्... परित्याग के लिये।' वह आगे इस प्रकार विचार करता है—'मैंने यह जो प्रयास आरम्भ किया है वह एकाकी नहीं रहेगा, मेरी स्मृति भी मूढ़ नहीं रहेगी, प्रश्रब्ध (शान्त) काय भी उत्साही रहेगा, मेरा समाहित चित्त भी एकाग्र रहेगा।' वह लोक को ही स्वामी मानकर अकुशल का त्याग एवं कुशल की भावना आरम्भ

"कतमं च, भिक्खवे धम्माधिपतेय्यं? इध, भिक्खवे, भिक्खु अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो पनाहं चीवरहेतु अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। न पिण्डपातहेतु, न सेनासनहेतु, न इतिभवाभवहेतु अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। अपि च खोम्हि ओतिण्णो जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो। अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति। स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही ति। सन्ति खो पन मे सब्रह्मचारी जानं पस्सं विहरन्ति। अहं चेव खो पन एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजितो समानो कुसीतो विहरेय्यं पमत्तो, न मेतं अस्स पतिरूपं' ति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'आरद्धं खो पन मे विरियं भविस्सति असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, पस्सद्धो कायो असारद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं' ति। सो धम्मंयेव अधिपतिं करित्वा अकुसलं पजहति, कुसलं भावेति, सावज्जं पजहति, अनवज्जं भावेति, सुद्धं अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **धम्माधिपतेय्यं**।

इमानि खो, भिक्खवे तीणि आधिपतेय्यानी ति।

"नत्थि लोके रहो नाम, पापकम्मं पकुब्बतो।
अत्ता ते पुरिस जानाति, सच्चं वा यदि वा मुसा॥
"कल्याणं वत भो सक्खि, अत्तानं अतिमञ्ञसि। [B.148]
यो सन्तं अत्तनि पापं, अत्तानं परिगूहसि॥

करता है तथा सदोष कर्मों का त्याग, निर्दोष कर्मों की भावना करता हुआ स्वयं को शुद्ध (निर्दोष) बनाने के प्रयास में लगता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—**लोकाधिपत्य**। (२)

भिक्षुओ! **धर्माधिपत्य** क्या कहलाता है? भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु किसी वन या वृक्षमूल या एकान्त (शून्य) स्थान में ...पूर्ववत्... समस्त दुःखसमूह के नाशहेतु प्रयास करूँ। भगवान् का धर्म स्वाख्यात है सान्दृष्टिक है, अकालिक है, 'एहिपास्सिक' है, औपनयिक है, विद्वानों द्वारा अक्षरश: जाना जा सकता है। मेरे साथी सब्रह्मचारी भी समझ-बूझकर साधना कर रहे हैं। तब फिर मैं ही इस स्वाख्यात धर्मविनय में प्रव्रज्या लेकर आलसी बनकर प्रमाद करता रहूँ—यह मेरे लिये शोभानुरूप न होगा। वह आगे विचार करता है—'मैंने यह जो प्रयास आरम्भ किया है ...पूर्ववत्... स्वयं को शुद्ध बनाने के प्रयास लगता है।' भिक्षुओ! इसे कहते हैं—**धर्माधिपत्य**। (३)

"भिक्षुओ! ये कहलाते हैं तीन आधिपत्य।

"पापकर्म करने वाले पुरुष कहीं एकान्त स्थान समझने की भूल न करे; क्योंकि वह स्वयं तो उस कर्म के विषय में जानता ही है कि वह पापकर्म सत्य है या मिथ्या॥

"अरे मित्र! तूँ अपना कल्याण भी चाहता है और अपने पापकर्मों को स्वयं से ही छिपाना चाहकर अपना तिरस्कार भी कर रहा है॥

[R.150] ''पस्सन्ति देवा च तथागता च, लोकस्मिं बालं विसमं चरन्तं।
[N.138] तस्मा हि अत्ताधिपतेय्यको च, लोकाधिपो च निपको च झायी॥
''धम्माधिपो च अनुधम्मचारी, न हीयति सच्चपरक्कमो मुनि।
पसय्ह मारं अभिभुय्य अन्तकं, यो च फुसी जातिक्खयं पधानवा।
सो तादिसो लोकविदू सुमेधो, सब्बेसु धम्मेसु अतम्मयो मुनी'' ति॥ ●

देवदूतवग्गो चतुत्थो॥

तस्सुद्दानं

ब्रह्म आनन्द सारिपुत्तो, निदानं हत्थकेन च।
दूता दुवे च राजानो, सुखुमालाधिपतेय्येन चा ति॥ ●

५. चूळवग्गो

१. सम्मुखीभावसुत्तं : ''तिण्णं, भिक्खवे, सम्मुखीभावा सद्धो कुलपुत्तो बहुं पुञ्ञं पसवति। कतमेसं तिण्णं? सद्धाय, भिक्खवे, सम्मुखीभावा सद्धो कुलपुत्तो बहुं पुञ्ञं पसवति। देय्यधम्मस्स, भिक्खवे, सम्मुखीभावा सद्धो कुलपुत्तो बहुं पुञ्ञं पसवति। दक्खिणेय्यानं, भिक्खवे, सम्मुखीभावा सद्धो कुलपुत्तो बहुं पुञ्ञं पसवति। इमेसं खो, भिक्खवे, तिण्णं सम्मुखीभावा सद्धो कुलपुत्तो बहुं पुञ्ञं पसवती'' ति॥ ●

''पापकर्म करते हुए इस पापी को और कोई देखे या न देखे, सर्वज्ञ देवता एवं तथागत (भगवान् बुद्ध) तो देख ही रहे हैं। अत: चतुर साधक को आत्माधिपत्य, लोकाधिपत्य एवं धर्माधिपत्य का आश्रय लेकर ध्यानभावना करनी चाहिये॥

ऐसे धर्माधिपत्य का आश्रय लेकर धर्मपूर्वक साधना करता हुआ मुनि अपने सत्य पराक्रम से पीछे नहीं हटता। वह माररूपी यमराज को परास्त कर प्रयत्न करता हुआ साधना करता हुआ अपनी जन्म-मरण परम्परा को सर्वथा क्षीण कर लेता है। ऐसा वह लोकज्ञ बुद्धिमान् साधक सभी धर्मों से अलिप्त रहता हुआ अपनी (निर्वाण) साधना में लगा रहता है॥''

देवदूतवर्ग चतुर्थ सम्पन्न॥ ●

इस सूत्र (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. सब्रह्मकसूत्र, २. आनन्दसूत्र, ३. सारिपुत्रसूत्र, ४. निदानसूत्र, ५. हस्तकसूत्र, ६. देवदूतसूत्र, ७. यमराजसूत्र, ८. चतुर्महाराजसूत्र, ९. सुकुमारसूत्र, १०. आधिपत्यसूत्र॥ ●

५. चूड़वर्ग

१. सम्मुखीभावसूत्र : : तीन धर्मों का लक्ष्य

''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों को लक्ष्य (सम्मुखीभाव) बनाने वाला साधक अपने लिये बहुत पुण्यों का सञ्चय कर लेता है। कौन से तीन?

''भिक्षुओ! **श्रद्धा** को लक्ष्य बनाकर साधना करने वाला... **दान** को लक्ष्य बनाने वाला

२. तिट्ठानसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे, ठानेहि सद्धो पसन्नो वेदितब्बो। कतमेहि तीहि? सीलवन्तानं दस्सनकामो होति, सद्धम्मं सोतुकामो होति, विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति मुत्तचागो पयतपाणि वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि ठानेहि सद्धो पसन्नो वेदितब्बो।

''दस्सनकामो सीलवतं, सद्धम्मं सोतुमिच्छति। [B.149]
विनये मच्छेरमलं, स वे सद्धो ति वुच्चती'' ति॥ ●

३. अत्थवससुत्तं : ''तयो, भिक्खवे, अत्थवसे सम्पस्समानेन [N.139, R.151] अलमेव परेसं धम्मं देसेतुं। कतमे तयो? यो धम्मं देसेति सो अत्थप्पटिसंवेदी च होति धम्मप्पटिसंवेदी च। यो धम्मं सुणाति सो अत्थप्पटिसंवेदी च होति धम्मप्पटिसंवेदी च। यो चेव धम्मं देसेति यो च धम्मं सुणाति उभो अत्थप्पटिसंवेदिनो च होन्ति धम्मप्पटिसंवेदिनो च। इमे खो, भिक्खवे, तयो अत्थवसे सम्पस्समानेन अलमेव परेसं धम्मं देसेतुं'' ति॥ ●

४. कथापवत्तिसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे, ठानेहि कथा पवत्तिनी होति। कतमेहि तीहि? यो धम्मं देसेति सो अत्थप्पटिसंवेदी च होति धम्मप्पटिसंवेदी च। यो धम्मं सुणाति

साधक... तथा **दान लेने योग्य उत्तम पुरुष** को सामने रखने वाला साधक अपने लिये बहुत पुण्यराशि एकत्र कर लेता है॥'' ●

२. त्रिस्थानसूत्र : : तीन धर्मों में श्रद्धा

''भिक्षुओ! तीन स्थानों (धर्मों) में श्रद्धा रखने वाला पुरुष वास्तविक श्रद्धालु कहलाता है। कौन से तीन?

१. ''सदाचारी पुरुषों के दर्शन की निरन्तर इच्छा रखे, २. सद्धर्म के श्रवण की इच्छा रखे तथा ३. मात्सर्य मल से रहित चित्त वाला होकर गृहस्थ धर्म का पालन करे, मुक्तहस्त होकर दान करे, दानशील (याचयोग) बने, व्यवसर्ग (त्याग) रत रहे, स्वकीय अर्जित सम्पत्ति में से दानविभाजन करता रहे। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों का पालन करने वाला वास्तविक श्रद्धालु कहलाता है।

''शीलवानों के दर्शन की इच्छा, सद्धर्म के श्रवण की इच्छा तथा मात्सर्यमल के नाश की इच्छा रखनेवाला श्रद्धालु कहलाता है॥'' ●

३. अर्थवशसूत्र : : विविध उपयोग वाला धर्मोपदेश

''भिक्षुओ! तीन उपयोग देखते हुए दूसरों को धर्मोपदेश करना आवश्यक है। कौन तीन? १. जो धर्मोपदेश करता है तथा उसका उपयोग जानता है, २. जो धर्मश्रवण करता है तथा उसका उपयोग जानता है, ३. तथा जो धर्मोपदेश करता है एवं धर्मश्रवण करता है—दोनों ही अर्थ एवं धर्म का उपयोग जानता है। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों का उपयोग देखकर ही दूसरों को धर्मोपदेश करना उचित होता है।'' ●

४. कथाप्रवृत्तिसूत्र : : त्रिविध कथा

''भिक्षुओ! ये त्रिविध कथाएँ श्रोता की रुचिवर्धक होती हैं। कौन सी तीन? १. जो अर्थ एवं

सो अत्थप्पटिसंवेदी च होति धम्मप्पटिसंवेदी च। यो चेव धम्मं देसेति यो च धम्मं सुणाति उभो अत्थप्पटिसंवेदिनो च होन्ति धम्मप्पटिसंवेदिनो च। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि ठानेहि कथा पवत्तिनी होति" ति॥ ●

५. **पण्डितसुत्तं** : "तीणिमानि, भिक्खवे, पण्डितपञ्ञत्तानि सप्पुरिसपञ्ञत्तानि। [B.150] कतमानि तीणि? दानं, भिक्खवे, पण्डितपञ्ञत्तं सप्पुरिसपञ्ञत्तं। पब्बज्जा, भिक्खवे, पण्डितपञ्ञत्ता सप्पुरिसपञ्ञत्ता। मातापितूनं, भिक्खवे, उपट्ठानं पण्डितपञ्ञत्तं सप्पुरिसपञ्ञत्तं। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि पण्डितपञ्ञत्तानि सप्पुरिसपञ्ञत्तानी ति।

"सब्भि दानं उपञ्ञत्तं, अहिंसा संयमो दमो।
मातापितु उपट्ठानं, सन्तानं ब्रह्मचारिनं॥
"सतं एतानि ठानानि, यानि सेवेथ पण्डितो।
अरियो दस्सनसम्पन्नो, स लोकं भजते सिवं" ति॥ ●

६. **सीलवन्तसुत्तं** : "यं, भिक्खवे, सीलवन्तो पब्बजिता गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरन्ति। तत्थ मनुस्सा तीहि ठानेहि बहुं पुञ्ञं पसवन्ति। कतमेहि तीहि? [R.152] कायेन, वाचाय, मनसा। यं, भिक्खवे, सीलवन्तो पब्बजिता गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरन्ति। तत्थ मनुस्सा इमेहि तीहि ठानेहि बहुं पुञ्ञं पसवन्ती" रति॥ ●

७. **सङ्खतलक्खणसुत्तं** : "तीणिमानि, भिक्खवे, सङ्खतस्स सङ्खतलक्खणानि।

धर्मसहित धर्मोपदेश करे, २. जो अर्थ एवं धर्मसहित धर्मोपदेश सुने, ३. या जो धर्मोपदेश करे तथा उसको अर्थ धर्म सहित सुने भी। भिक्षुओ! ये तीनों ही तरह की कथाएँ रुचिवर्धक होती हैं॥" ●

५. पण्डितसूत्र : : तीन धर्म

"भिक्षुओ! ये तीनों धर्म पण्डितों द्वारा, सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित तथा अनुमोदित किये गये हैं। कौन से तीन? एक—**दान,** पण्डितों द्वारा सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित है। दो—**प्रव्रज्या** पण्डितों द्वारा...। तीन—माता पिता की सेवा पण्डितों द्वारा सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित तथा अनुमोदित किये गये हैं। भिक्षुओ! ये तीनों ही धर्म पण्डितों द्वारा... अनुमोदित किये गये हैं॥" ●

"सज्जनों ने दान, अहिंसा, इन्द्रियसंयम, एवं चित्तनिग्रह (दम), माता पिता की सेवा, सन्त एवं धर्मसाधकों की सेवा॥

"ये सज्जनों के आचरणीय धर्म है। इनका, बुद्धिमानों को भी, आचरण करना ही चाहिये। ऐसे आचरण करनेवाले आर्य एवं सम्यग्दृष्टिसम्पन्न साधक का लोक में कल्याण ही होता है॥" ●

६. शीलवत्सूत्र : : त्रिविध शीलवान्

"भिक्षुओ! शीलवान् प्रव्रजित जिस ग्राम या निगम में रहते हैं वह ग्राम या निगम भी तीन स्थानों से अतिशय पुण्यसञ्चय करता है। कौन से तीन स्थान? काय से, मन से एवं वचन से॥"...

७. संस्कृतलक्षणसूत्र : : तीन संस्कृत लक्षण

"भिक्षुओ! संस्कृत (कृत्रिम) की पहचान के ये तीन लक्षण (चिह्न) हैं। कौन से तीन? उस

कतमानि तीणि? उप्पादो पञ्ञायति, वयो पञ्ञायति, ठितस्स अञ्ञथत्तं [N.140] पञ्ञायति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि सङ्खतस्स सङ्खतलक्खणानी'' ति॥ ●

८. **असङ्खतलक्खणसुत्तं :** ''तीणिमानि, भिक्खवे, असङ्खतस्स असङ्खतलक्खणानि। कतमानि तीणि? न उप्पादो पञ्ञायति, न वयो पञ्ञायति, न ठितस्स अञ्ञथत्तं पञ्ञायति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि असङ्खतस्स असङ्खतलक्खणानी'' ति॥

९. **पब्बतराजसुत्तं :** ''हिमवन्तं, भिक्खवे, पब्बतराजं निस्साय महासाला तीहि वड्ढीहि वड्ढन्ति। कतमाहि तीहि? साखापत्तपलासेन वड्ढन्ति, तचपपटिकाय वड्ढन्ति, [B.151] फेग्गुसारेन वड्ढन्ति। हिमवन्तं, भिक्खवे, पब्बतराजं निस्साय महासाला इमाहि तीहि वड्ढीहि वड्ढन्ति।

''एवमेव खो, भिक्खवे, सद्धं कुलपतिं निस्साय अन्तो जनो तीहि वड्ढीहि वड्ढति। कतमाहि तीहि? सद्धाय वड्ढति, सीलेन वड्ढति, पञ्ञाय वड्ढति। सद्धं, भिक्खवे, कुलपतिं निस्साय अन्तो जनो इमाहि तीहि वड्ढीहि वड्ढती ति।

''यथा पि पब्बतो सेलो, अरञ्ञस्मिं ब्रहावने।
तं रुक्खा उपनिस्साय, वड्ढन्ते ते वनप्पती॥
''तथेव सीलसम्पन्नं, सद्धं कुलपतिं इध।

(संस्कृत) का उत्पाद दिखायी देता है, नाश दिखायी देता है, तथा उसकी स्थिति का अन्यथात्व (परिवर्तन) दिखायी देता है। भिक्षुओ! संस्कृत की पहचान के ये तीन ही लक्षण हैं॥'' ●

८. असंस्कृतलक्षणसूत्र : : तीन असंस्कृत लक्षण

''भिक्षुओ! असंस्कृत की पहचान के ये तीन लक्षण हैं। कौन से तीन? उसका उत्पाद नहीं दिखायी देता, उसका नाश भी नहीं दिखायी देता, न उसकी स्थिति में अन्यथात्व ही दिखायी देता है॥'' ●

९. पर्वतराजसूत्र : : त्रिविध वृद्धि

''भिक्षुओ! पर्वतराज हिमालय के सहारे से बड़े वृक्षों की तीन प्रकार की वृद्धियाँ होती है। कौन सी तीन? उनकी शाखाओं एवं पत्रों में वृद्धि होती है, उनकी छाल एवं पपड़ियों में वृद्धि होती है, तथा उनकी स्थिरता का रक्षक बल बढ़ने लगता है। इस तरह, भिक्षुओ! पर्वतराज हिमालय का सहारा लेकर वहाँ के बड़े वृक्ष तीन प्रकार की वृद्धि प्राप्त करते हैं।

''इसी प्रकार, भिक्षुओ! (रत्नत्रय के प्रति) श्रद्धालु कुलपति के आश्रय से उसके आश्रय में रहनेवाला परिवार तीन वृद्धियों को प्राप्त करता है। कौन सी तीन? वे श्रद्धा, शील तथा प्रज्ञा—इन तीन की वृद्धि प्राप्त करते हैं। भिक्षुओ! उस श्रद्धालु कुलपति के सहारे से उसका आश्रित परिवार इन तीन वृद्धियों को प्राप्त करता है।

जैसे पर्वतराज हिमालय का आश्रय लेकर वहाँ के वनों तथा अरण्यों के बड़े वृक्ष बढ़ते हैं तथा उन बड़े वृक्षों का सहारा लेकर वहाँ के छोटे छोटे वनस्पति (पेड़ पौधे) बढ़ने लगते हैं॥

उपनिस्साय वड्ढन्ति, पुत्तदारा च बन्धवा।
अमच्चा ञातिसङ्घा च, ये चस्स अनुजीविनो॥
''त्यास्स सीलवतो सीलं, चागं सुचरितानि च।
[R.153] पस्समानानुकुब्बन्ति, अत्तमत्थं विचक्खणा॥
''इध धम्मं चरित्वान, मग्गं सुगतिगामिनं।
नन्दिनो देवलोकस्मिं, मोदन्ति कामकामिनो'' ति॥ ●

१०. आतप्पकरणीयसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे, ठानेहि आतप्पं करणीयं। कतमेहि तीहि? अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय आतप्पं करणीयं, अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय आतप्पं करणीयं, उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अधिवासनाय आतप्पं करणीयं। इमेहि तीहि, भिक्खवे, ठानेहि आतप्पं करणीयं।

[N.141] ''यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय आतप्पं करोति, अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय आतप्पं करोति, उप्पन्नानं सारीरिकानं [B.152] वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अधिवासनाय आतप्पं करोति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु आतापी निपको सतो सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया'' ति॥ ●

''उसी प्रकार शीलसम्पन्न, श्रद्धालु कुलपति का सहारा लेकर उसके परिवार के स्त्री, पुत्र भाई, बान्धव, अमात्य, सम्बन्धिजन तथा उसके नौकर चाकर सभी की वृद्धि होने लगती है॥

''वे सभी इसके शील का अनुसरण करते हुए स्वयं भी सदाचार का पालन करने लगते हैं, इसी प्रकार इसके त्याग एवं सच्चरित्रता का, अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये, बुद्धिमत्तापूर्वक प्रयोग करते हैं।

''इस प्रकार वे यहाँ धर्माचरण करते हुए, देहपात के बाद, सुगतिगामी मार्ग का आश्रयण कर देवलोक में जाकर यथेच्छ सुखोपभोग करते हैं॥'' ●

१०. आताप्यकरणीयसूत्र : : त्रिविध प्रयास

भिक्षुओ! तीन स्थानों के लिये प्रयास (आताप्य) करना चाहिये। कौन से तीन? १. अनुत्पन्न पापों एवं अनुत्पन्न अकुशल धर्मों का उत्पाद न हो—इसके लिये प्रयास करना चाहिये; २. अनुत्पन्न कुशल धर्मों का उत्पाद हो—इसके लिये प्रयास करना चाहिये; तथा उत्पन्न दुःखमय, तीव्र, खर, परिणाम में कटु, अप्रिय, अरुचिकर, एवं प्राणहारी वेदनाओं का उपशमन हो—इसके लिये प्रयास करना चाहिये।

भिक्षुओ! जो साधक भिक्षु अनुत्पन्न अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये प्रयास करता है, अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पादहेतु प्रयास करता है, तथा उत्पन्न दुःखमय, तीव्र, खर, कटु, अप्रिय,

११. महाचोरसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो महाचोरो सन्धिं पि छिन्दति, निल्लोपं पि हरन्ति, एकागारिकं पि करोति, परिपन्थे पि तिट्ठति। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, महाचोरो विसमनिस्सितो च होति, गहननिस्सितो च होति, बलवनिस्सितो च होति। कथं च, भिक्खवे, महाचोरो विसमनिस्सितो होति? इध, भिक्खवे, महाचोरो नदीविदुग्गं वा निस्सतो होति पब्बतविसमं वा। एवं खो, भिक्खवे, महाचोरो विसमनिस्सितो होति।

''कथं च, भिक्खवे, महाचोरो गहननिस्सितो होति? इध, भिक्खवे, महाचोरो तिणगहनं वा निस्सितो होति, रुक्खगहनं वा रोधं वा महावनसण्डं वा। एवं खो, [R.154] भिक्खवे, महाचोरो गहननिस्सितो होति।

''कथं च, भिक्खवे, महाचोरो बलवनिनिस्सतो होति? इध, भिक्खवे, महाचोरो राजानं वा राजमहामत्तानं वा निस्सितो होति। तस्स एवं होति—'सचे मं कोचि किञ्चि वक्खति, इमे मे राजानो वा राजमहामत्ता वा परियोधाय अत्थं भणिस्सन्ती' ति। सचे नं कोचि किञ्चि आह, त्यास्स राजानो वा राजमहामत्ता वा परियोधाय अत्थं भणन्ति। एवं खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो महाचोरो सन्धिं पि छिन्दति, निल्लोपं पि हरति, एकागारिकं पि करोति, परिपन्थे पि तिट्ठति।

अरुचिकर एवं प्राणहारी वेदनाओं के उपशमनहेतु प्रयास करता है, भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु प्रयास करने वाला तथा इस कार्य में चतुर होता है। वह अपने दुःखों का अन्त करने में समर्थ होता है॥''

११. महाचौरसूत्र

''भिक्षुओ! तीन अङ्गों से युक्त बड़ा चौर सेंध भी लगा सकता है, लूटमार एवं डाका डाल सकता है, चौरी भी कर सकता है, बाधा या सङ्कट भी उपस्थित कर सकता है। किन तीन अङ्गों से? भिक्षुओ! जो महाचौर विषमनिश्रित हो, जो गहननिशृत हो, जो बलवन्निश्रित हो।

''भिक्षुओ! कौन चौर 'विषमनिश्रित' कहलाता है? जो नदी के ऊँचे नीचे कगारों का सहारा पकड़े हुए है, या पहाड़ों की ऊँची नीची कन्दराओं का सहारा लिये हुए है, भिक्षुओ! ऐसा चौर 'विषमनिश्रित' कहलाता है। (१)

''और कैसे, भिक्षुओ! कोई महाचौर 'गहननिश्रित' कहलाता है? भिक्षुओ! जो चौर विशाल तृणराशि (घास का ढेर) का सहारा लिये रहता है, घने वृक्षों के झुरमुट का सहारा लिये रहता है, किसी विशाल अवरोध (रुकावट) का सहारा लिये रहता है, किसी बीहड़ वन का सहारा लिये रहता है, ऐसा महाचौर 'गहननिश्रित' कहलाता है। (२)

''तथा, भिक्षुओ! कैसा चौर 'बलवन्निश्रित' कहलाता है? कोई महाचौर किसी राजा का, या राजमहामात्यों का आश्रित्य (सहारा लिये) होता है। तब उसको यह होता है—'यदि कोई मुझे कुछ कहेगा तो ये राजा या राजमहामात्य मेरी रक्षा में तत्काल सन्नद्ध हो जायँगे।' वस्तुतः यदि कोई उसे

"एवमेव खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो पापभिक्खु खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, पापभिक्खु विसमनिस्सितो च होति गहननिस्सितो च बलवनिस्सितो च।

[N.142] "कथं च, भिक्खवे, पापभिक्खु विसमनिस्सितो होति? इध, भिक्खवे, पापभिक्खु विसमेन कायकम्मेन समन्नागतो होति, विसमेन वचीकम्मेन समन्नागतो होति, विसमेन [B.153] मनोकम्मेन समन्नागतो होति। एवं खो, भिक्खवे, पापभिक्खु विसमनिस्सितो होति।

"कथं च, भिक्खवे, पापभिक्खु बलवनिस्सितो होति? इध, भिक्खवे, पापभिक्खु राजानं वा राजमहामत्तानं वा निस्सितो होति। तस्स एवं होति—'सचे ...पे०...।

"कथं च, भिक्खवे, पापभिक्खु गहननिस्सितो होति? इध, भिक्खवे, पापभिक्खु मिच्छादिट्ठिको होति अन्तग्गाहिकाय दिट्ठिया समन्नागतो होति। एवं खो, भिक्खवे, पापभिक्खु गहननिस्सितो होति। एवं खो, भिक्खवे, पापभिक्खु बलवनिस्सितो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो पापभिक्खु खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवती" ति॥

चूळवग्गो पञ्चमो॥ ●

कुछ कहता है तो ये राजा या राजमहामात्य उसकी रक्षा में तत्पर हो जाते हैं। भिक्षुओ! ऐसा महाचौर बलवन्निश्रित कहलाता है। भिक्षुओ! यों इन तीन अङ्गों से युक्त चौर के लिये सब कुछ साध्य है। यह सेंध भी लगा सकता है, लूट-मार एवं डाका भी डाल सकता है, चौरी भी कर सकता है, किसी के लिये बड़ी बाधा का सङ्कट भी उपस्थित कर सकता है। (३)

"इसी तरह, भिक्षुओ! इन तीन अङ्गों से युक्त कोई पापी भिक्षु भी अपने को समाज से कटा-पिटा, एवं सदोष मानता है, तथा विद्वान् लोग भी उसको दोषी ही बताते हैं। तथा वह पापभिक्षु कहीं विषमनिश्रित होता है, कहीं गहननिश्रित या कहीं बलवन्निश्रित होता है।

"कैसे कोई, भिक्षुओ! पापभिक्षु 'विषमनिश्रित' कहलाता है? भिक्षुओ! कोई पापभिक्षु विषम कायकर्म से, विषम वाक्कर्म से, विषम मनः कर्म से युक्त होता है। ऐसा पापभिक्षु 'विषमनिश्रित' कहलाता है।

"तथा कैसे कोई पापभिक्षु 'गहननिश्रित' कहलाता है? भिक्षुओ! कोई पापभिक्षु मिथ्यादृष्टिक एवं अन्तग्राहिका मिथ्यादृष्टि से युक्त होता है। इस तरह का भिक्षु, भिक्षुओ! 'गहननिश्रित' कहलाता है।

"तथा कैसे कोई पापभिक्षु 'बलवन्निश्रित' कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पापभिक्षु किन्हीं राजा या राजमहामात्यों पर आधृत होता है। तब उसको यह विचार होता है—'यदि कोई मुझे कुछ बोलेगा तो ये राजा या राजमहामात्य मेरी ओर से उसका विरोध करेंगे।' होता भी यही है कि

तस्सुद्दानं

सम्मुखी ठानत्थवसं, पवत्ति पण्डित सीलवं।
सङ्खतं पब्बतातप्पं, महाचोरेनेकादसा ति॥

पठमपण्णासको समत्तो॥ ●

६. ब्राह्मणवग्गो

दुतिय पण्णासको

१. पठमद्वेब्राह्मणसुत्तं : अथ खो द्वे ब्राह्मणा जिण्णा वुद्धा महल्लका [B.154] अद्धगता वयोअनुप्पत्ता वीसवस्ससतिका जातिया येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते ब्राह्मणा भगवन्तं एतदवोचुं—"मयमस्सु, भो गोतम, ब्राह्मणा जिण्णा वुद्धा महल्लका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता वीसवस्ससतिका जातिया; ते [N.143] चम्हा अकतकल्याणा अकतकुसला अकतभीरुत्ताणा। ओवदतु नो भवं गोतमो, अनुसासतु, नो भवं गोतमो यं अम्हाकं अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

जब कोई उस भिक्षु का विरोध करता है तो राजा या राजमहामात्य उस पापभिक्षु के पक्ष का समर्थन करते हैं। इस तरह, भिक्षुओ! वह पापी भिक्षु 'बलवन्निश्रित' कहलाता है।

"इस प्रकार, भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त वह पापभिक्षु अपने आपको समाज से कटा पिटा एवं दोषवान् मानता है, तथा विद्वान् लोग भी उसको दोषी ही बताते हैं। तथा ऐसा पापकर्म करता हुआ वह पापभिक्षु अपने लिये भी बहुत सा पापसञ्चय करता रहता है॥"

चूड़वर्ग पञ्चम सम्पन्न॥ ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. सम्मुखीभावसूत्र, २. त्रिस्थानसूत्र, ३. अर्थवशसूत्र, ४. कथाप्रवृत्तिसूत्र, ५. पण्डितसूत्र, ६. शीलवत्सूत्र, ७. संस्कृतलक्षणसूत्र, ८. असंस्कृतसूत्र, ९. पर्वतराजसूत्र, १०. आतप्यकरणीयसूत्र, ११. महाचौरसूत्र।

प्रथम पञ्चाशत्क सम्पन्न॥ ●

६. ब्राह्मणवर्ग

द्वितीय पञ्चाशत्क

१. प्रथम ब्राह्मणद्वयसूत्र : :

कभी कोई जीर्ण, वृद्ध, जीवन का लम्बा मार्ग पार किये हुए, अवस्थाप्राप्त, आयु से एक सौ बीस वर्ष के दो ब्राह्मण, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आये। आकर वे कुशल-मङ्गल समाचार पूछने के बाद, एक ओर बैठ गये। तब उन्होंने भगवान् से यों पूछा—"भौ गौतम! हम दोनों जीर्ण ...पूर्ववत्... ब्राह्मण हैं; परन्तु हमने न कोई माङ्गलिक कर्म किये हैं, न कोई कुशल कर्म, न जीवन

''तग्घ तुम्हे, ब्राह्मणा, जिण्णा वुड्ढा महल्लका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता वीसवस्ससतिका जातिया; ते चत्थ अकतकल्याणा अकतकुसला अकतभीरुत्ताणा। उपनीयति खो अयं, ब्राह्मणा, लोको जराय ब्याधिना मरणेन। एवं उपनीयमाने खो, ब्राह्मणा, लोके जराय ब्याधिना मरणेन, यो इध कायेन संयमो वाचाय संयमो मनसा संयमो, तं तस्स पेतस्स ताणं च लेणं च दीपं च सरणं च परायणं चा ति।

''उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानि॥
''योध कायेन संयमो, वाचाय उद चेतसा।
तं तस्स पेतस्स सुखाय होति, यं जीवमानो पकरोति पुञ्ञं'' ति॥ ●

[B.155, R.156] **२. दुतियद्वेब्राह्मणसुत्तं :** अथ खो द्वे ब्राह्मणा जिण्णा वुड्ढा महल्लका अद्धगता वयोअनुप्पता वीसवस्ससतिका जातिया येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते ब्राह्मणा भगवन्तं एतदवोचुं—''मयमस्सु, भो गोतम, ब्राह्मणा जिण्णा वुड्ढा महल्लका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता वीसवस्ससतिका जातिया; ते चम्हा अकतकल्याणा अकतकुसला अकतभीरुत्ताणा। ओवदतु नो भवं गोतमो, अनुसासतु नो भवं गोतमो यं अम्हाकं अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया'' ति।

''तग्घ तुम्हे, ब्राह्मणा, जिण्णा वुड्ढा महल्लका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता वीसवस्ससतिका जातिया; ते चत्थ अकतकल्याणा अकतकुसला अकतभीरुत्ताणा। आदित्तो खो अयं, ब्राह्मणा, लोको जराय ब्याधिना मरणेन। एवं आदित्तो खो, ब्राह्मणा, लोके जराय

में अभयप्रद कर्म ही किये हैं। अत: भो गौतम! आप हमें ऐसा धर्मोपदेश करें जिसका श्रवण एवं आचरण चिरकाल तक हमारे लिये सुखदायी हो, तथा हितकारी हो।''

''ब्राह्मणो! वस्तुत: तुम अपना जीवन बहुत अधिक बिता चुके हो, तुम्हारा यह बुढ़ापा भी बहुत समय से चल रहा है। तुम अब भी मरण-भय से बचने के लिये कुछ सुखदायक पुण्य कर्म करो॥

''क्योंकि जो यहाँ जीवित रहते हुए तन मन एवं वचन से पुण्यकर्म करता है, वे पुण्यकर्म मरने के बाद परलोक में भी उसका साथ देते हैं॥'' ●

२. द्वितीय ब्राह्मणद्वयसूत्र ::

तब कोई दूसरे जीर्ण ...पूर्ववत्... दो ब्राह्मण... भगवान् से यों निवेदन करने लगे—''भो गौतम! हम दोनों जीर्ण ...पूर्ववत्... चिरकाल तक हमारे लिये सुखदायक एवं हितकारी हो।''

''ब्राह्मणो! वस्तुत: तुमने अपना बहुत जीवन पार कर लिया है। तुम्हारा बुढ़ापा आये भी बहुत दिन हो चले। परन्तु तुमने अभी तक कोई कुशल कर्म नहीं किया। ब्राह्मणो! यह समस्त संसार जरा, व्याधि एवं मरण—इन तीन धर्मों से जल रहा है। इस प्रकार इस लोक के जलते रहने पर काय

ब्याधिना मरणेन, यो इध कायेन संयमो वाचाय संयमो मनसा संयमो, तं तस्स पेतस्स ताणं च लेणं च दीपं च सरणं च परायणं चा ति।

"आदित्तस्मिं अगारस्मिं, यं नीहरति भाजनं। [N.144]
तं तस्स होति अत्थाय, नो चयं तत्थ डय्हति॥
"एवं आदित्तो खो लोको, जराय मरणेन च।
नीहरेथेव दानेन, दिन्नं होति सुनीहतं॥
"योध कायेन संयमो, वाचाय उद चेतसा।
तं तस्स पेतस्स सुखाय होति, यं जीवमानो पकरोति पुञ्ञं" ति॥ ●

३. **अञ्ञतरब्राह्मणसुत्तं :** अथ खो अञ्ञतरो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि ...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो सो ब्राह्मणो [B.156] भगवन्तं एतदवोच—"'सन्दिट्ठिको धम्मो सन्दिट्ठिको धम्मो' ति, भो गोतम, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भो गोतम, सन्दिट्ठिको धम्मो होति अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही" ति?

"रत्तो खो, ब्राह्मण, रागेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तब्याबाधाय पि [R.157] चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेतेति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। रागे पहीने नेवत्तब्याबाधाय पि चेतेति, न परब्याबाधाय पि चेतेति, न

वाक् एवं मन का संयम ही इन प्राणियों के मरने पर इनका त्राण, शरणस्थल, प्रकाश, शरण एवं आधार बनेगा।

"किसी भी वासस्थान के प्रज्वलित होने पर जो वस्तुएँ तत्काल बाहर निकाल ली जायगीं वही उनके कार्य में आ सकेंगी या जो वहाँ जली न हों॥

"इसी तरह, यह समस्त संसार जरा एवं मरण धर्मों से जल रहा है। अत: दान कर्म द्वारा इसमें से जो कुछ बचा सकोगे वह दिया हुआ दान ही तुम्हारा अर्थसाधक होगा।

"प्राणियों द्वारा यहाँ जो काय, वाक् एवं मन पर संयम कर लिया जायगा तथा जीवित रहते जो पुण्यकर्म कर लिया जायगा वही, मरने के बाद, उनके प्रयोजन का साधक होगा॥" ●

३. अन्यतरब्राह्मणसूत्र : : त्रिविध दोषनाशक धर्म

तब कोई ब्राह्मण... भगवान् से यों पूछने लगा—"भो गौतम! आपके द्वारा उपदिष्ट धर्म 'साधना द्वारा प्रत्यक्ष देखा जा सकनेवाला' कहा जाता है, भो गौतम! यह (धर्म) कैसे साधना द्वारा प्रत्यक्ष देखा जा सकने वाला है (सान्दृष्टिक), इसकी साधना में क्यों अधिक समय नहीं लगता (अकालिक), क्यों इसके विषय में 'आओ देखो' कहकर साधक को इसकी साधना हेतु उत्साहित किया जाता है (एहिपस्सिक), तथा यह समीप ले जाने वाला (औपनयिक) कैसे हैं? एवं विद्वानों द्वारा इसका पृथक् रूप से कैसे ज्ञान किया जा सकता है (पच्चत्तं वेदितब्ब)?"

"ब्राह्मण! यहाँ कोई संसार में आसक्ति (राग) वाला पुरुष आसक्ति से अभिभूत (वश में) होकर वहीं अधिक मन लगाकर, स्वयं को हानि पहुँचाता है, दूसरों को स्वयं एवं अन्य—दोनों को

उभयब्याबाधाय पि चेतेति, न चेतसिकं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। एवं पि खो, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिको धम्मो होति ...पे०...। दुट्ठो खो, ब्राह्मण, दोसेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेत्तेति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। दोसे पहीने नेवत्तब्याबाधाय पि चेतेति, न परब्याबाधाय पि चेतेति, न उभयब्याबाधाय पि चेतेति, न चेतसिकं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। एवं पि खो, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिको धम्मो होति ...पे०...। मूळ्हो खो, ब्राह्मण, मोहेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेत्तेति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। मोहे पहीने नेवत्तब्याबाधाय पि चेतेति, न [B.157] परब्याबाधाय पि चेतेति, न उभयब्याबाधाय पि चेतेति, न चेतसिकं दुक्खं दोमनस्सं [N.145] पटिसंवेदेति। एवं खो, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिको धम्मो होति अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही'' ति।

''अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति; एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

४. परिब्बाजकसुत्तं : अथ खो अञ्ञतरो ब्राह्मणपरिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो सो ब्राह्मणपरिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—''सन्दिट्ठिको धम्मो सन्दिट्ठिको धम्मो' ति, भो गोतम, वुच्चति। कित्तावता नु

हानि पहुँचाता है, तथा मानसिक दुःख एवं दौर्मनस्य का अनुभव करता है। परन्तु इस आसक्ति के प्रहीण होने पर, वह न स्वयं न पर, न इन दोनों को हानि पहुँचाता है तथा न मानसिक दुःख एवं दौर्मनस्य का अनुभव करता है। ब्राह्मण! इस प्रकार यह धर्म सान्दृष्टिक..., औपनयिक कहलाता है।

''द्वेष भाव रखने वाला पुरुष भी द्वेष के वश में होकर स्वयं को दूसरों को तथा दोनों को हानि पहुँचाने का मन बनाता है। परन्तु द्वेष के प्रहीण होने पर ...पूर्ववत्... औपनयिक कहलाता है।

''मोहचित्त पुरुष भी मोह के वश में होकर स्वयं को ...पूर्ववत्... औपनयिक कहलाता है।''

''बहुत अच्छा कहा, भो गौतम, बहुत उत्तम कहा। जैसे भो गौतम! कोई औंधे को सीधा कर दे ...पूर्ववत्... जीवनपर्यन्त मैं आपके शरण में आ गया हूँ॥'' ●

४. परिव्राजकसूत्र : : त्रिविध दोषनाशक सद्धर्म

तब कोई ब्राह्मणपरिव्राजक ...पूर्ववत्... यों पूछने लगा—''भो गौतम! आपके द्वारा उपदिष्ट धर्म 'साधना द्वारा प्रत्यक्ष देखा जा सकने वाला' ...पूर्ववत्... कैसे ज्ञान किया जा सकता है?''

खो, भो गोतम, सन्दिट्ठिको धम्मो होति अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही'' ति?

''रत्तो खो, ब्राह्मण, रागेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेतेति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। रागे पहीने नेवत्तब्याबाधाय पि चेतेति, न परब्याबाधाय पि चेतेति, न उभयब्याबाधाय पि चेतेति, न चेतसिकं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति।

''रत्तो खो, ब्राह्मण, रागेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो कायेन दुच्चरितं [R.158] चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। रागे पहीने नेव कायेन दुच्चरितं चरति, न वाचाय दुच्चरितं चरति, न मनसा दुच्चरितं चरति।

''रत्तो खो, ब्राह्मण, रागेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति, परत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति, उभयत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति। रागे पहीने अत्तत्थं पि यथाभूतं पजानाति, परत्थं पि यथाभूतं पजानाति, उभयत्थं पि यथाभूतं [B.158] पजानाति। एवं पि खो, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिको धम्मो होति ...पे०...। दुट्ठो खो, ब्राह्मण, दोसेन ...पे०... मूळ्हो खो, ब्राह्मण, मोहेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेतेति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। मोहे पहीने नेवत्तब्याबाधाय पि चेतेति, न परब्याबाधाय पि चेतेति, न [N.146] उभयब्याबाधाय पि चेतेति, न चेतसिकं, दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। मूळ्हो खो, ब्राह्मण, मोहेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो, कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। मोहे पहीने नेव कायेन दुच्चरितं चरति, न वाचाय दुच्चरितं चरति, न मनसा

''ब्राह्मण! यहाँ कोई रागवान् पुरुष राग से आबद्ध होकर दूसरों को हानि पहुँचाने की इच्छा करता है... दौर्मनस्य अनुभव करता है। ...पूर्ववत्...।

''ब्राह्मण! वहाँ कोई रागवान् पुरुष राग से आबद्ध होकर काय वाक् एवं मन से दुराचार करता है...। राग के प्रहीण होने पर काय वाक् मन से दुराचार नहीं करता।

''ब्राह्मण! वहाँ कोई रागवान् पुरुष राग से आबद्ध होकर दूसरों को हानि पहुँचाने की इच्छा रखता हुआ न स्वयं... न पर... न उभय के लिये वास्तविक हित जानता है। परन्तु राग के प्रहीण होने पर स्वयं... पर... उभय के लिये वास्तविक हित जानता है। यों, ब्राह्मण... ज्ञान किया जा सकता है।

''द्वेष ...पूर्ववत्...। मोह रखने वाला पुरुष मोह में आबद्ध होकर स्वयं... पर... दोनों के लिये दूसरे को हानि पहुँचाने वाला मन बनाता है तथा... दौर्मनस्य का अनुभव करता है। मोह के प्रवीण होने पर न अपने लिये... न पर के लिये... न उभय के लिये दुःख दौर्मनस्य का अनुभव करता है।

''मोह रखने वाला पुरुष मोह में आबद्ध होकर दूसरे को हानि पहुँचाने का मन बनाकर न अपने बारे में, न दूसरों के बारे में, न स्व-पर-दोनों के बारे में वास्तविक हित जानता है, परन्तु मोह

दुच्चरितं चरति। मूळ्हो खो, ब्राह्मण, मोहेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति, परत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति, उभयत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति। मोहे पहीने अत्तत्थं पि यथाभूतं पजानाति, परत्थं पि यथाभूतं पजानाति, उभयत्थं पि यथाभूतं पजानाति। एवं खो, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिको धम्मो होति अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही'' ति।

''अभिक्कन्तं, भो गोतम ...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

५. **निब्बुतसुत्तं** : अथ खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—''सन्दिट्ठिकं निब्बानं सन्दिट्ठिकं निब्बानं' ति, भो गोतम, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भो गोतम, सन्दिट्ठिकं निब्बानं होति अकालिकं एहिपस्सिकं ओपनेय्यिकं पच्चत्तं वेदितब्बं विञ्ञूही'' ति?

[B.159, R.159] ''रत्तो खो, ब्राह्मण, रागेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेतेति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। रागे पहीने नेवत्तब्याबाधाय पि चेतेति, न परब्याबाधाय पि चेतेति, न उभयब्याबाधाय पि चेतेति, न चेतसिकं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। एवं पि खो, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिकं निब्बानं होति। दुट्ठो खो ब्राह्मण ...पे०... मूळ्हो खो, ब्राह्मण, मोहेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेत्तेति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। मोहे पहीने नेवत्तब्याबाधाय पि चेतेति, न परब्याबाधाय पि चेतेति, न उभयब्याबाधाय पि चेत्तेति, न चेतसिकं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। एवं पि खो, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिकं निब्बानं होति।

[N.147] ''यतो खो अयं, ब्राह्मण, अनवसेसं रागक्खयं पटिसंवेदेति, अनवसेसं दोसक्खयं

के प्रहीण होने पर स्वयं... पर... उभय का वास्तविक हित जानने लगता है। यों, ब्राह्मण! यह धर्म... ज्ञान किया जा सकता है।''

''बहुत अच्छा कहा, भो गौतम! बहुत उत्तम कहा, भो गौतम! ...पूर्ववत्... आज से मेरे जीवनपर्यन्त मुझको अपना शरणागत उपासक्त समझें॥'' ●

५. निर्वाणसूत्र : : त्रिविध दोषनाशक निर्वाण

[इस सूत्र में जानुश्रोणि ब्राह्मण को भगवान् का उपदेश है। इसमें उसने सान्दृष्टिक निर्वाण के विषय में पूछा है। इस समस्त सूत्र का व्याख्यान 'धर्म' के स्थान पर 'निर्वाण' शब्द लगाकर पूर्वसूत्र के समान कर लेना चाहिये।]

[अन्तिम उपबन्ध (पैरा) का हिन्दी रूपान्तरण इस प्रकार है—]

''ब्राह्मण! जब यह साधक समस्त रागक्षय का अनुभव करता है,समस्त द्वेषक्षय का...

पटिसंवेदेति, अनवसेसं मोहक्खयं पटिसंवेदेति; एवं खो, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिकं निब्बानं होति अकालिकं एहिपस्सिकं ओपनेय्यिकं पच्चत्तं वेदितब्बं विञ्ञूही'' ति।

''अभिक्कन्तं, भो गोतम ...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥

६. पलोकसुत्तं : अथ खो अञ्ञतरो ब्राह्मणमहासालो येन भगवा तेनुपसङ्कमि ...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो सो ब्राह्मणमहासालो भगवन्तं एतदवोच—''सुतं मेतं, भो गोतम, पुब्बकानं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—'पुब्बे सुदं अयं लोको अवीचि मञ्ञे फुटो अहोसि मनुस्सेहि, कुक्कुटसम्पातिका गामनिगम-राजधानियो' ति। को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो येनेतरहि मनुस्सानं खयो होति, तनुत्तं पञ्ञायति, गामा पि अगामा होन्ति, निगमा पि अनिगमा होन्ति, [B.160, R.160] नगरा पि अनगरा होन्ति, जनपदा पि अजनपदा होन्ती'' ति?

''एतरहि, ब्राह्मण, मनुस्सा अधम्मरागरत्ता विसमलोभाभिभूता मिच्छाधम्मपरेता। ते अधम्मरागरत्ता विसमलोभाभिभूता मिच्छाधम्मपरेता तिण्हानि सत्थानि गहेत्वा अञ्ञमञ्ञं जीविता वोरोपेन्ति, तेन बहू मनुस्सा कालं करोन्ति। अयं पि खो, ब्राह्मण, हेतु अयं पच्चयो येनेतरहि मनुस्सानं खयो होति, तनुत्तं पञ्ञायति, गामा पि अगामा होन्ति, निगमा पि अनिगमा होन्ति, नगरा पि अनगरा होन्ति, जनपदा पि अजनपदा होन्ति।

समस्त मोहक्षय का प्रतिसंवेदन (अनुभव) करता है तब, ब्राह्मण! यह निर्वाण प्रत्यक्षफल देने वाला ...पूर्ववत्... पृथक्श: जाना जा सकता है।''

''बहुत अच्छा कहा, भो गौतम! बहुत उत्तम कहा।... आज से आप मुझे जीवन-पर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें॥''

६. प्रलोकसूत्र : : त्रिविध नाश

तब कोई धनी ब्राह्मण भगवान् के पास आया ...पूर्ववत्...। एक ओर बैठे हुए उसने भगवान् से पूछा—''भो गौतम! मैंने पुराने ब्राह्मणों के एवं वृद्ध प्राचीन आचार्य-प्राचार्यों के श्रीमुख से कहते हुए सुना है—'पहले कभी यह लोक नरक के समान मनुष्यों से आकीर्ण था, इसके ग्राम निगम एवं राजधानियाँ मनुष्यों से ऐसे भरी पड़ी थी मानो मुर्गों के झुण्ड घूम रहे हों'। क्या कारण है, भो गौतम! कि अब मनुष्यों का क्षय होता जा रहा है? इनकी कमी होती जा रही है? ग्राम भी धीरे धीरे उजड़ रहे हैं, निगमों का नाम भी विलुप्त हो रहा है? नगर भी निर्जन होते जा रहे हैं जनपद भी नामशेष रह गये हैं?''

''ब्राह्मण! इस समय मनुष्य अधर्म में आसक्ति से आबद्ध होकर, इससे अभिभूत होकर, विषम लोभ से अभिभूत होकर मिथ्या धर्मों के सम्पादन में लगे हुए हैं। वे ऐसी चित्तवृत्तियों के अधीन होकर, तीक्ष्ण शस्त्र ग्रहण कर, परस्पर एक दूसरे की हत्या कर रहे हैं, इससे बहुत से मनुष्य मरते जा रहे हैं। ब्राह्मण! यह भी कारण है, यह भी हेतु है कि लोक में अब मनुष्यों का क्षय होता जा रहा है ...पूर्ववत्... यहाँ के जनपद भी नाममात्र से रह गये हैं।

"पुन च परं, ब्राह्मण, एतरहि मनुस्सा अधम्मरागरत्ता विसमलोभाभिभूता मिच्छाधम्मपरेता। तेसं अधम्मरागरत्तानं विसमलोभाभिभूतानं मिच्छाधम्मपरेतानं देवो न सम्माधारं अनुप्पवेच्छति। तेन दुब्भिक्खं होति दुस्सस्सं सेतट्ठिकं सलाकावुत्तं। तेन बहू मनुस्सा कालं करोन्ति। अयं पि खो, ब्राह्मण, हेतु अयं पच्चयो येनेतरहि मनुस्सानं खयो होति, तनुत्तं पञ्ञायति, गामा पि अगामा होन्ति, निगमा पि अनिगमा होन्ति, नगरा पि अनगरा होन्ति, जनपदा पि अजनपदा होन्ति।

"पुन च परं, ब्राह्मण, एतरहि मनुस्सा अधम्मरागरत्ता विसमलोभाभिभूता [N.148] मिच्छाधम्मपरेता। तेसं अधम्मरागरत्तानं विसमलोभाभिभूतानं मिच्छाधम्मपरेतानं यक्खा वाळे अमनुस्से ओस्सज्जन्ति, तेन बहू मनुस्सा कालं करोन्ति। अयं पि खो, ब्राह्मण, हेतु अयं पच्चयो येनेतरहि मनुस्सानं खयो होति, तनुत्तं पञ्ञायति, गामा पि अगामा होन्ति, निगमा पि अनिगमा होन्ति, नगरा पि अनगरा होन्ति, जनपदा पि अजनपदा होन्ति" ति।

"अभिक्कन्तं, भो गोतम ...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

●

[B.161] ७. **वच्छगोत्तसुत्तं** : अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो [R.161] खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भो गोतम, समणो

"फिर, ब्राह्मण! इस समय मनुष्य अधर्म में आसक्ति रखते हुए, विषम लोभ का आचरण करते हुए मिथ्यादृष्टि से सम्पन्न हो गये हैं। उनके ऐसा हो जाने से यहाँ समय से वर्षा नहीं होती। उसके कारण दुर्भिक्ष (अकाल) पड़ जाता है, इससे खेती दुर्बल होती है उसमें धान्य कम होता है, डण्ठल अधिक। इस (अन्नाभाव) के कारण भी मनुष्य असमय में ही कालकवलित होते जा रहे हैं। ब्राह्मण! यह कारण भी है कि आज मनुष्यों का क्षय होता जा रहा है ...पूर्ववत्... जनपदों का नाममात्र रह गया है।

"फिर, ब्राह्मण! इस समय मनुष्य अधर्मराग में आबद्ध ...पूर्ववत्... मिथ्या धर्म के पालन में लगे हुए हैं। इस कारण, यक्ष (भूत, प्रेत) इन मनुष्यों की संख्या घटाते जा रहे हैं। ब्राह्मण! यह भी कारण है, यह भी हेतु है कि आज मनुष्यों का पूर्वापेक्षया क्षय होता जा रहा है। उनकी कमी होती जा रही है। ग्राम प्राय: उजड़ गये, निगमों का लोप होता जा रहा है। नगर पहले के समान जनाकीर्ण नहीं रह गये तथा जनपदों का भी नामशेष ही रह गया है।

"भो गौतम! आपने बहुत उचित कहा...। आज से आप मुझको अपना शरणागत उपासक समझें॥"

●

७. वत्सगोत्रसूत्र : : दान के अधिकारी

तब वत्सगोत्र परिव्राजक जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गया... भगवान् से यों बोला—"भो गौतम! मैंने सुना है कि आप जनता को यह उपदेश करते हैं—'मुझको ही दान करना चाहिये

गोतमो एवमाह—'मय्हमेव दाने दातब्बं, नाञ्ञेसं दानं दातब्बं; मय्हमेव सावकानं दानं दातब्बं, नाञ्ञेसं सावकानं दानं दातब्बं; मय्हमेव दिन्नं महप्फलं, नाञ्ञेसं दिन्नं महप्फलं; मय्हमेव सावकानं दिन्नं महप्फलं, नाञ्ञेसं सावकानं दिन्नं महप्फलं' ति। ये ते, भो गोतम, एवमाहंसु ... कच्चि ते भोतो गोतमस्स वुत्तवादिनो च भवन्तं गोतमं अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति, धम्मस्स चानुधम्मं व्याकरोन्ति, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छति? अनब्भक्खातुकामा हि मयं भवन्तं गोतमं" ति।

"ये ते, वच्छ, एवमाहंसु—'समणो गोतमो एवमाह—मय्हमेव दानं दातब्बं ...पे०... नाञ्ञेसं सावकानं दिन्नं महप्फलं' ति न मे ते वुत्तवादिनो। अब्भाचिक्खन्ति च पन मं असता अभूतेन। यो खो, वच्छ, परं दानं ददन्तं वारेति सो तिण्णं अन्तरायकरो होति, तिण्णं पारिपन्थिको। कतमेसं तिण्णं? दायकस्स पुञ्ञन्तरायकरो होति, पटिग्गाहकानं लाभन्तरायकरो होति, पुब्बेव खो पनस्स अत्ता खतो च होति उपहतो च। यो खो, वच्छ, परं दानं ददन्तं वारेति सो इमेसं तिण्णं अन्तरायकरो होति, तिण्णं पारिपन्थिको।

"अहं खो, पन, वच्छ, एवं वदामि—ये हि ते चन्दनिकाय वा ओलिगल्ले वा पाणा, तत्र पि यो थालिधोवनं वा सरावधोवनं वा छड्डेति—ये तत्थ पाणा ते तेन यापेन्तू ति, [B.162] ततो निदानम्पाहं, वच्छ, पुञ्ञस्स आगमं वदामि, को पन वादो मनुस्सभूते! अपि [N.149] चाहं, वच्छ, सीलवतो दिन्नं महप्फलं वदामि, नो तथा दुस्सीलस्स, सो च होति पञ्चङ्गविप्पहीनो पञ्चङ्गसमन्नागतो।

अन्य को नहीं; मेरे शिष्यों को ही दान करना चाहिये अन्य को नहीं; क्योंकि मुझको दिये गये दान का ही विशेष फल होता है, दूसरों को दिये का कोई फ़ल नहीं होता; मेरे श्रावकों को ही दिये हुए दान का विशेष फल होता है अन्य को दिये का फल नहीं होता।' क्या, भो गौतम! जो लोग ऐसा कहते हैं वे आपके कथन को ही कहते हैं या मिथ्या कहते हैं? या फिर ऐसा कहकर आप पर मिथ्या आरोप लगाते हैं? आपके धर्मानुसार ही वे कहते हैं ना? वे ऐसा कहते हुए कोई नया विवाद खड़ा कर आपकी निन्दा तो नहीं करते? हम आपकी निन्दा होते नहीं सुनना चाहते।"

"वत्स! जो यह कहते हैं—'श्रमण गौतम यह कहते हैं—मुझको ही दान देना चाहिये... दूसरों के शिष्यों को दिये दान का कोई फल नहीं होता', वे ऐसा कहते हुए मेरे प्रति उचित नहीं कहते; अपितु वे असत्य बोलकर मुझपर मिथ्या आरोप लगाते हैं। क्योंकि जो दूसरों को दान देने का निषेध करते हैं वह (निषेध) तीन में विघ्नकारी होता है या तीन बातों का विरोधी होता है। किन तीन में? १. दाता के दान में विघ्न डालता है, २. दान लेने वालों के लाभ में विघ्न डालता है, तथा ३. वह इस अपुण्यकर्म से अपनी हानि भी करता है। इसलिये, वत्स! जो दूसरों को दान देने से रोकता है वह इन तीन विघ्नों का कर्ता होता है।

"वत्स! मैं तो यह कहता हूँ—'भोजन के बाद थाली या जलपात्र धोकर जो अवशिष्ट अन्न घर की नालियों या गड्ढे में डाला जाता है उससे भी, उन नालियों में रहने वाले क्षुद्र प्राणी अपना जीवनयापन करते हैं, अतः इससे भी गृहस्थों को पुण्य होता है।' तब मैं मनुष्यों को दान देने का

"कतमानि पञ्चङ्गानि पहीनानि होन्ति? कामच्छन्दो पहीनो होति, ब्यापादो पहीनो [R.162] होति, थीनमिद्धं पहीनं होति, उद्धच्चकुक्कुच्चं पहीनं होति, विचिकिच्छा पहीना होति। इमानि पञ्चङ्गानि विप्पहीनानि होन्ति।

"कतमेहि पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो होति? असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन समाधिक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति; इमेहि पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो होति। इति पञ्चङ्गविप्पहीने पञ्चङ्गसमन्नागते दिन्नं महप्फलं ति वदामी ति।

"इति कण्हासु सेतासु, रोहिणीसु हरीसु वा।
कम्मासासु सरूपासु, गोसु पारेवतासु वा॥
"यासु कासुचि एतासु, दन्तो जायति पुङ्गवो।
धोरय्हो बलसम्पन्नो, कल्याणजवनिक्कमो।
तमेव भारे युञ्जन्ति, नास्स वण्णं परिक्खरे॥
"एवमेव मनुस्सेसु, यस्मिं कस्मिञ्चि जातिये।
खत्तियो ब्राह्मणे वेस्से, सुद्दे चण्डालपुक्कुसे॥
"यासु कासुचि एतासु, दन्तो जायति सुब्बतो।

विरोध कैसे कर सकता हूँ! अपितु मैं, वत्स! इस बात पर बल अवश्य देता हूँ कि सदाचारी पुरुष को किये दान का जितना फल होता है, उतना दुराचारी को दिये का फल नहीं होता; क्योंकि वह पाँच अङ्गों से युक्त होता है तथा पाँच अङ्गों से रहित।

"वत्स! वह (दानदाता) किन पाँच अङ्गों से हीन (रहित) होता है? ऐसे दाता का कामच्छन्द प्रहीण होता है, व्यापाद (द्वेष) प्रहीण होता है, स्त्यानमृद्ध प्रहीण होता है, औद्धत्यकौकृत्य प्रहीण होता है तथा विचिकित्सा (सन्देह) प्रहीण होती है। इस तरह का दान करने से दाता के ये पाँच अङ्ग प्रहीण होते हैं।

"तथा किन पाँच अङ्गों से वह युक्त हो जाता है? वह अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से, अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से, अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से, अशैक्ष्य विमुक्तिस्कन्ध से तथा अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शन-स्कन्ध से युक्त होता है। इस तरह सदाचारी को दिया दान पाँच अङ्गों से हीन तथा पाँच अङ्गों से युक्त होने पर ही महाफलदायी होता है।

"जैसे काली, श्वेत, लाल, हरी, काली, या कबूतर के रंग की, या सरूप गायों से उत्पन्न कोई अच्छा भार ढोने वाला, अच्छी शारीरिक शक्ति वाला बैल ही भार ढोने के कार्य में प्रयुक्त किया जाता है, उसका रंग नहीं देखा जाता॥

"इसी प्रकार, मनुष्यों में किसी भी जाति में उत्पन्न, फिर भले ही वह क्षत्रिय हो, या ब्राह्मण, वैश्य हो शूद्र या फिर चाण्डाल एवं पुल्कस ही क्यों न हो, इनमें से किसी भी जाति में उत्पन्न इन्द्रियसंयमी, व्रतधारी, धर्माचरण करने वाला, सदाचारयुक्त, सत्यवादी, लज्जासम्पन्न, जिसकी

धम्मट्ठो सीलसम्पन्नो, सच्चवादी हिरीमनो॥
"पहीनजातिमरणो, ब्रह्मचरियस्स केवली।
पन्नभारो विसंयुत्तो, कतकिच्चो अनासवो॥
"पारगू सब्बधम्मानं, अनुपादाय निब्बुतो।
तस्मिंयेव विरजे खेत्ते, विपुला होति दक्खिणा॥
"बाला च अविजानन्ता, दुम्मेधा अस्सुताविनो। [B.163]
बहिद्धा देन्ति दानानि, न हि सन्ते उपासरे॥
"ये च सन्ते उपासन्ति, सप्पञ्ञे धीरसम्मते। [N.150]
सद्धा च नेसं सुगते, मूलजाता पतिट्ठिता॥
"देवलोकं च ते यन्ति, कुले वा इध जायरे।
अनुपुब्बेन निब्बानं, अधिगच्छन्ति पण्डिता" ति॥ ●

८. **तिकण्णसुत्तं** : अथ खो तिकण्णो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; [R.163] उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं ...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो तिकण्णो ब्राह्मणो भगवतो सम्मुखा तेविज्जानं सुदं ब्राह्मणानं वण्णं भासति—"एवं पि तेविज्जा ब्राह्मणा, इति पि तेविज्जा ब्राह्मणा" ति।

"यथाकथं पन, ब्राह्मण, ब्राह्मणा ब्राह्मणं तेविज्जं पञ्ञापेन्ती" ति?

"इध, भो गोतम, ब्राह्मणो उभतो सुजातो होति मातितो च पितितो च,

जन्ममरण परम्परा क्षीण हो चुकी हो, जो धर्मसाधना से ज्ञानी की स्थिति प्राप्त कर चुका हो, जिसने अपने कन्धों पर से सांसारिक भार उतार कर फेंक दिया हो, कृतकृत्य हो चुका हो, आश्रवरहित हो गया हो, सभी धर्मों को पार कर चुका हो, अपरिग्रही हो ऐसे निर्मल दानक्षेत्र को किया गया दान ही महाफलदायक होता है॥

दुर्बुद्धि, मूर्ख जन इस रहस्य को न जानते हुए उपर्युक्त सत्पात्र से अतिरिक्त पात्र को दान देते हैं। वे सन्तों की उपासना नहीं करते॥

"जो सत्प्रज्ञ, धीरों की सहमति प्राप्त सन्तों की सेवा करते हैं, तथा जिनकी मूल श्रद्धा तथागत में प्रतिष्ठित है, वे मरणानन्तर देवलोक में ही जाते हैं, या फिर यहाँ किसी उच्च कुल में उत्पन्न होते हैं। ऐसे बुद्धिमान् लोग क्रमशः (साधना करते हुए) निर्वाण तक पहुँच ही जाते हैं॥" ●

८. त्रिकर्णसूत्र : : त्रैविद्य कौन?

तब कोई त्रिकर्ण ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख पहुँचा, ...पूर्ववत्...। वह ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख पहुँचकर 'त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसे होते हैं, त्रैविद्य ऐसे भी होते हैं' आदि से ब्राह्मणों की प्रशंसा करने लगा।

भगवान् : "ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग इन त्रैविद्य ब्राह्मणों की पहचान कैसे करते हैं?"

ब्राह्मण : "भो गौतम! जो ब्राह्मण मातृपक्ष एवं पितृपक्ष—दोनों पक्षों से भी शुद्ध हो, अपनी

संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, अज्झायको, मन्तधरो, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो ति। एवं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा तेविज्जं पञ्ञापेन्ती'' ति।

''अञ्ञथा खो, ब्राह्मण, ब्राह्मणा ब्राह्मणं तेविज्जं पञ्ञापेन्ति, अञ्ञथा च पन अरियस्स विनये तेविज्जो होती'' ति।

''यथा कथं पन, भो गोतम, अरियस्स विनये तेविज्जो होति? साधु मे भवं गोतमो तथा धम्मं देसेतु यथा अरियस्स विनये तेविज्जो होती'' ति।

''तेन हि, ब्राह्मण, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भो'' ति खो तिकण्णो ब्राह्मणो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

''इध, ब्राह्मण, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं [R.164] उपसम्पज्ज विहरति। पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' [N.151] ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना, पुब्बेव

सातवीं पीढ़ी तक मातृपक्ष एवं पितृपक्ष से शुद्ध हो, जाति के कारण उस पर कोई आरोप न हो, उसकी निन्दा न हो, पढ़ने पढ़ाने वाला हो, मन्त्रों का ज्ञाता हो, निघण्टु एवं व्याकरण तथा पञ्चम वेद माने जाने वाले इतिहाससहित तीनों वेदों का ज्ञाता हो, पदविभाजन में चतुर हो, वैयाकरण हो, लोकागत महापुरुषों के लक्षणों से सम्पूर्ण हो—ऐसे ब्राह्मण को हम ब्राह्मण 'त्रैविद्य' रूप में जानते हैं।''

भगवान् : ''ब्राह्मण! तुम्हारे यहाँ 'त्रैविद्य' ब्राह्मणों की पहचान यह बता रहे हो, परन्तु हमारे धर्मविनय (आर्यविनय) में तो इनको दूसरे लक्षणों से पहचाना जाता है।''

ब्राह्मण : ''आपके धर्मविनय में कैसे पहचाना जाता है?''

भगवान् : ''तो, ब्राह्मण! सुनो, सुनकर ठीक से मन में बैठा लो, बताता हूँ।'' ''ठीक है'' कहकर ब्राह्मण के स्वीकार करने पर भगवान् ने ये लक्षण यों बताये—

''यहाँ, ब्राह्मण! कोई भिक्षु कामभोगों एवं अकुशल धर्मों को त्याग कर, वितर्क विचारसहित प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है। वह, क्रमशः इन वितर्क विचारों के शान्त होने पर, आध्यात्मिक श्रद्धासहित चित्त की एकाग्रतासहित अवितर्क अविचारमय समाधिजन्य प्रीतिसुखयुक्त द्वितीय ध्यानयुक्त साधना करता है। तदनन्तर वह क्रमशः इस प्रीतिसुख के प्रति भी वैराग्य होने पर स्मृतिसम्प्रजन्यवान् होकर उपेक्षायुक्त साधना करता है, तथा काया से सुखानुभव करता है, जिसके विषय में आर्यजन कहने लगते हैं—'यह उपेक्षायुक्त एवं सुखमय साधना कर रहा है', यह तृतीय ध्यान तक पहुँचकर साधना करने लगता है। फिर, सुख-दुःख के प्रहाण से, तथा

सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा, अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं [R.164] उपसम्पज्ज विहरति।

''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तारीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जाति-सतसहस्सं पि, अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायु-परियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं। तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। अयमस्स **पठमा विज्जा** अधिगता होति; अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको उप्पन्नो यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो।

''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति—'इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता ...पे०... मनोदुचरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छा-दिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना। इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता, वचीसुचरितेन समन्नागता, मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठि-[B.165, R.165] कम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना' ति। इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने [N.112] पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति। अयमस्स **दुतिया विज्जा** अधिगता होति; अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको उप्पन्नो यथा ते अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो।

सौमनस्य दौर्मनस्य के लुप्त हो जाने से अदुःख असुखमय उपेक्षा एवं स्मृतिपरिशुद्धियुक्त चतुर्थ ध्यान की स्थिति में पहुँचकर साधना करता है।

''वह साधक इस तरह परिशुद्ध समाहित चित्त होने पर ...पूर्ववत् ...पूर्वजन्म का स्मरण करता है। इस तरह इसको यह **प्रथम विद्या** अधिगत होती है। ...पूर्ववत्...। (१)

''फिर वह साधक परिशुद्ध समाहित चित्त होने पर ...पूर्ववत्... कर्मानुसार सुवर्ण दुर्वण,

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति; 'इमे आसवा' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। अयमस्स **ततिया विज्जा** अधिगता होति; अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको उप्पन्नो यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो ति।

"अनुच्चावचसीलस्स, निपकस्स च झायिनो।
चित्तं यस्स वसीभूतं, एकग्गं सुसमाहितं॥
"तं वे तमोनुदं धीरं, तेविज्जं मच्चुहायिनं।
हितं देवमनुस्सानं, आहु सब्बप्पहायिनं॥
"तीहि विज्जाहि सम्पन्नं, असम्मूळ्हविहारिनं।
बुद्धं अन्तिमदेहिनं, तं नमस्सन्ति गोतमं॥
[B.166] "पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायं च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥

सुगत (धनवान्) दुर्गत (दरिद्र) प्राणियों के विषय में जानने लगता है। इस तरह इसको यह **द्वितीय विद्या** अधिगत होती है।...पूर्ववत्...। (२)

"फिर वह साधक परिशुद्ध, स्वच्छ समाहित चित्त होने पर ...पूर्ववत्... मेरा अन्य कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है—यह जान जाता है। इस तरह इसको यह **तृतीय विदया** अधिगत होती है। ...पूर्ववत्...। (३)

"लोक में, ऊँच नीच की अपेक्षा न कर समान व्यवहार वाले जिस कुशल, ध्यानसम्पन्न साधक का चित्त स्वाधीन, एकाग्र एवं समाहित हो जाता है॥

"उस, अज्ञानावरण नष्ट हुए, धैर्यवान्, मृत्युजित्, देव मनुष्यों के हितकारी, एवं सर्वत्यागी को **त्रैविदय** कहते हैं॥

"ऐसे इस तीन विद्याओं से सम्पन्न, स्मृतिसम्प्रजन्ययुक्त साधना करने वाले, अन्तिम देहधारी ज्ञानी गौतम बुद्ध को समस्त संसार प्रणाम करता है॥

"जो साधना द्वारा अपनी जन्म-मरण परम्परा को क्षीण कर चुका है, ऐसे अभिज्ञा-सम्पन्न को 'मुनि' कहते हैं॥

"एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो।
तमहं वदामि तेविज्जं, नाञ्ञं लपितलापनं ति॥

"एवं खो, ब्राह्मण, अरियस्स विनये तेविज्जो होती" ति। [R.166]

"अञ्ञथा, भो गोतम, ब्राह्मणानं तेविज्जो, अञ्ञथा च पन अरियस्स [N.153] विनये तेविज्जो होति। इमस्स च पन, भो गोतम, अरियस्स विनये तेविज्जस्स ब्राह्मणानं तेविज्जो कलं नाग्घति सोळसिं।

"अभिक्कन्तं, भो गोतम ...पे... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ ●

९. **जाणुस्सोणिसुत्तं** : अथ खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं ...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"यस्सस्सु, भो गोतम, यञ्ञो सद्धं वा थालिपाको वा देय्यधम्मं वा, तेविज्जेसु ब्राह्मणेसु दानं ददेय्या" ति।

"यथा कथं पन, ब्राह्मण, ब्राह्मणा तेविज्जं पञ्ञापेन्ती" ति?

"इध खो, भो गोतम, ब्राह्मणो उभतो सुजातो होति मातितो च पितितो च संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पित्तामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, अज्झायको मन्तधरो, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको,

---

"ऐसी इन तीन विद्याओं से सम्पन्न ब्राह्मण ही 'त्रैविद्य' कहलाने का अधिकारी है। उसी को मैं **त्रैविद्य** कहता हूँ। शेष सब मुँह-देखी प्रशंसामात्र है॥

"ब्राह्मण! हमारे आर्यविनय में ऐसे पुरुष को 'त्रैविद्य' कहते हैं॥"

ब्राह्मण : "तब तो भो गौतम! ब्राह्मणों के अनुसार 'त्रैविद्य' अन्य कहलाता है, तथा आर्यविनय के अनुसार 'त्रैविद्य' अन्य ही होता है। भो गौतम! आपके इस आर्यविनय में वर्णित त्रैविद्य ब्राह्मण की समानता में हमारा त्रैविद्य सोलहवाँ अंश भी नहीं है।

"अत: आपने, भो गौतम! बहुत अच्छा कहा है, बहुत उत्तम कहा है। ...पूर्ववत्... आज से आप मुझे अपना जीवनपर्यन्त शरणागत उपासक समझें॥" ●

९. जानुश्रोणिसूत्र : : : तीन विद्या

तब जानुश्रोणि ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। ...पूर्ववत्... भगवान् से यह कहने लगा—"भो गौतम! जिस गृहस्थ के यहाँ कोई यज्ञ हो, श्राद्ध हो, या कोई विशिष्ट भोजन हो या कोई अन्य दान का अवसर हो, वैसे समय में उस गृहस्थ को त्रैविद्य ब्राह्मणों में वह दान आदि अवश्य वितरित करना चाहिये।

"ब्राह्मण! इस त्रैविद्य ब्राह्मण की पहचान क्या है?"

"भो गौतम! जो ब्राह्मण मातृपक्ष एवं पितृपक्ष ...पूर्ववत्[1]...। ऐसे ब्राह्मण को ब्राह्मण लोग 'त्रैविद्य' कहते हैं।"

---

१. द्र०—पीछे इसी वर्ग का **त्रिकर्णसूत्र**।

वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो ति। एवं खो, भो गोतम, ब्राह्मणा तेविज्जं पञ्ञापेन्ती'' ति।

''अञ्ञथा खो, ब्राह्मण, ब्राह्मणा ब्राह्मणं तेविज्जं पञ्ञापेन्ति, अञ्ञथा च पन अरियस्स विनये तेविज्जो होती'' ति।

''यथाकथं पन, भो गोतम, अरियस्स विनये तेविज्जो होति? साधु मे भवं गोतमो तथा धम्मं देसेतु यथा अरियस्स विनये तेविज्जो होती'' ति।

[B.167] ''तेन हि, ब्राह्मण, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भो'' ति खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

''इध पन, ब्राह्मण, भिक्खु विविच्चेव कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

[R.167] ''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो अनेक-
[N.154] विहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो ...पे०... इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। अयमस्स **पठमा विज्जा** अधिगता होति; अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको उप्पन्नो यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो।

''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन ...पे०... यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति। अयमस्स **दुतिया विज्जा** अधिगता होति; अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको उप्पन्नो यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो।

''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति; 'इमे

''तब तो ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग 'त्रैविद्य' किसी अन्य को मानते हैं तथा हमारे आर्यविनय में 'त्रैविद्य' किसी अन्य को कहा जाता है।''

''भो गौतम! आपके आर्यविनय में 'त्रैविद्य' किसे कहा जाता है वह मुझे भी बताइये?''

''तो, ब्राह्मण! सुनो! सुनकर भलीभाँति मन में बैठा लो। मैं बताता हूँ।'' जानुश्रोणि ब्राह्मण ने ''अच्छा, भो''—कहकर भगवान् का आदेश स्वीकार किया। भगवान् ने यह उपदेश आरम्भ किया—

''यहाँ, ब्राह्मण! कोई भिक्षु कामभोगों एवं अकुशल धर्मों को त्यागकर ...पूर्ववत्... यह **तृतीया विद्या** अधिगत होती है। ...पूर्ववत्...।

आसवा' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति; विमुत्तिस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। अयमस्स **ततिया विज्जा** अधिगता होति; अविज्जा विहता, विज्जा उप्पन्ना; तमो विहतो, आलोको [B.168] उप्पन्नो यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो ति।

''यो सीलब्बतसम्पन्नो, पहितत्तो समाहितो।
चित्तं यस्स वसीभूतं, एकग्गं सुसमाहितं॥
''पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायं च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥
''एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो। [R.168]
तमहं वदामि तेविज्जं, नाञ्ञं लपितलापनं ति॥

''एवं खो, ब्राह्मण, अरियस्स विनये तेविज्जो होती'' ति।

''अञ्ञथा, भो गोतम, ब्राह्मणानं तेविज्जो, अञ्ञथा च पन अरियस्स विनये तेविज्जो होति। इमस्स च, भो गोतम, अरियस्स विनये तेविज्जस्स ब्राह्मणानं [N.155] तेविज्जो कलं नाग्घति सोळसिं।

''अभिक्कन्तं, भो गोतम ...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

१०. सङ्गारवसुत्तं : अथ खो सङ्गारवो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सङ्गारवो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—''मयमस्सु, भो गोतम, ब्राह्मणा नाम। यञ्ञं यजाम पि यजापेम पि। तत्र, भो गोतम, यो चेव यजति यो च

''जो शीलव्रत से सम्पन्न है, जो प्रयासपूर्वक अपने चित्तविकारों को नष्ट कर समाहित हो चुका है, जिसका चित्त स्वाधीन है, एकाग्र है, भलीभाँति समाहित है॥

''जो अपने पूर्वजन्मों को (साधना द्वारा) धर्मों के उत्पाद विनाश को जान चुका है, अपनी जन्म-मरणपरम्परा को क्षीण कर चुका है, अभिज्ञासम्पन्न बनकर 'मुनि' बन चुका है।

''जो ब्राह्मण इन तीन विद्याओं से युक्त है वही वस्तुतः 'त्रैविद्य' कहलाने का अधिकारी है। शेष सबकी तो मुँह-देखी प्रशंसामात्र है॥''

''तब तो, भो गौतम! ब्राह्मणों के अनुसार ...पूर्ववत्... शरणागत उपासक समझें॥'' ●

१०. सङ्गारवसूत्र : : तीन प्रतिहार्य

तब कोई सङ्गारव ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गया। ...पूर्ववत्...। भगवान् से यों कहने लगा—''भो गौतम! हम ब्राह्मण हैं। हम स्वयं यज्ञ करते हैं, दूसरों से कराते भी हैं। वहाँ जो

यजापेति सब्बे ते अनेकसारीरिकं पुञ्ञप्पटिपदं पटिपन्ना होन्ति, यदिदं यञ्ञाधिकरणं। यो पनायं, भो गोतम, यस्स वा तस्स वा कुला अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो एकमत्तानं दमेति, एकमत्तानं समेति, एकमत्तानं परिनिब्बापेति, एवमस्सायं एकसारीरिकं पुञ्ञप्पटिपदं पटिपन्नो होति, यदिदं पब्बज्जाधिकरणं'' ति।

''तेन हि, ब्राह्मण, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, इध तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो [B.169] विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो एवमाह—'एथायं मग्गो अयं पटिपदा यथापटिपन्नो अहं अनुत्तरं ब्रह्मचरियोगधं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेमि; एथ, तुम्हे पि तथा पटिपज्जथ, यथापटिपन्ना तुम्हे पि अनुत्तरं ब्रह्मचरियोगधं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा' ति। इति अयं चेव सत्था धम्मं देसेति, परे च तथत्थाय पटिपज्जन्ति, तानि [R.169] खो पन होन्ति अनेकानि पि सतानि अनेकानि पि सहस्सानि अनेकानि पि सतसहस्सानि।

''तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, इच्चायं एवं सन्ते एकसारीरिका वा पुञ्ञप्पटिपदा होति अनेकसारीरिका वा, यदिदं पब्बज्जाधिकरणं'' ति?

''इच्चायं पि, भो गोतम, एवं सन्ते अनेकसारीरिका पुञ्ञप्पटिपदा होति, यदिदं पब्बज्जाधिकरणं'' ति।

[N.156] एवं वुत्ते आयस्मा आनन्दो सङ्गारवं ब्राह्मणं एतदवोच—''इमासं ते, ब्राह्मण, द्विन्नं पटिपदानं कतमा पटिपदा खमति अप्पत्थतरा च अप्पसमारम्भतरा च महप्फलतरा च

यज्ञ करते हैं या जो दूसरों को कराते हैं उनके अनेक शरीरों द्वारा यह पुण्यकर्म सम्पादित होता है अत: अनेक पुरुष इस पुण्यकर्म के भागी होते हैं। परन्तु, इसके विपरीत, आपके यहाँ, जिस किसी कुल से गृह त्याग कर प्रव्रजित होकर कोई एक पुरुष अपने लिये यम, नियम, शम का पालन करता हुआ एकाकी साधना करता है तथा एक ही निर्वाण प्राप्त करता है, अत: यह प्रव्रज्या कर्म एक शरीर को ही पुण्य कर्म का प्रदाता होता है?''

''ब्राह्मण! मैं तुमसे ही पूछता हूँ, तुम जैसा समझते हो, इसका उत्तर दो। तो क्या मानते हो, ब्राह्मण! यहाँ देव एवं मनुष्यों के शास्ता अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ...पूर्ववत्... बुद्ध भगवान् लोक में उत्पन्न हों। वे यों उपदेश करने लगें—'जिज्ञासुजनो! आओ, मैं तुम्हें वह मार्ग, वह विधि बताऊँगा जिसका अनुसरण करते हुए मैंने अनुपम धर्मसाधना कर, स्वयं साक्षात्कार कर इसे प्राप्त किया है; आओ, तुम भी उसी प्रकार साधना करो।' तब यह शास्ता जिज्ञासुओं को धर्मदेशना करे, वे तदनुसार साधना में तत्पर हों। वे साधक कई सौ, कई हजार, कई लाख भी हो सकते हैं। तो क्या मानते हो इतने आदमियों के रहते यह प्रव्रज्या एकशारीरिक ही है कि इससे एक ही आदमी को पुण्य होगा?''

महानिसंसतरा चा'' ति? एवं वुत्ते सङ्गारवो ब्राह्मणो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच— ''सेय्यथापि भवं गोतमो भवं चानन्दो। एते मे पुज्जा, एते मे पासंसा'' ति।

दुतियं पि खो आयस्मा आनन्दो सङ्गारवं ब्राह्मणं एतदवोच—''न खो त्याहं, ब्राह्मण, एवं पुच्छामि—'के वा ते पुज्जा के वा ते पासंसा' ति? एवं खो त्याहं, ब्राह्मण, पुच्छामि—'इमासं ते, ब्राह्मण, द्विन्नं पटिपदानं कतमा पटिपदा खमति अप्पत्थतरा च अप्पसमारम्भतरा च महप्फलतरा च महानिसंसतरा चा''' ति? दुतियं पि खो सङ्गारवो ब्राह्मणो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—''सेय्यथापि भवं गोतमो भवं चानन्दो। एते मे पुज्जा, एते मे पासंसा'' ति।

ततियं पि खो आयस्मा आनन्दो सङ्गारवं ब्राह्मणं एतदवोच—''न खो त्याहं, ब्राह्मण, एवं पुच्छामि—'के वा ते पुज्जा के वा ते पासंसा' ति? एवं खो त्याहं, ब्राह्मण, पुच्छामि—'इमासं ते, ब्राह्मण, द्विन्नं पटिपदानं कतमा पटिपदा खमति अप्पत्थतरा च अप्पसमारम्भतरा च महप्फलतरा च महानिसंसतरा चा''' ति? ततियं पि खो [B.170] सङ्गारवो ब्राह्मणो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—''सेय्यथापि भवं गोतमो भवं चानन्दो। एते मे पुज्जा, एते मे पासंसा'' ति।

अथ खो भगवतो एतदहोसि—''याव ततियं पि खो सङ्गारवो ब्राह्मणो [R.170] आनन्देन सहधम्मिकं पञ्हं पुट्ठो संसादेति नो विस्सज्जेति। यन्नूनाहं परिमोचेय्यं'' ति। अथ खो भगवा सङ्गारवं ब्राह्मणं एतदवोच—''का न्वज्ज, ब्राह्मण, राजन्तेपुरे राजपुरिसानं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अन्तराकथा उदपादी'' ति?

''अयं ख्वज्ज, भो गोतम, राजन्तेपुरे राजपुरिसानं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं

''तब तो, भो गौतम! यह प्रव्रज्या भी अनेक लोगों को पुण्य प्रदान करने वाली ही हैं।''

ऐसा कहे जाने पर आयुष्मान् आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण से पूछा—''ब्राह्मण! इन दोनों मार्गों में कौन सा मार्ग अल्प व्यय में तथा अल्प सामग्रियों से सम्पन्न हो सकता है और अधिक फलदाता है? तथा किस मार्ग की साधना में अधिक व्यय, अधिक साधन लगते हैं किन्तु वह अल्प फल देनेवाला है और उसका माहात्म्य भी कम है?''

आयुष्मान् आनन्द की बात सुनकर ब्राह्मण बोला—''जैसे आप बुद्ध एवं आप आनन्द। आप दोनों ही मेरे लिये पूज्य एवं प्रशंसनीय हैं।''

दूसरी बार भी आयुष्मान् आनन्द ने ब्राह्मण से यह प्रश्न पूछा, परन्तु ब्राह्मण ने फिर वही उत्तर दिया।

तीसरी बार आयुष्मान् आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण से कहा—''ब्राह्मण! मैं तुमसे यह नहीं पूछ रहा कि तुम्हारा कौन पूज्य है कौन प्रशंस्य है? अपितु मैं यह पूछ रहा हूँ कि इन उक्त दो मार्गों में कौन सा मार्ग ...पूर्ववत्... उसका फल भी कम है?''

परन्तु ब्राह्मण ने तीसरी बार वही उत्तर दिया।

अन्तराकथा उदपादि—'पुब्बे सुदं अप्पतरा चेव भिक्खू अहेसुं बहुतरा च उत्तरि मनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं दस्सेसुं; एतरहि पन बहुतरा चेव भिक्खू अप्पतरा च उत्तरि मनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं दस्सेन्ती' ति। अयं ख्वज्ज, भो गोतम, राजन्तेपुरे राजपुरिसानं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अन्तराकथा उदपादी'' ति।

[N.157] ''तीणि खो इमानि, ब्राह्मण, पाटिहारियानि। कतमानि तीणि? इद्धिपाटिहारियं, आदेसनापाटिहारियं, अनुसासनीपाटिहारियं। कतमं च, ब्राह्मण, इद्धिपाटिहारियं? इध, ब्राह्मण, एकच्चो अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति—'एको पि हुत्वा बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुड्डं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छति, सेय्यथापि आकासे; पथविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोति, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छति, सेय्यथापि पथवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमति, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परिमसति परिमज्जति, याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति'। इदं वुच्चति, ब्राह्मण, इद्धि-पाटिहारियं।

''कतमं च, ब्राह्मण, आदेसनापाटिहारियं? इध, ब्राह्मण, एकच्चो निमित्तेन आदिसति—'एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि ते चित्तं' ति। सो बहुं चे पि आदिसति तथेव तं होति, नो अञ्ञथा।

तब भगवान् को यों विचार हुआ—''ऐसा लगता है कि यह ब्राह्मण तीन बार पूछने पर भी आनन्द के प्रश्न का उत्तर नहीं दे पा रहा है। क्यों न मैं मध्यस्थता कर प्रश्न को सुलझाने में इसकी सहायता करूँ।'' तब भगवान् ने सङ्गारव ब्राह्मण को पूछा—

''ब्राह्मण! आज राजान्तःपुर में एकत्र बैठे राजपुरुषों में क्या संवाद हो रहा था?''

''भो गौतम! आज राजान्तःपुर में एकत्र बैठे राजपुरुषों में यह बातचीत हो रही थी कि पहले भिक्षु कम होते थे, परन्तु वे ही अधिक अलौकिक चमत्कार दिखाया करते थे। अब भिक्षु अधिक हो गये; परन्तु उनमें अलौकिक चमत्कार दिखाने वाले अल्प ही हैं।''

''ब्राह्मण! ये तीन प्रातिहार्य होते हैं। कौन से तीन? ऋद्धिप्रातिहार्य, आदेशनाप्रातिहार्य, एवं अनुशासनीप्रातिहार्य। यहाँ, ब्राह्मण! कोई ऐसे विविध प्रकार के प्रातिहार्य (चमत्कार) अनुभव करता है—कभी एक होकर भी अनेक रूप धर ले, कभी अनेक रूप होकर पुनः एक रूप में आ जाय, कभी प्रकट हो जाय, कभी छुप जाय। सामने खड़ी मिट्टी का दीवार, पत्थर की दीवार या पर्वत को भेदता (स्पर्श न करता) हुआ पार चला जाय, जैसे आकाश में जा रहा हो। पृथ्वी पर डुबकी लगाता हुआ या ऊपर उठता हुआ चले, जैसे जल में चलता हो। जल पर ऐसे चले, जैसे पृथ्वी पर चलता है। कभी आकाश में उड़ जाय, जैसे पक्षी उड़ जाता है। इन चन्द्रमा एवं सूर्य को भी हाथ से छू लेता है। कभी वह ब्रह्मलोक तक भी इसी काया से चला जाता है। ब्राह्मण! यह कहलाता है—**ऋद्धिप्रातिहार्य**। (१)

''और, ब्राह्मण! **आदेशनाप्रातिहार्य** क्या कहलाता है? यहाँ कोई निमित्त देखकर अनुमान

"इध पन, ब्राह्मण, एकच्चो न हेव खो निमित्तेन आदिसति, अपि [B.171, R.171] च खो मनुस्सानं वा अमनुस्सानं वा देवतानं वा सद्दं सुत्वा आदिसति—'एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि ते चित्तं' ति। सो बहुं चे पि आदिसति तथेव तं होति, नो अञ्ञथा।

"इध पन, ब्राह्मण, एकच्चो न हेव खो निमित्तेन आदिसति न पि मनुस्सानं वा अमनुस्सानं वा देवतानं वा सद्दं सुत्वा आदिसति, अपि च खो वितक्कयतो विचारयतो वितक्कविप्फारसद्दं सुत्वा आदिसति—'एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि ते चित्तं' ति। सो बहुं चे पि आदिसति तथेव तं होति, नो अञ्ञथा।

"इध पन, ब्राह्मण, एकच्चो न हेव खो निमित्तेन आदिसति, न पि मनुस्सानं वा अमनुस्सानं वा देवतानं वा सद्दं सुत्वा आदिसति, न पि वितक्कयतो विचारयतो वितक्क-विप्फारसद्दं सुत्वा आदिसति, अपि च खो अवितक्कं अविचारं समाधिं समापन्नस्स चेतसा चेतो परिच्च पजानाति—'यथा इमस्स भोतो मनोसङ्खारा पणिहिता इमस्स चित्तस्स अनन्तरा अमुं नाम वितक्कं वितक्केस्सती' ति। सो बहुं चे पि आदिसति तथेव तं होति, नो अञ्ञथा। इदं वुच्चति, ब्राह्मण, आदेसनापाटिहारियं।

"कतमं च, ब्राह्मण, अनुसासनीपाटिहारियं? इध, ब्राह्मण, एकच्चो [N.158] एवमनुसासति—'एवं वितक्केथ, मा एवं वितक्कयित्थ; एवं मनसि करोथ, मा एवं मनसाकत्थ; इदं पजहथ, इदं उपसम्पज्ज विहरथा' ति। इदं वुच्चति, ब्राह्मण, अनुसासनीपाटिहारियं। इमानि खो ब्राह्मण, तीणि पाटिहारियानि! इमेसं ते, ब्राह्मण, तिण्णं पाटिहारियानं कतमं पाटिहारियं खमति अभिक्कन्ततरं च पणीततरं चा" ति?

के बल पर यह कहता है—'तुम्हारा ऐसा मन था', या 'तुम्हारा वैसा मन था।' वह बहुत कुछ वही कहता है जो पहले हो चुका होता है। (क)

"और, ब्राह्मण! कोई निमित्तों के देखकर नहीं, अपितु सिद्ध पुरुषों या देवताओं के शब्द सुनकर यह कहता है—'तुम्हारा मन ऐसा भी था' या 'तुम्हारा मन वैसा भी था...।' (ख)

"और, ब्राह्मण! कोई न निमित्त देखकर, न देवताओं के शब्द सुनकर यह सब कुछ कहता है, अपितु उस बात पर वितर्क एवं विचार करता हुआ उनका विस्तार करता हुआ उनके आधार पर यह आदेशना (अनुमान) कहता है—'ऐसा तेरा मन था' या 'वैसा तेरा मन था' या 'वैसा तेरा चित्त था।' वह बहुत कुछ वही कहता है जो पहले हो चुका होता है, अन्यथा नहीं। (ग)

"और, ब्राह्मण! कोई न निमित्त देखकर बोलता है, न देवताओं के शब्द सुनकर, न वितर्क विचार कर वैसी आदेशना करता है, अपितु अवितर्क-अविचारमय समाधियुक्त होकर, स्वचित्त से परचित्त की बातें जानकर यह अनुमान लगाकर कहता है—'आपके ये मनःसंस्कार सङ्कल्पित होकर इसके चित्त में जाकर दो विचार उत्पन्न करेंगे।' वह जो कहता है बहुत कुछ वहीं होता है, अन्यथा नहीं। ब्राह्मण यह कहलाता है—**आदेशनाप्रातिहार्य**। (घ)

"और, ब्राह्मण! **अनुशासनीप्रातिहार्य** किसे कहते हैं? यहाँ, ब्राह्मण, कोई किसी को

"तत्र, भो गोतम, यदिदं पाटिहारियं इधेकच्चो अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति ...पे०... याव ब्राह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति, इदं, भो गोतम, पाटिहारियं यो व नं करोति सो व नं पटिसंवेदेति, यो व नं करोति तस्सेव तं होति। इदं मे, भो गोतम, पाटिहारियं मायासहधम्मरूपं विय खायति।

[B.172] "यं पिदं, भो गोतम, पाटिहारियं इधेकच्चो निमित्तेन आदिसति—'एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि ते चित्तं' ति, सो बहुं चे पि आदिसति तथेव तं होति, नो अञ्ञथा। इध पन, भो गोतम, एकच्चो न हेव खो निमित्तेन आदिसति, अपि च खो मनुस्सानं वा अमनुस्सानं वा देवतानं वा सद्दं सुत्वा आदिसति, ...पे०... न पि मनुस्सानं वा अमनुस्सानं वा देवतानं वा सद्दं सुत्वा आदिसति, अपि च खो वितक्कयतो विचारयतो वितक्कविप्फारसद्दं सुत्वा आदिसति ...पे०... न पि वितक्कयतो विचारयतो वितक्कविप्फारसद्दं सुत्वा आदिसति, अपि च खो अवितक्कं अविचारं समाधिं समापन्नस्स चेतसा चेतो परिच्च पजानाति—'यथा इमस्स भोतो मनोसङ्खारा पणिहिता इमस्स चित्तस्स अनन्तरा अमुं नाम वितक्कं वितक्केस्सती' ति, सो बहुं चे पि आदिसति तथेव तं होति, नो अञ्ञथा। इदं पि, [R.172] भो गोतम, पाटिहारियं यो व नं करोति सो व नं पटिसंवेदेति, यो व नं करोति तस्सेव तं होति। इदं पि मे, भो गोतम, पाटिहारियं मायासहधम्मरूपं विय खायति।

"यं च खो इदं, भो गोतम, पाटिहारियं इधेकच्चो एवं अनुसासति—'एवं वितक्केथ, मा एवं वितक्कयित्थ; एवं मनसि करोथ, मा एवं मनसाकत्थ; इदं पजहथ, इदं उपसम्पज्ज विहरथा' ति। इदमेव, भो गोतम, पाटिहारियं खमति इमेसं तिण्णं पाटिहारियानं अभिक्कन्ततरं च पणीतरं च।

अनुशासन करता है—'ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क न करो, ऐसा मन में विचार करो, ऐसा मन में विचार न करो। इसे छोड़ दो, इसका साधना द्वारा संग्रह करो'—यह कहलाता है, ब्राह्मण! **अनुशासनीप्रातिहार्य।**

"ब्राह्मण! ये तीन 'प्रातिहार्य' कहलाते हैं। इनमें कौन सा प्रातिहार्य तुम्हें अपेक्षाकृत अच्छा एवं उत्तम लगता है?"

"भो गौतम! इनमें जो (प्रथम) प्रातिहार्य बताया था कि कोई अनेक प्रकार के चमत्कार अनुभव करता है ...पूर्ववत्... ब्रह्मलोक तक वह अपनी इसी काया से चला जाता है—यह मुझे माया (धूर्तता=ठगबाजी) के सदृश लगता है।

"भो गौतम! और जो (दूसरा) प्रातिहार्य (आदेशनाप्रातिहार्य) अनेक भेदों में आपने बताया था कि कोई निमित्त देखकर ...पूर्ववत्... वह बहुत कुछ वही होता है जो वह बतलाता है, अन्यथा नहीं। भो गौतम! मुझे यह भी मायासदृश ही लगता है।

"भो गौतम! यह जो (तीसरा) अन्तिम प्रातिहार्य आपने उपदिष्ट किया है कि 'ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क न करो' ...पूर्ववत्... 'इसे साधना द्वारा संगृहीत करो।' यही प्रातिहार्य मुझे इन तीनों प्रातिहार्यों में उत्तम एवं श्रेष्ठ लगता है।

"अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! यावसुभासितमिदं भोता [N.159] गोतमेन इमेहि च मयं तीहि पाटिहारियेहि समन्नागतं भवन्तं गोतमं धारेम। भवं हि गोतमो अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति ...पे०... याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति, भवं हि गोतमो अवितक्कं अविचारं समाधिं समापन्नस्स चेतसा चेतो परिच्च पजानाति—'यथा इमस्स भोतो मनोसङ्खारा पणिहिता इमस्स चित्तस्स अनन्तरा अमुं नाम वितक्कं वितक्केस्सती' ति। भवं हि गोतमो एवमनुसासति—'एवं वितक्केथ, मा एवं वितक्कयित्थ; एवं मनसि करोथ, मा एवं मनसाकत्थ; इदं पजहथ, इदं उपसम्पज्ज विहरथा''' ति।

"अद्धा खो त्याहं, ब्राह्मण, आसज्ज उपनीय वाचा भासिता; अपि च त्याहं [B.173] ब्याकरिस्सामि। अहं हि, ब्राह्मण, अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोमि ...पे०... याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेमि। अहं हि, ब्राह्मण, अवितक्कं अविचारं समाधिं समापन्नस्स चेतसा चेतो परिच्च पजानामि—'यथा इमस्स भोतो मनोसङ्खारा पणिहिता, इमस्स चित्तस्स अनन्तरा अमुं नाम वितक्कं वितक्केस्सती' ति। अहं हि, ब्राह्मण, एवमनुसासामि—'एवं वितक्केथ, मा एवं वितक्कयित्थ; एवं मनसि करोथ, मा एवं मनसाकत्थ; इदं पजहथ, इदं उपसम्पज्ज विहरथा''' ति।

"अत्थि पन, भो गोतम, अञ्ञो एकभिक्खु पि यो इमेहि तीहि पाटिहारियेहि समन्नागतो, अञ्ञत्र भोता गोतमेना" ति?

"न खो, ब्राह्मण, एकंयेव सतं न द्वे सतानि न तीणि सतानि न चत्तारि सतानि न पञ्च सतानि, अथ खो भिय्योव, ये भिक्खू इमेहि तीहि पाटिहारियेहि समन्नागता" ति।

"कहं पन, भो गोतम, एतरहि ते भिक्खू विहरन्ती" ति।

"आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है भो गौतम! आपने अतिशय आह्लादकारी उपदेश किया है। इन तीन प्रातिहार्यों से युक्त आपको हम ('गुरु' रूप में) धारण करते हैं। भो गौतम! आप ही ये विविध ऋद्धियाँ अनुभव करते हैं ...पूर्ववत्... इसी काया से ब्रह्मलोक तक आप ही जाने का सामर्थ्य रखते हैं। अवितर्क अविचारमय समाधि से आप ही स्वचित्त से परचित्त को यों जानते हैं— ...पूर्ववत्... समाधिभावना से इसको गृहीत करो।"

"निश्चय ही, ब्राह्मण! तुमने अपना मन्तव्य सूक्ष्मता से विचार कर प्रकट किया है। तथापि मैं तुम्हें कुछ अधिक स्पष्ट कर दूँ। ब्राह्मण! मैं ही विविध ऋद्धियाँ अनुभव करता हूँ ...पूर्ववत्... समाधि भावना से युक्त होकर ग्रहण करो।"

"भो गौतम! आपके इस धर्मविनय में आपके अतिरिक्त कोई अन्य भिक्षु भी है जो इन तीनों प्रातिहार्यों से युक्त हो।"

"ब्राह्मण! तुम एक पूछ रहे हो। यहाँ एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पाँच सौ नहीं; अपितु इस संख्या से बहुत अधिक भिक्षु इन तीनों प्रातिहार्यों से युक्त यहाँ हैं!"

"भो गौतम! वे भिक्षु इस समय कहाँ साधना कर रहे हैं?"

[R.173] ''इमस्मिंयेव खो, ब्राह्मण, भिक्खुसङ्घे'' ति।

''अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति, एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि, धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

ब्राह्मणवग्गो छट्ठो॥

तस्सुद्दानं

[N.160] द्वे ब्राह्मणा अञ्ञतरो, परिब्बाजकेन निब्बुतं।
पलोकवच्छो तिकण्णो, सोणि सङ्गारवेन च ति॥ ●

७. महावग्गो

[B.174] **१. तित्थायतनसुत्तं :** ''तीणिमानि, भिक्खवे, तित्थायतनानि यानि पण्डितेहि समनुयुञ्जियमानानि समनुगाहियमानानि समनुभासियमानानि परं पि गन्त्वा अकिरियाय सण्ठहन्ति। कतमानि तीणि? सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवदिट्ठिनो—'यं किं चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतू' ति। सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यं किं चायं

''ब्राह्मण! इसी भिक्षुसङ्घ में।''

''आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है भो गौतम! ...पूर्ववत्... आज से आप मुझे जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें॥''

ब्राह्मणवर्ग षष्ठ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम ब्राह्मणद्वयसूत्र, २. द्वितीय ब्राह्मणद्वयसूत्र, ३. अन्यतर ब्राह्मणसूत्र, ४. परिव्राजक-सूत्र, ५. निर्वाणसूत्र, ६. प्रलोकसूत्र, ७. वत्सगोत्रसूत्र, ८. त्रिकर्णसूत्र, ९. जानुश्रोणिसूत्र, एवं १०. सङ्गारवसूत्र॥ ●

७. महावर्ग

१. तीर्थायतनसूत्र : : त्रिविध कर्मकारण

''भिक्षुओ! अन्य सम्प्रदायवादियों के ये तीन सिद्धान्त हैं जिन पर पण्डितजन शास्त्र-सभाओं में प्रश्न-उत्तर किया करते हैं, वाद किया करते हैं तथा जिनके सहारे से दूसरों पर आरोप लगाते रहते हैं। कौन से तीन?

१. ''भिक्षुओ! उनमें कुछ श्रमण ब्राह्मण इस मत के पोषक हैं—'इस लोक में कोई पुरुष जो कुछ भी सुख, दुःख, अदुःख, असुख भोगता है, वह सब उसके **पूर्व कृत कर्मों के कारण** होता है।'

पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं इस्सरनिम्मानहेतू' ति। सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यं किं चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं अहेतुअपच्चया' ति।

''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यं किं चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतू' ति, त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—'सच्चं किर तुम्हे आयस्मन्तो एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—यं किं चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतू' ति ? ते च मे एवं पुट्ठा 'आमा' ति पटिजानन्ति। त्याहं एवं वदामि—[R.174] 'तेनहायस्मन्तो पाणातिपातिनो भविस्सन्ति पुब्बेकतहेतु, अदिन्नादायिनो भविस्सन्ति पुब्बेकतहेतु, अब्रह्मचारिनो भविस्सन्ति पुब्बेकतहेतु, मुसावादिनो भविस्सन्ति पुब्बेकतहेतु, पिसुणवाचा भविस्सन्ति पुब्बेकतहेतु, फरुसवाचा भविस्सन्ति पुब्बेकहेतु, सम्फप्पलापिनो भविस्सन्ति पुब्बेकतहेतु, अभिज्झालुनो भविस्सन्ति पुब्बेकतहेतु, ब्यापन्नचित्ता भविस्सन्ति पुब्बेकतहेतु, मिच्छादिट्ठिका भविस्सन्ति पुब्बेकतहेतु'।

''पुब्बेकतं खो पन, भिक्खवे, सारतो पच्चागच्छतं न होति छन्दो वा [N.161] वायामो वा इदं वा करणीयं इदं वा अकरणीयं ति। इति करणीयाकरणीये खो पन सच्चतो थेततो अनुपलब्भियमाने मुट्ठस्सतीनं अनारक्खानं विहरतं न होति पच्चत्तं सह- [B.175] धम्मिको समणवादो। अयं खो मे, भिक्खवे, तेसु समणब्राह्मणेसु एवंवादीसु एवंदिट्ठीसु पठमो सहधम्मिको निग्गहो होति।

---

२. ''भिक्षुओ! उनमें कुछ दूसरे मतवादी यह कहते हैं—'इस लोक में पुरुष जो भी सुख, दुःख या अदुःख-असुख भोगता है वह **ईश्वराधीन है**'।

३. ''भिक्षुओ! उनमें कुछ तीसरे मतवादी ऐसा मानते हैं—'इस लोक में पुरुष जो भी सुख, दुःख या अदुःख-असुख भोगता है उसका न कोई कारण है, न कोई हेतु। वह तो यह सब **अहेतुक या अप्रत्यय** ही करता है।'

''भिक्षुओ! यहाँ जो श्रमण ब्राह्मण प्रथम मत (पूर्वकृतकर्मवाद) के पोषक हैं, उनके पास जाकर जब मैं पूछता हूँ तो वे इस मत को स्वीकार करते हुए इसका समर्थन करते हैं। इसके उत्तर में मैं उनसे कहता हूँ कि यदि आप लोगों की यही धारणा है कि मनुष्य जो कुछ भी सुख, दुःख या अदुःख-असुख भोग रहा है वह सब उसके अपने पूर्वकृत हेतुओं के कारण ही, तब तो आप भी पूर्वजन्मकृत कर्मों के कारण प्राणातिपाती (हिंसक), अदत्तादायी (चौर), अब्रह्मचारी (व्यभिचारी), मृषावादी (असत्यवादी), पैशुन्यवादी (चुगलखोर), रूक्षवादी (कठोरवाणी बोलनेवाले), सम्प्रलापी (बकवादी), अभिध्यालु (अत्यन्त लोभी), व्यापादचित्त (द्वेषभाव रखनेवाले) तथा मिथ्यादृष्टि माने जायेंगे।''

''क्योकि, भिक्षुओ! पूर्वकृत को तत्त्वतः ग्रहण करने वाले साधकों का न अपना कोई छन्द (इच्छा) होगा, न प्रयास कि वह 'यह करना चाहिये', या 'यह न करना चाहिये'—ऐसा सोच

''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यं किं चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं इस्सरनिम्मानहेतू' ति, त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—'सच्चं किर तुम्हे आयस्मन्तो एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—यं किं चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं इस्सरनिम्मानहेतू' ति? ते च मे एवं पुट्ठा 'आमा' ति पटिजानन्ति। त्याहं एवं वदामि—'तेनहायस्मन्तो पाणातिपातिनो भविस्सन्ति इस्सरनिम्मानहेतु, अदिन्नादायिनो भविस्सन्ति इस्सरनिम्मानहेतु, अब्रह्मचारिनो भविस्सन्ति इस्सरनिम्मानहेतु, मुसावादिनो भविस्सन्ति इस्सरनिम्मानहेतु, पिसुणवाचा भविस्सन्ति इस्सरनिम्मानहेतु, फरुसवाचा भविस्सन्ति इस्सरनिम्मानहेतु, सम्फप्पलापिनो भविस्सन्ति इस्सरनिम्मानहेतु, अभिज्झालुनो भविस्सन्ति इस्सरनिम्मानहेतु, ब्यापन्नचित्ता भविस्सन्ति इस्सरनिम्मानहेतु, मिच्छादिट्ठिका भविस्सन्ति इस्सरनिम्मानहेतु'।

''इस्सरनिम्मानं खो पन, भिक्खवे, सारतो पच्चागच्छतं न होति छन्दो वा वायामो वा इदं वा करणीयं इदं वा अकरणीयं ति। इति करणीयाकरणीये खो पन सच्चतो थेततो अनुपलब्भियमाने मुट्ठस्सतीनं अनारक्खानं विहरतं न होति पच्चत्तं सहधम्मिको समणवादो। अयं खो मे, भिक्खवे, तेसु समणब्राह्मणेसु एवंवादीसु एवंदिट्ठीसु दुतियो सहधम्मिको निग्गहो होति।

[R.175] ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यं किं चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं अहेतु-अप्पच्चया' ति, त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—'सच्चं किर तुम्हे आयस्मन्तो एवंवादिनो

सके। इस प्रकार कर्तव्य एवं कर्तव्य के विषय में सत्य या असत्य के रूप में कुछ भी न मिलने पर ऐसे भ्रष्टस्मृति साधकों की इस प्रकार अरक्षित साधना व्यक्तितः कैसे हो पायेगी! इस प्रकार, भिक्षुओ! ये पूर्वकृतकर्मवादी इस प्रथम निग्रह स्थान में निगृहीत हो जाते हैं। (१)

''भिक्षुओ! कुछ श्रमण-ब्राह्मण अपनी इस धारणा के कारण यह मत रखते हैं—'यहाँ कोई ईश्वराधीन होने के कारण ही सुख दुःख या अदुःख असुख भोगता है।' उनसे जब मैं इस विषय में पूछता हूँ तो वे इस मत को स्वीकार करते हैं। तब मैं उनसे कहता हूँ—'तब आप प्राणातिपात ...पूर्ववत्... मिथ्यादृष्टि भी ईश्वरेच्छा से ही होंगे।'

''परन्तु यह ईश्वराधीन वाला मतवादी इसी तत्त्व का अनुसरण करता रहेगा तो उसके वर्तमान कर्तव्याकर्तव्य के विषय में उसकी कोई स्वतन्त्र इच्छा या तदर्थ प्रयास क्या रह जायगा! इस तरह इन सच्चे झूठे कर्तव्य के विषय में लुप्तस्मृति वाले इन श्रमणों की व्यक्तिगत साधना का क्या महत्त्व रह जायगा। भिक्षुओ! यह दूसरा निग्रहस्थान इन ईश्वरेच्छा माननेवाले मतवादियों पर आता है।'' (२)

''अथ च, भिक्षुओ! कुछ श्रमण ब्राह्मण इन लौकिक सुख, दुःख या अदुःख असुख को अहैतुक या अप्रत्यय मानते हैं। मैं उनके पास जाकर जब उनसे इस विषय में पूछता हूँ तो वे इस मत

एवंदिट्ठिनो—यं किं चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं अहेतुअप्पच्चया' ति? ते च मे एवं पुट्ठा 'आमा' ति पटिजानन्ति। त्याहं एवं [N.162] वदामि—'तेनहायस्मन्तो पाणातिपातिनो भविस्सन्ति अहेतुअप्पच्चया ...पे०... मिच्छा-दिट्ठिका भविस्सन्ति अहेतुअप्पच्चया'।

''अहेतुअप्पच्चयं खो पन, भिक्खवे, सारतो पच्चागच्छतं न होति छन्दो [B.176] वा वायामो वा इदं वा करणीयं इदं वा अकरणीयं ति। इति करणीयाकरणीये खो पन सच्चतो थेततो अनुपलब्भियमाने मुट्ठस्सतीनं अनारक्खानं विहरतं न होति पच्चत्तं सहधम्मिको समणवादो। अयं खो मे, भिक्खवे, तेसु समणब्राह्मणेसु एवंवादीसु एवंदिट्ठीसु ततियो सहधम्मिको निग्गहो होति।

''इमानि खो, भिक्खवे, तीणि तित्थायतनानि यानि पण्डितेहि समनुयुञ्जियमानानि समनुगाहियमानानि समनुभासियमानानि परं पि गन्त्वा अकिरियाय सण्ठहन्ति।

''अयं खो पन, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। कतमो च, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि? 'इमा छ धातुयो' ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। 'इमानि छ फस्सायतनानी' ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। 'इमे अट्ठारस मनोपविचारा' ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। 'इमानि चत्तारि अरियसच्चानी' ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि।

को स्वीकार करते हैं। तब मैं उनसे कहता हूँ—'तब तो आप लोग अकारण ही प्राणातिपाती ...पूर्ववत्... मिथ्यादृष्टि होने लगेंगे।'

''परन्तु, भिक्षुओ! इस मत को तत्त्वतः गृहीत किये हुए ये मतवादी तब अपने सत्य एवं असत्य कर्तव्याकर्तव्य के विषय में लुप्तस्मृति होकर व्यक्तिगत साधना में क्यों तत्पर होंगे?—यह तृतीय निग्रहस्थान इन तृतीय मतवादियों पर आता है। (३)

''भिक्षुओ! अन्य तीर्थवादियों के ये तीन सिद्धान्त हैं जिनपर पण्डितजन शास्त्र-सभाओं में प्रश्नोत्तर करते हैं, वाद करते हैं तथा जिनके सहारे से दूसरों पर आरोप लगाते रहते हैं। (क)

''परन्तु, भिक्षुओ! मैंने अपने श्रावकों को जिस धर्म की देशना की है, उस पर कोई अन्य मतवादी आरोप नहीं लगा सकता, वह सहज सुबोध है, अनिन्द्य है, निर्दोष है (बदनाम नहीं है), विद्वान् श्रमण ब्राह्मणों द्वारा समर्थित है। भिक्षुओ! ऐसे गुणों वाले, ऐसे माहात्म्य वाले किस धर्म की देशना की है? ये छह धातुएँ ...पूर्ववत्...। ये छह स्पर्शायतन...पूर्ववत्...। ये अट्ठारह मन

"इमा छ धातुयो ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति। इति खो पनेत वुत्तं। किं चेतं [R.176] पटिच्च वुत्तं? छयिमा, भिक्खवे, धातुयो—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातु, आकासधातु, विञ्ञाणधातु। इमा छ धातुयो ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो [N.162] अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति। इति यं तं वुत्तं, इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

[B.177] "इमानि छ फस्सायतनानी ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति। इति खो पनेतं वुत्तं। किं चेतं पटिच्च वुत्तं? छयिमानि, भिक्खवे, फस्सायतनानि—चक्खु फस्सायतनं, सोतं फस्सायतनं, धानं फस्सायतनं, जिव्हा फस्सायतनं, कायो फस्सायतनं, मनो फस्सायतनं। इमानि छ फस्सायतनानी ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति। इति यं तं वुत्तं, इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

"इमे अट्ठारस मनोपविचारा ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति। इति खो पनेतं वुत्तं। किं चेतं पटिच्च वुत्तं? चक्खुना रूपं दिस्वा सोमनस्सट्ठानियं रूपं उपविचरति... सोतेन सद्दं सुत्वा... घाने गन्धं घायित्वा... जिव्हाय रसं सायित्वा... कायेन फ़ोट्ठब्बं फुसित्वा... मनसा धम्मं विञ्ञाय सोमनस्सट्ठानियं... धम्मं उपविचरति। इमे अट्ठारस मनोपविचारा ति,

---

उपविचार... पूर्ववत्... ये चार आर्यसत्य जिन पर कोई अन्य मतवादी आरोप नहीं लगा सकता, जो सहज सुबोध हैं, जो अनिन्दय हैं, निर्दोष हैं, तथा विद्वान् श्रमण ब्राह्मणों द्वारा समर्थित हैं।

"भिक्षुओ! 'ये छह धातुएँ होती हैं'—ऐसा कहने में मेरा क्या तात्पर्य है? भिक्षुओ! ये छह धातु होती हैं—१. पृथ्वीधातु, २. अब्धातु, ३. तेजोधातु, ४. वायुधातु, ५. आकाशधातु एवं ६. विज्ञानधातु। भिक्षुओ! ये छह धातु होती हैं, जो... विद्वान् श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा समर्थित हैं। यही बताने में मेरा तात्पर्य है।

"भिक्षुओ! 'ये छह स्पर्शायतन होते हैं'... यह मैंने कहा है, यह क्या समझ कर कहा है? भिक्षुओ! ये छह स्पर्शायतन होते हैं—१. चक्षुःस्पर्शायतन, २. श्रोत्रस्पर्शायतन, ३. घ्राणस्पर्शायतन, ४. जिह्वास्पर्शायतन, ५. कायस्पर्शायतन, एवं ६. मनःस्पर्शायतन। भिक्षुओ! ये छह आयतन होते हैं, जो... विद्वान् श्रमण ब्राह्मणों द्वारा भी समर्थित है। यही कहने में मेरा तात्पर्य है।

"भिक्षुओ! 'ये अट्ठारह मन उपविचार (=विचार) होते हैं'... यह धर्म मैंने उपदिष्ट किया है। क्या समझकर उपदिष्ट किया है? (१) कोई साधक चक्षु से रूप देख कर कभी उसपर (क) सौमनस्य के रूप में विचार करता है, कभी (ख) दौर्मनस्य के रूप में विचार करता है, कभी (ग) उपेक्षा के रूप में विचार करता है। (२) श्रोत्र से शब्द सुनकर... पूर्ववत्...। (३) घ्राण से गन्ध ग्रहण कर... (४) जिह्वा से रस का आस्वाद लेकर.. (५) काया से स्प्रष्टव्य विषय का स्पर्श कर...

भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असंकिलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति। इति यं तं वुत्तं, इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

"इमानि चत्तारि अरियसच्चानी ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति। इति खो पनेतं वुत्तं। किं चेतं पटिच्च वुत्तं? छन्नं, भिक्खवे, धातूनं उपादाय गब्भस्सावक्कन्ति होति; ओक्कन्तिया सति नामरूपं, नामरूपपच्चया सळायतनं, सळायतनपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना। वेदियमानस्स खो पनाहं, भिक्खवे, 'इदं दुक्खं' ति पञ्ञापेमि, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति पञ्ञापेमि, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति पञ्ञापेमि, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति पञ्ञापेमि।

[N.164] "कतमं च, भिक्खवे, दुक्खं अरियसच्चं? जाति पि दुक्खा, जरा पि दुक्खा, ब्याधि पि दुक्खो, मरणं पि दुक्खं, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पि दुक्खा, [R.177] अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं। सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धा पि दुक्खा। इदं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खं अरियसच्चं। [B. 78]

"कतमं च, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं? अविज्जापच्चया सङ्खारा, सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं, नामरूपपच्चया सळायतनं, सळायतन-पच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सु-

---

(६) मन से धर्मों को जानकर उनपर कभी (क) सौमनस्य के रूप में... (ख) कभी दौर्मनस्य के रूप में... (ग) कभी उपेक्षा के रूप में विचार करता है। ये अठारह (६×३=१८) मन उपविचार होते हैं। ...पूर्ववत्...।

"भिक्षुओ! 'ये **चार आर्यसत्य** होते हैं'—ऐसा धर्म ...पूर्ववत्... विद्वान् श्रमण ब्राह्मणों द्वारा समर्थित है। यह क्या सोचकर कहा है? भिक्षुओ! छह धातुओं को लेकर गर्भ की अवक्रान्ति (प्रवेश) होता है। इस प्रवेश के बाद, नामरूप, नामरूप के प्रत्यय से षडायतन, षडायतन के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है। इस वेदना का अनुभव करते हुए, भिक्षुओ! मैं 'यह दुःख है' ऐसा जान पाता हूँ, 'यह दुःखसमुदय है'—ऐसा, 'यह दुःखनिरोध है'—ऐसा, 'यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है'—ऐसा जान पाता हूँ।

"भिक्षुओ! यह **दुःख आर्यसत्य** क्या है? जन्म भी दुःख है, जरा भी... रोग भी... मरण भी दुःख है; शोक परिदेव, दुःख दौर्मनस्य एवं उपायास—ये सभी कुछ दुःख हैं। अप्रियों से मिलन एवं प्रियों से वियोग भी दुःख है, अभीष्ट वस्तु का न मिलना दुःख है तथा अनभीष्ट (अनचाही) वस्तु का मिल जाना भी दुःख है। संक्षेप में, ये पाँचों उपादानस्कन्ध दुःखमय हैं।

भिक्षुओ यह **दुःखसमुदय आर्यसत्य** क्या है? अविद्या के प्रत्यय से संस्कार, संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान... पूर्ववत्...। संक्षेप में ये पाँचों उपादानस्कन्ध ही दुःखमय हैं।

पायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं।

"कतमं च, भिक्खवे, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं? अविज्जा त्वेव असेस-विरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो, सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो, विञ्ञाणनिरोधा नामरूप-निरोधो, नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो, फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो, वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो, उपादाननिरोधा भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सु-पायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं।

"कतमं च, भिक्खवे, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि। इदं वुच्चति, भिक्खवे, दुक्ख-निरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं। 'इमानि चत्तारि अरियसच्चानी' ति, भिक्खवे, मया धम्मो देसितो अनिग्गहितो असङ्किलिट्ठो अनुपवज्जो अप्पटिकुट्ठो समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति। इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं" ति॥ ●

[R.178] **२. भयसुत्तं :** "तीणिमानि, भिक्खवे, अमातापुत्तिकानि भयानी ति अस्सुतवा [N.165, B.179] पुथुज्जनो भासति। कतमानि तीणि? होति सो, भिक्खवे, समयो यं

"भिक्षुओ! यह **दुःखनिरोध आर्यसत्य** क्या है? अविद्या का अशेष विराग होना, इस अशेष विराग निरोध से संस्कारों का निरोध, संस्कारनिरोध से विज्ञाननिरोध, विज्ञाननिरोध से नामरूपनिरोध, नामरूपनिरोध से षडायतननिरोध, षडायतननिरोध से स्पर्शनिरोध, स्पर्शनिरोध से वेदनानिरोध, वेदनानिरोध से तृष्णानिरोध, तृष्णानिरोध से उपादाननिरोध, उपादाननिरोध से भवनिरोध, एवं भवनिरोध से जातिनिरोध, जातिनिरोध से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःखदौर्मनस्य, उपायास—इन सब का निरोध हो जाता है। इस तरह, समस्त दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—दुःखनिरोध।

"भिक्षुओ! यह दुःखनिरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग (प्रतिपदा=पद्धति) क्या है? यही आर्य **अष्टाङ्गिक मार्ग।** जैसे—१. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मान्त, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि। यह कहलाता है, भिक्षुओ! दुःखनिरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आर्यसत्य। इस प्रकार भिक्षुओ! 'ये चार आर्यसत्य हैं'—यह जो मैंने कहा है, यह इसी अभिप्राय से कहा है॥" ●

२. भयसूत्र : : तीन भय

"भिक्षुओ! मूर्ख पृथग्जनों को ये तीन भय प्रतिभासित होते हैं, ये भय 'अमातापुत्रक' कहलाते हैं। कौन से तीन?

महाअग्गिडाहो वुट्ठाति। महाअग्गिडाहे खो पन, भिक्खवे, वुट्ठिते तेन गामा पि डय्हन्ति निगमा पि डय्हन्ति नगरा पि डय्हन्ति। गामेसु पि डय्हमानेसु निगमेसु पि डय्हमानेसु नगरेसु पि डय्हमानेसु तत्थ माता पि पुत्तं नप्पटिलभति, पुत्तो पि मातरं नप्पटिलभति। इदं, भिक्खवे, पठमं अमातापुत्तिकं भयं ति अस्सुतवा पुथुज्जनो भासति।

"पुन च परं, भिक्खवे, होति सो समयो यं महामेघो वुट्ठाति। महामेघे खो पन, भिक्खवे, वुट्ठिते महाउदकवाहको सञ्जायति। महाउदकवाहके खो पन, भिक्खवे, सञ्जाते तेन गामा पि वुय्हन्ति निगमा पि वुय्हन्ति नगरा पि वुय्हन्ति। गामेसु पि वुय्हमानेसु निगमेसु पि वुय्हमानेसु नगरेसु पि वुय्हमानेसु तत्थ माता पि पुत्तं नप्पटिलभति, पुत्तो पि मातरं नप्पटिलभति। इदं, भिक्खवे, दुतियं अमातापुत्तिकं भयं ति अस्सुतवा पुथुज्जनो भासति।

"पुन च परं, भिक्खवे, होति सो समयो यं भयं होति अटविसङ्कोपो, चक्कसमारूळ्हा जानपदा परियायन्ति। भये खो पन, भिक्खवे, सति अटविसङ्कोपो चक्कसमारूळ्हेसु जानपदेसु परियायन्तेसु तत्थ माता पि पुत्तं नप्पटिलभति, पुत्तो पि मातरं नप्पटिलभति। इदं, भिक्खवे, ततियं अमातापुत्तिकं भयं ति अस्सुतवा पुथुज्जनो भासति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि अमातापुत्तिकानि भयानी ति अस्सुतवा पुथुज्जनो भासति।

"तानि खो पनिमानि, भिक्खवे, तीणि समातापुत्तिकानियेव भयानि अमातापुत्तिकानि भयानी ति अस्सुतवा पुथुज्जनो भासति। कतमानि तीणि? होति सो, भिक्खवे, समयो यं महाअग्गिडाहो वुट्ठाति। महाअग्गिडाहे खो पन, भिक्खवे, वुट्ठिते तेन गामा पि

"भिक्षुओ! एक समय होता है जब कहीं भयङ्कर अग्निकाण्ड हो जाय। उस भयङ्कर अग्निदाह में वहाँ के ग्राम, जनपद एवं नगर—सभी जल जायँ। उन ग्रामों, जनपदों एवं नगरों के जल जाने पर पुत्र से बिछुड़ी हुई माता न अपने पुत्र से मिल पावे और न माता से बिछुड़ा हुआ पुत्र अपनी माता से मिल पावे। भिक्षुओ! यह प्रथम प्रकार का भय है, जो किसी मूर्ख पृथग्जन् को 'अमातापुत्रक' भय के रूप में प्रतिभासित होता है। (१)

"फिर, भिक्षुओ! कभी समय आता है कि कहीं भयङ्कर वृष्टि से जलप्लावन (बाढ़) हो जाय। उस जलप्लावन से ग्राम भी, निगम भी, नगर भी जल में बह जायँ। उस समय न कोई माता अपने पुत्र को खोज पाये, न कोई पुत्र अपनी माता को खोज पाये। भिक्षुओ! यह दूसरे प्रकार का भय है जो मूर्ख पृथग्जन को 'अमातापुत्रक' भय के रूप में दिखायी देता है। (२)

"फिर, भिक्षुओ! कभी समय आता है कि किसी घोर जङ्गल में अग्नि लग जाय, या कोई वात्याचक्र (तूफान) आ जाय। उस कारण, उस जङ्गल में फँसे आदमी नष्ट भ्रष्ट हो जाय। ऐसे समय में, माता पुत्र से विछुड़ जाय, तथा पुत्र माता से विछुड़ जाय। भिक्षुओ! यह तृतीय भय है जो मूर्ख पृथग्जन को 'अमातापुत्रक' भय के रूप में दिखायी देता है। इस प्रकार ये तीन भय मूर्ख पृथग्जनों को 'अमातापुत्रक' भय के रूप में दिखायी देते हैं। (३)

"भिक्षुओ! वह अश्रुतवान् (मूर्ख) पृथग्जन तीन समातापुत्रक भयों को अमातापुत्रक भय कहता है। कौन से तीन? भिक्षुओ! एक समय जब कहीं भयङ्कर अग्निकाण्ड ...पूर्ववत्... नगरों के

डय्हन्ति निगमा पि डय्हन्ति नगरा पि डय्हन्ति। गामेसु पि डय्हमानेसु निगमेसु पि डय्हमानेसु [R.179] नगरेसु पि डय्हमानेसु होति सो समयो यं कदाचि करहचि माता पि पुत्तं पटिलभति, पुत्तो पि मातरं पटिलभति। इदं, भिक्खवे, पठमं समातापुत्तिकंयेव भयं अमातापुत्तिकं भयं ति अस्सुतवा पुथुज्जनो भासति।

[B.180] ''पुन च परं, भिक्खवे, होति सो समयो यं महामेघो वुट्ठाति। महामेघे खो पन, [N.166] भिक्खवे, वुट्ठिते महाउदकवाहको सञ्जायति। महाउदकवाहके खो पन, भिक्खवे, सञ्जाते तेन गामा पि वुय्हन्ति निगमा पि वुय्हन्ति नगरा पि वुय्हन्ति। गामेसु पि वुय्हमानेसु निगमेसु पि वुय्हमानेसु नगरेसु पि वुय्हमानेसु होति सो समयो यं कदाचि करहचि माता पि पुत्तं पटिलभति, पुत्तो पि मातरं पटिलभति। इदं, भिक्खवे, दुतियं समातापुत्तिकंयेव भयं अमातापुत्तिकं भयं ति अस्सुतवा पुथुज्जनो भासति।

''पुन च परं, भिक्खवे, होति सो समयो यं भयं होति अटविसङ्कोपो, चक्कसमारूळ्हा जानपदा परियायन्ति। भये खो पन, भिक्खवे, सति अटविसङ्कोपे चक्कसमारूळ्हेसु जानपदेसु परियायन्तेसु होति सो समयो यं कदाचि करहचि माता पि पुत्तं पटिलभति, पुत्तो पि मातरं पटिलभति। इदं, भिक्खवे, ततियं समातापुत्तिकंयेव भयं अमातापुत्तिकं भयं ति अस्सुतवा पुथुज्जनो भासति।

''इमानि खो, भिक्खवे, तीणि समातापुत्तिकानियेव भयानि अमातापुत्तिकानि भयानी ति अस्सुतवा पुथुज्जनो भासति॥

''तीणिमानि, भिक्खवे, अमातापुत्तिकानि भयानि। कतमानि तीणि? जराभयं, ब्याधिभयं, मरणभयं ति। न, भिक्खवे, माता पुत्तं जीरमानं एवं लभति—'अहं जीरामि, मा

जल जाने पर भी कोई समय आवे कि कोई पुत्र से विछुड़ी माता पुत्र को मिल जाय, या माता से विछुड़ा पुत्र माता को मिल जाय। भिक्षुओ! यह प्रथम समातापुत्रक भय मूर्ख पृथग्जन द्वारा 'अमातापुत्रक' भय कहा जाता है। (१)

''फिर, भिक्षुओ! वह मूर्ख पृथग्जन कहीं भयङ्कर जलवृष्टि से... पूर्ववत्... नगरों के बह जाने पर भी कोई समय आवे कि कोई पुत्र अपनी विछुड़ी माता से मिल जाय कोई विछुड़ी माता अपने पुत्र से मिल जाय। भिक्षुओ! यह दूसरा भय... अमातापुत्रक भय कहा जाता है। (२)

''फिर, भिक्षुओ! वह मूर्ख पृथग्जन किसी घोर बीहड़ जंगल में अग्नि ...पूर्ववत्...। फिर भी कोई समय आवे कि कोई पुत्र अपनी माता से... यह तीसरा 'समातापुत्रक' भय ही मूर्ख पृथग्जन द्वारा अमातापुत्रक भय कहा जाता है।' (३)

भिक्षुओ! इस तरह ये तीनों समातापुत्रक भय ही मूर्ख पृथग्जन द्वारा 'अमातापुत्रक' भय कहे जाते हैं॥ (क)

''हाँ, भिक्षुओ! ये तीन अमातापुत्रक भय अवश्य कहलाते हैं। कौन से तीन? जरा, व्याधि एवं मृत्यु। यहाँ, भिक्षुओ! माता पुत्र को क्षीण होता हुआ पाकर भी ऐसा नहीं सोचती—'मैं जीर्ण

मे पुत्तो जीरी' ति; पुत्तो वा पन मातरं जीरमानं न एवं लभति—'अहं जीरामि, मा मे माता जीरी' ति।

''न, भिक्खवे, माता पुत्तं ब्याधियमानं एवं लभति—'अहं ब्याधियामि, मा मे पुत्तो ब्याधियी' ति; पुत्तो वा पन मातरं ब्याधियमानं न एवं लभति—'अहं ब्याधियामि, मा मे माता ब्याधियी' ति।

''न, भिक्खवे, माता पुत्तं मीयमानं एवं लभति—'अहं मीयामि, मा मे पुत्तो मीयी' ति; पुत्तो वा पन मातरं मीयमानं न एवं लभति—'अहं मीयामि, मा मे माता मीयी' ति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि अमातापुत्तिकानि भयानी ति।

''अत्थि, भिक्खवे, मग्गो अत्थि पटिपदा इमेसं च तिण्णं समातापुत्तिकानं [R.180] भयानं इमेसं च तिण्णं अमातापुत्तिकानं भयानं पहानाय समतिक्कमाय संवत्तति। कतमो च, भिक्खवे, मग्गो कतमा च पटिपदा इमेसं च तिण्णं समातापुत्तिकानं भयानं इमेसं च [B.181] तिण्णं अमातापुत्तिकानं भयानं पहानाय समतिक्कमाय संवत्तति? अयमेव अरियो [N.167] अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि। अयं खो, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा इमेसं च तिण्णं समातापुत्तिकानं भयानं इमेसं च तिण्णं अमातापुत्तिकानं भयानं पहानाय समतिक्कमाय संवत्तती'' ति॥ ●

३. वेनागपुरसुत्तं : एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन वेनागपुरं नाम कोसलानं ब्राह्मणगामो तदवसरि। अस्सोसुं खो

हो रही हूँ, परन्तु मेरा पुत्र जीर्ण न हो।' न पुत्र ही माता को जीर्ण होता हुआ देखकर भी ऐसा सोचता है—'मैं तो जीर्ण हो रहा हूँ, परन्तु मेरी माता जीर्ण न हो।'

''न, भिक्षुओ! कोई माता पुत्र को रोगी देखकर यह सोचती है—'मैं रोगी हो जाऊँ, मेरा पुत्र रोगी न हो।' न कोई पुत्र ही माता को देखकर यह सोचता है—'मैं रोगी हो जाऊँ, मेरी माता रोगी न हो।'

''न, भिक्षुओ! कोई पुत्र माता को मरता हुआ देखकर यह सोचता है—'मैं मर जाऊँ, पर मेरी माता न मरे।' या माता पुत्र को मरता हुआ देखकर यह नहीं कहती—'मैं मर जाऊँ, पर मेरा पुत्र न मरे।' इस तरह, भिक्षुओ! ये तीन 'अमातापुत्रक भय' हैं। (ख)

''भिक्षुओ! इन तीनों समातापुत्रक भयों तथा अमातापुत्रक भयों के प्रहाण का या इनसे पार जाने का भी मार्ग है, पद्धति है। भिक्षुओ! यह... कौन सा मार्ग है? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, जो कि यह है—सम्यग्दृष्टि ...पूर्ववत्... सम्यक्समाधि। भिक्षुओ! यह है इन तीनों ... भयों के प्रहाण एवं समतिक्रमण का मार्ग (उपाय'')॥ ●

३. वेनागपुरसूत्र : : त्रिविध उच्च शयन

एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशल प्रदेश में चारिका करते हुए विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ

वेनागपुरिका ब्राह्मणगहपतिका—"समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो वेनागपुरं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती" ति।

अथ खो वेनागपुरिका ब्राह्मणगहपतिका येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा [R.181] अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे तुण्हीभुता एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो वेनागपुरिको वच्छगोत्तो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—

[B.182] "अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! यावञ्चिदं भोतो गोतमस्स विप्पसन्नानि इन्द्रियानि, परिसुद्धो छविवण्णो परियोदातो। सेय्यथापि, भो गोतम,, सारदं बदरपण्डुं परिसुद्धं होति परियोदातं; एवमेव भोतो गोतमस्स विप्पसन्नानि इन्द्रियानि परिसुद्धो

उस कौशल प्रदेश के किसी वेनागपुर नामक ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। वहाँ उनके विषय में वेनागपुर के ब्राह्मण गृहपतियों ने सुना—

"अरे, श्रमण गौतम शाक्य कुल (परिवार) से प्रव्रजित होकर, इस वेनागपुर ग्राम में पधारे हैं। लोक में उनके लिये ये प्रशंसा-शब्द सुने जाते हैं—'ये भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध, विद्याचरणसम्पन्न, लोकज्ञ, सुगद, अनुपम, विनेय पुरुषों के धर्मानुशासन में सारथिभूत, देवमनुष्यों के शास्ता बुद्ध भगवान् हैं।' या देवताओं सहित इस लोक को एवं मार, ब्रह्मासहित श्रमण-ब्राह्मण प्रजा को स्वयं जानकर साक्षात्कार कर अपने धर्म का उपदेश करते हैं। वे ऐसे धर्म का उपदेश करते हैं जो आदि अन्त एवं मध्य—सब तरह से कल्याणकारक है, सार्थक है, ललित पदों वाला है, सर्वथा परिपूर्ण, परिशुद्ध एवं सच्ची धर्मसाधना में लगाने वाला है। वैसे ज्ञानियों का दर्शन अतिशय कल्याण कर होता है"।

तब वे वेनागपुरवासी गृहपति भगवान् के दर्शन हेतु आये। आकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। उनमें से कुछ ने पहले भगवान् को अपना नाम गोत्र सुनाया, किसी ने उनका कुशल मङ्गल पूछा, किसी ने उनके शुभ स्वास्थ्य की कामना की। कुछ चुपचाप ही बैठ गये।

तब उनमें से वेनागपुरवासी किसी वत्सगोत्र ब्राह्मण ने उनके शरीर की प्रशंसा करते हुए भगवान् से यों कहना आरम्भ किया—

"आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है भो गौतम! आपके शरीर की कान्ति बहुत उज्ज्वल है, स्वच्छ है। जैसे, भो गौतम! शरदृत्रतु में उत्पन्न पीला वेर का फल स्वच्छ एवं चमकीला होता है,

छविवण्णो परियोदातो। सेय्यथापि, भो गोतम, तालपक्कं सम्पति बन्धना पमुत्तं परिसुद्धं होति परियोदातं; एवमेव भोतो गोतमस्स विप्पसन्नानि इन्द्रियानि परिसुद्धो [N.168] छविवण्णो परियोदातो। सेय्यथापि, भो गोतम, नेक्खं जम्बोनदं दक्खकम्मारपुत्त-सुपरिकम्मकतं उक्कामुखे सुकुसलसम्पहट्ठं पण्डुकम्बले निक्खित्तं भासते च तपते च विरोचति च; एवमेव भोतो गोतमस्स विप्पसन्नानि इन्द्रियानि परिसुद्धो छविवण्णो परियोदातो। यानि कानि, भो गोतम, उच्चासयनमहासयनानि, सेय्यथीदं—आसन्दि पल्लङ्को गोनको चित्तको पटिका पटलिका तूलिका विकतिका उद्दलोमी एकन्तलोमी कट्टिस्सं कोसेय्यं कुट्टकं हत्थत्थरं अस्सत्थरं रथत्थरं अजिनप्पवेणी कदलिमिगपवरपच्चत्थरणं सउत्तरच्छदं उभतो लोहितकूपधानं, एवरूपानं नून भवं गोतमो उच्चासयनमहासयनानं निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी'' ति।

''यानि खो पन तानि, ब्राह्मण, उच्चासयनमहासयनानि, सेय्यथीदं... दुल्लभानि तानि पब्बजितानं लद्धा च पन न कप्पन्ति।

''तीणि खो, इमानि, ब्राह्मण, उच्चासयनमहासयनानि, येसाहं एतरहि निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी। कतमानि तीणि? दिब्बं उच्चासयनमहासयनं, ब्रह्मं उच्चासयनमहासयनं, अरियं उच्चासयनमहासयनं। इमानि खो, ब्राह्मण, तीणि [R.182] उच्चासयनमहासयनानि, येसाहं एतरहि निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी'' ति।

या जैसे पका हुआ, डाल से टूटा हुआ ताड़ का फल स्वच्छ एवं कान्तिमान् होता है; इसी तरह, भो गौतम! आपके शरीर की इन्द्रियाँ, तथा इस की कान्ति अतिशय प्रभामयी है। जैसे, भो गौतम! दक्ष सुवर्णकार के हाथों से भट्ठी में तपाया गया तथा कसौटी पर कसा गया शुद्ध सुवर्ण पीले रेशमी वस्त्र में लिपटा हुआ मनोरम लगता है; उसी तरह आपकी इन्द्रियाँ तथा शरीर की कान्ति शोभायमान है। जितने भी भो गौतम! लोक में उच्च आसन या धनपतियों के उपयोगहेतु प्रसिद्ध शयनाच्छादन वस्त्र हैं; जैसे—आसन्दी (चौकी या कुर्सी) पर्यङ्क (पलंग), गौनक (गलीचा), चित्तक (चित्रित मृदु वस्त्र), पटिका (सफेद शाल), पटलिका (बेलबूटे वाला दुशाला), तूलिका (मृदु एवं श्लक्ष्ण रूई की रजाई), विकतिका (विविध आकार की मृदु चादर), ऊर्ध्वलोमी (ऊँचे रोंये वाला कम्बल), एकन्तलोमी (एक तरफ रोंयेवाला कम्बल), कट्टिस्स (रेशमी चादर), कौषेय (रेशमी वस्त्र), कुट्टक (नृत्य में पहने जाने वाले दर्शनीय वस्त्र), हस्तस्तर (हाथी के चोगे के समान लम्बा कुर्ता) अश्वस्तर, रथस्तर (अश्व या रथ पर लगाये जाने वाले सुन्दर महार्घ वस्त्र), अजिनप्रवेणी (चर्म की बनी मुलायम रस्सी), उच्च जाति का मृगचर्म, चादर सहित दोनों ओर लाल मुलायम तकिया—ऐसे ऐसे महान् वस्त्रों तथा उच्च शयनों का आप सर्वदा उपयोग करते रहे हैं। ये सब आपको सहजता से एवं अत्यधिक मात्रा में उपयोग हेतु मिलते रहे हैं।''

''ब्राह्मण! तुमने जिन उच्चशयन-महाशयनों का नाम गिनाया है, जैसे—आसन्दी..., यद्यपि ये सभी दुर्लभ हैं; परन्तु प्रवजितों के लिये इनका उपयोग उचित नहीं है।

''ब्राह्मण! ये तीन उच्चशयन या महाशयन आज मुझे अतिशय प्रिय हैं जो मुझे सहजता से,

[B.183] ''कतमं पन तं, भो गोतम, दिब्बं उच्चासयनमहासयनं, यस्स भवं गोतमो एतरहि निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी''ति?

''इधाहं, ब्राह्मण, यं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरामि, सो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय तमेव गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसामि। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो वनन्तञ्ञेव पविसामि। सो यदेव तत्थ होन्ति तिणानि वा पण्णानि वा तानि एकज्झं सङ्करित्वा निसीदामि पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरामि; वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि; पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरामि सतो च सम्पजानो सुखं च [N.169] कायेन पटिसंवेदेमि, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरामि; सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरामि। सो चे अहं, ब्राह्मण, एवंभूतो चङ्कमामि, दिब्बो मे एसो तस्मिं समये चङ्कमो होति। सो चे अहं, ब्राह्मण, एवंभूतो तिट्ठामि, दिब्बं मे एतं तस्मिं समये ठानं होति।

सरलता से तथा अतिशय मात्रा में मिल जाते हैं। कौन से तीन? (१) दिव्य (अलौकिक) उच्चशयन..., (२) ब्राह्म उच्चशयन... एवं (३) आर्य उच्चशयन महाशयन। ये तीनों ही मुझे आज सहजता से, सरलता से तथा अतिशय मात्रा में मिल जाते हैं।

''भो गौतम! वह कौन सा उच्चशयन है जो आपको सहजता सरलता से तथा अतिशय मात्रा में मिल जाता है?''

''यहाँ, ब्राह्मण! मैं जिस ग्राम का निगम का सहारा लेकर साधना में लगता हूँ, वहाँ पूर्वाह्न में, वस्त्र ठीक कर पात्र चीवर लेकर भिक्षुहेतु उसी ग्राम या निगम में प्रविष्ट होता हूँ। वहाँ भिक्षाकर उसका भोजन कर उस कर्म से निवृत्त होकर पास के किसी वन या जङ्गल में चला जाता हूँ। वहाँ किसी वृक्ष के नीचे पड़े पत्तों को या सूखे घास को एकत्र कर उसका आसन बनाकर उसपर सुख से पद्मासन लगाकर, शरीर को सीधा कर स्मृति को जाग्रत् रखते हुए बैठ जाता हूँ। वहाँ मैं कामभोगों एवं अकुशल चिन्तन से दूर रहता हुआ वितर्क विचारसहित विवेकजन्य प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता हूँ। धीरे धीरे वितर्क विचारों से दूर प्रीतिसुखमय द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर...। तदनन्तर, इस प्रीति से भी वैराग्य हो जाने पर उपेक्षक होकर स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ काया में सुखानुभव करता हुआ हूँ... पूर्ववत्... तृतीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता हूँ। ततश्च, उस सुख के भी नष्ट हो जाने से तथा इससे भी पूर्व सौमनस्य एवं दौर्मनस्य के नष्ट हो जाने से अदुःख असुखमय उपेक्षा एवं स्मृतिपरिशुद्धि से समन्वित चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता हूँ। ब्राह्मण! जब मैं ऐसी अद्भुत स्थिति में चंक्रमण करता रहता हूँ तो वह चंक्रमण भी मेरा दिव्य ही

सो चे अहं, ब्राह्मण, एवंभूतो निसीदामि, दिब्बं मे एतं तस्मिं समये आसनं होति। सो चे अहं, ब्राह्मण, एवंभूतो सेय्यं कप्पेमि, दिब्बं मे एतं तस्मिं समये उच्चासयनमहासयनं होति। इदं खो, ब्राह्मण, दिब्बं उच्चासयनमहासयनं, यस्साहं एतरहि निकामलाभी [B.183] अकिच्छलाभी अकसिरलाभी'' ति।

''अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! को चञ्ञो एवरूपस्स दिब्बस्स उच्चासयनमहासयनस्स निकामलाभी भविस्सति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, अञ्ञत्र भोता गोतमेन!

''कतमं पन तं, भो गोतम, ब्रह्मं उच्चासयनमहासयनं, यस्स भवं गोतमो एतरहि निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी'' ति?

''इधाहं, ब्राह्मण, यं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरामि, सो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय तमेव गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसामि। सो [B.184] पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो वनन्तञ्ञेव पविसामि। सो यदेव तत्थ होन्ति तिणानि वा पण्णानि वा तानि एकज्झं सङ्करित्वा निसीदामि पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरामि, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरामि। करुणासहगतेन चेतसा ...पे... मुदितासहगतेन चेतसा ... उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरामि, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन

होता है। यदि मैं खड़ा रहता हूँ तो वह 'खड़ा रहना' भी मेरा दिव्य ही होता है। यदि मैं बैठता हूँ तो वह मेरा बैठना भी दिव्य ही होता है। ब्राह्मण! यह है मेरा 'उच्चशयन, महाशयन, जो मुझे सहजता एवं सरलता से अतिशय रूप में मिलता रहता है।''

''आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है भो गौतम! आप गौतम के अतिरिक्त अन्य कौन ऐसे **दिव्य उच्चशयन**, महाशयन का इतनी सहजता, सरलता से अतिशयलाभी हो सकता है! (१)

''फिर, भो गौतम! आपका वह **ब्राह्म उच्चशयन** महाशयन कौन सा है? जिसको आप सहजता एवं सरलता से अतिशयरूप में प्राप्त करते रहते हैं?''

''यहाँ, ब्राह्मण! मैं जिस ग्राम या निगम का सहारा लेकर ...पूर्ववत्... स्मृति को जाग्रत् रखते हुए बैठ जाता हूँ। वहाँ मैं मैत्रीसहगत चित्त से एक दिशा व्याप्त कर साधना में लगता हूँ। इसी तरह दूसरी दिशा को... तीसरी दिशा को... चतुर्थ दिशा को... इस तरह, ऊपर, नीचे, तिरछे, सब ओर, सर्वत्र, समस्त लोक को, विपुल, महद्गत, अप्रमाण निर्वैर, किसी को भी हानि पहुँचाये विना मैत्री सहगत चित्त से, व्याप्त कर साधना करता हूँ। ...करुणासहगत चित्त से... मुदितासहगत चित्त से... उपेक्षासहगत चित्त से... समस्त लोक को व्याप्त कर साधना करता हूँ। ब्राह्मण! यदि मैं इस प्रकार

अब्याबज्झेन फरित्वा विहरामि। सो चे अहं, ब्राह्मण, एवंभूतो चङ्कमामि, ब्रह्मा मे एसो [N.170] तस्मिं समये चङ्कमो होति। सो चे अहं, ब्राह्मण, एवंभूतो तिट्ठामि ...पे०... निसीदामि ...पे०... सेय्यं कप्पेमि, ब्रह्मं मे एतं तस्मिं समये उच्चासयनमहासयनं होति। इदं खो, ब्राह्मण, ब्रह्मं उच्चासयनमहासयनं, यस्साहं एतरहि निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी'' ति।

[R.184] ''अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! को चञ्ञो एवरूपस्स ब्रह्मस्स उच्चासयनमहासयनस्स निकामलाभी भविस्सति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, अञ्ञत्र भोता गोतमेन!

''कतमं पन तं, भो गोतम, अरियं उच्चासयनमहासयनं, यस्स भवं गोतमो एतरहि निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी'' ति?

''इधाहं, ब्राह्मण, यं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरामि, सो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय तमेव गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसामि। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो वनन्तञ्ञेव पविसामि। सो यदेव तत्थ होन्ति तिणानि वा पण्णानि वा तानि एकज्झं सङ्घरित्वा निसीदामि पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं [B.185] उपट्ठपेत्वा। सो एवं जानामि—'रागो मे पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो; दोसो मे पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो; मोहो मे पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुपापादधम्मो'। सो चे अहं, ब्राह्मण, एवंभूतो चङ्कमामि, अरियो मे एसो तस्मिं समये चङ्कमो होति। सो चे अहं, ब्राह्मण, एवंभूतो तिट्ठामि ...पे०... निसीदामि

साधना करता हुआ चंक्रमण करता हूँ तो यह मेरा ब्राह्म चंक्रमण ही कहलाता है। यदि मैं खड़ा रहता हूँ... बैठता हूँ... शयन करता (लेटता) हूँ तब मेरा यह शयन भी उच्चशयन महाशयन कहलाता है। यों, ब्राह्मण! यह ब्राह्म उच्चशयन महाशयन है जो मुझे सहजता एवं सरलता से अतिशय रूप में प्राप्त होता रहता है।''

''आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! आपके अतिरिक्त, भो गौतम! दूसरा कोई साधक इस ब्राह्म उच्चशयन महाशयन का इतनी सहजता, सरलता से अतिशय लाभ कर पायगा।

भो गौतम! और यह आपका **आर्य उच्चशयन**... क्या है, जो आपको सहजता सरलता से अतिशय रूप में प्राप्त होता रहता है?''

''यहाँ मैं, ब्राह्मण! जिस ग्राम या निगम का सहारा लेकर...पूर्ववत्... स्मृति को उपस्थित कर साधना में लग जाता हूँ। यह साधना करते करते मुझे भान हो जाता है कि मेरा (संसार के प्रति), राग (आसक्ति) नष्ट हो चुका है, निर्मूल हो गया है, पूर्णतः सदा के लिये समाप्त हो चुका है, पुनः कभी उत्पन्न न होगा। मेरा द्वेष भी... मोह भी इसी तरह विनष्ट हो चुका है... पुनः कभी उत्पन्न न होगा। ब्राह्मण! इस तरह साधना करता हुआ यदि मैं चंक्रमण करता हूँ तो मेरा यह चंक्रमण भी...

...पे०... सेय्यं कप्पेमि, अरियं मे एतं तस्मिं समये उच्चासयनमहासयनं होति। इदं खो, ब्राह्मण, अरियं उच्चासयनमहासयनं, यस्साहं एतरहि निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी'' ति।

''अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! को चञ्ञो एवरूपस्स अरियस्स उच्चासयनमहासयनस्स निकामलाभी भविस्सति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, अञ्ञत्र भोता गोतमेन!

''अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्यं, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारो वा तेलपज्जोतं धारेय्य—'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति; एवमेवं खो भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं भवन्तं गोतमं सरणं [N.171, R.185] गच्छाम धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गते'' ति॥ ●

४. **सरभसुत्तं :** एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तेन खो पन समयेन सरभो नाम परिब्बाजको अचिरपक्कन्तो होति इमस्मा धम्मविनया। सो राजगहे परिसति एवं वाचं भासति—''अञ्ञातो मया समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मो। अञ्ञाय च पनाहं समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मं एवाहं तस्मा धम्मविनया अपक्कन्तो'' ति। अथ खो सम्बहुला भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पविसिंसु। अस्सोसुं खो ते भिक्खू सरभस्स परिब्बाजकस्स राजगहे परिसति एवं [B.186] वाचं भासमानस्स—''अञ्ञातो मया समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मो। अञ्ञाय च पनाहं समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मो। अञ्ञाय च पनाहं समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मं एवाहं तस्मा धम्मविनया अपक्कन्तो'' ति।

यदि मैं खड़ा होता हूँ... यदि मैं बैठता हूँ... यदि मैं लेटता हूँ तो मेरा यह लेटना भी आर्य उच्चशयन महाशयन कहलाता है। इसी आर्य उच्चशयन महाशयन को मैं आजकल सहजता सरलता एवं अतिशय भाव से प्राप्त करता रहता हूँ।''

''आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! ...पूर्ववत्... आज से आप गौतम मुझको अपना शरणागत उपासक समझें॥'' ●

४. सरभसूत्र : : भगवान् पर तीन निराधार आरोप

ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृहस्थित गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय सरभ नामक परिव्राजक कुछ काल पूर्व ही इस धर्मविनय को छोड़कर गया था। वह राजगृह में स्थान स्थान पर सभाओं में यह कहता फिर रहा था—''मैंने श्रमण शाक्यपुत्रों के धर्म की वास्तविकता जान ली है। उस धर्म की वास्तविकता जानने के बाद (उसे निःसार समझ कर) ही मैने उस का त्याग किया है।'' तब बहुत से भिक्षु प्रातःकाल, अपने वस्त्र

अथ खो ते भिक्खू राजगहे पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"सरभो नाम, भन्ते, परिब्बाजको अचिर-पक्कन्तो इमस्मा धम्मविनया। सो राजगहे परिसति एवं वाचं भासति—'अञ्ञातो मया समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मो। अञ्ञाय च पनाहं समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मं एवाहं तस्मा धम्मविनया अपक्कन्तो' ति। साधु, भन्ते, भगवा येन सिप्पिनिकातीरं परिब्बाजकारामो येन सरभो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया" ति।

अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन सिप्पिनिकातीरं परिब्बाजकारामो येन सरभो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने [R.186] निसीदि। निसज्ज खो भगवा सरभं परिब्बाजकं एतदवोच—"सच्चं किर त्वं, सरभ, एवं वदेसि—'अञ्ञातो मया समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मो। अञ्ञाय च पनाहं [N.172] समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मं एवाहं तस्मा धम्मविनया अपक्कन्तो' " ति?

एवं वुत्ते सरभो परिब्बाजको तुण्ही अहोसि।

दुतियं पि खो, भगवा सरभं परिब्बाजकं एतदवोच—"वदेहि, सरभ, किन्ति ते अञ्ञातो समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मो? सचे ते अपरिपूरं भविस्सति, अहं परिपूरेस्सामि।

व्यवस्थित कर, पात्र चीवर लेकर, राजगृह में भिक्षाहेतु प्रवेश कर रहे थे। उनने राजगृह की किसी सभा में सरभ परिव्राजक द्वारा उक्त वाक्य कहते हुए सुना।

तब वे भिक्षु भिक्षाकर्म से निवृत्त होकर, भगवान् के सम्मुख आये तथा भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओ ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! सरभ नामक परिव्राजक, जो कि कुछ ही समय पूर्व इस धर्म को छोड़कर परिव्राजकों में जा मिला है, राजगृह में स्थान स्थान पर यह कहता फिर रहा है—'मैंने श्रमण शाक्यपुत्रों का प्रचारित धर्म भलीभाँति जान समझ लिया है, उसे ठीक से जान समझकर (उसको निःसार समझकर) उसका परित्याग किया है।' अच्छा हो, भन्ते! आप सिप्पिनिका तीर पर बसे परिव्राजकाराम में, जहाँ सरभ परिव्राजक ठहरा हुआ है, कृपा कर पधारें।"

भगवान् ने उन भिक्षुओं का यह निवेदन मौनभाव से स्वीकार किया।

तब भगवान् सायङ्काल, ध्यानभावना से उठकर सिप्पिनिका के तीर पर स्थित परिव्राजकाराम में, जहाँ सरभ परिव्राजक था, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए। तदनन्तर उनने सरभ परिव्राजक से पूछा—"सरभ! क्या तूँ सचमुच यह कहा रहा है—'मैंने श्रमण शाक्यपुत्रों का धर्म भलीभाँति जान लिया है। तथा उसको भलीभाँति जानकर (उसको निःसार समझकर) ही उसका परित्याग किया है'।" भगवान् द्वारा ऐसा पूछे जाने पर भी सरभ परिव्राजक मौन ही रहा।

तब उन (वहाँ उपस्थित) परिव्राजकों ने सरभ परिव्राजक (का उत्साह बढ़ाने हेतु) से कहा—"सरभ! तुम जो कुछ भी श्रमण गौतम से पूछोगे, उसे बताने को वे सन्नद्ध हैं। अब, तुम

सचें पन ते परिपूरं भविस्सति, अहं अनुमोदिस्सामी'' ति। दुतियं पि खो सरभो परिब्बाजको तुण्ही अहोसि। ततियं पि खो भगवा सरभं परिब्बाजकं एतदवोच—''वदेहि, सरभ, किन्ति ते अञ्ञातो समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मो? सचे ते अपरिपूरं भविस्सति, अहं [B.187] परिपूरेस्सामि। सचे पन ते परिपूरं भविस्सति, अहं अनुमोदिस्सामी'' ति। ततियं पि खो सरभो परिब्बाजको तुण्ही अहोसि।

अथ खो ते परिब्बाजका सरभं परिब्बाजकं एतदवोचुं—''यदेव खो त्वं, आवुसो सरभ, समणं गोतमं याचेय्यासि तदेव ते समणो गोतमो पवारेति। वदेहावुसो सरभ, किन्ति ते अञ्ञातो समणानं सक्यपुत्तिकानं धम्मो? सचे ते अपरिपूरं भविस्सति, समणो गोतमो परिपूरेस्सति। सचे पन ते परिपूरं भविस्सति, समणो गोतमो अनुमोदिस्सती'' ति। एवं वुत्ते सरभो परिब्बाजको तुण्हीभूतो मङ्कुभूतो पत्तक्खन्धो अधोमुखो पज्झायन्तो अप्पटिभानो निसीदि।

अथ खो भगवा सरभं परिब्बाजकं तुण्हीभूतं मङ्कुभूतं पत्तक्खन्धं अधोमुखं पज्झायन्तं अप्पटिभानं विदित्वा ते परिब्बाजके एतदवोच—

''यो खो मं, परिब्बाजका, एवं वदेय्य—'सम्मासम्बुद्धस्स ते पटिजानतो इमे धम्मा अनभिसम्बुद्धा' ति, तमहं तत्थ साधुकं समनुयुञ्जेय्यं समनुगाहेय्यं समनुभासेय्यं। [R.187] सो वत मया साधुकं समनुयुञ्जियमानो समनुगाहियमानो समनुभासियमानो अट्ठानमेतं अनवकासो यं सो तिण्णं ठानानं नाञ्ञतरं ठानं निगच्छेय्य, अञ्ञेन वा अञ्ञं पटिचरिस्सति, बहिद्धा कथं अपनामेस्सति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरिस्सति, तुण्हीभूतो मङ्कुभूतो पत्तक्खन्धो अधोमुखो पज्झायन्तो अप्पटिभानो निसीदिस्सति, सेय्यथापि सरभो परिब्बाजको।

बताओ कि तुमने इस धर्म को किस प्रकार जाना है। यदि तुम्हारे ज्ञान में कोई न्यूनता होगी तो श्रमण गौतम, उपदेश द्वारा, उसे पूर्ण कर देंगे, अन्यथा उसका अनुमोदन कर देंगे।'' तो भी सरभ परिव्राजक मौन, स्थिर (जड़वत्), कन्धे लटकाये हुए, मुख नीचा किये, उदास के समान (बुझा हुआ सा) अज्ञानी बनकर ही बैठा रहा।

तब भगवान् ने सरभ परिव्राजक की ऐसी उपर्युक्त स्थिति जानकर उन परिव्राजकों से यह कहा—

''परिव्राजको! जो मुझको यह कहे—'आप सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा प्रतिज्ञात ये धर्म भलीभाँति (सर्वथा, सब तरह से) जाने नहीं गये हैं।' तब मैं उससे इस विषय में प्रश्नोत्तर द्वारा साधना का तत्त्व समझाऊँगा, संवाद करूँगा, उसे ज्ञान की गहराई तक पहुचाऊँगा। इस प्रकार प्रश्नोत्तर... संवाद एवं गहराई तक पहुँचने के बाद यह असम्भव है कि वह या तो (१) यह विषय (कथा) बदलने का प्रयास करे, (२) या क्रोध या अनिच्छा या अविश्वास प्रकट करे, या (३) फिर मौन, स्थिर, कन्धे लटकाया हुआ, मुख नीचे किया हुआ, बुझा हुआ सा बैठा रहे। जैसे यह सरभ परिव्राजक बैठा हुआ है। (१)

"यो खो मं, परिब्बाजका, एवं वदेय्य—'खीणासवस्स ते पटिजानतो इमे आसवा [N.173] अपरिक्खीणा' ति, तमहं तत्थ साधुकं समनुयुञ्जेय्यं समनुगाहेय्यं समनुभासेय्यं। सो वत मया साधुकं समनुयुञ्जियमानो समनुगाहियमानो समनुभासियमानो अट्ठानमेतं अनवकासो यं सो तिण्णं ठानानं नाञ्ञतरं ठानं निगच्छेय्य, अञ्ञेन वा अञ्ञं पटिचरस्सिति, [B.188] बहिद्धा कथं अपनामेस्सति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरिस्सति, तुण्हीभूतो मङ्कुभूतो पत्तक्खन्धो अधोमुखो पज्झायन्तो अप्पटिभानो निसीदिस्सति, सेय्यथापि सरभो परिब्बाजको।

"यो खो मं, परिब्बाजका, एवं वदेय्य—'यस्स खो पन ते अत्थाय धम्मो देसितो, सो न निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाया' ति, तमहं तत्थ साधुकं समनुयुञ्जेय्यं समनुभासेय्यं। सो वत मया साधुकं समनुयुञ्जियमानो समनुगाहियमानो समनुभासियमानो अट्ठानमेतं अनवकासो यं सो तिण्णं ठानानं नाञ्ञतरं ठानं निगच्छेय्य, अञ्ञेन वा अञ्ञं पटिचरिस्सति, बहिद्धा कथं अपनामेस्सति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरिस्सति, तुण्हीभूतो मङ्कुभूतो पत्तक्खन्धो अधोमुखो पज्झायन्तो अप्पटिभानो निसीदिस्सति, सेय्यथापि सरभो परिब्बाजको" ति। अथ खो भगवा सिप्पिनिकातीरे परिब्बाजकारामे तिक्खत्तुं सीहनादं नदित्वा वेहासं पक्कामि।

अथ खो ते परिब्बाजका अचिरपक्कन्तस्स भगवतो सरभं परिब्बाजकं समन्ततो

"परिव्राजको! जो मुझे यह कहे—'आप क्षीणाश्रव होने की प्रतिज्ञा ही कर रहे हैं; परन्तु आपके आश्रव अभी क्षीण नहीं हुए हैं।' उसको मैं अपनी साधना के विषय में समझाऊँगा, मैं उसके कारणों का ज्ञान करूँगा कि क्यों वह ऐसा कह रहा है? तथा उसको इस साधना की गम्भीरता समझाऊँगा। मेरे द्वारा ऐसा किये जाने पर यह सम्भव नहीं है कि वह इन तीनों बातों में से कोई एक बात न कर बैठे कि (१) या तो वह इधर उधर की बात करने लगे, (२) या कोई दूसरा प्रसङ्ग उठाना चाहे, (३) या फिर क्रोध या अनिच्छा प्रकट करता हुआ अपना अविश्वास प्रकट करे, या वह चुप हो जाय, स्तब्ध हो जाय, कन्धे लटका दे, संकोचवश मुख नीचा कर ले, या बुझा हुआ (सामर्थ्यहीन) सा बैठा रहे, जैसे यह सरभ परिव्राजक बैठा है। (२)

"परिव्राजको! जो मुझको यह कहे—'जिस अर्थसिद्धि के लिये आप ने इन धर्मों का उपदेश किया था, वह प्रयोजन पूर्ण नहीं हुआ, अर्थात् उस धर्मों की साधना करने पर भी दुःखक्षय नहीं हो पाया।' उसको भी मैं अपनी साधना भलीभाँति समझाऊँगा, उसके कारणों का ज्ञान करूँगा कि क्यों यह ऐसा कह रहा है? तथा उसको इस धर्मसाधना की गम्भीरता समझाऊँगा। मेरे ऐसा करने पर यह सम्भव नहीं कि वह इन तीन बातों में से एक बात न कर बैठे... पूर्ववत्... यह सरभ परिव्राजक बैठा है।" (३)

तब भगवान् सिप्पिनिका तीर पर स्थित परिव्राजकाराम में तीन बार उक्त प्रकार से सिंहनाद कर आकाशमार्ग से पुनः गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु लौट गये।

तब वे परिव्राजक, भगवान् के लौट जाने के बाद, सरभ परिव्राजक को यह वाग्वाण मारने

वाचायसन्नितोदकेन सञ्जम्भरिमकंसु—"सेय्यथापि, आवुसो सरभ, वोहारञ्ञे जरसिङ्गालो 'सीहनादं नदिस्सामी' ति सिङ्गालकंयेव नदति, भेरण्डकंयेव नदति; एवमेव खो त्वं, आवुसो सरभ, अञ्ञत्रेव समणेन गोतमेन 'सीहनादं नदिस्सामी' ति सिङ्गालकंयेव [R.188] नदसि भेरण्डकंयेव नदसि। सेय्यथापि, आवुसो सरभ, अम्बुकसञ्चरी 'पुरिसकरवितं रविस्सामी' ति अम्बुकसञ्चरिरवितंयेव रवसि। सेय्यथापि, आवुसो सरभ, उसभो सुञ्ञाय गोसालाय गम्भीरं नदितब्बं मञ्ञति; एवमेव खो त्वं, आवुसो सरभ, अञ्ञत्रेव समणेन गोतमेन गम्भीरं नदितब्बं मञ्ञसी" ति। अथ खो ते परिब्बाजका सरभं परिब्बाजकं [B.189] समन्ततो वाचायसन्नितोदकेन सञ्जम्भरिमकंसू ति॥ ●

५. केसमुत्तिसुत्तं : एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं [N.174] चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन केसमुत्तं नाम कालामानं निगमो तदवसरि। अस्सोसुं खो केसमुत्तिया कालामा—"समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो केसमुत्तं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कितिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा ...पे०... साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती' " ति।

अथ खो केसमुत्तिया कालामा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा

लगे (व्यङ्ग्य वचन बोलने लगे)—"आयुष्मन् सरभ! जैसे किसी जंगल में बैठा हुआ कोई बूढ़ा गीदड़ 'सिंहनाद करूँगा'—यह कहकर गीदड़ की बोली ही बोलता रहे, 'हुआँ, हुआँ' ही करता रहे; इसी तरह, सरभ! तुम भी श्रमण गौतम की अनुपस्थिति में 'सिंहनाद करूँगा'—ऐसा कह रहे थे,, परन्तु उनके आने पर तुम गीदड़ की बोली ही बोलते रहे। आयुष्मन् सरभ! जैसे कोई जल का प्राणी (मण्डूक) यह कहे—'मैं मनुष्य की बोली बोलूँगा', परन्तु वह अपनी ही बोली बोलता रह जाय। आयुष्मन् सरभ! जैसे कोई गोशाला का साँड़ शून्य गोशाला में नर्दन करता रहे; इसी तरह, आयुष्मन् सरभ! तुम भी श्रमण गौतम के न रहने पर ही गम्भीर नर्दन की बात करते हो।"

इस तरह उन परिव्राजकों ने वाग्वाणों द्वारा उस सरभ को बहुत लज्जित किया॥ ●

५. केशमुक्तिसूत्र **शास्ताओं के मतवाद का औचित्य निर्धारण**

ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् कोशल जनपद में चारिका करते हुए वृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ केशमुक्त (या केसपुत्त=केशपुत्र) नामक कालामों के कस्बे में पहुँचे। केशमुक्त ग्रामवासी कालामों ने सुना—" श्रमण गौतम शाक्य पुत्र शाक्य परिवार से प्रव्रजित होकर इस केशमुक्त ग्राम में पधारे हैं। उनके विषय में ऐसा यश:शब्द लोक में प्रचारित हो चुका है—'वे भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध... पूर्ववत्... ऐसे ज्ञानियों का दर्शन मङ्गलमय होता है'।"

तदनन्तर, वे केशमुक्तवासी कालाम जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। ...पूर्ववत्... भगवान् से यों पूछने लगे—"भन्ते! कुछ श्रमण ब्राह्मण इस केशमुक्त ग्राम में आते हैं, वे अपना मत सुनाते हैं, व्याख्यान करते हैं; परन्तु दूसरों का मत सुनकर उनको अपशब्द बोलते हैं, उनको घृणा

एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते केसमुत्तिया कालामा भगवन्तं एतदवोचुं—

"सन्ति, भन्ते, एके समणब्राह्मणा केसमुत्तं आगच्छन्ति। ते सकंयेव वादं दीपेन्ति जोतेन्ति, परप्पवादं पन खुंसेन्ति वम्भेन्ति परिभवन्ति ओमक्खिं करोन्ति। अपरे पि, भन्ते, [R.189] एके समणब्राह्मणा केसमुत्तं आगच्छन्ति। ते पि सकंयेव वादं दीपेन्ति जोतेन्ति, परप्पवादं पन खुंसेन्ति वम्भेन्ति परिभवन्ति ओमक्खिं करोन्ति। तेसं नो, भन्ते, अम्हाकं होतेव कङ्खा होति विचिकच्छा—'को सु नाम इमेसं भवतं समणब्राह्मणानं सच्चं आह, को मुसा'' ति?

"अलं हि वो, कालामा, कङ्खितुं अलं विचिकिच्छतुं। कङ्खनीयेव पन वो ठाने विचिकिच्छा उप्पन्ना। एथ तुम्हे, कालामा मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा [B.109] पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरू ति। यदा तुम्हे, कालामा, अत्तना व जानेय्याथ—'इमे धम्मा अकुसला, इमे धम्मा सावज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुगरहिता, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ती' ति, अथ तुम्हे, कालामा, पजहेय्याथ।

"तं किं मञ्ञथ, कालामा, लोभो पुरिसस्स अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति हिताय [N.175] वा अहिताय वा'' ति? "अहिताय, भन्ते''।

करते हैं, उनको तिरस्कृत करते हैं, उनका मत सदोष बताते हैं। दूसरे श्रमण ब्राह्मण भी जब इस ग्राम में आते हैं... पूर्ववत्... उनका मत सदोष बताते हैं। उन सबके मतवादों को सुनकर हम शङ्का होती है, सन्देह होता है—'इनमें से किसका मत उचित है? इनमें कौन श्रमण ब्राह्मण सत्य बोल रहा है या कौन मिथ्या'?''

"कालामो! इसमें शङ्का या सन्देह की आवश्यकता नहीं है। परन्तु शङ्कास्पद स्थान में ही तुम्हें सन्देह हो रहा है। यहाँ तुमको मेरा परामर्श यह है—'तुम किसी की सुनी सुनायी बात पर ध्यान न दो, 'न किसी की यह परम्परा है'—इसलिये उस पर विश्वास न करो, या 'यह इतिहास है'—इसलिये विश्वास न करो, या 'ऐसा ग्रन्थों में लिखा है'—इस बात से भी उसे नहीं मानना चाहिये। न तर्क या युक्ति एवं सुन्दर शब्दावलि के भ्रम में पड़ो, न मत की अनुकूलता (दृष्टि निध्यान क्षान्ति) के चक्कर में पड़ो, न उसकी भव्यरूपता की चकाचौंध से विचलित होओ, या 'यह श्रमण है या गुरु है, अत: उचित ही कह रहा होगा'—इस पर भी विश्वास न करो। अपितु तुम्हें जब स्वयं समझ में आ जाय—'ये धर्म अकुशल हैं, ये धर्म सदोष हैं, इन धर्मों की विज्ञ जनों ने निन्दा की है', या 'ये धर्म पालन किये जाने पर अहितकर एवं दु:खद ही होंगे' तो, कालामों उन धर्मों को छोड़ दो।

"तो क्या मानते हो, कालामो! **लोभ** जब प्राणी के मन में उत्पन्न होता है, वह हितकर होगा या अहितकर?'' 'अहितकर, भन्ते!''

"लुद्धो पनायं, कालामा, पुरिसपुग्गलो लोभेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो पाणं पि हनति, अदिन्नं पि आदियति, परदारं पि गच्छति, मुसा पि भणति, परं पि तथत्ताय समादपेति, यं स होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया" ति? "एवं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञथ, कालामा, दोसो पुरिसस्स अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति हिताय वा अहिताय वा" ति? "अहिताय, भन्ते'।

"दुट्ठो पनायं, कालामा, पुरिसपुग्गलो दोसेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो पाणं पि हनति, अदिन्नं पि आदियति, परदारं पि गच्छति, मुसा पि भणति, परं पि तथत्ताय समादपेति, यं स होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया" ति? "एवं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञथ, कालामा, मोहो पुरिसस्स अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति हिताय वा अहिताय वा" ति? "अहिताय, भन्ते"।

"मूळ्हो पनायं, कालामा, पुरिसपुग्गलो मोहेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो पाणं पि हनति, अदिन्नं पि आदियति, परदारं पि गच्छति, मुसा पि भणति, परं पि तथत्ताय [R.190] समादेपेति, यं स होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया" ति।

"एवं भन्ते"।

"तं किं मञ्ञथ, कालामा, इमे धम्मा कुसला वा अकुसला वा" ति?

"अकुसला, भन्ते"।

"सावज्जा वा अनवज्जा वा" ति? "सावज्जा, भन्ते"।

"विञ्ञुगरहिता वा विञ्ञुप्पसत्था वा" ति? "विञ्ञुगरहिता, भन्ते।"

"क्योंकि, कालामो! यह लोभी पुरुष लोभ के वश होकर अधिक लेने की इच्छा से दूसरों की हत्या भी करता है, चौरी भी करता है, दूसरों की स्त्रियों के साथ सहवास भी करता है, असत्य भी बोलता है, तथा दूसरों को भी वैसा वैसा करने के लिये उत्साहित करता है। ये सब कुछ कर्म उसके लिये दीर्घकाल तक अहितकर एवं दुःखद ही होंगे?" "ऐसा ही है भन्ते!"

"तो क्या मानते हो, कालामो! **द्वेष** जब...पूर्ववत्... या अहितकर?"

"अहितकर, भन्ते!"

"यह द्वेषी पुरुष... अहितकर एवं दुःखद ही होंगे!" "ऐसा ही है, भन्ते!"

"तो क्या मानते हो, कालामो! **मोह** जब ...पूर्ववत्... या अहितकर?"

"अहितकर, भन्ते!"

"यह मोहमुग्ध पुरुष... अहितकर एवं दुःखदायी ही होंगे।" "ऐसा ही है, भन्ते!"

"तो क्या मानते हो, कालामो! ये (उपर्युक्त) धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"अकुशल हैं, भन्ते!"

"सदोष हैं? या निर्दोष?" "सदोष, भन्ते!"

"विज्ञजनों द्वारा निन्दित हैं या प्रशंसित?" "निन्दित, भन्ते!"

"समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खायं संवत्तन्ति, नो वा? कथं वा एत्थ होती" [B.191] ति"?

[N.176] "समत्ता, भन्ते, समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ती ति—एवं नो एत्थ होती" ति।

"इति खो, कालामा, यं तं अवोचुम्हा—'एथ तुम्हे कालामा! मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकार-परिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरू ति। यदा तुम्हे कालामा अत्तना व जानेय्याथ—इमे धम्मा अकुसला, इमे धम्मा सावज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुगरहिता, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ती ति, अथ तुम्हे, कालामा, पजहेय्याथा' ति, इति यं तं वुत्तं, इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

"एथ तुम्हे, कालामा, मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटक-सम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरू ति। यदा तुम्हे, कालामा, अत्तना व जानेय्याथ—'इमे धम्मा कुसला, इमे धम्मा अनवज्जा, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना हिताय सुखाय संवत्तन्ती' ति, अथ तुम्हे, कालामा, उपसम्पज्ज विहरेय्याथ।

"तं किं मञ्ञथ, कालामा, अलोभो पुरिसस्स अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति हिताय वा अहिताय वा" ति? "हिताय, भन्ते"।

"अलुद्धो पनायं, कालामा, पुरिसपुग्गलो लोभेन अनभिभूतो अपरियादिन्नचित्तो [R.191] नेव पाणं हनति, न अदिन्नं आदियति, न परदारं गच्छति, न मुसा भणति, न परं पि तथत्ताय समादपेति, यं स होति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति? "एवं, भन्ते"।

"इनका पालन करने पर ये अहितकर या दुःखद होंगे या नहीं? तुम्हें यहाँ क्या लगता है?"

"पालन करने पर ये सब धर्म हमारे लिये अहितकर या दुःखद ही होंगे—हमें तो ऐसा ही लगता है।"

"इसीलिये, कालामो! मैंने तुमसे कहा था—'कालामो! इसमें शङ्का, सन्देह की आवश्यकता नहीं है। तुम किसी की कही हुई बात को सुनकर उसपर ध्यान न दो...पूर्ववत्... तो कालामो! उन धर्मों को छोड़ दो।' यह जो कहा था वह उपर्युक्त व्याख्यान के परिप्रेक्ष्य में ही कहा था।" (१)

"और, कालामो! किसी के द्वारा कही गयी बात को सुनकर, या उसे परम्परा या इतिहास समझ कर...पूर्ववत्... ये धर्म कुशल हैं, निर्दोष हैं, विज्ञजनों द्वारा प्रशंसित हैं, 'ये धर्म, साधना किये जाने पर हितकर एवं सुखप्रद होंगे'—यह बात जिन धर्मों के विषय में तुमको उचित समझ में आवे उनका पालन करते हुए यह धर्मसाधना करो।

"तो क्या मानते हो, कालामो! **अलोभ** पुरुष के मन में उत्पन्न होता हुआ उसके लिये हितकर होता है या अहितकर?" "हितकर, भन्ते!"

"तं किं मञ्ञथ, कालामा, अदोसो पुरिसस्स अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति ...पे०... अमोहो पुरिसस्स अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति ...पे०... हिताय सुखाया" ति।

"एवं भन्ते"।

"तं किं मञ्ञथ, कालामा, इमे धम्मा कुसला वा अकुसला वा" ति?

"कुसला, भन्ते"। [N.177]

"सावज्जा वा अनवज्जा वा" ति? "अनवज्जा, भन्ते"।

"विञ्ञुगरहिता वा विञ्ञुप्पसत्था वा" ति? "विञ्ञुप्पसत्था, भन्ते"।

"समत्ता, भन्ते, समादिन्ना हिताय सुखाय संवत्तन्ति। कथं वा एत्थ होती" ति?" [B.192]

"समत्ता, भन्ते, समादिन्ना हिताय सुखाय संवत्तन्ति। एवं नो एत्थ होती" ति।

"इति खो, कालामा, यं तं अवोचुम्हा—'एथ तुम्हे, कालामा! मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरू ति। यदा तुम्हे, कालामा, अत्तना व जानेय्याथ—इमे धम्मा कुसला, इमे धम्मा अनवज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुप्पसत्था, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना हिताय सुखाय संवत्तन्ती ति, अथ तुम्हे, कालामा, उपसम्पज्ज विहरेय्याथा' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।" [R.192]

"स खो सो, कालामा, अरियसावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पतिस्सतो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा

"कालामो! ऐसा अलोभी पुरुष लोभ के वश में न होकर दूसरे का कुछ न ग्रहण करने का मन बनाकर न किसी की हत्या, न चौरी, न परस्त्री से सहवास और मिथ्याभाषण करता है तथा दूसरे को भी वैसा (हत्या आदि) करने को उत्साहित नहीं करता, ये सब कर्म उसको चिरकाल तक सुखद एवं हितकर होते हैं?" "ऐसा ही है, भन्ते!" (क)

"तो क्या मानते हो, कालामो! **अद्वेष...अमोह** किसी पुरुष के मन में... अहितकर?" "ऐसा ही है, भन्ते!"

"तो क्या मानते हो, कालामो! ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?" "कुशल हैं, भन्ते!"

"सदोष हैं या निर्दोष?" "निर्दोष, भन्ते!"

"विज्ञजनों द्वारा निन्दित हैं या प्रशंसित?" "प्रशंसित हैं, भन्ते!"

"इनको क्रियात्मक रूप दिये जाने पर ये हितकर एवं सुखद होते हैं या नहीं?"

"हमें ऐसा लगता है, भन्ते! ये सुखद एवं हितकर ही होते हैं।"

"तो कालामो! यह जो हमने तुमसे कहा था—'किसी की कही हुई बात को सुनकर या परम्परा या इतिहास समझकर...पूर्ववत्... तुमको उचित समझ में आवे उसी का पालन करते हुए साधना करो'—यह कथन उपर्युक्त व्याख्यान के सन्दर्भ में ही कहा था।

"इस प्रकार, कालामो! वह आर्यश्रावक लोभ द्वेष एवं मोह से दूर होकर तथा स्मृति-

दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। करुणासहगतेन चेतसा ...पे०... मुदितासहगतेन चेतसा ...पे०... उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति।

"स खो सो, कालामा, अरियसावको एवं अवेरचित्तो एवं अब्याबज्झचित्तो एवं असङ्किलिट्ठचित्तो एवं विसुद्धचित्तो। तस्स दिट्ठेव धम्मे चत्तारो अस्सासा अधिगता होन्ति। 'सचे खो पन अत्थि परो लोको, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, अथाहं कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं लोकं उपपज्जिस्सामी' ति, अयमस्स पठमो अस्सासो [N.178] अधिगतो होति।"

[B.193] "'सचे खो पन नत्थि परो लोको, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, अथाहं दिट्ठेव धम्मे अवेरं अब्याबज्झं अनीघं सुखिं अत्तानं परिहरामी' ति, अयमस्स दुतियो अस्सासो अधिगतो होति।

"'सचे खो पन करोतो न करीयति पापं, न खो पनाहं कस्सचि पापं चेतेमि। अकरोन्तं खो पन मं पापकम्मं कुतो दुक्खं फुसिस्सती' ति, अयमस्स ततियो अस्सासो अधिगतो होति।

सम्प्रजन्य से युक्त होकर **मैत्री सहगत चित्त से** एक दिशा को व्याप्त कर साधना करता है। इसी तरह दूसरी, तीसरी एवं चौथी दिशा को... यों वह ऊपर नीचे, आड़े तिरछे—सर्वत्र सब ओर से लोक को विपुल महद्गत अप्रमाण चित्त से व्याप्त कर साधना करता है। इसी प्रकार **करुणासहगत चित्त से... मुदिता सहगत चित्त से... उपेक्षा सहगत चित्त से** एक दिशा को व्याप्त कर... पूर्ववत्... अप्रमाण चित्त से व्याप्त कर साधना करता है। (ख)

"कालामो! तब वह आर्यश्रावक इस प्रकार साधना कर, वैर, द्वेष एवं किसी अन्य को हानि पहुँचाने के विचार से तथा कष्ट देने की इच्छा से उसका चित्त शुद्ध (निर्मल) हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसको, तब इस साधना के कारण, ये चतुर्विध आश्वासन प्राप्त होते हैं।

(१) वह सोचता है—'यदि परलोक है, सुकृत दुष्कृत कर्मों का फल मिलता है, तो मैं इस देहपात के बात, मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में अवश्य पहुँच जाऊँगा।' इस प्रकार उसको यह **प्रथम आश्वासन** प्राप्त होता है।

(२) "फिर वह सोचता है—'यदि परलोक नहीं है तथा मेरे इन सुकृत दुष्कृत कर्मों का फल या परिणाम नहीं भी होता है, तो भी मैं कम से कम इस लोक में ही सही, वैर, दूसरों को हानि पहुँचाने तथा दुःखमय जीवन से दूर रह पाता हूँ'—यही क्या कम है!—इस प्रकार उसको यह **दूसरे आश्वासन** प्राप्त होता है।

'''सचे खो पन करोतो न करीयति पापं, अथाहं उभयेनेव विसुद्धं अत्तानं समनुपस्सामी' ति, अयमस्स चतुत्थो अस्सासो अधिगतो होति।

''स खो सो, कालामा, अरियसावको एवं अवेरचित्तो एवं अब्याबज्झचित्तो एवं असङ्किलिट्ठचित्तो एवं विसुद्धचित्तो। तस्स दिट्ठेव धम्मे इमे चत्तारो अस्सासा अधिगता होन्ती'' ति।

''एवमेतं, भगवा, एवमेतं, सुगत! स खो सो, भन्ते, अरियसावको एवं अवेरचित्तो एवं अब्याबज्झचित्तो एवं असङ्किलिट्ठचित्तो एवं विसुद्धचित्तो। तस्स दिट्ठेव धम्मे [R.193] चत्तारो अस्सासा अधिगता होन्ति। 'सचे खो पन अत्थि परो लोको, अत्थि सुकदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, अथाहं कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सामी' ति, अयमस्स पठमो अस्सासो अधिगतो होति।''

'''सचे खो पन नत्थि परो लोको, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, अथाहं दिट्ठेव धम्मे अवेरं अब्यापज्झं अनीघं सुखिं अत्तानं परिहरामी' ति, अयमस्स दुतियो अस्सासो अधिगतो होति।

'''सचे खो पन करोतो करीयति पापं, न खो पनाहं कस्सचि पापं चेतेमि, अकरोन्तं खो पन मं पापकम्मं कुतो दुक्खं फुसिस्सती' ति, अयमस्स ततियो अस्सासो अधिगतो होति।

'''सचे खो पन करोतो न करीयति पापं, अथाहं उभयेनेव विसुद्धं अत्तानं [B.194] समनुपस्सामी' ति, अयमस्स चतुत्थो अस्सासो अधिगतो होति।

''स खो सो, भन्ते, अरियसावको एवं अवेरचित्तो एवं अब्याबज्झचित्तो एवं

---

(३) ''फिर यह सोचता है—'यदि यह मान लें कि करने वाले को ही पाप लगता है, तो मैं किसी के विषय में कोई पाप करने का विचार ही नहीं कर रहा हूँ, तब मुझे उस पाप के कारण होने वाला दुःख क्यों मिलेगा।'—यह **तीसरा आश्वासन** उसको, उसकी इन शुद्ध क्रियाओं के कारण मिलता है।

(४) ''फिर वह सोचता है—'यदि यह मान लें कि करने वाला कोई पाप नहीं करता, तब भी मैं उभयथा (दोनों ही तरह से) शुद्ध (निष्पाप) हूँ'—उसको यह **चतुर्थ आश्वासन** प्राप्त होता है।

''इस प्रकार, कालामो! साधना करते हुए उस आर्यश्रावक का चित्त दूसरों से वैर, द्वेष या दूसरों को हानि पहुँचाने के विचार से तथा कष्ट देने की इच्छा से सर्वथा दूर हो जाता है। इस तरह वह साधक विशुद्धचित्त हो जाता है। तथा उसको अपनी साधना की उपलब्धि के रूप में **चार आश्वासन** प्राप्त होते हैं।''

''हाँ, भगवन्! ऐसा ही है; हाँ, सुगत! आप जो कह रहे हैं वैसा ही है। वह आर्यश्रावक इस प्रकार साधना कर, किसी के प्रति वैर, द्वेष या किसी को हानि पहुँचाने इच्छा से उसका चित्त शुद्ध

असङ्किलिट्ठचित्तो एवं विसुद्धचित्तो। तस्स दिट्ठेव धम्मे इमे चत्तारो अस्सासा अधिगता होन्ति।''

[N.179] ''अभिक्कन्तं, भन्ते ...पे०... एते मयं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छाम धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासके नो, भन्ते, भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गते'' ति॥ ●

६. साळ्हसुत्तं : एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा नन्दको सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। अथ खो साळ्हो च मिगारनत्ता साणो च सेखुनियनत्ता येनायस्मा नन्दको तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नन्दकं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नं खो साळ्हं मिगारनत्तारं आयस्मा नन्दको एतदवोच—

''एथ तुम्हे, साळ्हा, मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरू ति। यदा तुम्हे, साळ्हा, अत्तना व जानेय्याथ 'इमे धम्मा [R.194] अकुसला, इमे धम्मा सावज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुगरहिता, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ती' ति, अथ तुम्हे साळ्हा पजहेय्याथ।'' ''एवं, भन्ते''।

''अभिज्झा ति खो अहं, साळ्हा, एतमत्थं वदामि। लुद्धो खो अयं, साळ्हा, अभिज्झालु पाणं पि हनति, अदिन्नं पि आदियति, परदारं पि गच्छति, मुसा पि भणति, परं पि तथत्ताय समादपेति, यं स होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया'' ति। ''एवं, भन्ते''।

[B.195] ''तं किं मञ्ञथ, साळ्हा, अत्थि दोसो'' ति? ''एवं, भन्ते''।

हो जाता है। ...पूर्ववत्... । उसको इस साधना की उपलब्धि के रूप में ये चार आश्वासन प्राप्त होते हैं। (ग)

''आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम!.... आज से आप भगवान् हम सभी को हमारे जीवनपर्यन्त अपना उपासक समझें॥'' ●

६. साढसूत्र : : तीन धर्मोंका परित्याग

ऐसा मैंने सुना है। एक समय आयुष्मान् नन्दक श्रावस्ती के पूर्वारामस्थित मृगारमातृप्रासाद में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब कभी मृगार का नाती साढ एवं सेखुनिय का नाती साण—दोनों आयुष्मान् नन्दक के पास पहुँचे। पहुँचकर ...पूर्ववत्... मृगार के नाती साढ को आयुष्मान् नन्दक ने यह कहा—

''साढ! यहाँ तुम्हें किसी के सुनी सुनायी बात पर, या उसे परम्परा मानकर, या उसे इतिहास मानकर ...पूर्ववत्... उन धर्मों को छोड़ दो।

तो क्या मानते हो, साढ! लोभ की सत्ता है?'' ''हाँ भन्ते!''

''साढ! इसी को मैं 'अभिध्या' शब्द से व्याख्यात करता हूँ। यह लोभी पुरुष, साढ! ...पूर्ववत्... चिरकाल तक अहित कर एवं दुःखद होता है।' ''ऐसा ही है, भन्ते!''

''क्या मानते हो, साढ! यहाँ द्वेष की सत्ता है?'' ''हाँ, है भन्ते!''

''ब्यापादो ति खो अहं, साळ्हा, एतमत्थं वदामि। दुट्ठो खो अयं, साळ्हा, ब्यापन्नचित्तो पाणं पि हनति, अदिन्नं पि आदियति, परदारं पि गच्छति, मुसा पि भणति, परं पि तथत्ताय समादपेति, यं स होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया'' ति।

''एवं, भन्ते''।

''तं किं मञ्ञथ, साळ्हा, अत्थि मोहो'' ति? ''एवं, भन्ते''।

''अविज्जा ति खो अहं, साळ्हा, एतमत्थं वदामि। मूळ्हो खो अयं, [N.180] साळ्हा, अविज्जागतो पाणं पि हनति, अदिन्नं पि आदियति, परदारं पि गच्छति, मुसा पि भणति, परं पि तथत्ताय समादपेति, यं स होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया'' ति।

''एवं, भन्ते''।

''तं किं मञ्ञथ, साळ्हा, इमे धम्मा कुसला वा अकुसला वा'' ति?

''अकुसला, भन्ते''।

''सावज्जा वा अनवज्जा वा'' ति? ''सावज्जा, भन्ते''।

''विञ्ञुगरहिता वा विञ्ञुप्पसत्था वा'' ति? ''विञ्ञुगरहिता, भन्ते''।

''समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ति, नो वा? कथं वा एत्थ होती'' ति?

''समत्ता, भन्ते, समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ती ति। एवं नो एत्थ [R.195] होती'' ति।

''इति खो, साळ्हा, यं तं अवोचुम्हा—'एथ तुम्हे, साळ्हा, मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरू ति।

''इसी को मैं 'व्यापाद' कहता हूँ। द्वेषी पुरुष ...पूर्ववत्... अहितकर, दुःखद होता है।''

''ऐसा ही है, भन्ते!''

''क्या मानते हो, साढ, मोह की सत्ता है?'' ''हाँ, है भन्ते!''

''इसी को मैं 'अविद्या' कहता हूँ। मोहमुग्ध पुरुष, साढ! ...पूर्ववत्... अहितकर एवं दुःखद होता है।'' ''ऐसा ही होता है, भन्ते!''

''क्या मानते हो, साढ! ये (उपर्युक्त) धर्म कुशल हैं या अकुशल?''

''अकुशल हैं, भन्ते!''

''सदोष या निर्दोष... विज्ञजनों द्वारा निन्दित या प्रशंसित हैं?'' ''निन्दित हैं, भन्ते!''

''इनका पालन या पूर्ति अहितकर होती है या दुःखद होती है?—तुम्हें यहाँ क्या अभिप्रेत हैं?'' ''अहितकर एवं दुःखद ही होती है, भन्ते!''

''इसलिये, साढ! मैंने जो अभी पहले कहा है—'किसी की सुनी सुनायी बात पर, परम्परा पर... इतिहास पर... पूर्ववत्... उन धर्मों को छोड़ दो'—यह जो कहा है, वह इसी अभिप्राय से कहा है।

यदा तुम्हे, साळ्हा, अत्तना व जानेय्याथ—इमे धम्मा अकुसला, इमे धम्मा सावज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुगरहिता, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खायं संवत्तन्ती ति, अथ तुम्हे, साळ्हा, पजहेय्याथा' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

"एथ तुम्हे, साळ्हा, मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झान-क्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरू ति। यदा तुम्हे, साळ्हा, अत्तना व [B.196] जानेय्याथ—'इमे धम्मा कुसला, इमे धम्मा अनवज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुप्पसत्था, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना हिताय सुखाय संवत्तन्ती' ति, अथ, तुम्हे, साळ्हा, उपसम्पज्ज विहरेय्याथ।"

[N.181] "तं किं मञ्ञथ, साळ्हा, अत्थि अलोभो" ति? "एवं, भन्ते"।

"अनभिज्झा ति खो अहं, साळ्हा, एतमत्थं वदामि। अलुद्धो खो अयं, साब्हा, अनभिज्झालु नेव पाणं हनति, न अदिन्नं आदियति, न परदारं गच्छति, न मुसा भणति, परं पि न तथत्ताय समादपेति, यं स होति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

"एवं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञथ, साळ्हा, अत्थि अदोसो" ति? "एवं, भन्ते"।

"अब्यापादो ति खो अहं, साळ्हा, एतमत्थं वदामि। अदुट्ठो खो अयं, साळ्हा, अब्यापन्नचित्तो नेव पाणं हनति, न अदिन्नं आदियति, होति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

"एवं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञथ, साळ्हा, अत्थि अमोहो" ति? "एवं, भन्ते"।

"विज्जा ति खो अहं, साळ्हा, एतमत्थं वदामि। अमूळ्हो खो अयं, साळ्हा, विज्जागतो नेव पाणं हनति, न अदिन्नं आदियति, न परदारं गच्छति, न मुसा भणति, परं पि [R.196] न तथत्ताय समादपेति, यं स होति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

"इसी तरह, तुम लोग, साढ! किसी की सुनी सुनायी बात पर... परम्परा पर ...इतिहास पर ...पूर्ववत्... यह श्रमण या गुरु है; जब तक कि, साढ! तुम यह न जान लो—'ये धर्म कुशल हैं... हितकर तथा सुखद होंगे';

तब तुम, साढ! यहाँ अलोभ की सत्ता है?" "हाँ, है भन्ते!"

"इसी को मैं 'अनभिध्या' कहता हूँ। अलोभी पुरुष कहीं भी लोभ न करता हुआ ...पूर्ववत्... जो उसके लिये दीर्घ काल तक हितकर एवं सुखकर होता है।" "हाँ, भन्ते!"

"तो क्या मानते हो, साढ! यहाँ अद्वेष की सत्ता है?" "हाँ, भन्ते!"

"इसी अद्वेष को मैं 'अव्यापाद' कहता हूँ... पूर्ववत्... एवं सुखकर होता है।"

"हाँ, ऐसा ही होता है, भन्ते!"

"क्या मानते हो, साढ! अमोह की सत्ता है?" "है, भन्ते!"

"एवं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञथ, साळ्हा, इमे धम्मा कुसला वा अकुसला वा" ति?

"कुसला, भन्ते"।

"सावज्जा वा अनवज्जा वा" ति? "अनवज्जा, भन्ते"।

"विञ्ञुगरहिता वा विञ्ञुप्पसत्था वा" ति? "विञ्ञुप्पसत्था, भन्ते"।

"समत्ता समादिन्ना हिताय सुखाय संवत्तन्ति, नो वा? कथं वा एत्थ होती" ति?

"समत्ता, भन्ते, समादिन्ना हिताय सुखायं संवत्तन्ती ति। एवं नो एत्थ होती" ति।

"इति खो, साळ्हा, यं तं अवोचुम्हा—'एथ तुम्हे, साळ्हा, मा अनुस्सवेन, [N.182] मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकार-परिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया,... जानेय्याथ—इमे धम्मा कुसला, इमे धम्मा अनवज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुप्पसत्था, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना दीघरत्तं हिताय [B.197] सुखाय संवत्तन्ती ति, अथ तुम्हे, साळ्हा, उपसम्पज्ज विहरेय्याथा' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।"

"स खो सो, साळ्हा, अरियासावको एवं विगताभिज्झो विगतब्यापादो असम्मूळ्हो सम्पजानो पतिस्सतो मेत्तासहगतेन चेतसा ...पे०... करुणा ...मुदिता... उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेत्तसा विपुलेन महग्गतेन

"साढ! इसी को मैं 'विद्या' कहता हूँ। साढ! यह निर्मोह पुरुष विद्या पर आधृत होकर स्वयं जीवहिंसा, चौरी, परदारगमन एवं असत्यभाषण नहीं करता, न दूसरे को इन कार्यों के लिये प्रेरित करता है। यह सब कर्म उसके लिये दीर्घकाल तक हितकर एवं सुखद होता है।"

"ऐसा ही है, भन्ते!"

"क्या मानते हो! साढ! ये धर्म कुशल हैं, या अकुशल?" "कुशल हैं, भन्ते!"

"सदोष हैं या निर्दोष?" "निर्दोष हैं, भन्ते!"

"विज्ञजनों द्वारा प्रशंसित हैं या निन्दित?" "प्रशंसित हैं, भन्ते!"

"ये पूर्ण होने पर सुखकर एवं हितकर ही होते हैं—यहाँ तुम्हें क्या समझ में आता है?"

"हितकर ही होते हैं—हमको इस विषय में ऐसा ही लगता है।"

"इसीलिये साढ! हमने तुमसे यह जो कहा था—'किसी की सुनी सुनायी बात पर ...पूर्ववत्...। यदि, साढ! तुम्हें ऐसा लगे कि ये धर्म कुशल हैं... इनका आचरण तुम्हारे लिये दीर्घकाल तक हितकर एवं सुखद ही होगा'—इसी अभिप्राय से कहा था।

"साढ! वह आर्यश्रावक विगतलोभ, विगतद्वेष एवं विगतमोह होकर, स्मृति एवं सम्प्रजन्य के साथ मैत्रीसहगत चित्त से...करुणासहगत चित्त से... मुदितासहगत चित्त से... उपेक्षासहगत चित्त से एक दिशा...द्वितीय...तृतीय दिशा एवं चतुर्थी दिशा की ओर के लोक को उपेक्षासहगत चित्त से

अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। सो एवं पजानाति—'अत्थि इदं, अत्थि हीनं, अत्थि पणीतं, अत्थि इमस्स सञ्ञागतस्स उत्तरि निस्सरणं' ति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा [R.197] पि चित्तं विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति।''

''सो एवं पजानाति—'अहु पुब्बे लोभो, तदहु अकुसलं, सो एतरहि नत्थि, इच्चेतं कुसलं; अहु पुब्बे दोसो ...पे०... अहु पुब्बे मोहो, तदहु अकुसलं, सो एतरहि नत्थि, इच्चेतं कुसलं' ति। सो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतिभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरती'' ति॥ ●

७. कथावत्थुसुत्तं : तीणिमानि, भिक्खवे, कथावत्थूनि। कतमानि तीणि? अतीतं वा, भिक्खवे, अद्धानं आरब्भ कथं कथेय्य—'एवं अहोसि अतीतमद्धानं' ति। अनागतं वा, भिक्खवे, अद्धानं आरब्भ कथं कथेय्य—'एवं भविस्सति अनागतमद्धानं' ति। एतरहि वा, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नं अद्धानं आरब्भ कथं कथेय्य—'एवं होति एतरहि पच्चुप्पन्नमद्धानं' ति। [N.183] ''कथासम्पयोगेन, भिक्खवे, पुग्गलो वेदितब्बो यदि वा कच्छो यदि वा अकच्छो ति। सचायं, भिक्खवे, पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो एकंसब्याकरणीयं पञ्हं न एकंसेन

विपुल महद्गत अप्रमाण, अवैर और दूसरों को हानि न पहुँचाने के भाव से साधना करता है। तब उसको यह ज्ञान होता है—इसकी सत्ता है, यह हीन है, यह विपुल मात्रा में है, इस संज्ञागत का आगे निःसरण है। उसके इस तरह जानते समझते हुए उस आर्यश्रावक का चित्त कामाश्रव, भवाश्रव एवं अविद्याश्रव से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। तथा इस तरह मुक्त हो जाने पर उस को 'मैं मुक्त हो चुका'—यह भी ज्ञान हो जाता है। तब वह यह भी जान जाता है—'मेरी जन्म-परम्परा क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो गयी, मेरा कर्तव्य पूर्ण हो चुका, इससे आगे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है।'

''वह यह भी जान लेता है—'पहले लोभ होता है, तब उससे अकुशल धर्म, वह इस समय नहीं है, यही कुशल है।' पहले द्वेष होता है...पूर्ववत्... 'पहले मोह होता है, तब उससे अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, वह इस समय नहीं है।' वह इसी जन्म में, भूख-प्यास आदि भौतिक तापों से दूर होकर सुख का अनुभव करता हुआ ब्रह्मभूत स्थितियुक्त होकर साधना करता है॥'' ●

७. कथावस्तुसूत्र : : त्रिविध वार्ता

''भिक्षुओ! ये तीन प्रकार के वार्ता (बातचीत) के विषय होते हैं। कौन से तीन? कोई १. अतीत (भूतकाल) के प्रसङ्गों को लेकर बात करे कि पहले ऐसे हुआ था, २. भविष्य काल के प्रसङ्गों को लेकर... या ३. वर्तमान समय के किसी प्रसङ्ग को लेकर बातें आरम्भ करे कि वर्तमान में ऐसे हो रहा है, ऐसे नहीं।

''भिक्षुओ! कथा के सम्प्रयोग (मेल) से पुद्गल के विषय में जानना चाहिये कि यह कथ्य (बात करने योग्य) है या अकथ्य (बात करने योग्य नहीं) है। (क) भिक्षुओ! यदि वह पुद्गल

ब्याकरोति, विभज्जब्याकरणीयं पञ्हं न विभज्ज ब्याकरोति, पटिपुच्छाब्याकरणीयं पञ्हं न पटिपुच्छा ब्याकरोति, ठपनीयं पञ्हं न ठपेति, एवं सन्तायं, भिक्खवे, पुग्गलो [B.198] अकच्छो होति। सचे पनायं,. भिक्खवे, पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो एकंसब्याकरणीयं पञ्हं एकंसेन ब्याकरोति, विभज्जब्याकरणीयं पञ्हं विभज्ज ब्याकरोति, पटिपुच्छाब्याकरणीयं पञ्हं पटिपुच्छा ब्याकरोति, ठपनीयं पञ्हं ठपेति, एवं सन्तायं, भिक्खवे, पुग्गलो कच्छो होति।

''कथासम्पयोगेन, भिक्खवे, पुग्गलो वेदितब्बो यदि वा कच्छो यदि वा अकच्छो ति। सचायं, भिक्खवे, पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो ठानाठाने न सण्ठाति परिकप्पे न सण्ठाति अञ्ञातवादे न सण्ठाति पटिपदाय न सण्ठाति, एवं सन्तायं, भिक्खवे, पुग्गलो [R.198] अकच्छो होति। सचे पनायं, भिक्खवे, पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो ठानाठाने सण्ठाति परिकप्पे सण्ठाति अञ्ञातवादे सण्ठाति पटिपदाय सण्ठाति, एवं सन्तायं, भिक्खवे, पुग्गलो कच्छो होति।

''कथासम्पयोगेन, भिक्खवे, पुग्गलो वेदितब्बो यदि वा कच्छो यदि वा अकच्छो

किसी निश्चित रूप से उत्तर देने योग्य प्रश्न का निश्चित रूप से उत्तर नहीं देता, या पृथक् कर उत्तर देने योग्य (विभज्य व्याकरणीय) का पृथक् पृथक् उत्तर नहीं देता, प्रश्नोत्तर के रूप में उत्तर देने योग्य (व्याख्येय) प्रश्न का उसी रूप में उत्तर नहीं देता, स्थापनीय (निश्चय करने योग्य) प्रश्न का निश्चित उत्तर नहीं देता—ऐसा पुद्गल **अकथ्य** कहलाता है। (ख) भिक्षुओ! यदि कोई पुद्गल पूछे गये (उत्तर देने योग्य) प्रश्न का निश्चित रूप से उत्तर देता है तथा उत्तर न देने योग्य का उत्तर नहीं देता, या पृथक् कर उत्तर देने योग्य प्रश्न का पृथक् करके उत्तर देता है, या प्रश्नोत्तर के रूप में किये प्रश्न का प्रश्नोत्तर के रूप में उत्तर देता है, या स्थापनीय प्रश्न का निश्चित उत्तर देता है तो वह पुद्गल **'कथ्य'** कहलाता है।

''भिक्षुओ! कथा के प्रसङ्ग से किसी पुद्गल के विषय में...पूर्ववत्...। (क) यदि वह पुद्गल प्रश्न पूछने पर स्थान (उचित) या अस्थान (अनुचित) का निर्णय नहीं कर पाता, लक्ष्य पर नहीं ठहरता, दूसरे के मत को नहीं समझ पाता, पद्धति का अनुसरण नहीं करता, ऐसे पुद्गल को **अकथ्य** कहते हैं। (ख) और जो प्रश्न के स्थानास्थान का निर्णय कर लेता है, लक्ष्य पर दृष्टि रखता है, दूसरे के मत को समझता है, पद्धति का अनुसरण करता है, ऐसा पुद्गल, भिक्षुओ! **कथ्य** कहलाता है।

''कथाप्रसङ्ग की दृष्टि से, भिक्षुओ! किसी पुद्गल को इस प्रकार भी पहचानना चाहिये कि वह कथ्य है या नहीं ? (क) भिक्षुओ! कथाप्रसङ्ग में कोई पुद्गल विषय से बाहर इधर उधर की बात उठावे, निश्चित कथाप्रसङ्ग से बाहर चला जाय, परपक्ष द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर, क्रोध अनिच्छा या अविश्वास प्रकट करे तो समझो वह पुद्गल **अकथ्य** (वाद करने के अयोग्य) है। (ख) हाँ, यदि वह कथाप्रसङ्ग में इधर उधर की बात न उठावे, निश्चित कथाप्रसङ्ग से बाहर न जाय; द्वेष, क्रोध, अनिच्छा, अविश्वास आदि प्रकट न करे तो वैसा पुद्गल **कथ्य** कहलाता है।

''कथाप्रसङ्ग की दृष्टि से, भिक्षुओ! किसी पुद्गल के कथ्य या अकथ्य के विषय में इस प्रकार

ति। सचायं, भिक्खवे, पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो अञ्ञेनञ्ञं पटिचरति, बहिद्धा कथं अपनामेति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति, एवं सन्तायं, भिक्खवे, पुग्गलो अकच्छो होति। सचे पनायं, भिक्खवे, पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो न अञ्ञेनञ्ञं पटिचरति न बहिद्धा कथं अपनामेति, न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति, एवं सन्तायं, भिक्खवे, पुग्गलो कच्छो होति।''

''कथासम्पयोगेन, भिक्खवे पुग्गलो वेदितब्बो यदि वा कच्छो यदि वा अकच्छो ति। सचायं, भिक्खवे, पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो अभिहरति अभिमद्दति अनुपजग्घति खलितं गण्हाति, एवं सन्तायं, भिक्खवे, पुग्गलो अकच्छो होति। सचे पनायं, भिक्खवे, पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो नाभिहरति नाभिमद्दति न अनुपजग्घति न खलितं गण्हाति, एवं सन्तायं, भिक्खवे, पुग्गलो कच्छो होति।''

''कथासम्पयोगेन, भिक्खवे, पुग्गलो वेदितब्बो यदि वा सउपनिसो यदि वा [B.199] अनुपनिसो ति। अनोहितसोतो, भिक्खवे, अनुपनिसो होति, ओहितसोतो [N.184] सउपनिसो होति। सो सउपनिसो समानो अभिजानाति एकं धम्मं, परिजानाति एकं धम्मं, पजहति एकं धम्मं, सच्छिकरोति एकं धम्मं। सो अभिजानन्तो एकं धम्मं, परिजानन्तो एकं धम्मं, पजहन्तो एकं धम्मं, सच्छिकरोन्तो एकं धम्मं सम्माविमुत्तिं फुसति। एतदत्था, भिक्खवे, कथा; एतदत्था मन्तना; एतदत्था उपनिसा; एतदत्थं सोतावधानं, यदिदं अनुपादा चित्तस्स विमोक्खो ति।''

[R.199] ''ये विरुद्धा सल्लपन्ति, विनिविट्ठा समुस्सिता।
अनरियगुणमासज्ज, अञ्ञोञ्ञविवरेसिनो॥

भी पहचान की जाती है—(क) कोई पुद्गल प्रश्न पूछे जाने पर, निर्णायकों को उपहार (भेंट) का सङ्केत करता है, प्रतिवादी का (काय या वाक् से) मर्दन करता है, परिहास करता है, छोटे से प्रमाद को अतिशय महत्त्व देता है तो ऐसा पुद्गल **अकथ्य** है—यह मानना चाहिये। (ख) यदि कोई वाद के समय उपर्युक्त बातें नहीं करता, तो, भिक्षुओ! समझो कि वह पुद्गल **कथ्य** है।

कथाप्रसङ्ग में उपस्थित पुद्गल पर इन बातों से विचार करना चाहिये कि वह समानभाव का है या नहीं?। भिक्षुओ! यहाँ प्रश्न को ध्यान से न सुनने वाला पुद्गल **अनुपनिषद** (असमान भाववाला) तथा प्रश्न को ध्यान से सुननेवाला **सोपनिषद** कहलाता है। ऐसा प्रश्न को ध्यान से सुनने वाला पुद्गल प्रश्न के किसी अंश को सम्यक् प्रकार से जानता है, किसी अंश को निश्चयात्मक रूप से जानता है, एक (अनावश्यक) अंश को छोड़ देता है, आवश्यक अंश को साक्षात् करता है, वह ऐसा करता हुआ पुद्गल (वाद में) सम्यग्विमुक्ति तक पहुँच जाता है। भिक्षुओ! इसी प्रयोजन के सिद्ध्यर्थ यह कथा (संवाद) की जाती है, इसी के लिये मन्त्रणा (विचार) की जाती है, इसी के लिये वहाँ बैठा जाता है, इसी के लिये वहाँ सब बातें ध्यानपूर्वक सुनी जाती है। यह प्रयोजन है—चित्त की अकुशल धर्मों से विमुक्ति।

"दुब्भासितं विक्खलितं, सम्पमोहं पराजयं।
अञ्ञोञ्ञस्साभिनन्दन्ति, तदरियो कथ नाचरे॥
"सचे चस्स कथाकामो, कालमञ्ञाय पण्डितो।
धम्मट्ठपटिसंयुत्ता, या अरियचरिता कथा॥
"तं कथं कथये धीरो, अविरुद्धो अनुस्सितो।
अनुन्नतेन मनसा, अपळासो असाहसो॥
"अनुसूयायमानो सो, सम्मदञ्ञाय भासति।
सुभासितं अनुमोदेय्य, दुब्भट्ठे नापसादये॥
"उपारम्भं न सिक्खेय्य, खलितं च न गाहये।
नाभिहरे नाभिमद्दे, न वाचं पयुतं भणे॥
"अञ्ञातत्थं पसादत्थं, सतं वे होति मन्तना।
एवं खो अरिया मन्तेन्ति, एसा अरियान मन्तना।
एतदञ्ञाय मेधावी, न समुस्सेय्य मन्तये" ति॥ ●

८. **अञ्ञतित्थियसुत्तं** : "सचे, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं पुच्छेय्युं—'तयोमे, आवुसो, धम्मा। कतमे तयो? रोगो, दोसो, मोहो—इमे खो, [B.200] आवुसो, तयो धम्मा। इमेसं, आवुसो, तिण्णं धम्मानं को विसेसो को अधिप्पयासो किं

"जो पुद्गल आर्य नियमों (वादनियमों) के विरुद्ध होकर संवाद करते हैं, या ऐसा प्रसङ्ग उठाते हैं, परस्पर एक दूसरे की दुर्बलता खोजते (विवैरषी) हैं॥

"या जिनका भाषण दुर्भाषित है, विश्रृङ्खलित है, भ्रान्त है, जिस भाषण के कारण वे एक दूसरे की पराजय चाहते हैं, ऐसा संवाद, ऐसा भाषण, ऐसी कथा आर्यजनों को नहीं करनी चाहिये॥

"यदि वह कोई कथा या संवाद करना ही चाहता है तो उचित समय देखकर न्याययुक्त एवं आर्य गुणों से युक्त ही कथा करनी चाहिये॥

"धैर्यवान् पुद्गल उस वाद के विरुद्ध या बाह्य प्रश्न न उठाकर, समान चित्त से, ईर्ष्या, प्रदाश (=पळास) रहित होकर, हठ (जिद्द) का प्रयोग न करते हुए॥

"(संवाद में) दूसरे को डाँट डपट न करे, दूसरे के प्रमत्त (स्खलित=भूल) वचन को बढ़ा चढ़ाकर न कहे। न दूसरे को उपहार (भेंट) आदि का प्रलोभन न दे, दूसरे का कटु वचनों से मर्दन न करे। तथा (संवाद में) द्व्यर्थक (प्रयुक्त) वचन न बोले॥

"अज्ञात के ज्ञान के लिये, तथा धर्म में श्रद्धाभिवृद्धि हेतु मन्त्रणा (कथा=संवाद) ही सन्तों द्वारा की जाती है। आर्यजन ऐसे ही मन्त्रणा करते हैं। इसे ही 'आर्य-मन्त्रणा' कहा जाता है। यह समझता हुआ ही बुद्धिमान् वाद में बैठे। बात को बढ़ा चढ़ाकर बोलना वहाँ उचित नहीं॥" ●

८. अन्यतीर्थिकसूत्र : : तीन धर्मों का भेद

"यदि, भिक्षुओ! दूसरे सम्प्रदायों के परिव्राजक तुमसे यों पूछें—आयुष्मानो! ये तीन धर्म होते हैं—राग, द्वेष एवं मोह। आयुष्मानो! ये तीन धर्म हैं; इन तीन धर्मों का, आयुष्मानो! क्या भेद

नानाकरणं' ति? एवं पुट्ठा तुम्हे, भिक्खवे, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं किन्ति ब्याकरेय्याथा'' ति?

''भगवम्मूलका नो, भन्ते, धम्मा भगवन्नेत्तिका भगवम्पटिसरणा। साधु वत, [N.185] भन्ते, भगवन्तंयेव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती'' ति।

''तेन हि, भिक्खवे, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति।

''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

''सचे, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं पुच्छेय्युं—'तयोमे, आवुसो, धम्मा। कतमे तयो? रागो, दोसो, मोहो—इमे खो, आवुसो, तयो धम्मा; इमेसं, आवुसो, तिण्णं धम्मानं को विसेसो को अधिप्पयासो किं नानाकरणं' ति? एवं पुट्ठा तुम्हे, भिक्खवे, [R.200] तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथ—'रागो खो, आवुसो, अप्पसावज्जो दन्धविरागी, दोसो महासावज्जो खिप्पविरागी, मोहो महासावज्जो दन्धविरागी' ति।''

'को पनावुसो, हेतु को पच्चयो येन अनुप्पन्नो वा रागो उप्पज्जति उप्पन्नो वा रागो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती' ति?

'सुभनिमित्तं तिस्स वचनीयं। तस्स सुभनिमित्तं अयोनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो वा रागो उप्पज्जति, उप्पन्नो वा रागो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति। अयं खो, आवुसो, हेतु अयं पच्चयो येन अनुप्पन्नो वा रागो उप्पज्जति उप्पन्नो वा रागो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती' ति।

है? क्या अभिप्राय है? इनमें क्या विविधता है?'' इस प्रकार पूछे जाने पर, उन अपर सम्प्रदाय वाले परिव्राजकों को तुम क्या उत्तर दोगे?''

''भन्ते! हमारे लिये तो धर्मविषयक प्रमाण आपही हैं, आप ही हमारे धर्मपथप्रदर्शक हैं, हम अपना धर्मविषयक सन्देह-निवारण आपसे ही करते हैं; अत: अच्छा हो, भन्ते! आप ही इसका उत्तर बता दें।''

''तो, भिक्षुओ! सुनो, मन में भलीभाँति बैठा लो। बताता हूँ।'' ''ठीक है, भन्ते!''

भगवान् बोले—

''यदि, भिक्षुओ! अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजक तुमसे पूछें—'आयुष्मानो! ये तीन धर्म होते हैं। ...पूर्ववत्... इनमें क्या विविधता है?' ऐसा पूछे जाने पर तुम्हें इसका यों उत्तर देना चाहिये—'आयुष्मानो! राग (आसक्ति) में अल्प सदोषता है, वैराग्य सम्बन्धी अल्प शिथिलता है; द्वेष में अतिशय सदोषता है, शिथिल वैराग्य वाला है; और मोह (मूर्खता=मुग्धता) में अत्यधिक दोष हैं, वैराग्यसम्बन्धी शिथिलता भी कम ही है।

'आयुष्मानो! क्या हेतु तथा क्या प्रत्यय है कि अनुत्पन्न राग उत्पन्न हो जाता है, तथा उत्पन्न राग शीघ्रतापूर्वक अधिक से अधिक बढ़ने लगता है?'

'को पनावुसो, हेतु को पच्चयो येन अनुप्पन्नो वा दोसो उप्पज्जति उप्पन्नो वा दोसो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती' ति?

'पटिघनिमित्तं तिस्स वचनीयं। तस्स पटिघनिमित्तं अयोनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो वा दोसो उप्पज्जति उप्पन्नो वा दोसो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति। [B.201] अयं खो, आवुसो, हेतु अयं पच्चयो येन अनुप्पन्नो वा दोसो उप्पज्जति उप्पन्नो वा दोसो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती' ति।

'को पनावुसो, हेतु को पच्चयो येन अनुप्पन्नो वा मोहो उप्पज्जति उप्पन्नो वा मोहो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती' ति?

'अयोनिसो मनसिकारो तिस्स वचनीयं। तस्स अयोनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो वा मोहो उप्पज्जति उप्पन्नो वा मोहो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति। अयं खो, [N.186] आवुसो, हेतु अयं पच्चयो येन अनुप्पन्नो वा मोहो उप्पज्जति उप्पन्नो वा मोहो भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तती' ति।

'को पनावुसो, हेतु को पच्चयो येन अनुप्पन्नो चेव रागो नुप्पज्जति उप्पन्नो च रागो पहीयती' ति?

'असुभनिमित्तं तिस्स वचनीयं। तस्स असुभनिमित्तं योनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो चेव रागो नुप्पज्जति उप्पन्नो च रागो पहीयति। अयं खो, आवुसो, हेतु [R.201] अयं पच्चयो येन अनुप्पन्नो चेव रागो नुप्पज्जति उप्पन्नो च रागो पहीयती' ति।

'को पनावुसो, हेतु को पच्चयो येन अनुप्पन्नो चेव दोसो नुप्पज्जति उप्पन्नो च दोसो पहीयती' ति?

इस शरीर (काया) में मिथ्या शुभ भावना देखकर अनुत्पन्न राग उत्पन्न होने लगता है, तथा उत्पन्न राग शीघ्रतापूर्वक अधिक से अधिक बढ़ने लगता है। आयुष्मानो! यही हेतु है राग... शीघ्रतापूर्वक बढ़ने लगता है।

'आयुष्मानो! क्या कारण है... अनुत्पन्न द्वेष... अधिक से अधिक बढ़ने लगता है?'

'उसका कारण प्रतिघ होता है।' 'प्रतिघ' (क्रोध=वैर) के कारण अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होने... बढ़ने लगता है।' ...।

'फिर, आयुष्मानो! क्या कारण है... अनुत्पन्न मोह... उत्पन्न मोह अधिक से अधिक बढ़ने लगता है?' 'किसी धर्म का सूक्ष्मतया सम्यग्दृष्टि से विवेचन न करना ही इसका कारण है। इस प्रकार विवेचन न करने से अनुत्पन्न मोह... उत्पन्न मोह अधिक से अधिक बढ़ने लगता है। ...।

'फिर क्या कारण है, क्या प्रत्यय है, आयुष्मानो! कि जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता तथा उत्पन्न राग अतिशय रूप से बढ़ने नहीं पाता?'

'काया में अशुभ भावना देखना ही इसका कारण है।' 'आयुष्मानो! ऐसा करने से अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता, तथा उत्पन्न राग अधिक बढ़ नहीं पाता। आयुष्मानो! यही कारण है, यही प्रत्यय है कि अनुत्पन्न राग... उत्पन्न राग बढ़ने नहीं पाता।'

'मेत्ता चेतोविमुत्ती तिस्स वचनीयं। तस्स मेत्तं चेतोविमुतिं योनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो चेव दोसो नुप्पज्जति उप्पन्नो च दोसो पहीयति। अयं खो, आवुसो, हेतु अयं पच्चयो येन अनुप्पन्नो चेव दोसो नुप्पज्जति उप्पन्नो च दोसो पहीयती' ति।

'को पनावुसो, हेतु को पच्चयो येन अनुप्पन्नो चेव मोहो नुप्पज्जति उप्पन्नो च मोहो पहीयती' ति?

'योनिसो मनसिकारो तिस्स वचनीयं। तस्स योनिसो मनसि करोतो अनुप्पन्नो चेव माहो नुप्पज्जति उप्पन्नो च मोहो पहीयति। अयं खो, आवुसो, हेतु अयं पच्चयो येन अनुप्पन्नो वा मोहो नुप्पज्जति उप्पन्नो च मोहो पहीयती''' ति॥ ●

[B.202] **९. अकुसलमूलसुत्तं :** ''तीणिमानि, भिक्खवे, अकुसलमूलानि। कतमानि तीणि? लोभो अकुसलमूलं, दोसो अकुसलमूलं, मोहो अकुसलमूलं।

''यदपि, भिक्खवे, लोभो तदपि अकुसलमूलं; यदपि लुद्धो अभिसङ्खरोति कायेन वाचाय मनसा तदपि अकुसलं; यदपि लुद्धो लोभेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो परस्स असता दुक्खं उप्पादयति वधेन वा बन्धनेन वा जानिया वा गरहाय वा पब्बाजनाय वा बलवम्हि बलत्थो इति पि तदपि अकुसलं। इतिस्समे लोभजा लोभनिदाना लोभसमुदया लोभपच्चया अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति।

'फिर क्या कारण है, ...आयुष्मानो! कि जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं हो पाता, तथा उत्पन्न द्वेष बढ़ नहीं पाता?'

'मैत्रीभावनायुक्त चेतोविमुक्ति ही इसका कारण है। इसकी भावना से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं हो पाता, तथा उत्पन्न द्वेष अतिशय रूप से बढ़ नहीं पाता। आयुष्मानो! यही कारण है... उत्पन्न द्वेष बढ़ नहीं पाता।

'फिर क्या कारण है... आयुष्मानो! कि जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं हो पाता तथा उत्पन्न मोह पूर्णत: नष्ट हो जाता है?

'धर्म का सूक्ष्मतया विचार करना (योनिश: मनस्कार) ही इसका कारण है। ऐसा करने से अनुत्पन्न मोह... उत्पन्न मोह अतिशय रूपेण बढ़ नहीं पाता।

'आयुष्मानो! यही हेतु है, यही प्रत्यय है कि अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं हो पाता तथा उत्पन्न मोह पूर्णत: नष्ट हो जाता है॥' '' ●

९. अकुशलमूलसूत्र : : त्रिविधि अकुशलमूल

''भिक्षुओ! ये तीन अकुशलमूल होते हैं। कौन से तीन? लोभ अकुशलमूल, द्वेष अकुशलमूल, एवं मोह अकुशलमूल।

''भिक्षुओ! जो लोभ है वही अकुशलमूल है। इस लोभ से अभिभूत पुद्गल अपने शरीर, मन एवं वचन से जो योजनाएँ बनाता है वह भी अकुशलमूल है। तथा वह लोभी लोभ से अभिभूत होकर दूसरे को हानि पहुँचाने की इच्छा से दूसरों को अकारण दु:ख देता है, वह फिर भले ही उसका वध हो या बन्धन हो या कोई अन्य हानि हो, उसकी निन्दा हो, उसको स्थान से निकालना

"यदपि, भिक्खवे, दोसो तदपि अकुसलमूलं; यदपि दुट्ठो अभिसङ्खरोति [N.187] कायेन वाचाय मनसा तदपि अकुसलं; यदपि दुट्ठो दोसेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो परस्स असता दुक्खं उप्पादयति वधेन वा बन्धनेन वा जानिया वा गरहाय वा पब्बाजनाय वा बलवम्हि बलत्थो इति पि तदपि अकुसलं। इतिस्समे दोसजा दोसनिदाना [R.202] दोससमुदया दोसपच्चया अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति।

"यदपि, भिक्खवे, मोहो तदपि अकुसलमूलं; यदपि मूळ्हो अभिसङ्खरोति कायेन वाचाय मनसा तदपि अकुसलं; यदपि मूळ्हो मोहेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो परस्स असता दुक्खं उप्पादयति वधेन वा बन्धनेन वा जानिया वा गरहाय वा पब्बाजनाय वा बलवम्हि बलत्थो इति पि तदपि अकुसलं। इतिस्समे मोहजा मोहनिदाना मोहसमुदया मोहपच्चया अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति। एवरूपो चायं, भिक्खवे, पुग्गलो वुच्चति अकालवादी ति पि, अभूतवादी ति पि, अनत्थवादी ति पि, अधम्मवादी ति पि, अविनयवादी ति पि।

"कस्मा चायं, भिक्खवे, एवरूपो पुग्गलो वुच्चति अकालवादी ति पि, [B.203] अभूतवादी ति पि, अनत्थवादी ति पि, अधम्मवादी ति पि, अविनयवादी ति पि? तथाहायं, भिक्खवे, पुग्गलो परस्स असता दुक्खं उप्पादयति वधेन वा बन्धनेन वा जानिया वा गरहाय वा पब्बाजनाय वा बलवम्हि बलत्थो इति पि। भूतेन खो पन वुच्चमानो अवजानाति, नों

हो, या बलप्रयोग हो—यह सब अकुशलमूल है। इस प्रकार ये इसके लोभ से जनित, लोभ के कारण, लोभ से उत्पन्न, लोभ के हेतु से विविध पापमय अकुशलधर्म उत्पन्न होते हैं।

"भिक्षुओ! जो द्वेष है वही अकुशलमूल है। इस द्वेष से अभिभूत पुद्गल अपने काय, मन एवं वचन से जो योजनाएँ बनाता है, वह सब अकुशलमूल हैं। तथा वह द्वेषी द्वेष से अभिभूत होकर, दूसरों को हानि पहुँचाने की दृष्टि से अकारण दुःख देता है, फिर भले ही वह (दुःख) उसका वध हो...पूर्ववत्... बलप्रयोग हो—यह सब अकुशलमूल है। इस प्रकार, ये इसके द्वेष से जनित, द्वेष के कारण, द्वेष से उत्पन्न, द्वेष के हेतु से विविध पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं।

"भिक्षुओ! जो मोह है वही अकुशलमूल है। इस मोह से अभिभूत पुद्गल अपने काय, मन एवं वचन से... अकुशलमूल हैं। वह मुग्ध पुरुष, मोह से अभिभूत होकर ...पूर्ववत्... बलप्रयोग हो—यह सब अकुशलमूल है। इस प्रकार, ये इसके मोह से जनित, मोह के कारण, मोह से उत्पन्न, मोहहेतु से विविध पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। ऐसा पुद्गल अकालवादी (असमय की बात करने वाला), अभूतवादी (असत्यभाषी=न हुई बात कहने वाला), अनर्थवादी (निरर्थक बात करनेवाला) तथा अधर्मवादी (धर्मविरुद्ध बात करनेवाला) एवं अविनयवादी (भिक्षु-जीवन के नियमों से विरुद्ध बात करनेवाला) कहलाता है।

"भिक्षुओ! क्यों ऐसा पुद्गलवादी अकालवादी ...पूर्ववत्... अविनयवादी कहलाता है? क्योंकि, भिक्षुओ! यह दूसरों को अकारण ही दुःख पहुँचाता है, फिर भले ही वह (दुःख) ...पूर्ववत्...। सत्य कहे जाने पर भी वह उसका तिरस्कार करता है, उसको स्वीकार नहीं करता;

पटिजानाति; अभूतेन वुच्चमानो न आतप्पं करोति, तस्स निब्बेठनाय इतिपेतं अतच्छं इतिपेतं अभूतं ति। तस्मा एवरूपो पुग्गलो वुच्चति अकालवादी ति पि, अभूतवादी ति पि, अनत्थवादी ति पि, अधम्मवादी ति पि, अविनयवादी ति पि।

"एवरूपो, भिक्खवे, पुग्गलो लोभजेहि पापकेहि अकुसलेहि धम्मेहि अभिभूतो परियादिन्नचित्तो दिट्ठे चेव धम्मे दुक्खं विहरति, सविघातं सउपायासं सपरिळाहं। कायस्स च भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा।

"दोसजेहि ...पे०... मोहजेहि पापकेहि अकुसलेहि धम्मेहि अभिभूतो परियादिन्न-चित्तो दिट्ठे चेव धम्मे दुक्खं विहरति, सविघातं सउपायासं सपरिळाहं। कायस्स च भेदा परं [N.188] मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा। सेय्यथापि, भिक्खवे, सालो वा धवो वा फन्दनो वा तीहि मालुवालताहि उद्धस्तो परियोनद्धो अनयं आपज्जति, ब्यसनं आपज्जति, अनयब्यसनं [R.203] आपज्जति; एवमेव खो, भिक्खवे, एवरूपो पुग्गलो लोभजेहि पापकेहि अकुसलेहि धम्मेहि अभिभूतो परियादिन्नचित्तो दिट्ठे चेव धम्मे दुक्खं विहरति, सविघातं सउपायासं सपरिळाहं। कायस्स च भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा।

"दोसजेहि ...पे०... मोहजेहि पापकेहि अकुसलेहि धम्मेहि अभिभूतो परियादिन्न-चित्तो दिट्ठे चेव धम्मे दुक्खं विहरति सविघातं सउपायासं सपरिळाहं। कायस्स च भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि अकुसलमूलानी ति॥" (क)

"तीणिमानि, भिक्खवे, कुसलमूलानि। कतमानि तीणि? अलोभो कुसलमूलं, अदोसो कुसलमूलं, अमोहो कुसलमूलं।

अथ च, असत्य कहे जाने पर भी, उसकी व्याख्या करते हुए 'यह भी असत्य है' 'अभूत' (न हुआ) कहता है। अतः ऐसा पुद्गल अकालवादी, अभूतवादी, ...पूर्ववत्... अविनयवादी कहलाता है।

"भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल **लोभजन्य** पापमय अकुशल धर्मों से अभिभूत होकर दूसरों को हानि पहुँचाने की दृष्टि से इस जन्म में दुःखमय विद्वेषमय, प्रायश्चित्तमय एवं तापदायक आचरण करता है। तथा इस देहपात के बाद उसकी दुर्गति होना निश्चित है।

"भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल **द्वेषजन्य** पापमय ...पूर्ववत्... **मोहजन्य** पापमय अकुशल धर्मों के वश में होकर ...पूर्ववत्... देहपात के बाद उसकी दुर्गति अवश्यम्भावी है। जैसे, भिक्षुओ! कोई साल, खैर या स्पन्दन (पीपल) वृक्ष तीन मालुवा लताओं से आवृत होकर, बँध कर सङ्कट में या विपत्ति में फँस जाता है, नष्ट होने की स्थिति में आ जाता है; इसी तरह, भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल भी लोभजन्य पापमय अकुशल धर्मों से अभिभूत होकर दूसरों को हानि पहुँचाने की दृष्टि से अपनी दुःखमय चर्या बिताता है। तथा मरणानन्तर भी उसकी दुर्गति होना निश्चित ही है। भिक्षुओ! इस तरह ये तीन **अकुशलमूल** हैं॥ (क)

"भिक्षुओ! ये तीन कुशलमूल हैं। कौन से तीन? **अलोभ** कुशलमूल, **अद्वेष** कुशलमूल एवं **अमोह** कुशलमूल।

"यदपि, भिक्खवे, अलोभो तदपि कुसलमूलं; यदपि अलुद्धो अभि-[B.204] सङ्खरोति कायेन वाचाय मनसा तदपि कुसलं; यदपि अलुद्धो लोभेन अनभिभूतो अपरिया-दिन्नचित्तो न परस्स असता दुक्खं उप्पादयति वधेन वा बन्धनेन वा जानिया वा गरहाय वा पब्बाजनाय वा बलवम्हि बलत्थो इति पि तदपि कुसलं। इतिस्समे अलोभजा अलोभनिदाना अलोभसमुदया अलोभपच्चया अनेके कुसला धम्मा सम्भवन्ति।"

"यदपि, भिक्खवे, अदोसो तदपि कुसलमूलं; यदपि अदुट्ठो अभिसङ्खरोति कायेन वाचाय मनसा तदपि कुसलं; यदपि अदुट्ठो दोसेन अनभिभूतो अपरियादिन्नचित्तो न परस्स असता दुक्खं उप्पादयति वधेन वा बन्धनेन वा जानिया वा गरहाय वा पब्बाजनाय वा बलवम्हि बलत्थो इति पि तदपि कुसलं। इतिस्समे अदोसजा अदोसनिदाना अदोससमुदया अदोसपच्चया अनेके कुसला धम्मा सम्भवन्ति।

"यदपि, भिक्खवे, अमोहो तदपि कुसलमूलं; यदपि अमूळ्हो अभिसङ्खरोति कायेन वाचाय मनसा तदपि कुसलं; यदपि अमूळ्हो मोहेन अनभिभूतो अपरियादिन्नचित्तो न परस्स असता दुक्खं उप्पादयति वधेन वा बन्धनेन वा जानिया वा गरहाय वा पब्बाजनाय वा बलवम्हि बलत्थो इति पि तदपि कुसलं। इतिस्समे अमोहजा अमोहनिदाना [R.204] अमोहसमुदया अमोहपच्चया अनेके कुसला धम्मा सम्भवन्ति। एवरूपो चायं, भिक्खवे, पुग्गलो वुच्चति कालवादी ति पि, भूतवादी ति पि, अत्थवादी ति पि, धम्मवादी ति [N.189] पि, विनयवादी ति पि।"

"कस्मा चायं, भिक्खवे, एवरूपो पुग्गलो वुच्चति कालवादी ति पि, भूतवादी ति पि, अत्थवादी ति पि, धम्मवादी ति पि, विनयवादी ति पि? तथाहायं, भिक्खवे, पुग्गलो न परस्स असता दुक्खं उप्पादयति वधेन वा बन्धनेन वा जानिया वा गरहाय वा पब्बाजनाय वा

"भिक्षुओ! यह **अलोभ** (लोभ का न होना) ही कुशलमूल है तथा ऐसा लोभरहित पुद्गल अपने काय वाक् एवं मन से जो भी योजना बनाता है वह भी कुशलमूल ही है। यह निर्लोभ पुरुष लोभ के वश में न होकर, दूसरे को हानि न पहुँचाने की दृष्टि से दूसरों को वध, बन्धन आदि द्वारा अकारण दुःख नहीं पहुँचाता। उसका वह कर्म भी कुशल ही है। इस प्रकार इसके ये अलोभजन्य, अलोभकारणभूत, अलोभ से उत्पन्न एवं अलोभापेक्ष अनेक कुशल धर्म उद्भूत होते रहते हैं।

"भिक्षुओ! यह जो **अद्वेष** (द्वेष का न होना) है यह भी कुशलमूल है। ऐसा द्वेषरहित पुरुष अपने काय वाक् चित्त से...पूर्ववत्... अनेक कुशल धर्म उद्भूत होते रहते हैं।

"भिक्षुओ! यह जो **अमोह** (मोह का अभाव) है यह भी कुशलमूल है। ऐसा निर्मोह पुरुष अपने काय वाक् चित्त से ...पूर्ववत्... अनेक कुशल धर्म प्रादुर्भूत होते रहते हैं। ऐसा पुद्गल, भिक्षुओ! कालवादी भी, भूतवादी भी, अर्थवादी भी, धर्मवादी भी एवं विनयवादी भी कहलाता है।

"क्यों, भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल कालवादी... विनयवादी भी कहलाता है? क्योंकि, भिक्षुओ!

बलवम्हि बलत्थो इति पि। भूतेन खो पन वुच्चमानो पटिजानाति नो अवजानाति; अभूतेन वुच्चमानो आतप्पं करोति तस्स निब्बेठनाय—'इति पेतं अतच्छं, इतिपेतं अभूतं' ति। [B.205] तस्मा एवरूपो पुग्गलो वुच्चति कालवादी ति पि, अत्थवादी ति पि, धम्मवादी ति पि, विनयवादी ति पि।

"एवरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स लोभजा पापका अकुसला धम्मा पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। दिट्ठेव धम्मे सुखं विहरति अविघातं अनुपायासं अपरिळाहं। दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायति।

"दोसजा ...पे०... परिनिब्बायति। मोहजा ...पे०... परिनिब्बायति। सेय्यथापि भिक्खवे, सालो वा धवो वा फन्दनो वा तीहि मालुवालताहि उद्धस्तो परियोनद्धो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य कुदालपिटकं आदाय। सो तं मालुवालतं मूले छिन्देय्य, मूले छेत्वा पलिखणेय्य, पलिखणित्वा मूलानि उद्धरेय्य, अन्तमसो उसीरनाळिमत्तानि पि। सो तं मालुवालतं खण्डाखण्डिकं छिन्देय्य, खण्डाखण्डिकं छेत्वा फालेय्य, फालेत्वा सकलिकं सकलिकं करेय्य, सकलिकं सकलिकं करित्वा वातातपे विसोसेय्य, वातातपे विसोसेत्वा अग्गिना डहेय्य, अग्गिना डहित्वा मसिं करेय्य, मसिं करित्वा महावाते वा ओफुणेय्य नदिया [R.205] वा सीघसोताय पवाहेय्य। एवमस्स ता, भिक्खवे, मालुवालता उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। एवमेव खो, भिक्खवे, एवरूपस्स

ऐसा पुद्गल दूसरों को हानि पहुँचाने की दृष्टि से दूसरे को अकारण दु:ख नहीं पहुँचाता, फिर भले ही उसका वध हो या बन्धन, हानि हो या निन्दा, प्रव्राजन हो या बलप्रयोग। सत्य बोलने वाले का वह सम्मान ही करता है, तिरस्कार नहीं; परन्तु असत्य बोलने वाले से बहस (वाद=निब्बेठन) करता है, और अन्त में निर्णय देता है कि तुम्हारा कथन असत्य है, मिथ्या है। अत: ऐसा पुरुष कालवादी... एवं धम्मवादी कहलाता है।

"भिक्षुओ! ऐसे आचारवान् पुरुष के (पूर्ववत्) लोभजनित पापमय अकुशल धर्म मूलत: ऐसे प्रहीण हो जाते हैं कि पुन: कभी उनका उत्पाद सम्भव ही नहीं होता। वह इस जन्म में विद्वेष, पश्चात्ताप एवं ईर्ष्या से रहित सुखमय आचरण करता है। सम्भवत: वह इसी जन्म में परिनिर्वाण भी प्राप्त कर लेता है।

"भिक्षुओ! ऐसे आचरणवान् पुरुष के ...पूर्ववत्... द्वेष प्रहीण जाने से... पूर्ववत्... मोहजनित ...पूर्ववत्... परिनिर्वाण प्राप्त कर लेता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई साल, खैर या स्पन्दन वृक्ष तीन मालुवा लताओं से घिर गया हो; बँन्ध गया हो। वहाँ कोई पुरुष कुल्हाड़ी हाथ में लेकर आवे, आकर, उस लता को मूल से काट दे। उसकी जड़ को खोद डाले, खोद कर उसकी जड़ें निकाल दे। जड़ें निकाल कर उनको खण्ड खण्ड कर दे। खण्ड खण्ड कर फाड़ डाले। फाड़कर उनके भी टुकड़े कर दे। टुकड़े कर हवा या धूप में सुखा दे। सुखाकर उनको अग्नि से जला दे। जलाकर उसकी राख (भस्म) कर दे। उस राख को हवा में उड़ा दे या किसी वेगवती नदी में बहा दे। भिक्षुओ! इस तरह वह मालुवा लता कटी हुई, टुकड़े टुकड़े हुई, विनष्ट हुई पुन: उत्पन्न होने में

पुग्गलस्स लोभजा पापका अकुसला धम्मा पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। दिट्ठेव धम्मे सुखं विहरति अविघातं अनुपायासं अपरिळाहं। दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायति।

"दोसजा ...पे०... मोहजा पापका अकुसला धम्मा पहीना उच्छिन्नमूला [N.190] तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। दिट्ठेव धम्मे सुखं विहरति अविघातं अनुपायासं अपरिळाहं। दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि कुसलमूलानी"॥ (ख) ●

१०. उपोसथसुत्तं : एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [B.206] पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। अथ खो विसाखा मिगारमाता तदहुपोसथे येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो विसाखं मिगारमातरं भगवा एतदवोच—"हन्द कुतो नु त्वं, विसाखे, आगच्छसि दिवा दिवस्सा" ति?

"उपोसथाहं, भन्ते, अज्ज उपवसामी" ति।

"तयो खोमे, विसाखे, उपोसथा। कतमे तयो? गोपालकुपोसथो, निगण्ठुपोसथो, अरियुपोसथो। कथं च, विसाखे, गोपालकुपोसथो होति? सेय्यथापि, विसाखे, गोपालको सायन्हसमये सामिकानं गावो निय्यातेत्वा इति पटिसञ्चिक्खति—'अज्ज खो गावो अमुकस्मिं च अमुस्मिं च पदेसे चरिंसु, अमुकस्मिं च अमुकस्मिं च पदेसे पानीयानि पिविंसु;

असमर्थ हो जाती है। इसी तरह, भिक्षुओ! उस पुद्गल के लोभजन्य पापमय अकुशल धर्म प्रहीण होकर, जड़ से नष्ट होकर, अभाव को प्राप्त होकर भविष्य में कभी उत्पन्न होने में असमर्थ ही रहेंगे। तब वह पुद्गल भी विद्वेष पश्चात्ताप एवं परिदाहरहित सुखमय जीवन बितायेगा, तथा इसी जन्म में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेगा।

द्वेषजन्य... मोहजन्य पापमय अकुशल धर्म प्रहीण होकर... पूर्ववत्... इसी जन्म में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेगा॥ (ख) ●

१०. उपोसथसूत्र : : तीन उपोसथ

ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती स्थित पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में साधनाहेतु विराजमान थे। तब, विशाखा मृगारमाता उपोसथ के दिन भगवान् के दर्शनहेतु आयी। आकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गयी। बैठी हुई उस विशाखा को भगवान् ने पूछा—"विशाखे! इस दोपहर के समय कहाँ से आ रही हो?"

"भन्ते! आज उपोसथ व्रत के कारण मेरा उपवास है।"

"विशाखे! ये तीन उपोसथ होते हैं। कौन से तीन? (क) गोपालक-उपोसथ, (ख) निर्ग्रन्थ-उपोसथ, एवं (ग) आर्य उपोसथ। विशाखे! इनमें गोपालक उपोसथ कौन कहलाता है?

"विशाखे! जैसे कोई गोपालक सायङ्काल गौओं को स्वामी को सौंपते समय ऐसा विचार

स्वे दानि गावो अमुकस्मिं च अमुकस्मिं च पदेसे चरिस्सन्ति, अमुकस्मिं च अमुकस्मिं च पदेसे पानीयानि पिविस्सन्ती' ति; एवमेव खो, विसाखे, इधेकच्चो उपोसथिको इति [R.206] पटिसञ्चिक्खति—'अहं ख्वज्ज इदं चिदं च खादनीयं खादिं, इदं चिदं च भोजनीयं भुञ्जिं; स्वे दानाहं इदं चिदं च खादनीयं खादिस्सामि, इदं चिदं च भोजनीयं भुञ्जिस्सामी' ति। सो तेन अभिज्झासहगतेन चेतसा दिवसं अतिनामेति। एवं विसाखे, गोपालकुपोसथो होति। एव उपवुत्थो खो, विसाखे, गोपालकुपोसथो न महप्फलो होति न महानिसंसो न महाजुतिको न महाविप्फारो।

''कथं च, विसाखे, निगण्ठुपोसथो होति? अत्थि, विसाखे, निगण्ठा नाम समणजातिका। ते सावकं एवं समादपेन्ति—'एहि त्वं, अम्भो पुरिस, ये पुरत्थिमाय दिसाय पाणा परं योजनसतं तेसु दण्डं निक्खिपाहि; ये पच्छिमाय दिसाय पाणा परं योजनसतं तेसु दण्डं निक्खिपाहि; ये उत्तराय दिसाय पाणा परं योजनसतं तेसु दण्डं निक्खिपाहि; ये [N.191] दक्खिणाय दिसाय पाणा परं योजनसतं तेसु दण्डं निक्खिपाही' ति। इति एकच्चानं पाणानं अनुद्दयाय अनुकम्पाय समादपेन्ति, एकच्चानं पाणानं नानुद्दयाय नानुकम्पाय समादपेन्ति। ते तदहुपोसथे सावकं एवं समादपेन्ति—'एहि त्वं, अम्भो पुरिस, सब्बचेलानि [B.207] निक्खिपित्वा एवं वदेहि—नाहं क्वचनि कस्सचि किञ्चनतस्मिं, न च मम क्वचनि कत्थचि किञ्चनतत्थी' ति। जानन्ति खो पनस्स मातापितरो—'अयं अम्हाकं पुत्तो' ति; सो पि जानाति—'इमे मय्हं मातापितरो' ति। जानाति खो पनस्स पुत्तदारो—'अयं मय्हं भत्ता'

करता है—'आज इन गौओं ने इस इस प्रदेश में घास खाया, इस इस प्रदेश में जल पीया; कल इस इस प्रदेश में घास चरेंगी, जल पीयेंगी,'—इसी तरह, विशाखे! यहाँ कोई उपोसथकर्ता यह विचार करे—'आज मैंने यह यह भोजन किया, कल यह यह भोजन करूँगा।' वह इस लोभसहगत चित्त से अपना समस्त दिन बिता दे। विशाखे! यह कहलाता है—**गोपालक-उपोसथ**। विशाखे! इस प्रकार के इस गोपालक-उपोसथ का न कोई महान् फल होता है, न कोई विशेष माहात्म्य, न कोई इसका प्रभाव होता है, न कोई विस्तार। (१)

''और, विशाखे! यह **निर्ग्रन्थ-उपोसथ** क्या होता है? विशाखे! ये निर्ग्रन्थ एक प्रकार के श्रमण ही होते हैं। वे अपने किसी शिष्य को (१) यों प्रेरित (उपदेश) करते हैं—'अरे पुरुष! तुम पूर्वदिशा में सौ योजन तक... पश्चिम दिशा में सौ योजन तक... उत्तर दिशा में सौ योजन तक... दक्षिण दिशा में सौ योजन तक अपराध के दण्ड के रूप में किसी प्राणी पर हाथ न उठाना।' इस तरह की प्रेरणा (उपदेश) करते हुए कुछ प्राणियों पर (सौ योजन से बाहर वाले) प्राणियों पर दया का उपदेश नहीं करते। (२) फिर वे उपोसथ के दिन उस शिष्य को यों उपदेश करते हैं—'आओ, पुरुष! अपने शरीर के सब वस्त्र उतार कर फेंक दो, और कहो—मैं कहीं किसी का कुछ भी नहीं हूँ, न मेरा कहीं कोई कुछ भी है।' जबकि उसके माता पिता जानते हैं कि यह हमारा पुत्र है, और वह भी जानता है कि ये मेरे माता पिता हैं। इसी तरह उसकी पत्नी जानती है कि यह मेरा भर्ता

ति; सो पि जानाति—'अयं मय्हं पुत्तदारो' ति। जानन्ति खो पनस्स दासकम्मकरपोरिसा—'अयं अम्हाकं अय्यो' ति; सो पि जानाति—'इमे मय्हं दासकम्मकरपोरिसा' ति। इति यस्मिं समये सच्चे समादपेतब्बा मुसावादे तस्मिं समये समादपेन्ति। इदं तस्स मुसावादस्मिं वदामि। सो तस्सा रत्तिया अच्चयेन भोगे अदिन्नं येव परिभुञ्जति। इदं तस्स अदिन्नादानस्मिं वदामि। एवं खो, विसाखे, निगण्ठुपोसथो होति। एवं उपवुत्थो खो, विसाखे, निगण्ठुपोसथो न महप्फलो होति न महानिसंसो न महाजुतिको न महाविप्फारो।

"कथं च, विसाखे, अरियुपोसथो होति? उपक्किलिट्ठस्स, विसाखे, चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति। कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स [R.207] उपक्कमेन परियोदपना होति? इध, विसाखे, अरियसावको तथागतं अनुस्सरति—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। तस्स तथागतं अनुस्सरतो चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति। ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति, सेय्यथापि, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स सीसस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

"कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स सीसस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? कक्कं च पटिच्च मत्तिकं च पटिच्च उदकं च पटिच्च पुरिसस्स च तज्जं वायामं पटिच्च, एवं

(पति) है, तथा वह भी जानता है कि यह मेरी पत्नी है। इसके नौकर चाकर एवं कर्मचारी भी जानते हैं कि यह हमारा स्वामी है, तथा उनके विषय में यह भी जानता है कि यह मेरे नौकर चाकर एवं कर्मचारी हैं। इस प्रकार जब ऐसे पवित्र दिन में सत्य पर निष्ठा रखना सिखाना चाहिये, वे (निर्ग्रन्थ) अपने शिष्यों को असत्य पर, हिंसा पर प्रतिष्ठित करते हैं। यह तो उनका उपदेश असत्यपरक ही हुआ—ऐसा मैं मानता हूँ। फिर दूसरे दिन, उस रात्रि के व्यतीत होने पर, दाताओं द्वारा न दिया भोजन ग्रहण करता है। इसे मैं उसका 'अदत्तादान' (चौरी) ही मानता हूँ। इस तरह, विशाखे! यह ऐसा उपोसथ 'निर्ग्रन्थ उपोसथ' कहलाता है, जिसमें हिंसा, असत्य एवं चौरी—ये तीन बातें शिष्यों को सिखायी जाती हैं। अत: विशाखे! ऐसा उपोसथ न कोई महान् फलप्रद होता है, न इसका कोई विशेष माहात्म्य ही होता है। न कोई इसका प्रभाव होता है, न इससे किसी पुण्य फल का विस्तार ही होता है। (२)

"और विशाखे! यह **आर्य उपोसथ** क्या होता है? विशाखे! मलिन चित्त की किसी उपाय से शुद्धि की जाती है। कैसे, विशाखे! मलिन चित्त की किस उपाय से शुद्धि की जा सकती है? यहाँ, विशाखे! कोई आर्यश्रावक तथागत का अनुस्मरण करता है—'वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध... पूर्ववत्... बुद्ध भगवान् हैं।' उसके द्वारा तथागत का इस प्रकार अनुस्मरण करने से उसका चित्त तथागत के प्रति श्रद्धालु होने लगता है, तब उसके चित्त में प्रमोद (हर्ष) उत्पन्न होता है। इस प्रमोद के प्रभाव से उसके चित्त में वर्तमान उपक्लेश (मल) वैसे ही नष्ट होने लगते हैं जैसे, विशाखे! मलिन शिर का मैल किसी उपाय से नष्ट किया जाता है। (३)

"विशाखे! मैले शिर की शुद्धि (स्वच्छता) किस उपाय से होती है? **मलशोधक कल्क**

खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स सीसस्स उपक्कमेन परियोदपना होति। एवमेव खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।''

[N.192]''कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? इध, विसाखे, अरियसावको तथागतं अनुस्सरति—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो [B.208] विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। तस्स तथागतं अनुस्सरतो चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति। अयं वुच्चति, विसाखे—'अरियसावको ब्रह्मुपोसथं उपवसति, ब्रह्मुना सद्धिं संवसति, ब्रह्मं चस्स आरब्भ चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति'। एवं खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

''उपक्किलिट्ठस्स, विसाखे, चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति। कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? इध, विसाखे, अरियसावको धम्मं अनुस्सरति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। तस्स धम्मं अनुस्सरतो चित्तं [R.208] पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति, सेय्यथापि, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स कायस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।''

(शिर का मैल हटाने के लिये लेपविशेष) क्षार, मृत्तिका एवं जल तथा मनुष्यकृत उद्योग—इन चारों के सहारे से शिर का मैल हटाया जा सकता है; उसी प्रकार, विशाखे! मलिन चित्त भी किसी उपायविशेष से शुद्ध किया जा सकता है।

''कैसे विशाखे! उपाय से मलिनचित्त की शुद्धि होती है? यहाँ विशाखे! कोई आर्यश्रावक भगवान् बुद्ध (तथागत) का इस प्रकार अनुसरण करता है—'वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध विद्या एवं आचरण से सम्पन्न ...पूर्ववत्... बुद्ध भगवान् हैं। इस प्रकार तथागत का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रसन्न होता है। उस में प्रमोद उत्पन्न होता है। इस कारण, उसके चित्त के उपक्लेश प्रहीण हो जाते हैं। विशाखे! इस उपाय को करने वाले उस आर्यश्रावक के विषय में लोग कहने लगते हैं—'यह आर्यश्रावक ब्राह्म उपोसथ पूर्ण कर रहा है, ब्रह्म के साथ इसकी सङ्गति है, उसका चित्त ब्रह्म के प्रति श्रद्धालु है। इसी कारण इसका चित्त प्रमुदित रहता है, अतएव इनके चित्त के सभी उपक्लेश (मल) नष्ट होते जा रहे हैं।' इस तरह, विशाखे! उपक्लिष्ट (मलिन) चित्त की शुद्धि होती है। (१)

''विशाखे! उपक्लिष्ट चित्त की, एक अन्य उपाय से भी शुद्धि हो सकती है। विशाखे! वह कौन उपाय है जिससे चित्त की शुद्धि हो सकती है? विशाखे! यहाँ कोई आर्यश्रावक सद्धर्म का यों अनुस्मरण करता है—'भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म स्वाख्यात है, वह प्रत्यक्ष फलदायक है, उसकी साधना में समय-सीमा का कोई बन्धन नहीं है, उसके लिये ही 'आओ और साधना करके देखो'—यह कहा जाता है, वह धर्म निर्वाण तक पहुँचाने वाला है, तथा उसे प्रत्येक साधक साधना

"कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स कायस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? सोत्तिं च पटिच्च, चुण्णं च पटिच्च, उदकं च पटिच्च, पुरिसस्स च तज्जं वायामं पटिच्च। एवं खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स कायस्स उपक्कमेन परियोदपना होति। एवमेव खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

"कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? इध, विसाखे, अरियसावको धम्मं अनुस्सरति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। तस्स धम्मं अनुस्सरतो चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपिक्किलेसा ते पहीयन्ति। अयं वुच्चति, विसाखे, 'अरियसावको धम्मुपोसथं उपवसति, धम्मेन सद्धिं संवसति, धम्मं चस्स आरब्भ चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति'। एवं खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

"उपक्किलिट्ठस्स, विसाखे, चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना [N.193,B.209] होति। कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? इध,

---

द्वारा जान सकता है।' उस धर्म का यों अनुस्मरण करते हुए साधक का चित्त उस धर्म के प्रति श्रद्धालु होता है, इस श्रद्धा से उसका चित्त प्रमुदित होता है। इस प्रमोद के प्रभाव से इस चित्त के वे सभी उपक्लेश उसी तरह प्रहीण हो जाते हैं जैसे मैले काय के मल किसी विशेष उपाय से दूर हो जाते हैं।

"कैसे, विशाखे! मलिन काया का मल किसी उपाय से दूर हो जाता है? स्वस्ति (स्नान के साधन), स्नानीय चूर्ण एवं जल तथा तदर्थ पुरुष का प्रयास। इस प्रकार विशाखे! मलिन शरीर का मल दूर हो जाता है। इसी तरह, विशाखे! मलिन चित्त का मल भी किसी उपाय द्वारा नष्ट किया जा सकता है।

"कैसे, विशाखे! मलिन चित्त का मल किसी उपाय से दूर हो सकता है? यहाँ विशाखे! कोई आर्यश्रावक धर्म का यों अनुस्मरण करता है—'भगवदुपदिष्ट यह धर्म अकालिक, सान्दृष्टिक, ऐहिपश्यिक, औपनयिक एवं विज्ञजनों द्वारा प्रत्येकशः ज्ञातव्य है।' उस श्रावक द्वारा इस प्रकार धर्म का सतत अनुस्मरण करने पर उसका चित्त धर्म के प्रति श्रद्धालु होता है, तथा इस श्रद्धा से वह प्रमुदित होता है। इस प्रमोद से उसके चित्त के सभी उपक्लेश प्रहीण हो जाते हैं। विशाखे! ऐसा अनुस्मरण करने वाले साधक की प्रशंसा में साधारण जन यों कहने लगते हैं—'यह आर्यश्रावक धर्म-उपोसथ पूर्ण कर रहा है, धर्म के साथ इसकी सङ्गति है, इसका चित्त धर्म के प्रति श्रद्धालु है। इसी कारण इसका चित्त प्रमुदित रहता है। इस प्रमोद के प्रभाव से ही इसके चित्त के सभी उपक्लेश प्रहीण हो रहे हैं।' ऐसे विशाखे! उपक्लिष्ट चित्त की शुद्धि होती है। (२)

"विशाखे! उपक्लिष्ट चित्त की शुद्धि किसी अन्य उपाय से भी हो सकती है। कैसे, विशाखे! उपक्लिष्ट चित्त की शुद्धि किसी अन्य उपाय से हो सकती है? यहाँ, विशाखे! कोई आर्यश्रावक

विसाखे, अरियसावको सङ्घं अनुस्सरति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकङ्घो, ञायप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। तस्स सङ्घं अनुस्सरतो चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति, सेय्यथापि, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स वत्थस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

''कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स वत्थस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? उस्मं [R.209] च पटिच्च, खारं च पटिच्च गोमयं च पटिच्च, उदकं च पटिच्च, पुरिसस्स च तज्जं वायामं पटिच्च। एवं खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स वत्थस्स उपक्कमेन परियोदपना होति। एवमेव खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

''कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? इध, विसाखे, अरियसावको सङ्घं अनुस्सरति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो ...पे०...

सङ्घ का यों अनुस्मरण करता है—'भगवान् का यह श्रावकसङ्घ भली प्रकार से धर्म मार्गारूढ़ है, सरलता (सहजता) से धर्ममार्गारूढ़ है, यह श्रावकसङ्घ सुपथगामी है, उचित रीति से यह धर्ममार्गारूढ़ है'। इस सङ्घ में ये **चार पुरुष युगल** सम्मिलित माने जाते हैं—

१. (क) स्रोत आपत्ति मार्गारूढ़, (ख) स्रोत आपत्ति फलारूढ़;

२. (क) सकृदागामी मार्गारूढ़, (ख) सकृदागामी फलारूढ़;

३. (क) अनागामी मार्गारूढ़, (ख) अनागामी फलारूढ़; एवं

४. (क) अर्हत् मार्गारूढ़, (ख) अर्हत्फलारूढ़।

ये आठ पुरुष पुद्गल भी इसी सङ्घ के नाम से परिगणित होते हैं—

१. स्रोतआपन्न मार्गारूढ़, २. सकृदागामी मार्गारूढ़, ३. अनागामी मार्गारूढ़, ४. अर्हत्-मार्गारूढ़; ५. स्रोतआपन्नफलारूढ़, ६. सकृदापन्न फलारूढ़, ७. अनागामी फलारूढ़, एवं ८. अर्हत्फलारूढ़।

भगवान् का यह श्रावकसङ्घ आह्वानीय (बुलाकर सत्कार करने योग्य), प्राघुणेय (आतिथ्य करने योग्य) दाक्षिणेय (दान दक्षिणा के योग्य), अञ्जलिकरणीय (प्रणाम करने योग्य) एवं लोक में अनुपम पुण्य की भूमि (स्थान) है।' ऐसे इस सङ्घ का अनुस्मरण करने वाले साधक का चित्त (रत्नत्रय के प्रति) श्रद्धालु होता है, इस श्रद्धा से उसका चित्त प्रमुदित होता है। इस प्रमोद के प्रभाव से उस साधक के चित्त के सभी उपक्लेश उसी तरह प्रहीण हो जाते हैं, जैसे, विशाखे! मलिन वस्त्र के सभी मैल उपाय से नष्ट हो जाते हैं।

''कैसे, विशाखे! मलिन वस्त्र का मैल उपाय से नष्ट होता है? खारी मिट्टी, गोबर एवं जल तथा पुरुष का प्रयास—इस तरह, विशाखे! उस मलिन वस्त्र का मैल नष्ट होता है। इसी प्रकार, विशाखे! मलिन चित्त का मैल (विकार) भी उपाय द्वारा नष्ट होता है।

''कैसे विशाखे! मलिन चित्त का मल उपाय द्वारा नष्ट किया जाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई

अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। तस्स सङ्घं अनुस्सरतो चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति। अयं वुच्चति, विसाखे, 'अरियसावको सङ्घुपोसथं उपवसति, सङ्घेन सद्धिं संवसति, सङ्घं चस्स आरब्भ चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति'। एवं खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

''उपक्किलिट्ठस्स, विसाखे, चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति। कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? इध, विसाखे, अरिय-सावको अत्तनो सीलानि अनुस्सरति अखण्डानि अच्छिद्दानि असबलानि अकम्मासानि भुजिस्सानि विञ्ञुप्पसत्थानि अपरामट्ठानि समाधिसंवत्तनिकानि। तस्स सीलं [B.210] अनुस्सरतो चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति, सेय्यथापि, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स आदासस्स उपक्कमेन परियोदपना होति। [N.194]

''कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स आदासस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? तेलं च पटिच्च, छारिकं च पटिच्च, बालण्डुपकं च पटिच्च, पुरिसस्स च तज्जं वायामं पटिच्च। एवं खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स आदासस्स उपक्कमेन परियोदपना होति। एवमेव खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

''कथं, च विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? इध,

---

आर्यश्रावक सङ्घ का यों अनुस्मरण करता है—'भगवान् का यह श्रावकसङ्घ सम्यक्प्रकार से मार्गारूढ़ है... पूर्ववत्... यह लोक में अनुपम पुण्य क्षेत्र है।' उसके इस प्रकार सङ्घ का अनुस्मरण करने से चित्त (बुद्ध, धर्म एवं) सङ्घ के प्रति श्रद्धालु होता है, श्रद्धा से प्रमुदित होता है, तथा इस प्रमोद के प्रभाव से उसके चित्तविकार नष्ट होने लगते हैं। विशाखे! लोक में ऐसे उस आर्यश्रावक का यह यश:शब्द फैलने लगता है—'यह आर्यश्रावक सङ्घ-उपोसथ व्रत कर रहा है, सङ्घ के साथ इसकी सङ्गति हो चुकी है, सङ्घ के प्रति इस निष्ठा के कारण इसका चित्त उसके प्रति श्रद्धालु है। श्रद्धा के कारण उस का चित्त प्रमुदित होता है, तथा इस प्रमोद-प्रभाव से उसके चित्त से सम्बद्ध सभी विकार (मल) नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार, विशाखे, मलिन चित्त के समस्त मल इस उपक्रम से नष्ट हो जाते हैं।' (३)

''विशाखे! उपक्लिष्ट चित्त की उपाय से शुद्धि हो पाती है। कैसे, विशाखे! उपक्लिष्ट चित्त की शुद्धि हो पाती है? यहाँ, विशाखे! कोई आर्यश्रावक अखण्ड, अछिद्र, निष्कलङ्क, एकवर्ण वाले, स्वतन्त्र, विज्ञजनों द्वारा प्रशंसित अनिन्दित तथा साधना में सहायक अपने शीलों (सदाचारों) का अनुस्मरण करता है। इस प्रकार उसके द्वारा अपने सदाचारों का अनुस्मरण किये जाने पर उसका चित्त रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु हो जाता है। इस श्रद्धाबल से उसको प्रमोद होता है। तब इस प्रमोद के प्रभाव से उसके चित्त के सभी उपक्लेश प्रहीण होने लगते हैं। जैसे कोई मलिन दर्पण उपाय विशेष से शुद्ध (स्वच्छ) कर लिया जाता है।

''कैसे, विशाखे, मलिन दर्पण की शुद्धि होती है? तैल, क्षार मृत्तिका तथा बालों के गुच्छे

[R.210] विसाखे, अरियसावको अत्तनो सीलानि अनुस्सरति अखण्डानि ...पे०... समाधि-संवत्तनिकानि। तस्स सीलं अनुस्सरतो चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जन्ति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति। अयं वुच्चति, विसाखे, 'अरियसावको सीलुपोसथं उपवसति, सीलेन सद्धिं संवसति, सीलं चस्स आरब्भ चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति'। एवं खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

"उपक्किलिट्ठस्स, विसाखे, चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति। कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? इध विसाखे, अरियसावको देवता अनुस्सरति—'सन्ति देवा चातुमहाराजिका, सन्ति देवा तावतिंसा, सन्ति देवा यामा, सन्ति देवा तुसिता, सन्ति देवा निम्मानरतिनो, सन्ति देवा परिनिम्मित-वसवत्तिनो, सन्ति देवा ब्रह्मकायिका, सन्ति देवा ततुत्तरि। यथारूपाय सद्धाय समन्नागता ता देवता इतो चुता तत्थुपपन्ना, मय्हं पि तथारूपा सद्धा संविज्जति। यथारूपेन सीलेन समन्नागता ता देवता इतो चुता तत्थुपपन्ना, मय्हं पि तथारूपं सीलं संविज्जति। यथारूपेन सुतेन समन्नागता ता देवता इतो चुता तत्थुपपन्ना, मय्हं पि तथारूपं सुतं संविज्जति। यथारूपेन चागेन समन्नागता ता देवता इतो चुता तत्थुपपन्ना, मय्हं पि तथारूपो चागो [B.211] संविज्जति। यथारूपाय पञ्ञाय समन्नागता ता देवता इतो चुता तत्थुपपन्ना, मय्हं पि तथारूपा पञ्ञा संविज्जती' ति। तस्स अत्तनो च तासं च देवतानं सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरतो चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते [N.195] पहीयन्ति, सेय्यथापि, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स जातरूपस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

(ब्रश) और पुरुष के प्रयास से। ऐसे विशाखे! मलिन दर्पण की शुद्धि हो पाती है। इसी प्रकार, विशाखे! मलिन चित्त की शुद्धि भी उपाय से होती है।

"कैसे, विशाखे! मलिन चित्त की शुद्धि उपाय से होती है? यहाँ, विशाखे! कोई आर्यश्रावक अपने अखण्ड, अछिद्र... पूर्ववत्... साधना में सहायक सदाचारों का अनुस्मरण करता है... पूर्ववत्... उसके चित्त के सभी उपक्लेश प्रहीण हो जाते हैं। इस प्रकार विशाखे! मलिन चित्त की विशुद्धि होती है। (४)

"उपक्लिष्ट चित्त की उपाय से शुद्धि होती है। कैसे विशाखे! उपक्लिष्ट चित्त की शुद्धि होती है? यहीं, विशाखे! कोई आर्यश्रावक किसी देवता का अनुस्मरण करता है—'चातुर्महाराजिक देव हैं', 'त्रायस्त्रिंश देव हैं', 'ब्रह्मकायिक देव हैं', 'उनसे ऊपर भी देव हैं।' ये देवता जैसी श्रद्धा से यहाँ से च्युत होकर उन उन लोकों में उत्पन्न हुए हैं वही श्रद्धा मुझमें भी उत्पन्न हो। जैसे शील से... जैसे श्रुत (ज्ञान) से ...त्याग से ...जैसी प्रज्ञा से युक्त होकर यहाँ से च्युत होकर वहाँ उत्पन्न हुए हैं वही प्रज्ञा मुझमें भी उत्पन्न हो।' इस प्रकार उसके द्वारा अपना तथा देवताओं की श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग

"कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स जातरूपस्स उपक्कमेन परियोदपना होति? उक्कं च पटिच्च, लोणं च पटिच्च, गेरुकं च पटिच्च, नाळिकसण्डासं च पटिच्च, पुरिसस्स च तज्जं वायामं पटिच्च। एवं खो विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स जातरूपस्स उपक्कमेन परियोदपना होति। एवमेव खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति।

"कथं च, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना [R.211] होति? इध, विसाखे, अरियसावको देवता अनुस्सरति—'सन्ति देवा चातुमहाराजिका, सन्ति देवा तावतिंसा ...पे०... सन्ति देवा ततुत्तरि। यथारूपाय सद्धाय समन्नागता ता देवता इतो चुता तत्थुपपन्ना, मय्हं पि तथारूपा सद्धा संविज्जति। यथारूपेन सीलेन ... सुतेन ... चागेन ... पञ्ञाय संविज्जती' ति। तस्स अत्तनो च तासं च देवतानं सद्धं च सीलं च सुतं च चागं च पञ्ञं च अनुस्सरतो चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति। अयं वुच्चति, विसाखे, 'अरियसावको देवतुपोसथं उपवसति, देवताहि सद्धिं संवसति, देवता आरब्भ चित्तं पसीदति, पामोज्जं उप्पज्जति, ये चित्तस्स उपक्किलेसा ते पहीयन्ति'। एवं खो, विसाखे, उपक्किलिट्ठस्स चित्तस्स उपक्कमेन परियोदपना होति॥

"स खो सो, विसाखे, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'यावजीवं अरहन्तो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरता निहितदण्डा निहितसत्था लज्जी दयापन्ना, सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरन्ति; अहम्पज्ज इमं च रत्तिं इमं च दिवसं पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो निहितदण्डो निहितसत्थो लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूत- [B.212]

एवं प्रज्ञा का अनुस्मरण करने से उसका चित्त बुद्ध, धर्म, सङ्घ के प्रति श्रद्धालु होता है, उस श्रद्धा से उसमें प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमोद से उसके चित्तविकार नष्ट हो जाते हैं। जैसे कि, विशाखे! मैली चाँदी का मल (खोट) उपाय से विनष्ट हो जाता है।

"कैसे, विशाखे! मैली चाँदी का मल (कीट) उपाय से विनष्ट होता है? उल्का (भट्ठी), नमक, गेरु, नाली, सण्डसी एवं पुरुष का प्रयास। इन उपायों से मैली चान्दी का मैल विनष्ट होता है। इसी प्रकार, विशाखे! मलिन चित्त के विकार उपाय से विनष्ट हो जाया करते हैं।

"कैसे विशाखे! मलिन चित्त के विकार उपाय से नष्ट हो जाया करते हैं? यहाँ, विशाखे! कोई आर्यश्रावक देवताओं का अनुस्मरण करता है... पूर्ववत्... विकार नष्ट हो जाते हैं। तब लोग ऐसा कहते हैं—'यह आर्यश्रावक देवता-उपोसथ व्रत का पालन कर रहा है, यह देवताओं की सङ्गति कर रहा है। देवताओं के प्रति इसका चित्त श्रद्धालु है। इस श्रद्धा से यह प्रमुदित है। इस प्रमोद के प्रभाव से इसके चित्तविकार प्रहीण हो रहे हैं।' इस तरह, विशाखे! मलिन चित्त के विकार नष्ट हो जाते हैं। (५)

अष्टाङ्गिक उपोसथ : "विशाखे! यह आर्यश्रावक ऐसे चिन्तन करता है—'अर्हत् जन जीवनपर्यन्त प्राणातिपात छोड़कर, प्राणातिपात से दूर रहकर, दण्ड एवं शस्त्र का परित्याग कर, बड़ों के प्रति लज्जा भाव एवं दीनों के प्रति दयाभाव स्वीकार कर, सब प्राणियों के प्रति हित एवं

हितानुकम्पी विहरामि। इमिना पि अङ्गेन अरहतं अनुकरोमि, उपोसथो च मे उपवुत्थो भविस्सति।

'यावजीवं अरहन्तो अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरता दिन्नादायी [N.196] दिन्नपाटिकङ्खी, अथेनेन सुचिभूतेन अत्तना विहरन्ति; अहम्पज्ज इमं च रत्तिं इमं च दिवसं अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो दिन्नादायी दिन्नपाटिकङ्खी, अथेनेन सुचिभूतेन अत्तना विहरामि। इमिना पि अङ्गेन अरहतं अनुकरोमि, उपोसथो च मे उपवुत्थो भविस्सति।

'यावजीवं अरहन्तो अब्रह्मचरियं पहाय ब्रह्मचारी आराचारी विरता मेथुना गामधम्मा; अहम्पज्ज इमं च रत्तिं इमं च दिवसं अब्रह्मचरियं पहाय ब्रह्मचारी आराचारी विरतो मेथुना गामधम्मा। इमिना पि अङ्गेन अरहतं अनुकरोमि, उपोसथो च मे उपवुत्थो भविस्सति।

[R.212] 'यावजीवं अरहन्तो मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरता सच्चवादी सच्चसन्धा थेता पच्चयिका अविसंवादका लोकस्स; अहम्पज्ज इमं च रत्तिं इमं च दिवसं मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो सच्चवादी सच्चसन्धो थेतो पच्चयिको अविसंवादको लोकस्स। इमिना पि अङ्गेन अरहतं अनुकरोमि, उपोसथो च मे उपवुत्थो भविस्सति।

'यावजीवं अरहन्तो सुरामेरयमज्जपमादट्ठानं पहाय सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरता; अहम्पज्ज इमं च रत्तिं इमं च दिवसं सुरामेरयमज्जपमादट्ठानं पहाय सुरामेरय-मज्जपमादट्ठाना पटिविरतो। इमिना पि अङ्गेन अरहतं अनुकरोमि, उपोसथो च मे उपवुत्थो भविस्सति।

अनुकम्पा की भावना रखते हुए साधना करते हैं; मैं भी आज के दिन से, आज की रात्रि से इसी उपर्युक्त भावना के सहारे साधना में लगूँगा। इस पद्धति के स्वीकार करने पर मैं अर्हतों का अनुयायी भी कहलाऊँगा तथा मेरा उपोसथ व्रत भी पूर्ण हो जायगा। (१)

'अर्हत् जन जीवनपर्यन्त अदत्तादान का त्याग कर, अदत्तादान से दूर रहकर, दिये हुए का ही उपभोग एवं आकांक्षा करते हैं। इस तरह वे अपना पवित्र आचरण रखते हुए साधनारत रहते हैं; मैं भी आज के दिन से... पूर्ववत्... पूर्ण हो जायगा। (२)

'अर्हत् जन जीवनपर्यन्त अब्रह्मचर्य का त्याग कर, उससे दूर रहकर सर्वथा ब्रह्मचर्य एवं सदाचार का पालन करते हुए ग्रामधर्म मैथुन धर्म से विरत रहते हैं; मैं भी आज की रात्रि से आज के दिन से... पूर्ववत्... उपोसथ व्रत भी पूर्ण हो जायगा। (३)

'अर्हत् जन जीवनपर्यन्त मृषावाद (असत्यभाषण) का त्याग कर... सत्यवादी, विश्वसनीय एवं अजातशत्रु बनकर साधनारत रहते हैं; उसी तरह मैं भी आज की रात्रि से, आज के दिन से... पूर्ववत्... उपोसथ व्रत भी पूर्ण हो जायगा। (४)

'अर्हत् जन जीवनपर्यन्त सुरा, मैरेय, मद्य आदि प्रमादोत्पादक वस्तुओं का उपभोग त्याग

'यावजीवं अरहन्तो एकभत्तिका रत्तूपरता विरता विकालभोजना; अहम्पज्ज इमं च रत्तिं इमं च दिवसं एकभत्तिको रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना। इमिना पि अङ्गेन अरहतं अनुकरोमि, उपोसथो च मे उपवुत्थो भविस्सति।

'यावजीवं अरहन्तो नच्चगीतवादितविसूकदस्सनमालागन्धविलेपनधारणमण्डन-विभूसनट्ठाना पटिविरता; अहम्पज्ज इमं च रत्तिं इमं च दिवसं नच्चगीतवादितविसूकदस्सन-मालागन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना पटिविरतो। इमिना पि अङ्गेन अरहतं [B.213] अनुकरोमि, उपोसथो च मे उपवुत्थो भविस्सति।

'यावजीवं अरहन्तो उच्चासयनमहासयनं पहाय उच्चासयनमहासयना पटिविरता नीचसेय्यं कप्पेन्ति मञ्चके वा तिणसन्थारके वा; अहम्पज्ज इमं च रत्तिं इमं च दिवसं उच्चासयनमहासयनं पहाय उच्चासयनमहासयना पटिविरतो नीचसेय्यं कप्पेन्ति मञ्चके वा तिणसन्थारके वा। इमिना पि अङ्गेन अरहतं अनुकरोमि, उपोसथो च मे उपवुत्थो भविस्सती' ति।

''एवं खो, विसाखे, अरियुपोसथो होति। एवं उपवुत्थो खो, विसाखे, [N.197] अरियुपोसथो महप्फलो होति महानिसंसो महाजुतिको महाविप्फारो''।

''कीवमहप्फलो होति कीवमहानिसंसो कीवमहाजुतिको कीवमहाविप्फारो?

''सेय्यथापि, विसाखे, यो इमेसं सोळसन्नं महाजनपदानं पहूतरत्तरतनानं

कर, उनसे दूर रहकर साधना करते हैं; मैं भी आज इस रात्रि से... आज इस दिन से... पूर्ववत्... उपोसथ व्रत भी पूर्ण हो जायगा। (५)

'अर्हत् जन जीवनपर्यन्त एक समय भोजन करते हैं, रात्रि में नहीं करते तथा असमय में भोजन से विरत रहते हैं, मैं भी आज इस रात्रि से आज इस दिन से...पूर्ववत्... उपोसथ व्रत भी पूर्ण हो जायगा। (६)

'अर्हत् जन जीवनपर्यन्त नृत्य, गीत, वादित्र, नाटक आदि देखना, माला एवं गन्धविलेपन का धारण, शरीर का अलङ्करण एवं विभूषण आदि से दूर रहते हैं। मैं भी आज रात्रि से आज दिन से... पूर्ववत्... मेरा उपोसथ व्रत भी पूर्ण हो जायगा। (७)

'अर्हत् जन जीवनपर्यन्त उच्चशयन एवं महाशयन का त्याग कर इनसे दूर रहते हुए मञ्च या घास पर सोना ही व्यवहार में लाते हैं; मैं भी आज रात्रि से या आज दिन से ...पूर्ववत्... मेरा उपोसथ पूर्ण हो जायगा। (८)

''विशाखे! यह **आर्य उपोसथ** कहलाता है। इस प्रकार पूर्ण किया हुआ यह आर्य उपोसथ महान् फलदायी, अतिशय माहात्म्य वाला, महती शोभा वाला तथा अत्यधिक कीर्ति फैलाने वाला होता है।

उपोसथ का माहात्म्य : ''कैसे यह महान् फलदायी...पूर्ववत्... कैसे अतिशय कीर्ति फैलाने वाला होता है?

[R.213] इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेय्य, सेय्यथीदं—अङ्गानं, मगधानं, कासीनं, कोसलानं, वज्जीनं, मल्लानं, चेतीनं, वङ्गानं, कुरूनं, पञ्चालानं, मच्छानं, सूरसेनानं, अस्सकानं, अवन्तीनं, गन्धारानं, कम्बोजानं, अट्ठङ्गसमन्नागतस्स उपोसथस्स एतं कलं नाग्घति सोळसिं। तं किस्स हेतु? कपणं विसाखे, मानुसकं रज्जं दिब्बं सुखं उपनिधाय। यानि, विसाखे, मानुसकानि पञ्ञास वस्सानि, चातुमहाराजिकानं देवानं एसो एको रत्तिन्दिवो। ताय रत्तिया तिंसरत्तियो मासो। तेन मासेन द्वादसमासियो संवच्छरो। तेन संवच्छरेन दिब्बानि पञ्च वस्ससतानि चातुमहाराजिकानं देवानं आयुप्पमाणं। ठानं खो पनेतं, विसाखे, विज्जति यं इधेकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथं उपवसित्वा कायस्स भेदा परं मरणा चातुमहाराजिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्य। इदं खो पनेतं, विसाखे, सन्धाय भासितं—'कपणं मानुसकं रज्जं दिब्बं सुखं उपनिधाय'।

''यं, विसाखे, मानुसकं वस्ससतं, तावतिंसानं देवानं एसो एको रत्तिन्दिवो। [B.214] ताय रत्तिया तिंसरत्तियो मासो। तेन मासेन द्वादसमासियो संवच्छरो। तेन संवच्छरेन दिब्बं वस्ससहस्सं तावतिंसानं देवानं आयुप्पमाणं। ठानं खो पनेतं, विसाखे, विज्जति यं इधेकच्चो इत्थी वा पुरिसा वा अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथं उपवसित्वा कायस्स भेदा परं मरणा तावतिंसानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्य। इदं खो पनेतं, विसाखे, सन्धाय भासितं—'कपणं मानुसकं रज्जं दिब्बं सुखं उपनिधाय'।

''विशाखे! जैसे कोई प्रभूत महार्घ रत्नों से युक्त इन सोलह जनपदों का राज्य-(ऐश्वर्याधिपत्य-)शासन प्राप्त कर ले; जैसे—अङ्ग, मगध, काशी, कोसल, वज्जी,, मल्ल, चेदि, वङ्ग, कुरु, पञ्चाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वक, अवन्ति, गन्धार, कम्बोज। इन सब राज्यों का ऐश्वर्यसुख मिलकर भी इस उपोसथ के माहात्म्य की एक कला के तुल्य नहीं है। वह किस कारण? विशाखे! इस (उपोसथ के) दिव्य सुख के सामने यह मनुष्यों का राज्याधिपत्य तुच्छ (कृपण) ही है। क्योंकि, विशाखे! मनुष्यों के पचास वर्ष चातुमंहाराजिक देवों के एक दिन-रात के समान होते हैं। उस रात्रि के मान से तीस रात्रि का एक मास होता है। उस मास से बारह मास का एक वर्ष होता है। उस वर्ष की गणना से पाँच सौ दिव्य वर्ष इन चातुर्महाराजिक देवों का आयु:प्रमाण होता है। विशाखे! यह सम्भव हो सकता है कि यहाँ कोई स्त्री या पुरुष अष्टाङ्ग उपोसथ व्रत पालन करता हुआ, इस देहपात के बाद, मरणानन्तर चातुर्महाराजिक देवों की मैत्री पा जाय। तथा वह वहीं जन्म ले। इस अभिप्राय से कहा गया है—'दिव्य सुख के सामने यह मनुष्यों का राज्याधिपत्य तुच्छ ही है।' (क)

''फिर, विशाखे! जो मनुष्यों की सौ वर्ष की गणना है, त्रायस्त्रिंश देवों का इस सौ वर्ष के बराबर एक दिन-रात होता है। वैसी तीस रात्रि मिलकर एक मास, वैसे बारह मासों को मिलाकर उनका एक वर्ष होता है। ऐसे दिव्य सहस्र वर्ष उन त्रायस्त्रिंश देवों का आयु:प्रमाण होता है। विशाखे! यह सम्भव है कि कोई स्त्री या पुरुष अष्टाङ्ग उपोसथ व्रत का पालन करता हुआ... त्रायस्त्रिंश देवों की मित्रता प्राप्त कर ले...। इसी अभिप्राय से कहा गया है—'दिव्य सुख के सामने यह मानव राज्यसुख तुच्छ ही है।'

''यानि, विसाखे, मानुसकानि द्वे वस्ससतानि, यामानं देवानं एसो एको रत्तिन्दिवो। ताय रत्तिया तिंसरत्तियो मासो। तेन मासेन द्वादसमासियो संवच्छरो। तेन संवच्छरेन दिब्बानि द्वे वस्ससहस्सानि यामानं देवानं आयुप्पमाणं। ठानं खो पनेतं, विसाखे, विज्जति यं इधेकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथं उपवसित्वा कायस्स भेदा परं मरणा [N.198] यामानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्य। इदं खो पनेतं, विसाखे, सन्धाय भासितं—'कपणं मानुसकं रज्जं दिब्बं सुखं उपनिधाय'। [R.214]

''यानि, विसाखे, मानुसकानि चत्तारि वस्ससतानि, तुसितानं देवानं एसो एको रत्तिन्दिवो। ताय रत्तिया तिंसरत्तियो मासो। तेन मासेन द्वादसमासियो संवच्छरो। तेन संवच्छरेन दिब्बानि चत्तारि वस्ससहस्सानि तुसितानं देवानं आयुप्पमाणं। ठानं खो पनेतं, विसाखे, विज्जति यं इधेकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथं उपवसित्वा कायस्स भेदा परं मरणा तुसितानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्य। इदं खो पनेतं, विसाखे, सन्धाय भासितं—'कपणं मानुसकं रज्जं दिब्बं सुखं उपनिधाय'।

''यानि, विसाखे, मानुसकानि अट्ठ वस्ससतानि, निम्मानरतीनं देवानं एसो एको रत्तिन्दिवो। ताय रत्तिया तिंसरत्तियो मासो। तेन मासेन द्वादसमासियो संवच्छरो। तेन संवच्छरेन दिब्बानि अट्ठ वस्ससहस्सानि निम्मानरतीनं देवानं आयुप्पमाणं। ठानं खो पनेतं, विसाखे, विज्जति यं इधेकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथं उपवसित्वा कायस्स भेदा परं मरणा निम्मानरतीनं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्य। इदं खो पनेतं, [B.215] विसाखे, सन्धाय भासितं—'कपणं मानुसकं रज्जं दिब्बं सुखं उपनिधाय'।

''यानि, विसाखे, मानुसकानि सोळस वस्ससतानि, परनिम्मितवसवत्तीनं देवानं एसो एको रत्तिन्दिवो। ताय रत्तिया तिंसरत्तियो मासो। तेन मासेन द्वादसमासियो संवच्छरो। तेन संवच्छरेन दिब्बानि सोळस वस्ससहस्सानि परनिम्मितवसवत्तीनं देवानं आयुप्पमाणं। ठानं खो पनेतं, विसाखे, विज्जति यं इधेकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा अट्ठङ्गसमन्नागतं

''फिर, विशाखे! मनुष्यों के दो सौ वर्ष याम देवों के एक रात दिन के बराबर होते हैं। ऐसी तीस रात्रि मिलाकर एक मास... पूर्ववत्... याम देवों की मित्रता प्राप्त कर ले...। इसी अभिप्राय से विशाखे!... मानव राज्यसुख तुच्छ है।

''फिर, विशाखे! मनुष्यों के चार सौ वर्षों के बराबर तुषित देवों का एक रात-दिन होता है। उस रात्रि से तीस रात्रि का एक मास... पूर्ववत्... तुषित देवों की मैत्री प्राप्त कर ले...। इसी अभिप्राय से कहा गया है, विशाखे!... मानव राज्यसुख तुच्छ है।

''फिर, विशाखे! मनुष्यों के आठ सौ वर्षों के बराबर निर्माणरति देवों का एक रात-दिन होता है। उस रात्रि से तीस रात्रि का एक मास... पूर्ववत्... निर्माणरति देवों की मित्रता प्राप्त कर ले...। इसी अभिप्राय से विशाखे!... मानव राज्यसुख तुच्छ है।

''फिर, विशाखे! मनुष्यों के सोलह सौ वर्षों के बराबर परनिर्मितवशवर्ती देवों का एक रात-

उपोसथं उपवसित्वा कायस्स भेदा परं मरणा परनिम्मितवसवत्तीनं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्य। इदं खो पनेतं, विसाखे, सन्धाय भासितं—'कपणं मानुसकं रज्जं दिब्बं सुखं उपनिधाया' ति।

''पाणं न हञ्ञे न चदिन्नमादिये, मुसा न भासे न च मज्जपो सिया।
[R.215] अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय्य विकालभोजनं॥
[N.199]''मालं न धारे न च गन्धमाचरे, मञ्चे छमायं व सयेथ सन्थते।
एतं हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं, बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं॥
''चन्दो च सुरियो च उभो सुदस्सना, ओभासयं अनुपरियन्ति यावता।
तमोनुदा ते पन अन्तलिक्खगा, नभे पभासन्ति दिसाविरोचना॥
''एतस्मिं यं विज्जति अन्तरे धनं, मुत्ता मणि वेळुरियं च भद्दकं।
सिङ्गी सुवण्णं अथ वा पि कञ्चनं, यं जातरूपं हटकं ति वुच्चति॥
[B.216] ''अट्ठङ्गुपेतस्स उपोसथस्स, कलं पि ते नानुभवन्ति सोळसिं।
चन्दप्पभा तारगणा च सब्बे॥
''तस्मा हि नारी च नरो च सीलवा, अट्ठङ्गुपेतं उपवस्सुपोसथं।
पुञ्ञानि कत्वान सुखुद्रयानि, अनिन्दिता सग्गमुपेन्ति ठानं'' ति॥

महावग्गो सत्तमो॥ ●

दिन होता है। उस रात्रि से तीस रात्रि का एक मास... पूर्ववत्... परनिर्मितवशवर्ती देवों की मित्रता प्राप्त हो जाय...। इसी अभिप्राय से... मानव राज्यसुख तुच्छ है।

१. ''(किसी का) प्राणघात नहीं करना चाहिये। २. (किसी की) चौरी नहीं करनी चाहिये। ३. असत्य नहीं बोलना चाहिये। ४. मद्यपान नहीं करना चाहिये। ५. मैथुनधर्मरूप अब्रह्मचर्य (परदारगमन) से विरत रहना चाहिये। ६. विकाल भोजन एवं रात्रि भोजन नहीं करना चाहिये। ७. माला, गन्धविलेपन आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिये। तथा ८. बिछी हुई शय्या आदि का उपयोग न कर भूमिपर या घास के बिछौने पर ही सोना चाहिये। यह आठ अङ्गों वाला उपोसथ व्रत दु:खनिरोध का मार्ग जानने वाले भगवान् बुद्ध ने बताया है॥

चन्द्रमा और सूर्य—दोनों ही अच्छे प्रकाश द्वारा मार्गदर्शक हैं। वे अन्तरिक्षचारी स्वयं द्योतित होते हुए जहाँ तक अपना प्रकाश फैलाते हैं वहाँ तक के क्षेत्र का अन्धकार विनष्ट हो जाता है। तथा ये दोनों आकाश में रहकर सभी दिशाओं में अपना प्रकाश फैलाते रहते हैं॥

''इन चन्द्र-सूर्य द्वारा प्रकाशित क्षेत्र में दिखायी देने वाला जितना भी धन है, अच्छे अच्छे मुक्ता, मणि एवं वैदूर्य, उत्तम या साधारण सुवर्ण या चाँदी इत्यादि अन्य धातुएँ दिखायी देती हैं॥

''वे सब (मिलकर भी) इस (उपर्युक्त) अष्ट अङ्ग वाले उपोसथ के सोलहवें अंश (कला) की समानता करने में समर्थ नहीं हैं। भले ही यह चन्द्रप्रभा हो या सभी तारागण हों॥

''अत: आचारवान् नर या नारी को अष्टाङ्गिक उपोसथ व्रत का पालन अवश्य करना

तत्सुद्दानं

तित्थभयं च वेनागो, सरभो केसमुत्तिया।
साळ्हो चा पि कथावत्थु, तित्थियमूलुपोसथो ति॥ ●

८. आनन्दवग्गो

१. छन्नसुत्तं : एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो छन्नो परिब्बाजको येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा [N.200] एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो छन्नो परिब्बाजको आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच— "तुम्हे पि, आवुसो आनन्द, रागस्स पहानं पञ्ञापेथ, दोसस्स पहानं पञ्ञापेथ, मोहस्स पहानं पञ्ञापेथा ति। मयं खो, आयुसो, रागस्स पहानं पञ्ञापेम, दोसस्स पहानं [R.216] पञ्ञापेम, मोहस्स पहानं पञ्ञापेमा ति। किं पन तुम्हे, आवुसो, रागे आदीनवं दिस्वा रागस्स पहानं पञ्ञापेथ, किं दोसे आदीनवं दिस्वा दोसस्स पहानं पञ्ञापेथ, किं मोहे आदीनवं दिस्वा मोहस्स पहानं पञ्ञापेथा" ति?

"रत्तो खो, आवुसो, रागेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तब्याबाधाय पि [B.217] चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेतेति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं

चाहिये। ऐसे व्रतधारी ही सुखवर्धक पुण्यकर्म करते हुए इस लोक में यशस्वी जीवन व्यतीत करते हुए मरणानन्तर स्वर्ग में स्थान पाते हैं॥ **महावर्ग सप्तम सम्पन्न॥** ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. तीर्थायतन सूत्र, २. भय सूत्र, ३. वेनागपुर सूत्र, ४. सरभ सूत्र, ५. केशमुक्ति सूत्र, ६. साढ सूत्र, ७. कथावस्तु सूत्र, ८. अन्यतीर्थिक सूत्र, ९. अकुशलमूल सूत्र एवं १०. उपोसथ सूत्र॥ ●

८. आनन्दवर्ग

१. छन्नसूत्र : : उपदेश में भेद

एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब छन्न नामक परिव्राजक आयुष्मान् आनन्द के पास आया। वह कुशल मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने आयुष्मान् आनन्द से यह पूछा— "आयुष्मन् आनन्द! आप लोग भी राग, द्वेष, मोह के नाश का उपदेश करते हो; हम भी इनके प्रहाण का उपदेश करते हैं। आप लोग इन राग द्वेष एवं मोह में क्या दोष देखकर इनके नाश का उपदेश करते हो?"

(क) "रागवान् पुरुष राग (आसक्ति) से अभिभूत होकर दूसरे का धन आत्मसात् करने की

पटिसंवेदेति; रागे पहीने नेवत्तब्याबाधाय पि चेतेति, न परब्याबाधाय पि चेतेति, न उभयब्याबाधाय पि चेतेति, न चेतसिकं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। रत्तो खो, आवुसो, रागेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति; रागे पहीने नेव कायेन दुच्चरितं चरति, न वाचाय दुच्चरितं चरति, न मनसा दुच्चरितं चरति। रत्तो खो, आवुसो, रागेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति, परत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति, उभयत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति; रागे पहीने अत्तत्थं पि यथाभूतं पजानाति, परत्थं पि यथाभूतं पजानाति, उभयत्थं पि यथाभूतं पजानाति। रागो खो, आवुसो अन्धकरणो अचक्खुकरणो अञ्ञाणकरणो पञ्ञानिरोधको विघात-पक्खिको अनिब्बानसंवत्तनिको।

"दुट्ठो खो, आवुसो, दोसेन ...पे०... मूळ्हो खो, आवुसो, मोहेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेतेति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति; मोहे पहीने नेवत्तब्याबाधाय पि चेतेति, न परब्याबाधाय पि चेतेति, न उभयब्याबाधाय पि चेतेति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। मूळ्हो खो, आवुसो, मोहेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति; मोहे पहीने नेव कायेन दुच्चरितं चरति, न वाचाय दुच्चरितं चरति, न मनसा दुच्चरितं चरति। मूळ्हो खो, आवुसो, मोहेन अभिभूतो [N.201] परियादिन्नचित्तो अत्तत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति, परत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति, [R.217] उभयत्थं पि यथाभूतं नप्पजानाति; मोहे पहीने अत्तत्थं पि यथाभूतं पजानाति, परत्थं पि यथाभूतं पजानाति, उभयत्थं पि यथाभूतं पजानाति। मोहो खो, आवुसो, अन्धकरणो अचक्खुकरणो अञ्ञाणकरणो पञ्ञानिरोधको विघातपक्खिको अनिब्बानसंवत्तनिको। इदं

दृष्टि से अपने को ...दूसरे को... या दोनों को हानि पहुँचाने की सोचता है तथा इस कारण स्वयं मानसिक दुःख अनुभव करता है। राग के प्रहीण होने पर न वह अपने को... न दूसरे को... न दोनों को हानि पहुँचाने की सोचता है, न इस कारण स्वयं मानसिक दुःख ही अनुभव करता है। (ख) रागवान् पुरुष ...पूर्ववत्... काया से... वाणी से... मन से दुराचार करता है। राग के प्रहीण होने पर न वह काया से... न वाणी से... न मन से दुराचार करता है। (ग) रागवान् पुरुष... न अपने लिये यथोचित सोच पाता है, न दूसरे के लिये, न आत्म एवं पर—दोनों के लिये यथोचित सोच पाता है। हाँ, राग प्रहीण होने पर अपने लिये भी, दूसरे के लिये भी तथा दोनों के लिये भी यथोचित सोच पाता है। आयुष्मन्! यह राग मनुष्य को अन्धा बना देता है, न देखने वाला बना देता है, अज्ञानी बना देता है, प्रज्ञा पर आवरण डाल देता है। यह रागी पुरुष विनाश की ओर बढ़ने लगता है, तथा इसकी निर्वाण की ओर प्रगति रुक जाती है। (१)

"द्वेषवान् पुरुष... पूर्ववत्... इसकी निर्वाण की ओर प्रगति रुक जाती है। (२)

"मोहवान् पुरुष ...पूर्ववत्... इसकी निर्वाण की ओर प्रगति रुक जाती है। (३)

खो मयं, आवुसो, रागे आदीनवं दिस्वा रागस्स पहानं पञ्ञापेम। इदं दोसे आदीनवं [B.218] दिस्वा दोसस्स पहानं पञ्ञापेम। इदं मोहे आदीनवं दिस्वा मोहस्स पहानं पञ्ञापेमा'' ति।

''अत्थि पनावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स पहानाया'' ति?

''अत्थावुसो, मग्गो अत्थि पटिपदा एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स पहानाया'' ति।

''कतमो पनावुसो मग्गो कतमा पटिपदा एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स पहानाया'' ति?

''अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि ...पे०... सम्मासमाधि। अयं खो, आवुसो, मग्गो अयं पटिपदा एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स पहानाया'' ति।

''भद्दको खो, आवुसो, मग्गो भद्दिका पटिपदा एतस्स रागस्स दोसस्स मोहस्स पहानाय। अलं च पनावुसो आनन्द, अप्पमादाया'' ति॥ ●

२. आजीवकसुत्तं : एकं समयं आयस्मा आनन्दो कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। अथ खो अञ्ञतरो आजीवकसावको गहपति येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो आजीवकसावको गहपति आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—

आयुष्मन्! हम राग में यह दोष देखकर, द्वेष में यह दोष देखकर, मोह में यह दोष देखकर उनके प्रहाण हेतु उपदेश करते हैं।''

''आयुष्मन्! ऐसा कोई मार्ग या पद्धति है जिसका अनुसरण करने से इस राग, द्वेष एवं मोह का नाश हो सके?''

''हाँ, आयुष्मन्! ऐसा मार्ग... भी है जिससे इस राग... का नाश हो सके।''

''आयुष्मन्! वह कौन सा मार्ग... है जिससे इस राग... का नाश हो सके?''

''आयुष्मन्! यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है; जैसे—सम्यग्दृष्टि ...पूर्ववत्... सम्यक्समाधि। आयुष्मन्! यह है वह मार्ग या पद्धति जिसका अनुसरण करने से राग, द्वेष एवं मोह का समूल नाश हो सकता है।''

''आयुष्मन्! यह मार्ग या पद्धति तो बहुत मङ्गलमय है; जिसका अनुसरण करने से राग, द्वेष एवं मोह का समूल नाश हो सकता है। अथ च, आयुष्मन् आनन्द! यह मार्ग मनुष्य को अप्रमाद की ओर बढ़ाने में भी पूर्णतः समर्थ है॥'' ●

२. आजीवकसूत्र : : उपदेश में भेद

एक समय आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब, आजीवकों (नग्न साधुओं) का शिष्य कोई गृहपति आयुष्मान् आनन्द के पास आया और उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। और उसने आयुष्मान् आनन्द से यह जिज्ञासा प्रकट की—

"केसं नो, भन्ते आनन्द, धम्मो स्वाक्खातो? के लोके सुप्पटिपन्ना? के लोके सुकता" ति?

"तेन हि, गहपति, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि, यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, गहपति ये रागस्स पहानाय धम्मं देसेन्ति दोसस्स पहानाय धम्मं देसेन्ति मोहस्स पहानाय धम्मं देसेन्ति, तेसं धम्मो स्वाक्खातो नो वा? कथं वा ते एत्थ होती" ति?

[N.202, R.218] "ये, भन्ते, रागस्स पहानाय धम्मं देसेन्ति दोसस्स पहानाय धम्मं देसेन्ति मोहस्स पहानाय धम्मं देसेन्ति, तेसं धम्मो स्वाक्खातो। एवं मे एत्थ होती" ति।

"तं किं मञ्ञसि, गहपति, ये रागस्स पहानाय पटिपन्ना दोसस्स पहानाय [B.219] पटिपन्ना मोहस्स पहानाय पटिपन्ना, ते लोके सुप्पटिपन्ना नो वा? कथं वा ते एत्थ होती" ति?

"ये, भन्ते, रागस्स पहानाय पटिपन्ना दोसस्स पहानाय पटिपन्ना मोहस्स पहानाय पटिपन्ना, ते लोके सुप्पटिपन्ना। एवं मे एत्थ होती" ति।

"तं किं मञ्ञसि, गहपति, येसं रागो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो, येसं दोसो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो, येसं मोहो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो, ते लोके सुकता नो वा? कथं वा ते एत्थ होती" ति?

"येसं, भन्ते, रागो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं

"भन्ते आनन्द! किन शास्ताओं द्वारा उपदिष्ट धर्म स्वाख्यात है? कौन भली भाँति धर्ममार्गारूढ हैं? तथा कौन सत्कर्म कर्ता हैं?"

"आयुष्मान् आनन्द ने कहा—"गृहपति! यहाँ मैं तुमसे ही पूछता हूँ; तुमको जो उचित लगे उत्तर दो। तो क्या मानते हो, गृहपति! जो रागप्रहाण का... द्वेषप्रहाण का.. मोहप्रहाण का धर्मोपदेश करते हैं उनका यह धर्मोपदेश स्वाख्यात नहीं है?"

"मैं समझता हूँ भन्ते! कि जो यहाँ राग, द्वेष एवं मोह के प्रहाण हेतु धर्मोपदेश करते हैं, वही 'स्वाख्यात' कहा जा सकता है।"

"तो क्या मानते हो, गृहपति! जो राग, द्वेष एवं मोह के प्रहाण हेतु मार्गारूढ हैं वे वस्तुतः मार्गारूढ हैं या नहीं? तुम्हें इस विषय में कैसा लगता है?"

"भन्ते! मुझको तो ऐसा ही लगता है कि जो साधक राग, द्वेष एवं मोह के प्रहाणहेतु धर्ममार्गारूढ हैं वे ही 'वास्तविक मार्गारूढ' कहलाने योग्य हैं।"

"तो क्या मानते हो, गृहपति! जिनका राग, द्वेष एवं मोह समूल नष्ट हो चुका है अभाव प्राप्त हो चुका है, पुनः (भविष्य में) उत्पन्न होने की स्थिति में नहीं है, क्या वे इस लोक में शुभ कर्म-कर्ता नहीं माने जा सकते! तुमको इस विषय में क्या समझ में आता है?"

अनुप्पादधम्मो, येसं दोसो पहीनो ...पे०... येसं मोहो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो, ते लोके सुकता। एवं मे एत्थ होती'' ति।

''इति खो, गहपति तयावेतं ब्याकतं—'ये भन्ते, रागस्स पहानाय धम्मं देसेन्ति दोसस्स पहानाय धम्मं देसेन्ति मोहस्स पहानाय धम्मं देसेन्ति, तेसं धम्मो स्वाक्खातो' ति। तयावेतं ब्याकतं—'ये, भन्ते, रागस्स पहानाय पटिपन्ना दोसस्स पहानाय पटिपन्ना मोहस्स पहानाय पटिपन्ना, ते लोके सुप्पटिपन्ना' ति। तयावेतं ब्याकतं—'येसं, भन्ते, रागो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो, येसं दोसो पहीनो ...पे०... येसं मोहो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पाद-धम्मो, ते लोके सुकता' '' ति।

''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! न चेव नाम सधम्मुक्कंसना भविस्सति, न च परधम्मापसादना। आयतनेव धम्मदेसना, अत्थो च वुत्तो, अत्ता च अनुपनीतो। तुम्हे, भन्ते आनन्द, रागस्स पहानाय धम्मं देसेथ, दोसस्स ...पे०... मोहस्स पहनाय धम्मं [R.219] देसेथ। तुम्हाकं, भन्ते आनन्द, धम्मो स्वाक्खातो। तुम्हे, भन्ते आनन्द, [N.203, B.220] रागस्स पहानाय पटिपन्ना, दोसस्स ...पे०... मोहस्स पहानाय पटिपन्ना। तुम्हे, भन्ते, लोके सुप्पटिपन्ना। तुम्हाकं, भन्ते आनन्द, रागो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो, तुम्हाकं दोसो पहीनो ...पे०... तुम्हाकं मोहो पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। तुम्हे लोके सुकता।

''भन्ते! जिनके राग, द्वेष एवं मोह समूल प्रहीण हो चुके हैं, अभाव प्राप्त हो चुके हैं, तथा पुनः (भविष्य में) उत्पन्न होने की स्थिति में नहीं हैं, ऐसे साधक ही इस लोक में सत्कर्मकर्ता माने जाने चाहिये—ऐसा मेरी समझ में आता है।''

''तो गृहपति! तुमने भी यह मान लिया कि राग, द्वेष एवं मोह के प्रहाणहेतु उपदेश देनेवालों का धर्म ही स्वाख्यात है; तथा तुमने यह भी मान लिया कि जो राग, द्वेष एवं मोह के प्रहाणहेतु साधना में लगे हुए हैं वे ही सम्यक् धर्मारूढ है; तथा तुमने यह भी मान लिया कि जिन साधकों का राग, द्वेष एवं मोह साधना करते करते मूलतः नष्ट हो चुका है, अभाव प्राप्त हो चुका है तथा पुनः (भविष्य में) उत्पन्न होने की स्थिति में नहीं है वे ही इस लोक में सत्कर्मकर्ता हैं!''

''आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! आपने न अपने धर्म की बड़ाई की, न दूसरों के धर्म को हीन बताया। फिर भी (सत्य एवं वास्तविकता बताकर) अपने धर्म की स्थापना भी कर दी, मेरे प्रश्न का उत्तर भी स्पष्ट कर दिया, और उत्तर देने में अपने को दूर भी रखा (मेरे मुख से ही कहलवा लिया)। भन्ते आनन्द! आप लोग वस्तुतः राग, द्वेष एवं मोह के प्रहाणहेतु धर्मोपदेश करते हैं; अतः आपका धर्म ही **स्वाख्यात** है। आप लोग इन राग, द्वेष एवं मोह के प्रहाण हेतु साधना में लगे हुए हैं अतः आप लोग ही **सम्यग्मार्गारूढ** हैं। पुनश्च, आप लोग अपने राग, द्वेष एवं मोह को समूल उच्छिन्न कर चुके हैं, उन को अभाव की स्थिति तक पहुँचा चुके हैं, यहाँ नक कि वे रागादि पुनः (भविष्य में कभी भी) उत्पन्न होने की स्थिति में नहीं हैं, अतः आप लोग ही **सत्कर्मकर्ता** हैं।

"अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति, एवमेवं अय्येन आनन्देन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते आनन्द, तं भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं अय्यो आनन्दो धारेतु, अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ ●

३. महानामसक्कसुत्तं : एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे। तेन खो पन समयेन भगवा गिलानवुट्ठितो होति अचिरवुट्ठितो गेलञ्ञा। अथ खो महानामो सक्को येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो महानामो सक्को भगवन्तं एतदवोच—"दीघरत्ताहं, भन्ते, भगवता एवं धम्मं देसितं आजानामि—'समाहितस्स ञाणं, नो असमाहितस्सा' ति। समाधि नु खो, भन्ते, पुब्बे, पच्छा ञाणं; उदाहु ञाणं पुब्बे, पच्छा समाधी" ति? अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"भगवा खो गिलानवुट्ठितो अचिरवुट्ठितो गेलञ्ञा। अयं च महानामो सक्को भगवन्तं अतिगम्भीरं पञ्हं पुच्छति। यन्नूनाहं महानामं सक्कं एकमन्तं अपनेत्वा धम्मं देसेय्यं" ति।

अथ खो आयस्मा आनन्दो महानामं सक्कं बाहायं गहेत्वा एकमन्तं अपनेत्वा महानामं सक्कं एतदवोच—"सेखं पि खो, महानाम, सीलं वुत्तं भगवता, असेखं पि सीलं

"भन्ते! आपने बहुत अच्छा कहा; भन्ते! बहुत उत्तम कहा। जैसे, भन्ते! कोई औंधे को सीधा कर दे, ढके हुए को खोल दे ...पूर्ववत्... भन्ते आनन्द! भगवान्, धर्म एवं सङ्घ की शरण में जाता हूँ। आर्य आनन्द! आज से मुझको जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें॥" ●

३. महानामशाक्यसूत्र : : आनन्द का धर्मोपदेश

ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्यों के प्रदेश में कपिलवस्तु स्थित न्यग्रोधाराम में साधना हेतु विराजमान थे। वे उस समय कुछ ही दिन पहले रोगमुक्त हुए थे। ऐसे ही समय में, महानाम शाक्य जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर महानाम शाक्य ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की... "भन्ते! मैं बहुत समय से आपके श्रीमुख से सुनता आ रहा हूँ कि समाहित साधक को ही ज्ञान होता है, असमाहित को नहीं। यहाँ मेरी जिज्ञासा यह है—'इनमें समाधि पहले होती है तब ज्ञान? या ज्ञान पहले होता है तब समाधि?'। (उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के समीप ही थे) आयुष्मान् आनन्द को यह विचार हुआ—"भगवान् अभी अब रोगमुक्त हुए हैं, इधर इस महानाम शाक्य ने बहुत गम्भीर प्रश्न पूछ लिया। भगवान् को बोलने में कष्ट होगा, अतः क्यों न मैं ही, इस महानाम को एक ओर ले जाकर इसकी जिज्ञासा शान्त कर दूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द ने, महानाम शाक्य की बाहु पकड़कर उसको एक ओर ले जाकर, उससे यों कहा—"महानाम! भगवान् ने शैक्ष्य शील भी बताया है, अशैक्ष्य शील भी; शैक्ष्य समाधि

वुत्तं भगवता, सेखो पि समाधि वुत्तो भगवता, असेखो पि समाधि वुत्तो भगवता; [R.220] सेखा पि पञ्ञा वुत्ता भगवता, असेखा पि पञ्ञा वुत्ता भगवता। कतमं च, महानाम, [B.221] सेखं सीलं? इध, महानाम, भिक्खु सीलवा होति पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। एदं वुच्चति, महानाम, सेखं सीलं। [N.204]

"कतमो च, महानाम, सेखो समाधि? इद, महानाम, भिक्खु विविच्चेव कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, महानाम, सेखो समाधि।

"कतमा च, महानाम, सेखा पञ्ञा? इध, महानाम, भिक्खु इदं दुक्खं ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चति, महानाम, सेखा पञ्ञा।

"स खो सो, महानाम, अरियसावको एवं सीलसम्पन्नो एवं समाधिसम्पन्नो एवं पञ्ञासम्पन्नो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, महानाम, सेखं पि सीलं वुत्तं भगवता, असेखं पि सीलं वुत्तं भगवता; सेखो पि समाधि वुत्तो भगवता, असेखो पि समाधि वुत्तो भगवता; सेखा पि पञ्ञा वुत्ता भगवता, असेखा पि पञ्ञा वुत्ता भगवता" ति॥ ●

४. निगण्ठसुत्तं : एकं समयं आयस्मा आनन्दो वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो अभयो च लिच्छवि पण्डितकुमारको च लिच्छवि येनायस्मा

भी बतायी है, अशैक्ष्य समाधि भी; शैक्ष्य प्रज्ञा भी बतायी है, अशैक्ष्य प्रज्ञा भी। महानाम! यहाँ अशैक्ष्य शील कौन सा होता है?

"यहाँ, महानाम! कोई भिक्षु प्रातिमोक्षसंवर से युक्त शील से सम्पन्न होकर साधना करता है... पूर्ववत्... शिक्षापदों का आलम्बन करते हुए। यह कहलाता है महानाम! शैक्ष्य शील।

"फिर, महानाम! शैक्ष्य समाधि क्या है? यहाँ, महानाम! कोई भिक्षु कामभोग एवं अकुशल धर्मों से दूर रहता हुआ ...पूर्ववत्... चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। यह कहलाती है शैक्ष्य समाधि।

"फिर, महानाम! शैक्ष्य प्रज्ञा क्या है? यहाँ, महानाम! कोई भिक्षु 'यह दुःख है'—यह भली भाँति जानता है ...पूर्ववत्... 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—यह भली भाँति जानता है—यह कहलाती है शैक्ष्य प्रज्ञा।

"इस तरह, महानाम! वह आर्यश्रावक ऐसा शीलसम्पन्न, ऐसा समाधिसम्पन्न एवं ऐसा प्रज्ञासम्पन्न होता हुआ, अपने चित्तविकारों का क्षय कर अनाश्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात् कर, उपसम्पन्न होकर साधना करता है। यों, महानाम! भगवान् ने शैक्ष्य एवं अशैक्ष्य शील , शैक्ष्य एवं अशैक्ष्य समाधि तथा शैक्ष्य, अशैक्ष्य प्रज्ञा का निरूपण किया है॥" ●

४. निर्ग्रन्थसूत्र : : तीन निर्जरा विशुद्धियाँ

एक समय आयुष्मान् आनन्द वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधना कर रहे थे।

आनन्दो तेनुपसङ्कमिसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो अभयो लिच्छवि आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—''निगण्ठो, भन्ते, नाटपुत्तो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानाति—'चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितं' ति। सो पुराणानं कम्मानं तपसा [R.221] ब्यन्तीभावं पञ्ञापेति नवानं कम्मानं अकरणा सेतुघातं। इति कम्मक्खया दुक्खक्खयो, दुक्खक्खया वेदनाक्खयो, वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सति—[B.222] एवमेतिस्सा सन्दिट्ठिकाय निज्जराय विसुद्धिया समतिक्कमो होति। इध, भन्ते, भगवा किमाहा'' ति?

''तिस्सो खो इमा, अभय, निज्जरा विसुद्धियो तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खाता सत्तानं विसुद्धिया सोकपरिदेवानं समतिक्कमाय दुक्ख-[N.205] दोमनस्सानं अत्थङ्गमाय ञायस्स अधिगमाय निब्बानस्स सच्छिकिरियाय। कतमा तिस्सो? इध, अभय, भिक्खु सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो नवं च कम्मं न करोति, पुराणं च कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तीकरोति। सन्दिट्ठिका निज्जरा अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूही ति। (१)

''स खो सो, अभय, भिक्खु एवं सीलसम्पन्नो विविच्चेव कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो नवं च कम्मं न करोति, पुराणं च कम्मं फुस्स फुस्स

तब अभय लिच्छवि एवं पण्डितकुमार लिच्छवि आनन्द के स्थान पर आये। आकर, उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठा हुआ अभय लिच्छवि आयुष्मान् आनन्द से यों बोला—'भन्ते! निर्ग्रन्थ नाटपुत्र सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवं समस्त ज्ञानदर्शन के ज्ञाता हैं। वे कहते हैं—'चलते, बैठते, सोते, जागते सतत एवं सकल ज्ञानदर्शन उनको उपस्थित रहता है।' वे 'पूर्वकर्मों का नाश तपस्या से हो जाता है तथा न करने के कारण नये कर्म उद्भूत नहीं होते'—ऐसा कहते हैं। इस प्रकार उनके मतानुसार कर्मक्षय से दुःखक्षय, दुःखक्षय से वेदनाक्षय, वेदनाक्षय से समस्त दुःख निर्जीर्ण (नष्ट) हो जायँगे। इस तरह इस सान्दृष्टिक निर्जरा विशुद्धि का समतिक्रम (सीमोल्लङ्घन) हो जाता है। भन्ते! इस प्रसङ्ग में आपका क्या मत है?''

''अभय! उन भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध, ज्ञानी, सर्वदर्शी ने ये तीन निर्जरा विशुद्धियाँ सांसारिक शोक एवं परिदेवों के समतिक्रमण हेतु, दुःख-दौर्मनस्यों के नाश हेतु, ज्ञेय की प्राप्ति हेतु तथा निर्वाण के साक्षात्कार हेतु बतायी है। कौन सी तीन? यहाँ, अभय! साधक भिक्षु शीलवान् होता है ...पूर्ववत्... शिक्षापदों का आलम्बन लेता हुआ। इस प्रकार वह नये कर्म करता नहीं तथा पुराने कर्मों को इस साधना द्वारा पहचान पहचान कर नष्ट करता रहता है। यह निर्जरा सान्दृष्टिक (ऐहलौकिक), समयसीमारहित, 'आओ, देखो' कहकर साक्षात् किये जा सकने योग्य, निर्वाण के समीप पहुँचाने वाली तथा विज्ञों द्वारा व्यक्तितः ज्ञेय है। (१)

''अभय! यों वह शीलसम्पन्न भिक्षु कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहकर ...पूर्ववत्... चतुर्थ ध्यान प्राप्त साधना करता है। वह नये कर्म करता नहीं है तथा अपने पुराने कर्मों को इस साधना

ब्यन्तीकरोति। सन्दिट्ठिका निज्जरा अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूही ति। (२)

"स खो सो, अभय, भिक्खु एवं समाधिसम्पन्नो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। सो नवं च कम्मं न करोति, पुराणं च कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तीकरोति। सन्दिट्ठिका निज्जरा अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूही ति। (३)

"इमा खो, अभय, तिस्सो निज्जरा विसुद्धियो तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खाता सत्तानं विसुद्धिया सोकपरिदेवानं समतिक्कमाय दुक्ख-दोमनस्सानं अत्थङ्गमाय ञायस्स अधिगमाय निब्बानस्स सच्छिकिरियाया" ति।

एवं वुत्ते पण्डितकुमारको लिच्छवि अभयं लिच्छविं एतदवोच—"किं पन त्वं, सम्म अभय, आयस्मतो आनन्दस्स सुभासितं सुभासिततो नाब्भनुमोदसी" ति?

"क्याहं, सम्म पण्डितकुमारक, आयस्मतो आनन्दस्स सुभासितं सुभासिततो नाब्भनुमोदिस्सामि! मुद्धा पि तस्स विपतेय्य यो आयस्मतो आनन्दस्स सुभासितं [R.222] सुभासिततो नाब्भनुमोदेय्या" ति॥ ●

५. निवेसकसुत्तं। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं [B.223] भगवा एतदवोच—

द्वारा पहचान कर नष्ट करता रहता है। यह निर्जरा भी सान्दृष्टिक... विज्ञजनों द्वारा व्यक्तितः ज्ञेय है। (२)

"अभय! वह साधक भिक्षु यों समाधियुक्त होकर आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति प्राप्त कर स्वयं जान कर साक्षात् करता हुआ साधना करता है। इस साधना के बल पर वह नये कर्म ...पूर्ववत्... विज्ञजनों द्वारा व्यक्तितः ज्ञेय है। (३)

"अभय ये तीन निर्जराएँ उन भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने ...पूर्ववत्... निर्वाण के साक्षात्कार हेतु कही हैं।"

आयुष्मान् आनन्द द्वारा ऐसा कहे जाने पर पण्डितकुमार लिच्छवि ने अभय लिच्छवि से पूछा—"क्या सौम्य अभय! तुम आयुष्मान् आनन्द के इस सुभाषित (उपदेश) का सुभाषित के रूप में अभ्यनुमोदन नहीं करोगे?"

"सौम्य पण्डितकुमार! क्या कह रहे हो! मैं आयुष्मान् आनन्द के इस सुभाषित का सुभाषित के रूप में अभ्यनुमोदन क्यों नहीं करूँगा! जो आयुष्मान् आनन्द के इस सुभाषित का सुभाषित के रूप में अभ्यनुमोदन नहीं करेगा, उसका शिर उसके शरीर से विभक्त हो जायगा॥" ●

५. निर्देशकसूत्र : : त्रिरत्न के प्रति श्रद्धा

कभी आयुष्मान् आनन्द साधनाहेतु विराजमान भगवान् के दर्शनार्थ उनके सम्मुख गये।

''ये, आनन्द, अनुकम्पेय्याथ ये च सोतब्बं मञ्ञेय्युं मित्ता वा अमच्चा वा ञाती वा सालोहिता वा ते वो, आनन्द, तीसु ठानेसु समादपेतब्बा निवेसेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा। कतमेसु [N.206] तीसु? बुद्धे अवेच्चप्पसादे समादपेतब्बा निवेसेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि; सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो भगवा' ति, धम्मे अवेच्चप्पसादे समादपेतब्बा निवेसेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति, सङ्घे अवेच्चप्पसादे समादपेतब्बा निवेसेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो ञायप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला—एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति।

''सिया, आनन्द, चतुन्नं महाभूतानं अञ्ञथत्तं—पथवीधातुया आपोधातुया तेजोधातुया वायोधातुया, न त्वेव बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतस्स अरियसावकस्स सिया अञ्ञथत्तं तत्रिदं अञ्ञथत्तं। सो वतानन्द बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो अरियसावको निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा पेत्तिविसयं वा उपपज्जिस्सती ति नेतं ठानं विज्जति।

[R.223] ''सिया, आनन्द, चतुन्नं महाभूतानं अञ्ञथत्तं—पथवीधातुया आपोधातुया तेजोधातुया वायोधातुया, न त्वेव धम्मे ...पे०... न त्वेव सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतस्स

उनको प्रणाम कर आयुष्मान् आनन्द एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए उनको भगवान् ने यह उपदेश किया—

''आनन्द! जिन पर तुम अनुकम्पा करना चाहते हो, और जो तुम्हारी बात को गम्भीरता से सुनते हैं, फिर भले ही वे तुम्हारे सम्बन्धिजन या मित्र हो, अमात्य हों या रक्तसम्बद्ध हों, उनको, आनन्द! तीन स्थानों पर उत्साहित करना चाहिये, प्रवेश कराना चाहिये, स्थापित करना चाहिये। कौन से तीन स्थान? (क) बुद्ध में दृढ़ श्रद्धा हेतु उत्साहित करना चाहिये, प्रतिष्ठित करना चाहिये, सन्निविष्ट करना चाहिये—'वे भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध, विद्याचरणसम्पन्न ...पूर्ववत्... देवमनुष्यों के शास्ता बुद्ध भगवान् हैं'। (ख) धर्म में दृढ़ श्रद्धा के लिये उनको उत्साहित करना चाहिये ...—'यह धर्म स्वाख्यात है, सान्दृष्टिक है...पूर्ववत्... विज्ञजनों द्वारा प्रत्येकशः वेदितव्य है।' (ग) सङ्घ में उनको दृढ़ श्रद्धा के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये...—'यह श्रावकसङ्घ समीचनतया मार्गारूढ है, सरलता एवं सहजता से मार्गारूढ है ...पूर्ववत्... लोक में अद्वितीय पुण्यभूमि है।'

''आनन्द! जैसे पृथ्वीधातु, अब्धातु, तेजोधातु, वायुधातु में समय समय पर अन्यथात्व (विकार) आता रहता है, उस तरह बुद्ध में श्रद्धा रखने वाले में कोई विकार नहीं आता। यह सम्भव नहीं है, आनन्द! कि बुद्ध में श्रद्धालु आर्यश्रावक कभी अपायभूत निरय में, या पशुपक्षियों की योनियों में, या प्रेतयोनि में कभी उत्पन्न हो।

अरियसावकस्स सिया अञ्ञथत्तं तत्रिदं अञ्ञथत्तं। सो वतानन्द, सङ्घे अवेच्चप्प-[B.224] सादेन समन्नागतो अरियसावको निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा पेत्तिविसयं वा उपपज्जिस्सती ति नेतं ठानं विज्जति।

"ये, आनन्द, अनुकम्पेय्याथ ये च सोतब्बं मञ्ञेय्युं मित्ता वा अमच्चा वा ञाती वा सालोहिता वा ते वो, आनन्द, इमेसु तीसु ठानेसु समादपेतब्बा पतिट्ठापेब्बा" ति॥ ●

६. पठमभवसुत्तं : अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"भवो भवो ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, भवो होती" ति?

"कामधातुवेपक्कं च, आनन्द, कम्मं नाभविस्स, अपि नु खो कामभवो पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते"। [N.207]

"इति खो, आनन्द, कम्मं खेत्तं, विञ्ञाणं बीजं, तण्हा स्नेहो। अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं हीनाय धातुया विञ्ञाणं पतिट्ठितं एवं आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति होति।"

"रूपधातुवेपक्कं च, आनन्द, कम्मं नाभविस्स, अपि नु खो रूपभवो पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"इति खो आनन्द, कम्मं खेत्तं, विञ्ञाणं बीजं, तण्हा स्नेहो। अविज्जानीवरणानं

"आनन्द, जैसे पृथ्वीधातु...पूर्ववत्... धर्म में श्रद्धा रखने वाला ...पूर्ववत्... सङ्घ में श्रद्धा रखने वाला... प्रेतयोनि में उत्पन्न हो।

"अतः, आनन्द! जिन पर तुम अनुकम्पा करना चाहते हो...पूर्ववत्... उनको आनन्द! तीन स्थानों पर प्रोत्साहित करना चाहिये—१. बुद्ध के प्रति दृढ श्रद्धा में, २. धर्म के प्रति दृढ श्रद्धा में एवं ३. सङ्घ के प्रति दृढ श्रद्धा में प्रतिष्ठित करना चाहिये॥" ●

६. प्रथम भवसूत्र : : त्रिविध भव

"...तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! आप अपने उपदेश में 'भव' का नाम बार बार लेते रहते हैं, यह 'भव' कैसे होता है?"

"और, आनन्द! किसी पुरुष को कामधातु का फलविपाक भूतकर्म न भोगना होता तो उसको कामभव देखना पड़ता?" "नहीं, भन्ते!"

"हाँ, आनन्द! यही बात है। यहाँ कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है तथा तृष्णा स्नेह (जल) है। यहाँ अविद्यानीवरणों एवं तृष्णासंयोजनों से युक्त प्राणियों का विज्ञान अधोगति वाली धातुओं में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब उसको पुनर्जन्म की प्रेरणा मिलती है। (१)

"फिर, आनन्द! किसी पुरुष को रूपधातु का फलविपाक कर्म न भोगना होता तो क्या उसको रूपभव देखना पड़ता?" "नहीं, भन्ते!"

"हाँ, आनन्द! यही बात है। यहाँ कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तथा तृष्णा स्नेह (जल) है।

सत्तानं तण्हासंयोजनानं मज्झिमाय धातुया विञ्ञाणं पतिट्ठितं एवं आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति होति।

"अरूपधातुवेपक्कं च, आनन्द कम्मं नाभविस्स, अपि नु खो अरूपभवो [R.224] पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते।"

"इति खो, आनन्द, कम्मं खेत्तं, विञ्ञाणं बीजं, तण्हा स्नेहो। अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं पणीताय धातुया विञ्ञाणं पतिट्ठितं एवं आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति होति। एवं खो, आनन्द, भवो होती" ति॥ ●

७. दुतियभवसुत्तं : अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि ...पे०... [B.225] आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"भवो भवो ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, भवो होती" ति?

"कामधातुवेपक्कं च, आनन्द, कम्मं नाभविस्स, अपि नु खो कामभवो पञ्ञायेथा" ति?

"इति खो, आनन्द, कम्मं खेत्तं, विञ्ञाणं बीजं, तण्हा स्नेहो। अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं हीनाय धातुया चेतना पतिट्ठिता पत्थना पतिट्ठिता एवं आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति होति।"

"रूपधातुवेपक्कं च, आनन्द, कम्मं नाभविस्स, अपि नु खो रूपभवो पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

[N.208]"इति खो, आनन्द, कम्मं खेत्तं, विञ्ञाणं बीजं, तण्हा स्नेहो। अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं मज्झिमाय धातुया चेतना पतिट्ठिता पत्थना पतिट्ठिता एवं आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति होति।"

यहाँ अविद्यानीवरण वाले एवं तृष्णासंयोजनों से युक्त प्राणियों का विज्ञान मध्यम गति वाली धातुओं में प्रतिष्ठित होता है, तब उसको पुनर्जन्म की प्रेरणा मिलती है। (२)

"फिर, आनन्द! किसी पुरुष को अरूपधातु का फलविपाकभूत कर्म न भोगना पड़ता तो क्या उसको अरूपभव देखना पड़ता?" "नहीं, भन्ते!"

"हाँ, आनन्द! यही बात है। यहाँ कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तथा तृष्णा स्नेह (जल) है। यहाँ अविद्यानीवरणों एवं तृष्णासंयोजनों से युक्त पुरुषों का विज्ञान प्रणीत (उत्तम) गतिवाली धातुओं में प्रतिष्ठित होता है, तब उसको पुनर्जन्म की प्रेरणा मिलती है। इस तरह यह 'भव' होता है॥" (३) ●

७. द्वितीय भवसूत्र : : त्रिविध भव

...तब आयुष्मान् आनन्द... भगवान् से पुन: यह जिज्ञासा प्रकट करने लगे—"भन्ते! आप अपने धर्मोपदेशों में 'भव' 'भव' ऐसा कहते रहते हैं, भन्ते! यह 'भव' क्या है?" ...पूर्ववत्... ॥

[यह सूत्र भी पूर्ववत् ही है। यहाँ अन्तर इतना ही है कि उक्त सूत्र में 'धातुओं में विज्ञान

"अरूपधातुवेपक्कं च, आनन्द, कम्मं नाभविस्स, अपि नु खो अरूपभवो पञ्ञायेथा" ति? "नो हेतं, भन्ते।"

"इति खो, आनन्द, कम्मं खेत्तं, विञ्ञाणं बीजं, तण्हा स्नेहो। अविज्जानीवरणानं सत्तानं तण्हासंयोजनानं पणीताय धातुया चेतना पतिट्ठिता पत्थना पतिट्ठिता एवं आयतिं पुनब्भवाभिनिब्बत्ति होति। एवं खो, आनन्द, भवो होती" ति॥ ●

८. सीलब्बतसुत्तं : अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; [R.225] उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतदवोच—"सब्बं नु खो, आनन्द, सीलब्बतं जीवितं ब्रह्मचरियं उपट्ठानसारं सफलं" ति?

"न ख्वेत्थ, भन्ते, एकंसेना" ति।

"तेन हानन्द, विभजस्सू" ति।

"यं हिस्स, भन्ते, सीलब्बतं जीवितं ब्रह्मचरियं उपट्ठानसारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति कुसला धम्मा परिहायन्ति, एवरूपं सीलब्बतं जीवितं ब्रह्मचरियं [B.226] उपट्ठानसारं अफलं। यं च ख्वास्स, भन्ते, सीलब्बतं जीवितं ब्रह्मचरियं उपट्ठानसारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, एवरूपं सीलब्बतं जीवितं ब्रह्मचरियं उपट्ठानसारं सफलं" ति।

इदमवोच आयस्मा आनन्दो; समनुञ्ञो सत्था अहोसि।

अथ खो आयस्मा आनन्दो "समनुञ्ञो मे सत्था" ति, उट्ठायासना भगवन्तं

प्रतिष्ठित' बताया गया था, यहाँ 'धातुओं में चेतना प्रतिष्ठित' बतायी गयी। शेष सब अनुवाद पूर्ववत् ही समझें।] ●

८. शीलव्रतसूत्र : : शीलव्रत का सेवन

...तब आयुष्मान् आनन्द...। एक ओर बैठे आनन्द को भगवान् ने यह पूछा—"क्या, आनन्द! सभी शीलव्रतों का जीवित धर्मसाधना के रूप में किये गये सेवाभाव का आचरण सफल होता है?"

"नहीं, भन्ते! यह एकान्तत: सफल नहीं होता।"

"तो, आनन्द! इसका विभाजन कर बताओ, कौन सफल होता है, कौन नहीं?"

"भन्ते! जिन शीलव्रतों के जीवित धर्मसाधना के रूप में किये गये सेवाभाव से अकुशल धर्म बढ़ने लगें तथा कुशल धर्म क्षीण होने लगें, ऐसे शीलव्रत का सेवाभाव निष्फल होता है; तथा जिन शीलव्रतों के जीवित धर्मसाधना के रूप में किये गये सेवाभाव से अकुशल धर्म क्षीण होने लगें और कुशल धर्म बढ़ने लगें, ऐसे शीलव्रत का सेवाभाव सफल होता है।" आयुष्मान् आनन्द ने यह कहा। भगवान् ने आनन्द के इस कथन का अनुमोदन किया।

तब आयुष्मान् आनन्द ने यह जानकर कि भगवान् भी मेरे कथन का अनुमोदन कर रहे हैं,

अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा अचिरपक्कन्ते आयस्मन्ते आनन्दे भिक्खू आमन्तेसि—"सेखो, भिक्खवे, आनन्दो; न च पनस्स सुलभरूपो समसमो पञ्ञाया" ति।

९. गन्धजातसुत्तं : अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—

"तीणिमानि, भन्ते, गन्धजातानि, येसं अनुवातंयेव गन्धो गच्छति, नो पटिवातं। कतमानि तीणि? मूलगन्धो सारगन्धो, पुप्फगन्धो—इमानि खो, भन्ते, तीणि गन्धजातानि, येसं अनुवातंयेव गन्धो गच्छति, नो पटिवातं। अत्थि नु खो, भन्ते किञ्चि गन्धजातं यस्स अनुवातं पि गन्धो गच्छति, पटिवातं पि गन्धो गच्छति, अनुवातपटिवातं पि गन्धो गच्छती" ति?

"अत्थानन्द, किञ्चि गन्धजातं यस्स अनुवातं पि गन्धो गच्छति, पटिवातं पि गन्धो गच्छति, अनुवातपटिवातं पि गन्धो गच्छती" ति।

"कतमं च पन, भन्ते, गन्धजातं यस्स अनुवातं पि गन्धो गच्छति, पटिवातं पि गन्धो गच्छति, अनुवातपटिवातं पि गन्धो गच्छती" ति?

"इधानन्द, यस्मिं गामे वा निगमे वा इत्थी वा पुरिसो वा बुद्धं सरणं गतो होति, धम्मं सरणं गतो होति, सङ्घं सरणं गतो होति, पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति,

---

वे आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर चले गये। तब आयुष्मान् आनन्द के जाने के कुछ ही क्षण बाद, भगवान् ने वहाँ उपस्थित भिक्षुओं से कहा—"भिक्षुओ! यह आनन्द साधना की भूमिका में शैक्ष्य कोटि तक पहुँच चुका है। इसके समान प्रज्ञावान् (मेरे सङ्घ में) अन्य कोई भिक्षु सुलभ नहीं है॥" ●

९. गन्धजातसूत्र : : शील-गन्ध की गति

...आयुष्मान् आनन्द...। आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों पूछा—

"भन्ते! लोक में ये तीन प्रकार के गन्ध द्रव्यसमूह (सुने या देखे जाते) हैं जिनकी गन्ध वायु के अनुकूल ही फैलती है, प्रतिकूल होने पर नहीं। कौन से तीन? **मूलगन्ध** (जिनकी जड़ें गन्ध वाली होती हैं), **काष्ठगन्ध** (जिनकी लकड़ी गन्धमयी होती है), या **पुष्पगन्ध** (जिनके फूल गन्धमय होते हैं)। परन्तु क्या, भन्ते! ऐसा भी कोई गन्धद्रव्य है जिसकी गन्ध अनुकूल तथा प्रतिकूल वायु रहते हुए भी समानभाव से बहती रहती है?"

"हाँ, आनन्द! ऐसा भी गन्धद्रव्य है जिसकी गन्ध वायु की अपेक्षा न कर सर्वत्र (सब ओर) बहती रहती है। "भन्ते! वह ऐसा गन्धद्रव्य कौन सा है?"

"आनन्द! किसी ग्राम या निगम में कोई स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण में, धर्म की शरण में, सङ्घ की शरण में आ गया हो; जो प्राणातिपात से, अदत्तादान से, कामभोगों में मिथ्याचार

सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति, सीलवा होति कल्याणधम्मो, विगतमतलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति मुत्तचागो पयतपाणि वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो, तस्स दिसासु समणब्राह्मणा वण्णं भासन्ति—'अमुकस्मि नाम गामे वा निगमे वा इत्थी वा पुरिसो वा बुद्धं सरणं गतो होति, धम्मं सरणं गतो होति, सङ्घं सरणं गतो होति, पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति, सीलवा होति कल्याणधम्मो, विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति मुत्तचागो पयतपाणि वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो' ति।

''देवता पिस्स वण्णं भासन्ति—'अमुकस्मि नाम गामे वा निगमे वा इत्थी वा पुरिसो वा वृद्ध सरणं गतो होति, धम्मं सरणं गतो होति, सङ्घं सरणं गतो होति, पाणातिपाता पटिविरतो होति ...पे०... सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति, सीलवा होति कल्याणधम्मो, विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति मुत्तचागो पयतपाणि वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो' ति। इदं खो तं, आनन्द, गन्धजातं यस्स अनुवातं पि गन्धो गच्छति, पटिवातं पि गन्धो गच्छति, अनुवातपटिवातं पि गन्धो [N.210] गच्छती ति।

''न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतं च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवायती'' ति॥ ●

[ध० प०, ५४ गा०]

१०. चूळनिकासुत्तं। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुप- [R.227]

(व्यभिचार) से, मृषावाद से, सुरा मैरेय आदि मद्यजनक वस्तुओं से विरत रहता है; जो सदाचारी है, सत्कर्म ही करता है, निर्विकार निर्दोष चित्त से घर में रहता है, जो मुक्तहस्त से दान करता है, हाथों पैरों पर संयम रखता है, त्यागी स्वभाव वाला है, दानशील है, दानक्रिया में सतत दत्तचित्त रहता है। उसका सभी दिशाओं में श्रमण ब्राह्मणों द्वारा यों कीर्तिगान होने लगता है—'इस ग्राम या निगम में कोई स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण में ...पूर्ववत्... दानक्रिया में सतत दत्तचित्त रहता है।'

'' देवता भी इसका इसी प्रकार गुणगान करते हैं—'इस ग्राम या निगम में कोई स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण में ...पूर्ववत्... दान क्रिया में सतत दत्तचित्त रहता है।' आनन्द! यह ऐसा गन्धद्रव्य है जिसकी सुगन्ध, वायु के अनुकूल भी तथा वायु के प्रतिकूल भी, तथा अनुकूल-प्रतिकूल भी, निरन्तर बहती रहती है।

''साधारण पुष्पों की गन्ध वायु के विपरीत नहीं जाती, इसी तरह चन्दन, तगर या मल्लिका (जूही या चमेली) की गन्ध भी वायु के प्रतिकूल नहीं जा पाती; परन्तु सज्जनों के गुणों की प्रशंसा-गन्ध वायु के प्रतिकूल जाने में भी समर्थ है। इस तरह सज्जन, अपने शील के कारण, सभी दिशाओं में व्याप्त रहकर, प्रशंसा प्राप्त करता है॥'' (ध० प०, पु० व०, ५४ गा०) ●

सङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"सम्मुखामेतं, भन्ते, भगवतो सुतं सम्मुखा [B.228] पटिग्गहितं—'भगवतो, आनन्द, सिखिस्स अभिभू नाम सावको ब्रह्मलोके ठितो सहस्सिलोकधातुं सरेन विञ्ञापेसी' ति। भगवा पन, भन्ते अरहं सम्मासम्बुद्धो कीवतकं पहोति सरेन विञ्ञापेतुं" ति?

"सावको सो, आनन्द, अप्पमेय्या तथागता" ति।

दुतियं पि खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'भगवतो, आनन्द, सिखिस्स अभिभू नाम सावको ब्रह्मलोके ठितो सहस्सिलोकधातुं सरेन विञ्ञापेसी' ति। भगवा पन, भन्ते, अरहं सम्मासम्बुद्धो कीवतकं पहोति सरेन विञ्ञापेतुं" ति।

"सावको सो, आनन्द, अप्पमेय्या तथागता" ति।

ततियं पि खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'भगवतो, आनन्द, सिखिस्स अभिभू नाम सावको ब्रह्मलोके ठितो सहस्सिलोकधातुं सरेन विञ्ञापेसी' ति। भगवा पन, भन्ते, अरहं सम्मासम्बुद्धो कीवतकं पहोति सरेन विञ्ञापेतुं" ति?

"सुता ते, आनन्द, सहस्सी चूळनिका लोकधातू" ति?

"एतस्स, भगवा, कालो; एतस्स, सुगत, कालो! यं भगवा भासेय्य। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति।

"तेनहानन्द, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति

---

१०. चूड़निकासूत्र : : तथागत के स्वर की अप्रमेयता

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! मैंने यह आपसे ही सुना है, आपसे सुनकर स्मरण रखा है—'आनन्द! भगवान् शिखी के अभिभू नामक श्रावक ने ब्रह्मलोक में बैठे हुए अपनी शब्द-ध्वनि से सहस्रों लोकधातुओं (ब्रह्माण्डों) को प्रतिध्वनित (गुञ्जायमान) कर दिया था।' भन्ते! यहाँ मेरी जिज्ञासा यही है कि तब ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध का स्वर इससे अधिक कितनी दूर तक अन्य लोकधातुओं को प्रतिध्वनित करता है?"

"आनन्द! वह (अभिभू) शिष्य था, तथागत तो अप्रमेय (अतुलनीय) होते हैं।"

दूसरी बार भी... पूर्ववत्... तीसरी बार भी... पूर्ववत्... कितनी दूर तक अन्य लोकधातुओं को प्रतिध्वनित करता है?"

"आनन्द! तुमने चूड़निका लोकधातु का नाम सुना है?"

"भन्ते! इसका प्रसङ्ग है, सुगत! यही उचित अवसर है कि भगवान् इसके विषय में हमें कुछ बतावें। आपके श्रीमुख से सुनकर मैं और मेरे ये साथी भिक्षु भी इसे स्मरण रखेंगे।"

खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—"यावतो, [N.211] आनन्द, चन्दिमसुरिया परिहरन्ति, दिसा भन्ति विरोचना, ताव सहस्सधा लोको। तस्मिं सहस्सधा लोके सहस्सं चन्दानं, सहस्सं सुरियानं, सहस्सं सिनेरुपब्बतराजानं, सहस्सं जम्बुदीपानं, सहस्सं अपरगोयानानं, सहस्सं उत्तरकुरूनं, सहस्सं पुब्बविदेहानं, चत्तारि महासमुद्दसहस्सानि, चत्तारि महाराजसहस्सानि, सहस्सं चातुमहाराजिकानं, सहस्सं, तावितंसानं, सहस्सं यामानं, सहस्सं तुसितानं, सहस्सं निम्मानरतीनं, सहस्सं [R.228] परनिम्मितवसवत्तीनं, सहस्सं ब्रह्मलोकानं—अयं वुच्चतानन्द, सहस्सी चूळनिका लोकधातु।

"यावतानन्द, सहस्सी चूळनिका लोकधातु ताव सहस्सधा लोको। अयं [B.229] वुच्चतानन्द, द्विसहस्सी मज्झिमिका लोकधातु।

"यावतानन्द, द्विसहस्सी मज्झिमिका लोकधातु ताव सहस्सधा लोको। अयं वुच्चतानन्द, तिसहस्सी महासहस्सी लोकधातु।

"आकङ्खमानो, आनन्द, तथागतो तिसहस्सिमहासहस्सिलोकधातुं सरेन विञ्ञापेय्य, यावता पन आकङ्खेय्या" ति।

"यथा कथं पन, भन्ते, भगवा तिसहस्सिमहासहस्सिलोकधातुं सरेन विञ्ञापेय्य, यावता पन आकङ्खेय्या" ति?

"तो, आनन्द! सुनो, सुनकर मन में बैठा लो। मैं बताता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते!" कहते हुए आनन्द ने उत्तर दिया। भगवान् बोले—

"आनन्द! जहाँ तक इस सूर्य और चन्द्रमा की पहुँच (गति) है, जहाँ तक ये सभी दिशाओं को आलोकित करते हैं, वहाँ तक 'सहस्रधा लोकधातु' कहलाती है। उस सहस्रधा लोक में सहस्रों चन्द्रमाओं की, सहस्रों सूर्यों की, सहस्रों सुमेरु पर्वतराजाओं की, सहस्रों जम्बूद्वीपों की, सहस्रों अपरगोयानों की, सहस्रों उत्तरकुरुओं की, सहस्रों पूर्वविदेहों की, चार हजार महासमुद्र, चार हजार महाराज, एक हजार चातुर्महाराजिक, एक हजार त्रायस्त्रिंश देव, सहस्र याम, सहस्र तुषित, सहस्र निर्माणरति, सहस्र परिनिर्मितवशवर्ती, सहस्र ब्रह्मलोकों की—आनन्द! यह 'एक साहस्री लोकधातु' **चूड़निका** कहलाती है।

"आनन्द! जैसी यह 'एक साहस्री लोकधातु चूड़निका' है, ऐसी एक हजार चूड़निकायें मिलकर 'द्विसाहस्री मध्यमिका लोकधातु' कहलाती है।

"और, आनन्द! जैसी यह एक 'द्विसाहस्री' मध्यमिका लोकधातु है ऐसी हजार द्विसाहस्री मध्यमिका मिलकर 'त्रिसाहस्री' या 'महासाहस्री' लोकधातु कहलाती है।

"आनन्द! तथागत, जब जैसा चाहें, इस त्रिसाहस्री महासाहस्री लोकधातु को अपने स्वर से प्रतिध्वनित कर सकते हैं या वे तथागत जितना और आगे तक चाहें॥

"इधानन्द, तथागतो तिसहस्सिमहासहस्सिलोकधातुं ओभासेन फरेय्य। यदा ते सत्ता तं आलोकं सञ्जानेय्युं, अथ तथागतो घोसं करेय्य सद्दमनुस्सावेय्य। एवं खो, आनन्द, तथागतो तिसहस्सिमहासहस्सिलोकधातुं सरेन विञ्ञापेय्य, यावता पन आकङ्खेय्या" ति।

एवं वुत्ते आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—"लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे सत्था एवंमहिद्धिको एवंमहानुभावो" ति। एवं वुत्ते आयस्मा उदायी आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"किं तुय्हेत्थ, आवुसो आनन्द, यदि ते सत्था एवंमहिद्धिको एवंमहानुभावो" ति? एवं वुत्ते भगवा, आयस्मन्तं उदायिं एतदवोच—"मा हेवं, उदायि, मा हेवं, उदायि। सचे, उदायि, आनन्दो अवीतरागो कालं करेय्य, तेन चित्तप्पसादेन सत्तक्खत्तुं देवेसु देवरज्जं कारेय्य, सत्तक्खत्तुं इमस्मिंयेव जम्बुदीपे महारज्जं कारेय्य। अपि च, उदायि, आनन्दो दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायिस्सती" ति॥

आनन्दवग्गो अट्ठमो॥

तस्सुद्दानं

[N.212] छन्नो आजीवको सक्को, निगण्ठो च निवेसको।
दुवे भवा सीलब्बतं, गन्धजातं च चूळनी ति॥

"भन्ते! कैसे भगवान् इस त्रिसाहस्री महासाहस्री लोकधातु को या जितना और अधिक वे चाहें अपने स्वर से प्रतिध्वनित करते हैं?"

"आनन्द! तथागत पहले इस त्रिसाहस्री महासाहस्री लोकधातु को अपने दिव्य प्रकाश से आलोकित करते हैं। जब वहाँ के प्राणी इस प्रकाश से परिचित हो जाते हैं तब तथागत अपना स्वर शब्दों के माध्यम से उच्चारण करते हैं। इस तरह, आनन्द! तथागत त्रिसाहस्री महासाहस्री लोकधातु को या जितना दूर तक वे चाहें, अपने स्वर से प्रतिध्वनित करते हैं।"

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् उदायि को यह कहा—"मुझे बहुत लाभ हुआ, मैंने बहुत कुछ पा लिया कि मेरे शास्ता (गुरु) इतने ऋद्धिसम्पन्न है, इतने प्रतापशाली हैं!"

आनन्द द्वारा ऐसा कहे जाने पर आयुष्मान् उदायी उनसे बोले—"आयुष्मन् आनन्द! यदि तुम्हारे गुरु इतने ऋद्धिसम्पन्न हैं तो इसमें तुम्हारा क्या व्यक्तिगत लाभ है?" ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् उदायि को रोकते हुए भगवान् ने कहा—"ऐसा न कहो, उदायि! ऐसा न कहो। उदायि! यह आनन्द यदि वीतरागचित्त हुए विना ही मरणभाव को प्राप्त हो जाय तो, इसकी मेरे प्रति उपर्युक्त श्रद्धा के बल पर, यह सात बार देवलोक में जाकर देवताओं पर राज्य करेगा, तथा सात बार इस समस्त जम्बूद्वीप पर राज्य करेगा। और फिर, उदायि! यह आनन्द तो इसी जन्म में परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला है॥"

आनन्दवर्ग अष्टम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. छन्नसूत्र, २. आजीवक सूत्र, ३. महानाम शाक्य सूत्र, ४. निर्ग्रन्थ सूत्र, ५. निवेशक सूत्र, ६. प्रथम भवसूत्र, ७. द्वितीय भवसूत्र, ८. शीलव्रत सूत्र, ९. गन्धजातसूत्र एवं १०. चूड़निका सूत्र॥

९. समणवग्गो

१. **समणसुत्तं** : ''तीणिमानि, भिक्खवे, समणस्स समणियानि [B.230, R.229] समणकरणीयानि। कतमानि तीणि? अधिसीलसिक्खासमादानं, अधिचित्तसिक्खासमादानं, अधिपञ्ञासिक्खासमादानं—इमानि खो, भिक्खवे, तीणि समणस्स समणियानि समण-करणीयानि।

''तसमातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'तिब्बो नो छन्दो भविस्सति अधि-सीलसिक्खासमादाने, तिब्बो नो छन्दो भविस्सति अधिचित्तसिक्खासमादाने, तिब्बो नो छन्दो भविस्सति अधिपञ्ञासिक्खासमादाने' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥

२. **गद्रभसुत्तं** : ''सेय्यथापि, भिक्खवे, गद्रभो गोगणं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धो होति—'अहं पि दम्मो, अहं पि दम्मो' ति। तस्स न तादिसो वण्णो होति सेय्यथापि गुन्नं, न तादिसो सरो होति सेय्यथापि गुन्नं, न तादिसं पदं होति सेय्यथापि गुन्नं। सो गोगणंयेव पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धो होति—'अहं पि दम्मो, अहं पि दम्मो' ति।

''एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो भिक्खु भिक्खुसङ्घं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धो होति—'अहं पि भिक्खु, अहं पि भिक्खू' ति। तस्स न तादिसो छन्दो होति अधिसील-सिक्खासमादाने सेय्यथापि अञ्ञेसं भिक्खूनं, न तादिसो छन्दो होति अधिचित्तसिक्खा-समादाने सेय्यथापि अञ्ञेसं भिक्खूनं, न तादिसो छन्दो होति अधिपञ्ञासिक्खासमादाने

---

९. श्रमणवर्ग

१. श्रमणसूत्र : : **तीन श्रमण कर्तव्य**

''भिक्षुओ! ये तीन श्रमण के श्रमणभाव एवं श्रमणकर्तव्य होते हैं? कौन से तीन? (१) शीलविषयक शिक्षा का आचरण, (२) चित्तविषयक शिक्षा का आचरण एवं (३) प्रज्ञाविषयक शिक्षा का आचरण। भिक्षुओ! ये तीन श्रमण के श्रमणभाव श्रमणकर्तव्य होते हैं।

अत: भिक्षुओ! तुम्हें यह सीखना चाहिये—'शीलविषयक शिक्षा के आचरण में हमारी अतिशय रुचि होनी चाहिये', 'चित्तविषयक शिक्षा के आचरण में हमारी अतिशय रुचि होनी चाहिये' तथा 'प्रज्ञाविषयक शिक्षा के आचरण में हमारी अतिशय रुचि होनी चाहिये।' भिक्षुओ! तुम्हें यह सीखना चाहिये॥'' ●

२. गर्दभसूत्र : : **तीन उचित अनुकरण**

''जैसे, भिक्षुओ! कोई गधा गौओं के पीछे पीछे लगा चल रहा हो—'मैं भी बछड़ा हूँ, मैं भी बछड़ा हूँ' (कहता हुआ)। परन्तु उसका न गौओं जैसा वर्ण हो, न गौओं जैसा स्वर (शब्द) हो, न गौओं जैसे पैर हों। फिर भी वह यही कहता चले—'मैं भी बछड़ा हूँ, मैं भी बछड़ा हूँ।'

''इसी प्रकार, भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षुवेषधारी भिक्षुसङ्घ के पीछे पीछे, यह कहता हुआ, लगा रहे—'मैं भी भिक्षु हूँ, मैं भी भिक्षु हूँ'। परन्तु न उसकी शील के बढ़ाने में कोइ तीव्र रुचि हो, न चित्त (समाधि) बढ़ाने में अपनी कोई तीव्र रुचि हो, तथा उसकी अपनी प्रज्ञा के बढ़ाने में कोई

सेय्यथापि अञ्ञेसं भिक्खूनं। सो भिक्खुसङ्घंयेव पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धो होति—'अहं पि भिक्खु, अहं पि भिक्खू' ति।

[B.231] "तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'तिब्बो नो छन्दो भविस्सति अधि-[N.213] सीलसिक्खासमादाने, ...तिब्बो नो छन्दो भविस्सति अधिचित्तसिक्खासमादाने ...तिब्बो नो छन्दो भविस्सति अधिपञ्ञासिक्खासमादाने' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥ ●

३. खेत्तसुत्तं : "तीणिमानि, भिक्खवे, कस्सकस्स गहपतिस्स पुब्बे करणीयानि। कतमानि तीणि? इध, भिक्खवे, कस्सको गहपति पटिकच्चेव खेत्तं सुकट्ठं करोति सुमतिकतं। पटिकच्चेव खेत्तं सुकट्ठं करित्वा सुमतिकतं कालेन बीजानि पतिट्ठापेति। कालेन [R.230] बीजानि पतिट्ठापेत्वा समयेन उदकं अभिनेति पि अपनेति पि। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि कस्सकस्स गहपतिस्स पुब्बे करणीयानि।

"एवमेव खो, भिक्खवे, तीणिमानि भिक्खुस्स पुब्बे करणीयानि। कतमानि तीणि? अधिसीलसिक्खासमादानं, अधिचित्तसिक्खासमादानं, अधिपञ्ञासिक्खासमादानं—इमानि खो, भिक्खवे, तीणि भिक्खुस्स पुब्बे करणीयानि।

"तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'तिब्बो नो छन्दो भविस्सति अधि-सीलसिक्खासमादाने, तिब्बो नो छन्दो भविस्सति अधिचित्तसिक्खासमादाने, तिब्बो नो छन्दो भविस्सति अधिपञ्ञासिक्खासमादाने' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खि-तब्बं" ति॥ ●

तीव्र रुचि हो जैसी अन्य भिक्षुओं में होती है। फिर भी वह भिक्षुओ के पीछे पीछे यह कहता हुआ लगा रहे—'मैं भिक्षु हूँ, मैं भिक्षु हूँ।'

"अत: भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा कुछ सीखना चाहिये कि तुम्हारी शीलविषयक शिक्षा की प्राप्ति में, चित्तविषयक शिक्षा की प्राप्ति में तथा प्रज्ञाविषयक शिक्षा की प्राप्ति में तीव्र रुचि हो। भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा ही कुछ सीखना चाहिये॥" ●

३. क्षेत्रसूत्र : : तीन पूर्वकृत्य

"भिक्षुओ! किसी कृषक (किसान गृहपति) के पूर्वकृत्य ये तीन होते हैं। कौन से तीन? यहाँ कोई, भिक्षुओ! गृहपति पहले ही अपने खेत को अपनी इच्छानुसार ठीक ढंग से जोत ले। इस तरह जोतकर पहले बीज बोवे बाद में उसे जल से सींचे। जल अधिक हो जाय तो उसे निकाल दे। इस तरह, भिक्षुओ! किसी कृषक गृहपति के ये तीन पूर्वकृत्य हैं।

"इसी तरह, भिक्षुओ! किसी भिक्षु साधक के ये तीन पूर्वकृत्य होते हैं। कौन से तीन? (१) शील के विषय में, (२) चित्त के विषय में, (३) प्रज्ञा के विषय में उचित शिक्षा का अधिग्रहण। भिक्षुओ! ये तीन किसी साधक भिक्षु के पूर्वकृत्य होते हैं।

"इसलिये, भिक्षुओ! तुम्हें ये तीन कृत्य सीखने चाहिये—'शील के विषय में, चित्त के विषय में, प्रज्ञा के विषय में पहले हमारी तीव्र रुचि हो'—ऐसा हमें, भिक्षुओ! सीखना चाहिये॥" ●

४. वज्जिपुत्तसुत्तं : एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो अञ्ञतरो वज्जिपुत्तको भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो वज्जिपुत्तको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"साधिकमिदं, भन्ते, दियड्ढसिक्खापदसतं अन्वद्धमासं उद्देसं आगच्छति। नाहं, भन्ते, एत्थ सक्कोमि सिक्खितुं" ति। [B.232]

"सक्खिस्ससि पन त्वं, भिक्खु, तीसु सिक्खासु सिक्खितुं—अधिसीलसिक्खाय, अधिचित्तसिक्खाय अधिपञ्ञासिक्खाया" ति?

"सक्कोमहं, भन्ते, तीसु सिक्खासु सिक्खितुं—अधिसीलसिक्खाय, अधिचित्त-सिक्खाय, अधिचित्तसिक्खाय, अधिपञ्ञासिक्खाया" कति।

"तस्मातिह त्वं, भिक्खु, तीसु सिक्खासु सिक्खस्सु—अधिसीलसिक्खाय, अधि-चित्तसिक्खाय, अधिपञ्ञासिक्खाय। यतो खो त्वं, भिक्खु, अधिसीलं पि सिक्खिस्ससि, अधिचित्तं पि सिक्खिस्ससि, अधिपञ्ञं पि सिक्खिस्ससि, तस्स तुय्हं भिक्खु अधिसीलं पि सिक्खतो अधिचित्तं पि सिक्खतो अधिपञ्ञं पि सिक्खतो रागो पहीयिस्सति, दोसो [N.214] पहीयिस्सति, मोहो पहीयिस्सति। सो त्वं रागस्स पहाना दोसस्स पहाना मोहस्स पहाना यं अकुसलं न तं करिस्ससि, यं पापं न तं सेविस्सी" ति।

अथ खो सो भिक्खु अपरेन समयेन अधिसीलं पि सिक्खि, अधिचित्तं पि सिक्खि, अधिपञ्ञं पि सिक्खि। तस्स अधिसीलं पि सिक्खतो अधिचित्तं पि सिक्खतो [R.231]

---

४. वज्जिपुत्रसूत्र : : तीन शिक्षाएँ

एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कोई वज्जिपुत्रक भिक्षु जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। और भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस भिक्षु ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! इन डेढ़ सौ शिक्षापदों का प्रति पन्द्रहवें दिन पाठ करना पड़ता है। यह मेरे लिये बहुत कठिन है। मैं इन्हें स्मरण नहीं रख सकता।"

"अच्छा, भिक्षु! तुम ये तीन शिक्षाएँ तो स्मरण रख सकते हो; जैसे—शील के विषय की, चित्त के विषय की, प्रज्ञा के विषय की शिक्षाएँ तो स्मरण रख सकते हो?"

"हाँ, भन्ते! ये तीन शिक्षाएँ तो स्मरण रख सकता हूँ।"

"तो, भिक्षु! तुमको ये तीन शिक्षाएँ ही स्मरण रखनी चाहिये—१. शीलग्रहणविषयक शिक्षा, २. चित्तग्रहणविषयक शिक्षा एवं ३. प्रज्ञाग्रहणविषयक शिक्षा। भिक्षु! यदि तूँ इन तीन शिक्षाओं स्मरण करता रहेगा तो तेरे द्वारा इन तीनों शिक्षाओं के स्मरण रखने से तेरे चित्त का राग भी प्रहीण हो जायगा, द्वेष भी... मोह भी प्रहीण हो जायगा। इस तरह, तेरे इस राग, द्वेष एवं मोह के प्रहीण होने से तेरे चित्तस्थित अकुशल धर्म विनष्ट हो जायँगे और तूँ पापकर्म से विरत हो जायगा।"

तब वह भिक्षु शील, चित्त एवं प्रज्ञा विषयक तीनों शिक्षाओं को स्मरण रखने लगा। इन तीनों

अधिपञ्ञं पि सिक्खतो रागो पहीयि, दोसो पहीयि, मोहो पहीयि। सो रागस्स पहाना दोसस्स पहाना मोहस्स पहाना यं अकुसलं तं नाकासि, यं पापं तं न सेवी ति॥ ●

५. **सेक्खसुत्तं :** अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—

" 'सेखो, सेखो' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, सेखो होती" ति?

"सिक्खती ति खो, भिक्खु, तस्मा सेखो ति वुच्चति। किञ्च सिक्खति? अधिसीलं पि सिक्खति, अधिचित्तं पि सिक्खति, अधिपञ्ञं पि सिक्खति। सिक्खती ति खो, भिक्खु, तस्मा सेखो ति वुच्चती ति।

"सेखस्स सिक्खमानस्स, उजुमग्गानुसारिनो।
खयस्मिं पठमं ञाणं, ततो अञ्ञा अनन्तरा॥
"ततो अञ्ञा विमुत्तस्स, ञाणं वे होति तादिनो।
अकुप्पा मे विमुत्ती ति, भवसंयोजनक्खये" ति॥ ●

[B.233] ६. **पठमसिक्खासुत्तं :** "साधिकमिदं, भिक्खवे, दियड्ढसिक्खापदसतं अन्वद्धमासं उद्देसं आगच्छति, यत्थ अत्तकामा कुलपुत्ता सिक्खन्ति। तिस्सो इमा, भिक्खवे,

---

शिक्षाओं के स्मरण रखने से उसका चित्तस्थित राग भी नष्ट होने लगा, द्वेष भी नष्ट होने लगा और मोह भी नष्ट होने लगा। इस तरह, वह इन राग, द्वेष एवं मोह के प्रहीण होने से अकुशल धर्मों में प्रवृत्त नहीं हुआ, और उधर न प्रवृत्त होने से वह पापकर्मों से विरत हो गया॥ ●

५. शैक्ष्यसूत्र : : तीन शिक्षाएँ

...तब कोई भिक्षु जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उसने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—

"भन्ते! आप अपने धर्मोपदेशों में प्रसङ्ग आने पर 'शैक्ष्य', 'शैक्ष्य'—ऐसा कहते हैं, यह शैक्ष्य कैसे होता है?"

"भिक्षु! जो सीख लेता है वही 'शैक्ष्य' कहलाता है। क्या सीख लेता है? वह शील के विषय में, चित्त के विषय में तथा प्रज्ञा के विषय में सीखता है। अत: जो सीखता है वही 'शैक्ष्य' कहलाता है।

"शिक्षा प्राप्त करने वाले, साधना के सरल मार्ग का अनुसरण करनेवाले साधक को (राग द्वेष मोह के) प्रहीण हो जाने पर प्रथम ज्ञान उद्भूत होता है। तदनन्तर आज्ञा अर्थात् सार्वत्रिक ज्ञान। इस आज्ञा से विमुक्तिज्ञान होता है। ऐसे ज्ञानी को अन्त में 'मेरी यह विमुक्ति अकोप्य (स्थिर) हैं'—ऐसा ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान भवबन्धन के क्षय में अतिशय उपयोगी है॥" ●

६. प्रथम शिक्षासूत्र : : शील, समाधि एवं प्रज्ञा में पूर्णता

"भिक्षुओ! यह प्रति पन्द्रहवें दिन इन डेढ़ सौ से अधिक शिक्षापदों को स्मरण करना पड़ता है, जिसे जिज्ञासु कुलपुत्र सीखते हैं। अत:, भिक्षुओ! ये तीन शिक्षाएँ हैं जिनमें वे सभी शिक्षापद

सिक्खा यत्थेतं सब्बं समोधानं गच्छति। कतमा तिस्सो? अधिसीलसिक्खा, अधिचित्त-सिक्खा अधिपञ्ञासिक्खा—इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो सिक्खा, यत्थेतं सब्बं समोधानं गच्छति।

"इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलेसु परिपूरकारी होति समाधिस्मिं मत्तसो कारी पञ्ञाय मत्तसो कारी। सो यानि तानि खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि तानि आपज्जति पि वुट्ठाति पि। तं किस्स हेतु? न हि मेत्थ, भिक्खवे, अभब्बता वुत्ता। यानि च खो तानि सिक्खापदानि आदिब्रह्मचरियकानि ब्रह्मचरियसारुप्पानि, तत्थ धुवसीलो च होति ठितसीलो च, [N.215] समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो होति अविनिपातधम्मो नियत्तो सम्बोधिपरायणो। [R.232]

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सीलेसु परिपूरकारी होति समाधिस्मिं मत्तसो कारी पञ्ञाय मत्तसो कारी। सो यानि तानि खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि तानि आपज्जति पि वुट्ठाति पि। तं किस्स हेतु? न हि मेत्थ भिक्खवे, अभब्बता वुत्ता। यानि च खो तानि सिक्खापदानि आदिब्रह्मचरियकानि ब्रह्मचरियसारुप्पानि तत्थ धुवसीलो च होति ठितसीलो च, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी होति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करोति।

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सीलेसु परिपूरकारी होति समाधिस्मिं परिपूरकारी पञ्ञाय मत्तसो कारी। सो यानि तानि खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि तानि आपज्जति पि

समाहित हो जाते हैं। कौन सी तीन? (१) अधिशील शिक्षा, (२) अधिचित्त शिक्षा एवं (३) अधिप्रज्ञ शिक्षा—भिक्षुओ! ये तीन शिक्षाएँ हैं, जहाँ वे सभी शिक्षापद समाहित हो जाते हैं।

"भिक्षुओ! कोई भिक्षु सर्वविध शीलों को पूर्ण करता है, परन्तु समाधि तथा प्रज्ञा को कुछ ही मात्रा में पूर्णता प्राप्त करता है। (इन्हें प्राप्त करने पर) जो छोटे या और छोटे शिक्षाप्रद है उन्हें साधक स्वीकार भी करता है, कभी छोड़ भी देता है। ऐसा क्यों? क्योंकि मैंने ऐसा करने में कोई अभव्यता (अयोग्यता) नहीं बतायी है। परन्तु जो शिक्षापद धर्मसाधना के आदि, मध्य तथा अन्त में कल्याणकारक हैं, उनको सतत एवं स्थायी रूप से ग्रहण किये रहना आवश्यक है। ऐसा साधक तीन संयोजनों के क्षीण होने से स्रोतआपन्न हो जाता है। उसका साधना से पतन नहीं होता, अपितु वह सम्बोधि की ओर बढ़ता जाता है।

यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलव्रतों की पूर्णतः पूर्ति करता है, परन्तु समाधिभावना की तथा प्रज्ञाभावना की कुछ ही मात्रा में पूर्ति करने वाला होता है। वह इन या उन छोटे बहुत छोटे शिक्षापदों को...पूर्ववत्...। वह तीन संयोजनों का क्षय होनेसे तथा अपने राग द्वेष एवं मोह में अतिशय अल्पता आ जाने से सकृदागामी की भूमिका में पहुँच जाता है, और वह इस लोक में एक बार आकर साधना द्वारा अपने दुःखों का अन्त कर लेता है।

"यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलव्रत... समाधि... प्रज्ञा भावना को पूर्णता तक पहुँचा देता है।

वुट्ठाति पि। तं किस्स हेतु? न हि मेत्थ, भिक्खवे, अभब्बता वुत्ता। यानि च खो तानि सिक्खापदानि आदिब्रह्मचरियकानि ब्रह्मचरियसारुप्पानि तत्थ धुवसीलो च होति ठितसीलो [B.234] च, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका।

"इध पन भिक्खवे, भिक्खु सीलेसु परिपूरकारी होति समाधिस्मिं परिपूरकारी पञ्ञाय परिपूरकारी। सो यानि तानि खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि तानि आपज्जति पि वुट्ठाति पि। तं किस्स हेतु? न हि मेत्थ, भिक्खवे, अभब्बता वुत्ता। यानि च खो तानि सिक्खापदानि आदिब्रह्मचरियकानि ब्रह्मचरियसारुप्पानि तत्थ धुवसीलो च होति ठितसीलो च, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति।

"इति खो, भिक्खवे, पदेसं पदेसकारी आराधेति परिपूरं परिपूरकारी। अवञ्झानि त्वेवाहं, भिक्खवे, सिक्खापदानि वदामी" ति॥ ●

[N.216] ७. **दुतियसिक्खासुत्तं** : "साधिकमिदं, भिक्खवे, दियड्ढसिक्खापदसतं [R.233] अन्वद्धमासं उद्देसं आगच्छति यत्थ अत्तकामा कुलपुत्ता सिक्खन्ति। तिस्सो इमा, भिक्खवे, सिक्खा यत्थेतं सब्बं समोधानं गच्छति। कतमा तिस्सो? अधिसीलसिक्खा, अधिचित्तसिक्खा, अधिपञ्ञासिक्खा—इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो सिक्खा यत्थेतं सब्बं समोधानं गच्छति।

"इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलेसु परिपूरकारी होति समाधिस्मिं मत्तसो कारी पञ्ञाय मत्तसो कारी। सो यानि तानि खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि तानि आपज्जति पि वुट्ठाति पि। तं किस्स हेतु? न हि मेत्थ, भिक्खवे, अभब्बता वुत्ता। यानि च खो तानि सिक्खापदानि

वह इन या उन ...पूर्ववत्...। वह पाँचों अवरभागीय संयोजनों के पूर्णतः क्षय से औपपातिक (देवलोकवासी) होता है, वहीं परिनिर्वाण प्राप्त करता है। वह पुनः इस लोक में नहीं लौटता। (अनागामी हो जाता है)।

"यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलव्रत... समाधि... प्रज्ञा भावना में पूर्णता प्राप्त कर लेता है। वह इन या उन ...पूर्ववत्...। वह आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर साधना करता है। (वह अर्हत् हो जाता है।)

"इस तरह, भिक्षुओ! कोई भिक्षु भले ही किसी अंश में साधना करे या पूर्ण अंश में साधना करनेवाला हो, ये शिक्षापद तो अवध्य (अत्याज्य) ही रहेंगे—ऐसा मैं कहता हूँ॥" ●

७. द्वितीय शिक्षासूत्र : : तीन शिक्षाएँ

"भिक्षुओ! यह प्रति पन्द्रहवें दिन ...पूर्ववत्...। कौन सी तीन? अधिशील शिक्षा, अधिचित्त शिक्षा एवं अधिप्रज्ञ शिक्षा। भिक्षुओ! ये तीन शिक्षाएँ हैं जहाँ सभी शिक्षापद समाहित हो जाते हैं।

यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु शील... समाधि... प्रज्ञाभावना को पूर्णता तक पहुँचाता है।

आदिब्रह्मचरियकानि ब्रह्मचरियसारुप्पानि तत्थ धुवसीलो च होति ठितसीलो च, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सत्तक्खत्तुपरमो होति। सत्तक्खत्तुपरमं देवे च मनुस्से च सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करोति। सो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया कोलङ्कोलो होति, द्वे वा तीणि वा कुलानि सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करोति। सो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया एकबीजी होति, एकंयेव [B.235] मानुसकं भवं निब्बत्तेत्वा दुक्खस्सन्तं करोति। सो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोस-मोहानं तनुत्ता सकदागामी होति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करोति।

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सीलेसु परिपूरकारी होति समाधिस्मिं परिपूरकारी पञ्ञाय मत्तसो कारी। सो यानि तानि खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि तानि आपज्जति पि वुट्ठाति पि। तं किस्स हेतु? न हि मेत्थ, भिक्खवे, अभब्बता वुत्ता। यानि च खो तानि सिक्खापदानि आदिब्रह्मचरियकानि ब्रह्मचरियसारुप्पानि तत्थ धुवसीलो च होति ठितसीलो च, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया उद्धंसोतो अकनिट्ठगामी। सो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ससङ्खार-परिनिब्बायी होति। सो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया असङ्खारपरिनिब्बायी होति। सो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया उपहच्चपरिनिब्बायी होति। सो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया अन्तरापरिनिब्बायी होति।

...पूर्ववत्...। वह तीन संयोजनों के पूर्णतः क्षय के बाद अपनी जन्मपरम्परा को एक सीमा में बाँध लेता है। अर्थात् उसका यहाँ केवल सात बार ही जन्म होता है—यह निश्चित हो जाता है। वह अपने सात जन्मों तक इस लोक या परलोक में देव या मनुष्य योनियों में जन्म लेता हुआ, साधना करता हुआ, अपने दुःखों का अन्त कर लेता है। या फिर वह तीन संयोजनों का क्षय होने से **कोलङ्कोल** हो जाता है। अर्थात् वह इस या उस दो तीन कुलों में जन्म लेकर (साधना करते हुए) अपने दुःखों का अन्त कर लेता है। अन्त में वह अपने तीन संयोजनों के पूर्णतः क्षय के कारण **एकबीजी** हो जाता है। एक ही मानवदेह पाकर वहीं साधना करता हुआ परिनिर्वाण प्राप्त कर लेता है। वह तीन संयोजनों के क्षय के कारण और राग द्वेष मोह के अल्प हो जाने के कारण 'सकृदागामी' होता है। तथा वह एक ही बार इस लोग में आकर साधना द्वारा अपने दुःखों का अन्त कर लेता है। (१)

''भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु शीलव्रत को, समाधिभावना पूर्ण कर लेता है एवं प्रज्ञाभावना को कुछ ही मात्रा में पूर्ण कर पाता है। वह इस उन शिक्षापदों को ...पूर्ववत्...। वह पाँच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से ऊर्ध्वस्रोत अकनिष्ठगामी[१] होता है। वह पाँच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से

---

१. जो साधक अनागामी हो कर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और वह अविह ब्रह्मलोक से च्युत होकर अतप्प ब्रह्मलोक को जाता है, अतप्प से च्युत हो कर सुदस्स ब्रह्मलोक को जाता है, वहाँ से च्युत होकर सुदस्सी ब्रह्मलोक को जाता है और वहाँ से च्युत हो अकनिष्ठ ब्रह्मलोक में जा कर ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिये आर्यमार्ग उत्पन्न करता है, उसे '**उद्धंसोतो अकनिट्ठगामी**' कहते हैं।

[N.217] ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सीलेसु परिपूरकारी होति समाधिस्मिं परिपूरकारी पञ्ञाय परिपूरकारी। सो यानि तानि खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि तानि आपज्जति पि [R.234] वुट्ठाति पि। तं किस्स हेतु? न हि मेत्थ, भिक्खवे, अभब्बता वुत्ता। यानि च खो तानि सिक्खापदानि आदिब्रह्मचरियकानि ब्रह्मचरियसारुप्पानि तत्थ धुवसीलो च होति ठितसीलो च, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति।

''इति खो, भिक्खवे, पदेसं पदेसकारी आराधेति, परिपूरं परिपूरकारी, अवञ्झानि त्वेवाहं, भिक्खवे, सिक्खापदानि वदामी'' ति॥ ●

८. **ततियसिक्खासुत्तं :** ''साधिकमिदं, भिक्खवे, दियड्ढसिक्खापदसतं अनवद्ध-मासं उद्देसं आगच्छति यत्थ अत्तकामा कुलपुत्ता सिक्खन्ति। तिस्सो इमा, भिक्खवे, सिक्खा [B.236] यत्थेतं सब्बं समोधानं गच्छति। कतमा तिस्सो? अधिसीलसिक्खा, अधिचित्त-सिक्खा, अधिपञ्ञासिक्खा—इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो सिक्खा यत्थेतं सब्बं समोधानं गच्छति।

ससंस्कारपरिनिर्वायी[१] **...असंस्कारपरिनिर्वायी**[२] **...उपहत्यपरिनिर्वायी**[३] **...अन्तरापरिनिर्वायी**[४] होता है। (२)

''भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु शीलव्रत को, समाधिभावना को, प्रज्ञाभावना को परिपूर्ण कर लेता है। वह इन उन शिक्षापदों को...पूर्ववत्...। वह आश्रवों के पूर्ण क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात् कर साधना करता रहता है।

''इस तरह, भिक्षुओ! कोई भिक्षु, भले ही किसी अंश में साधना करे या उस साधना को पूर्णता तक पहुँचा दे ये शिक्षापद तो अवध्य (अत्याज्य) ही रहेंगे—ऐसा मैं कहता हूँ॥'' ●

८. तृतीय शिक्षासूत्र : : तीन शिक्षा

''भिक्षुओ! ये डेढ़ सौ से अधिक शिक्षापद प्रति पन्द्रहवें दिन स्मरण करने पड़ते हैं, जिन से आप्तकाम कुलपुत्र शिक्षा ग्रहण करते हैं। भिक्षुओ! ये तीन शिक्षाएँ हैं, जहाँ उक्त सभी शिक्षापद

---

१. जो साधक अनागामी हो कर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और वह बड़े दु:ख के साथ कठिनाई से ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिये आर्यमार्ग को उत्पन्न करता है, उसे '**ससङ्खारपरिनिब्बायी**' कहते हैं।

२. जो साधक अनागामी हो कर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और अल्प प्रयत्न से ही ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिये आर्यमार्ग को उत्पन्न कर लेता है, उसे '**असङ्खारपरिनिब्बायी**' कहते हैं।

३. जो साधक अनागामी हो कर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न हो मध्य आयु के बीत जाने पर अथवा देहपात (मृत्यु) के समय ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिये आर्यमार्ग को उत्पन्न कर लेता है, उसे '**उपहच्च परिनिब्बायी**' कहते हैं।

४. जो साधक पाँच अध: संयोजनों के नष्ट हो जाने पर अनागामी हो कर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होने के बाद ही अथवा मध्य आयु से पूर्व ही ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिये आर्यमार्ग को उत्पन्न कर लेता है उसे '**अन्तरापरिनिब्बायी**' कहते हैं।

''इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलेसु परिपूरकारी होति समाधिस्मिं परिपूरकारी पञ्ञाय परिपूरकारी। सो यानि तानि खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि तानि आपज्जति पि वुट्ठाति पि। तं किस्स हेतु? न हि मेत्थ, भिक्खवे, अभब्बता वुत्ता। यानि च खो तानि सिक्खपदानि आदिब्रह्मचरियकानि ब्रह्मचरियसारुप्पानि तत्थ धुवसीलो च होति ठितसीलो च, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। सो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। तं वा पन अनभिसम्भवं अप्पटिविज्झं पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया अन्तरापरिनिब्बायी होति। तं वा पन अनभिसम्भवं अप्पटिविज्झं पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया उपहच्च-परिनिब्बायी होति। तं वा पन अनभिसम्भवं अप्पटिविज्झं पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ससङ्खारपरिनिब्बायी होति। तं वा पन अनभिसम्भवं अप्पटिविज्झं पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया उद्धंसोतो होति अकनिट्ठगामी। तं वा पन अनभि-सम्भवं अप्पटिविज्झं तिण्णं संयोजनानं परिक्खया, रागदोसमोहानं तनुत्ता [N.218] सकदागामी होति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करोति। तं वा पन [R.235] अनभिसम्भवं अप्पटिविज्झं तिण्णं संयोजनानं परिक्खया एकबीजी होति, एकंयेव मानुसकं भवं निब्बत्तेत्वा दुक्खस्सन्तं करोति। तं वा पन अनभिसम्भवं अप्पटिविज्झं तिण्णं संयोजनानं परिक्खया कोलङ्कोलो होति, द्वे वा तीणि वा कुलानि सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करोति। तं वा पन अनभिसम्भवं अप्पटिविज्झं तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सत्तक्खत्तुपरमो होति, सत्तक्खत्तुपरमं देवे च मनुस्से च सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करोति।

''इति खो, भिक्खवे, परिपूरं परिपूरकारी आराधेति पदेसं पदेसकारी। अवज्झानि त्वेवाहं, भिक्खवे, सिक्खापदानि वदामी'' ति॥ ●

अन्तर्भूत हो जाते हैं। कौन सी तीन? शीलविषयक शिक्षा, समाधिविषयक शिक्षा एवं प्रज्ञाविषयक शिक्षा। भिक्षुओ! ये तीन शिक्षाएँ हैं जहाँ वे सभी शिक्षापद अन्तर्भूत (समाहित) हो जाते हैं।

''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलाचार में... समाधिभावना में... प्रज्ञाभावना में पूर्णता प्राप्त करता है। वह इन उन ...पूर्ववत्... स्वयं जानकर साक्षात् कर साधना करता है। क्रमशः पूर्ण की गयी यह साधना सरलता एवं सहजता से प्राप्त एवं ज्ञात हो जाती है। इस साधना के कारण पाँच अवरभागीय संयोजनों का क्षय हो जाने से वह साधक अन्तरापरिनिर्वायी... उपहत्यपरिनिर्वायी... असंस्कारपरिनिर्वायी... ससंस्कारपरिनिर्वायी... ऊर्ध्वस्रोत अकनिष्ठगामी... सकृदागामी... एकबीजी... कोलङ्कोल... सप्तकृत्वपरम होता है। अर्थात् वह केवल सात बार देवलोक या मनुष्यलोक में जन्म लेकर साधना द्वारा अपने दुःखों का अन्त कर लेता है।

''इस प्रकार, भिक्षुओ! ...पूर्वसूत्रवत्... मैं ऐसा मानता हूँ॥'' ●

[इस सूत्र के अविकल अनुवाद हेतु अनुपदपठित पूर्वसूत्र का सहारा लें]

[B.237] **९. पठमसिक्खत्तयसुत्तं :** "तिस्सो इमा, भिक्खवे, सिक्खा। कतमा तिस्सो? अधिसीलसिक्खा, अधिचित्तसिक्खा, अधिपञ्ञासिक्खा।

"कतमा च, भिक्खवे, अधिसीलसिक्खा? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अधिसीलसिक्खा।

"कतमा च, भिक्खवे, अधिचित्तसिक्खा? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अधिचित्त-सिक्खा।

"कतमा च, भिक्खवे, अधिचित्तसिक्खा? इध, भिक्खवे, भिक्खु 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अधिचित्तसिक्खा। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो सिक्खा" ति॥

१०. दुतियसिक्खत्तयसुत्तं : "तिस्सो इमा, भिक्खवे, सिक्खा। कतमा तिस्सो? अधिसीलसिक्खा, अधिचित्तसिक्खा, अधिपञ्ञासिक्खा।

"कतमा च, भिक्खवे, अधिसीलसिक्खा? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अधिसीलसिक्खा।

[N.219] "कतमा च, भिक्खवे, अधिचित्तसिक्खा? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अधिचित्तसिक्खा।

---

९. प्रथम शिक्षात्रयसूत्र : : शिक्षात्रय

"भिक्षुओ! ये तीन शिक्षाएँ होती हैं। कौन सी तीन? (१) अधिशील शिक्षा, (२) अधिचित्त शिक्षा एवं (३) अधिप्रज्ञ शिक्षा।

"भिक्षुओ! इनमें **अधिशील शिक्षा** क्या होती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलवान् होता है ...पूर्ववत्... शिक्षापदों को ग्रहण करता हुआ। भिक्षुओ! यह कहलाती है—अधिशील शिक्षा। (१)

"पुनः, भिक्षुओ! **अधिचित्त शिक्षा** क्या होती है? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु कामभोगों से अकुशल धर्मों से पृथक् रहकर ...पूर्ववत्... चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। यह कहलाती है—अधिचित्त शिक्षा। (२)

"और, भिक्षुओ! **अधिप्रज्ञ शिक्षा** क्या होती है? भिक्षुओ! जो 'यह दुःख है'—यह भलीभाँति जानता है, ...पूर्ववत्... 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—यह भलीभाँति जानता है। भिक्षुओ! यह कहलाती है—अधिप्रज्ञ शिक्षा। भिक्षुओ! इस प्रकार ये तीन शिक्षाएँ कहलाती हैं॥"

१०. द्वितीय शिक्षात्रयसूत्र : : शिक्षात्रय

"भिक्षुओ! ये तीन शिक्षाएँ होती हैं।...पूर्वसूत्रवत्...।

"भिक्षुओ! अधिशील शिक्षा क्या होती है? ...पूर्वसूत्रवत्...।

"भिक्षुओ! अधिचित्त शिक्षा क्या होती है? ...पूर्वसूत्रवत्...।

"कतमा च, भिक्खवे, अधिचित्तसिक्खा? इध, भिक्खवे, भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अधिपञ्ञा सिक्खा। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो सिक्खा ति।

"अधिसीलं अधिचित्तं, अधिपञ्ञं च विरियवा।
थामवा धितिमा झायी, सतो गुत्तिन्द्रियो चरे॥
"यथा पुरे तथा पच्छा, यथा पच्छा तथा पुरे।
यथा अधो तथा उद्धं, यथा उद्धं तथा अधो॥
"यथा दिवा तथा रत्तिं, यथा रत्तिं तथा दिवा।
अभिभुय्य दिसा सब्बा, अप्पमाणसमाधिना॥
"तमाहु सेखं पटिपदं, अथो संसुद्धचारियं।
तमाहु लोके सम्बुद्धं, धीरं पटिपदन्तगुं॥
"विञ्ञाणस्स निरोधेन, तण्हाक्खयविमुत्तिनो।
पज्जोतस्सेव निब्बानं, विमोक्खो होति चेतसो" ति॥ ●

११. सङ्कवासुत्तं : एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन सङ्कवा नाम कोसलानं निगमो तदवसरि। तत्र सुदं भगवा सङ्कवायं

"भिक्षुओ! अधिप्रज्ञ शिक्षा क्या होती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को प्राप्त कर इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात् कर साधना करता है। यह कहलाती है, भिक्षुओ! अधिप्रज्ञ शिक्षा। भिक्षुओ! ये होती हैं तीन शिक्षाएँ।

"साधक को शील, चित्त एवं प्रज्ञा के विषय में वीर्यवान्, सामर्थ्यवान्, धृतिमान् एवं ध्यानी, स्मृतिसम्पन्न एवं इन्द्रियों पर संयम रखते हुए लोक में विचरण करना चाहिये॥

"जैसे आगे वैसे ही पीछे, जैसे पीछे वैसे ही आगे; जैसे नीचे वैसे ही ऊपर, जैसे ऊपर वैसे ही नीचे; जैसे दिन वैसे ही रात्रि, या जैसे रात्रि वैसे ही दिन में सभी दिशाओं को अप्रमाण समाधि द्वारा अपने अधीन कर जो विचरण करता है॥

उसे शैक्ष्य, मार्गारूढ एवं पवित्र आचरण वाला कहते हैं। उसी को लोक में पूर्ण साधनासम्पन्न, मार्ग के अन्तिम लक्ष्य (निर्वाण) तक पहुँचा हुआ पूर्ण ज्ञानी कहा जाता है॥

"विज्ञान के निरोध से तृष्णाक्षय के कारण विमुक्तिप्राप्त भिक्षु के सम्मुख ही निर्वाण का आलोक प्रकट होता है। उसी का चित्त सांसारिक विकारों से युक्त (विमुक्तिज्ञानयुक्त) माना जाता है॥" ●

११. सङ्कवासूत्र : : शिक्षाकाम भिक्षु

एक समय भगवान् (बुद्ध) कोसल प्रदेश में चारिका करते हुए विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ **सङ्कवा** नामक कोसल क्षत्रियों के किसी निगम में पधारे। उस समय कोई काश्यपगोत्र नामक भिक्षु

विहरति। तेन खो पन समयेन कस्सपगोत्तो नाम भिक्खु सङ्कवायं आवासिको होति। तत्र सुदं भगवा सिक्खापदपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय भिक्खू सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। अथ खो कस्सपगोत्तस्स भिक्खुनो भगवति सिक्खापदपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय भिक्खू सन्दस्सेन्ते समादपेन्ते समुत्तेजेन्ते सम्पहंसेन्ते अहुदेव अक्खन्ति अहु अप्पच्चयो—"अधिसल्लिखतेवायं समणो" ति। अथ खो भगवा सङ्कवायं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन राजगहं तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन राजगहं [R.237] तदवसरि। तत्र सुदं भगवा राजगहे विहरति।

[N.220] अथ खो कस्सपगोत्तस्स भिक्खुनो अचिरपक्कन्तस्स भगवतो अहुदेव कुक्कुच्चं [B.239] अहु विप्पटिसारो—"अलाभा वत मे, न वत मे लाभा; दुल्लद्धं वत मे, न वत मे सुलद्धं; यस्स मे भगवति सिक्खापदपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय भिक्खू सन्दस्सेन्ते समादपेन्ते समुत्तेजेन्ते सम्पहंसेन्ते अहुदेव अक्खन्ति अहु अप्पचयो—'अधिसल्लिखतेवायं समणो' ति। यन्नूनाहं येन भगवा तेनुपसङ्कमेय्यं; उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके अच्चयं अच्चयतो देसेय्यं" ति। अथ खो कस्सपगोत्तो भिक्खु सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय येन राजगहं तेन पक्कामि। अनुपुब्बेन येन राजगहं येन गिज्झकूटो पब्बतो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो कस्सपगोत्तो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—

"एकमिदं, भन्ते, समयं भगवा सङ्कवाय विहरति, सङ्कवा नाम कोसलानं निगमो। तत्र, भन्ते, भगवा सिक्खापदपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय भिक्खू सन्दस्सेसि समादपेसि

वहाँ आवासिक (भिक्षु-आवास का प्रबन्धक) था। वहाँ भगवान् ने शिक्षापदों के विस्तृत निरूपण के साथ धार्मिक कथा से उपस्थित भिक्षुओं को समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित एवं आप्लावित किया। परन्तु वह काश्यपगोत्र आवासिक भिक्षु इस कथा को सुनकर बहुत असन्तुष्ट एवं अविश्वस्त होता हुआ भगवान् के विषय में सोच बैठा—"यह श्रमण तो हमें कठोर तपश्चर्या की ओर ढकेल रहा है!" तब भगवान् उस सङ्कवा ग्राम में कुछ समय ठहर कर साधना के बाद वहाँ से चारिका करते हुए राजगृह की ओर निकल पड़े और राजगृह पहुँचकर वहाँ साधनारत हो गये।

परन्तु भगवान् के पधारने के कुछ समय बाद ही उस काश्यपगोत्र भिक्षु को यह पश्चात्ताप एवं प्रायश्चित्त होने लगा—"अरे! मैंने तो बहुत अपुण्य का सञ्चय कर लिया, इससे मेरी हानि ही होगी; क्योंकि अशुभ संग्रह का फल अशुभ ही हुआ करता है। मैंने बहुत अनुचित किया कि मैं धार्मिक कथा करते हुए भगवान् को यह कह बैठा कि यह श्रमण तो हमें कठोर तपस्या की ओर ढकेल रहा है। ऐसा पापमय वचन मुझे नहीं कहना चाहिये था। अतः क्यों न मैं अब भगवान् के सम्मुख पहुँचकर इस दुर्वचन की क्षमा माँग लूँ!" यह विचार कर वह भिक्षु... राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर आया, तथा भगवान् के सम्मुख पहुँचकर प्रणाम कर उनसे यों निवेदन करने लगा—

"भन्ते! एक समय भगवान् सङ्कवा नाम कौशल ग्राम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ आप ने भिक्षुओं को शिक्षापदों का निरूपण करते हुए धार्मिक कथा से धर्मपालनहेतु समुत्तेजित,

समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। तस्स मय्हं भगवति सिक्खापदपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय भिक्खू सन्दस्सेन्ते समादपेन्ते समुत्तेजेन्ते सम्पहंसेन्ते अहुदेव अक्खन्ति अहु अप्पच्चयो—'अधिसल्लिखतेवायं समणो' ति। अथ खो भगवा सङ्कवायं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन राजगहं तेन चारिकं पक्कामि। तस्स मय्हं, भन्ते, अचिरपक्कन्तस्य भगवतो अहुदेव कुक्कुच्चं अहु विप्पटिसारो—'अलाभा वत मे, न वत मे लाभा; दुल्लद्धं वत मे, न वत मे सुलद्धं; यस्स मे भगवति सिक्खापदपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय भिक्खू सन्दस्सेन्ते समादपेन्ते समुत्तेजेन्ते सम्पहंसेन्ते अहुदेव अक्खन्ति अहु अप्पच्चयो—'अधिसल्लिखिते-वायं समणो' ति। यन्नूनाहं येन भगवा तेनुपसङ्कमेय्यं; उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके अच्चयं अच्चयतो देसेय्य' ति। अच्चयो मं, भन्ते, अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं [R.238] यथाअकुसलं यस्स मे भगवति सिक्खापदपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय भिक्खू सन्दस्सेन्ते समादपेन्ते समुत्तेजेन्ते सम्पहंसेन्ते अहुदेव अक्खन्ति अहु अप्पच्चयो—'अधिसल्लिखतेवायं समणो' ति। तस्स मे, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु, आयतिं [B.30] संवराया'' ति।

''तग्घ तं, कस्सप, अच्चयो अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, यस्स ते मयि सिक्खापदपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय भिक्खू सन्दस्सेन्ते समादपेन्ते समुत्तेजेन्ते सम्पहंसेन्ते अहुदेव अक्खन्ति अहु अप्पच्चयो—'अधिसल्लिखतेवायं समणो' [N.221] ति। यतो च खो त्वं, कस्सप, अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोसि, तं ते मयं पटिग्गण्हाम। वुद्धि हेसा, कस्सप, अरियस्स विनये यो अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोति, आयतिं संवरं आपज्जति।

''थेरो चे पि, कस्सप, भिक्खु होति न सिक्खाकामो न सिक्खासमादानस्स वण्णवादी, ये चञ्ञे भिक्खू न सिक्खाकामा ते च न सिक्खाया समादपेति, ये चञ्ञे भिक्खू

सम्प्रहर्षित एवं प्रोत्साहित किया। परन्तु उसे सुनकर मैंने ये कुवचन कह दिये—'यह श्रमण हमें कठोर तपस्या की ओर ढकेल रहा है।' ऐसा मुझे नहीं कहना चाहिये था। बाद में मुझे, मेरे इस कुकृत्य पर, बहुत पश्चात्ताप हुआ...। मैंने निश्चय किया कि मैं भगवान् के सम्मुख जाकर स्वयं अपने इस कुकृत्य की क्षमायाचना करूँ। एतदर्थ अब मैं श्रीचरणों में उपस्थित हुआ हूँ। कृपाकर मुझे उक्त अपराधहेतु क्षमा करें। भविष्य में, मैं ऐसा प्रमाद कभी नहीं करूँगा।''

''काश्यप! तुमने ऐसा प्रमाद कर बहुत बड़ा अपराध किया है कि मेरी धार्मिक कथा पर मिथ्या धारणा प्रकट की; परन्तु तूँ अब शुद्ध हृदय से अपने उस कुकृत्य की, प्रायश्चित्तस्वरूप, क्षमायाच्ना भी कर रहा है। अत: हम उसे क्षमा करते हैं; क्योंकि हमारे आर्यविनय के अनुसार, ऐसा करने से धर्म में वृद्धि ही होती है, तथा भविष्य में दृढ़ अनुशासन में यह कार्य सार्थक होता है।

''काश्यप! कोई स्थविर स्वयं न शिक्षा का इच्छुक होता है न शिक्षाग्रहण की प्रशंसा ही करता है, तथा दूसरे जो भिक्षु शिक्षा के इच्छुक नहीं होते उनको भी शिक्षाग्रहण हेतु प्रोत्साहित नहीं करता; अपितु दूसरे ऐसे भिक्षु जो शिक्षा ग्रहण कर रहे होते हैं, उनकी भी प्रशंसा नहीं करता, ऐसे

सिक्खाकामा तेसं च न वण्णं भणति भूतं तच्छं कालेन, एवरूपस्साहं, कस्सप, थेरस्स भिक्खुनो वण्णं भणामि। तं किस्स हेतु? सत्था हिस्स वण्णं भणती ति अञ्ञे नं भिक्खू भजेय्युं, ये नं भजेय्युं त्यास्स दिट्ठानुगतिं आपज्जेय्युं, य्यास्स दिट्ठानुगतिं आपज्जेय्युं तेसं तं अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया ति। तस्माहं, कस्सप, एवरूपस्स थेरस्स भिक्खुनो न वण्णं भणामि।

''मज्झिमो चे पि, कस्सप, भिक्खु होति ...पे०... नवो चे पि, कस्सप, भिक्खु होति न सिक्खाकामो न सिक्खासमादानस्स वण्णवादी, ये चञ्ञे भिक्खू न सिक्खाकामा ते च न सिक्खाया समादपेति, ये चञ्ञे भिक्खू सिक्खाकामा तेसं च न वण्णं भणति भूतं तच्छं कालेन, एवरूपस्साहं, कस्सप, नवस्स भिक्खुनो न वण्णं भणामि। तं किस्स हेतु? सत्था [R.239] हिस्स वण्णं भणती ति अञ्ञे नं भिक्खू भजेय्युं, ये नं भजेय्युं त्यास्स दिट्ठानुगतिं आपज्जेय्युं, य्यास्स दिट्ठानुगतिं आपज्जेय्युं तेसं तं अस्स दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया ति। तस्माहं, कस्सप, एवरूपस्स नवस्स भिक्खुनो न वण्णं भणामि।

[B.241] ''थेरो चे पि, कस्सप, भिक्खु होति सिक्खाकामो सिक्खासमादानस्स वण्णवादी, ये चञ्ञे भिक्खू न सिक्खाकामा ते च सिक्खाय समादपेति, ये चञ्ञे भिक्खू सिक्खाकामा तेसं च वण्णं भणति भूतं तच्छं कालेन, एवरूपस्साहं, कस्सप, थेरस्स भिक्खुनो वण्णं भणामि। तं किस्स हेतु? सत्था हिस्स वण्णं भणती ति अञ्ञे नं भिक्खू भजेय्युं, ये नं भजेय्युं त्यास्स दिट्ठानुगतिं आपज्जेय्युं, य्यास्स दिट्ठानुगतिं आपज्जेय्युं तेसं तं अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया ति। तस्माहं, कस्सप, एवरूपस्स थेरस्स भिक्खुनो वण्णं भणामि॥

''मज्झिमो चे पि, कस्सप, भिक्खु होति सिक्खाकामो ...पे०... नवो चे पि, कस्सप, [N.222] भिक्खु होति सिक्खाकामो सिक्खासमादानस्स वण्णवादी, ये चञ्ञे भिक्खू न सिक्खाकामा ते च सिक्खाय समादपेति, यो चञ्ञे भिक्खू सिक्खाकामा तेसं च वण्णं भणति भूतं तच्छं कालेन, एवरूपस्साहं, कस्सप, नवस्स भिक्खुनो वण्णं भणामि। तं किस्स हेतु? सत्था हिस्स वण्णं भणती ति अञ्ञे नं भिक्खू भजेय्युं, ये नं भजेय्युं त्यास्स दिट्ठानुगतिं

भिक्षु की मैं प्रशंसा नहीं करता। वह किसलिये? वह इसलिये कि शास्ता जब इस भिक्षु का महत्त्व बता रहे हैं तो अन्य भिक्षु इसको अपनायेंगे ही। जो नहीं अपनायेंगे उनका भविष्य में दीर्घकाल तक अहित होगा ही। इस दृष्टि से, काश्यप! मैं इस स्थविर भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता।

''काश्यप! कोई मध्यम भिक्षु...पूर्ववत्... कोई नवक भिक्षु भी स्वयं न शिक्षा का इच्छुक होता है, न शिक्षा ग्रहण की प्रशंसा करता है ...पूर्ववत्... इस नवक भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता॥

''काश्यप! कोई स्थविर भिक्षु जो स्वयं शिक्षा का इच्छुक होता है दूसरे शिक्षा ग्रहण करने वालों की प्रशंसा करता है ...पूर्ववत्... ऐसे स्थविर की मैं प्रशंसा करता हूँ।

''काश्यप! कोई मध्यम भिक्षु जो स्वयं शिक्षा का इच्छुक होता है...पूर्ववत्...। कोई नवक भिक्षु जो स्वयं शिक्षा का इच्छुक होता है, दूसरों द्वारा शिक्षाग्रहण की प्रशंसा करता है...पूर्ववत्... वह

आपज्जेय्युं, य्यास्स दिट्ठानुगतिं आपज्जेय्युं तेसं तं अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया ति। तस्माहं, कस्सप, एवरूपस्स नवस्स भिक्खुनो वण्णं भणामी'' ति॥ ●

समणवग्गो नवमो॥

तत्सुद्दानं

समणो गद्रभो खेत्तं, वज्जिपुत्तो च सेक्खकं।
तयो च सिक्खना वुत्ता, द्वे सिक्खा सङ्कवाय चा ति॥ ●

१०. लोणकपल्लवग्गो

१. अच्चायिकसुत्तं : ''तीणिमानि, भिक्खवे, कस्सकस्स गहपतिस्स अच्चायिकानि करणीयानि। कतमानि तीणि? इध, भिक्खवे, कस्सको गहपति सीघं सीघं खेत्तं सुकट्ठं करोति सुमतिकतं। सीघं सीघं खेत्तं सुकट्ठं करित्वा सुमतिकतं सीघं सीघं बीजानि पतिट्ठापेति। सीघं सीघं बीजानि पतिट्ठापेत्वा सीघं सीघं उदकं अभिनेति [B.242] पि अपनेति पि। इमानि, खो भिक्खवे, तीणि कस्सकस्स गहपतिस्स [R.240] अच्चायिकानि करणीयानि। तस्स खो, तं, भिक्खवे, कस्सकस्स गहपतिस्स नत्थि सा इद्धि वा आनुभावो वा—'अज्जेव मे धञ्ञानि जायन्तु, स्वेव गब्भीनि होन्तु, उत्तरस्वेव पच्चन्तू'

दीर्घकाल तक उनको हितकर एवं सुखप्रद होगा, इसलिये मैं इस नवक भिक्षु की प्रशंसा करता हूँ॥''

श्रमणवर्ग नवम सम्पन्न॥ ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. श्रमणसूत्र, २. गर्दभसूत्र, ३. क्षेत्रसूत्र, ४. वज्जिपुत्रसूत्र, ५. शैक्ष्यसूत्र, ६. प्रथम शिक्षासूत्र, ७. द्वितीय शिक्षासूत्र, ८. तृतीय शिक्षासूत्र, ९. प्रथम शिक्षात्रयसूत्र, १०. द्वितीय शिक्षात्रय सूत्र एवं ११. सङ्कवासूत्र॥ ●

१०. लवणकपालवर्ग

१. आत्ययिक सूत्र : : तीन शीघ्र करणीय कर्म

''भिक्षुओ! किसी कृषक गृहपति के ये तीन शीघ्र करणीय कर्म होते हैं। कौन से तीन? (१) भिक्षुओ! यहाँ कोई कृषक गृहपति अपने खेत को शीघ्रता से इच्छानुसार जोतता है; (२) उस खेत को ठीक से जोतकर उसमें शीघ्रता से बीज बोता है; (३) फिर उसमें बीज बोकर शीघ्रता से उसको जल से सींचता है, तथा अधिक हो जाय तो उसमें से कुछ निकाल देता है। भिक्षुओ! उस गृहपति के ये तीन शीघ्र करणीय कर्म हैं। यद्यपि उस कृषक गृहपति के पास ऐसी कोई दिव्य ऋद्धि या अलौकिक चमत्कार तो है नहीं कि जिसके सहारे से वह यह कर सके—'आज ही मेरे खेत में धान्य उग आवें, कल उनमें दाने पड़ जायँ, परसों वे दाने पक जायँ।' भिक्षुओ! इसमें तो समय की

ति। अथ खो, भिक्खवे, होति सो समयो यं तस्स कस्सकस्स गहपतिस्स तानि धञ्ञानि उतुपरिणामीनि जायन्ति पि गब्भीनि पि होन्ति पच्चन्ति पि।

"एवमेव खो, भिक्खवे, तीणिमानि भिक्खुस्स अच्चायिकानि करणीयानि। कतमानि तीणि? अधिसीलसिक्खासमादानं, अधिचित्तसिक्खासमादानं, अधिपञ्ञा-सिक्खासमादानं—इमानि खो, भिक्खवे, तीणि भिक्खुस्स अच्चायिकानि करणीयानि। तस्स खो तं, भिक्खवे, भिक्खुनो नत्थि सा इद्धि वा आनुभावो वा—'अज्जेव मे अनुपादाय [N.223] आसवेहि चित्तं विमुच्चतु स्वे वा उत्तरस्वे वा' ति। अथ खो, भिक्खवे, होति सो समयो यं तस्स भिक्खुनो अधिसीलं पि सिक्खतो अधिचित्तं पि सिक्खतो अधिपञ्ञं पि सिक्खतो अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चति।

"तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'तिब्बो नो छन्दो भविस्सति अधिसील-सिक्खासमादाने, तिब्बो छन्दो भविस्सति अधिचित्तसिक्खासमादाने, तिब्बो छन्दो भविस्सति अधिपञ्ञासिक्खासमादाने' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥ ●

२. पविवेकसुत्तं : तीणिमानि, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका पविवेकानि पञ्ञापेन्ति। कतमानि तीणि? चीवरपविवेकं, पिण्डपातपविवेकं, सेनासनपविवेकं।

"तत्रिदं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका चीवरपविवेकस्मिं पञ्ञापेन्ति,

---

प्रतीक्षा करनी पड़ती है कि उस कृषक गृहपति के खेत में क्रमशः, ऋतु के अनुसार, धान का अंकुर फूटे, फिर वह अंकुर क्रमशः बढ़े, फिर कभी क्रमशः उसमें दाने पड़ें, फिर वे पकें।

"इसी प्रकार, भिक्षुओ! भिक्षु के भी तीन शीघ्र करणीय कर्म होते हैं। कौन से तीन? (१) अधिशील शिक्षा का ग्रहण, (२) अधिचित्त शिक्षा का ग्रहण एवं (३) अधिप्रज्ञ शिक्षा का ग्रहण। भिक्षुओ! ये तीन भिक्षु के भी शीघ्र करणीय कर्म होते हैं। भिक्षुओ! उस भिक्षु के पास कोई ऐसी ऋद्धि या अलौकिक चमत्कार तो है नहीं कि वह विचारने लगे—'आज या कल या परसों तक मेरा चित सभी विकारों से मुक्त हो जाय।' भिक्षुओ! इसमें समय लगता है; उस भिक्षु द्वारा शील, चित्त एवं प्रज्ञा के विषय में ग्रहण की गयी शिक्षा के बाद साधना करते करते समय आने पर ही आश्रवों से चित्त विमुक्त हो पायगा।

"इसलिये, भिक्षुओ! यह सीखना चाहिये—'शीलविषयक शिक्षा के ग्रहण में, चित्त विषयक शिक्षा के ग्रहण में तथा प्रज्ञाविषयक शिक्षा के विषय में हमारा तीव्र अभिलाष हो।' भिक्षुओ! ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये॥" ●

२. प्रविवेक सूत्र : : तीन प्रविवेक (एकान्त)

"भिक्षुओ! अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजक इन तीन प्रविवेकों का प्रज्ञापन (उपदेश) करते हैं। कौन से तीन? (१) चीवर (वस्त्र) प्रविवेक, (२) पिण्डपात (भोजन) प्रविवेक, एवं (३) शयनासन प्रविवेक।

यहाँ, भिक्षुओ! दूसरे सम्प्रदायों के परिव्राजक चीवरप्रविवेक में यह प्रज्ञप्त करते हैं। वे साण

साणानि पि धारेन्ति, मसाणानि पि धारेन्ति, छवदुस्सानि पि धारेन्ति, पंसुकूलानि पि धारेन्ति, तिरीटानि पि धारेन्ति, अजिनं पि धारेन्ति, अजिनक्खिपं पि धारेन्ति, कुसचीरं पि धारेन्ति, वाकचीरं पि धारेन्ति, फलकचीरं पि धारेन्ति, केसकम्बलं पि धारेन्ति, वाळकम्बलं पि धारेन्ति, उलूकपक्खिकं पि धारेन्ति। इदं खो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका चीवरपविवेकस्मिं पञ्ञापेन्ति। [B.243, B.241]

''तत्रिदं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका पिण्डपातपविवेकस्मिं पञ्ञापेन्ति। साकभक्खा पि होन्ति, सामाकभक्खा पि होन्ति, नीवारभक्खा पि होन्ति, दद्दुलभक्खा पि होन्ति, हटभक्खा पि होन्ति, कणभक्खा पि होन्ति, आचामभक्खा पि होन्ति, पिञ्ञाकभक्खा पि होन्ति, तिणभक्खा पि होन्ति, गोमयभक्खा पि होन्ति, वनमूलफलाहारा यापेन्ति पवत्तफलभोजी। इदं खो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका पिण्डपातपविवेकस्मिं पञ्ञापेन्ति।

''तत्रिदं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका सेनासनपविवेकस्मिं पञ्ञापेन्ति अरञ्ञं रुक्खमूलं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं भुसागारं। इदं खो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका सेनासनपविवेकस्मिं पञ्ञापेन्ति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका पविवेकानि पञ्ञापेन्ति।

''तीणि खो पनिमानि, भिक्खवे, इमस्मिं धम्मविनये भिक्खुनो [N.224] पविवेकानि। कतमानि तीणि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा च होति, दुस्सील्यं चस्स

(सन के वस्त्र) भी, मसाण (मसृण=चिकने वस्त्र) भी, शवपर उढाया गया दुशाला भी, पांशुकूल भी, तिरीट (वृक्ष की छाल के बने वस्त्र) भी, अजिन (चर्म) के वस्त्र भी, कुश के वृक्षों की त्वचाओं से बने वस्त्र भी, (१) फटे हुए वस्त्र भी, केशों से बने कम्बल भी, बालों से बने कम्बल भी, उल्लू के पंखों से बने वस्त्र भी धारण करते हैं। भिक्षुओ! अन्य तीर्थिक परिव्राजकों का चीवर धारण के विषय में यह उपदेश है। (१)

''भिक्षुओ! पिण्डपात के विषय में अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजकों की यह धारणा है—वे शाक भी, श्यामाक भी, नीवार भी, दर्दुर (एक प्रकार का चावल) भी, हट (कूटा हुआ धान) भी, कण भी, आचाम (उबले चावलों का मांड) भी, पिण्याक (तैल निकालने के बाद बची हुई तिल आदि की खली) भी, गोबर भी, वन में उत्पन्न कन्दमूल फल भी या वृक्षों से गिरे हुए फल ही खाते हैं। भिक्षुओ! अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजकों का भोजन इस प्रकार का होता है। (२)

''भिक्षुओ! दूसरे सम्प्रदायों के परिव्राजक शयनासन के विषय में अपना यह मत रखते हैं—वे अरण्यों के एकान्त में, वृक्षों के नीचे, श्मशान में, जंगलों में, या कहीं भी आकाश (खुले स्थान) में, या पलाल बिछाकर या भूसे के ढेर (राशि) पर सोने का उपदेश करते हैं। भिक्षुओ! दूसरे सम्प्रदायों के परिव्राजक शयनासन के विषय में यह उपदेश करते हैं। (३)

''भिक्षुओ! अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजक इन तीन मतों का उपदेश करते हैं। (क)

''भिक्षुओ! हमारे आर्यविनय (धर्म) में भिक्षुओं को ये तीन प्रविवेक (एकान्ततः त्याग)

पहीनं होति, तेन च विवित्तो होति; सम्मादिट्ठिको च होति, मिच्छादिट्ठि चस्स पहीना होति, ताय च विवित्तो होति; खीणासवो च होति, आसवा चस्स पहीना होन्ति, तेहि च विवित्तो होति। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति, दुस्सील्यं चस्स पहीनं होति, तेन च विवित्तो होति; सम्मादिट्ठिको च होति, मिच्छादिट्ठि चस्स पहीना होति, ताय च विवित्तो होति; खीणासवो च होति, आसवा चस्स पहीना होन्ति, तेहि च विवित्तो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'भिक्खु अग्गप्पत्तो सारप्पत्तो सुद्धो सारे पतिट्ठितो'।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, कस्सकस्स गहपतिस्स सम्पन्नं सालिक्खेत्तं। तमेनं कस्सको [B.244] गहपति सीघं सीघं लवापेय्य। सीघं सीघं लवापेत्वा सीघं सीघं सङ्घरापेय्य। सीघं [R.242] सीघं सङ्घरापेत्वा सीघं सीघं उब्बहापेय्य। सीघं सीघं उब्बहापेत्वा सीघं सीघं पुञ्जं कारापेय्य। सीघं सीघं पुञ्जं कारापेत्वा सीघं सीघं मद्दापेय्य। सीघं सीघं मद्दापेत्वा सीघं सीघं पलालानि उद्धरापेय्य। सीघं सीघं भुसिकं उद्धरापेत्वा सीघं सीघं ओपुनापेय्य। सीघं सीघं ओपुनापेत्वा सीघं सीघं अतिहरापेय्य। सीघं सीघं अतिहरापेत्वा सीघं सीघं कोट्टापेय्य। सीघं सीघं कोट्टापेत्वा सीघं सीघं थुसानि उद्धरापेय्य। एवमस्सु तानि, भिक्खवे, कस्सकस्स गहपतिस्स धञ्ञानि अग्गप्पत्तानि सारप्पत्तानि सुद्धानि सारे पतिट्ठितानि।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यतो भिक्खु सीलवा च होति, दुस्सील्यं चस्स पहीनं होति, तेन च विवित्तो होति; सम्मादिट्ठिको च होति, मिच्छादिट्ठि चस्स पहीना होति, ताय च विवित्तो होति; खीणासवो च होति, आसवा चस्स पहीना होन्ति, तेहि च विवित्तो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'भिक्खु अग्गप्पत्तो सारप्पत्तो सुद्धो सारे पतिट्ठितो''' ति॥ ●

बताये जाते हैं। कौन से तीन? (१) यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलवान् होता है, उसका दुराचार प्रहीण हो चुका होता है, उससे यह सर्वथा दूर हो जाता है। (२) यह सम्यग्दृष्टि होता है, इसकी मिथ्यादृष्टि प्रहीण हो चुकी होती है, उससे यह सर्वथा दूर रहता है। तथा (३) यह क्षीणाश्रव हो जाता है। क्योंकि, भिक्षुओ! भिक्षु शीलवान्...पूर्ववत्... सम्यग्दृष्टि... क्षीणाश्रव... हो जाता है, अत: अब यह समाज में अग्रस्थान प्राप्त, सर्वथा बलशाली, तन मन वचन से शुद्ध एवं तत्त्व में प्रतिष्ठित कहलाता है।

"जैसे, भिक्षुओ! किसी कृषक गृहपति का धान से भरपूर कोई शालिक्षेत्र हो। उस खेत को यह गृहपति जल्दी जल्दी कटवावे। कटवा कर जल्दी जल्दी पूलियों (समूहों) में एकत्र करावे। जल्दी जल्दी एकत्र कराकर घर के सामने समग्र रूप से एकत्र करावे। यहाँ भी समग्र रूप से एकत्र कराकर उसकी छोटी छोटी राशि बनाकर मर्दन करावे। मर्दन कराकर उसमें से जल्दी जल्दी पुआल को पृथक् करवावे। पुआल को पृथक् कराकर उसका भुस बनावे। भुस को पृथक् कर जल्दी जल्दी उसको बरसवावे। जल्दी जल्दी बरसवा कर पुन: उस (धान) को एकत्र करावे। एकत्र कर जल्दी जल्दी कुटवावे। कुटवाकर जल्दी जल्दी उस धान को तुष से पृथक् कर दे। तब उस कृषक गृहपति का वह धान (चावल) श्रेष्ठ, उत्तम, शुद्ध एवं तत्त्व प्रतिष्ठित कहलाता है।

"इसी तरह, भिक्षुओ! जब भिक्षु शीलवान्... सम्यग्दृष्टि... एवं क्षीणाश्रव हो जाता है, इसके

३. सरदसुत्तं : "सेय्यथापि, भिक्खवे, सरदसमये विद्धे विगतवलाहके देवे आदिच्चो नभं अब्भुस्सक्कमानो सब्बं आकासगतं तमगतं अभिविहच्च भासते च तपते च विरोचति च; एवमेव खो, भिक्खवे, यतो अरियसावकस्स विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उप्पज्जति, सहदस्सनुप्पादा, भिक्खवे, अरियसावकस्स तीणि संयोजनानि पहीयन्ति— सक्कायदिट्ठि, विचिकिच्छा, सीलब्बतपरामासो। [N.225]

"अथापरं द्वीहि धम्मेहि निय्याति अभिज्झाय च ब्यापादेन च। सो विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्मिं चे, भिक्खवे, समये अरियसावको कालं करेय्य, नत्थि [B.245] तं संयोजनं येन संयोजनेन संयुत्तो अरियसावको पुन इमं लोकं आगच्छेय्या" ति॥ ●

४. परिसासुत्तं : "तिस्सो इमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा तिस्सो? अग्गवती परिसा, वग्गा परिसा, समग्गा परिसा।

"कतमा च, भिक्खवे, अग्गवती परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं [R.243] थेरा भिक्खू न बाहुलिका होन्ति न साथलिका, ओक्कमने निक्खित्तधुरा पविवेके पुब्बङ्गमा,

---

आश्रव नष्ट हो जाते हैं, इससे दूर हो जाते हैं; तब वह भिक्षु भी श्रेष्ठ, उत्तम, शुद्ध एवं तत्त्वप्रतिष्ठित कहलाता है॥" ●

३. शरद् सूत्र : : तीन संयोजनों का प्रहाण

"भिक्षुओ! जैसे शरद् ऋतु के समय, जब आकाश में बादल बिखर गये हों, या सर्वथा न रह गये हों, वर्षा का समय समाप्त हो चुका हो, देदीप्यमान सूर्य समस्त अन्धकार को दूर कर खुले आकाश में प्रकाशमान होता है, तपता है, देखने में अच्छा लगता है; इसी तरह, भिक्षुओ! साधक भिक्षु के भी जब ये तीन संयोजन—१. मिथ्यादृष्टि, २. विचिकित्सा एवं ३. मिथ्या शीलव्रतों के प्रति आकर्षण (सीलब्बतपरामास) नष्ट हो जाते हैं तो यह भिक्षु भी समाज में शोभित होता है तथा देखने वालों को अच्छा लगता है।

"फिर कुछ समय साधना करते हुए यह भिक्षु इन दो अकुशल धर्मों से भी दूर हो जाता है— १. अभिध्या एवं २. व्यापाद से। इस प्रकार वह भिक्षु कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहता हुआ वितर्क विचार सहित विवेकजनित प्रीतिसुख को प्राप्त कर प्रथम ध्यान की साधना करता है। इस साधनाकाल में, भिक्षुओ! उस आर्यश्रावक का यदि देहपात हो जाय तो उस समय इसके चित्त में कोई संयोजन नहीं रहता कि जिस संयोजन के वश में होकर वह पुनः इस लोक में आकर जन्म ग्रहण करे॥" ●

४. परिषत्सूत्र : : तीन परिषद् (सभा)

"भिक्षुओ! ये तीन परिषद् होती हैं। कौन सी तीन? (१) अग्रवती परिषद्, (२) वर्ग परिषद्, (३) समग्र परिषद्।

"भिक्षुओ! इनमें **अग्रवती परिषद्** कौन कहलाती है? यहाँ, भिक्षुओ! जिस परिषद् में बैठे हुए भिक्षु परिग्रही न हों, न अपने साधनाकर्म में शिथिल हों, सांसारिक कार्यों में प्रवेश के अनिच्छुक

विरियं आरभन्ति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय, तेसं पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं आपज्जति। सा पि होति न बाहुलिका न साथलिका ओक्कमने निक्खित्तधुरा पविवेके पुब्बङ्गमा, विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अग्गवती परिसा।

"कतमा च, भिक्खवे, वग्गा परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति; अयं वुच्चति, भिक्खवे, वग्गा परिसा।

"कतमा च, भिक्खवे, समग्गा परिसा? इध, भिक्खवे, यस्सं परिसायं भिक्खू समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरन्ति; अयं वुच्चति, भिक्खवे, समग्गा परिसा।

"यस्मिं, भिक्खवे, समये भिक्खू समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरन्ति, बहुं, भिक्खवे, भिक्खू तस्मिं समये पुञ्ञं पसवन्ति। ब्रह्मं, भिक्खवे, विहारं तस्मिं समये भिक्खू विहरन्ति, यदिदं मुदिताय चेतोविमुत्तिया। पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्धकायो सुखं वेदियति, सुखिनो चित्तं समाधियति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, उपरिपब्बते थुल्लफुसितके देवे वस्सन्ते तं उदकं यथानिन्नं [N.226, B.246] पवत्तमानं पब्बतकन्दरपदरसाखा परिपूरेति, पब्बतकन्दरपदरसाखा परिपूरा

हों (निक्षिप्तधूः), प्रविवेक (एकान्तवास) में आगे रहनेवाले हों, अप्राप्त की प्राप्ति एवं अनधिगति के अधिगमन (ज्ञान) के लिये, असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये सतत प्रयासरत हों। उनका आगे आनेवाली जनता भी अनुकरण करती है, उसको भी ये सब उपर्युक्त लाभ, अनायास मिल जाते हैं। भिक्षुओ! यह कहलाती है अग्रवती परिषद्। (१)

"भिक्षुओ! **वर्ग परिषद्** कौन कहलाती है? जहाँ, भिक्षुओ! जिस परिषद् में बैठे हुए भिक्षु कलह करते हों, विवाद करते हों, परस्पर एक दूसरे पर कठोर वचनों का प्रयोग करते हों, ऐसी परिषद्, भिक्षुओ! वर्ग परिषद् कहलाती है। (२)

"भिक्षुओ! **समग्र परिषद्** कौन कहलाती है? जहाँ, भिक्षुओ! एकत्र हुए भिक्षु परस्पर प्रसन्नतापूर्वक संवाद करते हैं, परस्पर व्यवहार में दूध एवं जल की तरह मिले रहते हैं, परस्पर एक दूसरे को प्रेममय दृष्टि से देखते हैं, इस पारस्परिक व्यवहार के साथ सतत साधनारत रहते हैं; भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु बहुत पुण्य का सञ्चय करते हैं। वह इस मुदिता चेतोविमुक्ति के साथ ब्राह्म साधना (विहार) में रत रहते हैं। इस मोद से उनकी आध्यात्मिक प्रीति (श्रद्धा) बढ़ती है। ऐसे श्रद्धालु का काय शान्त (गम्भीर) रहता है। तथा ऐसे प्रश्रब्ध साधक को सुखानुभव होता है, तथा वैसे सुखी का चित्त समाधि में रत रहता है। (३)

दृष्टान्त : जैसे भिक्षुओ! किसी पर्वत पर घनघोर वर्षा हो, तब वह वर्षा का जल एकत्र होकर

कुसोब्भे परिपूरेन्ति, कुसोब्भा परिपूरा महासोब्भे परिपूरेन्ति, महासोब्भा परिपूरा कुन्नदियो परिपूरेन्ति, कुन्नदियो परिपूरा महानदियो परिपूरेन्ति, महानदियो परिपूरा समुद्दं परिपूरेन्ति; एवमेव खो, भिक्खवे, यस्मिं समये भिक्खू समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना [R.244] खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरन्ति, बहुं, भिक्खवे, भिक्खू तस्मिं समये पुञ्ञं पसवन्ति। ब्रह्मं, भिक्खवे, विहारं तस्मिं समये भिक्खू विहरन्ति, यदिदं मुदिताय चेतोविमुत्तिया। पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्धकायो सुखं वेदियति, सुखिनो चित्तं समाधियति। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो परिसा'' ति॥ ●

५. पठमआजानीयसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छन्ति। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो वण्णसम्पन्नो च होति बलसम्पन्नो च जवसम्पन्नो च। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति। एवमेव खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो च होति बलसम्पन्नो च जवसम्पन्नो च।

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा

बहता हुआ नीचे आकर उस पर्वत की कन्दराओं एवं गड्ढों को भर दें। उन कन्दराओं तथा गड्ढों में भरा हुआ जल आगे बहता हुआ छोटे तालाबों (ह्रदों) को भर दे। उन भरे हुए तालाबों से बहता हुआ जल बड़ी झीलों में पहुँच कर उन्हें पूर्ण करता हुआ छोटी नदियों में जा मिले तथा उन छोटी नदियों से आगे बढ़कर बड़ी नदियों में जा मिले। अन्त में, वे नदियाँ भरी हुई आगे बढ़कर समुद्र में जा मिलें। इसी तरह, भिक्षुओ! जिस समय भिक्षु एकत्र होकर प्रसन्नतापूर्वक संवादरत रहते हुए, परस्पर कलहरहित एवं दूध जल की तरह मिले हुए, परस्पर प्रेममय दृष्टि से देखते हुए साधनारत रहते हैं; उस समय भिक्षुओ! वे भिक्षु अपने लिये अतिशय पुण्य का सञ्चय करते हैं। भिक्षुओ! उस समय वे ब्राह्म विहार में रत रहते हैं। ...पूर्ववत्... वैसे सुखी साधक का चित्त समाधिरत रहता है। भिक्षुओ! ये तीन परिषद् कहलाती हैं॥'' ●

५. प्रथम आजानेय सूत्र : : तीन श्रेष्ठ धर्म

''भिक्षुओ! तीन अङ्गों से युक्त श्रेष्ठ अश्व ही राजाओं के योग्य एवं राजाओं का भोग्य हो पाता है, वह राजा (की सेना) का एक अङ्ग कहलाता है। किन तीन अङ्गों से? यहाँ, भिक्षुओ! राजा का वह श्रेष्ठ जाति का अश्व वर्णसम्पन्न (अच्छे वर्णवाला), बलशाली एवं सामर्थ्य (वेग) युक्त होता है, अत: वह राजाओं के ही रखने योग्य एवं राजाओं द्वारा ही भोगने योग्य होता है। इसी तरह, भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त कोई भिक्षु भी सबके लिये आह्वानीय, प्राघुणेय (आतिथ्ययोग्य) दक्षिणेय, प्रणम्य तथा लोक में अद्वितीय पुण्यभूमि है। किन तीन अङ्गों से युक्त? यहाँ, भिक्षुओ! वह भिक्षु १. वर्णसम्पन्न, २. बलसम्पन्न एवं ३. जवसम्पन्न होता है।

होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो होति।

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु बलसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय थामवा [B.247] दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु बलसम्पन्नो होति।

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु जवसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं दुक्खनिरोधो' ति [N.227, R.245] यथाभूतं पजानाति; 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु जवसम्पन्नो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा'' ति॥ ●

६. दुतियआजानीयसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छन्ति। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो वण्णसम्पन्नो च होति बलसम्पन्नो च जवसम्पन्नो

''कैसे, भिक्षुओ! वह भिक्षु **वर्णसम्पन्न** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! वह भिक्षु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्षसंवर से संवृत (संयत) होता है, आचार से सम्पन्न होता है, छोटे से छोटे (अणु) पापकर्म से भय माननेवाला तथा शिक्षापदों के ग्रहण (पालन) में सतत तत्पर रहता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु 'वर्णसम्पन्न' कहलाता है। (१)

''कैसे, भिक्षुओ! वह भिक्षु **बलसम्पन्न** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! वह भिक्षु अकुशल धर्मों के प्रहाण में, तथा कुशल धर्मों के उत्पाद में अपनी शक्ति (बल) लगाना आरम्भ करता है, सामर्थ्यवान् (स्थामवान्) होता है, दृढ़ पराक्रम वाला होता है, कुशल (शुभ) कर्मों को आरम्भ करने में उत्साह एवं साहस नहीं त्यागता। ऐसा भिक्षुओ! भिक्षु 'बलसम्पन्न' कहलाता है। (२)

''कैसे, भिक्षुओ! भिक्षु **जवसम्पन्न** कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'यह दुःख है'— ऐसा जानता है, 'यह दुःखसमुदय है'—ऐसा ज़ानता है, 'यह दुःखनिरोध है'—ऐसा जानता है, 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—ऐसा जानता है। इस तरह, भिक्षुओ! वह भिक्षु 'जवसम्पन्न' कहलाता है। (३)

''भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त ऐसा भिक्षु समाज (लोक) के लिये घर में सत्कारयोग्य, आतिथ्ययोग्य दान करने योग्य, तथा इस लोक में अद्वितीय पुण्य क्षेत्र है॥'' ●

६. द्वितीय आजानेय सूत्र : : तीन श्रेष्ठ धर्म

''भिक्षुओ! तीन अङ्गों से युक्त श्रेष्ठ जाति का अश्व ही राजाओं के योग्य ...पूर्ववत्...। ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु 'बलसम्पन्न' कहलाता है। (१, २)

भिक्षुओ! कैसा भिक्षु **जवसम्पन्न** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु पाँच अवरभागीय

च। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति। एवमेव खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो च होति बलसम्पन्नो च जवसम्पन्नो च।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो होति।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु बलसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु बलसम्पन्नो होति।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु जवसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी [B.248] अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु जवसम्पन्नो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति॥

●

७. ततियआजानीयसुत्तं : "तीहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो वण्णसम्पन्नो च होति बलसम्पन्नो च [R.246] जवसम्पन्नो च। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति। एवमेव खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलि- [N.228] करणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो च होति बलसम्पन्नो च जवसम्पन्नो च।

संयोजनों के परिक्षय से वह औपपातिक (देवलोक में उत्पन्न) होकर वहीं परिनिर्वाण प्राप्त करता है। वह इस लोक में पुन: (लौटकर) नहीं आता। (वह 'अनागामी' कहलाता है।) ऐसा भिक्षु, भिक्षुओ! 'जवसम्पन्न' कहलाता है। (३)

"इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थों द्वारा अपने घरों में बुलाने योग्य ...पूर्ववत्... लोक के लिये अद्वितीय पुण्य क्षेत्र है॥"

●

७. तृतीय आजानेय सूत्र : : **तीन श्रेष्ठ धर्म**

"भिक्षुओ! तीन श्रेष्ठ अङ्गों से युक्त उत्तम जाति का अश्व ही राजाओं के योग्य ...पूर्ववत्...। ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु 'बलसम्पन्न' कहलाता है। (२)

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो होति।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु बलसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु बलसम्पन्नो होति।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु जवसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु जवसम्पन्नो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति॥ ●

[B.249] **८. पोत्थकसुत्तं :** "नवो पि, भिक्खवे, पोत्थको दुब्बण्णो च होति दुक्खसम्फस्सो च अप्पग्घो च; मज्झिमो पि, भिक्खवे, पोत्थको दुब्बण्णो च होति दुक्खसम्फस्सो च अप्पग्घो च; जिण्णो पि, भिक्खवे, पोत्थको दुब्बण्णो च होति दुक्खसम्फस्सो च अप्पग्घो च। जिण्णं पि, भिक्खवे, पोत्थकं उक्खलिपरिमज्जनं वा करोन्ति सङ्कारकूटे वा नं छड्डेन्ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, नवो चे पि भिक्खु होति दुस्सीलो पापधम्मो। इदमस्स [R.247] दुब्बण्णताय वदामि। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, पोत्थको दुब्बणो तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। ये खो पनस्स सेवन्ति भजन्ति पयिरुपासन्ति दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, तेसं तं होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। इदमस्स दुक्खसम्फस्सताय वदामि।

"भिक्षुओ! कैसा भिक्षु **जवसम्पन्न** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आश्रवों का क्षय होने से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात् कर साधना करता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु 'जवसम्पन्न' कहलाता है। (३)

"भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु ...पूर्ववत्... लोक के लिये अद्वितीय पुण्यक्षेत्र है॥"

८. पुस्तक सूत्र : : तीन धर्म

"भिक्षुओ! नयी पुस्तक (का कागज) दुर्वर्ण (बदरंग) होती है, उसको कठिनता से (सावधानीपूर्वक) स्पर्श किया जाता है, एवं उसका मूल्य भी कम होता है। मध्यम (न नयी न पुरानी) पुस्तक भी... जीर्ण (पुरानी) पुस्तक भी दुर्वर्ण, दुःस्पर्श एवं अल्प मूल्य वाली होती है। भिक्षुओ! जीर्ण पुस्तक की तो कभी ऐसी स्थिति आ जाती है कि लोग उसको ऊखल में कूटकर कुछ नया बना लेते हैं या उसे कूड़ाखाने में फेंक देते हैं।

"इसी प्रकार, भिक्षुओ! (क) नया भिक्षु भी यदि दुःशील एवं पापधर्मा है तो वह दुर्वर्ण ही है—ऐसा मैं कहता हूँ। जैसे, भिक्षुओ! वह पुस्तक दुर्वर्ण होती है वैसे ही इस (दुःशील) भिक्षु को भी मैं 'दुर्वर्ण' ही कहता हूँ। (ख) जो ऐसे भिक्षु की सेवा, परिचर्या या उपासना करते हैं वे अपने

सेय्यथापि सो, भिक्खवे, पोत्थको दुक्खसम्फस्सो तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। येसं खो पन सो पटिग्गण्हाति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चभेसज्जपरिक्खारं, [N.229] तेसे तं न महप्फलं होति न महानिसंसं। इदमस्स अप्पग्घताय वदामि। सेय्यथापि सो, भिक्खवे पोत्थको अप्पग्घो तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। मज्झिमो चे पि, भिक्खवे, भिक्खु होति ...पे०... थेरो चे पि, भिक्खवे, भिक्खु होति दुस्सीलो पापधम्मो, इदमस्स दुब्बण्णताय वदामि। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, पोत्थको दुब्बण्णो तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। ये खो पनस्स सेवन्ति भजन्ति पयिरुपासन्ति दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, तेसं तं होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। इदमस्स दुक्खसम्फस्सताय वदामि। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, पोत्थको दुक्खसम्फस्सो तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। येसं खो पन सो पटिग्गण्हाति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं, तेसं तं न महप्फलं होति न महानिसंसं। इदमस्स अप्पग्घताय वदामि। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, पोत्थको अप्पग्घो तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

''एवरूपो चायं, भिक्खवे, थेरो भिक्खु सङ्घमज्झे भणति। तमेनं भिक्खू एवमाहंसु—'किं नु खो तुय्हं बालस्स अब्यत्तस्स भणितेन, त्वं पि नाम भणितब्बं मञ्ञसी' ति! सो कुपितो अनत्तमनो तथारूपिं वाचं निच्छारेति यथारूपाय वाचाय सङ्घो [B.250] तं उक्खिपति, सङ्कारकूटे व नं पोत्थकं।

''नवं पि, भिक्खवे, कासिकं वत्थं वण्णवन्तं चेव होति सुखसम्फस्सं च महग्घं च; मज्झिमं पि, भिक्खवे, कासिकं वत्थं वण्णवन्तं चेव होति सुखसम्फस्सं च महग्घं [R.248]

कर्मानुरूप ही फल भोगते हैं, जो उनके लिये चिरकाल तक अहितकर एवं दु:खद ही होता है। जैसे, भिक्षुओ! वह पुस्तक दुर्वर्ण, दु:स्पर्श होती है; ऐसे ही, भिक्षुओ! यह पुद्गल समझा जाना चाहिये। (ग) जिनका दिया हुआ वह चीवर, पिण्डपात आदि ग्रहण करता है उनको भी कोई विशेष पुण्य फल या माहात्म्य नहीं होता। जैसे, भिक्षुओ! वह पुस्तक अल्प मूल्य वाली होती है; वैसे ही, भिक्षुओ! इस भिक्षु का भी सामाजिक मूल्य कम ही है—ऐसा मेरा कथन है।

''इसी प्रकार, भिक्षुओ! मध्यम भिक्षु भी यदि ...पूर्ववत्... स्थविर भिक्षु भी यदि ...पूर्ववत्... वैसे ही, भिक्षुओ! इस स्थविर भिक्षु का भी सामाजिक मूल्य कम ही है—ऐसा मेरा मानना है।

''भिक्षुओ! ऐसा स्थविर यदि कभी सङ्घ में कुछ बोलता है तो अन्य भिक्षु उसे कहने लगते हैं—'अरे! तुझ मूर्ख एवं मन्दगति के बोलने का क्या महत्त्व है, तूँ भी अपने को सभा में बोलने वाला मानता है!' यह सुनकर वह सङ्घ पर कुपित होता है तथा सङ्घ के लिये निरर्थक अपशब्द बोलने लगता है। इसके परिणामस्वरूप सङ्घ इस स्थविर भिक्षु को भिक्षुसङ्घ से निकाल देता है। सङ्घ का यह निष्कासन ऐसा ही हुआ, जैसे किसी जीर्ण पुस्तक को कूड़े के ढेर पर फेंक दिया जाय। (१)

''भिक्षुओ! काशी का बना हुआ नया वस्त्र वर्णवान् (सुरूप) भी होता है, तथा सुखेन

च; जिण्णं पि, भिक्खवे, कासिकं वत्थं वण्णवन्तं चेव होति सुखसम्फस्सं च महग्घं च। जिण्णं पि, भिक्खवे, कासिकं वत्थं रतनपलिवेठनं वा करोति गन्धकरण्डके वा नं पक्खिपन्ति। एवमेव खो, भिक्खवे, नवो चे पि भिक्खु होति सीलवा कल्याणधम्मो, इदमस्स सुवण्णताय वदामि। सेय्यथापि तं, भिक्खवे, कासिकं वत्थं वण्णवन्तं तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। ये खो पनस्स सेवन्ति भजन्ति पयिरुपासन्ति दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, तेसं तं होति दीघरत्तं हिताय सुखाय। इदमस्स सुखसम्फस्सताय वदामि। सेय्यथापि तं, भिक्खवे, कासिकं वत्थं सुखसम्फस्सं तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं [N.230] वदामि। येसं खो पन सो पटिग्गण्हाति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चय-भेसज्जपरिक्खारं, तेसं तं महप्फलं होति महानिसंसं। इदमस्स महग्घताय वदामि। सेय्यथापि तं, भिक्खवे, कासिकं वत्थं महग्घं तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। मज्झिमो चे पि, भिक्खवे, भिक्खु होति ...पे०... थेरो चे पि, भिक्खवे, भिक्खु होति ...पे०... पुग्गलं वदामि।

[R.249] ''एवरूपो चायं, भिक्खवे, थेरो भिक्खु सङ्घमज्झे भणति। तमेनं भिक्खू एवमाहंसु—'अप्पसद्दा आयस्मन्तो होथ, थेरो भिक्खु धम्मं च विनयं च भणती' ति। तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'कासिकवत्थूपमा भविस्साम, न पोत्थकूपमा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

स्पर्शयोग्य होता है एवं महार्घ (अधिक मूल्य वाला) होता है; काशी का बना हुआ मध्यम वस्त्र भी ...पूर्ववत्... काशिकेय जीर्ण वस्त्र भी वर्णवान्, सुखसंस्पर्श एवं महार्घ होता है। लोगों द्वारा या तो इस जीर्ण वस्त्र में रत्न लपेट दिये जाते हैं या फिर इत्र फुलेल आदि की शीशियाँ इसमें लपेट देते हैं। घर में भी इसे उधर उधर निरर्थक समझ कर नहीं फेंका जाता, कूड़ेखाने पर फेंकना तो बहुत दूर की बात है!

''इसी प्रकार भिक्षुओ! (क) कोई नया भिक्षु भी यदि शीलवान् है, कल्याणधर्मा है, इसकी यही **सुवर्णता** है—ऐसा मेरा मानना है। और भिक्षुओ! जैसा वह नया काशिकेय वस्त्र सुरूप होता है वैसा मैं इस नवभिक्षु को भी मानता हूँ। (ख) जो उपासक ऐसे नवभिक्षु की सेवा, परिचर्या एवं उपासना करते हैं, या साधना में उसका अनुकरण करते हैं, वे कर्म उन लोगों के चिरकाल तक हितकर एवं सुखद होते हैं। यही इस भिक्षु की **सुखसंस्पर्शता** है। जैसे, भिक्षुओ! वह काशिकेय वस्त्र सुखस्पर्श वाला होता है वैसा ही मैं इस भिक्षु को भी मानता हूँ। (ग) और यह भिक्षु जिन उपासकों द्वारा प्रदत्त चीवर, पिण्डपात आदि ग्रहण करता है वह भी अतिशय पुण्यप्रद एवं माहात्म्य वाला होता है। मैं यही इसकी **महार्घता** मानता हूँ। जैसे, भिक्षुओ! काशिकेय वस्त्र महार्घ (महँगा) होता है उसी के समान मैं इस पुद्गल को कहता हूँ। (२)

''इसी तरह, भिक्षुओ! मध्यम भिक्षु भी यदि ...पूर्ववत्... स्थविर भिक्षु भी यदि ...पूर्ववत्...।

''ऐसा स्थविर भिक्षु यदि सङ्घ में कभी बोलना आरम्भ करता है तो इसके लिये भिक्षु अन्य भिक्षुओं से कहने लगते हैं—'आप लोग शान्त रहिये, उच्च स्वर से न बोलिये। स्थविर भिक्षु धर्म

९. लोणकपल्लसुत्तं : ''यो, भिक्खवे, एवं वदेय्य—'यथा यथायं पुरिसो कम्मं करोति तथा तथा तं पटिसंवेदियती' ति, एवं सन्तं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियवासो न होति, ओकासो न पञ्ञायति सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाय। यो च खो, भिक्खवे, एवं [B.251] वदेय्य—'यथा यथा वेदनीयं अयं पुरिसो कम्मं करोति तथा तथा तस्स विपाकं पटिसंवेदियती' ति, एवं सन्तं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियवासो होति, ओकासो पञ्ञायति सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाय। इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स अप्पमत्तकं पि पापकम्मं कतं तमेनं निरयं उपनेति। इध पन, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव!

''कथंरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स अप्पमत्तकं पि पापकम्मं कतं तमेनं निरयं उपनेति? इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अभावितकायो होति अभावितसीलो अभावितचित्तो अभावितपञ्ञो परित्तो अप्पातुमो अप्पदुक्खविहारी। एवरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स अप्पमत्तकं पि पापकम्मं कतं तमेनं निरयं उपनेति।

''कथंरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो

एवं विनय पर कुछ कहना आरम्भ कर रहे हैं।' इसलिये, भिक्षुओ! तुम्हें यह सीखना चाहिये—'हम काशिकेय वस्त्रों के समान वर्णसम्पन्न, सुखसंस्पर्श एवं महार्घ बनेंगे, पुस्तकों के समान नहीं।' भिक्षुओ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये।'' (३)

९. लवणकपालसूत्र : : अल्पमात्र पापकर्म

''जो, भिक्षुओ! कोई भिक्षु ऐसा कहे—'जो पुरुष जैसा जैसा कर्म करता है, उसको वैसा वैसा कर्म भोगना ही पड़ता है।' यह बात मान लेने पर, भिक्षुओ! समस्त धर्मसाधना निरर्थक ही होगी; क्योंकि वैसी स्थिति में दुःख का अन्त करने के लिये कोई अवसर ही नहीं मिलेगा। तथा, भिक्षुओ! कोई भिक्षु यदि यह कहता है—'यह पुरुष जैसा जैसा वेदनीय (अनुभवनीय) कर्म करता है वैसा ही उस कर्म का विपाक (परिणाम=फल) होता है।' तब, भिक्षुओ! धर्मसाधना भी प्रयोजनवती (सफल) होगी और दुःखों का अन्त करने के लिये कभी समय भी मिलेगा। (क्योंकि यहाँ दो स्थितियाँ बनती हैं—) यहाँ, भिक्षुओ! कभी किसी पुद्गल का अल्पमात्र पापकर्म भी उसको नरक में पहुँचा देता है तथा भिक्षुओ! कभी किसी अन्य पुद्गल द्वारा वैसा ही अल्पमात्र पापकर्म समग्र रूप से यहीं भोग लिया जाता है, उसमें अणुमात्र भी कम नहीं होता; बहुत की तो बात ही बहुत दूर है!

''भिक्षुओ! कैसे पुद्गल का अल्पमात्र पापकर्म उसको नरक में पहुँचा देता है? यहाँ, भिक्षुओ! जो पुद्गल काय, शील, चित्त एवं प्रज्ञा से समाहित नहीं है, तुच्छ है, दुर्बल हृदय है, एवं थोड़ी सी दुःखमय साधना करनेवाला है; ऐसे पुद्गल द्वारा कृत अल्पमात्र पापकर्म उसको नरक में पहुँचा देता है।

''और, भिक्षुओ! उतना ही अल्प पापकर्म कौन पुद्गल यहीं भोग लेता है? जो पुद्गल काय,

[N.231] भावितकायो होति भावितसीलो भावितचित्तो भावितपञ्ञो अपरित्तो महत्तो अप्पमाणविहारी। एवरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो लोणकपल्लं परित्ते उदककपल्लके पक्खिपेय्य। [R.250] तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु तं परित्तं उदकं अमुना लोणकपल्लेन लोणं अस्स अपेय्यं" ति? "एवं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु"?

"अदु हि, भन्ते, परित्तं उदककपल्लके उदकं, तं अमुना लोणकपल्लेन लोणं अस्स अपेय्यं" ति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो लोणकपल्लकं गङ्गाय नदिया पक्खिपेय्य। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु सा गङ्गा नदी अमुना लोणकपल्लेन लोणा अस्स अपेय्या" ति?

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु"?

"असु हि, भन्ते, गङ्गाय नदिया महा उदकक्खन्धो सो अमुना लोणकपल्लेन लोणो न अस्स अपेय्यो" ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चस्स पुग्गलस्स अप्पमत्तकं पि पापकम्मं कतं तमेनं [B.252] निरयं उपनेति। इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव!

"कथंरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स अप्पमत्तकं पि पापकम्मं कतं तमेनं निरयं उपनेति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अभावितकायो होति अभावितसीलो

शील, चित्त एवं प्रज्ञा से समाहित है, गम्भीर है तथा अप्रमाण साधना करने वाला है, ऐसे पुद्गल द्वारा वह अल्पमात्र पापकर्म यहीं (इसी जन्म में) भोग लिया जाता है।

"जैसे, भिक्षुओ! छोटा सा नमक का टुकड़ा थोड़े से जल में डाल दिया जाय तो वह जल खारा होगा कि नहीं?" 'अवश्य हो जायगा, भन्ते!'

"वह क्यों?" "वह इसलिये, भन्ते! वह जल अल्पमात्रा में है अत: वह छोटा सा नमक का टुकड़ा भी उसको क्षारमय करने में समर्थ है।"

"इसी तरह, भिक्षुओ! कोई पुरुष उस नमक के टुकड़े (डली) को गङ्गा नदी में डाल दे तो उसका जल खारा होगा कि नहीं?" "नहीं, भन्ते!"

"वह क्यों?" "वह इसलिये कि वह छोटा नमक का टुकड़ा इतने अपरिमित गङ्गा नदी के जल को खारा या अपेय (न पीने योग्य) करने की सामर्थ्य नहीं रखता।"

"इसी तरह, भिक्षुओ! किसी पुद्गल का अल्पमात्र पाप भी उसको नरक में पहुँचा देता है; और, भिक्षुओ! कोई पुरुष अपने अल्पमात्र पाप को यहीं भोगने की सामर्थ्य रखता है। किस पुद्गल का अल्पमात्र पाप उसको नरक में ...पूर्ववत्... अल्पमात्र पापकर्म यहीं (इसी जन्म में) भोग लिया जाता है। उसमें अल्पमात्रा भी कम नहीं होता, बहुत की तो बात ही बहुत दूर है! (१)

अभावितचित्तो अभावितपञ्ञो परित्तो अप्पातुमो अप्पदुक्खविहारी। एवरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स अप्पमत्तकं पि पापकम्मं कतं तमेनं निरयं उपनेति।

"कथंरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो भावितकायो होति भावितसीलो भावितचित्तो भावितपञ्ञो अपरित्तो महत्तो [N.232] अप्पमाणविहारी। एवरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव।

"इध, भिक्खवे, एकच्चो अड्ढकहापणेन पि बन्धनं निगच्छति, कहापणेन [R.251] पि बन्धनं निगच्छति, कहापणसतेन पि बन्धनं निगच्छति। इध, भिक्खवे, एकच्चो अड्ढकहापणेन पि न बन्धनं निगच्छति, कहापणेन पि न बन्धनं निगच्छति, कहापणसतेन पि न बन्धनं निगच्छति।

"कथंरूपो, भिक्खवे, अड्ढकहापणेन पि बन्धनं निगच्छति, कहापणेन पि बन्धनं निगच्छति, कहापणसतेन पि बन्धनं निगच्छति? इध, भिक्खवे, एकच्चो दलिद्दो होति अप्पस्सको अप्पभोगो। एवरूपो, भिक्खवे, अड्ढकहापणेन पि बन्धनं निगच्छति, कहापणेन पि बन्धनं निगच्छति, कहापणसतेन पि बन्धनं निगच्छति।

"कथंरूपो, भिक्खवे, अड्ढकहापणेन पि न बन्धनं निगच्छति, कहापणेन पि न बन्धनं निगच्छति, कहापणसतेन पि न बन्धनं निगच्छति? इध, भिक्खवे, एकच्चो अड्ढो होति महद्धनो महाभोगो। एवरूपो, भिक्खवे, अड्ढकहापणेन पि न बन्धनं निगच्छति,

---

"भिक्षुओ! यहाँ कोई पुरुष आधे कार्षापण, एक कार्षापण या सौ कार्षापणों के प्रलोभन में फँस जाता है; अथ च कोई आधे कार्षापण, एक कार्षापण या सौ कार्षापणों के प्रलोभन में भी नहीं फँसता।

"भिक्षुओ! ऐसा कौन पुरुष है जो आधे कार्षापण... या सौ कार्षापणों के प्रलोभन में फँस जाता है? जो पुरुष अत्यधिक दरिद्र, निर्धन एवं अल्पतम आय (भोग) वाला है। ऐसा पुरुष आधे कार्षापण के प्रलोभन में भी फँस जाता है।

"फिर, भिक्षुओ! ऐसा कौन पुरुष है जो आधे, एक या सौ कार्षापणों के प्रलोभन में भी नहीं फँस पाता? जो पुरुष, भिक्षुओ! आढ्य हो, अत्यधिक धन तथा आय वाला एवं अतिशय साधन-सम्पन्न हो। इसी तरह, भिक्षुओ! किसी पुरुष ने अल्पमात्र ही पाप किया हो, वह पाप उसको नरक में पहुँचा देता है। कोई पुरुष, भिक्षुओ! उस अल्पमात्र पापकर्म को इसी जन्म में भोग लेता है। इसके लिये उसको नरक में नहीं जान पड़ता। यद्यपि वह पाप कुछ भी क्षीण नहीं होता, बढ़ने की तो बात ही बहुत दूर है।

"कैसे, भिक्षुओ! पुरुष का अल्प ही पापकर्म उसको नरक में पहुँचा देता है? जो पुरुष काय, शील, चित्त ...पूर्ववत्... बढ़ने की तो बात बहुत दूर है। (२)

कहापणेन पि न बन्धनं निगच्छति, कहापणसतेन पि न बन्धनं निगच्छति। एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चस्स पुग्गलस्स अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं। तमेनं निरयं उपनेति। इध, [B.253] भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव।

"कथंरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं, तमेनं निरयं उपनेति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अभावितकायो होति अभावितसीलो अभावितचित्तो अभावितपञ्ञो परित्तो अप्पातुमो अप्पदुक्खविहारी। एवरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं तमेनं निरयं उपनेति।

"कथंरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो [N.233] भावितकायो होति भावितसीलो भावितचित्तो भावितपञ्ञो अपरित्तो महत्तो अप्पमाणविहारी। एवरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव!

"इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो भावितकायो होति भावितसीलो भावितचित्तो भावितपञ्ञो अपरित्तो महत्तो अप्पमाणविहारी। एवरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव! सेय्यथापि, [R.252] भिक्खवे, ओरब्भिको वा उरब्भघातको वा अप्पेकच्चं उरब्भं अदिन्नं आदियमानं पहोति हन्तुं वा बन्धितुं वा जापेतुं वा यथापच्चयं वा कातुं, अप्पेकच्चं उरब्भं अदिन्नं आदियमानं नप्पहोति हन्तुं वा बन्धितुं वा जापेतुं वा यथापच्चयं वा कातुं।

"कथंरूप, भिक्खवे, ओरब्भिको वा उरब्भघातको वा उरब्भं अदिन्नं आदियमानं

"भिक्षुओ! जैसे कोई औरभ्रिक या उरभ्रघातक (भेड़ों का व्यापारी, भेड़ों को काटने वाला कसाई) किसी भेड़ को किसी के दिये विना ही ले (चौरी कर) सकता है, उसको मार सकता है, बाँध सकता है, उसका लोभ कर सकता है, या उसका कुछ भी कर सकता है; और दूसरा कोई किसी भेड़ को ...पूर्ववत्... या उसका कुछ भी नहीं करता।

"कैसा औरभ्रिक या उरभ्रघातक न दी हुई भेड़ कौन ले सकता है? ...पूर्ववत्... ? भिक्षुओ! यहाँ जो औरभ्रिक... निर्धन, दरिद्र, अल्प आय वाला हो, ...पूर्ववत्... कुछ भी कर सकता है।

"कैसा औरभ्रिक या उरभ्रघातक न दी हुई भेड़ को नहीं ले सकता...पूर्ववत्... ? भिक्षुओ! यहाँ जो... आढ्य, धनवान् एवं अत्यधिक भोग सम्पन्न हो, जैसे राजा या राजमहामात्य। ऐसा पुरुष... न दी हुई भेड़ को नहीं ले सकता... कुछ भी नहीं करता। अपितु उससे लोग हाथ जोड़ स्वयं याच्ञा करते हैं—'स्वामिन्! मुझे एक भेड़ या उसको खरीदने योग्य धन देने की कृपा करें।' इसी तरह, भिक्षुओ! किसी पुरुष का अल्पमात्र पाप उसे नरक में पहुँचा देता है, तथा कोई पुरुष उस अल्पतम पाप को इसी जन्म में भोग लेता है ...पूर्ववत्...।

पहोति हन्तुं वा बन्धितुं वा जापेतुं वा यथापच्चयं वा कातुं? इध भिक्खवे, एकच्चो दलिद्दो होति अप्पस्सको अप्पभोगो। एवरूपं, भिक्खवे, ओरब्भिको वा उरब्भघातको वा उरब्भं अदिन्नं आदियमानं पहोति हन्तुं वा बन्धितुं वा जापेतुं वा यथापच्चयं वा कातुं।

''कथंरूपं, भिक्खवे, ओरब्भिको वा उरब्भघातको वा उरब्भं अदिन्नं आदियमानं नप्पहोति हन्तुं वा बन्धितुं वा जापेतुं वा यथापच्चयं वा कातुं। इध, भिक्खवे, एकच्चो अड्ढो होति महद्धनो महाभोगो राजा वा राजमहामत्तो वा। एवरूपं, भिक्खवे, ओरब्भिको [B.254] वा उरब्भघातको वा उरब्भं अदिन्नं आदियमानं नप्पहोति हन्तुं वा बन्धितुं वा जापेतुं वा यथापच्चयं वा कातुं। अञ्ञदत्थु पञ्जलिको नं याचति—'देहि मे, मारिस, उरब्भं वा उरब्भधनं वा' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चस्स पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पि पापकम्मं कतं तमेनं निरयं उपनेति। इध पन, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव!

''कथंरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स अप्पमत्तकं पि पापकम्मं कतं तमेनं निरयं उपनेति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अभावितकायो होति अभावितसीलो [N.234] अभावितचित्तो अभावितपञ्ञो परित्तो अप्पातुमो अप्पदुक्खविहारी। एवरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स अप्पमत्तकं पि पापकम्मं कतं तमेनं निरयं उपनेति। [R.253]

''कथंरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो भावितकायो होति भावितसीलो भावितचित्तो भावितपञ्ञो अपरित्तो महत्तो अप्पमाणविहारी। एवरूपस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स तादिसंयेव अप्पमत्तकं पापकम्मं कतं दिट्ठधम्मवेदनीयं होति, नाणु पि खायति, किं बहुदेव!

''यो भिक्खवे, एवं वदेय्य—'यथा यथायं पुरिसो कम्मं करोति तथा तथा तं पटिसंवेदेती' ति, एवं सन्तं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियवासो न होति, ओकासो न पञ्ञायति सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाय। यो च खो, भिक्खवे, एवं वदेय्य—'यथा यथा वेदनीयं अयं पुरिसो कम्मं करोति तथा तथा तस्स विपाकं पटिसंवेदेती' ति, एवं सन्तं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियवासो होति, ओकासो पञ्ञायति सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया'' ति॥ ●

''भिक्षुओ! कैसे पुरुष को वह अल्पमात्रक पाप नरक में पहुँचा देता है? जिसका शरीर, शील... पूर्ववत्... उसे नरक में पहुँचा देता है।

''भिक्षुओ! कैसा पुरुष उस अल्पमात्र पाप को यहीं भोग लेता है? जिसकी काया, शील... पूर्ववत्... समाहित है तथा जो अप्रमाण साधना का सतत साधक है। (३)

''अत: भिक्षुओ! जो विद्वान् यह कहता है—'जो पुरुष जैसा कर्म करता है उसको वह कर्म भोगना ही पड़ता है।' उसकी यह बात मान लेने पर, भिक्षुओ! भिक्षु यदि धर्मसाधना निरर्थक ही हो जायगी। उसको अपने दु:खों का अन्त करने का अवसर ही नहीं मिलेगा। परन्तु, भिक्षुओ! यदि

[B.255] **१०. पंसुधोवकसुत्तं** : "सन्ति, भिक्खवे, जातरूपस्स ओळारिका उपक्किलेसा पंसुवालुका सक्खरकठला। तमेनं पंसुधोवको वा पंसुधोवकन्तेवासी वा दोणियं आकिरित्वा धोवति सन्धोवति निद्धोवति। तस्मिं पहीने तस्मिं ब्यन्तीकते सन्ति जातरूपस्स मज्झिमसहगता उपक्किलेसा सुखुमसक्खरा थूलवालुका। तमेनं पंसुधोवको वा पंसुधोवकन्तेवासी वा धोवति सन्धोवति निद्धोवति। तस्मिं पहीने तस्मिं ब्यन्तीकते सन्ति जातरूपस्स सुखुमसहगता उपक्किलेसा सुखुमवालुका काळजल्लिका। तमेनं पंसुधोवको वा पंसुधोवकन्तेवासी वा धोवति सन्धोवति निद्धोवति। तस्मिं पहीने तस्मिं ब्यन्तीकते अथापरं सुवण्णसिकतावसिस्सन्ति। तमेनं सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा जातरूपं मूसायं पक्खिपित्वा धमति सन्धमति निद्धमति। तं होति जातरूपं धन्तं सन्धन्तं निद्धन्तं अनिद्धन्तकसावं, न चेव मुदुं होति न च कम्मनियं, न च पभस्सरं पभङ्गु च, न च सम्मा उपेति कम्माय। होति सो, भिक्खवे, समयो यं सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा तं [N.235] जातरूपं धमति सन्धमति निद्धमति। तं होति जातरूपं धन्तं सन्धन्तं निद्धन्तं निद्धन्तकसावं, मुदुं च होति कम्मनियं च पभस्सरं च, न च पभङ्गु, सम्मा उपेति कम्माय। यस्सा यस्सा च पिलन्धनविकतिया आकङ्खति—यदि पट्टिकाय, यदि कुण्डलाय, यदि गीवेय्यकेन, यदि सुवण्णमालाय—तं चस्स अत्थं अनुभोति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, सन्ति अधिचित्तमनुयुत्तस्स भिक्खुनो ओळारिका

कोई विद्वान् यह कहता है—'जो पुरुष जैसा जैसा वेदनीय (अनुभवनीय) कर्म करता है वैसा वैसा ही उसका कर्मविपाक होता है'। तब भिक्षुओ! उसकी धर्मसाधना भी फलवती हो सकती है, तथा अवसर आने पर कभी वह अपने समस्त दुःखों का अन्त भी कर लेगा ही॥" ●

१०. पांशुधोवकसूत्र : : सुवर्ण के तीन दोष (विकार)

"भिक्षुओ! सुवर्ण (जातरूप) के कुछ ऊपरी मैल होते हैं, जैसे—धूल के छोटे कण। उसे सुनार या सुनार का कोई सहकारी किसी कटोरी (नाद) में डालकर जल से धोवे, स्वच्छ करे, निखारे। उस ऊपरी मैल के नष्ट होने पर, दूर किये जाने पर भी उस सुवर्ण पर मध्यम स्थिति का मैल (अपेक्षाकृत सूक्ष्म धूल) रह जाता है, उसे भी वह सुनार या सुनार का सहायक धोता है, स्वच्छ करता है, निखारता है। तब उस मैल के भी नष्ट होने पर, दूर किये जाने पर उस सुवर्ण पर सूक्ष्म स्थिति का मैल (सूक्ष्म धूल) रह जाता है, उसको भी वह सुनार या सुनार का सहायक धोता है, स्वच्छ करता है, निखारता है। इतना करने पर भी उस सुवर्ण में कुछ आन्तरिक विकार अवशिष्ट रह जाता है। उसको भी हटाने के लिये वह सुनार मूषा (धातु पिघलाने की घरिया) में डालकर तपाता है, गलाता है, पिघलाता है। तब उस सुवर्ण की विकृतियाँ नष्ट हो जाती हैं। परन्तु वह अभी ऐसा मृदु नहीं होता कि उससे आभूषण आदि बनाये जा सकें। न उसमें निखार ही आता है। इसके लिये वह सुनार या उसका सहायक पुनः उसको भट्ठी पर चढ़ाता है, तपाता है, कूटता पीटता है। इस क्रिया से वह सुवर्ण अपने वास्तविक रंग में आ जाता है, वह मृदु हो जाता है, उसमें वास्तविक कान्ति (चमक) आ जाती है। परन्तु वह इतना लचीला भी नहीं होता कि वह जब चाहे तब टूट जाय। अब

उपक्किलेसा कायदुच्चरितं वचीदुच्चरितं मनोदुच्चरितं, तमेनं सचेतसो भिक्खु दब्बजातिको पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति। तस्मिं पहीने तस्मिं ब्यन्तीकते सन्ति अधिचित्तमनुयुत्तस्स भिक्खुनो मज्झिमसहगता उपक्किलेसा कामवितक्को व्यापादवितक्को विहिंसावितक्को, तमेनं सचेतसो भिक्खु दब्बजातिको पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति। तस्मिं पहीने तस्मिं ब्यन्तीकते सन्ति अधिचित्त- [B.256] मनुयुत्तस्स भिक्खुनो सुखुमसहगता उपक्किलेसा ञातिवितक्को जनपदवितक्को अनवञ्ञत्तिपटिसंयुत्तो वितक्को, तमेनं सचतेसो भिक्खु दब्बजातिको पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति। तस्मिं पहीने तस्मिं ब्यन्तीकते अथापरं धम्मवितक्को- वसिस्सति। सो होति समाधि न चेव सन्तो न च पणीतो नप्पटिप्पस्सद्धिलद्धो न एकोदिभावाधिगतो ससङ्खारनिग्गय्हवारितगतो होति। सो, भिक्खवे, समयो यं तं चित्तं अज्झत्तंयेव सन्तिट्ठति सन्निसीदति एकोदि होति समाधियति। सो होति समाधि सन्तो पणीतो पटिप्पस्सद्धिलद्धो एकोदिभावाधिगतो न ससङ्खारनिग्गय्हवारितगतो। यस्स यस्स च अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभिनिन्नामेति अभिसञ्ञासच्छि- [R.255] किरियाय तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने।

"सो सचे आकङ्खति—'अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभवेय्यं—एको पि हुत्वा

उससे जो भी आभूषण बनाना चाहें, जैसे—पट्टिका, कानों के कुण्डल, गले का हार या सुवर्णमाला—सब कुछ बनाया जा सकता है।

"इसी प्रकार, भिक्षुओ! चित्त की एकाग्रता के लिये साधना करने वाले साधक के सम्मुख उसके कुछ स्थूल चित्तविकार कठिनाइयाँ उपस्थित करते हैं; जैसे—कायदुराचार, वाग्दुराचार या मनोदुराचार। इन दुराचारों के प्रति सावधान समझदार साधक इनका त्याग करता है, नाश करता है, इन्हें दूर करता है। उनके दूर होने पर, उस साधक के सम्मुख चित्त के मध्यम विकार, जैसे—कामवितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क आते हैं। इनको दूर करने, नष्ट करने में वह सचेत साधक तत्पर होता है। तथा साधना द्वारा उनको नष्ट कर देता है, दूर कर देता है। इनके प्रहीण होने पर उस साधक के कुछ सूक्ष्म चित्तविकार ही शेष रह जाते हैं; जैसे—ज्ञातिवितर्क, जनपदवितर्क, तथा अनवज्ञप्तियुक्त वितर्क। इन वितर्कों को भी वह सावधान साधक क्रमशः नष्ट कर लेता है। उनके नष्ट होने पर केवल धर्मवितर्क शेष बचता है। तब उसको समाधि (चित्त की एकाग्रता) लगती है; परन्तु यह समाधि भी शान्त, उत्तम, गम्भीर शान्ति से प्राप्त, एकाग्रतायुक्त नहीं होती, अपितु ससंस्कारनिगृह्य वारित ही होती है।

"परन्तु, भिक्षुओ! एक समय आ जाता है, जब उस साधक का चित्त अध्यात्म में स्थित हो जाता है, ठहर जाता है, एकाग्र हो जाता है, समाधिस्थ हो जाता है। उसकी वह समाधि शान्त, उत्तम, गाम्भीर्य प्राप्त, एकाग्रताप्राप्त हो जाती है और वह ससंस्कारनिगृह्य वारित नहीं होती। उस समय उसका चित्त जिस जिस अभिज्ञा से साक्षात्करणीय धर्म की ओर झुकता है, प्रवृत्त होता है वह उस साक्षात्करणीय क्रिया से वहाँ वहाँ साक्षी की योग्यता को प्राप्त कर लेता है स्मृत्यायतन होने पर।

बहुधा अस्सं, बहुधा पि हुत्वा एको अस्सं; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुड्डं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छेय्यं, सेय्यथापि आकासे; पथविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करेय्यं, [N.236] सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमानो गच्छेय्यं, सेय्यथापि पथवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमेय्यं, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परिमसेय्यं परिमज्जेय्यं; याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने।

[B.257] "सो सचे आकङ्खति—'परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानेय्यं—सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानेय्यं, वीतरागं वा चित्तं वीतरागं चित्तं ति पजानेय्यं; सदोसं वा चित्तं सदोसं चित्तं ति पजानेय्यं, वीतदोसं वा चित्तं वीतदोसं चित्तं ति पजानेय्यं; समोहं वा चित्तं समोहं चित्तं ति पजानेय्यं, वीतमोहं वा चित्तं वीतमोहं चित्तं ति पजानेय्यं; सङ्खित्तं वा चित्तं ति पजानेय्यं, विक्खित्तं वा चित्तं विक्खित्तं चित्तं ति पजानेय्यं; महग्गतं वा चित्तं महग्गतं चित्तं ति पजानेय्यं, अमहग्गतं वा चित्तं अमहग्गतं चित्तं ति पजानेय्यं; सउत्तरं वा चित्तं सउत्तरं चित्तं ति पजानेय्यं, अनुत्तरं वा चित्तं अनुत्तरं चित्तं ति पजानेय्यं; समाहितं वा चित्तं समाहितं चित्तं ति पजानेय्यं, असमाहितं वा चित्तं असमाहितं चित्तं ति पजानेय्यं; विमुत्तं वा चित्तं विमुत्तं चित्तं ति पजानेय्यं, अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने।

"सो सचे आकङ्खति—'अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरेय्यं, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुख-[N.237] दुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो ति, इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने।

"वह यदि चाहता है—'अनेक प्रकार की ऋद्धियों (अलौकिक चमत्कारों) का मैं अनुभव करूँ—एक हो कर भी बहुत हो जाऊँ... पूर्ववत्... चन्द्रमा एवं सूर्य को भी हाथ से छू सकूँ, ब्रह्म लोक तक इसी शरीर से जा सकूँ तो वह वहाँ वहाँ उस साक्षात्कार का साक्षी बन सकता है।'

"वह यदि चाहता है—दिव्य, विशुद्ध एवं मनुष्योत्तर श्रोत्र धातु से दूसरों के शब्द सुनूँ—...पूर्ववत्... साक्षी बन सकता है।

"वह यदि चाहता है—'दूसरे प्राणियों के, दूसरे पुरुषों के चित्त को स्वचित्त से जान लूँ—...पूर्ववत्... साक्षी बन सकता है।'

''सो सचे आकङ्खति—'दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सेय्यं चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानेय्यं—इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना; इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना ति, इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सेय्यं चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने।

''सो सचे आकङ्खति—'आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने'' ति॥

११. निमित्तसुत्तं : ''अधिचित्तमनुयुत्तेन, भिक्खवे, भिक्खुना तीणि निमित्तानि कालेन कालं मनसि कातब्बानि—कालेन कालं समाधिनिमित्तं मनसि कातब्बं, कालेन कालं पग्गहनिमित्तं मनसि कातब्बं, कालेन कालं उपेक्खानिमित्तं मनसि कातब्बं। सचे, भिक्खवे, अधिचित्तिमनुयुत्तो भिक्खु एकन्तं समाधिनिमित्तंयेव मनसि करेय्य, ठानं तं चित्तं कोसज्जाय संवत्तेय्य। सचे, भिक्खवे, अधिचित्तभनुयुत्तो भिक्खु एकन्तं पग्गहनिमित्तंयेव मनसि करेय्य, ठानं तं चित्तं उद्धच्चाय संवत्तेय्य। सचे, भिक्खवे, अधिचित्तमनुयुत्तो [R.257] भिक्खु एकन्तं उपेक्खानिमित्तंयेव मनसि करेय्य, ठानं तं चित्तं न सम्मा समाधियेय्य आसवानं खयाय। यतो च खो, भिक्खवे, अधिचित्तमनुयुत्तो भिक्खु कालेन कालं समाधि-निमित्तं मनसि करोति, कालेन कालं पग्गहनिमित्तं मनसि करोति, कालेन कालं [N.238]

''वह यदि चाहता है—अपने अनेक पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करूँ ... पूर्ववत्... साक्षी बन सकता है।

''वह यदि चाहता है—मैं अपने दिव्य चक्षुओं से दूसरे प्राणियों के, दूसरे पुरुषों के पूर्व जन्मों के विषय में... पूर्ववत्... साक्षी बन सकता है।

''वह यदि चाहता है—'आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति इसी जन्म में जानकर साक्षात्कार कर साधना करूँ' तो वह अपने स्मृत्यायतन के सहारे से इसका भी साक्षी बन सकता है॥''

११. निमित्तसूत्र : : तीन निमित्त

''चित्त के विषय में, भिक्षुओ! साधना करते हुए साधक भिक्षु को समय समय पर इन तीन निमित्तों पर विचार करना चाहिये—(१) समय समय पर तद्विषयक समाधि पर, (२) समय समय

उपेक्खानिमित्तं मनसि करोति, तं होति चित्तं मुदुं च कम्मनियं च पभस्सरं च, न च पभङ्गु, सम्मा समाधियति आसवानं खयाय।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा उक्कं बन्धेय्य, उक्कं बन्धित्वा उक्कामुखं आलिम्पेय्य, उक्कामुखं आलिम्पेत्वा सण्डासेन जातरूपं गहेत्वा उक्कामुखे पक्खिपेय्य, उक्कामुखे पक्खिपित्वा कालेन कालं अभिधमति, कालेन कालं उदकेन परिप्फोसेति, कालेन कालं अज्झुपेक्खति। सचे, भिक्खवे, सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा तं जातरूपं एकन्तं अभिधमेय्य, ठानं तं जातरूपं डहेय्य। सचे, भिक्खवे, सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा तं जातरूपं एकन्तं उदकेन परिप्फोसेय्य, ठानं तं जातरूपं निब्बापेय्य। सचे, भिक्खवे, सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा तं जातरूपं एकन्तं अज्झुपेक्खेय्य, ठानं तं जातरूपं न सम्मा परिपाकं गच्छेय्य। यतो च खो, भिक्खवे, सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा तं जातरूपं कालेन कालं अभिधमति, कालेन कालं उदकेन परिप्फोसेति, कालेन कालं अज्झुपेक्खति, तं होति जातरूपं मुदुं च कम्मनियं च पभस्सरं च, न च पभङ्गु, सम्मा उपेति कम्माय। यस्सा यस्सा च पिलन्धनविकतिया आकङ्खति—यदि पट्टिकाय, यदि कुण्डलाय, यदि गीवेय्यकेन, यदि सुवण्णमालाय—तं चस्स अत्थं अनुभोति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, अधिचित्तमनुयुत्तेन भिक्खुना तीणि निमित्तानि कालेन कालं मनसि कातब्बानि—कालेन कालं समाधिनिमित्तं मनसि कातब्बं, कालेन कालं पग्गहनिमित्तं मनसि कातब्बं, कालेन कालं उपेक्खानिमित्तं मनसि कातब्बं। सचे, भिक्खवे,

---

पर उसके निग्रह पर, (३) समय समय पर उसकी उपेक्षा पर—इन तीन निमित्तों पर विचार करना चाहिये।

"यदि, भिक्षुओ! चित्तविषयक साधना करने वाला भिक्षु एकान्तत: समाधि भावना ही करता रहे तो, हो सकता है, उसका चित्त आलस्य मानने लगे। या वह भिक्षु एकान्तत: चित्तनिग्रहहेतु ही प्रयत्न करता रह जाय तो उसका चित्त औद्धत्य (उद्दण्डता) की ओर झुकने लगे। या वह भिक्षु चित्त के प्रति उपेक्षा निमित्त को ही एकान्तत: प्रयुक्त करने लगे तो हो सकता है, उसका चित्त समाधिभावना में निरन्तर न लगा रह सके। अत: यदि वह भिक्षु चित्तविषयक साधना करते समय समाधिनिमित्त, प्रग्रहनिमित्त एवं उपेक्षानिमित्त पर समय समय पर विचार करता रहे तो उसका चित्त मृदु (सहज, सरल) एवं कार्य करने योग्य तथा प्रभास्वर (उत्साहसम्पन्न) बना रहेगा, वह चञ्चल (प्रभङ्गु) नहीं होगा। वह आश्रवक्षयहेतु भलीभाँति समाधिरत रहेगा। तब वह साधक जिस जिस अभिज्ञा के साक्षात्करणीय धर्म का साक्षात्कार करने के हेतु चित्त को जिधर झुकायगा, वह उधर ही सरलता से तदर्थ प्रवृत्त होने लगेगा और उसका साक्षात्कार, स्मृत्यायतन के रहते, कर ही लेगा।

"यदि, भिक्षुओ! वह साधक अनेकविध ऋद्धियों का अनुभव करना चाहेगा तो वैसा करने

अधिचित्तमनुयुत्तो भिक्खु एकन्तं समाधिनिमित्तंयेव मनसि करेय्य, ठानं तं चित्तं [R.238] कोसज्जाय संवत्तेय्य। सचे, भिक्खवे, अधिचित्तमनुयुत्तो भिक्खु एकन्तं पग्गहनिमित्तंयेव मनसि करेय्य, ठानं तं चित्तं उद्धच्चाय संवेत्तेय्य। सचे, भिक्खवे, अधिचित्तमनुयुत्तो भिक्खु एकन्तं उपेक्खानिमित्तंयेव मनसि करेय्य, ठानं तं चित्तं न सम्मा समाधियेय्य आसवानं खयाय। यतो च खो, भिक्खवे, अधिचित्तमनुयुत्तो भिक्खु कालेन कालं समाधिनिमित्तं मनसि करोति, कालेन कालं पग्गहनिमित्तं मनसि करोति, कालेन कालं [N.239] उपेक्खानिमित्तं मनसि करोति, तं होति चित्तं मुदुं च कम्मनियं च पभस्सरं च, न च पभङ्गु, सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। यस्स यस्स च अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभिनिन्नामेति अभिञ्ञासच्छिकिरियाय, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने।

''सो सचे आकङ्खति—'अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभवेय्यं ...पे०... [B.260] *(छ अभिञ्ञा वित्थारेतब्बा)* आसवानं खया ...पे०... सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्यं' ति, तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने'' ति॥ ●

लोणकपल्लवग्गो दसमो॥

तस्सुद्दानं

अच्चायिकं पविवेकं, सरदो परिसा तयो।
आजीनीया पोत्थको च, लोणं धोवति निमित्तानी ति॥

दुतियो पण्णासको सममो॥

में भी समर्थ होगा। ...पूर्ववत्...। *[यहाँ छहों अभिज्ञाओं का विस्तार कर लें।]* आश्रवों के क्षय के लिये ...पूर्ववत्... साक्षात्कार कर सकेगा॥ ●

लवणकपालवर्ग दशम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. आत्ययिक सूत्र, २. प्रविवेक सूत्र, ३. शरद सूत्र, ४. परिषत्सूत्र, ५. प्रथम आजानेय सूत्र, ६. द्वितीय आजानेय सूत्र, ७. तृतीय आजानेय सूत्र, ८. पुस्तक सूत्र, ९. लवणकपालसूत्र, १०. पांशुधोवक सूत्र एवं ११. निमित्तसूत्र॥ ●

द्वितीय पञ्चाशत्क सम्पन्न॥

११. सम्बोधवग्गो

ततिय पण्णासको

[B.261] **१. पुब्बेवसम्बोधसुत्तं** : ''पुब्बेव मे, भिक्खवे, सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि—'को नु खो लोके अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं' ति? तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'यं खो लोकं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं लोके अस्सादो। यं लोको अनिच्चो दुक्खो विपरिणामधम्मो, अयं लोके आदीनवो। यो लोके छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं लोके निस्सरणं' ति। यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, [R.259] एवं लोकस्स अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञासिं, नेव तावाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। यतो च ख्वाहं, भिक्खवे, एवं लोकस्स अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च [N.240] आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अकुप्पा मे विमुत्ति, अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो''' ति॥ ●

---

११. सम्बोध वर्ग

तृतीय पञ्चाशत्क

१. सम्बोधपूर्वसूत्र : : बोधिपूर्व के तीन चिन्तन

''भिक्षुओ! सम्बोधिप्राप्ति से पूर्व, जब मैं बोधिसत्त्व ही था, मुझे बोधिप्राप्ति नहीं हुई थी, मैं इस प्रकार चिन्तन करने लगा—'इन लौकिक कामभोगों में क्या आस्वाद (रस) है? क्यों आदीनव (दोष, कमी) है? तथा इनसे निःसरण (छूटने) का क्या उपाय है? चिन्तन करते हुए मैं इस निश्चय पर पहुँचा—'लोक की अपेक्षा कर उत्पन्न होने वाला सुख एवं सौमनस्य ही इन कामभोगों का लोक में आस्वाद है; यह लोक अनित्य, दुःखमय विपाकस्वभाव वाला है—यही लोक में आदीनव (दोष या कमी) है; तथा लोक में स्वच्छन्द आसक्ति का निरोध ही इस लोक से मुक्ति (निःसरण) है।

''भिक्षुओ! जब तक मैं इस लौकिक आस्वाद को आस्वाद के रूप में, लोक के आदीनव को आदीनव के रूप में; तथा इससे निःसरण को निःसरण के रूप में नहीं जान पाया, तब तक, भिक्षुओ! मैंने देवता, ब्रह्मा, मार एवं श्रमण-ब्राह्मण सहित प्रजा (जनता) वाले इस लोक में देव-मनुष्यों सहित जनता के सम्मुख यह घोषणा नहीं की—'मैं अद्वितीय सम्यक्सम्बोधि (पूर्ण ज्ञान) तक पहुँच चुका हूँ।' तथा जब, भिक्षुओ! मैंने लोक के इस आस्वाद को आस्वाद के रूप में, आदीनव को आदीनव के रूप में तथा निःसरण को निःसरण के रूप में जान लिया तब मैने भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... देव मनुष्यों सहित प्रजा (जनता) के सम्मुख यह घोषणा कर दी—'मैं

२. पठमअस्सादसुत्तं : ''लोकस्साहं, भिक्खवे, अस्सादपरियेसनं अचरिं। यो लोके अस्सादो तदज्झगमं। यावतको लोके अस्सादो, पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। लोकस्साहं, भिक्खवे, आदीनवपरियेसनं अचरिं। यो लोके आदीनवो तदज्झगमं। यावतको [B.262] लोके आदीनवो, पञ्ञाय मे सो सुदिट्ठो। लोकस्साहं, भिक्खवे, निस्सरणपरियेसनं अचरिं। यं लोक निस्सरणं तदज्झगमं। यावतकं लोके निस्सरणं, पञ्ञाय मे तं सुदिट्ठं। यावकीवञ्चाहं, भिक्खवे, लोकस्स अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञासिं, नेव तावाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। यतो च ख्वाहं, भिक्खवे, लोकस्स अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अकुप्पा मे विमुत्ति, अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो''' ति॥ ●

३. दुतियअस्सादसुत्तं : ''नो चेदं, भिक्खवे, लोके अस्सादो अभविस्स, [R.260] नयिदं सत्ता लोके सारज्जेय्युं। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि लोके अस्सादो, तस्मा सत्ता लोके सारज्जन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, लोके आदीनवो अभविस्स, नयिदं सत्ता लोके निब्बिन्देय्युं। यस्मा च खो, भिक्खूवे, अत्थि लोके आदीनवो, तस्मा सत्ता लोके निब्बिन्दन्ति। नो चेदं, भिक्खवे, लोके निस्सरणं अभविस्स, नयिदं सत्ता लोकम्हा निस्सरेय्युं। यस्मा

अद्वितीय सम्यक्सम्बोधि तक पहुँच चुका हूँ'। तब मुझे इस ज्ञान का साक्षात्कार भी हो गया—'मेरी यह (संसार से) विमुक्ति अकोप्य (स्थिर=अचञ्चल) है। अब मेरा पुनर्जन्म नहीं हो सकता'॥'' ●

२. प्रथम आस्वाद सूत्र : : तीन अङ्गों की गवेषणा

''भिक्षुओ! मैंने लोक के इस आस्वाद की पर्येषणा (खोज) आरम्भ की। जो लोक में आस्वाद है, उसको मैंने यथार्थतः जान लिया, लोक में जितना भी आस्वाद है उसको सर्वांशतः जान लिया। या लोक में जो आदीनव है, जितना आदीनव है उसकी भी पर्येषणा की, तथा वह सब मैंने जान लिया। तथा लोक से जिस प्रकार सहजतया जहाँ तक जितना भी निःसरण हो सकता है, उसकी भी मैने पर्येषणा की और उसके विषय में सब कुछ जान लिया। भिक्षुओ! जब तक मैने लोक के आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को भली भाँति न जान लिया तब तक ...पूर्ववत्... सम्बोधि तक पहुँच चुका हूँ। परन्तु, भिक्षुओ! जब मैने लोक के इस आस्वाद को आस्वाद के रूप में ...पूर्ववत्... पहुँच चुका हूँ। तब मुझे इस ज्ञान का भी ...पूर्ववत्... पुनर्जन्म नहीं होगा॥'' ●

३. द्वितीय आस्वाद सूत्र : : तीन अङ्ग

''भिक्षुओ! लोक में यदि आस्वाद न होता तो ये लौकिक प्राणी इसमें इतने अधिक आसक्त न होते। क्योंकि भिक्षुओ! लोक में कोई आस्वाद है इसीलिये प्राणी इसकी ओर आकृष्ट होते हैं। भिक्षुओ! लोक में यदि कोई आदीनव (दोष) न होता तो प्राणी कभी न कभी इससे ग्लानि ही क्यों

[N.241] च खो, भिक्खवे, अत्थि लोके निस्सरणं, तस्मा सत्ता लोकम्हा निस्सरन्ति। यावकीवञ्च, भिक्खवे, सत्ता लोकस्स अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नाब्भञ्ञासुं, नेव ताव, भिक्खवे, सत्ता सदेवका लोका समारका सब्रह्मका सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय निस्सटा विसंयुत्ता विप्पमुत्ता विमरियादीकतेन चेतसा विहरिंसु। यतो च खो, भिक्खवे, सत्ता लोकस्स अस्सादं च [B.263] अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं अब्भञ्ञासुं, अथ, भिक्खवे, सत्ता सदेवका लोका समारका सब्रह्मका सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय निस्सटा विसंयुत्ता विप्पमुत्ता विमरियादीकतेन चेतसा विहरन्ती'' ति॥ ●

४. समणब्राह्मणसुत्तं : ''ये केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा लोकस्स अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं नप्पजानन्ति, न मे ते, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता, न च पन ते आयस्मन्तो सामञ्ञत्थं वा ब्रह्मञ्ञत्थं वा दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ति। ये च खो केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा लोकस्स अस्सादं च अस्सादतो आदीनवं च आदीनवतो निस्सरणं च निस्सरणतो यथाभूतं पजानन्ति, ते खो, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा समणेसु वा समणसम्मता ब्राह्मणेसु वा ब्राह्मणसम्मता, ते च पनायस्मन्तो सामञ्ञत्थं च ब्रह्मञ्ञत्थं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरन्ती'' ति॥ ●

मानते! क्योंकि, भिक्षुओ! लोक में कोई (विशेष) आदीनव है कि लोक इससे एक न एक दिन ग्लानि मान बैठते हैं। इसी प्रकार, भिक्षुओ! लोक से निःसरण का कोई उपाय न होता तो कोई भी प्राणी इससे मुक्ति नहीं पा सका होता! परन्तु, क्योंकि लोक से मुक्ति का कोई उपाय (निःसरण) है, इसीलिये कोई प्राणी कभी न कभी इससे मुक्ति पा ही जाता है।

''भिक्षुओ! जब तक प्राणी लोक के आस्वाद को आस्वाद के रूप में, आदीनव को आदीनव के रूप में या इससे निःसरण को निःसरण के रूप में यथार्थतः न जान लेंगे तब तक प्राणी मार ब्रह्मा एवं श्रमण ब्राह्मणों सहित साधारण जनता से, तथा देवमनुष्यों सहित लोक से पृथक् होकर, असम्बद्ध होकर, मुक्त होकर निःसीम (अप्रमाण) चित्त से साधना नहीं कर पायँगे। हाँ, जब प्राणी लोक के आदीनव को आदीनव के रूप में... यथार्थतः जान लेंगे, तभी ये प्राणी ...पूर्ववत्... अप्रमाण चित्त से साधना करने में समर्थ हो सकेंगे॥ ●

४. श्रमणब्राह्मणसूत्र : : तीनों अङ्गों की साधना

''भिक्षुओ! जो भी कोई श्रमण ब्राह्मण लोक के आस्वाद को आस्वाद के रूप में, आदीनव को आदीनव के रूप में, उसके निःसरण को निःसरण के रूप में यथार्थतः नहीं पहचानते, मेरी दृष्टि में, वे श्रमण या ब्राह्मण श्रमणों में श्रमण कहलाने योग्य या ब्राह्मणों में ब्राह्मण कहलाने योग्य नहीं हैं। तथा वे श्रामण्य या ब्राह्मण्य के लिये इसी जन्म में जानकर साक्षात् कर साधना के योग्य नहीं हैं। परन्तु जो कोई, भिक्षुओ! भिक्षु लोक के आस्वाद को आस्वाद के रूप में, आदीनव को आदीनव

५. रुण्णसुत्तं : "रुण्णमिदं, भिक्खवे, अरियस्स विनये यदिदं गीतं। उम्मत्तकमिदं, भिक्खवे, अरियस्स विनये यदिदं नच्चं। कोमारकमिदं, भिक्खवे, अरियस्स विनये [R.261] यदिदं अतिवेलं दन्तविदंसकहसितं। तस्मातिह, भिक्खवे, सेतुघातो गीते, सेतुघातो नच्चे, अलं वो धम्मप्पमोदितानं सतं सितं सितमत्ताया" ति॥ ●

६. अतित्तिसुत्तं : "तिण्णं, भिक्खवे, पटिसेवनाय नत्थि तित्ति। कतमेसं तिण्णं? सोप्पस्स, भिक्खवे, पटिसेवनाय नत्थि तित्ति। सुरामेरयपानस्स, भिक्खवे, पटिसेवनाय नत्थि तित्ति। मेथुनधम्मसमापत्तिया, भिक्खवे, पटिसेवनाय नत्थि तित्ति। [N.242, B.264] इमेसं, भिक्खवे, तिण्णं पटिसेवनाय नत्थि तित्ती" ति॥ ●

७. अरक्खितसुत्तं : अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच—"चित्ते, गहपति, अरक्खिते कायकम्मं पि अरक्खितं होति, वचीकम्मं पि अरक्खितं होति, मनोकम्मं पि अरक्खितं होति। तस्स अरक्खितकायकम्मन्तस्स अरक्खितवचीकम्मन्तस्स अरक्खितमनोकम्मन्तस्स कायकम्मं पि अवस्सुतं होति, वचीकम्मं पि अवस्सुतं होति, मनोकम्मं पि अवस्सुतं होति। तस्स अवस्सुतकायकम्मन्तस्स अवस्सुतवचीकम्मन्तस्स अवस्सुतमनोकम्मन्तस्स कायकम्मं पि

के रूप में, नि:सरण को नि:सरण के रूप में यथार्थत: पहचान चुके हैं, वेही श्रमण या ब्राह्मणों में श्रमण एवं ब्राह्मण कहलाने योग्य हैं। तथा वहीं श्रामण्य या ब्राह्मण्य के लिये इसी जन्म में जानकर साक्षात् कर साधना के अधिकारी हैं॥" ●

५. रुण्ण सूत्र : : गीत तथा अट्टहास निषिद्ध

"भिक्षुओ! हमारे इस आर्यविनय में वह कृत्य 'रुदन' ही कहलाता है जो श्रमण होकर भी लौकिक गीत गाये। और यह भी 'उन्माद' ही कहलाता है जो भिक्षु दाँत दिखाता हुआ मुक्त हास्य हँसे। अत: भिक्षुओ! यह समझो कि भिक्षु का लौकिक गान से तथा मुक्त हास एवं परिहास से भी मर्यादाभङ्ग होता है। अत: भिक्षु को स्मितहास्य ही करना चाहिये॥" ●

६. अतृप्ति सूत्र : : तीनों कर्मों से तृप्ति नहीं

"भिक्षुओ! लोक में पृथग्जनों को तीन कार्यों में तृप्ति (सन्तोष) नहीं होती। कौन तीन? १. उनको **शयन** से तृप्ति नहीं होती। २. **मद्यपान** से तृप्ति नहीं होती। ३. मैथुन धर्म (व्यभिचार) से तृप्ति नहीं होती। भिक्षुओ! इन तीन कुकृत्यों के सेवन से उनको तृप्ति नहीं होती॥" ●

७. अरक्षित सूत्र : : तीन कर्म अरक्षित

तब अनाथपिण्डिक गृहपति कभी भगवान् (बुद्ध) के सम्मुख पहुँचा। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। तब उसको भगवान् ने यह कहा—"गृहपति! चित्त के अरक्षित (अनियन्त्रित) रहने पर उस मनुष्य का कायिक कर्म भी, वाचसिक कर्म भी तथा मानसिक कर्म भी आरक्षित ही कहलाता है। ऐसे अरक्षित काय-वाक्-मन: कर्मवाले के कायकर्म, वाक्कर्म एवं मन:कर्म भी तृष्णायुक्त ही होते हैं। इस ऐसे तृष्णायुक्त त्रिविध कर्मवाले का कायकर्म भी, वाक्कर्म

पूतिकं होति, वचीकम्मं पि पूतिकं होति, मनोकम्मं पि पूतिकं होति। तस्स पूतिकायकम्मन्तस्स पूतिवचीकम्मन्तस्स पूतिमनोकम्मन्तस्स न भद्दकं मरणं होति, न भद्दिका कालङ्किरिया।

"सेय्यथापि, गहपति, कूटागारे दुच्छन्ने कूटं पि अरक्खितं होति, गोपानसियो पि अरक्खिता होन्ति, भित्ति पि अरक्खिता होति; कूटं पि अवस्सुतं होति, गोपानसियो पि अवस्सुता होन्ति, भित्ति पि अवस्सुता होति; कूटं पि पूतिकं होति, गोपानसियो पि पूतिका [R.262] होन्ति, भित्ति पि पूतिका होति। एवमेव खो, गहपति, चित्ते अरक्खिते कायकम्मं पि अरक्खितं होति, वचीकम्मं पि अरक्खितं होति, मनोकम्मं पि अरक्खितं होति। तस्स अरक्खितकायकम्मन्तस्स अरक्खितवचीकम्मन्तस्स अरक्खितमनोकम्मन्तस्स कायकम्मं पि अवस्सुतं होति, वचीकम्मं पि अवस्सुतं होति, मनोकम्मं पि अवस्सुतं होति। तस्स अवस्सुतकायकम्मन्तस्स अवस्सुतवचीकम्मन्तस्स अवस्सुतमनोकम्मन्तस्स कायकम्मं पि पूतिकं होति, वचीकम्मं पि पूतिकं होति, मनोकम्मं पि पूतिकं होति। तस्स पूतिकायकम्मन्तस्स पूतिवचीकम्मन्तस्स पूतिमनोकम्मन्तस्स न भद्दकं मरणं होति, न भद्दिका कालङ्किरिया।

[B.265] "चित्ते, गहपति, रक्खिते कायकम्मं पि रक्खितं होति, वचीकम्मं पि रक्खितं होति, [N.243] मनोकम्मं पि रक्खितं होति। तस्स रक्खितकायकम्मन्तस्स रक्खितवचीकम्मन्तस्स रक्खितमनोकम्मन्तस्स कायकम्मं पि अनवस्सुतं होति, वचीकम्मं पि अनवस्सुतं होति, मनोकम्मं पि अनवस्सुतं होति। तस्स अनवस्सुतकायकम्मन्तस्स अनवस्सुतवचीकम्मन्तस्स अनवस्सुतमनोकम्मन्तस्स कायकम्मं पि अपूतिकं होति, वचीकम्मं पि अपूतिकं होति, मनोकम्मं पि अपूतिकं होति। तस्स अपूतिकायकम्मन्तस्स अपूतिवचीकम्मन्तस्स अपूतिमनोकम्मन्तस्स भद्दकं मरणं होति, भद्दिका कालङ्किरिया।

"सेय्यथापि, गहपति, कूटागारे सुच्छन्ने कूटं पि रक्खितं होति, गोपानसियो पि

एवं मनःकर्म भी पूतियुक्त (दुर्गन्धियुक्त=सड़ा हुआ) ही होता है। यहाँ अन्त में ऐसे पूति कर्मवाले का मरणकाल भी सुखमय नहीं होता, और न उसकी मृत्यु ही उसके लिये मङ्गलमय होती है।

"जैसे, गृहपति! किसी पुराने या सम्यक् रीति से अनिर्मित ऊँचे शिखर वाले भवन का कूट (धरण), गोपानसी (बल्लियाँ), दीवार सभी कुछ अरक्षित एवं जीर्णोद्धार (मरम्मत) चाहनेवाले होते हैं; इसी तरह, गृहपति! चित्त के अरक्षित होने पर उस मनुष्य का न मरणकाल और न उसकी मृत्यु ही मङ्गलमय होती है।

"गृहपति! (इसके विपरीत) चित्त के रक्षित (नियन्त्रित) होने पर उस पुरुष का कायकर्म, वाक्कर्म एवं मनःकर्म भी रक्षित ही माना जाता है। ऐसे रक्षित काय-वाक्-मनःकर्म वाले पुरुष का कायकर्म, वाक्कर्म या मनःकर्म भी तृष्णाविहीन (अनवश्रुत) ही होते हैं। इस ऐसे तृष्णाविहीन पुरुष द्वारा कृत काय, वाक् एवं मन द्वारा निहित कर्म अपूतिक (सुगन्धमय=सुफलदायी)

रक्खिता होन्ति, भित्ति पि रक्खिता होति; कूटं पि अनवस्सुतं होति, गोपानसियो पि अनवस्सुता होन्ति, भित्ति पि अनवस्सुता होति; कूटं पि अपूतिकं होति, गोपानसियो पि अपूतिका होन्ति, भित्ति पि अपूतिका होति। एवमेव खो, गहपति, चित्ते रक्खिते कायकम्मं पि रक्खितं होति, वचीकम्मं पि रक्खितं होति, मनोकम्मं पि रक्खितं होति। तस्स रक्खितकायम्मन्तस्स रक्खितवचीकम्मन्तस्स रक्खितमनोकम्मन्तस्स कायकम्मं पि अनवस्सुतं होति, वचीकम्मं पि अनवस्सुतं होति, मनोकम्मं पि अनवस्सुतं होति। तस्स अनवस्सुतकायकम्मन्तस्स अनवस्सुतवचीकम्मन्तस्स अनवस्सुतमनोकम्मन्तस्स कायकम्मं पि अपूतिकं होति, वचीकम्मं पि अपूतिकं होति, मनोकम्मं पि अपूतिकं होति। तस्स अपूतिकायकम्मन्तस्स अपूतिवचीकम्मन्तस्स अपूतिमनोकम्मन्तस्स भद्दकं मरणं होति, भद्दिका कालङ्किरिया'' ति॥

८. ब्यापन्नसुत्तं : एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच— ''चित्ते, गहपति, ब्यापन्ने कायकम्मं पि ब्यापन्नं होति, वचीकम्मं पि ब्यापन्नं होति, मनोकम्मं पि ब्यापन्नं होति। तस्स ब्यापन्नकायकम्मन्तस्स ब्यापन्नवचीकम्मन्तस्स ब्यापन्नमनोकम्मन्तस्स न भद्दकं मरणं होति, न भद्दिका कालङ्किरिया। सेय्यथापि, गहपति, कूटागारे दुच्छन्ने कूटं पि ब्यापन्नं होति, गोपानसियो पि ब्यापन्ना होन्ति, भित्ति पि ब्यापन्ना [R.263] होति; एवमेव खो, गहपति, चित्ते ब्यापन्ने कायकम्मं पि ब्यापन्नं होति, वचीकम्मं पि [B.266] ब्यापन्नं होति, मनोकम्मं पि ब्यापन्नं होति। तस्स ब्यापन्नकायकम्मन्तस्स ब्यापन्नवचीकम्मन्तस्स ब्यापन्नमनोकम्मन्तस्स न भद्दकं मरणं होति, न भद्दिका कालङ्किरिया।

होता है। तथा ऐसे अपूतिक कर्म वाले पुरुष मरणकाल भी सुखमय एवं उसकी मृत्यु भी सुखमय होती है।

''जैसे, गृहपति! किसी नवीन एवं सम्यक् रीति से निर्मित ऊँचे शिखर वाले भवन का कूट (धरण), गोपानसी (बल्लियाँ), दीवार—सभी कुछ सुरक्षित (सुव्यवस्थित) होते हैं, तथा ये कूट आदि कोई जीर्णोद्धार कर्म नहीं चाहते, क्योंकि इस भवन के ये कूट आदि सब कुछ नवीन होते हैं; इसी प्रकार, गृहपति! चित्त के रक्षित (निगृहीत) होने पर ऐसे पुरुष के काय, वाक् एवं मन के कर्म भी सुव्यवस्थित एवं तृष्णाविहीन ही होते हैं। ऐसे तृष्णाविहीन पुरुष का मरणकाल एवं उसकी मृत्यु भी सुखमय ही होती है॥''

८. व्यापन्नसूत्र : : त्रिविध कर्म

''...एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान् ने यह उपदेश किया—''त्रित्त के मार्गभ्रष्ट (व्यापन्न) होने पर कायकर्म, वाक्कर्म एवं मनःकर्म भी मार्गभ्रष्टता की ओर ही अग्रसर होते हैं। ऐसे व्यापन्न काय-वाक्-मनःकर्म का न मरणकाल शुभ होता है, न उसकी मृत्यु ही।

''जैसे, गृहपति! दुश्छन्न कूटागार में लगे कूट आदि सभी उपकरण भी दुश्छन्न होते हैं; उसी तरह व्यापन्नचित्त पुरुष के कायिक आदि त्रिविध कर्म भी मार्गभ्रष्टता की ओर ही ले जानेवाले होते हैं। तथा न उसका मृत्युकाल शुभ होता है, न उसकी मृत्यु ही।

[N.244] ''चित्ते, गहपति, अब्यापन्ने कायकम्मं पि अब्यापन्नं होति, वचीकम्मं पि अब्यापन्नं होति, मनोकम्मं पि अब्यापन्नं होति। तस्स अब्यापन्नकायकम्मन्तस्स अब्यापन्नवचीकम्मन्तस्स अब्यापन्नमनोकम्मन्तस्स भद्दकं मरणं होति, भद्दिका कालङ्किरिया। सेय्यथापि, गहपति, कूटागारे सुच्छन्ने कूटं पि अब्यापन्नं होति, गोपानसियो पि अब्यापन्ना होन्ति, भित्ति [R.264] पि अब्यापन्ना होति; एवमेव खो, गहपति, चित्ते अब्यापन्ने कायकम्मं पि अब्यापन्नं होति, वचीकम्मं पि अब्यापन्नं होति, मनोकम्मं पि अब्यापन्नं होति। तस्स अब्यापन्नकाय-कम्मन्तस्स ...पे०... अब्यापन्नमनोकम्मन्तस्स भद्दकं मरणं होति, भद्दिका कालङ्किरिया'' ति॥ ●

९. पठमनिदानसुत्तं : ''तीणिमानि, भिक्खवे, निदानानि कम्मानं समुदयाय। कतमानि तीणि? लोभो निदानं कम्मानं समुदयाय, दोसो निदानं कम्मानं समुदयाय, मोहो निदानं कम्मानं समुदयाय। यं, भिक्खवे, लोभपकतं कम्मं लोभजं लोभनिदानं लोभसमुदयं, तं कम्मं अकुसलं तं कम्मं सावज्जं तं कम्मं दुक्खविपाकं, तं कम्मं कम्मसमुदयाय संवत्तति, न तं कम्मं कम्मनिरोधाय संवत्तति। यं, भिक्खवे, दोसपकतं कम्मं दोसजं दोसनिदानं दोससमुदयं, तं कम्मं अकुसलं तं कम्मं सावज्जं तं कम्मं दुक्खविपाकं, तं कम्मं कम्मसमुदयाय संवत्तति, न तं कम्मं कम्मनिरोधाय संवत्तति। यं, भिक्खवे, मोहपकतं कम्मं मोहजं मोहनिदानं मोहसमुदयं, तं कम्मं अकुसलं तं कम्मं सावज्जं तं कम्मं दुक्खविपाकं, तं कम्मं कम्मसमुदयाय संवत्तति, न तं कम्मं कम्मनिरोधाय संवत्तति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि निदानानि कम्मानं समुदयाय।

''परन्तु, गृहपति, चित्त के मार्गारूढ (अव्यापन्न) होने पर उसके कायिक आदि त्रिविध कर्म भी मार्गसम्पन्न ही होते हैं। ऐसे मार्गारूढ पुरुष का, गृहपति, मरण काल शुभ ही होता है, तथा उसकी मृत्यु भी सुखमय होगी। जैसे, गृहपति! किसी भलीभाँति निर्मित किसी कूटागार में लगे हुए कूट, गोपानसी एवं भित्ति—सभी कुछ व्यवस्थित होता है, उसी प्रकार, गृहपति! मार्गारूढ पुरुष के कायिक आदि त्रिविध कर्म भी अव्यापन्न (सुव्यवस्थित) ही होते हैं। उस सुव्यवस्थित त्रिविध पुरुष का मरणकाल एवं मृत्यु भी—दोनों ही सुखमय कर्मों से शुद्ध होंगे॥'' ●

९. प्रथम निदान सूत्र : : कर्मोत्पत्ति के तीन निदान

''भिक्षुओ! कर्मोत्पत्ति के ये तीन कारण होते हैं। कौन से तीन? (१) **लोभ** कर्मोत्पत्ति का कारण होता है। (२) **द्वेष** कर्मोत्पत्ति में कारण होता है। (३) **मोह** कर्मोत्पत्ति में कारण होता है।

भिक्षुओ! जो कर्म लोभप्रकृतिक, लोभजन्य एवं लोभनिदान तथा लोभोत्पन्न है, वह कर्म अकुशल, सदोष एवं दुःखमय फल ही देनेवाला होता है। वह कर्म ऐसी ही कर्मोत्पत्ति में कारण बनेगा, कर्मनिरोध में नहीं। तथा, भिक्षुओ! जो कर्म द्वेषप्रकृतिक, द्वेषजन्य, द्वेषनिदान एवं द्वेषोत्पन्न है, वह कर्म भी अकुशल, सदोष तथा दुःखमय फल ही देनेवाला होता है। वह कर्म भी ऐसी ही उत्पत्ति में कारण बनेगा, कर्मनिरोध में नहीं। और, भिक्षुओ! जो कर्म मोहप्रकृतिक, मोहजन्य, मोहनिदान एवं मोहोत्पन्न है वह कर्म भी अकुशल, सदोष एवं दुःखमय फल देनेवाला होता है। वह

''तीणिमानि, भिक्खवे, निदानानि **कम्मानं** समुदयाय। कतमानि तीणि? अलोभो निदानं कम्मानं समुदयाय, अदोसो निदानं कम्मानं समुदयाय, अमोहो निदानं कम्मानं समुदयाय। यं, भिक्खवे, अलोभपकतं कम्मं अलोभजं अलोभनिदानं अलोभसमुदयं, तं कम्मं कुसलं तं कम्मं अनवज्जं तं कम्मं सुखविपाकं, तं कम्मं कम्मनिरोधाय [B.267] संवत्तति, न तं कम्मं कम्मसमुदयाय संवत्तति। यं, भिक्खवे, अदोसपकतं कम्मं अदोसजं अदोसनिदानं अदोससमुदयं, तं कम्मं कुसलं तं कम्मं अनवज्जं तं कम्मं सुखविपाकं, तं कम्मं कम्मनिरोधाय संवत्तति, न तं कम्मं कम्मसमुदयाय संवत्तति। यं, भिक्खवे, [N.245] अमोहपकतं कम्मं अमोहजं अमोहसमुदयं, तं कम्मं कुसलं तं कम्मं अनवज्जं तं कम्मं सुखविपाकं, तं कम्मं कम्मनिरोधाय संवत्तति, न तं कम्मं कम्मसमुदयाय संवत्तति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि निदानानि कम्मानं समुदयाया'' ति॥ ●

१०. दुतियनिदानसुत्तं : ''तीणिमानि, भिक्खवे, निदानानि कम्मानं समुदयाय। कतमानि तीणि? अतीते, भिक्खवे, छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो जायति; अनागते, भिक्खवे, छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो जायति; पच्चुप्पन्ने, भिक्खवे, छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो जायति। कथं च, भिक्खवे, अतीते छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो जायति? अतीते, भिक्खवे, छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति। तस्स अतीते छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ चेतसा अनुवितक्कयतो

कर्म भी ऐसी ही उत्पत्ति में कारण बनेगा, दुःखनिरोध में नहीं। इस प्रकार, भिक्षुओ! ये तीन कारण होते हैं कर्मों की उत्पत्ति में।

''भिक्षुओ! कर्मोत्पत्ति में ये तीन कारण भी होते हैं। कौन से तीन? (१) **अलोभ** कर्मोत्पत्ति में कारण होता है, (२) **अद्वेष** कर्मोत्पत्ति में कारण होता है, (३) एवं **अमोह** कर्मोत्पत्ति में कारण होता है।

''भिक्षुओ! जो कर्म अलोभप्रकृतिक, अलोभनिदान एवं अलौभोत्पन्न है वह कर्म कुशल, निर्दोष एवं सुखमय फल देनेवाला होता है। वह कर्म ऐसी ही कर्मनिरोधोत्पत्ति में कारण बनेगा, कर्मोत्पत्ति में नहीं। भिक्षुओ! जो कर्म अद्वेषप्रकृतिक, अद्वेषनिदान एवं अद्वेषोत्पन्न है, वह कर्म भी कुशल है, निर्दोष है एवं सुखमय फल देनेवाला है। वह कर्म भी ऐसी ही कर्मनिरोधोत्पत्ति में कारण बनेगा, न कि कर्मोत्पत्ति में। तथा, भिक्षुओ! जो कर्म अमोहप्रकृतिक, अमोहनिदान एवं अमोहोत्पन्न है, वह कर्म भी कुशल है, निर्दोष है एवं सुखमय फलदायी है। वह कर्म भी ऐसी ही कर्मनिरोधोत्पत्ति में कारण बनेगा, न कि कर्मोत्पत्ति में। इस प्रकार, भिक्षुओ! कर्मोत्पत्ति में ये तीन कारण होते हैं॥'' ●

१०. द्वितीय निदान सूत्र : : कर्मोत्पत्ति के तीन निदान

''भिक्षुओ! कर्मोत्पत्ति में ये तीन कारण होते हैं। कौन से तीन? (१) भिक्षुओ! किसी अतीत (विगत) छन्दरागस्थानीय धर्म के विषय में छन्द (प्राप्ति की इच्छा) उत्पन्न होता है; (२) अनागत (भविष्य)..., (३) प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द उत्पन्न होता है।

अनुविचारयतो छन्दो जायति। छन्दजातो तेहि धम्मेहि संयुत्तो होति। एतमहं, भिक्खवे, संयोजनं वदामि यो चेतसो सारागो। एवं खो, भिक्खवे, अतीते छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो जायति।

"कथं च, भिक्खवे, पच्चुप्पन्ने छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो जायति? पच्चुप्पन्ने, भिक्खवे, छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति। [B.268] तस्स पच्चुप्पन्ने छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ चेतसा अनुवितक्कयतो अनुविचारयतो छन्दो जायति। छन्दरागतो तेहि धम्मेहि संयुत्तो होति। एतमहं, भिक्खवे, संयोजनं वदामि यो चेतसो सारागो। एवं खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्ने छन्दरागट्ठानिये धम्मे [N.246] आरब्भ छन्दो जायति। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि निदानानि कम्मानं समुदायाय।

[R.265] "तीणिमानि, भिक्खवे, निदानानि कम्मानं समुदयाय। कतमानि तीणि? अतीते, भिक्खवे, छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो न जायति; अनागते भिक्खवे, छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो न जायति; पच्चुप्पन्ने, भिक्खवे, छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो न जायति। कथं च, भिक्खवे, अतीते छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो न जायति? अतीतानं, भिक्खवे, छन्दरागट्ठानियानं धम्मानं आयतिं विपाकं पजानाति। आयतिं विपाकं विदित्वा तदभिनिवत्तेति। तदभिनिवत्तेत्वा चेतसा अभिनिविज्झित्वा पञ्ञाय अतिविज्झ पस्सति। एवं खो, भिक्खवे, अतीते छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो न जायति।

"कथं च, भिक्खवे, अनागते छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो न जायति?

कैसे, भिक्षुओ! अतीत छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द उत्पन्न होता है? भिक्षुओ! भिक्षु अतीत छन्दरागस्थानीय धर्मों में चित्त से तर्क (मनन) करता है, विचार करता है। इस तरह तर्क एवं विचार करते हुए उसको उनमें छन्द उत्पन्न होता है। छन्द उत्पन्न होने पर वह उन धर्मों से सम्पृक्त (बद्ध) हो जाता है। भिक्षुओ! इस चित्त की आसक्ति को ही मैं 'संयोजन' (बन्धन) कहता हूँ। इस तरह, भिक्षुओ! अतीत के छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द उत्पन्न होता है।

"कैसे, भिक्षुओ! अनागत छन्दरागस्थानीय धर्मों में ...पूर्ववत्...। इस तरह, भिक्षुओ! अनागत छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द उत्पन्न होता है।

"कैसे, भिक्षुओ! प्रत्युत्पन्न छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द उत्पन्न होता है? भिक्षुओ! भिक्षु प्रत्युत्पन्न छन्दरागस्थानीय धर्मों में चित्त से तर्क... विचार करता है। इस तरह तर्क एवं विचार करते हुए उसको प्रत्युत्पन्न छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द उत्पन्न हो जाता है। छन्द उत्पन्न होने पर वह उन धर्मों से सम्बद्ध हो जाता है। चित्त की इस आसक्ति को ही मैं संयोजन (बन्धन) कहता हूँ। इस तरह, भिक्षुओ! प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) छन्दरागस्थानीय धर्मों में छन्द उत्पन्न होता है। (१)

"भिक्षुओ! कर्मोत्पत्ति के ये तीन कारण हैं। कौन से तीन? (१) भिक्षुओ! अतीत छन्दराग-स्थानीय धर्मों के कारण चित्त में छन्द उत्पन्न नहीं होता; (२) अनागत छन्दरागस्थानीय धर्मों के कारण...; (३) प्रत्युत्पन्न छन्दरागस्थानीय धर्मों के कारण चित्त में छन्द उत्पन्न नहीं होता।

"कैसे, भिक्षुओ! अतीत छन्दरागस्थानीय स्थानीय धर्मों के कारण चित्त में छन्द उत्पन्न नहीं

अनागतानं, भिक्खवे, छन्दरागट्ठानियानं धम्मानं आयतिं विपाकं पजानाति। आयतिं विपाकं विदित्वा तदभिनिवत्तेति। तदभिनित्तेत्वा चेतसा अभिनिविज्झित्वा पञ्ञाय अतिविज्झ पस्सति। एवं खो, भिक्खवे, अनागते छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो न जायति।

"कथं च, भिक्खवे, पच्चुप्पन्ने छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो न जायति? पच्चुप्पन्नानं, भिक्खवे, छन्दरागट्ठानियानं धम्मानं आयतिं विपाकं पजानाति, आयतिं विपाकं विदित्वा तदभिनिवत्तेति, तदभिनिवत्तेत्वा चेतसा अभिनिविज्झत्वा अञ्ञाय अतिविज्झ पस्सति। एवं खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्ने छन्दरागट्ठानिये धम्मे आरब्भ छन्दो न जायति। इमानि खो भिक्खवे, तीणि निदानानि कम्मानं समुदयाया" ति॥ ●

सम्बोधवग्गो एकादसमो॥

तत्सुद्दानं

पुब्बेव दुवे अस्सादा, समणो रुण्णपञ्चमं। [B.269]
अतित्ति द्वे च वुत्तानि, निदानानि अपरे दुवे ति॥ ●

१२. आपायिकवग्गो

[N.247] **१. आपायिकसुत्तं :** "तयोमे, भिक्खवे, आपायिका नेरयिका इदमप्पहाय। कतमे

होता? क्योंकि, भिक्षुओ! वह साधक अतीत छन्दरागस्थानीय धर्मों का भावी परिणाम जानता है, भावी परिणाम जानकर उनसे विरक्त होता है। विरक्त होकर चित्त से उनपर मनन करते हुए प्रज्ञा से सूक्ष्म विचार करता है। इस तरह, भिक्षुओ! अतीत छन्दरागस्थानीय धर्मों में उस साधक का छन्द उत्पन्न नहीं होता।

"कैसे, भिक्षुओ! अनागत छन्दरागस्थानीय धर्मों में उसका छन्द उत्पन्न नहीं होता? ...पूर्ववत्...।

"कैसे, भिक्षुओ! प्रत्युत्पन्न छन्दरागस्थानीय धर्मों में उसका छन्द उत्पन्न नहीं होता? ...पूर्ववत्...। इस तरह, भिक्षुओ! प्रत्युत्पन्न छन्दरागस्थानीय धर्मों को लेकर छन्द उत्पन्न नहीं होता।

भिक्षुओ! ये तीन कर्मों की उत्पत्ति में कारण हैं॥" **सम्बोधवर्ग एकादश सम्पन्न॥** ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. पूर्व एव सम्बोधसूत्र, २. प्रथम आस्वादसूत्र, ३. द्वितीय आस्वादसूत्र, ४. श्रमण-ब्राह्मणसूत्र, ५. रुण्णसूत्र, ६. अतृप्तिसूत्र, ७. अरक्षितसूत्र, ८. व्यापन्नसूत्र, ९. प्रथम निदानसूत्र, १०. द्वितीय निदानसूत्र॥ ●

१२. आपायिक वर्ग

१. आपायिकसूत्र : : **तीन आपायिक धर्म**

"भिक्षुओ! ये तीन बातें अपाय (नाश) एवं नरक की ओर ले जाने वाली हैं। कौन सी तीन?

तयो? यो च अब्रह्मचारी ब्रह्मचारिपटिञ्ञो, यो च सुद्धं ब्रह्मचरियं चरन्तं अमूलकेन अब्रह्म-[R.266] चरियेन अनुद्धंसेति, यो चायं एवंवादी एवंदिट्ठि—'नत्थि कामेसु दोसो' ति, सो ताय कामेसु पातब्यतं आपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, तयो आपायिका नेरयिका इदमप्पहाया'' ति॥ ●

२. दुल्लभसुत्तं : ''तिण्णं, भिक्खवे, पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं। कतमेसं तिण्णं? तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, तथागतप्पवेदितस्स धम्मविनयस्स देसेता पुग्गलो दुल्लभो लोकस्मिं, कतञ्ञू कतवेदी पुग्गलो दुल्लभो लोकस्मिं। इमेसं खो, भिक्खवे, तिण्णं पातुभावो दुल्लभो लोकस्मि'' ति॥

३. अप्पमेय्यसुत्तं : ''तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? सुप्पमेय्यो, दुप्पमेय्यो, अप्पमेय्यो। कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो सुप्पमेय्यो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो उद्धतो होति उन्नळो चपलो मुखरो विकिण्णवाचो मुट्ठस्सति असम्पजानो असमाहितो विब्भन्तचित्तो पाकतिन्द्रियो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो सुप्पमेय्यो।

''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो दुप्पमेय्यो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो [B.270] अनुद्धतो होति अनुन्नळो अचपलो अमुखरो अविकिण्णवाचो उपट्ठितस्सति सम्पजानो समाहितो एकग्गचित्तो संवुतिन्द्रियो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो दुप्पमेय्यो।

---

(१) जो धर्मसाधक न होता हुआ भी धर्मसाधना की डींग हाँकता है। (२) जो शुद्ध धर्मसाधना करते हुए को निर्मूल धर्मसाधना से ध्वस्त (नष्ट) करता है। (३) तथा जो अपना यह मत प्रदर्शित करता है—'कामभोगों में कोई दोष नहीं है' यह कहकर उनको उपभोग करने की प्रेरणा करता है। भिक्षुओ! ये तीन बातें अपाय (नाश) एवं नरक की ओर ले जानेवाली होती हैं॥'' ●

२. दुर्लभसूत्र : : तीन उत्पादों की दुर्लभता

''भिक्षुओ! लोक में ये तीन उत्पाद (प्रादुर्भाव) दुर्लभ माने जाते हैं। कौन से तीन? (१) भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथागत का उत्पाद लोक में दुर्लभ है। (२) तथागतोपदिष्ट धर्मविनय के उपदेशक का उत्पाद भी लोक में दुर्लभ है। (३) कृतज्ञ एवं अपने पर किये हुए किसी के उपकार को स्मरण रखनेवाला पुरुष दुर्लभ होता है। भिक्षुओ! ये तीन उत्पाद लोक में दुर्लभ होता है। ●

३. अप्रमेयसूत्र : : तीन का प्रमाण (तुलना) नहीं

''भिक्षुओ! लोक में ये तीन पुद्गल होते हैं। कौन तीन? (१) सुप्रमेय, (२) दुष्प्रमेय एवं (३) अप्रमेय। भिक्षुओ! इनमें **सुप्रमेय** (सरलता से पहचाना जा सकने योग्य) कौन होता है? यहाँ जो उद्दण्ड, अभिमानी, चपल, मुखर (बकवादी) बिखरी बिखरी बातें करनेवाला, स्मृतिभ्रष्ट, नासमझ (मूर्ख) असमाहितचित्त वाला, भ्रान्तचित्त एवं प्राकृतेन्द्रिय (मन्दगति) पुरुष सुप्रमेय होता है। (१)

''भिक्षुओ! **दुष्प्रमेय** पुरुष कौन होता है? जो उद्दण्ड, अभिमानी, चपल, मुखर, विकीर्ण

"कतमो च भिक्खवे, पुग्गलो अप्पमेय्यो? इध, भिक्खवे, भिक्खु अरहं होति खीणासवो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पमेय्यो। इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

४. आनेञ्जसुत्तं : "तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा [R.267] पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति [N.248] आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो तदस्सादेति तं निकामेति तेन च वित्तिं आपज्जति, तत्र ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहीनो कालं कुरुमानो आकासानञ्चायतनूपगानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। आकासानञ्चायतनूपगानं, भिक्खवे, देवानं वीसति कप्पसहस्सानि आयुप्पमाणं। तत्थ पुथुज्जनो यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा निरयं पि गच्छति तिरच्छानयोनिं पि गच्छति पेत्तिविसयं पि गच्छति। भगवतो पन सावको तत्थ यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा तस्मियेव भवे परिनिब्बायति। अयं खो, भिक्खवे, विसेसो अयं अधिप्पयासो इदं नानाकरणं सुतवतो अरियसावकस्स अस्सुतवता पुथुज्जनेन, यदिदं गतिया उपपत्तिया।

वाक्, स्मृतिभ्रष्ट, मूर्ख, असमाहितचित्त न हो अपितु एकाग्रचित्त एवं संयतेन्द्रिय हो। भिक्षुओ! ऐसा पुरुष दुष्प्रमेय (कठिनता से पहचाना जा सकनेवाला) होता है। (२)

"भिक्षुओ! यहाँ **अप्रमेय** कौन होता है? जो अर्हत् एवं क्षीणाश्रव हो चुका हो। यह अप्रमेय (अतुलनीय) पुरुष कहा जाता है। (३)

"भिक्षुओ! लोक में ये तीन पुद्गल होते हैं॥" (३) ●

४. आनेञ्ज्यसूत्र : : त्रिविध पुद्गल

"भिक्षुओ! लोक में ये त्रिविध पुद्गल होते हैं। कौन से तीन? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल सब ओर की रूप संज्ञाओं का अतिक्रमण कर, प्रतिघ संज्ञाओं के अस्त (नष्ट) हो जाने से, नानात्म संज्ञाओं को चित्त में न लाकर, 'यह आकाश अनन्त है'—इस प्रकार आकाशानन्त्यायतन की साधना करता है। वह उस में रस लेता है, उससे प्रीति (श्रद्धा) अनुभव करता है, वहाँ स्थित रहकर, उसके वश में होकर, अधिकता से उसकी ही साधना करता हुआ, साधना से च्युत न होता हुआ, यहाँ प्रारब्ध कर्मों का भोग कर देहपात के बाद मरणानन्तर आकाशानन्त्यायतन तक पहुँचे हुए देवताओं की सङ्गति में जा पहुँचता है। भिक्षुओ! इन आकाशानन्त्यायतन तक पहुँचे हुए देवताओं का आयु:प्रमाण बीस हजार कल्प होता है। वहाँ कोई पृथग्जन अपनी समस्त आयु बिताकर अर्थात् जितना उन आकाशानन्त्यायतनोपग देवताओं का आयु:प्रमाण है, वह सब वहाँ समाप्त कर, पुन: वहाँ से नरक में भी जा सकता है, पशु-पक्षियोनि में भी जा सकता है या प्रेतयोनि में भी जा सकता है; परन्तु भगवान् (बुद्ध) का शिष्य वहाँ आयु:पर्यन्त ठहर कर... वहीं परिनिर्वृत्त हो जाता है। भिक्षुओ! यह गति एवं उत्पत्ति का भेद ही पृथग्जन से विद्वान् बुद्धश्रावक की विशेषता एवं विविधता माना जाता है। (१)

"पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो तदस्सादेति तं निकामेति तेन च वित्तिं आपज्जति, तत्र ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहीनो कालं कुरुमानो विञ्ञाणञ्चायतनूपगानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। विञ्ञाणञ्चायतनूपगानं, [B.271] भिक्खवे, देवानं चत्तारीसं कप्पसहस्सानि आयुप्पमाणं। तत्थं पुथुज्जनो यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा निरयं पि गच्छति तिरच्छानयोनिं पि गच्छति पेत्तिविसयं पि गच्छति। भगवतो पन सावको तत्थ यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा तस्मिंयेव भवे परिनिब्बायति। अयं खो, भिक्खवे, [R.268] विसेसो अयं अधिप्पयासो इदं नानाकरणं सुतवतो अरियसावकस्स अस्सुतवता पुथुज्जनेन, यदिदं गतिया उपपत्तिया।

"पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो तदस्सादेति तं निकामेति [N.249] तेन च वित्तिं आपज्जति, तत्र ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहीनो कालं कुरुमानो आकिञ्चञ्ञायतनूपगानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। आकिञ्चञ्ञायतनूपगानं, भिक्खवे, देवानं सट्ठि कप्पसहस्सानि आयुप्पमाणं। तत्थ पुथुज्जनो यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा निरयं पि गच्छति तिरच्छानयोनिं पि गच्छति पेत्तिविसयं पि गच्छति। भगवतो पन सावको तत्थ यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा तस्मिंयेव भवे परिनिब्बायति। अयं खो, भिक्खवे, विसेसो, अयं अधिप्पयासो इदं नानाकरणं सुतवतो अरियसावकस्स अस्सुतवता पुथुज्जनेन, यदिदं गतिया उपपत्तिया।

"इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

"फिर, भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल उस आकाशानन्त्यायतन भूमि का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है'—इस प्रकार विज्ञानानन्त्यायन की साधना करता है। ...पूर्ववत्... विज्ञानाननत्यायतन तक पहुँचे हुए देवताओं की सङ्गति में जा पहुँचता है। इन देवताओं का आयुः प्रमाण चालीस हजार कल्प होता है ...पूर्ववत्... वहीं परिनिर्वृत्त हो जाता है। भिक्षुओ! यह गति एवं उत्पत्ति का भेद ही किसी पृथग्जन से विद्वान् बुद्धश्रावक की विशेषता एवं विविधता माना जाता है। (२)

"फिर, भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल उस विज्ञानानन्त्यायतन का भी अतिक्रमण कर 'कुछ भी नहीं है'—इस प्रकार आकिञ्चन्यायतन की साधना करता है। ...पूर्ववत्... आकिञ्चन्यायतन भूमि तक पहुँचे देवताओं की सङ्गति में जा पहुँचता है। ...पूर्ववत्...। इन आकिञ्चन्यायतन देवताओं का आयुःप्रमाण साठ हजार कल्प होता है। ...पूर्ववत्... विद्वान् बुद्धश्रावक की विशेषता एवं विविधता माना जाता है। (३)

५. विपत्ति-सम्पदासुत्तं : ''तिस्सो इमा, भिक्खवे, विपत्तियो। कतमा तिस्सो? सीलविपत्ति, चित्तविपत्ति, दिट्ठिविपत्ति। कतमा च, भिक्खवे, सीलविपत्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, पिसुणवाचो होति, फरुसवाचो होति, सम्फप्पलापी होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सीलविपत्ति।

''कतमा च, भिक्खवे, चित्तविपत्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो अभिज्झालु होति ब्यापन्नचित्तो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, चित्तविपत्ति।

''कतमा च, भिक्खवे, दिट्ठिविपत्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो मिच्छादिट्ठिको होति विपरीतदस्सनो—'नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकतदुक्कटानं [B.272] कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना [R.269] ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, दिट्ठिविपत्ति। सीलविपत्तिहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति; चित्तविपत्तिहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति; दिट्ठिविपत्तिहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति। इमा खो, [N.250] भिक्खवे, तिस्सो विपत्तियो ति। (क)

''भिक्षुओ! इस प्रकार लोक में ये त्रिविध पुद्गल होते हैं। ●

५. विपत्तिसम्पदासूत्र : : तीन विपत्तियाँ, तीन सम्पदाएँ

''भिक्षुओ! ये तीन विपत्तियाँ होती हैं। कौन तीन? (१) शीलविपत्ति, (२) चित्तविपत्ति, एवं (३) दृष्टिविपत्ति।

''इनमें, भिक्षुओ! **शीलविपत्ति** क्या होती है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पुरुष प्राणातिपाती हो, चौर हो, व्यभिचारी हो, असत्यवादी हो, चुगलखोर हो, कठोर वाणी बोलनेवाला हो, बकवादी हो। भिक्षुओ! यह शीलविपत्ति (आचरणविपत्ति) होती है। (१)

''इनमें, भिक्षुओ! **चित्तविपत्ति** क्या होती है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पुरुष अभिध्यालु (लोभी) हो, मन में द्वेष रखता हो, भिक्षुओ! यह चित्तविपत्ति होती है। (२)

''फिर, भिक्षुओ! **दृष्टिविपत्ति** क्या होती है? यहाँ कोई पुद्गल ऐसा मिथ्यादृष्टि हो, ऐसे विपरीत मत वाला हो—'न दान है, न यज्ञकर्म है, न हवन है न सुकृत या दुष्कृत कर्म तथा उन कर्मों का कोई फल नहीं होता, न यह लोक है न परलोक, न कोई माता है न कोई पिता, न कोई अयोनिज प्राणी (देवता) ही है, न लोक में कोई ऐसे सम्यगाचरण वाले या मार्गारूढ श्रमण ब्राह्मण हैं जो इस लोक या परलोक को स्वयं जानकर साक्षात् कर तत्त्व अधिगत कर चुके हों।' भिक्षुओ! यह कहलाती है—दृष्टिविपत्ति। (३)

"तिस्सो इमा, भिक्खवे, सम्पदा। कतमा तिस्सो? सीलसम्पदा, चित्तसम्पदा, दिट्ठिसम्पदा। कतमा च, भिक्खवे, सीलसम्पदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सीलसम्पदा।

"कतमा च, भिक्खवे, चित्तसम्पदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो अनभिज्झालु होति अब्यापन्नचित्तो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, चित्तसम्पदा।

"कतमा च, भिक्खवे, दिट्ठिसम्पदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो सम्मादिट्ठिको होति अविपरीतदस्सनो—'अत्थि दिन्नं, अत्थि यिट्ठं, अत्थि हुतं, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, अत्थि अयं लोको, अत्थि परो लोको, अत्थि माता, अत्थि पिता, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, दिट्ठिसम्पदा। [R.270] सीलसम्पदाहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं [B.273] उपपज्जन्ति; चित्तसम्पदाहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति; दिट्ठिसम्पदाहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो सम्पदा" ति॥ (ख) ●

"भिक्षुओ! इस शीलविपत्ति..., चित्तविपत्ति..., दृष्टिविपत्ति के कारण प्राणी देहपात के बाद, मरणानन्तर अपायभूत, नाशमय, पतन के अन्तिम स्थान नरक में जाकर गिरते हैं। भिक्षुओ! इस प्रकार ये तीन विपत्तियाँ होती हैं॥ (क)

"और, भिक्षुओ! ये तीन सम्पदा (सम्पत्ति) होती है। कौन सी तीन? (१) शीलसम्पदा, (२) चित्तसम्पदा, एवं (३) दृष्टिसम्पदा।

"भिक्षुओ! इनमें **शीलसम्पदा** क्या होती है? यहाँ कोई पुरुष प्राणातिपात से, चोरी से, व्यभिचार से, असत्य भाषण से, चुगलखोरी (पिशुनता) से, कठोर वाणी बोलने से, प्रलाप (बकवाद) से दूर रहता है। पुरुष का यह आचरण कहलाता है—शीलसम्पदा। (१)

"**चित्तसम्पदा**, भिक्षुओ! क्या होती है? पुरुष का चित्त लोभरहित एवं द्वेषरहित हो—यह कहलाती है—चित्तसम्पदा। (२)

"**दृष्टिसम्पदा** क्या कहलाती है? कोई पुरुष सम्यग्दृष्टि होता है, तथा उसका मत भी सम्यग्दृष्टियुक्त ही होता है; जैसे—'दान देना, यज्ञ एवं हवन करना, सुकृत एवं दुष्कृत कर्मों का फल या परिणाम का होना, लोक परलोक की सत्ता मानना, माता पिता में पूज्यभाव मानना, अयोनिज देवताओं की उत्पत्ति स्वीकार करना। तथा यह मानना कि इस लोक में ऐसे सम्यग्दृष्टिसम्पन्न एवं मार्गारूढ श्रमण ब्राह्मण भी होते हैं जो इस लोक परलोक को स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर तत्त्व अधिगत कर चुके हों।.(३)

"इस शीलसम्पदा, चित्तसम्पदा एवं दृष्टिसम्पदा के कारण, भिक्षुओ! प्राणी इस देह-

६. **अपण्णकसुत्तं** : "तिस्सो इमा, भिक्खवे, विपत्तियो। कतमा तिस्सो? सीलविपत्ति, चित्तविपत्ति, दिट्ठिविपत्ति। कतमा च, भिक्खवे, सीलविपत्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाती होति ...पे०... सम्फप्पलापी होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सीलविपत्ति।

"कतमा च, भिक्खवे, चित्तविपत्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो अभिज्झालु होति ब्यापन्नचित्तो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, चित्तविपत्ति।

"कतमा च, भिक्खवे, दिट्ठिविपत्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो मिच्छा- [N.251] दिट्ठिको होति विपरीतदस्सनो—'नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं ...पे०... ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, दिट्ठिविपत्ति। सीलविपत्तिहेतु वा, भिक्खवे, ...पे०... दिट्ठिविपत्तिहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति। सेय्यथापि, भिक्खवे, अपण्णको मणि उद्धं खित्तो येन येनेव पतिट्ठाति सुप्पतिट्ठितंयेव पतिट्ठाति; एवमेव खो, भिक्खवे, सीलविपत्तिहेतु वा सत्ता ...पे०... उपपज्जन्ति। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो विपत्तियो ति॥

"तिस्सो इमा, भिक्खवे, सम्पदा। कतमा तिस्सो? सीलसम्पदा, चित्तसम्पदा, दिट्ठिसम्पदा। कतमा च, भिक्खवे, सीलसम्पदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति ...पे०... अयं वुच्चति, भिक्खवे, सीलसम्पदा।

"कतमा च, भिक्खवे, चित्तसम्पदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो अनभिज्झालु होति अब्यापन्नचित्तो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, चित्तसम्पदा।

"कतमा च, भिक्खवे, दिट्ठिसम्पदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो सम्मादिट्ठिको होति अविपरीतदस्सनो—'अत्थि दिन्नं, अत्थि यिट्ठं, ...पे०... ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, दिट्ठिसम्पदा। सीलसम्पदाहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। चित्तसम्पदाहेतु वा ...पे०... दिट्ठिसम्पदाहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता कायस्स भेदापरं मरणा सुगतिं सग्गं [B.274]

च्युति के बाद, मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में ही पहुँचते हैं। भिक्षुओ! ये होती हैं तीन सम्पदा॥" (ख)

●

६. **अपर्णकसूत्र** : : **तीन विपत्ति एवं तीन सम्पत्ति**

"भिक्षुओ! ये तीन विपत्ति होती हैं...पूर्वसूत्रवत्...।

"भिक्षुओ! शीलविपत्ति के, चित्तविपत्ति के, दृष्टिविपत्ति के कारण ...पूर्ववत्... नरक में उत्पन्न होते हैं। जैसे, भिक्षुओ! अपर्णक (सच्चा, निर्दोष) मणिरत्न ऊपर फेंके जाने पर वह जहाँ भी गिरता है पूर्णत: एक स्थान पर ही गिरता है उसी तरह शीलविपत्ति के कारण प्राणी का पतन नरक में ही होता है। भिक्षुओ! ये तीन विपत्तियाँ होती हैं। (क)

"भिक्षुओ, ये तीन सम्पत्ति होती हैं...पूर्वसूत्रवत्... ये तीन सम्पत्ति होती हैं।" (ख)

लोकं उपपज्जन्ति। सेय्यथापि, भिक्खवे, अपण्णको मणि उद्धं खित्तो येन येनेव पतिट्ठाति सुप्पतिट्ठितंयेव पतिट्ठाति; एवमेव खो, भिक्खवे, सीलसम्पदाहेतु वा सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति, चित्तसम्पदाहेतु वा सत्ता ...पे०.. दिट्ठिसम्पदाहेतु वा सत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो सम्पदा'' ति॥

७. कम्मन्तसुत्तं : ''तिस्सो इमा, भिक्खवे, विपत्तियो। कतमा तिस्सो? कम्मन्त- [N.252] विपत्ति, आजीवविपत्ति, दिट्ठिविपत्ति। कतमा च, भिक्खवे, कम्मन्तविपत्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाती होति ...पे०... सम्फप्पलापी होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मन्तविपत्ति।

''कतमा च, भिक्खवे, आजीवविपत्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो मिच्छाआजीवो होति, मिच्छाआजीवेन जीविकं कप्पेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, आजीवविपत्ति।
[B.271]''कतमा च, भिक्खवे, दिट्ठिविपत्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो मिच्छादिट्ठिको होति विपरीतदस्सनो—'नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं ...पे०... ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, दिट्ठिविपत्ति। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो विपत्तियो ति। (क)

''तिस्सो इमा, भिक्खवे, सम्पदा। कतमा तिस्सो? कम्मन्तसम्पदा, आजीवसम्पदा, दिट्ठिसम्पदा। कतमा च, भिक्खवे, कम्मन्तसम्पदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति ...पे०... सम्फप्पलापा पटिविरतो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मन्तसम्पदा।

[इस सूत्र के पाठ का अनुवाद विगत दोनों सूत्रों में यथास्थान किया जा चुका है, इसे वहाँ देखें।]

७. कर्मान्तसूत्र : : विपत्तित्रय एवं सम्पत्तित्रय

''भिक्षुओ! ये तीन विपत्तियाँ है। कौन सी तीन? (१) कर्मान्तविपत्ति, (२) आजीवविपत्ति, एवं (३) दृष्टिविपत्ति। कौन सी **कर्मान्तविपत्ति** है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई प्राणातिपाती है... सम्प्रलापी (बकवादी) है। यह कर्मान्तविपत्ति है। (१)

''भिक्षुओ! **आजीवविपत्ति** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई मिथ्याआजीव होता है जो मिथ्याआजीव (जीविका के अनुचित साधनों) से अपना जीवनयापन करता है। यह मिथ्याआजीव कहलाता है। (२)

''भिक्षुओ! **दृष्टिविपत्ति** क्या है? भिक्षुओ! कोई मिथ्यादृष्टि एवं मिथ्यामतानुयायी होता है; जैसे—'कोई दान नहीं है, कोई यज्ञ नहीं है ...पूर्ववत्... इस लोक परलोक को स्वयं जानकर साक्षात्कार कर तत्त्व अधिगत कर लेते हैं।' भिक्षुओ! यह हुई दृष्टिविपत्ति। भिक्षुओ! ये तीन विपत्तियाँ होती हैं। (३)(क)

"कतमा च, भिक्खवे, आजीवसम्पदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो सम्माआजीवो होति, सम्माआजीवेन जीविकं कप्पेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, आजीवसम्पदा।

"कतमा च, भिक्खवे, दिट्ठिसम्पदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो सम्मादिट्ठिको होति अविपरीतदस्सनो—'अत्थि दिन्नं, अत्थि यिट्ठं ...पे०... ये इमं च लोकं परं च लोकं [B.275] सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, दिट्ठिसम्पदा। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो सम्पदा" ति॥ (ख) ●

८. पठमसोचेय्यसुत्तं : "तीणिमानि, भिक्खवे, सोचेय्यानि। कतमानि तीणि? कायसोचेय्यं, वचीसोचेय्यं, मनोसोचेय्यं। कतमं च, भिक्खवे, कायसोचेय्यं? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कायसोचेय्यं।

"कतमं च, भिक्खवे, वचीसोचेय्यं? इध, भिक्खवे, एकच्चो मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, [N.253] सम्फप्पलापा पटिविरतो होति। इदं वुच्चति भिक्खवे, वचीसोचेय्यं।

"कतमं च, भिक्खवे, मनोसोचेय्यं? इध, भिक्खवे, एकच्चो अनभिज्झालु होति अब्यापन्नचित्तो सम्मादिट्ठिको। इदं वुच्चति, भिक्खवे, मनोसोचेय्यं। इमानि खो, [R.272] भिक्खवे, तीणि सोचेय्यानी" ति॥ ●

"भिक्षुओ! ये तीन सम्पत्तियाँ होती हैं। कौन सी तीन? (१) कर्मान्तसम्पत्ति, (२) आजीवसम्पत्ति, (३) एवं दृष्टिसम्पत्ति।

"भिक्षुओ! **कर्मान्तसम्पत्ति** क्या है? प्राणातिपात आदि से विरत रहना कर्मान्तसम्पत्ति है।

"भिक्षुओ! **आजीवसम्पत्ति** क्या है? जो सम्यग् आजीविका से जीवन यापन करने वाला होता है।

"भिक्षुओ! **दृष्टिसम्पत्ति** क्या है? जो सम्यग्दृष्टि एवं सम्यङ्मतानुयायी (अविपरीतदर्शन) है; जैसे—'यह दान है, यह यज्ञ है ...पूर्ववत्... साक्षात्कार कर तत्त्व अधिगत कर लेते हैं।' भिक्षुओ! यह हुई सम्यग्दृष्टि। भिक्षुओ! ये तीन दृष्टिसम्पत्ति कहलाती हैं॥" (ख) ●

८. प्रथम शुचितासूत्र : : तीन शुद्धियाँ

"भिक्षुओ! ये तीन शुचिताएँ (शुद्धियाँ) होती हैं। कौन सी तीन? (१) कायशुचिता, (२) वाक्शुचिता, एवं (३) मनःशुचिता।

"भिक्षुओ! यहाँ कोई काया से शुद्ध (शुचि) होता है; जैसे—वह प्राणातिपाती नहीं होता, चौर नहीं होता, व्यभिचार से दूर रहता है। यह हुई उसकी **कायशुचिता**।

"भिक्षुओ! यहाँ कोई वाणी से शुद्ध रहता है; जैसे—वह असत्य नहीं बोलता, किसी को कठोर वचन नहीं बोलता, किसी की चुगली नहीं करता, बकवाद नहीं करता, यह **वाक्शुचिता** कहलाती है।

"भिक्षुओ! **मनःशुचिता** क्या होती है? यहाँ कोई अभिध्यालु (लोभी) नहीं होता, उसके

९. दुतियसोचेय्यसुत्तं : ''तीणिमानि, भिक्खवे, सोचेय्यानि। कतमानि तीणि? कायसोचेय्यं, वचीसोचेय्यं, मनोसोचेय्यं। कतमं च, भिक्खवे, कायसोचेय्यं? इध, भिक्खवे, भिक्खु पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, अब्रह्मचरिया पटिविरतो होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कायसोचेय्यं।

''कतमं च, भिक्खवे, वचीसोचेय्यं? इध, भिक्खवे, भिक्खु मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, वचीसोचेय्यं।

''कतमं च, भिक्खवे, मनोसोचेय्यं? इध, भिक्खवे, भिक्खु सन्तं वा अज्झत्तं कामच्छन्दं—'अत्थि मे अज्झत्तं कामच्छन्दो' ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं कामच्छन्दं—'नत्थि मे अज्झत्तं कामच्छन्दो' ति पजानाति; यथा च अनुप्पसन्नस्स [B.276] कामच्छन्दस्स उप्पादो होति, तं च पजानाति; यथा च उप्पन्नस्स कामच्छन्दस्स पहानं होति, तं च पजानाति; यथा च पहीनस्स कामच्छन्दस्स आयतिं अनुप्पादो होति, तं च पजानाति; सन्तं वा अज्झत्तं ब्यापादं—'अत्थि मे अज्झत्तं ब्यापादो' ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं ब्यापादं—'नत्थि मे अज्झत्तं ब्यापादो' ति पजानाति; यथा च अनुप्पन्नस्स ब्यापादस्स उप्पादो होति, तं च पजानाति; यथा च उप्पन्नस्स ब्यापादस्स पहानं होति, तं च पजानाति; यथा च पहीनस्स ब्यापादस्स आयतिं अनुप्पादो होति, तं च पजानाति; सन्तं वा अज्झत्तं थीनमिद्धं—'अत्थि मे अज्झत्तं थीनमिद्धं' ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं

चित्त में किसी के प्रति द्वेष नहीं होता—ऐसे कर्म मन की शुद्धि कहलाते हैं। भिक्षुओ! ये हुई त्रिविध शुद्धियाँ॥''

९. द्वितीय शुचितासूत्र : : तीन शुद्धियाँ

''भिक्षुओ! ये तीन शुचिताएँ हैं। कौन सी तीन? (१) कायशुचिता, (२) वाक्शुचिता, एवं (३) मनःशुचिता। इनमें, भिक्षुओ! कौन सी **कायशुचिता** होती है? जो प्राणातिपात, चौरी, व्यभिचार आदि से विरत रहता है—यह **कायशुचि** कहलाता है। (१)

''भिक्षुओ! वाक्शुचि कौन होता है? जो असत्यभाषण, परुष वाक् एवं पिशुन वाक् आदि नहीं बोलता वह **वाक्शुचि** कहलाता है। (२)

''भिक्षुओ! **मनःशुचिता** क्या होती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु विद्यमान आध्यात्मिक कामच्छन्द को 'मुझमें कामच्छन्द है'—ऐसा जानता है, अविद्यमान कामच्छन्द को 'मुझमें कामच्छन्द नहीं है'—ऐसा जानता है, अनुत्पन्न कामच्छन्द के उत्पाद को जानता है, उत्पन्न कामच्छन्द के नाश (प्रहाण) को जानता है; प्रहीण (विनष्ट) कामच्छन्द की भविष्य में अनुत्पत्ति को भी जानता है।

विद्यमान आध्यात्मिक द्वेष को 'मुझमें द्वेष है'—ऐसा जानता है, अविद्यमान आध्यात्मिक द्वेष को 'मुझमें आध्यात्मिक द्वेष नहीं है'—ऐसा जानता है, तथा अनुत्पन्न द्वेष का उत्पाद जानता है,

थीनमिद्धं—'नत्थि मे अज्झत्तं थीनमिद्धं' ति पजानाति; यथा च अनुप्पन्नस्स थीनमिद्धस्स उप्पादो होति, तं च पजानाति; यथा च उप्पन्नस्स थीनमिद्धस्स पहानं होति, तं च पजानाति; यथा च पहीनस्स थीनमिद्धस्स आयतिं अनुप्पादो होति, तं च पजानाति; सन्तं वा [N.254] अज्झत्तं उद्धच्चकुक्कुच्चं—'अत्थि मे अज्झत्तं उद्धच्चकुक्कुच्चं' ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं उद्धच्चकुक्कुच्चं—'नत्थि मे अज्झत्तं उद्धच्चकुक्कुच्चं' ति पजानाति; यथा [R.273] च अनुप्पन्नस्स उद्धच्चकुक्कुच्चस्स उप्पादो होति, तं च पजानाति; यथा च उप्पन्नस्स उद्धच्चकुक्कुच्चस्स पहानं होति, तं च पजानाति; यथा च पहीनस्स उद्धच्चकुक्कुच्चस्स आयतिं अनुप्पादो होति, तं च पजानाति; सन्तं वा अज्झत्तं विचिकिच्छं—'अत्थि मे अज्झत्तं विचिकिच्छा' ति पजानाति; असन्तं वा अज्झत्तं विचिकिच्छं—'नत्थि मे अज्झत्तं विचिकिच्छा' ति पजानाति; यथा च अनुप्पन्नाय विचिकिच्छाय उप्पादो होति, तं च पजानाति; यथा च उप्पन्नाय विचिकिच्छाय पहानं होति, तं च पजानाति; यथा च पहीनाय विचिकिच्छाय आयतिं अनुप्पादो होति, तं च पजानाति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, मनोसोचेय्यं। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि सोचेय्यानी ति।

''कायसुचिं वचीसुचिं, चेतोसुचिं अनासवं।
सुचिं सोचेय्यसम्पन्नं, आहु निन्हातपापकं'' ति॥ ●

उत्पन्न द्वेष के नाश (प्रहाण) को जानता है तथा जैसे विनष्ट द्वेष का भविष्य में उत्पाद नहीं होगा—यह भी जानता है।

''विद्यमान आध्यात्मिक आलस्य (स्त्यानमृद्ध) को 'मुझमें आध्यात्मिक आलस्य नहीं है'—ऐसा जानता है; अविद्यमान आलस्य को 'मुझमें आध्यात्मिक आलस्य नहीं है'—ऐसा जानता है; अनुत्पन्न आलस्य का उत्पाद जानता है, उत्पन्न आलस्य का नाश जानता है, विनष्ट आलस्य का भविष्य में अनुतपाद भी जानता है।

''विद्यमान आध्यात्मिक औद्धत्य कौकृत्य (उद्दण्डता) को 'मुझमें आध्यात्मिक औद्धत्य कौकृत्य है'—ऐसा जानता है; अविद्यमान आध्यात्मिक औद्धत्य कौकृत्य को 'मुझमें आध्यात्मिक औद्धत्य कौकृत्य नहीं है'—ऐसा जानता है, अनुतपन्न औद्धत्य कौकृत्य का उत्पाद जानता है; उत्पन्न औद्धत्य कौकृत्य का नाश जानता है, तथा जैसे प्रहीण औद्धत्य कौकृत्य का भविष्य में अनुतपाद भी जानता है।

''विद्यमान आध्यात्मिक विचिकत्सा (संशय) को 'मुझमें आध्यात्मिक विचिकित्सा है'—ऐसा जानता है; अविद्यमान आध्यात्मिक विचिकित्सा को भी 'मुझमें आध्यात्मिक विचिकित्सा नहीं है'—ऐसा जानता है; अनुत्पन्न विचिकित्सा का उत्पाद जानता है, उत्पन्न विचिकित्सा का नाश भी जानता है, जैसे प्रहीण विचिकित्सा का भविष्य में उत्पाद नहीं होगा—यह भी जानता है। भिक्षुओ! यह होती है मन:शुचिता। इस तरह भिक्षुओ! ये तीन शुचिताएँ होती हैं। (३)

''कायशुद्ध, वाक्शुद्ध एवं मन:शुद्ध—ऐसे निर्दोष शुचितात्रय-सम्पन्न साधक भिक्षु को विद्वज्जन 'पापमल से स्नात' (पाप पङ्क से रहित) कहते हैं॥'' ●

१०. मोनेय्यसुत्तं : "तीणिमानि, भिक्खवे, मोनेय्यानि। कतमानि तीणि? कायमोनेय्यं, वचीमोनेय्यं, मनोमोनेय्यं। कतमं च, भिक्खवे, कायमोनेय्यं? इध, भिक्खवे, [B.277] भिक्खु पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, अब्रह्मचरिया पटिविरतो होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कायमोनेय्यं।

"कतमं च, भिक्खवे, वचीमोनेय्यं? इध, भिक्खवे, भिक्खु मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, वचीमोनेय्यं।

"कतमं च, भिक्खवे, मनोमोनेय्यं? इध, भिक्खवे, भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, मनोमोनेय्यं। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि मोनेय्यानी ति।

[N.255] "कायमुनिं वचीमुनिं, चेतोमुनिं अनासवं।
मुनिं मोनेय्यसम्पन्नं, आहु सब्बप्पहायिनं" ति॥ ●

आपायिकवग्गो द्वादसमो॥

तस्सुद्दानं

आपायिको दुल्लभो अप्पमेय्यं, आनेञ्जविपत्तिसम्पदा।
अपण्णको च कम्मन्तो, द्वे सोचेय्यानि मोनेय्यं ति॥ ●

---

१०. मौनेयसूत्र : : तीन मौनेय

"भिक्षुओ! ये तीन **मौनेय** (मुनिकर्म) होते हैं। कौन से तीन? (१) कायमौनेय, (२) वाङ्मौनेय एवं (३) मनोमौनेय। इनमें **कायमौनेय** क्या होता है? भिक्षुओ! यहाँ जो भिक्षु प्राणातिपात, चौर्य एवं व्यभिचार से विरत रहता है, उसके ये कर्म ही 'कायमौनेय' कहलाते हैं। (१)

"फिर, भिक्षुओ! **वाङ्मौनेय** क्या होता है? जो भिक्षु असत्यभाषण, चुगलखोरी, कठोर वाणी एवं प्रलाप आदि कर्मों से विरत रहता है उसके ये कर्म ही 'वाङ्मौनेय' कहलाते हैं। (२)

"फिर, भिक्षुओ! **मनोमौनेय** क्या कहलाता है? भिक्षुओ! जो साधक आश्रवों के क्षय होने से अनाश्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात्कार, साधना करता है। भिक्षुओ! उस भिक्षु का यह कर्म 'मनोमौनेय' कहलाता है। (३)

"इस तरह, भिक्षुओ! ये तीन 'मौनेय' कहलाते हैं॥" ●

"कायमौन, वाङ्मौन एवं अनाश्रव चेतोविमुक्तियुक्त मनोमौन वाले एवं साधना द्वारा सर्वदोषनाश करने वाले साधक को ही मौनेययुक्त 'मुनि' कहते हैं॥"

आपायिकवर्ग द्वादश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. आपायिक सूत्र, २. दुर्लभसूत्र, ३. अप्रमेय सूत्र, ४. आनेञ्ज्य सूत्र, ५. विपत्तिसम्पदा सूत्र, ६. अपर्णक सूत्र, ७. कर्मान्त सूत्र, ८. प्रथम शुचिता सूत्र, ९. द्वितीय शुचिता सूत्र, १०. मौनेय सूत्र॥

१३. कुसिनारवग्गो

१. कुसिनारसुत्तं : एकं समयं भगवा कुसिनारायं विहरति बलिहरणे वन- [R.274] सण्डे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"इध, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरति। तमेनं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा उपसङ्कमित्वा स्वातनाय भत्तेन निमन्तेति। [B.278] आकङ्खमानो, भिक्खवे, भिक्खु अधिवासेति। सो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन तस्स गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा निवेसनं तेनुपसङ्कमति; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदति। तमेनं सो गहपति वा गहपतिपुत्तो वा पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेति सम्पवारेति। तस्स एवं होति—'साधु वत म्यायं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेति सम्पवारेती' ति। एवं पिस्स होति—'अहो वत म्यायं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा आयतिं पि एवरूपेन पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेय्य सम्पवारेय्या' ति! सो तं पिण्डपातं गथितो मुच्छितो अज्झोपन्नो अनादीनवदस्सावी अनिस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति। सो तत्थ कामवितक्कं पि वितक्केति, ब्यापदवितक्कं पि वितक्केति, विहिंसावितक्कं पि

---

१३. कुसिनारवर्ग

१. कुसिनारसूत्र : : भोजनदान का फल

एक समय भगवान् (बुद्ध) कुशीनगर (कुसिनारा) के वलिहरण नामक वनषण्ड में साधना हेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को 'भिक्षुओ' शब्द से सम्बोधित कर बुलाया। भिक्षुजन भी "भन्ते!" कहकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान् ने उनको यह देशना की—

"यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी ग्राम या निगम का सहारा लेकर साधना करता है। उसको वहाँ का कोई गृहपति या गृहपतिपुत्र दूसरे दिन भोजन के लिये निमन्त्रित करता है। भिक्षु यदि चाहता है तो वह निमन्त्रण स्वीकार कर लेता है। वह, उस रात्रि के बीतने पर प्रात:काल, वस्त्र व्यवस्थित कर, पात्र एवं चीवर लेकर उस गृहपति या गृहपतिपुत्र के घर जाता है। जाकर, वहाँ प्रज्ञप्त आसन पर बैठता है। तब उसको वह गृहपति या गृहपतिपुत्र उत्तम रुचिकर भोजन अपने हाथ से परोस कर तृप्त एवं सन्तुष्ट करता है। तब उस भिक्षु को यह विचार होता है—'यह गृहपति या गृहपतिपुत्र मुझको स्वयं अपने हाथ से उत्तम एवं रुचिकर भोजन, तृप्त करने के लिये परोसता रहे।' तदनन्तर उसको यह विचार भी होता है—'क्या ही अच्छा हो कि यह गृहपति या गृहपतिपुत्र भविष्य में भी इसी प्रकार उत्तम एवं रुचिकर भोजन अपने हाथ से परोसता हुआ मुझको तृप्त एवं सन्तुष्ट करता रहे।' इस तरह, वह भिक्षु उस भोजन के राग (आसक्ति) में बद्ध एवं मुध होकर, उसमें कोई दोष न देखता हुआ, उससे मुक्त होने की कोई इच्छा न रखता हुआ उसको ग्रहण करता है। वह वहाँ उत्पन्न हुए कामवितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिंसा (कष्ट) वितर्क में उलझ जाता है।

वितक्केति। एवरूपस्साहं, भिक्खवे, भिक्खुनो दिन्नं न महप्फलं ति वदामि। तं किस्स हेतु? पमत्तो हि, भिक्खवे, भिक्खु विहरति।

[N.256] "इध, पन भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरति। तमेनं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा उपसङ्कमित्वा स्वातनाय भत्तेन निमन्तेति। आकङ्खमानो, भिक्खवे, भिक्खु अधिवासेति। सो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन तस्स गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा निवेसनं तेनुपसङ्कमति; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदति। तमेनं सो गहपति वा गहपतिपुत्तो वा पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेति सम्पवारेति। तस्स न एवं होति—'साधु वत म्यायं [R.275] गहपति वा गहपतिपुत्तो वा पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेति सम्पवारेती' ति। एवं पिस्स न होति—'अहो वत म्यायं गहपति वा गहपतिपुत्तो वा आयतिं पि एवरूपेन पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेय्य सम्पवारेय्या' ति! सो तं पिण्डपातं अगथितो अमुच्छितो अनज्झोपन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति। [B.279] सो तत्थ नेक्खम्मवितक्कं पि वितक्केति, अब्यापादवितक्कं पि वितक्केति, अविहिंसावितक्कं पि वितक्केति। एवरूपस्साहं, भिक्खवे, भिक्खुनो दिन्नं महप्फलं ति वदामि। तं किस्स हेतु? अप्पमत्तो हि, भिक्खवे, भिक्खु विहरती" ति॥ ●

२. भण्डनसुत्तं : "यस्सं, भिक्खवे, दिसायं भिक्खू भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति, मनसि कातुं पि मे एसा, भिक्खवे, दिसा न फासु होति, पगेव गन्तुं! निट्ठमेत्थ गच्छामि—'अद्धा ते आयस्मन्तो तयो धम्मे

भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु को भोजनदान का फल बहुत अच्छा नहीं होता—ऐसी मेरी मान्यता है। वह किसलिये? इसलिये कि वह भिक्षु प्रमादपूर्वक साधना कर रहा है।

"परन्तु, भिक्षुओ! यहाँ कोई दूसरा भिक्षु किसी ग्राम या निगम में...पूर्ववत्... गृहपतिपुत्र उसको अपने हाथ से उत्तम एवं रुचिकर भोजन परोस कर तृप्त एवं सन्तुष्ट करता है। तब उसको यह विचार नहीं होता—'यह गृहपति या गृहपतिपुत्र मुझको अपने हाथ से ...पूर्ववत्... सन्तुष्ट करता रहे।' इस तरह वह (भिक्षु) उस भोजन के राग (आसक्ति) में बद्ध एवं मुग्ध न होकर, उसमें दोष देखता हुआ, उससे निकलने की इच्छा रखता हुआ ही इस भोजन को ग्रहण करता है। वह वहाँ उत्पन्न हुए नैष्काम्यवितर्क, अव्यापादवितर्क एवं अविहिंसावितर्क की ही तर्कणा (विचार) करता है। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु को दिया हुआ भोजनदान ही अतिशय फलदायक होता है—ऐसा मैं मानता हूँ। वह किसलिये? इसलिये कि वह भिक्षु अप्रमत्त (सावधान) होकर साधना कर रहा है॥" ●

२. भण्डनसूत्र : : तीन धर्म

"भिक्षुओ! जहाँ रहकर भिक्षु परस्पर झगड़ा (वाग्युद्ध), कलह एवं विवाद करते हों, एक दूसरे को अपशब्द एवं व्यङ्ग्य वचन कहते हों उस दिशा को मन में लाने की बात भी मैं नहीं सोचता, उधर जाना तो बहुत दूर की बात है! वहाँ मुझे यह निश्चय हो जाता है कि उन भिक्षुओं ने

पजहिंसु, तयो धम्मे बहुलमकंसु। कतमे तयो धम्मे पजहिंसु? नेक्खम्मवितक्कं, अब्यापादवितक्कं, अविहिंसावितक्कं—इमे तयो धम्मे पजहिंसु। कतमे तयो धम्मे बहुलमकंसु? कामवितक्कं, ब्यापादवितक्कं, विहिंसावितक्कं—इमे तयो धम्मे बहुलमकंसु'। यस्सं, भिक्खवे, दिसायं भिक्खू भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति, मनसि कातुं पि मे एसा, भिक्खवे, दिसा न फासु होति, पगेव गन्तु! निट्ठमेत्थ गच्छामि—'अद्धा ते आयस्मन्तो इमे तयो धम्मे पजहिंसु, इमे तयो धम्मे बहुलमकंसु'।

''यस्सं पन, भिक्खवे, दिसायं भिक्खू समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना [N.257] खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरन्ति, गन्तुं पि मे एसा, भिक्खवे, दिसा फासु होति, पगेव मनसि कातुं! निट्ठमेत्थ गच्छामि—'अद्धा ते आयस्मन्तो तयो धम्मे पजहिंसु, तयो धम्मे बहुलमकंसु। कतमे तयो धम्मे पजहिंसु? कामवितक्कं, [R.276] ब्यापादवितक्कं, विहिंसावितक्कं—इमे तयो धम्मे पजहिंसु। कतमे तयो धम्मे बहुलमकंसु? नेक्खम्मवितक्कं, अब्यापादवितक्कं, अविहिंसावितक्कं—इमे तयो धम्मे बहुलमकंसु'। यस्सं, भिक्खवे, दिसायं भिक्खू समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरन्ति, गन्तुं पि मे एसा, भिक्खवे, दिसा फासु होति, पगेव मनसि कातुं! निट्ठमेत्थ गच्छाति—'अद्धा ते आयस्मन्तो इमे तयो धम्मे पजहिंसु, इमे तयो धम्मे बहुलमकंसू''' ति॥

३. गोतमकचेतियसुत्तं : एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति गोतमके [B.280]

तीन (उचित) धर्मों का त्याग कर दिया और तीन (अनुचित) धर्मों का ग्रहण कर लिया। किन तीन धर्मों का त्याग कर दिया? नैष्काम्यवितर्क, अव्यापादवितर्क एवं अविहिंसावितर्क—इन तीन धर्मों का त्याग कर दिया। तथा किन तीन धर्मों को ग्रहण किया? कामवितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क—इन तीन धर्मों का ग्रहण किया। अतः मैं कहता हूँ—'जिस दिशा में रहकर भिक्षु परस्पर झगड़ा, कलह एवं विवाद करते हों ...पूर्ववत्... तीन धर्मों का ग्रहण कर लिया।'

''परन्तु, भिक्षुओ! जहाँ रहते हुए भिक्षु एकत्र होकर प्रसन्न रहते हुए, विवाद न करते हुए, दूध एवं जल की तरह मिले हुए, परस्पर एक दूसरे से स्नेहमयी दृष्टि से देखते हुए साधना करते हों वहाँ जाने के लिये मैं मन में सोच कर ही नहीं रह जाता; अपितु वहाँ मेरा जाना अत्यावश्यक हो जाता है। उनके विषय में मेरा दृढ़ निश्चय हो जाता है कि इन आयुष्मानों ने अवश्य ही तीन धर्मों का त्याग कर दिया है, तथा तीन धर्मों का ग्रहण कर लिया है। किन तीन धर्मों का त्याग कर दिया है? कामवितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क। और किन तीन धर्मों का अतिशय ग्रहण कर लिया है? नैष्काम्यवितर्क, अव्यापादवितर्क एवं अविहिंसावितर्क—इन तीन धर्मों का अतिशय ग्रहण किया। भिक्षुओ! जहाँ रहते हुए भिक्षुओं ने एकत्र होकर ...पूर्ववत्... इन तीन धर्मों का अत्यधिक ग्रहण किया॥''

[B.280] चेतिये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—"अभिञ्ञायाहं, भिक्खवे, धम्मं देसेमि, नो अनभिञ्ञाय। सनिदानाहं, भिक्खवे, धम्मं देसेमि, नो अनिदानं। सप्पाटिहारियाहं, भिक्खवे, धम्मं देसेमि, नो अप्पाटिहारियं। तस्स मय्हं, भिक्खवे, अभिञ्ञाय, सनिदानं धम्मं देसयतो नो अनिदानं, सप्पाटिहारियं धम्मं देसयतो नो अप्पाटिहारियं, करणीयो ओवादो, करणीया अनुसासनी। अलं च पन वो, भिक्खवे, तुट्ठिया, अलं अत्तमनताय, अलं सोमनस्साय—'सम्मासम्बुद्धो भगवा, स्वाक्खातो धम्मो, सुप्पटिपन्नो सङ्घो'" ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति। इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने सहस्सी लोकधातु अकम्पित्था ति॥ ●

४. भरण्डुकालामसुत्तं : एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरमानो येन कपिलवत्थु तदवसरि। अस्सोसि खो महानामो सक्को—"भगवा किर कपिलवत्थुं [N.258] अनुप्पत्तो" ति। अथ खो महानामो सक्को येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो महानामं सक्कं भगवा एतदवोच—

"गच्छ, महानाम, कपिलवत्थुस्मिं, तथारूपं आवसथं जान यत्थज्ज मयं एकरत्तिं

---

३. गौतमकचैत्यसूत्र : : धर्मदेशना के तीन प्रकार

एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के गौतमक चैत्य में साधनाहेतु विराजमान थे।... भगवान् बोले—"भिक्षुओ! मैं अपना सर्वविध धर्मोपदेश (१) पहले स्वयं भलीभाँति जानकर ही करता हूँ, न कि विना भलीभाँति जाने हुए; (२) कारण बताते हुए ही करता हूँ, न कि विना कारण बताये; (३) चमत्कारपूर्ण पद्धति से ही धर्मोपदेश करता हूँ, न कि विना चमत्कारपूर्ण पद्धति के। इस तरह, भिक्षुओ! इन तीनों पद्धतियों से युक्त होकर धर्मोपदेश करते हुए मेरा तुमको आज्ञापालन करना चाहिये, अनुशासन मानना चाहिये। तुम्हारे सन्तोष एवं सौमनस्य के लिये क्या यह पर्याप्त नहीं है कि मैं सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् तुम्हारा धर्मोपदेष्टा हूँ, मेरे द्वारा उपदिष्ट यह धर्म भी स्वाख्यात (स्पष्ट) है तथा इसका पालन करने वाला सङ्घ भी भलीभाँति मार्गारूढ है।"

भगवान् ने यह कहा। इससे सन्तुष्ट भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया। इस अवसर पर, जब भगवान् भिक्षुओं को यह आश्वासन दे रहे थे, यह भूलोक (पृथ्वी) भी, हर्षाधिक्य के कारण, काँप उठा॥ ●

४. भरण्डुकालाम सूत्र : :

एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशल जनपद में चारिका करते हुए कपिलवस्तु में साधना हेतु पहुँचे। उस अवसर पर महानाम शाक्य ने सुना—"भगवान् कपिलवस्तु में पधारे हैं। तब महानाम शाक्य भगवान् के पास आये। उनको प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खडे हुए महानाम शाक्य को भगवान् ने आदेश दिया—"महानाम! कपिलवस्तु में जाओ, और देखो कि वहाँ कोई ऐसा स्थान है जहाँ एक रात ठहर कर हम साधना कर सकें।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर महानाम

विहरेय्यामा'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो महानामो सक्को भगवतो पटिस्सुत्वा [R.277] कपिलवत्थुं पविसित्वा केवलकप्पं कपिलवत्थुं अन्वाहिण्डन्तो नाद्दस कपिलवत्थुस्मिं तथारूपं आवसथं यत्थज्ज भगवा एकरत्तिं विहरेय्य। अथ खो महानामो सक्को येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—''नत्थि, भन्ते, कपिलवत्थुस्मिं तथारूपो आवसथो यत्थज्ज भगवा एकरत्तिं विहरेय्य। अयं, भन्ते, भरण्डु कालामो भगवतो [B.281] पुराणसब्रह्मचारी। तस्सज्ज भगवा अस्समे एकरत्तिं विहरतू'' ति।

''गच्छ, महानाम, सन्थरं पञ्ञापेही'' ति।

''एवं, भन्ते,'' ति खो महानामो सक्को भगवतो पटिस्सुत्वा येन भरण्डुस्स कालामस्स अस्समो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सन्थरं पञ्ञापेत्वा उदकं ठपेत्वा पादानं धोवनाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—''सन्थतो, भन्ते, सन्थारो, उदकं ठपितं पादानं धोवनाय। यस्सदानि, भन्ते, भगवा कालं मञ्ञती'' ति।

अथ खो भगवा येन भरण्डुस्स कालामस्स अस्समो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा पादे पक्खालेसि। अथ खो महानामस्स सक्कस्स एतदहोसि—''अकालो खो अज्ज भगवन्तं पयिरुपासितुं। किलन्तो भगवा। स्वे दानाहं भगवन्तं पयिरुपासिस्सामी'' ति भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

अथ खो महानामो सक्को तस्सा रत्तिया अच्चयेन येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो महानामं सक्कं भगवा एतदवोच—

शाक्य कपिलवस्तु में जाकर ऐसा स्थान इधर उधर खोजने लगे। परन्तु उनको, सम्पूर्ण कपिलवस्तु में बहुत खोजने पर भी, ऐसा कोई स्थान नहीं मिला। अत: वे पुन: लौटकर भगवान् से यों निवेदन करने लगे—''भन्ते! कपिलवस्तु में तो ऐसा कोई स्थान नहीं मिला जहाँ एक रात्रि ठहर कर आप साधना कर सकें; परन्तु भन्ते! यहाँ आपका एक पुराना साथी भरण्डु कालाम है, उसके आश्रम में आप एक रात्रि ठहरकर साधना कर सकते हैं।''

''तो जाओ, वहीं हमारा आसन बिछाओ।''

''अच्छा, भन्ते!'' कहकर, महानाम शाक्य भरण्डुकालाम के आश्रम में गया, वहाँ आसन बिछाकर, पैर धोने के लिये जल का घड़ा रखकर, पुन: लौटकर उसने भगवान् से निवेदन किया—''भन्ते! आसन बिछा दिया है, पैर धोने के लिये जल भी रख दिया है। अब आप जैसा उचित समझें।''

तब भगवान् भरण्डु कालाम के आश्रम में गये तथा वहाँ प्रज्ञप्त आसन पर विराजे। विराजकर पैर धोये। उस समय महानाम शाक्य को यह विचार हुआ—''आज भगवान् से सत्सङ्ग करने का समय नहीं रह गया। कुसमय हो गया है, भगवान् भी थक गये हैं। अब कल ही सत्सङ्ग हो पायगा।'' यह सोचकर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर वह चला गया।

तदनन्तर, महानाम शाक्य, उस रात्रि के बीतने के बाद, भगवान् की सेवा में आया। वहाँ आये उसको भगवान् ने पूछा—''महानाम! इस लोक में तीन प्रकार के शास्ता (धर्माचार्य) हैं। कौन से

''तयो खोमे, महानाम, सत्थारो सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? इध, महानाम, एकच्चो सत्था कामानं परिञ्ञं पञ्ञापेति; न रूपानं परिञ्ञं पञ्ञापेति, न वेदनानं परिञ्ञं [R.278] पञ्ञापेति। इध पन, महानाम, एकच्चो सत्था कामानं परिञ्ञं पञ्ञापेति, रूपानं परिञ्ञं पञ्ञापेति; न वेदनानं परिञ्ञं पञ्ञापेति। इध पन, महानाम, एकच्चो सत्था कामानं [N.259] परिञ्ञं पञ्ञापेति, रूपानं परिञ्ञं पञ्ञापेति, वेदनानं परिञ्ञं पञ्ञापेति। इमे खो, महानाम, तयो सत्थारो सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

''इमेसं, महानाम, तिण्णं सत्थारानं एका निट्ठा उदाहु पुथु निट्ठा'' ति? एवं वुत्ते भरण्डु कालामो महानामं सक्कं एतदवोच—''एका ति, महानाम, वदेही'' ति। एवं वुत्ते भगवा महानामं सक्कं एतदवोच—''नाना ति, महानाम, वदेही'' ति। दुतियं पि खो भरण्डु कालामो महानामं सक्कं एतदवोच—''नाना ति, महानाम, वदेही'' ति। दुतियं पि खो भरण्डु कालामो महानामं सक्कं एतदवोच—''एका ति, महानाम, वदेही'' ति। दुतियं पि खो भगवा महानामं सक्कं एतदवोच—''नाना ति, महानाम, वदेही'' ति। ततियं पि खो भरण्डु कालामो महानामं सक्कं एतदवोच—''एका ति, महानाम, वदेही'' ति। ततियं [B.282] पि खो भगवा महानामं सक्कं एतदवोच—''नाना ति, महानाम, वदेही,'' ति।

अथ खो भरण्डुकालामस्स एतदहोसि—''महेसक्खस्स वतम्हि महानामस्स सक्कस्स सम्मुखा समणेन गोतमेन यावततियं अपसादितो। यन्नूनाहं कपिलवत्थुम्हा पक्कमेय्यं'' ति। अथ खो भरण्डु कालामो कपिलवत्थुम्हा पक्कामि। यं कपिलवत्थुम्हा पक्कामि तथा पक्कन्तो व अहोसि न पुन पच्चागच्छी ति॥ ●

तीन? (१) यहाँ, महानाम! कुछ शास्ता कामभोगों की परिज्ञा का ही उपदेश करते हैं, रूप एवं वेदनाओं की परिज्ञा का उपदेश नहीं करते। (२) कुछ शास्ता, महानाम कामभोग एवं रूपों की परिज्ञा का तो उपदेश करते हैं; परन्तु वेदनाओं की परिज्ञा का उपदेश नहीं करते। (३) और, महानाम! कुछ शास्ता काम, रूप एवं वेदना—तीनों की परिज्ञा बताते हैं। इस प्रकार, महानाम! लोक में ये तीन तरह के शास्ता हैं।

''तो क्या, महानाम! इन तीनों ही शास्ताओं की एक ही प्रकार की निष्ठा (सार) है या भिन्न भिन्न?'' ऐसा पूछे जाने पर भरण्डु कालाम ने महानाम शाक्य से कहा—''महानाम! एक ही निष्ठा बताओ''। ऐसा कहे जाने पर भगवान् ने कहा—''नहीं, महानाम! एक नहीं, विविध बताओ।'' दूसरी बार भी... तीसरी बार भी भरण्डु कालाम ने महानाम को एक निष्ठा की ओर सङ्केत किया तो भगवान् ने पुनः द्विविध निष्ठा पर ही बल दिया।

तब भरण्डु कालाम के मन में यह विचार आया—''इस अतिशय समर्थ महानाम शाक्य के सम्मुख भगवान् ने मुझको तीन बार निगृहीत कर दिया। मुझे अब यह कपिलवस्तु छोड़ देना चाहिये। मेरा अब यहाँ ससम्मान रहना सम्भव नहीं है।'' तब वह भरण्डु कालाम अपने आश्रम को ऐसा छोड़ गया कि फिर कभी उस आश्रम में लौटकर ही नहीं आया। ●

५. **हत्थकसुत्तं** : एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो हत्थको देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा—"भगवतो पुरतो ठस्सामी" ति ओसीदतिमेव संसीदतिमेव, न सक्कोति सण्ठातुं। सेय्यथापि नाम सप्पि वा तेलं वा वालुकाय आसित्तं ओसीदतिमेव संसीदतिमेव, न सण्ठाति; एवमेव हत्थको देवपुत्तो—"भगवतो पुरतो ठस्सामी" ति ओसीदतिमेव संसीदतिमेव, न सक्कोति सण्ठातुं।

अथ खो भगवा हत्थकं देवपुत्तं एतदवोच—"ओळारिकं, हत्थक, अत्तभावं अभिनिम्मिनाही" ति। "एवं, भन्ते" ति, खो हत्थको देवपुत्तो भगवतो पटिस्सुत्वा [R.279] ओळारिकं अत्तभावं अभिनिम्मिनित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। [N.260] एकमन्तं ठितं खो हत्थकं देवपुत्तं भगवा एतदवोच—

"ये ते, हत्थक, धम्मा पुब्बे मनुस्सभूतस्स पवत्तिनो अहेसुं, अपि नु ते ते धम्मा एतरहि पवत्तिनो" ति ?

"ये च मे, भन्ते, धम्मा पुब्बे मनुस्सभूतस्स पवत्तिनो अहेसुं, ते च मे धम्मा एतरहि पवत्तिनो; ये च मे, भन्ते, धम्मा पुब्बे मनुस्सभूतस्स नप्पवत्तिनो अहेसुं, ते च मे धम्मा एतरहि पवत्तिनो। सेय्यथापि, भन्ते, भगवा एतरहि आकिण्णो विहरति भिक्खूहि [B.283]

---

५. हस्तक सूत्र : : **तीन धर्मों में अतृप्ति**

एक समय भगवान् श्रावस्ती स्थित अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनविहार में साधना हेतु विराजमान थे। तब उत्तम रूप वाला हस्तक नामक देवपुत्र किसी चाँदनी रात्रि में समस्त जेतवन को आलोकित करता हुआ, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ, पहुँचा। पहुँचकर उसने विचारा—"मैं भगवान् के सम्मुख खड़ा होऊँगा।" परन्तु वह ऐसा नहीं कर पाया; अपितु वह कभी इधर लुढ़क जाता था या कभी उधर गिर पड़ता था और भगवान् के सम्मुख नहीं खड़ा हो पाता था। जैसे बालु (रेत) में डाला हुआ तैल या घृत बालु पर नहीं ठहर पाता है, नीचे बालु में ही समा जाता है; इसी प्रकार हस्तक देवपुत्र भगवान् के सम्मुख खड़े होने का सङ्कल्प करके भी खड़ा न हो पाता था अपितु कभी इधर लुढ़क जाता था, कभी उधर।

तब भगवान् ने हस्तक देवपुत्र को आदेश दिया—"हस्तक! अपने स्थूल (वास्तविक) व्यक्तित्व (आत्मभाव) में आओ।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर उस हस्तक देवपुत्र ने अपने वास्तविक व्यक्तित्व का निर्माण किया तथा भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए उस देवपुत्र से भगवान् यों बोले—

"हत्थक! तुम्हारे मनुष्यभाव के समय जो धर्म प्रवृत्त होते थे, क्या वे धर्म आज भी तुम्हारे सम्मुख आते हैं?"

"भन्ते! जो धर्म मेरे मनुष्यभाव के समय मेरे सम्मुख प्रकट होते थे वे ही आज भी प्रवृत्त हो रहे हैं। भन्ते! जैसे भगवान् (आप) इस समय भिक्षु-भिक्षुणियों, उपासक-उपासिकाओं, राजाओं, मन्त्रियों, अन्य सम्प्रदाय के साधुओं, उनके शिष्यों से घिरे रहते हैं; उसी तरह मैं भी, भन्ते! देवपुत्रों

भिक्खुनीहि उपासकेहि उपासिकाहि राजूहि राजमहामत्तेहि तित्थियेहि तित्थियसावकेहि; एवमेव खो अहं, भन्ते, आकिण्णो विहरामि देवपुत्तेहि। दूरतो पि, भन्ते, देवपुत्ता आगच्छन्ति हत्थकस्स देवपुत्तस्स सन्तिके 'धम्मं सोस्सामा' ति। तिण्णाहं, भन्ते, धम्मानं अतित्तो अप्पटिवानो कालङ्कतो। कतमेसं तिण्णं? भगवतो अहं, भन्ते, दस्सनस्स अतित्तो अप्पटिवानो कालङ्कतो; सद्धम्मसवनस्साहं, भन्ते, अतित्तो अप्पटिवानो कालङ्कतो; सङ्घस्साहं, भन्ते, उपट्ठानस्स अतित्तो अप्पटिवानो कालङ्कतो। इमेसं खो अहं, भन्ते, तिण्णं धम्मानं अतित्तो अप्पटिवानो कालङ्कतो ति।

''नाहं भगवतो दस्सनस्स, तित्तिमज्झगा कुदाचनं।
सङ्घस्स उपट्ठानस्स, सद्धम्मसवनस्स च॥
''अधिसीलं सिक्खमानो, सद्धम्मसवने रतो।
तिण्णं धम्मानं अतित्तो, हत्थको अविहं गतो'' ति॥

६. **कटुवियसुत्तं :** एकं समयं भगवा बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। अथ [R.280] खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय बाराणसिं पिण्डाय पाविसि। अद्दसा खो भगवा गोयोगपिलक्खस्मिं पिण्डाय चरमानो अञ्ञतरं भिक्खुं तित्तस्सादं बाहिरस्सादं मुट्ठस्सतिं असम्पजानं असमाहितं विब्भन्तचित्तं पाकतिन्द्रियं। दिस्वा तं भिक्खुं एतदवोच—

[N.261] ''मा खो त्वं, भिक्खु अत्तानं कटुवियमकासि। तं वत भिक्खु कटुवियकतं अत्तानं

से घिरा रहता हूँ। अनेक देवपुत्र मेरे पास दूर दूर से भी इसलिये आते हैं कि वे मुझसे धर्मोपदेश सुनें। परन्तु, भन्ते! आज मैं तीन बातें न होने से अतृप्त एवं न मिलने से असन्तुष्ट रहता हूँ। किन तीन बातों से? आज (१) भगवान् के दर्शन न होने से, (२) सद्धर्म का सतत श्रवण न होने से, तथा (३) सङ्घ की सेवा-परिचर्या से दूर रहने के कारण मैं अतृप्त एवं असन्तुष्ट रहता हूँ। इन्हीं तीन बातों से असन्तुष्ट एवं अतृप्त रहते हुए ही मेरी मृत्यु (यहाँ से देहच्युति) भी हो गयी।

(१) ''मैं उस समय भगवान् के दर्शन से कभी तृप्त नहीं हुआ।

(२) सद्धर्म के श्रवण एवं सङ्घ की सेवा करने से कभी तृप्त नहीं हुआ।

(३) सद्धर्म के श्रवण में लगा हुआ शीलविषयक शिक्षा ग्रहण करता हुआ भी मैं इन तीन धर्मों से अतृप्त एवं असन्तुष्ट रहता हुआ ही अविह देवलोक चला गया॥''

६. कटुइवसूत्र : : तीन धर्म : त्याग एवं योग

एक समय भगवान् (बुद्ध) वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में साधना हेतु विराजमान थे। तब भगवान् कभी प्रात:काल, वस्त्रों को व्यवस्थित कर, पात्र चीवर लेकर भिक्षाकर्म हेतु वाराणसी में प्रविष्ट हुए। उस समय भगवान् ने गोयोगप्लक्ष (जहाँ बैलहट्टे में एक पाकड़ का वृक्ष था) में भिक्षाकर्म करते हुए एक भिक्षु को देखा, उसकी चाल ढाल से ऐसा लग रहा था, जैसे वह अपनी उपासना से निराश हो, बाह्य सुख में ही तृप्त हो, स्मृतिभ्रष्ट हो, असमाहित एवं भ्रान्तचित्त हो! मानो जिसकी इन्द्रियाँ बाह्य जगत् में ही व्यापृत हों। उसे देखकर भगवान् यह बोले—

आमगन्धेन अवस्सुतं मक्खिका नानुपतिस्सन्ति नान्वास्सविस्सन्ती ति, नेतं ठानं विज्जती" ति। अथ खो सो भिक्खु भगवता इमिना ओवादेन ओवदितो संवेगमापादि। अथ खो भगवा बाराणसियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो भिक्खू आमन्तेसि—"इधाहं, भिक्खवे, पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय बाराणसियं पिण्डाय पाविसिं। अद्दसं खो अहं, भिक्खवे, गोयोगपिलक्खस्मिं पिण्डाय चरमानो अञ्ञतरं भिक्खुं [B.284] रित्तस्सादं बाहिरस्सादं मुट्ठस्सतिं असम्पजानं असमाहितं बिब्भन्तचित्तं पाकतिन्द्रियं। दिस्वा तं भिक्खुं एतदवोचं—'मा खो त्वं, भिक्खु, अत्तानं कटुवियमकासि। तं वत भिक्खु कटुवियकतं अत्तानं आमगन्धेन अवस्सुतं मक्खिका नानुपतिस्सन्ति नान्वास्सविस्सन्ती ति, नेतं ठानं विज्जती' ति। अथ खो, भिक्खवे, सो भिक्खु मया इमिना ओवादेन ओवदितो संवेगमापादी" ति। एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"किं नु खो, भन्ते, कटुवियं? को आमगन्धो? का मक्खिका" ति?

"अभिज्झा खो, भिक्खु, कटुवियं; ब्यापादो आमगन्धो; पापका अकुसला वितक्का मक्खिका। तं वतं, भिक्खु, कटुवियकतं अत्तानं आमगन्धेन अवस्सुतं मक्खिका नानुपतिस्सन्ति नान्वास्सविस्सन्ती ति, नेतं ठानं विज्जती ति।"

"अगुत्तं चक्खुसोतस्मिं, इन्द्रियेसु असंवुतं। [R.281]
मक्खिकानुपतिस्सन्ति, सङ्कप्पा रागनिस्सिता॥

"भिक्षु! तूँ अपना इतना अध:पतन न कर। यदि तूँ अपने आपको ऐसा न करेगा तो यह सम्भव नहीं है कि ये शवों पर भिनभिनाने वाली मक्खियाँ तुझ पर भिनभिनायें या तुझको काटें ही।" भगवान् का यह उपदेश सुनकर उस भिक्षु को बाह्य विषयों से वैराग्य हुआ।

तब भगवान् ने वाराणसी में भिक्षाचर्या कर भोजन से निवृत्त होकर भिक्षुओं को अपने सम्मुख बुलाया तथा बताया—"भिक्षुओ! आज मैं प्रात:काल ...पूर्ववत्... उस भिक्षु को बाह्य विषयों से वैराग्य हुआ।" भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वहाँ एक भिक्षु ने भगवान् से जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! इस प्रकरण में आप द्वारा बोले गये इन तीन शब्दों का क्या अर्थ है—(१) कटु इव, (२) आमगन्ध एवं (३) मक्षिका।"

"भिक्षु! अभिध्या (लोभ) ही यहाँ 'कटु इव' (जूठन या अध:पतन) कहा गया है। (१)

"व्यापाद (द्वेष) को 'श्मशान गन्ध' (आमगन्ध) कहा गया है। (२)

"पापमय अकुशल धर्मों को 'मक्षिका' कहा गया है। (३)

"पूर्ण वाक्य का अर्थ हुआ—'भिक्षु तूँ अपने जीवन को लोभाभिभूत होकर इतना कटु (अध:पतित) न बना कि तेरा यह समस्त जीवन द्वेषमय होकर श्मशान गन्ध के समान दुर्गन्ध देने लगे और तब पापमय अकुशल धर्मरूप मक्खियाँ तुझपर मँडराने लगें, भिनभिनाने लगें। यह तेरे लिये उचित नहीं है।'

"जिसका चक्षुर्द्वार साधना द्वारा रक्षित नहीं हैं, जिसकी अन्य इन्द्रियाँ भी असंयत हैं; ऐसे साधक पर रागनि:सृत सङ्कल्परूप मक्खियाँ भिनभिनायगीं ही॥

"कटुवियकतो भिक्खु, आमगन्धे अवस्सुतो।
आरका होति निब्बाना, विघातस्सेव भागवा॥
"गामे वा यदि वारञ्ञे, अलद्धासमथमत्तनो।
चरेति बालो दुम्मेधो, मक्खिकाहि पुरक्खतो॥
"ये च सीलेन सम्पन्ना, पञ्ञायुपसमे रता।
उपसन्ता सुखं सेन्ति, नासयित्वान मक्खिका" ति॥ ●

७. **पठमअनुरुद्धसुत्तं :** अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा [N.262] अनुरुद्धो भगवन्तं एतदवोच—"इधाहं, भन्ते, दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन [B.285] अतिक्कन्तमानुसकेन येभुय्येन पस्सामि मातुगामं कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपज्जमानं। कतीहि नु खो, भन्ते, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती" ति?

"तीहि खो, अनुरुद्ध, धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। कतमेहि तीहि? इध, अनुरुद्ध, मातुगामो पुब्बण्हसमयं मच्छेरमलपरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति, मज्झन्हिकसमयं इस्सापरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति, सायन्हसमयं कामरागपरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति। इमेहि खो, अनुरुद्ध, तीहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती" ति॥ ●

"जिस साधक भिक्षु ने अपना जीवन हीन बना लिया तो वह निर्वाण से दूर ही समझा जाता है तथा वह विनाश का भागी है॥

"जिसने आत्मशान्ति नहीं प्राप्त की है वह मूर्ख ग्राम में रहे या अरण्य में, रागनिःसृत सङ्कल्प रूप मक्षिकाएँ ही उसके आगे पीछे भिनभिनाती चलती हैं॥

"जो शीलसम्पन्न हैं, प्रज्ञा द्वारा साधनारत हैं, वे ही अपने सङ्कल्परूप मक्षिकाओं को नष्टकर सुखपूर्वक सोते हैं॥" ●

७. प्रथम अनुरुद्ध सूत्र : : **नारी की दुर्गति**

तब कभी आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर प्रणाम कर एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् अनुरुद्ध ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! मैं मानवदुर्लभ दिव्यचक्षु से परलोकगत स्त्रियों पर दृष्टिपात करता हूँ तो वे प्रायः मुझे अपायभूत नरक में ही गिरी हुई दिखायी देती हैं। भन्ते! कितने कारणों से ये स्त्रियाँ अपायभूत नरक में जा गिरती हैं?"

"अनुरुद्ध! तीन धर्मों से युक्त स्त्रियाँ अपायभूत नरक में जा गिरती हैं। किन तीन धर्मों से? (१) यहाँ कोई स्त्री प्रातः **मात्सर्य**-मलयुक्त चित्त से घर में प्रवेश करती है, मध्याह्न में **ईर्ष्या**-मलयुक्त चित्त से... तथा सायङ्काल **काम**रागयुक्त चित्त से घर में प्रवेश करती है। इन तीन धर्मों से युक्त कोई भी स्त्री, इस देहपात के बाद मरणानन्तर, अपायभूत नरक में ही जा गिरती है॥" ●

८. **दुतिअनुरुद्धसुत्तं** : अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं [R.282] सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा अनुरुद्धो आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"इधाहं, आवुसो सारिपुत्त, दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सहस्सं लोकं ओलोकेमि। आरद्धं खो पन मे विरियं असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, पस्सद्धो कायो असारद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं। अथ च पन मे नानुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चती" ति।

"यं खो ते, आवुसो अनुरुद्ध, एवं होति—'अहं दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सहस्सं लोकं वोलोकेमी' ति, इदं ते मानस्मिं। यं पि ते, आवुसो अनुरुद्ध, एवं होति—'आरद्धं खो पन मे विरियं असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, पस्सद्धो कायो असारद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं' ति, इदं ते उद्धच्चस्मिं। यं पि ते, आवुसो अनुरुद्ध, एवं होति—'अथ च पन मे नानुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चती' ति, इदं ते कुक्कुच्चस्मिं। साधु वतायस्मा अनुरुद्धो इमे तयो धम्मे पहाय, इमे तयो धम्मे अमनसिकरित्वा [N.263] अमताय धातुया चित्तं उपसंहरतू" ति। [B.286]

अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो अपरेन समयेन इमे तयो धम्मे पहाय, इमे तयो धम्मे अमनसिकरित्वा अमताय धातुया चित्तं उपसंहरि। अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव

---

८. द्वितीय अनुरुद्धसूत्र : : तीन धर्मों से रहित चित्त

...तब आयुष्मान् अनुरुद्ध आयुष्मान् सारिपुत्र के पास गये तथा उनसे कुशल मंगल प्रश्नानन्तर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन ने आयुष्मान् सारिपुत्र से यह पूछा—"यहाँ मैं, आयुष्मान् सारिपुत्र! मैं मनुष्यों से अतिक्रान्त दिव्यचक्षु से इस समस्त लोक को देखने का सामर्थ्य रखता हूँ। परन्तु मेरे द्वारा आरब्धवीर्य ऐकान्तिक नहीं होता, उपस्थित स्मृति भी न भूलने वाली होती है, मेरा प्रश्रब्ध काय भी अनुत्तेजित लगता है और समाहित चित्त एकाग्र रहता है। फिर भी मेरा चित्त विना विचार किये आश्रवों से विमुक्त नहीं रहता है?"

"आयुष्मन् अनुरुद्ध! तुम्हारा यह विचार—'मनुष्यों से अतिक्रान्त दिव्य चक्षु से मैं इस समस्त लोक को देखने में समर्थ हूँ'—तुम्हारा अभिमानमात्र है। और तुम्हें यह जो विचार होता है—'मेरे द्वारा आरब्ध वीर्य ऐकान्तिक नहीं होता...चित्त एकाग्र होता है'—यह तुम्हारा औद्धत्यमात्र है। और फिर, आयुष्मन् अनुरुद्ध! तुम्हारा विचार—'मेरा चित्त विना विचार किये ही आश्रवों से मुक्त हो जाता है' यह कौकृत्यमात्र है। अच्छा हो, आयुष्मन् अनुरुद्ध! कि तुम इन तीनों धर्मों को छोड़कर, इन तीनों धर्मों को मन में स्थान न देकर अमृत धातु में अपने चित्त का उपसंहार (एकाग्रता) करो।"

तदनन्तर, आयुष्मान् अनुरुद्ध ने कुछ समय तक इन (उपर्युक्त) तीनों धर्मों को छोड़कर, तीनों धर्मों को मन में न कर अमृत धातु के द्वारा चित्त का निग्रह किया। तब आयुष्मन् अनुरुद्ध एकाकी,

अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। "खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया" ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा अनुरुद्धो अरहतं अहोसी ति॥ ●

९. पटिच्छन्नसुत्तं : "तीणिमानि, भिक्खवे, पटिच्छन्नानि आवहन्ति, नो विवटानि। कतमानि तीणि? मातुगामो, भिक्खवे, पटिच्छन्नो आवहति, नो विवटो; ब्राह्मणानं, भिक्खवे, [R.283] मन्ता पटिच्छन्ना आवहन्ति, नो विवटा; मिच्छादिट्ठि, भिक्खवे, पटिच्छन्ना आवहति, नो विवटा। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि पटिच्छन्नानि आवहन्ति, नो विवटानि।

"तीणिमानि, भिक्खवे, विवटानि विरोचन्ति, नो पटिच्छन्नानि। कतमानि तीणि? चन्दमण्डलं, भिक्खवे, विवटं विरोचति, नो पटिच्छन्नं; सुरियमण्डलं, भिक्खवे, विवटं विरोचति, नो पटिच्छन्नं; तथागतप्पवेदितो धम्मविनयो, भिक्खवे, विवटो विरोचति, नो पटिच्छन्नो। इमानि खो, भिक्खवे, तीणि विवटानि विरोचन्ति, नो पटिच्छन्नानी" ति॥ ●

१०. लेखसुत्तं : "तयोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो? पासाणलेखूपमो पुग्गलो, पथविलेखूपमो पुग्गलो, उदकलेखूपमो पुग्गलो।

कतमो च, भिक्खवे, **पासाणलेखूपमो पुग्गलो**? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो

सबसे पृथक् रहते हुए, सावधान एवं प्रयत्न करते हुए शुद्ध चित्त से साधना करने लगे। और शीघ्र ही—जिसके लिये कुलपुत्र घर छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं, उस अद्वितीय धर्मसाधना को उसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात्कार कर साधना करते हैं। तब उनको यह ज्ञान हो गया कि मेरी भवपरम्परा क्षीण हो चुकी है, धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी है, मेरा कर्तव्य भी पूर्ण हो चुका है, तथा अब आगे कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है। कुछ ही काल बीतने के बाद, साधना करते हुए वे आयुष्मान् अनुरुद्ध वर्तमान अर्हतों में एक हो गये॥" ●

९. प्रतिच्छन्न सूत्र : : तीन धर्म प्रतिच्छन्न ही शुभ

"भिक्षुओ! ये तीनों धर्म गुप्त रखने पर ही शुभ फल देते हैं, स्वतन्त्र (खुला) रखने पर नहीं। कौन से तीन? (१) स्त्रियाँ गुप्त रखने पर शुभ फल देती हैं, उन्हें स्वतन्त्र रखने पर नहीं। (२) ब्राह्मणों के मन्त्र भी गुप्त रहने पर ही शुभ फल देते हैं, प्रकट करने पर फल नहीं देते। (३) मिथ्यादृष्टि (अशुभ विचार) भी गुप्त रहने पर ही यथेष्ट फल देती है, प्रकट करने पर नहीं। भिक्षुओ! ये तीन धर्म गुप्त रखने पर ही शुभ फल देते हैं।

"इसी प्रकार, भिक्षुओ! ये तीन धर्म प्रकट रखने पर ही अच्छा फल देते हैं, गुप्त (ढका हुआ) रखने पर नहीं। १. चन्द्रमा खुला रहने पर ही अच्छा फल देता है मेघ आदि से ढके रहने पर नहीं। २. सूर्य ...पूर्ववत्... ३. धर्मोपदेश खुला रहने पर ही अच्छा फल देता है, गुप्त रखने पर नहीं। भिक्षुओ! ये तीन धर्म, प्रकट रहने पर ही, शुभ फल देते हैं॥" ●

१०. लेख सूत्र : : तीन धर्म

"भिक्षुओ! लोक में तीन तरह के लोग हैं। कौन से तीन? (१) पत्थर पर रेखा के समान, (२) पृथ्वी पर रेखा के समान, एवं (३) जल पर रेखा के समान—ये तीन पुद्गल होते हैं।

अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो दीघरत्तं अनुसेति। सेय्यथापि, भिक्खवे, [B.287] पासाणे लेखा न खिप्पं लुज्जति वातेन वा उदकेन वा, चिरट्ठितिका होति; एवमेव खो, भिक्खवे, इदेकच्चो पुग्गलो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो दीघरत्तं अनुसेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पासाणलेखूपमो पुग्गलो। (१) [N.264]

"कतमो च, भिक्खवे, **पथविलेखूपमो पुग्गलो**? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो न दीघरत्तं अनुसेति। सेय्यथापि, भिक्खवे, पथविया लेखा खिप्पं लुज्जति वातेन वा उदकेन वा, न चिरट्ठितिका होति; एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो न दीघरत्तं अनुसेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पथविलेखूपमो पुग्गलो। (२)

"कतमो च, भिक्खवे, उदकलेखूपमो पुग्गलो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो आगाळ्हेन पि वुच्चमानो फरुसेन पि वुच्चमानो अमनापेन पि वुच्चमानो [R.284] सन्धियतिमेव संसन्दतिमेव सम्मोदतिमेव। सेय्यथापि, भिक्खवे, उदके लेखा खिप्पंयेव पटिविगच्छति, न चिरट्ठितिका होति; एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो आगाळ्हेन पि वुच्चमानो फरुसेन पि वुच्चमानो अमनापेन पि वुच्चमानो सन्धियतिमेव संसन्दतिमेव सम्मोदतिमेव। अयं वुच्चति, भिक्खवे, उदकलेखूपमो पुग्गलो। इमे खो, भिक्खवे, तयो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ (३) **कुसिनारवग्गो तेरसमो॥** ●

"पत्थर पर लेख (रेखा=या लिखे हुए) के समान पुद्गल कौन होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल निरन्तर क्रुद्ध होता रहता है, यह क्रोध दिन रात उसके साथ रहता है। जैसे, भिक्षुओ! पाषाण (पत्थर) पर खिंची हुई रेखा वायु या जल से नहीं मिटती, स्थायी रूप से बनी ही रहती है, वैसे ही जो पुद्गल निरन्तर क्रुद्ध रहता है, उसका यह क्रोध दिन रात उसके पीछे लगा रहता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल **पाषाणरेखोपम** कहलाता है। (१)

"पृथ्वी पर लेख के समान, भिक्षुओ! कौन पुद्गल होता है? जैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल बहुत अधिक क्रोध करता है, परन्तु उसका वह क्रोध बहुत काल तक नहीं रहता। जैसे, भिक्षुओ! पृथ्वी पर खिंची हुई रेखा बहुत काल तक नहीं ठहरती, वह (रेखा) जल या वायु से कुछ काल बाद मिट जाती है; वैसे ही कोई पुद्गल अधिक क्रुद्ध होता रहता हो, परन्तु उसका वह क्रोध बहुत काल तक नहीं ठहरता; ऐसा पुद्गल **पृथ्वीरेखोपम** कहलाता है। (२)

"जल पर रेखा के समान, भिक्षुओ! कौन पुद्गल होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल कठोरता तथा रूक्षता से या अप्रसन्नता से बोले जाने पर भी बोलने वाले से सन्धि ही रखना चाहता है, मेल ही रखना चाहता है, प्रेमभाव ही रखना चाहता है। जैसे, भिक्षुओ! जल में खिंची हुई रेखा तत्काल नष्ट हो जाती है, स्थिर नहीं रहती; वैसे ही भिक्षुओ! कोई पुद्गल कठोरता से ...पूर्ववत्... प्रेमभाव ही रखना चाहता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल **जलरेखोपम** कहलाता है। (३)

"भिक्षुओ! लोक में ये तीन प्रकार के पुद्गल मिलते हैं।" ●

कुसिनारवर्ग त्रयोदश सम्पन्न॥

तस्सुद्दानं

कुसिनारभण्डना चेव, गोतमभरण्डुहत्थको।
कटुवियं द्वे अनुरुद्धा, पटिच्छन्नं लेखेन ते दसा ति॥

१४. योधाजीववग्गो

१. योधाजीवसुत्तं : "तीहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो योधाजीवो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, [B.288] योधाजीवो दूरे पाती च होति अक्खणवेधी च महतो च कायस्स पदालेता। इमेहि, खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो योधाजीवो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति। एवमेव खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति [N.264] ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि तीहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु दूरे पाती च होति अक्खणवेधी च महतो च कायस्स पदालेता।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **दूरे पाती** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. कुशिनार सूत्र, २. भण्डन सूत्र, ३. गौतमक चैत्य सूत्र, ४. भरण्डुकालाम सूत्र, ५. हस्तक सूत्र, ६. कटुवत् सूत्र, ७. प्रथम अनुरुद्ध सूत्र, ८. द्वितीय अनुरुद्ध सूत्र, ९. प्रतिच्छन्न सूत्र एवं १०. लेख सूत्र॥

१४. योधाजीववर्ग

१. योधाजीव सूत्र : : तीन अङ्गों से युक्त योद्धा

"भिक्षुओ! तीन अङ्गों से युक्त कोई योद्धा ही राजाओं के योग्य तथा राजाओं के लिये उपयुक्त होता है; तथा वही राजा का अङ्ग (सैनिक) कहलाता है। किन तीन अङ्गों से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई योद्धा (सैनिक)—(१) दूर तक लक्ष्य भेद सकता है तथा (२) लक्ष्यभेद में विलम्ब नहीं लगाता, और (३) युद्ध में बहुसङ्ख्यक लोगों को मार सकता है। भिक्षुओ! इन तीन अङ्गों से युक्त कोई सैनिक ही ...पूर्ववत्... कहलाता है। इसी प्रकार, भिक्षुओ! तीन अङ्गों से युक्त साधक भिक्षु ही गृहस्थों द्वारा अपने घरों में बुलाने योग्य ...पूर्ववत्... लोक के लिये यह अद्वितीय पुण्यभूमि होता है। कौन से तीन? यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु साधना में दूर तक का लक्ष्यवेधी होता है, तत्काल लक्ष्यभेदी होता है तथा शारीरिक शिथिलता को पूर्णतः नष्ट कर देनेवाला होता है।

"कैसे, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु **दूर तक लक्ष्यभेदी** होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु अतीत अनागत एवं वर्तमान, आभ्यन्तर या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, छोटे या बड़े, दूरस्थ या

दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। या काचि वेदना अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्ता वा बहिद्धा वा ओळारिका वा सुखुमा वा हीना वा पणीता वा या दूरे सन्तिके वा, सब्बं वेदनं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। या काचि [R.285] सञ्ञा अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्ता वा बहिद्धा वा ओळारिका वा सुखुमा वा हीना वा पणीता वा या दूरे सन्तिके वा, सब्बं सञ्ञं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। ये केचि सङ्खारा अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्ता वा बहिद्धा वा ओळारिका वा सुखुमा वा हीना वा पणीता वा ये दूरे सन्तिके वा, सब्बे सङ्खारे—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु दूरे पाती होति। (१)

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **अक्खणवेधी** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु, 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति; 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति [B.289] यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु अक्खणवेधी होति। (२)

''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **महतो कायस्स पदालेता** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु महन्तं अविज्जाक्खन्धं पदालेति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु महतो कायस्स [N.266] पदालेता होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा'' ति॥ (३) ●

समीपस्थ—ऐसे सभी प्रकार के रूपों के विषय में—'यह मेरा नहीं है, न यह मैं हूँ, तथा न यह मेरी आत्मा है'—ऐसा यथार्थ सम्यक्प्रज्ञा से जानता है। जो भी वेदना ...पूर्ववत्... संज्ञा... संस्कार... विज्ञान के विषय में 'यह मेरा नहीं है, न यह मैं हूँ, तथा न यह मेरी आत्मा है'—ऐसा यथार्थ सम्यक् प्रज्ञा से जानता है। इस प्रकार का भिक्षु दूर तक लक्ष्यभेदी होता है। (१)

''कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **अक्षणवेधी** (तत्काल=बिजली की चमक के समान, लक्ष्यवेध करने वाला) होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'यह दुःख है'... 'यह दुःखसमुदय है'... 'यह दुःखनिरोध है'... 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—यह भलीभाँति जानता है। ऐसा भिक्षु 'अक्षणवेधी' कहलाता है। (२)

''कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **महान् कायसमूह का नाशक** (प्रदारयिता) होता है? जो इस महान् अविद्यास्कन्ध का साधना द्वारा नाशक होता है। ऐसा भिक्षु इस महान् कायसमूह का नाशक होता है। (३)

''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थों द्वारा अपने घर में बुलाने योग्य ...पूर्ववत्... अद्वितीय पुण्यक्षेत्र की भूमि है॥'' ●

२. परिसासुत्तं : "तिस्सो इमा, भिक्खवे, परिसा। कतमा तिस्सो ? उक्काचितविनीता परिसा, पटिपुच्छाविनीता परिसा, यावताविनीता परिसा—इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो परिसा" ति॥ ●

[R.286] **३. मित्तसुत्तं :** "तीहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो मित्तो सेवितब्बो। कतमेहि तीहि ? दुद्दं ददाति, दुक्करं करोति, दुक्खमं खमति—इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि अङ्गेहि समन्नागतो मित्तो सेवितब्बो" ति॥ ●

४. उप्पादासुत्तं : "उप्पादा वा, भिक्खवे, तथागतानं अनुप्पादा वा तथागतानं, ठिता व सा धातु धम्मट्ठितता धम्मनियामता। सब्बे सङ्खारा अनिच्चा। तं तथागतो अभिसम्बुज्झति अभिसमेति। अभिसम्बुज्झित्वा अभिसमेत्वा आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति—'सब्बे सङ्खारा अनिच्चा' ति। उप्पादा वा, भिक्खवे, तथागतानं [B.290] अनुप्पादा वा तथागतानं ठिता व सा धातु धम्मट्ठितता धम्मनियामता। सब्बे सङ्खारा दुक्खा। तं तथागतो अभिसम्बुज्झति अभिसमेति। अभिसम्बुज्झित्वा अभिसमेत्वा आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति—'सब्बे सङ्खारा

---

२. परिषत्सूत्र : : तीन परिषत्

"भिक्षुओ! ये तीन परिषत् हैं—१. **उक्काचितविनीत** (अकुशल धर्मों को अपने चित्त से उलीच उलीच कर नियमित भिक्षुजीवन यापन करनेवाली), २. **प्रतिपृच्छाविनीत** (स्थविर भिक्षुओं से पूछ पूछकर नियमित भिक्षुजीवन यापन करनेवाली) तथा ३. **यावद्विनीत** (सब तरह से नियमित भिक्षुजीवन यापन करनेवाली) परिषत्—भिक्षुओ! ये तीन परिषत् होती है॥" ●

३. मित्र सूत्र : : तीन मित्र

"भिक्षुओ! इन तीन अङ्गों से युक्त भिक्षु '**मित्र**' कहलाता है। कौन से तीन ? (१) जो कठिनता से उपलब्ध वस्तु को भी दे देता है, (२) जो दुष्कर कार्य भी मित्र के लिये कर देता है, (३) तथा जो कठिनता से सहने योग्य बात को भी सह लेता है—भिक्षुओ! इन तीन अङ्गों से युक्त मित्र की सेवा करनी चाहिये॥" ●

४. उत्पाद सूत्र : : तीन धर्मस्थितियाँ

"भिक्षुओ! तथागतों (बुद्धों) का उत्पाद हो या न हो, वह धातु (निश्चित तथ्य) स्थित ही रहती है; क्योंकि यही इसकी धर्मस्थिति एवं धर्मस्वभाव है।

'सभी संस्कार अनित्य होते हैं'—इस तथ्य को तथागत भली भाँति जानते हैं, समझते हैं। यों भली भाँति जानकर, समझकर ही वे दूसरों को कहते हैं, उपदेश करते हैं, बताते हैं, सिद्धान्त रूप से लोक में स्थापित करते हैं, विस्तार करते हैं, विभाजन करते हैं, स्पष्ट करते हैं कि सभी संस्कार अनित्य हैं। (१)

"भिक्षुओ! तथागतों का उत्पाद हो या न हो ...पूर्ववत्... एवं धर्मस्वभाव है।

'सभी संस्कार दुःखमय हैं'—इस तथ्य को तथागत भली भाँति जानते हैं, समझते हैं। यों भली भाँति ...पूर्ववत्... स्पष्ट करते हैं कि सभी संस्कार दुःखमय हैं। (२)

दुक्खा' ति। उप्पादा वा, भिक्खवे, तथागतानं अनुप्पादा वा तथागतानं ठिता व सा धातु धम्मट्ठितता धम्मनियामता। सब्बे धम्मा अनत्ता। तं तथागतो अभिसम्बुज्झति अभिसमेति। अभिसम्बुज्झित्वा अभिसमेत्वा आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति विभजति उत्तानीकरोति—'सब्बे धम्मा अनत्ता' '' ति॥ ●

५. केसकम्बलसुत्तं : ''सेय्यथापि, भिक्खवे, यानि कानिचि तन्तावुतानं वत्थानं, केसकम्बलो तेसं पटिकिट्ठो अक्खायति। केसकम्बलो, भिक्खवे, सीते सीतो, उण्हे उण्हो, दुब्बण्णो, दुग्गन्धो, दुक्खसम्फस्सो। एवमेव खो, भिक्खवे, यानि कानिचि पुथुसमण-ब्राह्मणवादानं मक्खलिवादो तेसं पटिकिट्ठो अक्खायति। मक्खलि, भिक्खवे, [N.267] मोघपुरिसो एवंवादी एवंदिट्ठि—'नत्थि कम्मं, नत्थि किरियं, नत्थि विरियं' ति। ये पि ते, भिक्खवे, अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, ते पि भगवन्तो कम्मवादा [R.287] चेव अहेसुं किरियवादा च विरियवादा च। ते पि, भिक्खवे, मक्खलि मोघपुरिसो पटिबाहति—'नत्थि कम्मं, नत्थि किरियं, नत्थि विरियं' ति। ये पि ते, भिक्खवे, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, ते पि भगवन्तो कम्मवादा चेव भविस्सन्ति किरियवादा च विरियवादा च। ते पि, भिक्खवे, मक्खलि मोघपुरिसो पटिबाहति—'नत्थि कम्मं, नत्थि किरियं, नत्थि विरियं' ति। अहं पि, भिक्खवे, एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो

''भिक्षुओ! तथागतों का उत्पाद हो या न हो ...पूर्ववत्... एवं धर्मस्वभाव है।

'सभी संस्कार (धर्म) अनात्म हैं'—इस तथ्य को तथागत भली भाँति जानते हैं, समझते हैं। यों भली भाँति ...पूर्ववत्... स्पष्ट करते हैं कि सभी संस्कार अनात्म हैं॥'' (३) ●

५. केशकम्बल सूत्र : : केशकम्बली के तीन दुर्गुण

''भिक्षुओ! करघे पर बुने हुए कपड़ों में जैसे केशनिर्मित कम्बल घृणित एवं सदोष माना जाता है; क्योंकि वह शीतऋतु में शीत रहता है, ग्रीष्मऋतु में उष्ण रहता है, देखने में कुरूप है, दुर्गन्ध वाला है, उसका स्पर्श भी दुःखप्रद होता है; इसी प्रकार, भिक्षुओ! जितने भी अन्य श्रमण ब्राह्मणों के मतवाद हैं उनमें इस **मक्खलि** का मत सब से निकृष्ट है। वह स्वयं भी ऐसा कहता है, ऐसा मानता है—'यहाँ न कोई कर्म है, न कोई क्रिया है, न कोई तदर्थ वीर्यारम्भ है।' भिक्षुओ! जो भी पहले भूतकाल में अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हुए हैं वे सभी भगवान् क्रियावादी एवं आरम्भवादी हुए हैं। उनके मत का भी खण्डन कर वह यही कहता है—'यहाँ न कोई कर्म है, न कोई क्रिया है, न तदर्थ किसी वीर्यारम्भ की आवश्यकता है।' (१)

''भिक्षुओ! अनागत भविष्य काल में जो अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् होंगे वे भी सब कर्मवादी एवं क्रियावादी होंगे, उनको भी यह मूर्ख मक्खलि ...पूर्ववत्... तदर्थ कोई वीर्यारम्भ आवश्यक नहीं है'—ऐसा कहेगा। (२)

''भिक्षुओ! वर्तमान काल में भी मैं अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हूँ। मैं भी कर्मवादी एवं क्रियावादी हूँ। मुझको भी अतिक्रान्त कर वह यही कहता है—'न कोई कर्म है, न कोई क्रिया, न उसके लिये किसी विशेष वीर्यारम्भ की ही आवश्यकता है।'

कम्मवादो चेव किरियवादो च विरियवादो च। मं पि, भिक्खवे, मक्खलि मोघपुरिसो पटिबाहति—'नत्थि कम्मं, नत्थि किरियं, नत्थि विरियं' ति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, नदीमुखे खिप्पं उड्डेय्य बहूनं मच्छानं अहिताय दुक्खाय अनयाय ब्यसनाय; एवमेव खो, भिक्खवे, मक्खलि मोघपुरिसो मनुस्सखिप्पं मञ्ञे लोके उप्पन्नो बहूनं सत्तानं अहिताय दुक्खाय अनयाय ब्यसनाया" ति॥ ●

[B.291] ६. **सम्पदासुत्तं** : "तिस्सो इमा, भिक्खवे, सम्पदा। कतमा तिस्सो? सद्धासम्पदा, सीलसम्पदा, पञ्ञासम्पदा—इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो सम्पदा" ति॥ ●

७. **वुड्ढिसुत्तं** : "तिस्सो इमा, भिक्खवे, वुड्ढियो। कतमा तिस्सो? सद्धावुड्ढि, सीलवुड्ढि, पञ्ञावुड्ढि—इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो वुड्ढियो" ति॥ ●

८. **अस्सखळुङ्कसुत्तं** । "तयो च, भिक्खवे, अस्सखळुङ्के देसेस्सामि तयो च पुरिसखळुङ्के। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

[R.288] "कतमे च, भिक्खवे, तयो अस्सखळुङ्का? इध, भिक्खवे, एकच्चो अस्सखळुङ्को जवसम्पन्नो होति; न वण्णसम्पन्नो, न आरोहपरिणाहसम्पन्नो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो [N.268] अस्सखळुङ्को जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च; न आरोहपरिणाहसम्पन्नो। इध

"जैसे, भिक्षुओ! किसी नदी के मुहाने पर आया हुआ तीव्र तूफान वहाँ रहने वाली मछलियों के लिये अहितकर, दुःखप्रद, अनीतिकर एवं विपत्तिप्रद होता है; वैसे ही, भिक्षुओ! इस **मक्खलि** का यह तीव्र मतवाद भी समस्त जनता के लिये अहितकर, दुःखमय, अनीतिकर, एवं विपत्तिप्रद ही है॥" ●

६. सम्पदा सूत्र : : त्रिविध सम्पदा

"भिक्षुओ! (भिक्षु की) ये तीन सम्पत्ति होती हैं। कौन सी तीन? (१) श्रद्धासम्पत्ति, (२) शीलसम्पत्ति, (३) प्रज्ञासम्पत्ति। भिक्षुओ! ये तीन सम्पत्ति होती हैं॥" ●

७. वृद्धि सूत्र : : त्रिविध वृद्धि

"भिक्षुओ! ये तीन वृद्धि होती हैं। कौन सी तीन? (१) श्रद्धावृद्धि, (२) शीलवृद्धि, एवं (३) प्रज्ञावृद्धि। भिक्षुओ! ये तीन वृद्धि होती हैं॥" ●

८. अश्वखळुङ्क सूत्र : : त्रिविध हीन जाति के अश्व

"भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें हीन जाति एवं उच्च जाति के त्रिविध अश्वों के विषय में तथा हीन जाति एवं उच्च जाति के मनुष्यों के विषय में बताऊँगा, उसे ध्यानपूर्वक सुनो तथा अपने मन में बैठा लो। बताता हूँ"—भगवान् ने यह कहा। "अच्छा, भन्ते" कहकर भिक्षु सावहितचित्त हुए। भगवान् ने कहा—

"भिक्षुओ! ये तीन प्रकार के अश्व कौन से होते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! उनमें कोई १. अश्व ऐसा होता है, जो केवल वेगवान् (तेज दौड़नेवाला) होता है, परन्तु वर्ण में कुरूप होता है, तथा सवारी (आरोह=परिणाह) के योग्य नहीं होता। २. कोई अश्व वेगवान् एवं वर्णवान् होता है, परन्तु

पन भिक्खवे, एकच्चो अस्सखळुङ्को जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोह-परिणाहसम्पन्नो च। इमे खो, भिक्खवे, तयो अस्सखळुङ्का।

"कतमे च, भिक्खवे, तयो पुरिसखळुङ्का? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुरिसखळुङ्को जवसम्पन्नो होति; न वण्णसम्पन्नो, न आरोहपरिणाहसम्पन्नो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुरिसखळुङ्को जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च; न आरोहपरिणाहसम्पन्नो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुरिसखळुङ्को जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च।

"कथं च, भिक्खवे, पुरिसखळुङ्को जवसम्पन्नो होति; न वण्णसम्पन्नो न आरोह-परिणाहसम्पन्नो? इध, भिक्खवे, भिक्खु 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। इदमस्स जवस्मिं वदामि। अभिधम्मे खो पन अभिविनये पञ्हं पुट्ठो संसादेति, नो विस्सज्जेति। इदमस्स न वण्णस्मिं [B.292] वदामि। न खो पन लाभी होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं। इदमस्स न आरोहपरिणाहस्मिं वदामि। एवं खो, भिक्खवे, पुरिसखळुङ्को जवसम्पन्नो होति; न वण्णसम्पन्नो, न आरोहपरिणाहसम्पन्नो।

"कथं च, भिक्खवे, पुरिसखळुङ्को जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च; न आरोहपरिणाहसम्पन्नो? इध, भिक्खवे, भिक्खु 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। इदमस्स जवस्मिं वदामि। अभिधम्मे खो पन अभिविनये पञ्हं पुट्ठो विस्सज्जेति, नो संसादेति। इदमस्स वण्णस्मिं वदामि। न पन लाभी होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं।

सवारी के योग्य नहीं होता। ३. कोई अश्व ऐसा होता है, जो वेगवान् एवं वर्णसम्पन्न (सुरूप) भी होता है, और सवारी के योग्य भी होता है।

"इसी प्रकार, ये त्रिविध पुरुष कौन होते हैं? इनमें (१) कोई पुरुष वेगवान् होता है, परन्तु वर्णवान् एवं आरोह-परिणाह के योग्य नहीं होता। (२) कोई वेगवान् एवं वर्णवान् भी होता है, परन्तु आरोहपरिणाह योग्य नहीं होता। और (३) कोई पुरुष वेगवान्, रूपवान् एवं आरोह परिणाह सम्पन्न—इन त्रिविध गुणों से युक्त होता है।

"कैसे, भिक्षुओ! इनमें प्रथम प्रकार का साधक पुरुष होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई 'यह दुःख है' ...पूर्ववत्... 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है' को यथार्थतः जानता है। यह उसका 'वेग' है। परन्तु (२) वह साधक अभिधर्म तथा विनय के विषय में पूछे गये प्रश्नों का कुछ भी उत्तर नहीं दे पाता—यह उसकी 'कुरूपता' है। तथा (३) उसे चीवर एवं पिण्डपात भी भली प्रकार से नहीं मिल पाते—यह उसकी 'आरोह-परिणाहहीनता' है—ऐसा मेरा मानना है। भिक्षुओ! ऐसा पुरुष जवसम्पन्न तो होता है, परन्तु वर्णसम्पन्न एवं आरोह-परिणाह सम्पन्न नहीं होता। (१)

"कैसे, भिक्षुओ! इनमें द्वितीय प्रकार का पुरुष (साधक) होता है? भिक्षुओ! जो भिक्षु 'यह

[R.289] इदमस्स न आरोहपरिणाहस्मिं वदामि। एवं खो, भिक्खवे, पुरिसखळुङ्को जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च; न आरोहपरिणाहसम्पन्नो।

"कथं च, भिक्खवे, पुरिसखळुङ्को जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोह-परिणाहसम्पन्नो च? इध, भिक्खवे, भिक्खु 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे○... 'अयं [N.269] दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। इदमस्स जवस्मिं वदामि। अभिधम्मे खो पन अभिविनये पञ्हं पुट्ठो विस्सज्जेति, नो संसादेति। इदमस्स वण्णस्मिं वदामि। लाभी खो पन होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्ज-परिक्खारानं। इदमस्स आरोहपरिणाहस्मिं वदामि। एवं खो, भिक्खवे, पुरिसखळुङ्को जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च। इमे खो, भिक्खवे, तयो पुरिसखळुङ्का" ति॥ ●

९. **अस्सपरस्ससुत्तं** : "तयो च, भिक्खवे, अस्सपरस्से देसेस्सामि तयो च पुरिसपरस्से। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

[B.293] "कतमे च, भिक्खवे, तयो अस्सपरस्सा? इध, भिक्खवे, एकच्चो अस्सपरस्सो जवसम्पन्नो होति; न वण्णसम्पन्नो न आरोहपरिणाहसम्पन्नो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो अस्सपरस्सो जवसम्पन्नो होति वण्णसम्पन्नो च; न आरोहपरिणाहसम्पन्नो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो अस्सपरस्सो जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च। इमे खो, भिक्खवे, तयो अस्सपरस्सा।

"कतमे च, भिक्खवे, तयो पुरिसपरस्सा? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुरिसपरस्सो

दु:ख है' ...पूर्ववत्... अभिधर्म एवं विनय विषयक प्रश्नोत्तर कर लेता है, परन्तु चीवर पिण्डपात आदि का लाभी नहीं होता। यह द्वितीय प्रकार का पुरुष होता है। (२)

"कैसे, भिक्षुओ! तीसरे प्रकार का साधक पुरुष होता है? भिक्षुओ! जो भिक्षु वेगवान्, वर्णवान् भी तथा आरोह-परिणाहवान् (चीवर पिण्डपात आदि का लाभी) भी होता है। (३)

भिक्षुओ! उन अश्वों के समान ये त्रिविधि साधक पुरुष भी होते हैं॥" ●

९. अश्वपुरुष सूत्र :: त्रिविध अश्व एवं पुरुष

"भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें तीन प्रकार के श्रेष्ठ अश्व तथा श्रेष्ठ पुरुष के विषय में बताऊँगा, उसे ध्यान से सुनो, मन में बैठा लो, मैं बताऊँगा। "अच्छा, भन्ते!" कहकर भिक्षुओं ने भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। भगवान् ने यह कहा—

"भिक्षुओ! ये तीन अश्व कौन होते हैं? (१) यहाँ भिक्षुओ! कोई अश्व ज़व (वेग=गति) सम्पन्न होता है, परन्तु वर्णसम्पन्न एवं आरोह-परिणाहसम्पन्न नहीं होता। (२) भिक्षुओ! कोई अश्व जवसम्पन्न एवं वर्णसम्पन्न भी होता है, परन्तु आरोह-परिणाहसम्पन्न नहीं होता। (३) और, भिक्षुओ! कोई अश्व जवसम्पन्न, वर्णसम्पन्न तथा आरोहपरिणाहसम्पन्न भी होता है। भिक्षुओ! ये तीन अश्व होते हैं।

जवसम्पन्नो होति; न वण्णसम्पन्नो न आरोहपरिणाहसम्पन्नो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुरिसपरस्सो जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च; न आरोहपरिणाहसम्पन्नो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुरिसपरस्सो जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च।

''कथं च, भिक्खवे, पुरिसपरस्सो जवसम्पन्नो होति; न वण्णसम्पन्नो न [R.290] आरोहपरिणाहसम्पन्नो। इध, भिक्खवे, भिक्खु पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। इदमस्स जवस्मिं वदामि। अभिधम्मे खो पन अभिविनये पञ्हं पुट्ठो संसादेति, नो विस्सज्जेति। इदमस्स न वण्णस्मिं वदामि। न खो पन लाभी होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पचय- [N.270] भेसज्जपरिक्खारानं। इदमस्स न आरोहपरिणाहस्मिं वदामि। एवं खो भिक्खवे, पुरिसपरस्सो जवसम्पन्नो होति; न वण्णसम्पन्नो, न आरोहपरिणाहसम्पन्नो।

''कथं च, भिक्खवे, पुरिसपरस्सो जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च, न आरोहपरिणाहसम्पन्नो। इध, भिक्खवे, भिक्खु पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। इदमस्स जवस्मिं वदामि। अभिधम्मे खो पन अभिविनये पञ्हं पुट्ठो विस्सज्जेति, नो संसादेति। इदमस्स वण्णस्मिं वदामि। न खो पन लाभी होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पचयभेसज्ज-परिक्खारानं। इदमस्स न आरोहपरिणाहस्मिं वदामि। एवं खो भिक्खवे, पुरिसपरस्सो जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च, न आरोहपरिणाहसम्पन्नो।

''कथं च, भिक्खवे, पुरिसपरस्सो जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च [B.294]

''और, भिक्षुओ! ये तीन पुरुष कौन होते हैं? (१) ...पूर्ववत्...। (२) ...पूर्ववत्...। (३) ...पूर्ववत्...।

''कौन, भिक्षुओ! पुरुष केवल जवसम्पन्न होता है, वर्णसम्पन्न एवं आरोह परिणाहसम्पन्न नहीं होता? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु पाँच अवरभागीय संयोजनों के परिक्षय से अयोनिज (औपपातिक) देवों में उत्पन्न होकर वहीं परिनिर्वृत हो जाता है, यहाँ लौटकर नहीं आता। भिक्षुओ! यह इसका 'जव' है। परन्तु यह साधक भिक्षु अभिधर्म एवं विनय के विषय में पूछे जाने पर चुप रह जाता है, उत्तर नहीं दे पाता। भिक्षुओ! यह इसका 'वर्ण' है—ऐसा मेरा मानना है। तथा यह ऐसा भिक्षु चीवर, पिण्डपात आदि भी प्राप्त नहीं कर पाता, अत: 'इसमें आरोह परिणाह नहीं हैं'—ऐसा मैं मानता हूँ। (१)

''और, भिक्षुओ! कौन पुरुष जवसम्पन्न एवं वर्णसम्पन्न होता है, परन्तु आरोह-परिणाहसम्पन्न नहीं होता? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु पाँच अवरभागीय संयोजनों के परिक्षय से अयोनिज ...पूर्ववत्... पूछे जाने पर उनका उत्तर देता है, चुप नहीं रहता... यह इसका 'वर्ण' है—ऐसा मेरा मन्तव्य है। वह चीवर-पिण्डपात भी नहीं प्राप्त कर पाता—यह उसका आरोह-परिणाह है—ऐसा मेरा मानना है। (२)

आरोहपरिणाहसम्पन्नो च? इध, भिक्खवे, भिक्खु पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। इदमस्स जवस्मिं वदामि। अभिधम्मे खो पन अभिविनये पञ्हं पुट्ठो विस्सज्जेति, नो संसादेति। इदमस्स वण्णस्मिं वदामि। लाभी खो पन होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पचय-भेसज्जपरिक्खारानं। इदमस्स आरोहपरिणाहस्मिं वदामि। एवं खो भिक्खवे, पुरिसपरस्सो जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च। इमे खो, भिक्खवे, तयो पुरिसपरस्सा'' ति॥ ●

१०. अस्साजानीयसुत्तं : ''तयो च, भिक्खवे, भद्रे अस्साजानीये देसेस्सामि तयो च भद्रे पुरिसाजानीये। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

[R.291] ''कतमे च, भिक्खवे, तयो भद्रा अस्साजानीया? इध, भिक्खवे, एकच्चो भद्रो [N.271] अस्साजानीयो ...पे०... जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोहपरिणाह-सम्पन्नो च। इमे खो, भिक्खवे, तयो भद्रा अस्साजानीया।

''कतमे च, भिक्खवे, तयो भद्रा पुरिसाजानीया? इध, भिक्खवे, एकच्चो भद्रो पुरिसाजानीयो ...पे०... जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च।

''कथं च, भिक्खवे, भद्रो पुरिसाजानीयो ...पे०... जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च? इध, भिक्खवे, भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इदमस्स जवस्मिं वदामि। अभिधम्मे खो पन अभिविनये पञ्हं पुट्ठो विस्सज्जेति, नो संसादेति। इदमस्स

''और कैसे, भिक्षुओ! पुरुष जवसम्पन्न, वर्णसम्पन्न एवं आरोहपरिणाहसम्पन्न भी होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु पाँचों अवरभागीय संयोजनों के ...पूर्ववत्... यह इसका आरोह-परिणाह है—ऐसा मेरा मानना है। यों, भिक्षुओ! यह भिक्षु जवसम्पन्न ...परिणाहसम्पन्न भी होता है। भिक्षुओ! ये तीन पुरुष होते हैं॥'' ●

१०. अश्वाजानेय सूत्र : : उच्च जाति के त्रिविध अश्व एवं पुरुष

''भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें उच्च जाति के त्रिविध अश्वों एवं पुरुषों के विषय में बताऊँगा।...। भगवान् यह बोले—

''भिक्षुओ! ये उच्च जाति के त्रिविध अश्व कौन होते हैं? भिक्षुओ! कोई उच्चजाति का अश्व ...पूर्ववत्... जवसम्पन्न भी एवं वर्णसम्पन्न भी एवं आरोह-परिणाहसम्पन्न भी होता है। भिक्षुओ! ये तीन उच्च जाति के अश्व होते हैं।

''और, भिक्षुओ! त्रिविध उच्च जाति के पुरुष कौन होते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई उच्च जाति का पुरुष ...पूर्ववत्... जवसम्पन्न भी, वर्णसम्पन्न भी एवं आरोह-परिणाहसम्पन्न भी होता है।

''और, भिक्षुओ! कौन उच्च जाति का पुरुष... जवसम्पन्न भी, वर्णसम्पन्न भी और आरोह-

वण्णस्मिं वदामि। लाभी खो पन होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्ज-परिक्खारानं। इदमस्स आरोहपरिणाहस्मिं वदामि। एवं खो, भिक्खवे, भद्रो पुरिसाजानीयो जवसम्पन्नो च होति वण्णसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च। इमे खो, भिक्खवे, [B.295] तयो भद्रा पुरिसाजानीया'' ति॥ ●

११. पठममोरनिवापसुत्तं : एकं समयं भगवा राजगहे विहरति मोरनिवापे परिब्बाजकारामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अच्चन्तनिट्ठो होति अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसानो सेट्ठो देवमनुस्सानं। कतमेहि तीहि? असेक्खेन सीलक्खन्धेन, असेक्खेन समाधिक्खन्धेन, असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अच्चन्तनिट्ठो होति अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसानो सेट्ठो देवमनुस्सानं'' ति॥ ●

१२. दुतियमोरनिवापसुत्तं : "तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अच्चन्तनिट्ठो होति अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसानो सेट्ठो देवमनुस्सानं। कतमेहि तीहि? इद्धिपाटिहारियेन, आदेसनापाटिहारियेन, [R.292]

परिणाहसम्पन्न भी होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को प्राप्त कर इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात् कर साधना करता है। यह इसका 'जव' (वेग) है।...अभिधर्म एवं विनय के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर करने में समर्थ होता है। यह इसका 'वर्ण' है। यह चीवर-पिण्डपात का भी लाभी होता है। यह इसका आरोह-परिणाह है। इस प्रकार, भिक्षुओ! ये त्रिविध उच्च जाति के पुरुष होते हैं॥" (१-३) ●

११. प्रथम मयूरनिवाप सूत्र : : त्रिविध धर्मयुक्त भिक्षु

एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के 'मयूरनिवाप' नामक परिव्राजकाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने (उपदेश हेतु) भिक्षुओं को "भिक्षुओ" इस सामूहिक सम्बोधन से अपने सम्मुख बुलाया। भिक्षुओं ने "हाँ, भन्ते!" कहकर भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। भगवान् ने यह उपदेश किया—

"भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अत्यधिक निष्ठा (श्रद्धा=भक्ति=विश्वास) वाला, अतिशय योगक्षेम का प्रापक एवं अत्यधिक धर्मसाधक, तथा साधना की सीमा (पर्यवसान) तक पहुँचा हुआ अतएव देव मनुष्यों में श्रेष्ठ कहलाता है। किन तीन धर्मों से? (१) अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से, (२) अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से, एवं (३) अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अत्यधिक निष्ठावाला अतिशय ...पूर्ववत्... देवमनुष्यों में श्रेष्ठ कहलाता है॥" ●

१२. द्वितीय मयूरनिवाप सूत्र : : त्रिविध धर्मयुक्त भिक्षु

"...भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त...पूर्वसूत्रवत्...। किन तीन धर्मों से? (१) ऋद्धिप्रातिहार्य से, (२) आदेशनाप्रातिहार्य से, एवं (३) अनुशासनीप्रातिहार्य से। इन तीन धर्मों से युक्त, भिक्षुओ!

अनुसासनीपाटिहारियेन—इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु [N.272] अच्चन्तनिट्ठो होति अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसानो सेट्ठो देवमनुस्सानं'' ति ॥ ●

१३. **ततियमोरनिवापसुत्तं** : ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अच्चन्तनिट्ठो होति अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसानो सेट्ठो देव-मनुस्सानं। कतमेहि तीहि? सम्मादिट्ठिया, सम्माञाणेन, सम्माविमुत्तिया—इमेहि खो, [B.296] भिक्खवे, तीहिं धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अच्चन्तनिट्ठो होति अच्चन्तयोगक्खेमी अच्चन्तब्रह्मचारी अच्चन्तपरियोसानो सेट्ठो देवमनुस्सानं'' ति ॥ **योधाजीववग्गो चुद्दसमो ॥**●

तस्सुद्दानं

योधो परिसमित्तं च, उप्पादा केसकम्बलो।
सम्पदा वुद्धि तयो अस्सा, तयो मोरनिवापिनो ति ॥ ●

१५. मङ्गलवग्गो

१. **अकुसलसुत्तं** : ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि तीहि? अकुसलेन कायकम्मेन, अकुसलेन वचीकम्मेन, अकुसलेन मनोकम्मेन—इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये ॥

भिक्षु अतिशय श्रद्धालु, अतिशय योगक्षेमवान्, अतिशय धर्मसाधक, साधना की पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ तथा देवों एवं मानवों में श्रेष्ठ कहलाता है ॥'' ●

१३. तृतीय मयूरनिवाप सूत्र : : अन्य त्रिविध धर्मयुक्त भिक्षु

...''तीन धर्मों से युक्त भिक्षु... पूर्वसूत्रवत्... देवों एवं मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है। किन तीन धर्मों से? (१) सम्यग्दृष्टि से, (२) सम्यग्ज्ञान से एवं (३) सम्यग्विमुक्ति से। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अतिशय श्रद्धालु, अतिशय योगक्षेमवान् (चीवर-पिण्डपातलाभी), अत्यन्त धर्मसाधक, साधना की पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ तथा देवमनुष्यों में श्रेष्ठ कहलाता है ॥'' ●

योधाजीववर्ग चतुर्दश सम्पन्न ॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. योधाजीव सूत्र, २. परिषत् सूत्र, ३. मित्रसूत्र, ४. उत्पादसूत्र, ५. केशकम्बल सूत्र, ६. सम्पदा सूत्र, ७. वृद्धि सूत्र, ८. अश्वखळुङ्क सूत्र, ९. अश्वपुरुष सूत्र, १०. अश्वाजानीय सूत्र, ११. प्रथम मयूरनिवाप सूत्र, १२. द्वितीय मयूरनिवाप सूत्र, एवं १३. तृतीय मयूरनिवाप सूत्र ॥ ●

१५. मङ्गलवर्ग

१. अकुशल सूत्र : : अकुशल कर्म नरक के हेतु

...''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष इनका परिणाम भोगने हेतु नरकगामी होता है।

''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि तीहि? कुसलेन कायकम्मेन, कुसलेन वचीकम्मेन, कुसलेन मनोकम्मेन—इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

२. सावज्जसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि तीहि? सावज्जेन कायकम्मेन, सावज्जेन वचीकम्मेन, सावज्जेन मनोकम्मेन—इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि तीहि? अनवज्जेन कायकम्मेन, अनवज्जेन वचीकम्मेन, अनवज्जेन मनोकम्मेन—[N.273] इमेहि खो, भिक्खवे, ...पे०... एवं सग्गे'' ति॥ ●

३. विसमसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे ...पे०... विसमेन कायकम्मेन, [B.297,R.293] विसमेन वचीकम्मेन, विसमेन मनोकम्मेन—इमेहि खो ...पे०... एवं निरये।

''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि ...पे०... समेन कायकम्मेन, समेन वचीकम्मेन, समेन मनोकम्मेन—इमेहि खो ...पे०... एवं सग्गे'' ति॥ ●

४. असुचिसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि ...पे०... असुचिना कायकम्मेन, असुचिना वचीकम्मेन, असुचिना मनोकम्मेन—इमेहि खो ...पे०... एवं निरये।

''तीहि, भिक्खवे, ...पे०... सुचिना कायकम्मेन, सुचिना वचीकम्मेन, सुचिना

किन तीन (धर्मों) से? (१) अकुशल कायकर्म, (२) अकुशल वाक्कर्म एवं (३) अकुशल मनःकर्म। भिक्षुओ! इन तीन कर्मों से युक्त पुरुष अवश्य ही नरकगामी होता है।

''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष इनके परिणाम स्वरूप स्वर्ग में जाता है। कौन से तीन? (१) कुशल कायकर्म, (२) कुशल वाक्कर्म एवं (३) कुशल मनःकर्म। इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष इनके परिणामस्वरूप स्वर्गगामी होता है॥'' ●

२. सावद्य सूत्र : : कर्मों से नरक

...''भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त पुरुष इनके फलस्वरूप नरकगामी होता है। कौन से तीन? (१) सावद्य (सदोष, निन्दित) कायकर्म, (२) सावद्य वाक्कर्म, (३) सावद्य मनःकर्म। भिक्षुओ! इन सदोष धर्मों से युक्त पुरुष नरकगामी ही होता है।

''तथा, भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष इनके परिणामस्वरूप स्वर्ग में पहुँचता है। कौन से तीन? अनवद्य (अनिन्दित, निर्दोष) कायकर्म, अनवद्य वाक्कर्म एवं अनवद्य मनःकर्म। भिक्षुओ! इन तीन कर्मों से युक्त पुरुष इनके परिणामस्वरूप स्वर्ग में जाता है॥'' ●

३. विषम सूत्र : : कर्मों से ही नरक-स्वर्गगामिता

...''भिक्षुओ! तीन धर्मों से ...पूर्वसूत्रवत्... (१) विषम (विपरीत=कष्टप्रद) कायकर्म, (२) विषम वाक्कर्म एवं (३) विषम मनःकर्म से...नरकगामी ही होता है।

''तीन धर्मों से युक्त ...पूर्वसूत्रवत्... (१) सम (उचित=सुखप्रद) कायकर्म, (२) सम वाक्कर्म एवं (३) सम मनःकर्म से युक्त... स्वर्ग में जाता है॥'' ●

मनोकम्मेन—इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

५. पठमखतसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेहि तीहि? अकुसलेन कायकम्मेन, अकुसलेन वचीकम्मेन, अकुसलेन मनोकम्मेन—इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति।

''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति। कतमेहि तीहि? कुसलेन कायकम्मेन, कुसलेन वचीकम्मेन, कुसलेन मनोकम्मेन ...पे०... बहुं च पुञ्ञं पसवती'' ति॥ ●

६. दुतियखतसुत्तं : तीहि, भिक्खवे ...पे०... सावज्जेन कायकम्मेन, सावज्जेन वचीकम्मेन, सावज्जेन मनोकम्मेन ...पे०...।

[B.298] तीहि, भिक्खवे ...पे०... अनवज्जेन कायकम्मेन, अनवज्जेन वचीकम्मेन, अनवज्जेन मनोकम्मेन ...पे०...॥ ●

---

४. अशुचि सूत्र : : कर्मों से ही नरक-स्वर्गगामिता

...''भिक्षुओ! तीन धर्मों से ...पूर्ववत्... (१) अशुचि (पापमय) कायकर्म, (२) अशुचि वाक्कर्म एवं (३) मन:कर्म से... नरकगामी ही होता है।

''तीन धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्... (१) शुचि (पुण्यमय=कुशल) कायकर्म, (२) शुचि वाक्कर्म एवं (३) शुचि मन:कर्म से... स्वर्ग में जाता है॥'' ●

५. प्रथम क्षत सूत्र : : कर्मों से सदोष-निर्दोष पुरुष

...''भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त मूर्ख, नासमझ असत् पुरुष स्वयं को नष्ट एवं व्रणित (घायल) हुआ मानने लगता है, वह दोषयुक्त हो जाता है, तथा विज्ञजन भी उसकी निन्दा ही करते हैं। इनके कारण वह अपने लिये पापराशि ही सञ्चित करता है। कौन से तीन? (१) अकुशल कायकर्म, (२) अकुशल वाक्कर्म एवं (३) अकुशल मन:कर्म। भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त मूर्ख, नासमझ असत् (पापी) पुरुष स्वयं को क्षत (नष्ट) एवं उपहत (व्रणित) ही स्वीकार करता है। विद्वान् भी इसकी निन्दा करते हैं, तथा वह अपने लिये भी पापराशि का ही सञ्चय करता है।

(इसके विपरीत) ''भिक्षुओ! तीन धर्मों से युक्त पण्डित, चतुर एवं सत् (पुण्यवान्) पुरुष स्वयं को अक्षत एवं अनुपहत मानता है, उसका आचरण निर्दोष होता है, तथा विद्वज्जन भी उसकी प्रशंसा ही करते हैं तथा वह इन कर्मों के सहारे से अपने लिये पुण्यराशि का ही सञ्चय करता है। किन तीन धर्मों से? (१) कुशल कायकर्म से, (२) कुशल वाक्कर्म से, एवं (३) कुशल मन:कर्म से ...पूर्ववत्... पुण्यराशि का ही सञ्चय करता है॥'' ●

७. ततियखतसुत्तं : तीहि, भिक्खवे ...पे०... विसमेन कायकम्मेन, [N.274] विसमेन वचीकम्मेन, विसमेन मनोकम्मेन ...पे०...।

तीहि, भिक्खवे ...पे०... समेन कायकम्मेन, समेन वचीकम्मेन, समेन [R.294] मनोकम्मेन ...पे०... ॥

८. चतुत्थखतसुत्तं : ''तीहि, भिक्खवे ...पे०... असुचिना कायकम्मेन, असुचिना वचीकम्मेन, असुचिना मनोकम्मेन ...पे०...।

''तीहि, भिक्खवे, ...पे०... सुचिना कायकम्मेन, सुचिना वचीकम्मेन, सुचिना मनोकम्मेन—इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवती'' ति॥

९. वन्दनासुत्तं : ''तिस्सो इमा, भिक्खवे, वन्दना। कतमा तिस्सो ? कायेन, वाचाय, मनसा—इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो वन्दना'' ति॥

१०. पुब्बण्हसुत्तं : ''ये, भिक्खवे, सत्ता पुब्बण्हसमयं कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति, सुपुब्बण्हो, भिक्खवे, तेसं सत्तानं।

---

६. द्वितीय क्षत सूत्र : : तीन धर्मों से सदोषता एवं निर्दोषता

''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से ...पूर्ववत्... (१) सावद्य कायकर्म से, (२) सावद्य वाक्कर्म से एवं (३) सावद्य मनःकर्म से... पापराशि का ही सञ्चय करता है।

(इसके विपरीत) ''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से ...पूर्ववत्... (१) निरवद्य (निर्दोष) कायकर्म से, (२) निरवद्य वाक्कर्म से एवं (३) निरवद्य मनःकर्म से... पुण्यराशि का सञ्चय करता है॥''

७. तृतीय क्षत सूत्र : : तीन धर्मों से विषमता एवं समता

...''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्... (१) विषम कायकर्म से, (२) विषम वाक्कर्म से, एवं (३) विषम मनःकर्म से... अत्यधिक पापराशि का सञ्चय करता है।

(इसके विपरीत) ''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से ...पूर्ववत्... (१) सम कायकर्म से, (२) सम वाक्कर्म से एवं (३) सम मनःकर्म से ...पूर्ववत्... अतिशय पुण्यराशि का सञ्चय करता है॥''

८. चतुर्थ क्षत सूत्र : : त्रिविध कर्मों से अशुचिता एवं शुचिता

...''भिक्षुओ! तीन धर्मों से ...पूर्ववत्... (१) अशुचि (पापमय) कायकर्म से, (२) अशुचि वाक्कर्म से, एवं (३) अशुचि मनःकर्म से ...पूर्ववत्...।

''भिक्षुओ! तीन धर्मों से ...पूर्ववत्... (१) शुचि (पुण्यमय) कायकर्म से, (२) शुचि वाक्कर्म से, एवं (३) शुचि मनःकर्म से ...पूर्ववत्...। इन तीन धर्मों से युक्त पण्डित, चतुर सज्जन स्वयं को अक्षत, अनुपहत स्वीकार करता है। वह अनवद्य होता है, तथा पण्डितजन भी उसकी प्रशंसा करते हैं। वह अपने लिये अतिशय पुण्यराशि एकत्र करता है॥''

"ये, भिक्खवे, सत्ता मज्झन्हिकसमयं कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति, सुमज्झन्हिको, भिक्खवे, तेसं सत्तानं।

[B.299] "ये, भिक्खवे, सत्ता सायन्हसमयं कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति, सुसायन्हो, भिक्खवे, तेसं सत्तानं ति।

"सुनक्खत्तं सुमङ्गलं, सुप्पभातं सुहुट्ठितं।
सुखणो सुमुहुत्तो च, सुयिट्ठं ब्रह्मचारिसु॥
"पदक्खिणं कायकम्मं, वाचाकम्मं पदक्खिणं।
पदक्खिणं मनोकम्मं, पणीधि ते पदक्खिणे।
पदक्खिणानि कत्वान, लभन्तत्थे पदक्खिणे॥
[N.275] "ते अत्थलद्धा सुखिता, विरूळ्हा बुद्धसासने।
अरोगा सुखिता होथ, सह सब्बेहि ञातिभी" ति॥ ●

मङ्गलवग्गो पन्नरसमो॥

तस्सुद्दानं

अकुसलं च सावज्जं, विसमासुचिना सह।
चतुरो खता वन्दना, पुब्बण्हेन च ते दसा ति॥ ●

ततियो पण्णासको समत्तो॥

---

९. वन्दना सूत्र : : त्रिविध वन्दना

..."भिक्षुओ! ये तीन प्रकार की वन्दना (स्तुति) होती हैं। कौन सी तीन? (१) काय से, (२) वचन से, एवं (३) मन से। भिक्षुओ! यह त्रिविध वन्दना होती है॥" ●

१०. पूर्वाह्न सूत्र : : त्रिसन्ध्य मङ्गल

..."भिक्षुओ! जो प्राणी प्रातःकाल अपने शरीर से सुचरित पूर्ण करते हैं, अपनी वाणी से... अपने मन से सुचरित पूर्ण करते हैं, उन प्राणियों का प्रातःकाल अतिशय मङ्गलमय होता है। (१)

"भिक्षुओ! जो प्राणी मध्याह्नकाल में शरीर, वाणी एवं मन से सुचरित पूर्ण करते हैं, उनका मध्याह्न मङ्गलमय व्यतीत होता है। (२)

"भिक्षुओ! जो प्राणी सायङ्काल से शरीर, वाणी एवं मन से सुचरित करते हैं, उन प्राणियों का सायङ्काल भी मङ्गलमय ही व्यतीत होता है॥ (३)

"शुभ नक्षत्रों से सम्पृक्त मङ्गलमय प्रातःकाल यदि सत्कर्मों से युक्त हो, वैसा क्षण वैसा मुहूर्त यदि ब्रह्मचारी साथियों के बीच स्वाध्याय में बिताया जाय॥

"यदि उसके कायकर्म, वाक्कर्म एवं मनःकर्म प्रदशिक्षणा (पूजा) के योग्य हों तो ऐसे सत्पुरुष की (सम्मान हेतु) प्रदक्षिणा की जानी चाहिये। उसको प्रणाम करना चाहिये। ऐसी प्रदक्षिणा करने वाला भी (इसके फलस्वरूप) जनता से प्रकृष्ट दान का भागी होगा॥

"ऐसे प्रदक्षिणा करने वालों का प्रयोजन स्वतः सिद्ध हो जाता है, वे सदा सुखी ही रहेंगे, तथा

१६. अचेलकवग्गो

१-७. ''तिस्सो इमा, भिक्खवे, पटिपदा। कतमा तिस्सो? आगाळ्हा पटिपदा, निज्झामा पटिपदा, मज्झिमा पटिपदा। कतमा च, भिक्खवे, आगाळ्हा [B.300,R.295] पटिपदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो एवंवादी होति एवंदिट्ठि—'नत्थि कामेसु दोसो' ति। सो कामेसु पातब्यतं आपज्जति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, आगाळ्हा पटिपदा।

''कतमा च, भिक्खवे, निज्झामा पटिपदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो अचेलको होति मुत्ताचारो, हत्थापलेखनो, न एहिभदन्तिको, न तिट्ठभदन्तिको, नाभिहटं न उद्दिस्सकतं न निमन्तनं सादियति। सो न कुम्भिमुखा पटिग्गण्हाति, न कळोपिमुखा पटिग्गण्हाति न एळकमन्तरं न दण्डमन्तरं न मुसलमन्तरं न द्विन्नं भुञ्जमानानं न गब्भिनिया न पायमानाय न पुरिसन्तरगताय न सङ्कित्तीसु न यत्थ सा उपट्ठितो होति न यत्थ मक्खिका सण्डसण्डचारिनी न मच्छं न मंसं न सुरं न मेरयं, न थुसोदकं पिवति। सो एकागारिको वा होति एकालोपिको, द्वागारिको वा दत्तिया यापेति, द्वीहि पि दत्तीहि यापेति...सत्तहि पि दत्तीहि यापेति; एकाहिकं पि आहारं आहारेति, द्वाहिकं पि आहारं आहारेति...सत्ताहिकं पि आहारं आहारेति—इति एवरूपं अद्धमासिकं पि परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरति सो साकभक्खो पि होति, सामाकभक्खो पि होति, नीवारभक्खो पि होति, दद्दुलभक्खो पि होति, हटभक्खो [N.276] पि होति, कण्हभक्खो पि होति, आचामभक्खो पि होति, पिञ्ञाकभक्खो पि होति, तिणभक्खो पि होति, गोमयभक्खो पि होति, वनमूलफलाहारो यापेति पवत्तफलभोजी।

बुद्धशासन में मार्गारूढ़ रहेंगे, नीरोग (स्वस्थ) रहते हुए, भरे पूरे परिवार के साथ सुखानुभव ही करेंगे॥''

मङ्गलवर्ग पञ्चदश सम्पन्न॥ ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१६. अचेलकवर्ग

१-७. ''भिक्षुओ! यहाँ तीन प्रतिपदाएँ (मार्ग या उपाय) हैं। कौन सी तीन? (१) आगाढ प्रतिपदा, (२) निर्ध्याम प्रतिपदा एवं (३) मध्यम प्रतिपदा।

''भिक्षुओ! यहाँ **आगाढ प्रतिपदा** किसे कहते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई इस मत का उपदेष्टा एवं माननेवाला है—'कामभोगों में कोई दोष नहीं है।' वह ऐसा मानता हुआ उन कामभोगों में आस्वाद (रस) लेता है। इसे कहते हैं, भिक्षुओ! आगाढ (कठोर) प्रतिपदा। (१)

''और, भिक्षुओ! **निर्ध्याम (कठोर या दग्ध)** प्रतिपदा क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई अचेलक (नग्न=निर्वस्त्र) सभी (साधुजनोचित) आचार-विचारों का त्याग कर, भोजन के बाद थाली एवं हाथ को चाटे, न आगत अतिथि को यह कहे—'जाओ, भन्ते!', न किसी जाते हुए को यह कहे—'आओ, भन्ते!', न बुलाकर दी गयी भिक्षा को ले, न 'ठहरिये' कहकर दी गयी भिक्षा

सो साणानि पि धारेति, मसाणानि पि धारेति, छवदुस्सानि पि धारेति, पंसुकूलानि पि धारेति, तिरीटानि पि धारेति, अजिनं पि धारेति, अजिनक्खिपं पि धारेति, कुसचीरं पि धारेति, [R.296] वाकचीरं पि धारेति, फलकचीरं पि धारेति, केसकम्बलं पि धारेति, वाळकम्बलं पि धारेति, उलूकपक्खिकं पि धारेति, केसमस्सुलोचको पि होति केसमस्सुलोचनानुयोग- [B.301] मनुयुत्तो, उब्भट्ठको पि होति आसनपटिक्खित्तो, उक्कुटिको पि होति उक्कुटि- कप्पधानमनुयुत्तो, कण्टकापस्सयिको पि होति कण्टकापस्सये सेय्यं कप्पेति, सायततियकं पि उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति—इति एवरूपं अनेकविहितं कायस्स आतापन- परितापनानुयोगनुयुत्तो विहरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, निज्झामा पटिपदा।

''कतमा च, भिक्खवे, मज्झिमा पटिपदा? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; वेदनासु ...पे०... चित्ते ...पे०... धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। अयं वुच्चति, भिक्खवे, मज्झिमा पटिपदा। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो पटिपदा ति।

''तिस्सो इमा, भिक्खवे, पटिपदा। कतमा तिस्सो? आगाळ्हा पटिपदा, निज्झामा पटिपदा, मज्झिमा पटिपदा। कतमा च, भिक्खवे, आगाळ्हा पटिपदा ...पे०... अयं वुच्चति, भिक्खवे, आगाळ्हा पटिपदा।

को ले, न उसके लिये लायी गयी भिक्षा को ले, न निमन्त्रित भिक्षा को ले, न उसी के लिये पकायी गयी भिक्षा (भोजन) को ले, न भोजनपात्र (हाँडी आदि) से सीधे निकाली गयी भिक्षा को ले, न ओंखल (उदूखल) मूसल या दण्ड के बीच से लायी गयी भिक्षा को ले, न गर्भिणी द्वारा दी गयी भिक्षा को ले, न शिशु को दूध पिलाती स्त्री से भिक्षा ले, न भिक्षा देते समय किसी पुरुष के बीच से निकल जाने पर भिक्षा ले, न अन्य पुरुष के पास गयी स्त्री (सङ्कित्ती) से भिक्षा ले, न चन्दा माँगकर बनाये गये भोजन की भिक्षा ले, न जहाँ कुत्ता खड़ा हो वहाँ भिक्षा ले, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही हों वहाँ भिक्षा ले, न पकायी मछली या पकाया मांस भिक्षा में ले, न मद्य, न मैरेय, न तुषोदक (चावल का सड़ा हुआ जल) भिक्षा में लेकर पीवे। वह (अचेलक) एक ही द्वार (घर) से भिक्षा लेता है, या एक ही ग्रास खाता है, दो द्वार (घरों) से भिक्षा लेता है या दो ग्रास ही खाता है... सात द्वार (घरों) से भिक्षा लेता है, या सात ग्रास हो जाता है। वह एक ही कड़छी (दर्वी) भिक्षा लेता है, दो कड़छी ही भिक्षा लेता है... सात कड़छी ही भिक्षा लेता है। वह दो दो दिन बीच में छोड़कर भिक्षा लेता है, सात सात दिन बीच में छोड़कर भिक्षा लेता है—इस तरह वह आधे आधे मास (पक्ष) का भी अन्तर देकर पर्याय भोजन की भिक्षा करता है।

''वह केवल शाक-सब्जी ही खाता है, केवल साँवा खाकर रहता है, या केवल नीवार (तिन्नी धान) खाकर ही रहता है, वह दद्दुल (एक प्रकार का हीन कोठि का चावल) खाकर ही रहता है, जल में उगी हुई सेवाल खाकर ही रहता है, कण खाकर भी रहता है, काँजी (आचाम)

"कतमा च, भिक्खवे, निज्झामा पटिपदा? ...पे०... अयं वुच्चति, भिक्खवे, निज्झामा पटिपदा।

"कतमा च, भिक्खवे, मज्झिमा पटिपदा? इध, भिक्खवे, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; उप्पन्नानं कुसलानं [N.277] धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति...। [R.297]

"छन्दसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति विरियसमाधि ...पे०... चित्तसमाधि ...पे०... वीमंसासमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति ...पे०...।

पीकर ही रह जाता है, खली (पिण्याक) खाकर ही रह जाता है, तृण खाकर ही रह जाता है, गोबर खाकर ही रह जाता है, वन के कन्द, मूल, फल, फूल, तोड़कर उनको खार ही रह जाता है।

वह सन से बना वस्त्र भी पहनता है, मसाण (मसृण=चिकने) वस्त्र ही पहनता है, श्मशान के शवों से उतरे वस्त्र ही पहनता है, गलियों में पड़े कपड़े (चिथड़े) ही पहनता है, वृक्षों से उतरे वल्कल (तिरीट) पहनता है, चर्म भी पहनता है, मृगचर्म में छेदकर (अजिनक्खिप) उसमें शरीर डालकर रहता है, कुश (दर्भ) से बनाये वस्त्र भी पहनता है, वृक्ष की छाल (वाक्चीर) से बनाये वस्त्र भी... काष्ठ से बनाये वस्त्र भी... केशों से बनाये कम्बलों के वस्त्र भी... उल्लू के पंखों से बने वस्त्र भी धारण करता है। वह अपने केश तथा दाढ़ी-मूछ के बाल नोंच-नोंच कर उखाड़ता रहता है या दूसरों से उखड़वाता रहता है। वह निरन्तर खड़ा रहता है, आसन पर कभी नहीं खड़ा रहता, वह उकड़ू ही बैठा रहता है। काँटों पर बैठता है, काँटों पर ही सोता है, काठ के तख्ते पर ही सोता है, भूमि पर ही सोता है। तीनों काल (प्रातः, सायं, मध्याह्न) स्नान करता है। इस तरह, अनेक प्रकार से शरीर को कष्ट देनेवाली क्रियाओं से साधना करता है। भिक्षुओ! यह कहलाती है साधना की निर्ध्याम (कठोर या दग्ध) प्रतिपदा (मार्ग)[१]। (२)

स्मृतिप्रस्थान : "फिर, भिक्षुओ! साधना की मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु (१) काया में कायानुदर्शन करता हुआ प्रयासपूर्वक स्मृतिमान् एवं सम्प्रजन्ययुक्त होकर लोक में अभिध्या (लोभ) एवं दौर्मनस्य (वैर=द्वेष) का त्याग कर साधना करता है, (२) वेदनाओं में वेदनानुदर्शन करता हुआ..., (३) चित्त में चित्तानुदर्शन करता हुआ..., तथा धर्मों में धर्मानुदर्शन करता हुआ प्रयासपूर्वक ...पूर्ववत्... साधना करता है। यह, भिक्षुओ! कहलाती है साधना की मध्यमा प्रतिपदा। (३)

भिक्षुओ ये कहलाती हैं साधना की तीन प्रतिपदाएँ॥ (१)

---

१. यह प्रसङ्ग **दीघनिकाय** के महासिंहनादसूत्र (८) (पृ० १७७-७८) में भी वर्णित है, जिज्ञासु वहाँ भी देख सकते हैं। —स०।

"सद्धिन्द्रियं भावेति... विरियिन्द्रियं भावेति... सतिन्द्रियं भावेति... समाधिन्द्रियं भावेति... पञ्ञिन्द्रियं भावेति ...।

"सद्धाबलं भावेति... विरियबलं भावेति... सतिबलं भावेति... समाधिबलं भावेति... पञ्ञाबलं भावेति ...।

"सतिसम्बोज्झङ्गं भावेति... धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेति... विरियसम्बोज्झङ्गं [B.302] भावेति... पीतिसम्बोज्झङ्गं भावेति... पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेति... समाधिसम्बोज्झङ्गं भावेति... उपेक्खासम्बोज्झङ्गं भावेति ...।

"सम्मादिट्ठिं भावेति... सम्मासङ्कप्पं भावति... सम्मावाचं भावेति... सम्माकम्मन्तं भावेति... सम्माआजीवं भावेति... सम्मावायामं भावेति... सम्मासतिं भावेति...

"फिर, भिक्षुओ! ये तीन प्रतिपदाएँ भी हैं। कौन तीन? (१) आगाढ़ (तीव्र आसक्ति) प्रतिपदा; (२) निर्ध्याम प्रतिपदा, एवं (३) मध्यमा प्रतिपदा। भिक्षुओ! इनमें आगाढ़ प्रतिपदा कौन है? ...पूर्ववत्...।

"निर्ध्याम प्रतिपदा कौन है? ...पूर्ववत्...।

सम्यक् प्रधान : "फिर, भिक्षुओ! मध्यमा प्रतिपदा कौन है? यहाँ, भिक्षुओ! जो भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों की अनुत्पत्ति के लिये मन बनाता है, तदर्थ प्रयास करता है, शक्ति लगाता है, तदर्थ चित्त को निगृहीत करता है; उत्पन्न पापमय धर्मों के प्रहाण के लिये...; अनुत्पन्न कुशल धर्मों की उत्पत्ति के लिये... उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति के लिये, नष्ट न हो जाने के लिये, इनकी वृद्धि के लिये, भावना के लिये, पूर्णता के लिये, मन बनाता है, प्रयास करता है, अपनी शक्ति (सामर्थ्य) का प्रयोग करता है, तदर्थ चित्त को निगृहीत करता है। ...पूर्ववत्... ॥ (२)

चार ऋद्धिपाद : ...पूर्ववत्... छन्द समाधि प्रधान संस्कारों से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है... वीर्यसमाधिप्रधान... चित्तसमाधिप्रधान... मीमांसासमाधिप्रधान-संस्कारों से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है। ...पूर्ववत्... ॥ (३)

पाँच इन्द्रियाँ : ...पूर्ववत्... श्रद्धेन्द्रिय की भावना करता है... वीर्येन्द्रिय की भावना करता है... स्मृतीन्द्रिय की भावना करता है... समाधीन्द्रिय की भावना करता है... प्रज्ञेन्द्रिय की भावना करता है... पूर्ववत्... ॥ (४)

पाँच बल : ...पूर्ववत्... श्रद्धाबल की भावना करता है... वीर्यबल की भावना करता है... स्मृतिबल की भावना करता है... समाधिबल की भावना करता है... प्रज्ञाबल की भावना करता है...पूर्ववत्... ॥ (५)

सात सम्बोध्यङ्ग : ...पूर्ववत्... स्मृतिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है... धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है... वीर्यसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है... प्रीतिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है... प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है... समाधिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है... उपेक्षासम्बोध्यङ्ग की भावना करता है...पूर्ववत्... ॥ (६)

अष्टाङ्गिक मार्ग : ...पूर्ववत्... सम्यग्दृष्टि की भावना... सम्यक्सङ्कल्प की भावना...

सम्मासमाधिं भावेति ...। अयं वुच्चति, भिक्खवे, मज्झिमा पटिपदा। इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो पटिपदा'' ति॥ ●

अचेलकवग्गो सोळसमो॥

तस्सुद्दानं

सतिपट्ठानं सम्मप्पधानं, इद्धिपादिन्द्रियेन च।
बलं बोज्झङ्गो मग्गो च, पटिपदाय योजये ति॥ ●

१७. कम्मपथपेय्यालं

१-२०. ''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि तीहि? अत्तना च पाणातिपाती होति, परं च पाणातिपाते समादपेति, पाणातिपाते च समनुञ्ञो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो [N.278] एवं निरये।

''तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि तीहि? अत्तना च पाणातिपाता पटिविरतो होति, परं च पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति, पाणातिपाता वेरमणिया च समनुञ्ञो होति... एवं सग्गे॥

सम्यववाक् की भावना... सम्यक्कर्मान्त की भावना... सम्यगाजीव की भावना... सम्यग्व्यायाम की भावना... सम्यक्स्मृति की भावना... सम्यक्समाधि की भावना करता है। भिक्षुओ! यह कहलाती है—मध्यमा प्रतिपदा। भिक्षुओ! ये तीन प्रतिपदाएँ (साधनामार्ग) कहलाती है॥ (७) ●

अचेलकवर्ग षोडश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. स्मृतिप्रस्थान, २. सम्यक्प्रधान, ३. ऋद्धिपाद, ४. पञ्चइन्द्रिय, ५. पञ्चबल, ६. सप्त सम्बोध्यङ्ग, एवं ७. अष्टाङ्गिक मार्ग॥ ●

१७. कर्मपथ पेय्याल

१-१०. ''भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष जैसे आया था वैसे ही पुनः नरक में जा गिरेगा। किन तीन धर्मों से?

प्राणातिपात : (क) ''स्वयं प्राणातिपाती (हिंसक) होता है, (ख) दूसरों को प्राणातिपात के लिये प्रोत्साहित करता है; या (ग) प्राणातिपात को स्वीकृत करता है, उसका समर्थन करता है। भिक्षुओ! ये तीन धर्म होते हैं जिनसे सम्पृक्त हुआ पुरुष जैसा आया था वैसा ही पुनः नरक में जा गिरता है। (क)

''परन्तु, भिक्षुओ! इन तीन धर्मों से युक्त पुरुष जैसा आया था वैसा ही पुनः स्वर्ग में पहुँच जाता है। कौन से तीन धर्म? (क) प्राणातिपात से स्वयं विरत रहता है, तथा (ख) दूसरों को इस

"अत्तना च अदिन्नादायी होति, परं च अदिन्नादाने समादपेति, अदिन्नादाने च समादपेति, अदिन्नादाने च समनुञ्ञो होति... एवं निरये।

"अत्तना च अदिन्नादाना पटिविरतो होति, परं च अदिन्नादाना वेरमणिया समादपेति, अदिन्नादाना वेरमणिया च समनुञ्ञो होति... एवं सग्गे॥

[B.303,R.298] "अत्तना च कामेसुमिच्छाचारी होति, परं च कामेसुमिच्छाचारे समादपेति, कामेसुमिच्छाचारे च समनुञ्ञो होति... एवं निरये।

"अत्तना च कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, परं च कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिया समादपेति, कामेसुमिच्छाचारा वेरमणि च समनुञ्ञो होति... एवं सग्गे॥

"अत्तना च मुसावादी होति, परं च मुसावादे समादपेति, मुसावादे च समनुञ्ञो होति... एवं निरये।

"अत्तना च मुसावादा पटिविरतो होति, परं च मुसावादा वेरमणिया समादपेति, मुसावादा वेरमणिया च समनुञ्ञो होति... एवं सग्गे।

"अत्तना च पिसुणवाचो होति, परं च पिसुणाय वाचाय समादपेति, पिसुणाय वाचाय च समनुञ्ञो होति... एवं निरये।

विरति के लिये प्रोत्साहित करता है, एवं (ग) प्राणातिपात विरति की स्वीकृति देता है या उसका समर्थन करता है ...पूर्ववत्... सीधा स्वर्ग में...। (ख) (१)

चोरी— ...पूर्ववत्... स्वयं न दिये हुए को लेता है (चौरी करता है), तथा चौरी के लिये दूसरों को भी प्रोत्साहित करता है, या दूसरों को इस चौरी की स्वीकृति देता है या उसका समर्थन करता है... सीधा नरक में...। (क)

...पूर्ववत्... स्वयं न दिये हुए को न लेता है, तथा इसे न लेने के लिये दूसरों को प्रोत्साहित करता है, और इसकी स्वीकृति या इसका अनुमोदन करता है ...पूर्ववत्...। (ख) (२)

कामभोगों में मिथ्याचार : ...पूर्ववत्... स्वयं काममिथ्याचार (व्यभिचार) में लिप्त रहता है, दूसरों को भी एतदर्थ प्रोत्साहित करता है तथा दूसरों को इसकी स्वीकृति या इसका समर्थन करता है... सीधा नरक में...। (क)

...पूर्ववत्... "स्वयं काममिथ्याचारों से दूर रहता है, दूसरे को दूर रहने के लिये प्रोत्साहित करता है तथा दूसरों के काममिथ्याचार से विरति की स्वीकृति तथा समर्थन करता है वह सीधा स्वर्ग में...पूर्ववत्... सीधा स्वर्ग में...। (ख) (३)

असत्य भाषण : जो स्वयं मृषावादी (असत्यभाषी) होता है, दूसरों को इसके लिये प्रेरित करता है तथा दूसरों के असत्यभाषण की स्वीकृति या उसका अनुमोदन करता है... सीधा नरक में...। (क)

...पूर्ववत्... स्वयं असत्य भाषण से दूर रहता है, दूसरों को इसके लिये प्रेरित भी नहीं करता, तथा दूसरों के असत्य भाषण को न स्वीकृति देता है, न उसका अनुमोदन ही करता है... सीधा स्वर्ग में...॥ (ख) (४)

"अत्तना च पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, परं च पिसुणाय वाचाय वेरमणिया समादपेति, पिसुणाय वाचाय वेरमणिया च समनुञ्ञो होति... एवं सग्गे॥

"अत्तना च फरुसवाचो होति, परं च फरुसाय वाचाय समादपेति, फरुसाय वाचाय च समनुञ्ञो होति... एवं निरये।

"अत्तना च फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, परं च फरुसाय वाचाय [N.279] वेरमणिया समादपेति, फरुसाय वाचाय वेरमणिया च समनुञ्ञो होति... एवं सग्गे॥

"अत्तना च सम्फप्पलापी होति, परं च सम्फप्पलापे समादपेति, सम्फप्पलापे च समनुञ्ञो होति... एवं निरये।

"अत्तना च सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, परं च सम्फप्पलापा वेरमणिया समादपेति, सम्फप्पलापा वेरमणिया च समनुञ्ञो होति... एवं सग्गे॥

"अत्तना च अभिज्झालु होति, परं च अभिज्झाय समादपेति, अभिज्झाय च समनुञ्ञो होति... एवं निरये।

"अत्तना च अनभिज्झालु होति, परं च अनभिज्झाय समादपेति, अनभिज्झाय च समनुञ्ञो होति... एवं सग्गे॥

चुगलखोरी : "जो स्वयं चुगलखोर होता है, साथ ही दूसरों को भी इसको प्रेरणा देता है, तथा दूसरों को चुगलखोरी की स्वीकृति देता है, या उसका अनुमोदन करता है... सीधा नरक में...। (क)

..."जो स्वयं चुगलखोरी से दूर रहता है, तथा दूसरों को भी चुगलखोरी से दूर रहने की प्रेरणा देता है। और दूसरों को भी ऐसा करने की स्वीकृति देता है या उनका अनुमोदन करता है... सीधा स्वर्ग में...। (ख) (५)

कठोर वाणी बोलना : "जो स्वयं कठोर वाणी बोलता है, और दूसरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा देता है। और दूसरों के ऐसा किये हुए की स्वीकृति देता है या उसका अनुमोदन करता है... सीधा नरक में...। (क)

"जो स्वयं कठोर वाणी नहीं बोलता, दूसरों को भी इसके लिये प्रेरित नहीं करता। और दूसरे ऐसा करने वाले न स्वीकृत करता है, न अनुमोदन ही करता है... सीधा स्वर्ग में। (ख) (६)

प्रलाप (बकवाद) करना : "जो स्वयं व्यर्थ प्रलाप करता रहता है, दूसरों को भी इसके लिये प्रेरित करता है। तथा ऐसा करनेवालों को स्वीकृति एवं अनुमोदन देता है... सीधा नरक में...। (क)

"जो स्वयं प्रलाप नहीं करता, दूसरों को भी ऐसा न करने की प्रेरणा देता है ...पूर्ववत्...। (ख) (७)

लोभ : "जो स्वयं लोभ करता है, दूसरों को इसकी प्रेरणा भी देता है। तथा दूसरों के ऐसे कार्य की स्वीकृति एवं अनुमोदन प्रदान करता है वह सीधा नरक में...। (क)

"अत्तना च ब्यापन्नचित्तो होति, परं च ब्यापादे समादपेति, ब्यापादे च समनुञ्ञो [B.304,R.299] होति... एवं निरये।

"अत्तना च अब्यापन्नचित्तो होति, पर अब्यापादे समादपेति, अब्यापादे च समनुञ्ञो होति... एवं सग्गे॥

"अत्तना च मिच्छादिट्ठिको होति, परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति, मिच्छादिट्ठिया च समनुञ्ञो होति... एवं निरये।

"अत्तना च सम्मादिट्ठिको होति, परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति, सम्मादिट्ठिया च समनुञ्ञो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, तीहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे" ति॥ ●

कम्मपथपेय्यालं निट्ठितं॥

तस्सुद्दानं

पाणं अदिन्नमिच्छा च, मुसावादी च पिसुणा।
फरुसा सम्फप्पलापो च, अभिज्झा ब्यापाददिट्ठि च।
कम्मपथेसु पेय्यालं, तिककेन नियोजये॥ ति॥ ●

"परन्तु जो स्वयं भी लोभ नहीं करता, तथा दूसरों को इस (लोभ) की प्रेरणा भी नहीं देता और दूसरों के लोभ की स्वीकृति या उसे अनुमोदन प्रदान नहीं करता, वह सीधा स्वर्ग में...। (ख) (८)

द्वेष : "जो स्वयं दूसरों से द्वेष करता है, दूसरों को भी इसके लिये प्रेरित करता है; तथा जो दूसरों से द्वेष की स्वीकृति या अनुमोदन करता है वह सीधा नरक में...। (क)

"जिसका अपना चित्त द्वेषरहित होता है, दूसरों को द्वेषरहित रहने की प्रेरणा देता है तथा जो दूसरों के द्वेषमय स्वीकृति एवं अनुमोदना करता है, वह सीधा स्वर्ग में...॥ (ख) (९)

दृष्टि : "जो स्वयं मिथ्यादृष्टि होता हुआ दूसरों को भी मिथ्यादृष्टि होने के लिये प्रेरित करता है, तथा इस मिथ्यादृष्टि की स्वीकृति एवं अनुमोदन देता है... सीधा नरक में...। (क)

"तथा जो स्वयं सम्यग्दृष्टि होता हुआ दूसरों को भी सम्यग्दृष्टि की प्रेरणा देता है, एवं जो अन्य को इस सम्यग्दृष्टि की स्वीकृति एवं समर्थन देता है... सीधा स्वर्ग में...॥ (ख) (१०) ●

कर्मपथ पेय्याल सप्तदश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

इस वर्ग में दश कर्मपथों की, अनुकूल प्रतिकूल रूप से व्याख्या की गयी है। वे **दश कर्मपथ** ये हैं—१. प्राणातिपात, २. अदत्तादान, ३. कामों में मिथ्याचार, ४. मृषावाद, ५. पिशुनवाक्, ६. परुषवाक्, ७. सम्प्रलाप, ८. अभिध्या (लोभ), ९. व्यापाद (द्वेष) एवं १०. दृष्टि। इनमें प्रत्येक का त्रिक दिखाकर व्याख्यान किया गया है॥ ●

१८. रागपेय्यालं

१-१०. "रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय तयो धम्मा भावेतब्बा। कतमे तयो? सुञ्ञतो समाधि, अनिमित्तो समाधि, अप्पणिहितो समाधि—रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे तयो धम्मा भावेतब्बा।

"रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय तयो धम्मा भावेतब्बा। कतमे तयो? [N.280] सवितक्कसविचारो समाधि, अवितक्कविचारमत्तो समाधि, अवितक्कअविचारो समाधि—रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे तयो धम्मा भावेतब्बा।

"रागस्स, भिक्खवे, परिञ्ञाय ...पे०... परिक्खयाय... पहानाय... खयाय... [B.305] वयाय... विरागाय... निरोधाय... चागाय... पटिनिस्सग्गाय इमे तयो धम्मा भावेतब्बा।

११-१७०. "दोसस्स... मोहस्स... कोधस्स... उपनाहस्स... मक्खस्स... पलासस्स... इस्साय... मच्छरियस्स... मायाय... साठेय्यस्स... थम्भस्स... सारम्भस्स... मानस्स... अतिमानस्स... मदस्स... पमादस्स अभिञ्ञाय... परिञ्ञाय... परिक्खयाय... पहानाय... खयाय... वयाय... विरागाय... निरोधाय... चागाय... पटिनिस्सग्गाय इमे तयो धम्मा भावेतब्बा" ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥ ●

रागपेय्यालं निट्ठितं॥

---

१८. रागपेय्याल

१-१७. "भिक्षुओ! राग को भली भाँति जानने के लिये इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिये। कौन से तीन? (१) शून्यता समाधि, (२) अनिमित्त समाधि, एवं (३) अप्रणिहित समाधि। भिक्षुओ! राग को भली भाँति जानने के लिये इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिये। (क)

"भिक्षुओ! राग को भली भाँति जानने के लिये इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिये। कौन से तीन? (१) अवितर्क एवं सविचार समाधि, (२) वितर्करहित एवं विचारमात्र समाधि, (३) अवितर्क एवं अविचार समाधि। भिक्षुओ! राग को भली भाँति जानने के लिये इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिये। (ख)

"भिक्षुओ! राग के परिज्ञान के लिये... परिक्षय के लिये... प्रहाण के लिये... क्षय के लिये... व्यय (नाश) के लिये... विराग के लिये... निरोध के लिये... त्याग के लिये... प्रतिनिसर्ग (परित्याग) के लिये इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिये॥ (ग)

"भिक्षुओ! द्वेष के... मोह के... क्रोध के... उपनाह (वैर) के... म्रक्ष (दूसरों के गुणों का महत्त्व घटाना) के... प्रदाश (चिढ़ना) के... ईर्ष्या के... मात्सर्य (अभिमान) के... माया (धोखा) के... शाठ्य (धूर्तता) के... स्तम्भ (किंकर्तव्य विमूढता) के... सारम्भ (क्रोध=उत्तेजना) के... मान के... अतिमान के... मद के... प्रमाद के अभिज्ञान, परिज्ञान, परिक्षय, प्रहाण, क्षय, व्यय, विराग, निरोध, त्याग, परित्याग के लिये इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिये...पूर्ववत्...।"

तस्सुद्दानं

रागं दोसं च मोहं च, कोधूपनाहपञ्चमं।
मक्खपलासइस्सा च, मच्छरिमायासाठेय्या॥
थम्भसारम्भमानं च, अतिमानमदस्स च।
पमादा सत्तरस वुत्ता, रागपेय्यालनिस्सिता॥
एते ओपम्मयुत्तेन, आपादेन अभिञ्ञाय।
परिञ्ञाय परिक्खया, पहानक्खयब्बयेन।
विरागनिरोधचागं, पटिनिस्सग्गे इमे दस।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च, अप्पणिहितो च तयो।
समाधिमूलका पेय्यालेसु पि ववत्थिता चा ति॥

तिकनिपातो निट्ठितो॥

●

भगवान् ने यह उपदेश किया। उन आप्तमना (सन्तुष्ट) भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण (उपदेश) का अभिनन्दन किया॥ ●

रागपेय्याल अष्टादश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. राग, २. द्वेष, ३. मोह, ४. क्रोध, ५. उपनाह, ६. म्रक्ष, ७. प्रदाश, ८. ईर्ष्या, ९. मात्सर्य, १०. माया, ११. शाठ्य, १२. स्तम्भ, १३. सारम्भ, १४. मान, १५. अतिमान, १६. मद एवं १७. प्रमाद। ये सत्तरह (१७) धर्मराग पेय्याल के माध्यम से व्याख्यात हुए हैं॥

इन सत्तरह धर्मों के—१. अभिज्ञान, २. परिज्ञान, ३. परिक्षय, ४. प्रहाण, ५. क्षय, ६. व्यय, ७. विराग, ८. निरोध, ९. त्याग एवं १०. परित्याग—इन दश प्रकार के ज्ञान के लिये १. शून्यता समाधि, २. अनिमित्त समाधि एवं ३. अप्रणिहित समाधि—इन तीन समाधिप्रकारों से भावना करनी चाहिये। यहाँ यह समस्त व्याख्यान पेय्याल के माध्यम से संक्षेप में ही दिखाया गया है। जिज्ञासु को इसकी शास्त्रानुसार विस्तृत व्याख्या कर लेनी चाहिये॥ ●

अङ्गोत्तरनिकायपालि का
त्रिकनिपात सम्पन्न

●



बौद्धभारतीग्रन्थमाला में प्रकाशित

पालि-साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

1. **पालिव्याकरण** (बालावतार) [हिन्दी अनुवाद सहित] 150/-
2. **मिलिन्दपञ्हपालि** (हिन्दी अनुवाद, विस्तृत भूमिका सहित) 350/-
3. **अभिधानप्पदीपिका** (हिन्दी-संस्कृत अर्थ सहित) पालिशब्दकोष प्रेस में
4. **विसुद्धिमग्ग** (हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत भूमिका) 1-2 भाग 400/-
5. **पातिमोक्खसुत्त** (भिक्षु प्रातिमोक्ष) (हिन्दी अनुवाद सहित) 30/-
6. **मज्झिमनिकायपालि** (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित) (सम्पूर्ण, 3 जिल्दों में) 1-5 भाग 1100/-
7. **दीघनिकायपालि** (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित) सम्पूर्ण, 1-3 भाग 650/-
8. **महावग्गपालि** (विनयपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित) सम्पूर्ण 500/-
9. **संयुत्तनिकायपालि** (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित) सम्पूर्ण, 1-4 भाग 2000/-
10. **धम्मपदपालि** (सुत्तपिटक) (हिन्दी-संस्कृत अनुवाद, विस्तृत भूमिका एवं अनेक परिशिष्ट) सम्पूर्ण 200/-
11. **अङ्गुत्तरनिकायपालि** (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद, बृहद् भूमिका सहित) सम्पूर्ण, 1-4 भाग 2250/-

बौद्धभारती

पो. बाक्स नं. 1049, वाराणसी-221 001

E-mail : bauddhabhrti@satyam.net.in